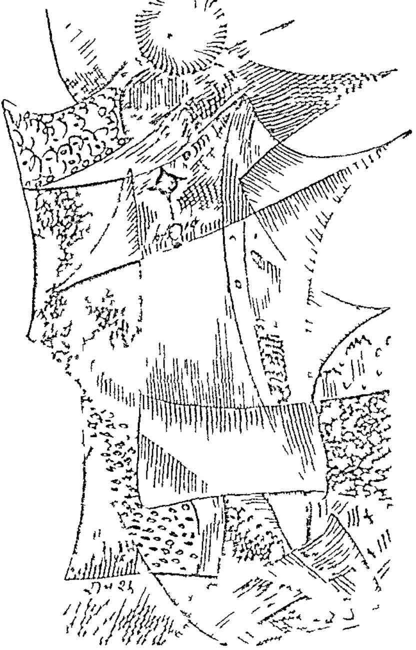
उत्तर योगी

श्री अरविन्द
जीवन
और
दर्शन

लोकभारती प्रकाशन
१५ ए, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद



उत्तरयोगी

UTTAR YOGI
Life and work of
Sri Aurobindo
By
Dr Shiva Prasad Singh

●

लोकभारती प्रकाशन
१५ ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

●

महावीर प्रेस
वाराणसी—५ द्वारा मुद्रित

प्रथम संस्करण १९७२
मूल्य २५-००

श्री अरविन्द की सहयात्रिक
श्रीमा
को—

"जिन परिवर्तनों को हम आज संसार में देख रहे हैं वे अपने आदर्श और अभिप्राय में बौद्धिक, नैतिक और भौतिक हैं। आध्यात्मिक क्रान्ति अपने समय की प्रतीक्षा कर रही है और इस बीच अपनी लहरें जहाँ तहाँ उछाल रही है। जब तक यह आ नहीं जाती तब तक अन्य सबका मर्म भी समझ में नहीं आ सकता, तब तक वर्तमान स्थिति की सभी व्याख्यायें तथा मनुष्य की भवितव्यता विषयक भविष्यवाणियाँ निरर्थक हैं क्योंकि इस क्रांति की प्रकृति शक्ति और क्रिया ही हमारी मानवता का आगामी युग चक्र निर्धारित करेगी।

—श्री अरविन्द

पुरोवाक्

हर मनुष्य के मानस में नचिकेताग्नि सुषुप्त है, हर मनुष्य के चिदाकाश में एक नीला चाँद है जिसे उसके ही सशय और सन्देहों के बादलो ने ढँक दिया है। आदमी के लिए रोटी का गोल टुकडा एकान्त सत्य ह इसे इनकार करना असलियत से किनाराकशी करना ह, पर क्या आदमी सिफ रोटी ही चाहता ह या उसी से जीवित रह सकता है यह प्रश्न ह जो आदिम जमाने से आज तक मनुष्य के साथ लगा है, और शायद हमेशा लगा रहेगा। रोटी का गोल टुकड़ा और गोल नीला चाँद यदि परस्पर विरोधी मान लिये जायँ, जैसा कि अब तक होता रहा ह, तो मनुष्य की पूरी मानसिक क्षमता ही गण्डगोल हो जाती है। ये दोनों वतुल पदाथ वस्तुत उसकी अभीप्सा या चाहत के ही दो छोर हैं। पहले और निचले छोर पर है रोटी और मानसिक सीढी के सबसे ऊँचे छोर पर है दिव्य चेतना का नीला चाद। दोनों को जोडना और दोनो को पाना आदमी की आदिमेच्छा ह, अन्तिमेच्छा भी कहता पर मुझे इनसान की निरन्तर विकास प्रक्रिया में इतना अटूट विश्वास है कि मैं नीले चाँद से भी आगे "जहाँ और भी ह' को सभावना की सूची से खारिज (Delete) नही करना चाहता। मैंने कम पढा ह। पर जितना पढ़ा है, उसके आधार पर कह सकता हू कि रोटी और नीले चाँद को मिलाने की अमली कोशिश अब तक जितने लोगों ने की, उनमें मुझे श्री अरविन्द ने अपनी व्यावहारिकता से सबसे अधिक प्रभावित किया।

श्री अरविन्द की जीवनी लिखना असभव काय है। यह जानते हुए भी सत्य की जलती अग्नि को छूने की कोशिश करना माननीय दुबलता है। इसमें गरमाहट भी मिली है जलन भी, पर सब कुछ करते एक असीम शान्ति और क्रियात्मकता का बोध भी हुआ है जा लेखक की सर्वोत्तम उपलब्धि ह। नये से नये आदमी के लिए श्री अरविन्द एक चुनौती हैं और जो भी सत्य के लिए जरा भी अभीप्सा रखता ह, इस चुनौती को दर किनार नही कर सकता।

यह सारा प्रयत्न, जैसा भी बन सका है, सम्भव न हुआ होता यदि श्री माधव पंडित और वैष्णवमूर्ति का स्नेह न मिलता, श्री नीरद वरण का सहारा न मिलता श्री रवीन्द्र और अनुबेन पुराणी का सौहार्द न मिलता। मुझे तो आज क्रिस्तीनी लाज के चौकीदार अब्दुल तक की याद आ रही है जो अपनी सिपाहियाना हिन्दी में कहता था—"जाओ सी-बीच पर घूमो। थक गया है।" मुझे आश्रम के अनेक बन्धुओं से जो निर्हेतुक प्यार मिला, उसे इस मौके पर अभिधा में बाँधने की कोशिश नहीं करूँगा।

श्री अरविन्द पर हिन्दी में पहली पुस्तक सुप्रसिद्ध पत्रकार झावरमल्ल ने १९२१ (?) में 'अरविन्द चरित' नाम से लिखी। उन्होंने 'कारा काहिनी' का अनुवाद भी परिशिष्ट में दे दिया है। शेष सभी अनुवाद मैंने स्वयं किये हैं, इसलिए उनके लिए स्वयं को उत्तरदायी मानता हूँ। अनुवाद की अशक्यता की स्थिति में मूल देखें, यह आग्रह है। अनुबेन ने भूत भगाने का एक मंत्र दिया था, उसके बावजूद प्रेस के भूतों से छुटकारा नहीं मिला है। 'ओसडूबी चिड़िया' के लिए 'आसेडूबी' उन्हीं भूतों की कृपा का फल है। फिर भी निवेदन है कि यदि अनुक्रमणिका को ध्यान से देखेंगे तो अनेक गलतियों का परिमार्जन हो जायेगा। कृपया पुस्तक पढ़ने के पहले अन्त में दिया हुआ शुद्धि पत्र अवश्य देख लें। अनुक्रमणिका शोधछात्रा सुश्री मन्दाकिनी गोयल ने तैयार की है, उन्हें धन्यवाद देना औपचारिक होगा।

अन्त में एक बात और, श्री अरविन्द को समझने के मेरे दृष्टिकोण से आश्रम के कुछ लोगों को शायद ना इत्तफाकी हो, वे इसे मेरी सीमा मान कर क्षमा करेंगे। सुन्दर फोटो चित्रों के लिए श्री अरविन्दाश्रम प्रेस के कार्यकर्ताओं के प्रति, छपाई के लिए महावीर मुद्रणालय के प्रति और प्रकाशन के लिए लोक भारती प्रकाशन के श्री दिनेशचन्द्र के प्रति कृतज्ञ हूँ।

शिव प्रसाद सिंह

सुधर्मा
गुरुधाम कालोनी दुर्गाकुण्ड
वाराणसी—५

२४ ४ १९७२

उत्तरयोगी १
जन्म से प्रवासी ३६
परिवेश की पहचान ५९
स्वराज्य के बलिपथी १२९
काल कोठरी मे रोशनी का बातायन १६८
पाँचवा क्षितिज १९१
मृत नगर मे दिव्यजीवन का पीठ २१६
नील ध्वजा और पद्मचक्र २४३
समुद्री साझें और ओसडूबी चिटिठ्या २७९
मनुष्य प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला ३०२
पृथ्वी यात्रा पर है ३१८
समूचा जीवन ही योग है ३३८
जिन्दगी का नमक ३६०
भविष्यत् कविता के मान्त्रिक ३८०
भारत नई मानवता का अतरिक्षयान ४०२
मृत्यु साम्पराय के लिए मृत्यु का वरण ४२४
मैने श्री अरविन्द को नकारने की कोशिश की ४४४
अनुक्रमणिका ४६५

चित्र सूची

बालक अरविन्द ४८
श्री अरविन्द की अध्यक्षता में तिलक की वक्तृता १६०
श्री अरविन्द पाण्डिचेरी में २२४
महासमाधि ४३२
श्री मा ४३२

यह सारा प्रयत्न, जैसा भी बन सका है, सभव न हुआ होता यदि श्री माधव पडित और केशवमूर्ति का स्नेह न मिलता, श्री नीरद बरण का सहारा न मिलता श्री रवीन्द्र और अनुबेन पुराणी का सौहाद न मिलता। मुझे तो आज क्रिस्तीनो लाज के चौकीदार अब्दुल तक की याद आ रही है जो अपनी सिपाहियाना हिन्दी में कहता था—"जाओ सी-बीच पर घमो। थक गया है।" मुझे आश्रम के अनेक बन्धुओं से जो निहेतुक प्यार मिला, उसे इस मौके पर अभिधा में बाँधने की कोशिश नहीं करूँगा।

श्री अरविन्द पर हिन्दी में पहली पुस्तक सुप्रसिद्ध पत्रकार झाबर मल्ल ने १९२१ (?) में 'अरविन्द चरित' नाम से लिखी। उन्होंने 'कारा काहिनी' का अनुवाद भी परिशिष्ट में दे दिया है। शष सभी अनुवाद मैंने स्वय किये हैं, इसलिए उनके लिए स्वय को उत्तरदायी मानता हूँ। अनुवाद की अशक्यता की स्थिति में मूल देखें, यह आग्रह है। अनुबेन ने भूत भगाने का एक मन्त्र दिया था, उसके बावजूद प्रेस के भूतों से छुटकारा नहीं मिला है। 'ओसडूबी चिट्ठियों' के लिए 'आसेडूबी' उन्हीं भूतों की कृपा का फल है। फिर भी निवदन है कि यदि अनुक्रमणिका को ध्यान से देखेंगे तो अनेक गलतियों का परिमाजन हो जायेगा। कृपया पुस्तक पढ़ने के पहले अन्त में दिया हुआ शुद्धि पत्र अवश्य देख लें। अनुक्रमणिका शोधछात्रा सुश्री मन्दाकिनी गोकर्ण ने तैयार की है, उन्हें धन्यवाद देना औपचारिक होगा।

अन्त में एक बात और, श्री अरविन्द को समझने के मेरे दृष्टिकोण से आश्रम के कुछ लोगों को शायद ना इत्तफाकी हो, वे इसे मेरी सीमा मान कर क्षमा करेंगे। सुन्दर फोटो चित्रों के लिए श्री अरविन्दाश्रम प्रेस के कार्यकर्ताओं के प्रति, छपाई के लिए महावीर मुद्रणालय के प्रति और प्रकाशन के लिए लोक भारती प्रकाशन के श्री दिनेशचन्द्र के प्रति कृतज्ञ हूँ।

शिव प्रसाद सिंह

●

२४ ४ १९७२

सुधर्मा
गुरुधाम कालोनी दुर्गाकुण्ड
वाराणसी—५

उत्तरयोगी	१
जन्म से प्रवासी	३६
परिवेश की पहचान	५९
स्वराज्य के बलिपथी	१२९
काल कोठरी मे रोशनी का बातायन	१६८
पांचवा क्षितिज	१९१
मृत नगर मे दिव्यजीवन का पीठ	२१६
नील ध्वजा और पद्मचक्र	२४३
समुद्री साझें और ओसडूबी चिटिठया	२७९
मनुष्य प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला	३०२
पृथ्वी यात्रा पर है	३१८
समूचा जीवन ही योग है	३३८
जिन्दगी का नमक	३६०
भविष्यत् कविता के मान्त्रिक	३८०
भारत नई मानवता का अतरिक्षयान	४०२
मृत्यु साम्पराय के लिए मृत्यु का वरण	४२४
मैंने श्री अरविन्द को नकारने की कोशिश की	४४४
अनुक्रमणिका	४६५

चित्र सूची

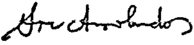
बालक अरविन्द	८८
श्री अरविन्द की अध्यगता में निजर की रसतृता	१६०
श्री अरविन्द पाडिचेरी में	२२४
महासमाधि	४३२
श्री मा	/३२

"भारत स्वाधीन और अखंड होगा। माँ अपने बच्चों को अपने चारों ओर इकट्ठा करके उन्हें एक महान् संगठित और शक्तिशाली राष्ट्र में बदल देगी।'

—श्री अरविन्द



I have been digging deep and long
Mid a horror of filth and mire
A bed for the golden river's song
A home for the deathless fire



सत्य को जीतना बड़ा कठिन और दुःसाध्य है। इस जीत के लिए मनुष्य को सच्चा योद्धा होना होगा—ऐसा योद्धा जो किसी चीज से भय नहीं करता, न तो शत्रुओं से और न तो मृत्यु से, क्योंकि यह संघर्ष सबके साथ और सबके विरुद्ध, शरीर के सहित और शरीर के बिना चल रहा है और इसका अन्त परम विजय में होगा।

—श्री अरविन्द

उत्तर योगी

स्तोमो वै तर
ऋग्वेद ८।३।३
मैं ऱ्स [उद] तर [जो पार हो गया है] की वन्दना करता हूँ।

आपके न होने पर मेरी साधना का निर्देशक कौन होगा ?"

दक्षिण के प्रसिद्ध योगी नगाई जप्ता से श्री के० वी० आर० आयगर ने पूछा। नगाई जप्ता को अन्तदृष्टि से यह आभास मिल गया था कि अब उनके शरीर-त्याग का समय बहुत निकट आ गया है। श्री आयगर के प्रश्न पर नगाई एक क्षण चुप रहे फिर उन्होंने कहा—"कुछ वर्षों बाद एक उत्तर योगी इधर आयेंगे। तुम अपनी साधना में उनसे सहायता लेना।'

उत्तर के योगियों की दक्षिण या दक्षिण के योगियों की उत्तर-यात्रा कोई नयी बात नहीं है। पुराकाल से आसेतु हिमालय यह देश ऐसे योगियों के परिव्रजन से उनके उपदेशों से प्रेरणाओं से मानसिक समृद्धि पाता रहा है। अगस्त्य के आगे विन्ध्य की दुर्गम चोटियाँ झुक गयी थीं। शंकराचार्य के आगे भी ये चोटियाँ मार्गावरोध का कारण न बन सकीं। इनकी परम्परा में अनेक नाम पहले और बाद में अटूट क्रम से जुड़ते रहे हैं, जुड़ते जायेंगे।

"जाने प्रतिवर्ष कितने उत्तर योगी दक्षिण भारत में आते हैं। मैं उन उत्तर योगी को पहचान कैसे पाऊँगा ?" अपने गुरु नगाई जप्ता से श्री आयगर ने पूछा। प्रश्न स्वाभाविक था।

योगी पुन एक क्षण ध्यानस्थ हुए, बोले—'वे दक्षिण भारत में शरण खोजने आयेंगे। वे अपने बारे में तीन विचित्रताओं का उल्लेख करेंगे, जिनसे तुम सहज ही उस उत्तर योगी का पता लगा सकते हो।'

श्री के० वी० रामस्वामी आयगर इसी भविष्यवाणी से प्रेरित होकर पाण्डिचेरी में श्री शंकर चेट्टी के घर श्री अरविन्द से मिले। श्री अरविन्द ने स्वयं इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है—"उत्तर योगी (उत्तर से आने वाला योगी) मेरा ही नाम था जो मुझे एक प्रसिद्ध तमिल योगी की बहुत पहले की भविष्यवाणी के आधार पर दिया गया। उनकी भविष्यवाणी यह थी कि ३० वर्ष बाद (मेरे पाण्डिचेरी पहुँचने के समय से यह संगत है) उत्तर से एक योगी भाग कर दक्षिण में आयेगा और यहाँ पूर्णयोग का अभ्यास करेगा। और यह भारत की आनेवाली स्वतन्त्रता का एक चिह्न होगा। उन्होंने

उस योगी की पहचान कर सकने के लिए लक्षण के रूप में तीन चक्कर (तीन पागलपन)—ये तीनों ही मेरी पत्नी के नाम मेरे पत्रों में पाये गये[1]।'

श्री अरविन्द ने श्री आयंगर की सहायता से एक पुस्तक 'यौगिक साधना' प्रकाशित करायी। बाद में उन्होंने इसका प्रचलन रोक दिया, क्योंकि "इसको लिखते समय सदा ही राममोहनराय की आकृति उपस्थित होती रही[2]।" उस समय श्री अरविन्द स्वतःचालित लेखन (Automatic writing) का अभ्यास कर रहे थे।

इस पुस्तक के अन्त में एक सम्पादकीय परिशिष्ट भी संलग्न है जिसे 'उत्तर योगी' ने हस्ताक्षरित किया है। अर्थात् उस समय 'उत्तर योगी' शब्द श्री अरविन्द को भी प्रिय था और इस पुस्तक के अन्त में यह श्री अरविन्द के समनाम के समान प्रयुक्त हुआ है।

श्री अरविंद के जीवन के सबसे बड़े मोड़ की सूचना देनेवाला उनका 'उत्तरपाड़ा अभिभाषण' है। उत्तरपाड़ा कलकत्ते का एक प्रसिद्ध क्षेत्र है। उनके जीवन का आध्यात्मिक मोड़ इसी अभिभाषण में घोषित हुआ और यह क्या मात्र आकस्मिक है कि इस भाषण का नाम 'उत्तर क्षेत्र का भाषण' पड़ गया। यहाँ भी 'उत्तर' शब्द ने अपनी रहस्यात्मक उपस्थिति कायम रखी।

मैंने जब भी श्री अरविन्द के बहुकोणिक व्यक्तित्व पर सोचा है, मुझे सदा ही इस 'उत्तर' शब्द ने अपनी अनेकोन्मुखी अर्थगर्भिता के जाल में लपेट लिया है। मैं यह मानने को तैयार अवश्य हूँ कि इस शब्द के आकर्षण के पीछे मेरी अपनी स्वप्निल भावनाओं का भी पूरा हाथ हो सकता है, पर 'वाक्' की असीम सत्ता को अस्वीकार करने की शक्ति मुझमें नहीं है।

उत्तर शब्द के 'आप्टे संस्कृत-अंग्रेजी कोश' में निम्नलिखित आठ अर्थ प्राप्त होते हैं: १ दिक्प्रान्त सूचक जैसे उत्तर भारत, उत्तरी ध्रुव आदि, २ उच्च जैसे अवनतोत्तरकायम् (रघु० ९।६०।३), ३ बाद का जैसे उत्तरमेघ, उत्तर मीमांसा, ४ श्रेष्ठ, ५ अधिक, ६ संयुक्त, जैसे शंका तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव (शाकु० ५), ७ भविष्य और ८ जवाब।

१ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में पृ० १९७–१९८। श्री अरविन्द सोसायटी पाण्डिचेरी १९६५।

लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो ए० बी० पुराणी पृ० १४५। प्र० सं० १९ ८ श्री अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी।

श्री अरविन्द उत्तर यागी थे, अर्थात वे उत्तर भारत के थे। उत्तर का यह दिक्प्रांत सूचक अर्थ श्री अरविन्द के संदर्भ में पूर्णत निरर्थक हो जाता है। यह सही है कि उनका जन्म बंगाल में हुआ जो उत्तर भारत का एक क्षेत्र है। उनकी शैशव शिक्षा उत्तर में हिमालय की उपत्यका में स्थित दार्जिलिंग में हुई। उनका पाण्डिचेरी जाने के पहले का जीवन गुजरात से बंगाल तक फैले उत्तर भारत में व्यतीत हुआ, परन्तु उनके जीवन का अधिकांश दक्षिण में बीता। दिक्प्रान्त सूचक इस अर्थ से क्या सचमुच उनके व्यक्तित्व पर कोई प्रकाश नहीं पडता? अगस्त्य के बाद संभवत वह उत्तर भारत के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने दक्षिण भारत को अपनी साधना और उसके प्रचार प्रसार का केन्द्र चुना। कहा जाता है कि पाण्डिचेरी (पुदुच्चेरी) वैदिक शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। अगस्त्य की तपोभूमि था। कौन जानता है कि आज जहा आरोवील बन रहा है, कभी वहीं विराट आश्रम रहा हो, जहा से दक्षिण पूर्व एशिया के लिए मानवधर्म का संदेश लेकर अगस्त्य के शिष्य रवाना हुए हो। 'समुद्रपान' का आधुनिक दृष्टि से दूसरा अर्थ हो भी क्या सकता है? जो भी हो, पाण्डिचेरी को अपनी साधना और उसकी उपलब्धियों के प्रसार का केन्द्र बनाकर श्री अरविन्द ने अपने द्वारा निर्धारित योगमार्ग के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष की पुष्टि की। उनका योगमार्ग जाति धर्म, उत्तर-दक्षिण रंग रूप की पूर्वनिर्मित सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। वस्तुत पाण्डिचेरी को साधना-केन्द्र बनाने के जिस दैवी आदेश का वे उल्लेख करते हैं उसकी यह प्रथम प्रतिपत्ति रही होगी कि उनकी साधना, जो वृहत्तर पृथ्वी चेतना के विकास के लिए संकल्पित है ऐसे प्रदेश में होनी चाहिए जो पृथ्वी का सर्वाधिक नहीं तो कम से कम पर्याप्त अंधतमस से घिरा हुआ क्षेत्र हो। उस समय पाण्डिचेरी क्या था इसे हम आगे देखेंगे। दूसरी प्रतिपत्ति यह भी हो सकती है कि ऐसी साधना को, जो जीवन की संकुचित क्षेत्रीयताओं को स्वीकार नहीं करती, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से सम्पर्क रखनेवाली भूमि में प्रतिष्ठित होना चाहिए।

बंगाल आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण का केन्द्र रहा है। साम्प्रतिक भारत के अनेक आन्दोलन, राजनीतिक और आध्यात्मिक दोनो ही इसी शस्य श्यामला भूमि से अंकुरित हुए। उन्नीसवी शताब्दी के बंगाल ने एक साथ राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन रामकृष्ण परमहंस, विजय गोस्वामी, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ-जैसे व्यक्तियो को उत्पन्न करके भारतीय संस्कृति को एक नयी दीप्ति प्रदान की। भारतीय पुनर्जागरण पर अब तक बहुत कुछ लिखा गया है और इन सांस्कृतिक अग्रदूतों के व्यक्तित्व और उनके कार्यों का विस्तृत विवेचन भी होता रहा है। परंतु मुझे यह देखकर बडी परेशानी होती है कि इतनी बड़ी सांस्कृतिक गतिविधि और इतने अधिक प्रतिभाशाली व्यक्तियों को प्राय एक ही पंक्ति में, समूहबद्ध रखकर अध्ययन की इयत्ता मान ली जाती है। पुनर्जागरण के दौर की ये या दूसरी अनेक प्रतिभाएँ कुछ बिन्दुओं पर अवश्य

सादृश्य रखती है ? परन्तु इनमें एक बहुत विशिष्ट किस्म का अन्तर भी है। श्री राममोहन राय, रवीन्द्रनाथ, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपिन पाल आदि अंग्रेजी पद्धति से प्रभावित थे। रवीन्द्रनाथ कलात्मक क्षमता में अद्वितीय थे और बहुत दूर तक वे भारतीय संस्कृति के उद्घोषक भी कहे जा सकते हैं। पर ये सभी नरम दल व कांग्रेसी नेताओं की तरह शान्तिप्रिय और उदारतावादी थे। रामकृष्ण परमहंस स्वभावतः ही जीवन के बहुविध क्रियाकलापों से अलग रहे। यही स्थिति विजय गोस्वामी या ब्रह्मसमाज के दूसरे लोगों की भी थी। इसके ठीक विपरीत दयानन्द, बंकिमचन्द्र, तिलक तथा किंचित पूर्ववर्ती विवेकानन्द भारतीय परम्परा में आस्था रखनेवाले सक्रिय उग्रवादी विचारधारा को माननेवाले लगते हैं। इनमें विवेकानन्द और तिलक का अंग्रेजी ज्ञान भी अप्रतिम था परन्तु ये सभी लोग देश की पराधीनता से सिर्फ दुखी ही नहीं थे, बल्कि अत्याचारों का खुला विरोध करने की प्रवृत्ति इनकी मूल चेतना का अंग थी। ये लोग अत्याचारों से लड़ना अपना धर्म समझते थे। श्री अरविन्द इसी कोटि के व्यक्तित्व थे। वे बंगाल की धरती की उपज थे पर विचारधारा में वे तिलक, दयानन्द आदि के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। बंगाल के विषय में स्वभावतः उनके मन में अनुराग था पर वे जिस प्रकार का 'मिशन' लेकर आये थे उसकी संसिद्धि शायद बंगाल में रहकर नहीं हो सकती थी। वे अनेक रूपों में बंगाली व्यक्तित्व के अतिरेकों से अर्थात् स्वप्निल भावुकता आदि से बिल्कुल अछूते थे।

श्री अरविन्द का पाण्डिचेरी गमन क्षत्रीयता की संकुचित सीमाओं के ध्वंस का प्रतीक है। वे देशकाल में बंधा खंडित विभक्त मानवता के प्रतिनिधि बनने नहीं बल्कि परस्पर सहयोग से पृथ्वी पर अवतरित होनेवाले दिव्य जीवन के निदेशक थे इसलिए उनके प्रत्येक कार्य मनुष्य को विभाजित करनेवाली आसुरी शक्तियों के षड्यन्त्र को असफल बनाने के उद्देश्य से परिचालित रहे।

अनेक लोगों ने श्री अरविन्द के पाण्डिचेरी गमन को राजनीति से अथवा सक्रिय जीवन से संन्यास की संज्ञा दी है। ऐसे लोग प्रायः यह भूल जाते हैं कि कर्म की गति बड़ी गहन होती है। सक्रियता के बीच रहनेवाले न तो सभी कर्मठ ही होते हैं और न तो ईमानदार ही। उस समय यह बात भले ही न स्पष्ट हुई हो आज का भारतीय जानता है कि किस प्रकार पिछली जेल-यात्राओं का गलत सही प्रमाणपत्र उपस्थित करके लोगों ने अपने और अपने सम्बन्धियों के लिए अधिक से अधिक राजसिक सुविधाएँ प्राप्त करने की कोशिश की। श्री अरविन्द के जीवन को गहराई से देखने वाला प्रत्येक व्यक्ति आसानी से कह सकता है कि पाण्डिचेरी के योगी अरविन्द तथा बड़ौदा और कलकत्ते में कार्यरत अरविन्द में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। यह एक ही व्यक्तित्व का सहज विकास मात्र है।

श्री अरविन्द ने बंगाल इसलिए छोड़ा कि वे बंगाल की तात्कालिक सीमाओं में

बँधकर सकुचित क्षेत्रीयता का शिकार नहीं होना चाहते थे। जीवन के खतरे और जोखिम भरे सभी काय उन्होंन बगाल में शुरू किये। पर बगाल से बँधे नहीं। वे बगाल छोडकर इसीलिए गये क्योंकि वे बगाल के प्रति असीम अनुराग रखते थे। अपने लघुभ्राता बारीन्द्र के नाम लिखे पत्र में उन्होंने कहा है—'हमारी सभ्यता हो गयी है अचलायतन, धर्म बाहर का कट्टरपन अध्यात्म हो गया है एक क्षीण आलोक अथवा क्षणिक उन्मादना की तरंग। यह अवस्था जितने दिन तक रहेगी, भारत का स्थायी पुनरुत्थान असभव है। बगाल में ही दुर्बलता की चरम अवस्था है। बगाली की बुद्धि क्षिप्र है। उसमें विचार क्षमता है। अन्तर्य ज्ञान शक्ति (Intuition) भी है। इन सब गुणों में वह भारत में श्रेष्ठ है। ये सभी गुण आवश्यक हैं पर ये ही यथेष्ट नहीं हैं। इनके साथ हो यदि चिन्ता की गभीरता धीर शक्ति वीरोचित साहस दीर्घ परिश्रम की क्षमता साथ ही आनद भी हो तो बगाली भारत का ही क्या समग्र ससार का नेता हो जायेगा। पर बगाली यह नहीं चाहता। सहज में काम चलाना चाहता है चिन्तन न करके ज्ञान चाहता है, परिश्रम न करके फल चाहता है, सहज साधना से सिद्धि चाहता है।[१]"

श्री अरविन्द का व्यक्तित्व मानो महत बगाली व्यक्तित्व की अपूर्णता को पूर्णता प्रदान करने वाला प्रतीक है। क्षेत्रीय अह और स्थानीय साधना के चाकचिक्य से श्री अरविन्द जो इस कदर अछूते रह गये, बल्कि इनके प्रति जो निरन्तर समझौता रहित और अडिग बने रहे वह सब-कुछ उनके व्यक्तित्व को बगाली पुनर्जागरण से हटाकर एक दूसरी ही महत्वपूर्ण भूमिका में उपस्थित करता है। एक और जहा बगाल की धरती ने उनके व्यक्तित्व में मृदुता सस्कारिता, सरलता, क्षमता और कलात्मकता की सुगन्ध घोल दी, वहीं श्री अरविन्द के व्यक्तित्व में अन्तर्राष्ट्रीयता, दृढता, शूरता और अप्रतिम बौद्धिकता तथा तर्क-सकल निर्मम सत्याचारिता का समावेश हुआ जो उन्हें विवेकानन्द के बाद आधुनिक भारत का सबसे अधिक आकर्षक व्यक्ति बनाने में सहायक हुआ।

•

श्री अरविन्द उत्तर योगी थे निश्चय ही उच्चता के अर्थ में। मैं जानता हूँ कि इस शब्द में अतिव्याप्ति का दोष स्वयमेव आसानी से सलग्न हो जाता है। उच्चता एक पकड में न आनेवाला ध्रुवांक है फिर भी इसे लक्ष्य बनाकर श्री अरविन्द के व्यक्तित्व को समझने की कोशिश की जा सकती है। कभी कभी उच्चता भी अबूझ हो जाती

१ ७ अप्रैल, १९२० को लिखा पत्र।

है। श्री विश्वनाथ नरवणे ने अपनी पुस्तक "आधुनिक भारतीय चिंतन' में श्री अरविन्द के विषय में लिखा है— 'श्री अरविन्द का दर्शन भारतीय चिन्ता की नदी में एक सुन्दर किंतु कुछ कुछ अगम्य द्वीप के समान है। इस द्वीप में बहुत से गौरवशाली शिखर हैं, जहाँ से क्षितिज के भव्य दृश्य दीख पड़ते हैं। इन शिखरों पर चढ़नेवाले को लगता है कि मार्ग ऊबड़-खाबड़ है और वे उसके विरलित वायुमण्डल में हाँफने लगते हैं, किंतु एक बार अनुकूलन होने के बाद शुद्ध वायु उनके प्राणों को उन्मत्त बनाती है। खेद की बात है कि नदी में यात्रा करनेवाले बहुत से लोग तो इस द्वीप से बचकर निकल जाते हैं और कुछ लोग द्वीप में ऐसे प्राणियों से सामना होने के कारण जिनकी भाषा समझ में नहीं आती शिखरों पर चढ़े बिना ही लौट जाते हैं।'[1]

यह अंश यदि श्री अरविन्द को पढ़ने के लिए दिया जाता तो कौन जाने वे क्या उत्तर देते। पर इसी से मिलते जुलते एक प्रश्न के उत्तर में श्री अरविन्द ने नीरद वरण से कहा था—"यह योग मार्ग किसी के लिये भी ग्रंड ट्रंक रोड नहीं या क्षमा, न किसी के लिए भी नहीं, न तो मेरे लिए ही, न श्री माँ के लिए ही। (सुविधाजनक रास्ते का) ये बातें रूमानी भ्रम जाल हैं।'[2]

यहाँ के गौरवशाली शिखरों को देखकर भी लोग लौट जाते रहे तो इसका मूल कारण वह सहज सुविधा वृत्ति ही है जिसके द्वारा आसानी से सिद्धि पाने की कामना की जाती है। हर नया दर्शन अपनी पारिभाषिक नूतन शब्दावली लेकर आता है। दूसरी चीज़ यह भी कि दर्शन की शाब्दिक ज्ञानवाली प्रणाली में और श्री अरविन्द की साधनापरक पद्धति में कुछ अंतर करना जरूरी है। सिद्धान्त प्रयोग से अलग होकर कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते। प्रयोग की कष्टसाध्य स्थिति ही लोगों को लौटने के लिए विवश करती रही। श्री अरविन्द इस चीज को जानते थे इसीलिए बारीन्द्र के नाम लिखे अपने पत्र में उन्होंने कहा था—"प्रचलित गुरुगिरी पर मेरी आस्था नहीं है। लाख लाख शिष्य नहीं चाहता। एक सौ अहंकार वर्जित पूर्ण तैयार मनुष्य भागवत यंत्र के रूप में कार्य करनेवाले मिल जायें यही यथेष्ट है।'[3]

मैं जिस उच्चता की बात कर रहा हूँ वह गौरवशाली शिखरों' से भिन्न स्तर की है। यह उच्चता भौतिक और बाहरी नहीं बल्कि उन मानव मूल्यों के द्वारा आंकी जा सकती है जो किसी भी व्यक्तित्व को सामान्यता से अलग करके उच्चता में उच्च बनाते हैं।

१ आधुनिक भारतीय चिन्तन : वि० नारा० नरवणे : राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ० २३१।
२ करिसपाण्डेन्स विद श्री अरविन्दो : नीरद वरण पृ० ६९। फर्स्ट कम्बाइण्ड एडिशन अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी १९६९।
३ ७ अप्रैल १९२० को लिखा पत्र।

श्री अरविन्द ने राजनेता के रूप में 'पूर्ण स्वराज्य' की माँग की। श्री गांधी के दक्षिण अफ्रिका से भारत आगमन के काफी पहले 'असहयोग आन्दोलन' का सूत्रपात किया। कलकत्ते के नेशनल कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में एक नयी शिक्षा पद्धति की बात कही। वन्दमातरम और कर्मयोगी के संपादक के रूप में भारतीय आत्मा को स्पष्ट करनेवाली नयी पत्रकारिता का सूत्रपात किया। उग्रपंथी विचारधारा का स्वीकार करते हुए भी विरोधी के प्रति सद्भाव रहने का आग्रह किया। सत्य तो यह है कि स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय राजनीति के सभी मूलभूत आदर्श राष्ट्रीयता, स्वदेशी प्रेम, विदेशी वस्तु का बहिष्कार, जनसंगठन और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का आग्रह जैसे तत्त्व, जो बाद में गान्धी जी के नेतृत्व में कांग्रेस के प्रेरणा स्रोत बने, श्री अरविन्द के महान व्यक्तित्व की देन है। श्री जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है—' बंग भंग के विरुद्ध उत्पन्न आन्दोलन ने अपने सभी सिद्धान्त और उद्देश्य श्री अरविन्द से प्राप्त किये और इसने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में होने वाले महान आन्दोलनों के लिए आधार तैयार किया।"[1] जेल-यातना को अपनी आत्मिक निष्ठा और कष्टसहिष्णुता के बल पर योगसाधना में बदल लिया। जेल से ससम्मान मुक्ति मिलने पर देश की जनता के एकमात्र राजनेता होने के अधिकार को स्वीकार करने के बदले आन्तरिक पुकार को, अन्तरात्मा के आदेश को मान कर वे पाण्डिचेरी की यात्रा की। निरन्तर साधना के द्वारा जो दिव्य शक्ति प्राप्त की उसे सम्पूर्ण पृथ्वीचेतना के विकास के लिए अर्पित कर दिया। इस दुर्लभ और अब तक की श्रेष्ठतर सिद्धि को प्राप्त कर के भी अपने को परात्पर शक्ति का सिर्फ यन्त्र मात्र मानकर सतत विश्व मानवता के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहे। स्वाधीनता और साधना के मार्गों पर चलते हुए जिस अदम्य साहस का परिचय दिया, वह अश्रुतपूर्व था। श्री अरविन्द के इस उच्च व्यक्तित्व के बारे में सोचते हुए अचानक कालिदास की ये पंक्तियाँ याद आती हैं —

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना ॥
आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः ॥
(रघुवंश १।१४ १५)

वे दृढता में सब से दृढ, तेज में सब से उद्दीप्त, उच्चता में सब से उच्च, व्यापकता में सब से व्यापक मेरु सदृश आत्मा वाले थे। जैसा उच्च व्यक्तित्व था, वैसी ही प्रज्ञा थी जैसी प्रज्ञा थी, वैसी ही शास्त्रज्ञता, जैसी शास्त्रज्ञता थी, वैसा ही कार्यारम्भ होता था और होती थी वैसी ही महत् उपलब्धि।

१ प्रॉफेट आफ इण्डियन नेशनलिज्म डॉ० करणसिंह, भूमिका–पृ० (९) भारतीय विद्याभवन, बम्बई १९६७।

ऐसे ही प्रसग म इग्लड के आदरास्पद पादरी ई० एफ० एफ० हिल का यह कथन याद आता ह

श्री अरविन्द आज के सबसे बडे दार्शनिक और अब तक के सब से बडे रहस्य विदो के बीच महान रहस्यविद ह।'[१]

•

इस सक्षिप्त विवरण से ही स्पष्ट हो जाता ह कि श्री अरविन्द श्रेष्ठता क अथ म भी पूण उत्तरयोगी थे। श्रेष्ठ शब्द में परत पर परत कई अथ निहित ह। श्रेष्ठता एक स्वत सिद्ध वस्तु हो सकती ह पर श्री अरविन्द के लिए श्रेष्ठता सदा सापेक्ष्य शब्द रही ह। अमरकोश श्रेष्ठ की व्याख्या करते हुए इसे श्रेयस से जोडता ह। श्रेया श्रेष्ठ। श्व श्रेयस शिव भद्र कल्याण मगलम् शुभम।

कठोपनिषद में प्रयुक्त इस शब्द का तत्त्वाथ स्पष्ट करते हुए एक बार उन्होंन कहा था— यदि तुम सासारिक अभ्युदय से आसक्त होतो तुम श्रेयस को प्राप्त नही कर सकते। इसलिए यदि इस प्रेयस् को जो अग्नि की लपटो में डाल नही सकता उसे श्रेयस् यानी शाश्वत की प्राप्ति नही हो सकती।'[२] उन्होंन अपने जीवन की समूची सुख सुविधाएँ उपाधि नौकरी राजनीतिक नेतागिरी सभी को अग्नि की लपटो के हवाले कर दिया।

श्री अरविन्द का पूरा व्यक्तित्व जसे इस श्रेयस के लिए सकल्पित था। श्रेयस स्वय अपने तक भी सीमित हो सकता ह। पर श्री अरविन्द के लिए सारा जीवन स्वनिरपेक्ष था। उन्होंने आरम्भ से ही राजनीति में प्रवेश से लेकर महासमाधि में प्रवेश तक जो भी किया वह कभी भी अपने लाभ के लिए नही था। उनकी श्रेष्ठता आत्मोपलब्धि या चेतना की उच्चतम विभूति को सिफ अपने लिए उपलब्ध करने म नही थी। इग्लण्ड स लौटकर भारतीय भूमि पर पैर रखने के साथ ही भारतमाता की जो छवि उनकी आँखो में उभरी उसी के चरणो में उन्होंन अपने को निवदित कर दिया।

भारत उनकी समूची सक्रियता का केन्द्रबिन्दु था। उन्होंन स्वय लिखा ह— प्रेम का राजनीति म महत्त्वपूण स्थान ह। यह देश के प्रति प्रेम ह देशवासियो क प्रति प्रेम

१ Aurobindo is the greatest contemporary philosopher and great in the company of the greatest mystics of all times —World Review October 1947

२ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० १३८

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।
कठोपनिषद् द्वितीय वल्ली २।

ह, दश के गौरव के प्रति प्रेम है। जाति की महत्ता और उसकी खुशिया के लिए अनुराग, अपने देशवासिया के लिए आत्मबलिदान की आकाक्षा, उनके दुखा के परिहार से मिलने वाले आनन्द के प्रति प्रसन्नता देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना रक्त बहते देखने की लालसा और मृत्यु क बाद पूवजा से मिलने की खुशी में यह प्रेम प्रकट होता ह। मातभूमि की मिट्टी समुद्रा से उठने वाली हवा, भारत के पवता से निकलने वाली नदिया के स्पश से, भाषा बोलिया, सगीत और कविता के श्रवण से विभिन्न वेश भूषा और आचार-व्यवहार को देखकर उसमें सहज भौतिक आनन्द की अनुभूति इस प्रेम की जडे है। अतीत के गौरव वतमान के दुख, भविष्य की आकाक्षा इसकी शाखाएँ है। आत्मबलिदान आत्मविस्मरण, महान सेवाभाव, असीम सहनशक्ति इसके फल ह। और वह उवराशक्ति, जा इस वृक्ष का जिलाये रहती ह वह है अपने देश का देवताओ की जन्म भूमि के रूप मे बोध धरतीमाता की प्रतीति, और इस मातृशक्ति का अनवरत ध्यान, भक्ति और सेवा का भाव।[1]

इग्लैड से लौटने पर श्री अरविन्द का बम्बई के अपोलो बन्दर पर पैर रखते ही मानशक्ति का जो अनुभव हुआ वह उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ध्रुवबिन्दु है जो उनके भविष्यत क्रिया कलापा का प्रेरणास्रोत ह। भवानी मन्दिर की स्थापना के पीछे भी यही रहस्य ह। उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो भी प्रयत्न किये उसके पीछे यही मूर्ति सदव विराजमान ह। जेल की यातना के दिनों में भारतमाता की छवि उनके सिर पर आशीष बनकर छायी रही। जेल से मुक्त होने पर उत्तरपाडा के प्रसिद्ध अभिभाषण में उन्होंने कहा— पूरी मानवता की मुक्ति के लिए यही धम ह जिसे इस देश अतीत काल से विकसित और सुरक्षित कर रखा ह। इसी धम का विश्व को देने के लिए भारत का उदय हो रहा ह। भारत का उत्थान वसा ही नही ह, जसा दूसरे देशों का होता है। अपने लिए या शक्ति पाकर दूसरो को पददलित करने के लिए यह नहीं उठ रहा ह। यह जागरण सारे ससार के लिए उस शाश्वत प्रकाश के दान के लिए हो रहा ह जो इसे पुराकाल से सौंपा गया ह। मानवता के लिए ही भारत का अस्तित्व रहा ह। अपने लिए नही मानवता के लिए ही, उसे महान होना ह अपने लिए ही नहीं। यही उसकी स्वतन्त्रता का अथ ह।[2]

बचपन में पाँच वष की आयु से महासमाधि पयन्त श्री अरविन्द का एक प्रकार उस वातावरण से बिछोह ही रहा जिसे परिवार कहते है। भारत लौटने क बाद उन्होंने पाया कि पिता नही रहे। माँ ऐसी अस्वस्थ थी कि पहचान भी न सकी। इस तरह परिवार, प्रान्त, मातभाषा सबसे अलग होकर रहने के अभ्यस्त बने। यह मुक्ति

१ टॉकिंग ऑफ पर्सनल रेमिनिसेंस, १९६६, संस्करण, पृ० ५९।
२ स्पीचेज आफ श्री अरविन्दो पृ० ६३

स्वयं में एक शक्ति था। भारत के प्रति प्रेम ने आइ० सी० एस० बनने से रोका। बडौदा के सुविधापूर्ण सम्मानयुक्त सुखद जीवन को छोड़कर कलकत्ते आये क्योंकि परतंत्र भारतमाता की दुर्दशा देखी नहीं गयी। कलकत्ते में यातनाओं की भीड़ थी। पर उनकी निर्भीक आत्मतेजोदीप्त चेतना कहीं से आहत नहीं हुई।

कारागार में एक नये सत्य की प्रतीति हुई। वासुदेव की रहस्यात्मक अनुभूति ने उनके पूरे व्यक्तित्व को आमूल बदल दिया। अहम् का पूर्ण विसर्जन हो गया।

श्री अरविंद ने उत्तरपाड़ा के भाषण में निःसंकोच कहा— "मैं (वासुदेव) इन्हें स्वतन्त्रता दे रहा हूँ ताकि ये संसार की सेवा कर सकें। मैंने तुम्हें दिखाया है कि मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ। मनुष्यों में, पदार्थों में। इस आन्दोलन में हूँ। मैं सिर्फ उन्हीं के भीतर क्रियाशील नहीं हूँ जो देश के लिए कार्य कर रहे हैं बल्कि उनके भीतर भी, जो उसका विरोध कर रहे हैं और उनके रास्ते को रोक रहे हैं।"[1]

जिस समय वे कारागार से मुक्त हुए निःसंदेह वे देश के सर्वसम्मानित और सर्वाधिक लोकप्रिय राजनेता थे। किन्तु वे हमेशा से ही पर्दे के पीछे रहकर कार्य करने के आदी थे। सम्मान, गौरव और प्रतिष्ठा के लिए दौड़ने वाले लोगों से उनकी प्रकृति भिन्न थी। उन्होंने सक्रिय राजनीति से अलग होने का निश्चय किया और देश के नाम अपने अंतिम पत्र में लिखा—

"सभी महान् आन्दोलनों को अपने ईश्वर प्रदत्त नेता की प्रतीक्षा होती है क्योंकि वही ईश्वरीय शक्ति की अभीप्सित प्रणाली बन सकता है और जब वह सामने आ जाता है तभी उनकी विजयपूर्ण संसिद्धि भी होती है। जिन लोगों ने अब तक नेतृत्व किया वे दृढ़ महान, प्रतिभासम्पन्न नेतृत्वक्षमता से युक्त व्यक्ति थे, फिर भी वे इस विश्वव्यापी आन्दोलन की मूल धारा के लिए पर्याप्त नहीं थे। इसलिए राष्ट्रीय दल (काँग्रेस) को जिसके हाथों भविष्य की धरोहर सौंपा गयी है, निश्चय ही उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करनी होगी, जो आनेवाला है[2]।"

अनेक व्यक्तियों ने इसे गान्धी जी के आगमन के प्रति श्री अरविन्द की स्पष्ट भविष्यवाणी कहा है। बहुत से लोग इसे राजनीतिक सक्रियता से पलायन समझते हैं। कुछ लोगों का लगना है कि श्री अरविन्द ने अपने को नियति निर्धारित नेता के रूप में स्वीकार करना छोड़ दिया था, बशर्ते कभी वे अपने को ऐसा मानते रहे हों।[3] डा० कर्णसिंह का यह निष्कर्ष गलत नहीं है पर इसके एक दूसरे पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए था। इस देश में कितने राजनेता हैं या हुए हैं जिन्हें किये अनकिये अनेक

१ उत्तरपाड़ा अभिभाषण।
२ स्पीचेज आफ श्री अरविन्द पृ० १३७।
३ प्रॉफेट ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म पृ० १६२।

कार्यों का श्रेय दिया जाता है, जो सही मौके पर यह सत्य स्वीकार करके राजनीति से संन्यास ले लें कि अब निर्दिष्ट कार्य के लिए उनकी उपयोगिता नहीं रह गयी है।

सम्पूर्ण आधुनिक राजनीति में एकमात्र श्री अरविन्द ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनके भीतर इतनी ईमानदारी और आत्मशक्ति थी कि वे इस तरह का निर्णय ले सकें। स्वयं महात्मा गान्धी ने स्वतन्त्रता के बाद इसी तरह का कार्य किया था। और इसे कौन अस्वीकार करेगा कि गान्धी का नेतृत्व मात्र राजनीतिक नहीं था, वह सर्वत्र आध्यात्मिकता की शक्ति से अनुप्राणित था।

भारत का उदय हो जायेगा, उसे स्वतन्त्रता मिल जायेगी यह विश्वास लेकर श्री अरविन्द ने पाण्डिचेरी की यात्रा की। श्री अरविन्द की जीवनी के किसी भी पाठक को इस बात से बहुत आश्चर्य होगा कि न केवल उत्तरपाड़ा अभिभाषण में बल्कि अनेक लोगों के साथ बातचीत में, पत्र-व्यवहारों में (१९२६ ई० के एकान्तवास के बाद तक) उन्होंने भारत के शीघ्र ही स्वतन्त्र होने की बात कही। उनके ही शब्दों में 'यह दैवी आज्ञा' जारी हो चुकी है, उसके क्रियान्वयन में विलम्ब नहीं होगा। जब शंकालु चित्त लोग उनकी बातों पर तर्क वितर्क करते उस समय रहस्यगर्भी ढंग से वे उन्हें पूर्ण आश्वस्त करते।[1]

भारत की स्वतन्त्रता के अवसर पर आल इण्डिया रेडियो से उनका संदेश प्रसारित हुआ —

"१५ अगस्त मेरा जन्मदिन है। यह मेरे लिए कृतज्ञता स्वीकार का दिन है कि इस तिथि को ऐसा व्यापक महत्त्व प्रदान किया गया। मैं इसे आकस्मिकता न मानकर ईश्वरीय शक्ति के विधान की मुद्राङ्कित प्रामाणिकता कहना चाहता हूँ, जिसके निर्देश पर मैंने अपने कार्यों को शुरू किया था। यह उन्हीं कार्यों की सफलता की शुरुआत है।"[2]

इस संदेश में एक और बहुत सूक्ष्म बात कही गयी है जो प्रकारान्तर से उनके उत्तरपाड़ा वाले भाषण के एक कथन को नया अर्थ प्रदान करती है। उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लिए 'एक ऐसे व्यक्ति के आगमन' की बात कही थी जो विश्वव्यापी आन्दोलनों की मूल धारा से जुड़ा हो। वे भारत की स्वाधीनता को विश्वव्यापी स्वाधीनता आन्दोलन से सीधा जुड़ा हुआ देखना चाहते थे। एशिया और अफ्रीका के अनेक देश अपनी स्वाधीनता को यदि आज भारतीय स्वाधीनता से जोड़ते हैं, तो इसे भी हम श्री अरविन्द की भविष्यद्दर्शिता ही मानेंगे।

भारत की स्वतन्त्रता के बारे में पूर्ण आश्वस्त होकर उन्होंने पाण्डिचेरी में साधना

१ इवनिंग टॉक्स् प्रथम भाग, पृ० २३ तथा रेमिनिसेन्सेज विद श्री अरविन्दो, नीरद बरन, पृ० १७।
२ पार्लियामेन्ट्स सुप्रामेन्टल एन्ड परिशिष्ट, पृ० १७३।
द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता दिवस पर दिया गया भाषण।

आरम्भ की। यह साधना भी सिर्फ भारत के अभ्युत्थान के लिए नहीं थी, सिर्फ विश्व मानवता ही इसकी परिधि में नहीं आती बल्कि यह साधना भविष्यत मानवता को भी दृष्टि में रखकर आरम्भित होती है।

श्री अरविन्द का पूर्ण योग इसी विराट मानवता के श्रेयस के लिए मंगल के लिए निवेदित है। उन्होंने अपनी साधना और पूर्णयोग का उद्देश्य बताते हुए स्पष्ट लिखा है कि "वे मनुष्य के भीतर दिव्यता का अवतरित देखना चाहते हैं, क्योंकि बिना उसके मानव एकता की बात करना विचारों और सिद्धान्तों के भवरजाल में पड़ना है। मानव एकता के अनेक प्रयत्न हुए किन्तु विशुद्ध बौद्धिक और भावनात्मक मानव धर्म हमारे मनोविज्ञान में इतना बड़ा परिवर्तन लाने के लिए पर्याप्त नहीं है।"[1] कारण हमें इन सभी प्रयत्नों में असफलता मिली है। आन्तरिक जीवन प्रणाली और मानव प्रकृति में जब तक रूपान्तरण नहीं होता, ये प्रयत्न बुदबुद की तरह उठने और विलीन होने के लिए अभिशप्त हैं। संसार में मानव बुद्धि के सभी प्रयत्न, धर्म विज्ञान, कला साहित्य सभी इस प्रयत्न में असफल हुए हैं। इसीलिए उनके सामने हिन्दू मुसलमान ईसाई, बौद्ध आदि विभिन्न धर्मों का कोई खास महत्त्व नहीं है। ये आरम्भिक मार्ग हैं साधन हैं यात्रा खत्म होने पर नयी शुरू करनी होगी, पुरानी का बोझ ढोना व्यर्थ है।

श्री अरविन्द मानव एकता के उच्च आदर्शों को पूर्णतः समर्पित थे। वे किसी भी प्रकार की संकुचित सीमा को स्वीकार नहीं करते। मानव एकता का आदर्श उनका बहुत ही सुचिन्तित और भविष्योन्मुखी विचार-सार है। उन्होंने इस पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि—'स्वतन्त्रता समानता और भ्रातृभावना आत्मा की तीन दिव्यताएं हैं ये वस्तुतः समाज की बाह्य मशीनरी द्वारा अथवा मनुष्य के द्वारा जब तक कि वह वैयक्तिक और सामाजिक अहंभाव में निवास करता है चरितार्थ नहीं हो सकते।[2]

इसके लिए आवश्यक है आन्तरिक मानव प्रकृति का पूर्ण रूपान्तर। यही रूपान्तर उसे सही श्रेयस की ओर मंगल की ओर ले जा सकता है। अब तक की सारी साधनाएं वैयक्तिक निःश्रेयस को अपना उद्देश्य मानती रही हैं। श्री अरविन्द पूरी मानव जाति के लिए नयी विचारधारा और नयी योग साधना लेकर आये। उन्होंने स्पष्ट कहा—"मैं अपने बड़प्पन के लिए अतिमानस को नीचे उतारने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ। मुझे मानवीय अर्थों में बड़प्पन और छुटपन की तनिक भी परवाह नहीं है। मैं पृथ्वी चेतना में आन्तरिक सत्य, प्रकाश सामंजस्य और शान्ति के तत्वों को

१ मानव-एकता का आदर्श पृ० ३१६।
२ वही पृ ३१७।

उतारने का प्रयत्न कर रहा हूँ। ताकि मनुष्य की प्रकृति आधे अंधेरे आधे उजाले में न रहे।"[1] १३

वे निश्चय ही उत्तर योगी थे क्योंकि उनका पूर्ण योग विगत की प्रणालियों की नयी रूप सज्जा मात्र नहीं है, वह उससे अधिक है। वे विवेकानन्द की इस धारणा को स्वीकार करते हैं कि योग एक ऐसा साधन माना जा सकता है जो व्यक्ति के विकास को शारीरिक जीवन के अस्तित्व के एक ही जीवन-काल में या कुछ वर्षों में यहां तक कि कुछ महीनों में ही साधित कर दे। भारतवर्ष में प्रचलित राजयोग, हठयोग, भक्तियोग ज्ञानयोग सभी इस धारणा को स्वीकार करके ही चले और इसमें सदेह नहीं कि इन विभिन्न पद्धतियों का अनुसरण करनेवाला में ऐसे अनेक लोग हुए जिन्होंने अपने जीवन काल में 'उन्नत विकास' को प्राप्त किया किन्तु उपर्युक्त सभी प्रणालियां अपनी सीमाएँ और अन्य न्यूनताएँ भी रखती हैं, जिनसे उन मार्गों पर चलनेवाले अनेक व्यक्तियों को बचाया नहीं जा सका।

जिन्होंने सफलता प्राप्त भी की, वे अपने वैयक्तिक निःश्रेयस की सिद्धि से सतुष्ट हो गये। उनके लिए उन्हीं के साथ इस धरती पर अन्धतमस में डूबे हजारों हजार लोगों के दुःखों का कोई अर्थ नहीं था या भी तो उनके लिए उस ऊंचाई से उतरकर नीचे पड़े लोगों की सहायता करना कठिन हो गया। क्योंकि नीचे उतरने में स्वयं के भी गिरने की आशंका थी या तो ऊपर जाकर नीचे उतरने की क्रिया से वे अपरिचित थे। इसी कारण भारतवर्ष में साधना और सामान्य जीवन के बीच एक अपाटनीय खाई उपस्थित हो गयी।

श्री अरविन्द के सामने उपर्युक्त प्रत्येक प्रणाली की अच्छाइयाँ और बुराइयाँ प्रत्यक्ष थीं। वे उनके अन्धमोड़ से भी परिचित थे। वे आज के मनुष्य के प्रति असीम बन्धुत्व और सहकारिता का भाव भी रखते थे परन्तु इन सभी प्रत्यवायों के बीच से राह बनाना सुगम नहीं था, तो भी ऐसी स्थितियों के बीच उनका यह अदम्य साहस भरा स्वर गूँजता है 'समस्त जीवन ही योग है।'

उनके जैसा उत्तर योगी ही—जिसने मानव की मानसिक और बौद्धिक सभी प्रकार की देशकालातीत क्षमताओं का सम्यक् विश्लेषण किया था जिसने पूर्व और पश्चिम की सम्पूर्ण प्रज्ञा की थाह ले ली थी, जो विज्ञान और मनोविज्ञान की समस्त उपलब्धियों से भलीभाँति परिचित था और जो बिना तर्कपूर्ण बुद्धि और सत्यासत्य

१ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाताजी के विषय में पृ० १२३।

विवेक के एक पग भी आगे रखने को तयार नही था ना अपने समस्त चिन्तन मनन को पाश्चात्य प्रणाली में दक्ष होने के कारण पूणत वैज्ञानिक और ठोस व्यावहारिक धरातल पर परीक्षित किये बिना प्रचारित करना अनुचित मानता था —इस निर्भीकता और विश्वास के साथ कह सकता था

'यदि मुझसे बडे लोगो के सामने यह दृष्टि नही थी और यह आदर्श न था तो यह कोई कारण नही कि मुझे भी अपनी सत्य भावना और सत्य दृष्टि के अनुसार काम नही करना चाहिए। मुझे जरा भी परवाह नही ह यदि मानव बुद्धि मुझे इस बात के लिए मूख ठहराये कि मैं एक ऐसा काम करने के लिए कोशिश कर रहा हूँ जिसके लिए श्री कृष्ण तक ने प्रयत्न नही किया। यह भगवान की इच्छा ह या नही मैं उस सत्य को नीचे उतारने या उसके लिए माग खोलने या कम से कम अवतरण को ज्यादा सभव बनाने के लिए भेजा गया ह या नही इसमे क ख, या किसी और का तो सवाल ही नही ह। यह तो मेरे और भगवान् के बीच की बात ह। दुनिया चाहे तो मेरा मजाक उडाती रहे मेरी इस धृष्टता से जहन्नुम टूटा पडता ह तो टूट पडे मैं विजय प्राप्त करके रहूँगा या मर मिटूगा। इसी भावना से अतिमानस की खोज कर रहा हूँ अपने लिए या दूसरो के लिए बडप्पन की लालसा से नही।[१]"

जो लोग यह सोचते ह कि जीवन के मामूली खतरो से डरकर श्री अरविन्द ने राजनीति से किनाराकशी कर ली उन्हें उपयुक्त कथन का खबर देखना चाहिए और मुझे पूरा विश्वास ह कि जो मात्र भौतिक पदार्थो की उपलब्धि को ही जीवन का उद्देश्य नही मानते उन्ह योगी अरविन्द मे भवानी मदिर के उग्रपथी देशभक्त अरविन्द का विकसित रूप ही दिखेगा। वही दृढता वही बलिपथी वाली सकल्पशक्ति और उद्देश्य को प्राप्त करने की अदम्य इच्छा शक्ति।

जीवन को ही अतिमानसिक योग म बदलना श्री अरविन्द का उद्देश्य था। जीवन से अलग होकर योग का कोई अथ नहीं। किन्तु जीवन में योग उतरेगा कसे? श्री अरविन्द का पूण योग जीवन को ईश्वरीय काय के लिए ईश्वरीय यत्र में बदल देना चाहता ह। वे मानते हैं कि दिव्य-चेतना की उपलब्धि, दिव्य चेतना द्वारा मानवीय चेतना का स्वीकरण शान्ति प्रकाश प्रेम शक्ति और आनन्द की प्राप्ति और सब के ऊपर अपने को ईश्वरीय इच्छा शक्ति और क्रिया के लिए पूण तयार यत्र के रूप में ढाल देना ही इस योग का उद्देश्य ह।

निरन्तर अपने आन्तरिक पुरुष का दिव्य चेतना की ओर उन्मुख रखना इस योग की पहली शत ह। इस सतत उन्मुखता से जिसे श्री अरविन्द आन्तरिक चेतना का खुलना (Opening) कहते ह, चैत्यपुरुष (Psychic) धीरे धीरे अवचेतन से ऊपर

[१] श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमा जी के विषय में पृ० १२४।

आकर जीवन के नियमन का काय अपने हाथों में लेता ह, फिर मनुष्य के वातावरण और सस्कार निर्मित मन-बुद्धि के स्थान पर दिव्य चेतना के प्रतिनिधि चैत्यपुरुष का शासन आरम्भ होता है। बिना ईमानदारी, अह विसजन और पूण समपण के चैत्यपुरुष का उदय असभव ह। चैत्यपुरुष के उदय के बाद सम्पूण जीवन ईश्वरीय निर्देशन मे उसी क द्वारा निर्धारित कार्यों का पूरा करने का यत्र बनने लगता ह। ज्यो-ज्यो यह साधना आगे बढती ह, बौद्धिक, मानसिक, प्राणिक सभी स्तरो पर जन्मजन्मान्तरो का जमा हुआ तमस विनीण होने लगता है और यदि साधक निष्ठा और आस्था से प्रत्यवायो क बीच निरन्तर दिव्यचेतना की ओर उन्मुखता बनाये रहता है तो एक दिन उसके शारीरिक स्तर का भी परिष्करण आरम्भ हो जाता ह। इन स्तरों का कोई नियमित क्रम नही ह, साधक की अपनी आन्तरिक बनावट के अनुसार किसी एक स्तर पर रूपान्तरण की क्रिया आरम्भ हो जाती ह किन्तु जब तक सभी स्तर पूणत रूपान्तरित नही हो जाते, दिव्यचेतना का चरमोत्कष अप्राप्य ही रहेगा।

जाहिर ह कि श्री अरविन्द जिस साधना और योग की बात करते है उसमें मनुष्य व्यक्तित्व का कुछ भी त्याज्य नही ह। स्थूलतम भौतिक से लेकर सूक्ष्म चैतन्य तक सभी इसके लिये साधन ह। जोन हब्रट का यह कथन सत्य ह कि 'अरविन्द की शिक्षा की एक विशिष्टता यह ह कि वे जीवन के किसी भी पक्ष की, यहाँ तक कि पौद्गलिक भौतिक तत्त्व की भी उपेक्षा करना स्वीकार नही करते। उनका कथन ह कि दिव्यशक्ति को सबसे निचले स्तर तक उतरना पडेगा और सब कुछ का आध्यात्मिक रूपान्तरण करना होगा क्योकि तभी उसकी क्रिया सही अर्थों में पूण हो सकती ह[२]।"

यह साधना एकाग्र ध्यान और आन्तरिक उपलब्धियो तक सीमित नही ह। भौतिक तत्त्वो का प्राणिक शक्ति का रूपान्तरण सिर्फ जीवन क सघष और दैनदिन क्रिया व्यापारो में ही सभव ह और उसी म परीक्षित भी किया जा सकता ह, इसलिए अरविन्द योग सारे जीवन को यहा तक कि बाह्य जीवन को भी अपक्षाकृत अधिक महत्त्व देता ह। जीवन की बनी बनाई आदतें, शारीरिक और प्राणिक आकाक्षाए अपने ऊपर दिव्यता का अनुशासन सहज ही स्वीकार नही कर लेती उसी कारण दानों के बीच सघष स्वाभाविक ह। चचल गतिवाले मन, प्राण और शरीर का नियमन हठपूवक सभव नही ह। इसके लिए सतत अभीप्सा दिव्यता का आह्वान और अपने चैत्यपुरुष के निर्देशन में असफलताओं की बिना परवाह किये निरन्तर प्रयत्न करते रहना आवश्यक ह।

इस अत्यन्त सक्षिप्त विवेचन स ही स्पष्ट हो जायेगा कि श्री अरविन्द एक भिन्न प्रकार क क्रान्तिकारी योगी ह जो आज की स्थिति में रहने वाले मानव के लिए जो

२ पायनियर ऑफ सुप्रामेंटल एज : मधायर नय स्मिथ, श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा १९५८ पृ ६०।

पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा विकसित बुद्धिवाला विशुद्धमानप्राणी है, एक नयी साधन प्रणाली लेकर आये।

इस विराट अभियान का दसरा कौन साक्षी नहीं होगा। स्वारथ्मोर युनिवर्सिटी के प्रोफेसर फ्रेडरिक स्पीलबर्ग ने लिखा है कि '१९४० में मैंने जब श्री अरविन्द का 'लाइफ डिवाइन' पढ़ा तो भौंचक्का रह गया। मैंने आज तक कभी ऐसा नहीं जाना था कि अपने तत्त्वचिन्तन में इस तरह सब कुछ को समेटने की अपूर्व क्षमता प्राप्त हो। उनकी पहुंच के विषय का दार्शनिक का सत्य को ऐसा प्रकाशित नहीं हुई।'[1]

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिक हरवर्ड विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र के आचार्य श्री पितरिम सराकिन ने अरविन्द के विचारों को संपूर्ण परिकल्पना ज्ञान विज्ञान के अधूरेपन की पूर्णता प्रदान करनेवाला अपूर्व चिन्तन कहा। उन्होंने लिखा–'वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टि से श्री अरविन्द की कृतियाँ पश्चिम के अपवादात्मक, मनोविज्ञान मनोचिकित्सा और शैक्षणिक कला आदि के लिए प्रबल विरोधी जीवनी शक्ति (Antidote) है। श्री अरविन्द का 'लाइफ डिवाइन' और योग सम्बन्धी दूसरे चिन्तनग्रन्थ हमारे समय के दर्शन नीतिशास्त्र और मानवीय शास्त्रों के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवदान हैं। श्री अरविन्द स्वयं हमारे समय के सर्वोच्च जीवित ऋषियों में एक ऋषि हैं और वे हमारे युग के सबसे बड़े नैतिक नेता हैं।'[2]

●

सब कुछ को समेटने की जिस अपूर्व क्षमता की बात डॉ० स्पीलबर्ग ने की है वह श्रीअरविन्द को उस उत्तर योगी की भूमिका में प्रतिष्ठित करती है जो पुरातन से लेकर आज तक के सम्पूर्ण मानव चिन्तन के सारतत्त्वों का मन्थन करके उन्हें समरस सम्वादी पदार्थ में बदल देता है। श्री अरविन्द ने बार-बार कहा है कि मैंने गीता उपनिषद् और वेद से ही सब कुछ प्राप्त किया। वे अतीत के ऋषियों के प्रति अद्भुत कृतज्ञता का भाव रखते थे। अतीत ही क्या अर्वाचीन युग के अनेक महापुरुषों के प्रति भी उनके मन में वैसा ही आदर का भाव था।

श्री अरविन्द से कुछ पहले ही श्री रामकृष्ण परमहंस का अवतार हुआ और उन्होंने समूचे बंगाल को अपने अद्भुत दिव्य व्यक्तित्व से आच्छादित कर लिया। उनके शिष्य विवेकानन्द ने भारतीय अन्त दर्शन को नई विश्वव्यापी पीठिका प्रदान की।

१ पायनियर ऑफ सुप्रामेण्टल एज' के पृ० ६४ पर उद्धृत।
२ वही पृ० ६४।

दक्षिण में करीब करीब उन्ही के समकालिन महर्षि रमण हुए जिनकी अद्वैतवादी साधना से समूचा दक्षिण भारत परिप्लावित हो गया।

श्री अरविन्द किसी प्राचीन मतवाद को पुनरुज्जीवित करने नही आये थे। प्राचीन साधना प्रणालियो को नये युग के अनुरूप बनाना भी उनका उद्देश्य नही था, हालांकि खुद में ये कोई कम महत्त्वपूर्ण उददेश्य नही है। उनके योग समन्वय का अर्थ विभिन्न प्रणालियो का घाल मेल भी नही है।

श्री अरविन्द का पूर्ण योग वैश्विक विराट अस्तित्व (Cosmic Existence) को यथार्थ और सत्य मानता है और इसका उददेश्य सत्य चेतना या दिव्य अतिमानसिक चेतना में प्रवेश है जहाँ के कर्म और निर्माण अज्ञान और अपूर्णता के परिणाम नही बल्कि सत्य, प्रकाश और नित्य आनन्द की अभिव्यक्ति है। इसकी प्राप्ति के लिए नश्वर बुद्धि, जीवन और शरीर का उच्चतर चेतना के प्रति समर्पण आवश्यक है। श्री अरविन्द सिर्फ सामान्य अज्ञ विश्वचेतना से निकलकर दिव्यचेतना में प्रवेश को ही अपना उद्देश्य नहीं मानते बल्कि उस अतिमानसिक चेतना को नीचे उतारकर उसके माध्यम से मन बुद्धि प्राण और शरीर का परिष्करण करके उन्हें दिव्य चेतना को धारण करने योग्य यन्त्र में बदल देना चाहते हैं। उनका उद्देश्य भौतिक जगत में दिव्यता को उतारकर प्रतिष्ठित कर देना है।

गीता में कर्मयोग की बात थी पर गीता ईश्वर के प्रति कर्म के समर्पण को ही रेखांकित करती है। वह कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय से मनुष्य को ईश्वर के साथ तादात्म्य प्राप्ति का उपदेश देती है। श्री अरविन्द अतिमानसिक दिव्यता को ही नीचे ले आकर मानवीय प्रकृति का सामूहिक रूपान्तरण करना चाहते हैं। गीता इसलिए उनका एक प्रस्थान तो बनती है अभीष्ट नही। श्री माधव पण्डित ने लिखा है— "इस योग में भी हम धारणा अभीप्सा और समर्पण को महत्त्व देते हैं किन्तु साथ ही हमें निम्न प्रकृति को अस्वीकृत भी करना है। इस निम्न प्रकृति से चेतना को छुडाकर उच्च प्रकृति को स्वतन्त्र सत्ता में प्रवेश जरूरी है, क्योंकि यदि यह दुहरी प्रक्रिया न हो तो संभव है कि हम अपनी प्रकृति का तामसिक अथच असत्य समर्पण ही करते रह जायेंगे।[1]" गीता वेदान्तिक परम्परा में ईश्वर-तत्त्व पर ज्यादा जोर देती है वहाँ मातृशक्ति का कम विचार है। तन्त्र मातृशक्ति पर पूर्णत आश्रित हैं वे ईश्वर-पक्ष पर उतना ध्यान नही देते। श्री अरविन्द जब परम पुरुष की दिव्य-चेतना की बात करते हैं तो वस्तुत इन दोनो मार्गों की अपूर्णता को समझते हुए उचित समन्वय का प्रयत्न करते हैं।

१ डिक्शनरी ऑफ श्री अरविन्दोज योग सं० माधव पुण्डलीक पण्डित दीप्ति प्रकाशन श्री अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी १९६६ पृ० १२९।

उसी प्रकार पूर्ण योग में हठयोग की प्रणालियाँ किसी स्तर पर उपयोगी हो सकती हैं पर वे अपरिहार्य नहीं हैं। हठयोग की गहरी लालसा से प्राय लोग परिचित हैं। राजयोग मनोवैज्ञानिक धरातल की सूक्ष्मताओं में अपेक्षाकृत कम प्रवेश करता है और वह गीता में उद्देश्य से भिन्न किसी महान वस्तु की अवधारणा नहीं करता। कालान्तर में राजयोग संन्यस्त जीवन की कल्पना में विश्वास करनेवाले आन्दोलन का अंग बना, मानवीय साधना के नये प्रयोग उसके लिए आकर्षण की वस्तु नहीं रहे।

श्री अरविन्द ने अपने समय तक की प्रचलित सभी योग प्रणालियों का पूर्ण अवगाहन किया था। उन्होंने उनकी अव्यावहारिक और अनुपयोगी बातों को छोड़कर, तथा सारतत्वों का आत्मसात करके एक नये क्षितिज का उद्घाटन किया।

श्री माधव पण्डित ने श्री अरविन्द के पूर्णयोग की अन्य योग प्रणालियों से भिन्नता निरूपित करते हुए जो विशेषताएँ बतायी हैं उनसे बहुत से प्रश्नों का उचित समाधान हो जाता है

१ चूंकि यह योग संसार से परे के किसी मोक्ष या निर्वाण को अपना उद्देश्य नहीं मानता, इसीलिए इसका मुख्य उद्देश्य जीवन और अस्तित्व का परिवर्तन है अपने आप घटित होनेवाला आकस्मिक परिवर्तन नहीं बल्कि मुख्य केन्द्रीय उद्देश्य के रूप में प्रयत्नपूर्वक लाया हुआ परिवर्तन।

२ चूंकि इस योग का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ के लिए वैयक्तिक उपलब्धि या दिव्य साक्षात्कार नहीं है, बल्कि पृथ्वी चेतना के लिए दिव्यता की उपलब्धि है इसलिए वह वैश्विक उपलब्धि (कास्मिक) पर जोर देता है सिर्फ परा-वैश्विक (Supra Cosmic) उपलब्धि पर ही नहीं।[1]

श्री अरविन्द सही अर्थों में उत्तर योगी थे क्योंकि उन्होंने आज के संत्रस्त दिशाहीन मूल्यमूढ़ता से आक्रान्त और बौद्धिक संकट और संत्रास से अवसन्न मानवता की मूलभूत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। दिग्भ्रमित मानवता के सभी प्रश्नों का उनके जीवन और कर्मों में उत्तर ढूँढा जा सकता है बशर्ते हम स्वयं ही अनुत्तरित रहने को ही सुखद नियति मानकर निष्क्रिय नहीं हो जाते।

आज सर्वत्र एक विचित्र प्रकार की अबूझ जड़ता और थकन भरी निश्चेष्टता से जीवन संत्रस्त दिखाई पड़ता है। अब तक के बनाये हुए आदर्श ढह गये हैं। मूल्य निरर्थक आवरण हो गये हैं। संस्थाएं मृत व्यक्तियों का समूह मात्र रह गयी हैं। एक आत्महत्या प्रधान समूह-संचरण के अलावा कोई चेतना नजर नहीं आती। सच तो यह है कि हम एक ऐसी भाषातीत स्थिति में पड़ गये हैं जिसे स्पष्ट ढंग से बता पाना भी कठिन हो गया है। आधुनिक विश्व की इस खण्डित स्थिति से श्री अरविन्द खूब परिचित

[1] 'विज्ञान' और श्री अरविन्द योग प १३१।

थे। वसे, बहुत से लोग बालकों की तरह यह सोचते हैं कि संसार के इस संकट में जिसके भीतर से व गुजर रहे हैं, पाण्डिचेरी आश्रम में एकान्तवास करनेवाले श्री अरविंद से क्या वास्ता ? उन्होंने १७-७-४५ के अपने एक पत्र में लिखा—"दशा जरूर बुरी है, अधिक बुरी होती जा रही है और किसी भी समय अत्यन्त बुरी हो सकती है। और कोई बात कभी भी असम्भव सी क्यों न हो, वर्तमान विक्षुब्ध जगत में सम्भव सी प्रतीत होती है। २६-१९४६ के एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा—"सभी जगह गड़बड़ दुःख, अराजकता उलटा पलटी, यही आज की सब-सामान्य वस्तुस्थिति है। जो अच्छी चीजें प्रकट होने को हैं वे परदे के पीछे तैयार या विकसित हो रही हैं तथा सभी जगह बुरी चीजों का बोलबाला है। एकमात्र आवश्यकता इस बात की है कि जब तक प्रकाश की घड़ी न आ जाय तब तक हम अडिग और अटल रूप से प्रयत्न में लगे रहें।[1]

इस स्थिति को आज के भिन्न भिन्न चिन्तक भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। इसे सार्त्र नासिया उबकाई की स्थिति कहते हैं। उनके हिसाब से "मनुष्य एक व्यर्थ का इन्द्रियबोध है। वह नैतिक अलगाव की इस तरह में कुछ न कर सकने के लिए विवश है और इसी विवशता के प्रति वह उत्तरदायी अनुभव कर सकता है। और कुछ नहीं।[2]" सार्त्र की दृष्टि से मनुष्य चेतना 'नास्तिभाव का पर्याय बन जाती है। ऐसी स्थिति में अपनी आन्तरिकता' (सब्जेक्टिविटी) के प्रति सचेत होने और अपनी स्वतन्त्रता से प्रतिबद्ध होने के अलावा कोई चारा नहीं। सारा विश्व काफ्का के 'कासल' में कैद है और हर कोई अपने अनकिये अपराध के लिए निरर्थक में लगनेवाले ट्रायल के बीच से गुजर रहा है।

कामू ने गम्भीरता से लिखा था कि यदि सवाल पूछा जाय कि 'क्या एक आन्तरिक न्याय के लिए हम बेहूदगियों (एब्सर्डिटीज) से समझौता करना ही होगा। कोई जवाब देगा—'हाँ',—बहुत सुन्दर। कोई कहेगा—'नहीं'—ईमानदार।' जहाँ हाँ और ना बहुत सुन्दर' और 'ईमानदार' का खिताब पाकर भी निरर्थक होने के लिए अभिशप्त हैं वहाँ कामू को लगता है कि 'हम अपनी समस्याएँ खुद नहीं चुनते। समस्याएँ एक के बाद एक करके हमें चुनती हैं। हमें इस प्रकार से चुने जाने को स्वीकार करना चाहिए[3]। उसका मिथ आफ सिसिफस सत्य और न्याय से जूझनेवाली निरर्थकता की कारुणिक कहानी है। निकोला बर्दिएफ इन दोनों से भिन्न स्तर पर सोचता है। वह उखड़े हुए इन्सान की आत्मपीड़ा के भीतर से जीवन को पदार्थ के रूप में बदलते

[1] श्री अरविन्द के पत्र पृ० २९३।
[2] दिस एक्जिस्टेंशियलिज्म बिरम फ्रा० ने० ब्यास्स लन्दन १९६१ पृ० १४७।
[3] द आम रिबेल्स पृ० १५।

हुए दखता ह।[1] वह वदना भय त्रास और क्लान्ति की पूरी व्याख्या करके इस मनोजे पर पहुचता ह कि बिना इनके सत्य की अनुभूति सभव नही।

चूकि वॉदिएफ मासल आदि क्रिश्चियन अस्तित्ववादी हैं इसलिए उनके भीतर अपेक्षाकृत कम निराशा और दिशाहीनता दीखती ह। पर घूम फिर कर वे 'ग्रेस' (ईश्वरीय कृपा) के आगे बढ नही पाते।

दूसरी ओर पश्चिम म ऐसे समाजशास्त्री चितक भी ह जा पश्चिमी सस्कृति की म्रियमाण स्थिति से चिन्तित ह और उसे बचाने की ईमानदार चेष्टा म लग हुए ह।

पितिरिम सरोकिन जिन्होने आज के आधुनिक युग की पीडा और निरर्थकता का रेखाकित करत हुए भी आदशवादी आध्यात्मिक प्रेम के द्वारा (Altruistic love) जो क्रिश्चियन भावना का ही आधुनिक रूप ह एक नये समन्वित जीवन (Integral life) की कल्पना की ह अपनी प्रसिद्ध पुस्तक क्राइसिस ऑफ आवर एज में पश्चिमी सस्कृति का विश्लेषण करते हुए इस नतीजे पर पहुचे कि—

इन्द्रियबोध परक यह सस्कृति युद्ध और खूनी क्रान्तियो के लिए सर्वाधिक उवर भूमि ह और पश्चिम में व्याप्त यह बीमारी यदि शीघ्र नष्ट होकर तत्त्वमूलक विचार प्रधान सस्कृति (Ideational Culture) म बदल नही जाती तो २०वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध भयानक युद्धो और नरमध का अध्याय बन जायेगा। यह सर्वाधिक खूनी शताब्दी का सर्वाधिक खूनी सकट ह। युद्ध क्रान्ति, बिखराव, आत्महत्या मानसिक रोग गरीबी, अकाल इस सकट के लक्षण और यही इसक परिणाम ह। इन्द्रिय बोधपरक कला सतही, शारीरिक सस्ते इन्द्रिय बोधा से प्रेरित और बीमार मन का प्रलाप ह। इन्द्रियबोधात्मक कला प्राय स्नायविक उत्तेजना तक सीमित ह। तीसरी व्याधि यह ह कि कीटाणुग्रस्त (पथालाजिकल) व्यक्तियो के अस्वस्थ जीवन को ही यह अपना ध्येय मानती ह[2]। श्री सरोकिन न स्पष्ट घोषणा की— जितना ही अधिक हम अपनी कुछ न सीखन की जिद पर अड रहेंगे, और जितना ही अधिक स्वतत्र रूप से इच्छापूवक बदलने से हम इनकार करेंगे, उतना ही अधिक पीडामय शोषण का दौर हागा उतना ही कष्टकर अग्निस्नान का अनुभव हागा और उतनी ही निमम परिवतनकारी शक्ति की चपेट हागी[3]।

स्पैंगलर के समाजशास्त्री विश्लेषण भी इसी धारणा की पुष्टि करते ह। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'द डिक्लाइन ऑफ वस्ट इस बात का प्रमाण ह। अठारह सौ वर्षों की

१ नीम टि रियल्टी पृ० ३३।
२ क्राइसिस ऑफ आवर ऐज पृ० ३०–७९।
३ वही प ३२६।

पश्चिमी सभ्यता के विनाश की घोषणा करते हुए उन्होंने कहा—'संस्कृति और सभ्यता, आत्मा का जीवित शरीर और मृत रूपान्तर (ममी)—१८०० वर्षों के पश्चिमी अस्तित्व के दोनों छोर पर इन्हें देखिए—एक छोर पर है समृद्ध जीवन और उसकी विश्वस्तता, जो अपनी अन्तर्निहित विकास शक्ति पर अवलम्बित है, जो गाथिक शराब से गेटे और नीत्शे तक फैली है, जबकि दूसरे छोर पर बड़े शहरों में पतनग्रस्त कृत्रिम, उखड़े हुए लोगों का, बौद्धिकता के द्वारा, फैशनमूलक ढर्रे पर निर्मित जीवन का रूप[1] है।"

स्पेंगलर ने पश्चिमी संस्कृति की दयनीयता देखी थी। पूरब में कोई बहुत आशा बच रही हो, यह सोचना ही व्यर्थ है। पर हमारे और उनके परिवेश में बहुत अन्तर था। श्री अरविन्द यह अच्छी तरह जानते थे कि हजार वर्षों की गुलामी के कारण भारतीय बौद्धिक की मनीषा या तो मर चुकी है या बन्धक हो चुकी है। आज का भारतीय बौद्धिक अध्यात्म के नाम से ही चौंक उठता है। उसके लिए आध्यात्मिक का अर्थ है पुराने दकियानूस अन्धविश्वासमूलक विचारों की शरण लेना जो आधुनिकता के लिए नितान्त अनावश्यक है। वह सोचता है कि अध्यात्म की बातें करके लोग सद्य स्वतन्त्र भारत को फिर अतीत की सड़ी गली धर्म-परम्परा की ओर ले जाकर उसे आधुनिक विकास के साधनों से वंचित करना चाहते हैं। श्री अरविन्द कहते हैं—"इस सन्देह से भी हम टकराते हैं जो सोचता है कि भारत के सामने इस आदर्श (अध्यात्म जीवन) को उपस्थित करके हम उसे तात्त्विक चिन्तन (Metaphysical) की ओर ले जाकर आधुनिक गत्वरता से अलग कर रहे हैं या उसमें रहस्यवादी अबौद्धिक धार्मिकता के जीर्णशीर्ण अन्धविश्वासमूलक प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों का प्रवेश करा रहे हैं और इस तरह भारत को तर्क और आधुनिकता के रास्ते से हटा रहे हैं जिन पर उसे चलना अनिवार्य है, क्योंकि उसे आधुनिक जगत के धक्कों से सँभालने के योग्य एक सगठित और सक्षम राष्ट्र बनना है[2]।"

श्री अरविन्द ने बड़े विस्तार के साथ ऐसे तथाकथित बौद्धिक लोगों के सन्देहों और तर्कों का विश्लेषण किया है। वे मानते हैं कि इस तरह के नकलची आधुनिकों की आवाजें योरोपीय पद्धति की अनुगूंज मात्र है, जो यह मानती रही है कि धर्म और आध्यात्मिकता तथा बौद्धिकता और व्यावहारिक जीवन, दो अलग-अलग चीजें हैं। ऐसे ही लोगों के लिए बहुत स्पष्ट भाषा में उन्होंने कहा—"हम अपने से कुछ भी अलग नहीं कर रहे हैं। हम जीवन के महत् उद्देश्यों, आधुनिक युग की कोई भी समस्या, मानव सक्रियता का कोई भी पक्ष, विकास, विस्तार तथा शक्ति, आनन्द, प्रकाश, बल

१ डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट, २।३१।३१०।
२ श्री अरविन्दोज मेसेज पाण्डिचेरी अरविन्दाश्रम से प्रसारित पृ० ३।

पूणता की आकांक्षा करनेवाली मानवीय आत्मा की सामान्य या आनुवंशिक रूपणा म व्यक्त किसी भी कामना को हम अलग करना नही चाहते। मनुष्य बिना बुद्धि की आत्मा या बिना शरीर की आत्मा नही कहा जा सकता इसलिए मानवीय अध्यात्म कभी भी बुद्धि जीवन शरीर का अपदाथ नही मान सकता या उनका महत्त्व कम नही कर सकता।

भारत का अपनी आत्मा का अपने ढग स अन्वेषण करना होगा। योरोप की नकल से कोई लाभ न होगा क्योंकि योरोप खुद अपनी धारणाओ में तेजी स परिवतन कर रहा है और पूर्वीय चिन्तना स प्रेरणा लेकर अपने को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है पर हम भारतीय योरोपीय जीवन और चिन्तन के फके हुए पुराने वस्त्रो को बटोर रहे हैं और उसके चक्कर स उठी गन्दी धूल म लोट पोट रहे हं। जिसे योरोप फक फक देता है उसे हम आज उठाकर धारण कर लेते हैं[1]।

१९५५ म जब कालिन विल्सन ने आउट साइडर' लिखा, भारतीय बौद्धिको को जसे अपनी सभी समस्याओ को नाम दे लेने की कुंजी मिल गया। इस पुस्तक का एसा प्रभाव हुआ कि जिधर देखिए बाहरी आदमी (outsider) निरथकता (Abserdity) मोहभंग (Disillusionment) क्रुद्ध नया पीढी (Angry youngmen) बीमार व्यक्ति (Sickman) एकाकीपन (Lonlyness) अजनबी (Stranger) *मृत्यु सत्रास सकट आदि शब्द वातावरण म परवाज करते हुए दिखाई पडने लगे।* और आज तक भी चिंतन के क्षेत्र में काल्हू के बलवाली वही स्थिति जारी ह। कॉलिन विल्सन का 'आउटसाइडर' के अन्त म रामकृष्ण परमहंस की भावात्मक समपण मूलक अस्तित्वहीनता की स्थिति में एक नया अथ दिखा था। भारतीय बौद्धिक के लिए राम *कृष्ण परमहंस अपने थे इसलिए उनकी ओर देखना उसे आधुनिकता से अलग होना* प्रतीत हुआ। अत वह कॉलिन विल्सन द्वारा प्रस्तुत स्थितियो के दरिद्र और 'नाय प'था' वाली विश्लेषण-पद्धति के भीतर ही चक्कर लगाता रहा।

पर किसे मालम था कि ठीक एक दशक बाद कॉलिन विल्सन खुद गीपासन की मुद्रा में उल्टा खडा होकर अपनी पुरानी धारणा को स्वय गलत साबित करेगा। पर उसने १९६५ में बियण्ड आउटसाइडर' लिखकर यही काय किया। 'आउटसाइडर' म अस्तित्ववादी दृष्टिकोण का उसने खुलकर समथन किया था यद्यपि उस समथन के पीछे एक शिकायत भी रहती थी कि अस्तित्ववाद घोर वयक्तिक चेतना से हटकर, जो उसका केन्द्रबिन्दु है अन्य सामाजिक प्रत्ययवादो के चक्कर में फँस रहा ह। इस पुस्तक तक आते आते उसे लगने लगा—'मैं अपने को उस गणितज्ञ की तरह अनुभव करता हू जिसे एक एसा सवाल दे दिया गया हो जिसे अनेक पीढ़ियो के गणितज्ञ हल करने में

१ श्री रविन्द्रनाथ टैगोर पृ० ८।

असफल रहे हों। इस पूरे विचार के नीचे मोटे अक्षरों में लिखा था—हल करना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में मैं यह स्वीकार करके चला कि इस समय किसी प्रकार का रचनात्मक चिन्तन सम्भव नहीं है।''[1] और अब कॉलिन विल्सन ने एक रचनात्मक चिन्तन आरम्भ किया है। 'आउटसाइडर' में सारी निरर्थक विवेचनाओं के बीच उन्हें दास्तोएवस्की व संत रामकृष्ण के व्यक्तित्व में कुछ समाधान दिखा था, क्योंकि तब वे अस्तित्ववादी वैयक्तिकता को बहुत महत्त्व देते थे, अब उन्हें नयी प्रगति की है और अब उन्हें विश्व की समस्याओं का सारा समाधान रूसी साम्यवाद और पश्चिमी लोकतन्त्र के समन्वय में दिखाई पड़ने लगा है। उसने 'बियॉण्ड आउट साइडर' के अन्त में लिखा है—'अपनी एकदम नयी पुस्तक 'क्रिटीक ऑफ डायलेक्टिकल रीज़न' में सार्त्र ने आग्रह किया है कि मार्क्सवादी दर्शन को अपने उन्नीसवीं शताब्दी के पुराने ढाँचेवाले भौतिकतावाद को छोड़कर अपनी सामाजिक आशावादिता के आधार के रूप में अपेक्षाकृत अधिक यथार्थपरक अस्तित्ववादी मनोविज्ञान को स्वीकार कर लेना चाहिए। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह प्रस्ताव वैसा क्रान्तिकारी नहीं है जैसा ऊपर से लगता है। यदि रूस सार्त्र की बात मानकर अस्तित्ववादी धारणाओं को अपने सामाजिक आशावादी तत्त्व से जोड़ लेता है तो निश्चय ही हमारे युगानुरूप एक नयी सांस्कृतिक जाति का जन्म होगा। फिर भी इसके आधार पर यह कहना सम्भव नहीं है कि यह अन्तिम समाधान बनेगा। अमेरिका के मेरे निजी अनुभव इस बात के प्रमाण हैं कि वहाँ अद्भुत बौद्धिक क्षमता है, जो सामान्य स्नायविक दौर्बल्य से क्षयग्रस्त हो गयी है।''[2] उसे भी इस अस्तित्ववादी यथार्थवाद में समझना चाहिए। इस तरह अस्तित्ववाद, रूसी यथार्थवाद और अमेरिकी स्नायविक दौर्बल्य पीड़ित बौद्धिक शक्तिवाद के एक अराजक समन्वय द्वारा नयी जाति के उदय का स्वप्न कॉलिन विल्सन द्वारा उपस्थित किया गया है। जाहिर है कि पश्चिम में होनेवाले इन विराट चिन्तनों में एशिया और अफ्रीका की विशाल जनसंख्या वाली मानवता के लिए कोई खास कार्यक्रम नहीं है। उस उपयुक्त विज्ञानवादी दर्शन को जो करोड़ लोगों की महत् बुद्धि से निःसृत है, स्वीकार करके अपने को धन्य कर लेना होगा। यहाँ पर अचानक पश्चिमी बौद्धिक जगत के चिन्तक शिरोमणि बर्ट्रेण्ड रसेल की बातें याद आती हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'कामनसेंस ऐंड न्यूक्लियर वार फेयर' में स्पष्ट रूप से एशिया की उपेक्षा की है क्योंकि उनकी दृष्टि से इसे बचाने से कोई लाभ नहीं होगा। संस्कृति का क्षेत्र योरोप और अमेरिका है। इसलिए चीन के विरुद्ध क्षेत्रीय झगड़े में अमरिका और ब्रिटेन को कम से कम हिस्सा लेना चाहिए। आणविक युद्ध में पश्चिम को बचाना है। एशिया, बुभुक्षितों का विराट भूखण्ड

[1] बियॉण्ड आउटसाइडर, पृ० १५।
[2] बियॉण्ड आउटसाइडर, पृ० १८०।

बचा तो न बचा ता कोई खास महत्त्व नही। इसलिए उनका आह्वान ह—"अमेरिका, योरोप और रूस भी पूरब के, एशिया के भूखण्डो के इस सम्भावित आक्रमण स अपनी रक्षा के लिए अभी से जागरूक हो तो ज्यादा अच्छा ह।"[1]

एशिया अफ्रीका की हालत तो खराब ह ही। सभी महान् प्राचीन धर्म—हिन्दू बौद्ध इस्लाम, यहूदी और क्रिश्चीय, सभी इसी धरती से फूटे थे पर आज यही भूखण्ड सर्वाधिक अज्ञान जहालत और जडता से ग्रस्त ह। प्रकाश को जन्म देनेवाले आदिम सभ्यताओ के ये देश अधकार के क्षेत्र (Area of Darkness) में बदल चुके हैं। आधुनिक युग म इन प्रदेशो में बडी से बडी विभूतियाँ उदित हुइ, परन्तु एक एक करके उनके सिद्धान्त निष्फलता क समुद्र म डूबते गये। श्रीकृष्ण बुद्ध कन्फ्यूशस जरथुस्त्र मुहम्मद, ईसा की तो बात ही अलग क्योकि व पुराने हो गय नया में सनयात सेन माओ कमालपाशा, गाधी, विनोबा और भी अनेक क्या परिवतन ले आये या ले आ पायेंगे कहना कठिन ह।

इस विश्वव्यापी विचार-व्यग्रता और चिंतन-दरिद्रता क पीछे छिपे मूलभूत कारण पर जब तक विचार नही किया जाता रोग ज्यो का त्यो बरकरार रहेगा और हालत बद से बदतर होती जायेगी।

दर्शन और चिन्तन की शाब्दिक महत्ता स कोई ठोस परिणाम नही निकलता। सवाल मनुष्य की चेतना से, उसकी आन्तरिक बनावट से जुडा ह। हमें आगे बढ़ने के लिए मनुष्य के भीतर ही परिवर्तन लाना होगा। चिन्तन को व्यवहार में बदलनेवाले मनुष्य यत्र की ही परीक्षा करनी होगी अर्थात हमारे लिए महत दर्शनो की नही सटीक और त्रुटिहीन मनोविज्ञान की आवश्यकता ह।

मानव-मन की समुद्रयात्रा में फ्रायड का वही स्थान ह जो कोलम्बस का आधुनिक दुनिया की खोज मे था। फ्रायड ने निस्सन्देह क्रान्तिकारी विचारधाराए प्रस्तुत कीं किन्तु जसा आन्द्रे मालरो ने *लिखा ह—"पिछली अधशताब्दी स मनोविज्ञान मानव में शैतान* की प्रतिष्ठा करने के लिए लगातार कोशिश करता रहा ह, मेरा विश्वास ह कि अगले पचास वर्षों म वह मानव के भीतर पुन देवताओ की प्रतिष्ठा क लिए प्रयत्नशील होगा।"[2]

फ्रायड क अधकारपूर्ण निष्कर्षों का कि मानव अवचेतन पाशविक बर्बरता से बोझिल ह, उसी का निष्प्र युग स्वीकार नही करता और अब तो मनोविज्ञान धीरे धीरे प्राचीन पुराकथाओ, धार्मिक विश्वासो और पराभौतिक तत्वो के अन्वेषण के द्वारा उस

१ *कामन मैन फेस न्यूक्लियर वारफेयर*, पृ० ६४।

२ द फ्न्डॅ रर और वन्निंयमनम पृ० २ पर उद्धृत। *लदर सत्प्रेम मूल फ्रेंच से अंग्रेजी* म अनूदित और पाण्डिचेरी स प्रकाशित १९६८।

कक्ष का उद्घाटन भी करने लगा है जहाँ दिव्यता की, हल्की और धूमिल ही सही झलक दिखाई पड़ने लगी है।

समाज मनोविज्ञान, अपराध मनोविज्ञान, चिकित्सा मनोविज्ञान आदि विभिन्न शाखाओं ने मिलजुलकर सम्मिलित प्रयत्न से न केवल बाह्य जीवन के क्रियाकलापों पर आंतरिक जीवन की वरीयता स्थापित कर दी है बल्कि उच्चतर मानव मूल्यों के स्रोत के रूप में वैयक्तिक मनों के भीतर व्यापक पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करनेवाले वैश्विक मन के अस्तित्व को भी प्रमाणित करना आरम्भ कर दिया है। श्री अरविन्द इस मनोविज्ञान की प्रगति से पूर्ण परिचित थे। उन्होंने इसी कारण इसकी सारी त्रुटियों और सीमाओं पर ध्यान देते हुए लिखा—"आधुनिक मनोविज्ञान अभी शावक स्थिति में है। इसी कारण वह उद्धत, टटोल-टटोलकर चलनेवाली भोंडी पद्धति से ऊपर नहीं सका है। सभी बचपना भरे विज्ञानों की ही तरह विश्व मस्तिष्क की यह आदत है कि वह *अनंत सत्य या स्थानिक सत्य को अकारण व्यापक सिद्धांत का रूप देता है और प्रकृति* के पूर्ण परिवेश को अपने संकुचित पारिभाषिक शब्दों में बाँधने की विश्लेषित करने की कोशिश करता है। फ्रॉयड का मनोविज्ञान प्रकृति के अधमतम, सबसे अधिक गतर नाक, सर्वाधिक अस्वस्थ निम्न प्राणिक अवचेतन स्तर को लेकर, उसमें से सब से अधिक जुगुप्सित घृणोत्पादक घटनाओं को चुनकर अनुचित और नामाकूल ढंग से उनके सही स्वरूप के विरुद्ध उनमें तरह तरह की विशेषताएँ नियोजित करने का भ्रामक प्रयत्न करता है। ऐसे अंशों को बिना ठीक अवसर के उघाड़ने और उन पर अवधारण करने से मानव-मन के चेतन अंश के भी उन अन्धकारमय गन्दे तत्त्वों के प्रभाव से जहरीले बन जाने का खतरा पैदा हो जाता है।"[1]

श्री अरविन्द आधुनिक मनोविज्ञान की परवर्ती धाराओं को भी अच्छी तरह जानते थे उनके प्रयत्नों को भी और प्रत्ययों को भी। उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा—"मैं युग और अन्य मनोवैज्ञानिकों के विचारों को भी विशेष महत्त्व नहीं देता, पर शायद देना चाहिए, क्योंकि अधनाला महान् शक्तिशाली वस्तु है क्योंकि वह वास्तविक सत्य के मार्ग में एक बड़ी रुकावट बनकर आ सकता है ... वे अपनी कथा गरूपी वर्णमाला को रहस्यपूर्ण प्रच्छन्न अहंभाव (Super Ego) के साथ जोड़कर उसे ही पूर्ण ज्ञान का आधार मान बैठे हैं। वे नीचे से ऊपर की तरफ देखते हैं, परन्तु इन वस्तुओं का आधार ऊपर है नीचे नहीं। उपरि बुध्न एषाम्। उच्च चेतन ही आधार है अवचेतन नहीं। समय आ रहा है जब अन्धकार में टटोलना विलुप्त हो जायेगा।"[2] श्री अरविन्दयोग एक सम्पूर्ण समन्वित आत्ममनोविज्ञान नहीं तो और क्या है।

१ ऑन द योग टाम टू, पृ० ६८६।
२ महायोगी के साथ पृ० २६२ ६३।

वर्ल्ड रिव्यू में श्री अरविन्द के बारे में लिखते हुए श्री ई० एफ० एफ० हिल ने स्पष्ट कहा— 'श्री अरविन्द की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि इतनी तीव्र और स्पष्ट है और जिस सृष्टि का वह अन्वेषण करना चाहती है वह इतना विराट और व्यापक है कि उसकी तुलना में पश्चिमी मनोविज्ञान फ्रायड की कृतियाँ तक उनकी महत्ता को पूरे माप में स्वीकार करते हुए भी अन्धकार में टटोल टटोल कर चलनेवाले बच्चे जैसी लगती है।'[1] खुद योरोप में फ्रायड के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से अलग भिन्न भिन्न स्तरों पर नये ढंग से काम हो रहा है। अस्तित्ववादी मनोविज्ञान इस दिशा में नये ढंग से विचार करता है। वैसे तो अस्तित्ववादी मनोविज्ञान किसी अतिक्रान्तक (Trascendental) सत्ता को स्वीकार नहीं करता, किन्तु सार्त्र द्वारा निर्धारित कुछ व्यापक मानव मूल्य *अतिक्रान्तक तत्त्व जैसे ही प्रतीत होने लगते हैं। उदाहरण के लिए सार्त्र द्वारा परि*भाषित स्वतन्त्रता शरीर को अतिक्रान्त करनेवाली वस्तु मानी गयी है। क्रिश्चियन अस्तित्ववादी मानव अस्तित्व के बिखराव का मूल कारण ईश्वर से अप्रतिबद्ध होना बताते हैं जब कि सार्त्र जैसे नास्तिकतावादी मानव अस्तित्व के बिखराव का मूल कारण मनुष्य की उस अक्षमता में ढूंढते हैं जो अपने आकस्मिक सीमित, मृत्युग्रसित जीवन की निर*थकता पहचान नहीं पाती तथा अपनी निजी स्वतन्त्रता और वरण के अधिकार का* प्रयोग नहीं कर पाती। डा० श्रीनिवासन ने अस्तित्ववादी मनोविज्ञान की सीमा बताते हुए अरविन्द दर्शन से उसके स्पष्ट अन्तर को बखूबी रेखांकित किया है अस्तित्ववाद में मनुष्य की कालसीमित अवस्थिति और अतिक्रान्तक सत्ता (जिस रूप में भी वह वहाँ दिखती है) से विच्छिन्नता पर ज्यादा जोर है, जब कि श्री अरविन्द मानव के *वैयक्तिक अस्तित्व की शाश्वत स्थिति को स्वीकार करते हैं और उसे हमेशा दिव्यता* से जुटी हुई मानते हैं।[2]

यदि अस्तित्व को बिखराव और संत्रासों से बचना है तो निश्चय ही उसके विकास के लिए कुछ उच्च मूल्य मानने होंगे। उसे स्वतन्त्रता प्रतिबद्धता नाम दें या कोई और। और यदि ये मूल्य समूहगत निर्वैयक्तिक हैं तो इनके व्यापक रासायनिक स्वरूप को भी स्वीकार करना पड़ेगा। अन्यथा मानव अस्तित्व कभी भी अप्रसरित हो नहीं पायेगा। इस व्याप्ति का जो वैयक्तिक मूल्यों का स्रोत है भले ही ईश्वर से न जोड़ें, दिव्यता न कहें यह व्यक्ति चेतना की अतिक्रान्त करके स्थित होती है। व्यापक रूप में सक्रिय हो सकने के लिए उसका अतिक्रान्त तत्त्वों से जुड़ना अनिवार्य है। इतना अवश्य मानना होगा।

श्री अरविन्द इसे दिव्यता कहते हैं। दिव्य जीवन का बीजांकुर कहते हैं।

१ पाश्चात्य और [illegible] पृ० ६५।
२ [illegible] पृ० २८०।

इस समष्टिगत वस्तु की सहायता से यदि जीवन की, उसकी आन्तरिक बनावट को परिष्कृत और रूपान्तरित नहीं किया जाता, वर्तमान युग में मानवता के सामने उपस्थित संकट हटाये नहीं जा सकते। इसी प्रसंग में पित्रिम सरोकिन का यह कथन नाना संकेतों से भरा हुआ लगता है कि "श्री अरविन्द की कृतियाँ पश्चिम के अद्य वैज्ञानिक मनोविज्ञान, मनोचिकित्सा आदि की विरोधी जीवनी शक्ति हैं। वे उनका विरोध करता भी लगती है, किन्तु पश्चिमी चिन्तन इसी विरोध से अपनी जीवनी शक्ति पा सकता है क्योंकि उसके प्रश्नचिह्नाहत चिन्तन के आगे कोई दूसरी दिशा नहीं है।"

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि श्री अरविन्द दर्शन के साथ किसी नये-पुराने दर्शन की तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता। श्री अरविन्द यह मानते हैं कि 'जो लोग वस्तुओं के बाह्य रूप को ही देखते रह जाते हैं वे प्रायः बिना किसी अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति के बौद्धिक तर्कों द्वारा परस्पर संघर्षरत रहते हैं। वह जो उनके असली स्वरूप को देखता है उनके हृदय तक अन्तर्भेदी दृष्टि द्वारा प्रविष्ट हो जाता है"।[2] उस ऊपरी स्तर की चीजों पर विवाद करने की फुरसत कहाँ होती है।

श्री अरविन्द का दर्शन किसी एक देशकाल की समस्याओं से बँधा हुआ चिन्तन तत्त्व नहीं है, वह चिन्तन करनेवाला और उसे प्रयोग में लानेवालों की आन्तरिकता को ही अपने अध्ययन का क्षेत्र मानता है और स्पष्ट रूप से मनुष्य को महत् मनुष्य बनने के लिए प्रेरित करता है। भले ही कोई इस प्रयोग में पूर्ण सफल न हो वह पहले से बेहतर मनुष्य तो अवश्य ही हो जायेगा। और फलस्वरूप वह जिस भी चिन्तनधारा को मानता हो उसे ज्यादा सूक्ष्म और सही ढंग से समझ सकेगा, और यदि उसका वह दर्शन एकांगी भी हुआ तो भी उसमें से जो सारतत्त्व है, उनका ग्रहण करने में पहले की अपेक्षा अधिक सक्षम हो सकेगा। इस दृष्टि से श्री अरविन्द का चिन्तन दूसरे चिन्तनों का कहीं से विरोधी नहीं आन्तरिक रूप से उनकी मूल्यवर्तिनी शक्ति का व्यापक स्रोत बन जाता है। इस प्रसंग में मुझे ५ दिसम्बर १९५७ की रात्रि के आकाशवाणी से प्रचारित समाचारदर्शन (News Real) का एक प्रसंग याद आ रहा है—

मेल्वे डे मेलो ने अमेरिकी प्राध्यापक डॉ० जय स्मिथ से पूछा— डॉ० स्मिथ, क्या आप संक्षेप में बतायेंगे कि वह क्या चीज थी जिसके कारण आप श्री अरविन्द के शिष्य हुए ?"

डॉ० स्मिथ ने कहा— 'मिस्टर डे मेलो, यह धर्म-परिवर्तन जैसी कोई चीज नहीं, जैसा लोग समझते हैं। न तो इसे मेरा हिन्दू हो जाना ही कहना ठीक होगा, क्योंकि जिस चीज ने मुझे श्री अरविन्द की ओर सबसे अधिक आकृष्ट किया वह था यह

१ दिलीपकुमार राय की पुस्तक 'महापुरुषों के साथ' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ० १८०-१८६।

तथ्य कि चाहे आपका कोई भी धम हो, प्रतिबद्धताएँ हों इसका कोई महत्त्व नहीं। महत्त्वपूर्ण बस सिफ यह है कि क्या एक व्यक्ति के रूप में आप सब प्रकार से मात्र ईश्वर के लिए या दिव्यशक्ति के लिए अपने को सौंप देने को तैयार हैं ? क्या आप ऐसे योग माग में प्रवेश करने को तयार है, जो कठोर आत्मानुशासन के द्वारा दिव्यता से जोड़ने जुड़ने का साधन बताता है। क्या आप अपनी व्यक्ति चेतना को अधिक से अधिक ईश्वरीय चेतना के प्रकाश में बदलने देखना चाहते हैं ? मैंने श्री अरविन्द में उन सभी प्रश्नों का उत्तर पा लिया है न सिफ अपनी आत्मा के गम्भीरतम प्रश्नों का, बल्कि इस विश्व के बारे में उठनेवाले सर्वाधिक उलझे हुए प्रश्नों का भी। मैं अरसे से विश्व शांति के कार्यों में लगा हूँ। मैं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर अध्यापन करता हूँ। मुझे श्री अरविन्द में व्यक्ति के लिए राष्ट्र के लिए बल्कि या कहिए पूरे विश्व के लिए नये सत्यवचन (गास्पल) मिले। मैं १९३० में यह विश्वास लेकर आया था कि मेरे पास भारत को सिखाने के लिए बहुत कुछ है, किन्तु १९५३ में एक विनम्र शिष्य बन कर लौटा।'[1] जो भी ईमानदारी से श्री अरविन्द दशन को जानने का प्रयत्न करता है उसे आज की पीडित और संत्रस्त मानवता के प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है और यहीं उत्तर योगी के सर्वाच्छादक व्यक्तित्व का रहस्य भी खुल जाता है।

•

उनके व्यक्तित्व और चिन्तन का यह रहस्य सिफ बीसवीं शताब्दी की मानवता के लिए ही सीमित नहीं है। सम्भवत यही एकमात्र चिन्तनधारा है जो अपने प्रयोगों का फल सुन्दर भविष्य में निहित मानकर निःस्वार्थ भाव से कार्यरत है। श्री अरविन्द स्पष्ट शब्दों में घोषणा करते हैं—"पृथ्वी एक जीवित प्रयोगशाला है जिसमें प्रकृति ने कहा जाता है मनुष्य को निर्मित किया। मनुष्य स्वयं भी उसी तरह की एक जीवित सोचने-समझनेवाली प्रयोगशाला हो सकता है जिसमें, और जिसके सहयोग से प्रकृति महत मानव देवता निर्मित करने की इच्छा रखती है[2]।"

श्री अरविन्द भविष्य में निर्मित होनेवाले इस महत मानव की विकास प्रक्रिया को मानवीय सहयोग द्वारा और तीव्र बनाना चाहते हैं। यह धारणा प्रकृति की विकसनशील प्रवृत्ति का परिणाम है। यह सीधी वैज्ञानिक निष्पत्ति है।

उन्हें यह भलीभांति मालूम था कि वह जिस योग प्रणाली का निर्देशन कर रहे हैं वह जादूगर की तरह रातों रात महत मानवों की सृष्टि नहीं कर सकती। उन्होंने निरन्तर आधुनिक युग की कठोर वस्तुस्थितियों और भविष्य की तार्किक सम्भावनाओं

१ एवनिंग्स और न सुग्रान न न पृ० १९।
२ द म्यूर विज्न पृ० ४ १९५१ प्रथम युनिवर्सिटी संस्करण श्री अरविन्दाश्रम पाण्डिचेरी।

को दृष्टि में रखकर अपने विचारों का प्रतिपादन किया। एक पत्र में उन्होंने लिखा–'पुराने योगों का प्रयोजन है जीवन त्याग कर भगवान् को पाना, अतः स्पष्ट ही (उनके मत से) हमें कर्म छोड़ देना चाहिए। इस नये योग का प्रयोजन है भगवान् को पाना तथा जो कुछ उपलब्ध हो सारे का सारा जीवन में उतारना। अतः कर्मों द्वारा योग (कर्मयोग) अनिवार्य है। तुम कहते हो कि कर्म चेतना को नीचे के स्तर में उतार लाता है, तुम्हें अन्तश्चेतना से बहिश्चेतना में ले आता है, हाँ, पर यदि तुम्हीं अन्दर से काम करने के स्थान पर कर्म में अपने को बहिर्मुख करना स्वीकार कर लो। ऐसा नहीं करना हो तो व्यक्ति को सीखना है। विचार और भाव भी इसी प्रकार व्यक्ति को बहिर्मुख कर सकते हैं। यहाँ तो अन्तश्चेतना में निवास करते हुए शेष सारी सत्ता को उसका यन्त्र बनाकर विचार, भाव तथा कर्म को दृढतापूर्वक उस चेतना से जोड़ देने का प्रश्न है कठिन ? पर भक्ति ही वहाँ सुगम है और निर्वाण तो बहुत से लोगों के लिए उससे भी कठिन है[१]।"

इस पत्रांश से स्पष्ट है कि वे पुराने ढंग से सिर्फ अन्तश्चेतना में निमग्न रहकर जीवन से अलग रहने की प्रवृत्ति को कितना गलत मानते थे।

यदि इस प्रकार के भविष्योन्मुखी मानवता के सही विकास को देखकर तदनुकूल विचारणा प्रस्तुत करनेवाले लोग होते तो शायद आध्यात्मिकता के विरुद्ध वैसे गलत वातावरण का निर्माण नहीं होता, जैसा आज दिखाई पड़ता है।

बहुत से व्यावहारिक समाजशास्त्रियों का ख्याल है कि आज के लिए आध्यात्मिकता जैसी चीज व्यर्थ की बकवास है। धार्मिक सुधार या समन्वय की सारी कोशिशें बेकार हैं। फिलिप टॉयन्बी ने लिखा है— ये सभी महिमा मण्डित वचन कहने के प्रयत्न, सभी तरह के बहुवादी दर्शन समन्वय के रूप आधुनिक मनुष्य के लिए विज्ञापित धर्मों और स्वतन्त्र मनुष्य की उपासना के ख्याल उतने ही व्यर्थ हैं जितनी प्राचीन धार्मिक रूढ़ विश्वासों को आधुनिक बनाने की कोशिशें। मनोवैज्ञानिक प्रभाववाले पादरियों और ईसाइयत से प्रभावित मार्क्सवादियों तथा काश से प्रेरित जीव-वैज्ञानिकों और मानवतावादी कैथोलिकों तथा रहस्यवादी ज्योतिषियों के रहस्यवादी तपिश में अन्तर्निहित किसी अन्य नियम को समझानेवाले औपन्यासिकों के ये सभी समन्वय—मुझे किसी सर्वपरिचित दलदल में धँसे से लगते हैं जहाँ, कीचड़, समुद्र और आकाश (जो कितना भी नाला ही क्या न हो) सभी प्रकृति की भूरी और आगामी जड़ता में निमग्न-से हो गये लगते हैं।[२] श्री टॉयन्बी को ऐसा काव्यात्मक व्यंग्यमूलक सन्देह क्या हुआ?

१ श्री अरविन्द के पत्र पृ० ९८।

२ टॉयन्बी से अनुवाद का एक अंश रेलिजन फेथ एण्ड ट्वेन्टियथ सेंचुरी मैन, पृ० ११ पर उद्धृत।

स्वरूप ही आज के युग में धार्मिक सम्प्रदाय परोपजीवी आकाशबेलि की तरह हो गये हैं जो मनुष्य की आन्तरिक प्रगति के साधन न होकर आर्थिक दृष्टि से निकम्मा निठल्लापन और बौद्धिक दृष्टि से उसकी जीवात्मा का शोषण और कमजोर बनाने का धन्धा करने लगे हैं।

इस सन्दर्भ में मैं एक छोटी-सी मिसाल पेश करना चाहता हूँ। टाइम्स ऑफ इण्डिया ८।११।७० की साप्ताहिकी (Times weekly) में के० आर० सुन्दरराजन का एक रिपोर्ताज छपा था जिसका शीर्षक था हरे कृष्ण हरे कृष्ण। इसमें ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी के अमरीकी शिष्यों की जो कृष्णचेतना में विश्वास रखते हैं और चैतन्य की परम्परा में कीर्तन करते हुए सड़कों पर घूमा करते हैं गाथा वर्णित थी। इस पर पाठकों की अद्भुत प्रतिक्रियाएँ ६ दिसम्बर १९७० के अंक में आयीं। सबसे मजेदार प्रतिक्रिया ए० करीम दास की थी— भारत की ही तरह पश्चिम में भी इन साधुओं को दूसरों की दी हुई भिक्षा पर रहना होगा और उन्हें अपनी अनेक महँगी वैयक्तिक आवश्यकताओं को छोड़ना पड़ेगा। निश्चय ही अमेरिकी राष्ट्र को आगामी वर्षों में उस तरह की राष्ट्रीय समस्या का सामना करना होगा जिसके पाप की समस्या का शायद ही उन्हें कभी अनुभव हुआ हो।"[1] नर्गिस के० अनेजा भारतीय गरीबों की बात कहकर इस भावुकता को कायम रख रहे हैं, प्रकाश ज० गाडगिल साधु मात्र को प्रवंचक कहते हैं। श्री एम० के० राव सिद्धों की प्रमाणिकता पर ही सन्देह करते हैं। जाहिर है कि ये सभी खास पढ़े लिखे पाठक हैं। बल्कि यह कहें तो अनुचित न होगा कि ये आज के औसत हिन्दुस्तानी या किसी भी देश के मध्यवर्गीय व्यक्तियों के सही प्रतिनिधि हैं।

श्री अरविन्द इसी कारण अपनी साधना को किसी मठ या मध्यकालीन ढंग के सम्प्रदाय मूलक आश्रमों में बन्द करना नहीं चाहते थे। उन्होंने आश्रम के बारे में स्पष्ट कहा था

यह आश्रम दूसरे आश्रमों जैसा नहीं है। आश्रमवासी संन्यासी नहीं हैं। यहाँ के योग का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष नहीं है। यहाँ जो कुछ किया जा रहा है कर्म की तैयारी है—उस कर्म की जो यौगिक चेतना तथा योगशक्ति पर प्रतिष्ठित होगा।[2]

आश्रम सच पूछिए तो संन्यासियों का मठ नहीं—श्री माँ और श्री अरविन्द की

१ As in India so in the west the Sadhus will have to live on al ms given by others and will have to forego many of their luxu rious personal needs The Coming years are there fore going to create for *Uncle Sam* a national problem of a magnitude the like of which had not seen before टाइम्स आफ इण्डिया वीक्ली ६ दिसम्बर १९७० पृ० ५।

२ श्री अरविन्द के पत्र पृ० १६५।

प्रयोगशाला है। यहां की कार्यविधियों पर विचार करते हुए डॉ० आयंगर का एक अनुभवपरक विवरण सुनिए— 'चाहे कोई आश्रम के वृक्षों के फूलों के बीच गुजरता हो, या शाम के शान्त ठंडे वातावरण में बैठा हो, या अनिल्वरण, पुराणी, नरेन बैनर्जी या दीप्ति द्वारा श्री अरविन्द की कृतियों की क्रमिक पाठ प्रक्रिया में गुजर रहा हो या मधुर संगीत के स्वरों के लिए दिलीप के आवास पर गया हो, या नलिनी अमृता, पृथ्वी सिंह, प्रेमानन्द से मानसिक ज्ञान का विनिमय कर रहा हो या सिर्फ कोई साधकों को कार्यरत देख रहा हो, चाहे वे चटाइयां बटोर या बिछा रहे हों या फूल चुन रहे हों या तश्तरियां प्याले और चमचों को धोकर सजा रहे हों या और कुछ न करके दरवाजे पर ड्यूटी कर रहे हों आपको बरबस होरेस की ये पंक्तियां याद आयेंगी, यदि सत्य की खोज करनी है तो अकेडेमस (Academus)बगीचे में जाओ[१]।'

पाण्डिचेरी का श्री अरविन्दाश्रम जीवन के हर क्षेत्र में शारीरिक, बौद्धिक, कलात्मक तथा तकनीकी उन्नति की आधुनिक सापेक्षता के बीच नये प्रयोगों के लिए संकल्पित है। इसने अपनी अतिविस्तृत लक्ष्य दृष्टि के कारण जाति, धर्म, राष्ट्रीयता आदि की सीमाएँ तोड़कर आनेवालों के लिए कर्म की एक नयी दीक्षा दी है। कोई भी कर्म छोटा, बड़ा या नीच या उच्च नहीं होता।

श्री मां ने कर्म का महत्त्व बताते हुए जो वाक्य कहा है वह भविष्यत मानवता के लिए जैसे मंत्र है

"कर्म शरीर की ओर से ईश्वर के लिए की गयी प्रार्थना है।" श्री अरविन्द योग कर्म के लिए ईश्वरीय यंत्र के रूप में कर्म करने के योग्य बनने के लिए आवश्यक शक्ति का साधन है। उन्होंने राष्ट्र के लिए अपने को संकल्पित करते हुए कहा था—

> "यदि तू है तो तू मेरे अन्तर को जानता है। मैं किसी भी ऐसी चीज की कामना नहीं करता जो दूसरे चाहते हैं। मैं सिर्फ शक्ति चाहता हूं ताकि इस देश को ऊँचे उठा सकूँ जिन्हें मैं प्यार करता हूँ। मैं इनके लिए जीवित रहने और कर्म करने की अनुमति चाहता हूँ। मैं इन्हें प्यार करता हूं। अतः प्रार्थना करता हूँ मेरा जीवन इन्हीं के लिए अर्पित हो।[२]"

बीसवीं शताब्दी के तकनीकी परिवेश में आधुनिक व्यक्ति की टूटती हुई आस्था का संकट आज विश्व में सर्वत्र अनुभव किया जा रहा है। मानवीयता की गरिमा में विश्वास करनेवाले अनेक वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, दार्शनिक तथा धार्मिक व्यक्ति इस संकट से मानवता को बचाने के लिए प्रयत्नशील भी हैं, किन्तु जगत और मनुष्य का

१ श्री अरविन्दो के आर० श्रीनिवास आयंगर, आर्य पब्लिशिंग हाउस कलकत्ता १९५० पृ० २६३।

२ ग्लीनेन और अरविन्दा पृ० १०१।

चेतना के बीच उत्पन्न आज की भयावह खाई को पाटने में वे प्राय कर्तव्यविमूढ़-से लगते हैं।

फिर भी इस दिशा में हो रहे प्रयत्नों का नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। जे० बोन तथा इ० ए० बर्टिघम तथा जे० एम० इगर जैसे लोगों ने धार्मिक समाज शास्त्र का एक नया रूप सामने उपस्थित किया है जिसका मूल उद्देश्य है समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा बरकरार रखने के लिए धर्म का महत्त्व देना और उसके आधुनिक रूप को अधिक से अधिक स्वीकार्य बनाने का प्रयत्न करना। हीगल काम्ट स्पेंसर आदि दार्शनिकों ने अपने ढंग से आधुनिक मनुष्य के लिए नयी चिन्तनधारा उपस्थित करने का प्रयत्न किया। इसमें सब से महत्त्वपूर्ण भूमिका शायद क्रिश्चियन वैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों की रही है।

इनकी मुख्य स्थापना यह है कि विज्ञान की उन्नति के कारण अनेक ऐसी समस्याएँ पैदा हो गयी हैं जो मनुष्य की भौतिक समृद्धि के बावजूद उसकी अन्तरात्मा की शान्ति सुख और सुरक्षा को नष्ट करने का कारण बनी हैं। जी० डी० यारनाल्ड ने अपनी पुस्तक 'द स्पिरिचुयल क्राइसिस ऑफ सायंटिफिक एज' में बड़े विस्तार के साथ इस स्थिति का विश्लेषण किया है। उन्होंने मानव जीवन में उत्पन्न विभिन्न परिवर्तनों के कारण इस प्रकार गिनाये हैं[1]

१ प्राकृतिक विज्ञान ने मनुष्य को ऐसी शक्ति दे दी है कि वह प्रकृति पर वस्तुओं पर, शासन करने लगा है जबकि वैज्ञानिक विकास के पहले वह इसका स्वप्न भी नहीं देख सकता था। वह अब हर वस्तु पर जो समझी जा सकती है आधिपत्य स्थापित करने की स्थिति में हो गया है।

२ औद्योगिक विकास के कारण वस्तुओं के व्यापक स्तरीय उत्पादन ने व्यक्ति को मशीन का पुर्जा बना दिया है जब कि वह उसके पहले एक व्यक्तित्व रखनेवाला निर्माता था जो स्वतंत्र दृष्टिकोण रख सकता था।

३ अणुशक्ति के आविष्कार ने एक ऐसी शक्ति का उद्घाटन कर दिया है जो अब तक की सभी अर्जित शक्तियों में महत्तम है। इसके ऊपर नियंत्रण के प्रश्न ने राष्ट्रों के भीतर भारी वैमनस्य और अलगाव तथा शंका का भाव पैदा कर दिया है। ये सारी समस्यायें वैज्ञानिक ज्ञान के व्यावहारिक लाभ के लिए व्यापक पैमाने पर किये जानेवाले प्रयोगों के कारण उत्पन्न हुई हैं।

इस विश्लेषण से बहुत दूर तक सहमत हुआ जा सकता है पर प्रश्न है कि क्या समाधान के लिए हम घड़ी की सुइयों को पीछे कर सकने में सफल हो सकते हैं? शायद नहीं। अतः इन समस्याओं का किसी भिन्न स्तर पर समाधान ढूँढना होगा। ये सभी

१ द स्पिरिचुअल क्राइसिस ऑफ सायंटिफिक एज पृ० १६२ १६५।

विद्वान इन समस्याओं का समाधान नैतिक पुनर्जागरण में ढूँढना चाहते हैं जो उन्हें ईसा मसीह और ईसाई चर्च (थोड़ा आधुनिक) के माध्यम से ही सम्भव प्रतीत होता है।

आरनाल्ड ने स्पष्ट लिखा है कि, 'यदि मानव जाति ईश्वरीय नियम का विरोध जारी रखती है, जो कि ईसा के जीवन में अभिव्यक्त हुआ है तो वह पूर्णतः ध्वंस के लिए अभिशप्त है[1]।" डॉ० जेनर जो इधर के वक्त में बहुत बड़े दार्शनिक का स्थान या खिताब पाने लगे हैं इसी प्रकार से ईसाईयत के पूर्वग्रह से ग्रस्त हैं, उनकी कृतियों पर हम आगे विचार करेंगे।

श्री एफ० सी० हपोल्ड ने अपनी पुस्तक 'रेलिजियस फेथ ऐंड ट्वेण्टिएथ सेंचुरी मन' में भी इसी स्तर का बड़ा विशद् विश्लेषण किया है। उनका भी निष्कर्ष इसी तरह का है यद्यपि उन्होंने इसे और भी अधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया है, क्योंकि वे एक ईसाई की अपेक्षा एक रहस्यवादी की भूमिका अदा करना चाहते हैं। इसी कारण वे धार्मिक संकोच की दीवार तोड़ सके हैं। इस पुस्तक के अन्तिम परिशिष्ट में समस्या और समाधान को बड़े जोरदार शब्दों में रखने का प्रयत्न किया गया है। वे भी मानते हैं कि इस दुनिया में कुछ हो रहा है। मानव जाति ने अपना खेमा उखाड़ लिया है और वह एक बार पुनः चलायमान हुई है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थान, धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष विचारधारायें और तरह-तरह के दृष्टिकोण—सभी गड्डमड्ड हो रहे हैं। पुरानी नीवें हिल गयी हैं, और पुराने आदर्श थोथे पड़ गये हैं, नयी आध्यात्मिक शराब अब पुरानी बोतलों में नहीं भरी जा सकती[2]।

हपोल्ड की पुस्तक बड़ी चर्चित हुई। शायद इसलिए कि यह बड़ी ही सरल भाषा में आधुनिक युग के आस्था विहीन व्यक्ति के लिए एक रहस्यवादी आध्यात्मिकता का संदेश देती है। इस पुस्तक की अनेक धारणायें श्री अरविन्द के चिन्तन का सरलीकरण प्रतीत होता है[3]।

उदाहरण के लिए एफ० सी० हपोल्ड का यह निष्कर्ष देखें, 'आधुनिक स्थितियों के हमारे विश्लेषण से यह मालूम होता है कि हम उस क्रांतिकारी आध्यात्मिक और मानसिक विकास के उस दौर से गुजर रहे हैं जो हमें बहुत ऊँचा बनाने के लिए आया है। ऐसे दौर इतिहास में पहले भी आ चुके हैं। जो कुछ हमारे चतुर्दिक हो रहा है, वह मानव चेतना का विस्तार है वह मानव समूह आत्मा के भीतर घटित होनेवाली प्रज्ञा का विस्तार और स्वाभाविक विकास है[4]।

१ वही, पृ० १९५।
२ रेलिजियस फेथ ऐंड ट्वेण्टिएथ सेंचुरी मैन पृ० १७२।
३ यह पुस्तक १९६६ में प्रकाशित हुई।
४ वही पृ० १७७।

हपोल्ड के इस प्रसिद्ध सूत्र—"जो ईश्वर को सब जगह नही देखता, वह उसे सत्य ही कही नही देखता ह" का मूल्यवत्ता आध्यात्मिक सत भी हमारा जाना पहचाना ह। उन्होने गीता के कर्मयोग की पुष्कल प्रशसा की ह। इस अध्यात्म समन्वय को जिसे 'इण्टर सेक्सन सिद्धान्त' कहते ह एकदम ताजा दृष्टिकोण कहा जाये या नही जसा कि पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर कहा गया है यह प्रश्न शायद उत्तर की अपेक्षा नही रखता।

प्रश्न समन्वय का उतना नही ह जितना आधुनिक मनुष्य की आन्तरिक शक्तियो के सही विश्लेषण और उनके रूपान्तरण के व्यावहारिक प्रयोग का ह। श्री अरविन्द हमें समन्वय ही नही देते हम वहा विभिन्न तत्वो का कुछ-न कुछ अश लेकर समन्वय मान लेते ह वस्तुत यह प्राचीन चिन्तन की पीठिका पर उपस्थित किया हुआ आधुनिक मनुष्य के लिए जीवन का पूर्ण जीवन्त अत नितान्त मौलिक स्वभाव का एक अलग दर्शन ह। जिस पुस्तकीय समाधान के रूप म नही व्यवहार म उतारकर उन्होने परखा देखा था और बिना परीक्षण के उसे स्वीकार कर लेने से लोगो को मना किया था। यह मानवता की एक नयी यात्रा या चलायमान स्थिति' का दर्शन नही, बल्कि मानव चेतना में दिव्य चेतना के पूर्णत अवतरित कराने के प्रयत्न की सुनियोजित दिव्य सहयात्रा ह। यह मानवता का नया आनन्दपूर्ण अभियान (Adventure) ह। जो एक नयी तरह की गत्वरता और सहकारिता (Intersection) का आह्वान देता ह।

इस सन्दर्भ म १० दिसम्बर १९७० के टाइम्स आफ इण्डिया का क्या यह समाप्ति ह शीर्षक अग्रलेख बड़ा महत्वपूर्ण ह। मानव स्थितियो के निरीक्षक इधर भविष्य के बारे म बहुत निराशाजनक धारणा बनाने लगे ह। कुछ कहते ह कि तीस वर्षों में ही अन्तिम क्षण आनेवाला ह। याक के पादरी डा० डानाल्ड कागन सातवें दशक की विराट समस्या बन गये ह। एसे लोगो का कहना ह कि आणविक सकट नयी पीढ़ी को ध्वस की ओर जाने के लिए प्रेरित कर रहा ह। अज्ञात के इस भय ने लोगो को वचन हारे इधर उधर दौड़ने के लिए विवश कर दिया ह।

डॉ एलक वडलर जो खुद एक प्रसिद्ध विद्वान और श्री माल्कोम मुगरिज के मित्र हैं सोचते ह कि हम लोग एक ऐतिहासिक प्रक्रिया म इस कदर फस गये ह जो हमें सर्वनाश की ओर तेजी से ले जा रहा ह। इनकी यह निराशापूर्ण धारणा किसी उिवग्नता के कारण नही बल्कि हमारे चतुर्दिक छाये सकट की शान्त निर्माण से की गयी समीक्षा म उत्पन्न हुई ह। पतनशील सस्कृति के लक्षण के हिसाब म समाज पर तकनीकी आधिपत्य सनातन निरन्तर बढ़ती हुई अनैतिक और अनाध्यात्मिक अराजकता, मनुष्य की मुक्ता के प्रति बढ़ता हुआ खतरा में जो केवल आणविक युद्ध म ही नही बल्कि वायुमण्डल के निरन्तर जहरीला होने रहने और अन्तनाशकारी साधना के अनुचित धारणा म पस हुए ह देखे जा सकते ह।

अपराध के इन अभिव्यक्तियो म सम्पादक ने पूछा ह क्या ऐसा नहीं कि

चूँकि मानव मूल्यों में तेजी से परिवर्तन आ रहा है इसलिए भविष्य अनिश्चित सा लगने लगा है ? इफेसस के हेराक्लिटस ने कहा था कि हर चीज अस्थिर स्थिति में है। नदी उसी वक्त बदल जाती है, जब वह बहना शुरू करती है, पर नदी तो वही होती है यद्यपि उसकी भँवर में फँसा व्यक्ति हमेशा सोचता है कि वह डूब जायेगा। सर्वनाश के इन भविष्यवक्ताओं के पास सभी चीजों के उत्तर हों ही कोई जरूरी नहीं। ऐसी हालत में अनन्त जगत और शाश्वत चेतना के बारे में सोचना कहीं अच्छा है। यदि यह जाति नष्ट भी हो गयी, तो निश्चय ही कालान्तर में, एक महत मानवों (Homo Superier) की जाति जन्म लेगी। इसी आशा में विवेक और बुद्धिमत्ता भी है।'
श्री अरविन्द के लिए यह सिर्फ आशा की नहीं पहले से बेहतर परिवर्तन की अनिवार्य स्थिति है। इस संकट को उन्होंने उषा के पहले का अन्धकार कहा था। जिसके भीतर से महत मानव उदित होनेवाला है। उनका चित्त एक क्षण के लिए भी इन संकटों से संशयग्रस्त नहीं हुआ, ऐसा कहना तो उनके जीवन्त व्यक्तित्व का मूल्य घटाना होगा ? उन्होंने खुद लिखा है, तो तुम सोचते हो कि मेरे भीतर कभी सन्देह नहीं हुआ, निराशा नहीं हुई या इस तरह के दूसरे प्रत्यवाय नहीं आये—मैंने हर खतरे का सामना किया जो मनुष्य को भोगने होते हैं अन्यथा मैं उन्हें यह आश्वासन देने में असमर्थ होता कि इन पर भी विजय पाई जा सकती है[1]।' इसी विश्वास में उनकी आशा और आस्था का रहस्य निहित है। श्री अरविन्द हमारे लिए या किसी भी आधुनिक बौद्धिक के लिए एक चुनौती है। आप उन्हें अस्वीकार कर सकते हैं दरकिनार नहीं।

अपनी इसी विचित्रता के कारण वे लोगों को 'अबूझ' लगते हैं। वे क्रान्तिकारी थे, राज्याधिकारी नहीं, वे महान् विद्वान थे पर अहंकारी नहीं वे बहुत बड़े चिन्तक थे चिन्तित नहीं, वे परम गम्भीर थे, पर उन्हें व्यंग्य विनोद से चिढ़ नहीं थी, वे योगी थे, पर संन्यासी नहीं थे। वे आध्यात्मिक थे पर चमत्कारी नहीं वे कवि थे पर प्रचारी नहीं, वे अनेक शिष्यों से घिरे थे, पर सर्वाधिकारी नहीं, वे प्राचीन की सारी विभूतियों को बटोर कर वर्तमान में स्थित हो उन्हें विकसित करते रहे और अन्ततः भविष्य में अतिक्रान्त कर गये। इसी अर्थ में वे सचमुच के उत्तर योगी थे।

●

●

[1] कॉरेसपाण्डेंस विद श्री अरविन्दो पृ० ५७।

जन्म से प्रवासी

विभिद्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसत

ऋग्वेद ८।२९।८

दो में विभक्त होकर एक साथ चलते हुए भी वह हमेशा प्रवास में ही रहता है।

आधुनिक विचारधारा में विश्वास रखनेवालों को 'प्रवास' शब्द आजकल बहुत आकृष्ट करने लगा है। इसी के समानान्तर, कभी-कभी कुछ अर्थभेद के साथ अज्ञातवास, निर्वासन, एकान्तवास, अलगाव, विभक्ति, एकाकी आदि दूसरे शब्द भी प्रचलित हो गये हैं। 'प्रवास' के भीतर सिर्फ एकाकीपन या 'एकया सह' का ही नहीं, अपने स्वकीय स्थान को छोड़कर दूर रहने का ही नहीं, बल्कि घर में रहते हुए, समाज में सक्रिय होते हुए भी उनसे अलग और भिन्न होने का भाव भी समाहित हो गया है। अस्तित्ववादी विचारकों ने इसे आधुनिक स्थितियों में एक दार्शनिक दृष्टिकोण की गरिमा प्रदान कर दी है। आज के मनुष्य का परम्परा प्रथित आदर्शों, अर्जित मानव मूल्यों, निजी वातावरण, पारस्परिक विचार विनिमय, आचार-व्यवहार से, यहाँ तक कि अपने व्यक्तित्व और मानसिक जगत से प्रवास हो गया है।

कीर्केगार्द का 'अहंपूर्ण एकान्त' इसी प्रवास का एक भेद है। उन्होंने कहा था "मैं चीड़ के उस वृक्ष की तरह हूँ जो अहंम यत्नपूर्वक सबसे अलग ऊपर सिर उठाये खड़ा है। इससे किसी को छाया नहीं मिलती। इन शाखाओं में सिर्फ जंगली बत्तख अपने नीड़ बनाते हैं।[1]' नीत्शे की इच्छा नास्तिभाव की जीवन विराग की, जीवन के सर्वाधिक मौलिक मूल्यों को नकारने की इच्छा 'प्रवास बोध' को जगाती है।[2] यास्पर्स ने पूर्वस्थापित दर्शन के प्रति यह कहकर कि 'ये महान् महल आश्चर्यकारी हैं पर इनमें कोई रह नहीं सकता'[3]—इसी 'प्रवास' की पुष्टि की थी। मार्टिन हिडेगर का यह भय कि मनुष्य अपने व्यक्तिगत अस्तित्व को सुरक्षित और गृहस्थित सौख्य से भरा हुआ सोचते-सोचते अचानक देखता है कि सामने का अर्थमय जगत सहसा ध्वस्त हो गया है और वह शून्यता के खार समुद्र में डूब रहा है[4] वस्तुतः 'प्रवास' की ही पीड़ा

१ एच० जे० ब्लैकम सिक्स एक्जिस्टेंशियलिस्ट थिंकर्स पृ० १।

२ द डिनिमायनिटी आफ मॉडर्न नीमरा निब पृ० २८।

३ सिक्स एक्जिस्टेंशियलिस्ट थिंकर्स पृ० ४४।

४ वही पृ० १०।

को प्रकारान्तर से व्यक्त करता है। ईसाई नैतिकता में आस्था रखनेवाले [illegible] के लिए ईश्वर में विश्वास (Fidelity) मूल बिन्दु है, किन्तु इसे [illegible] मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है व्यक्ति के ऊपरी भौतिक और आन्तरिक [illegible] जगत के बीच अतलान्तक (Metaphysical Atalntis) अलगाव [illegible] काफ्का के बाहर और भीतर के अलगाव या विदीर्णता, विभक्त होना[2] [illegible] की अभिव्यक्ति है।

"गरीबी में एकान्त का जीवन बोध है"—अल्बेयर कामू ने अपनी [illegible] की व्याख्या करते हुए लिखा है "यह एक ऐसा बोध है, जो हर वस्तु का [illegible] मूल्य दे देता है।"[3] बिना अलगाव के 'मैं' की अनुभूति असम्भव है। [illegible] चारों ओर के वातावरण से प्रवास लेना ही होगा। सार्त्र ने कहा, [illegible] रेस्तराँ का वेटर हूँ, मुझे अपने को कुछ स्थितियों से अलग करके ही [illegible] जो मैं हूँ[4]।"

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से लगता है कि अस्तित्ववादी चिन्तक [illegible] लिए उसका पूर्वनिर्मित वातावरण के प्रति अहंपूर्ण अलगाव (कीर्केगार्द, [illegible] (नीत्शे), निर्वासन (यास्पर्स), नास्तिभाव और शून्यता का भय ([illegible] णता, विभक्ति (काफ्का), मूल्यदायी एकान्त (कामू), [illegible] (सार्त्र) का दृष्टिकोण रखना आवश्यक मानते हैं। कीर्केगार्द [illegible] सत्ता में आस्था रखने के कारण इन स्थितियों का मूल कारण [illegible] सत्ता के बीच उत्पन्न असंगति में ढूँढते हैं। इनमें ऊपर से [illegible] दिखे, ये मानते हैं कि जब मनुष्य किसी भी कारण से प्रवास, [illegible] स्थिति में आता है तभी वह अपने जीवन के सही रूप को [illegible]

श्री अरविन्द इनमें से नीत्शे को छोड़कर किसी से भी [illegible] का जिक्र भी उन्होंने एकाध स्थल पर ही किया है, वह भी [illegible] वाली' उसकी धारणा के सन्दर्भ में।[5] ऊपर से देखने पर [illegible] के महत् मानव (Superman) और नीत्शे के सुपरमैन [illegible] सकता है। नीत्शे का 'सुपरमैन' श्री अरविन्द की धारणा [illegible] बल्कि विरोधी लगता है, इस पर हम यथास्थान आगे [illegible] इतना ही कहना चाहता हूँ कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद [illegible]

१ मामल इन्वोकेशन, पृ० १२४।
२ लेटर्स टू मिलेना, पृ० २०४।
३ १९१७ की डायरी से जमा मे द्वारा अपनी पुस्तक '[illegible]
४ मिनम पेरिजर्स्टेंशियलिस्ट थिंकर्स एन० ने० [illegible]
५ नीरद वरण कॉरेसपान्डेंस विद श्री अरविन्दो पृ० [illegible]

वादी दृष्टिकोण से श्री अरविन्द का कोई सम्बन्ध नहीं था। हम सिर्फ पश्चिम के इस सर्वाधिक चर्चित दर्शन के माध्यम से श्री अरविन्द के व्यक्तित्व के कुछ पक्षों को समझने की कोशिश कर सकते हैं। यद्यपि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने के लिए अस्तित्ववाद अपर्याप्त है।

उदाहरण के लिए उपर्युक्त 'प्रवास' की धारणा को ही लीजिए। लौकिक संस्कृत में इस शब्द का सर्वत्र गृह छोड़कर बाहर जाने और रहने के अर्थ में प्रयोग हुआ है। किसी प्रयोग में उपर्युक्त दार्शनिक दृष्टि का संस्पर्श तक नहीं है। किन्तु यह कितने आश्चर्य का विषय है कि ऋग्वेद की शीर्षोद्धृत ऋचा में प्रवास शब्द एक विलक्षण दार्शनिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मैं ऋग्वैदिक 'प्रवास' को अस्तित्ववादी प्रवास से जोड़ नहीं रहा हूँ। दोनों में विराट अन्तर है। पहला प्रयोग उस सत्ता की सूक्ष्म क्रिया पद्धति के एक निगूढ़ पक्ष से सम्बद्ध है, जिसे हम अतिमानसिक, परब्रह्म या सर्वोपरि चैतन्य का मानव शरीर में रहते हुए भी प्रवासी जैसा होना कह सकते हैं, जबकि अस्तित्ववाद उस तरह की सत्ता का ही विरोध करता है।[१]

ऋग्वेद की उपर्युक्त ऋचा एक ओर जहाँ विराट् सत्ता की बात करती है वहीं वह उसके विभक्त होकर मानव सत्ता में प्रवासित होने का संकेत भी देती है। प्रकारान्तर से मानव अस्तित्व और कुछ नहीं परब्रह्म का एक विशिष्ट ढंग से अभिव्यक्त रूप है—जो मानवयन्त्र में बद्ध होकर प्रवासी का जीवन व्यतीत कर रहा है। मुझे वैदिक ऋषियों और अस्तित्ववादियों की दृष्टि में एक प्रोन्नित्तर साम्य दिखाई पड़ता है। निरावृत्त मानव अस्तित्व के इस सूक्ष्म 'प्रवासीतत्त्व' की पहचानने में अस्तित्ववादी दार्शनिक इसलिए सफल हुए क्योंकि उन्होंने नाना मतमतान्तरों और धारणाओं की खोल का विरोध करते हुए अपनी व्यक्तिगत अनुभूति की वरीयता दी और उसी के भीतर से इस समर्थन का प्रयत्न किया। इसी प्रकार की, बल्कि इससे भी अधिक स्पष्ट और सघन अन्तरानुभूति में वैदिक ऋषि भी निवास करते थे। इसीलिए वे मन्त्रद्रष्टा हुए। सत्य को अद्भुत वैयक्तिक ढंग से देख सके।

प्रवासी-तत्त्व की एक विलक्षणता यह होती है कि वह अपनी इस नियतिजन्य परिस्थिति को अपनी आत्मशक्ति के विकास के अमोघ साधन में बदल देता है। राम, कृष्ण, बुद्ध सभी के व्यक्तित्व के विकास में इस प्रवासी-तत्त्व का अद्भुत योगदान है। राम को वनवास या प्रवास पिता की आज्ञा से मिला। सुब्रह्मण्यम कार्तिकेय माता पिता से पराजित से चिढ़कर प्रवासी बने। कृष्ण जन्म से ही प्रवासी बने। बुद्ध ने स्वयं इस नियति से प्रवास ग्रहण किया। श्री अरविन्द के व्यक्तित्व में निहित प्रवास तत्त्व श्रीराम और श्रीकृष्ण द्वारा अंगीकृत प्रवास का समन्वय जैसा लगता है। उन्होंने

१ [illegible]

आरम्भिक प्रवास श्रीराम की तरह पिता की आज्ञा से स्वीकार किया, किन्तु उसका रूप श्रीकृष्ण द्वारा जन्म से ही प्रवासी होने और उसके भीतर से अपने को विकसित करने की स्थिति के समानान्तर लगता है।

•

१५ अगस्त १८७२। कलकत्ता अभी निद्रित था। वैसे भारत के तमाम नगरों में सम्भवतः कलकत्ता का ही सर्वाधिक उन्निद्र और कोलाहल कवलित होने का सौभाग्य प्राप्त है। १८७२ कलकत्ते के लिए एक विशिष्ट वर्ष था, क्योंकि इसी वर्ष बंगदर्शन का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष श्री अरविन्द के मातामह श्री राजनारायण बोस के साथ मिस एक्राएड का मिलना हुआ।

एक्राएड की सहायता से स्त्री शिक्षा का प्रारम्भ भी इसी वर्ष हुआ। राजनारायण बोस और मिस एक्राएड में अंग्रेजी और भारतीय तौर तरीकों पर गरमागरमी भी इसी वर्ष हो गयी।[1] कौन जानता था कि उनके जामाता एक दिन इन्हीं महिला का नामाश्रय अपने पुत्र के साथ जाएँगे। इसी वर्ष अंग्रेजों की पारिवारिक जीवन-पद्धति से मुग्ध केशव चन्द्र सेन ने 'भारत आश्रम' की स्थापना की।[2] अंग्रेजों के विस्तृत सम्पर्क और घनिष्ठ अनुकरण के कारण तरह-तरह के मूल्यों के टकराव में वृद्धि हुई। १५ अगस्त १८७२ की सुबह कलकत्ते से प्रकाशित 'डेली इण्डियन न्यूज' के सम्पादकीय में 'नैतिकता पर एक विलक्षण टिप्पणी छपी। प्रश्न है कि क्या अंग्रेजों के सम्पर्क से भारतीयों की नैतिकता भ्रष्ट हुई है? सम्पादक का कहना है कि नैतिकता दो तरह की होती है—एक वह जो किसी नियम पर आधारित वायवी आदर्श के औचित्य में सच्चे से विश्वास करने के कारण पैदा होती है, दूसरी नैतिकता वह है जो अपनी अन्तरात्मा के आदेश के अनुसार स्वीकृत होती है और जो सभी बाहरी आदेशों से अपने को स्वतन्त्र रखती है। इस तरह स्पष्ट है कि व्यावहारिक रूप से घनघोर अनैतिकता के बावजूद कृत्रिम नैतिकता प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि पहले प्रकार की नैतिकता के आधार निरंकुश नियम हैं जो अपूर्ण हो सकते हैं दूसरी नैतिकता का आधार जो व्यक्तिगत अन्तरात्मा है, वह भ्रष्ट हो सकती है।[3]

१ राजनारायण बसु का आत्मचरित, पृ० १९४–१९५।
२ पण्डित शिवनाथ शास्त्री रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंगसमाज पृ० ३०२।
३ Any deliberation on the question whether contact with English men has improved or corrupted the morality of the natives of this country must to be of any practical use be preceded by a clear understanding as to what constitutes morality for while on the one hand morality may consist in a rigid adherence to some

प्राचीन धर्मों द्वारा स्थापित नियमों की अपूर्णता और व्यक्ति की अन्तरात्मा की भ्रष्टता के बीच आखिर नैतिकता के लिए जगह कहाँ है ? इस गुत्थी का सम्पादक के पास कोई उत्तर नहीं। वस्तुत यह सम्पादकीय भविष्यत् मानवता के बीच उत्पन्न होनेवाले इस भयानक मूल्यगत संकट का संकेत है जिसमें पड़कर आज का मनुष्य नाच पंथा वाली स्थिति में ऊभ चूम कर रहा है।

'द डेली इण्डियन न्यूज' के सम्पादक अंग्रेजों और भारतीयों की नैतिकता के द्वन्द्व से परेशान हैं। वे इस बात को स्पष्ट करने के लिए शास्त्रानुमोदित नैतिकता और अन्तरात्मिक नैतिकता का अन्तर बताते हैं। किंतु दोनों की ही सीमाएं देखकर समस्या को अधर में छोड़कर चुप हो जाते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या १८७२ से १९७२ तक आते आते सौ साल पहले इतने गम्भीर ढंग से उठाया हुई समस्या का रूप ज्यों का त्यों है या कुछ बदला है ? क्या भारत में अंग्रेजों के सम्पर्क के न रहने पर नैतिकता बढ़ी है या घटी है ? क्या खुद इंग्लण्ड में नैतिकता के बारे में दृष्टिकोण बदला या वही पुराना ज्यों का त्यों बरकरार है ? इंग्लण्ड की पार्लमेण्ट समलिंगी सम्बन्धों के औचित्य पर कानून पास कर चुकी है और भारतीय संसद गर्भपात में छूट देने का कानून। सारे विश्व में तथाकथित नैतिकता का सर्वत्र ह्रास ही दिखाई पड़ता है। आज का इन्सान स्पष्टत पूछ सकता है—इस ह्रास कहने का आधार क्या है ? आज के मानवीय संकटों के मूल में सम्भवत ऐसे ही बौद्धिकों का संशयग्रस्त बुद्धि का त्याग ज्यादा जरूरी है जो न तो सही रोग पहचान पाते हैं और न तो उसका ठीक निदान कर पाते हैं। ऐसे में यदि रोग बढ़ता जाय ज्यों ज्यों दवा होती रही तो इसमें आश्चर्य क्या ?

'द डेली इण्डियन न्यूज' के सम्पादक को क्या पता था कि उसी दिन जब उनका अखबार प्रेस से निकल रहा था प्रात काल साढ़े चार बजे सूर्योदय के पहले कलकत्ते के थियेटर रोड के बैरिस्टर मनोमोहन घोष के मकान में, जिनकी पत्नी का नाम भी स्वर्णलता था एक दूसरी स्वर्णलता ने एक ऐसे बालक को जन्म दिया है, जो आधुनिक मानवता के सम्मुख उपस्थित अनेक समस्याओं का उत्तर देगा और आगे चलकर उत्तर

> abstract standars of proporiety which affects to be based on some code of law on the other it may simply mean conformity with the dictates of conscience regarded as an internal arbiter which is independent of all external dictations And in either case it is esay to see that a high degree of artificial morality may be attained consistently with the prevalence of much practica immorality since in the one case the despotic code may be imperfect and in the other the individual conscience may be corrupt —The Daily Indian News 15th Aug 1872 Editorial

योगी के रूप मे विख्यात होगा। जो अंग्रेजों के आधिपत्य को उखाड फेंकने का काय करेगा, पर अंग्रेज और भारतीय या दुनिया की किसी भी जाति के मनुष्य मनुष्य के बीच कोई पार्थक्य स्वीकार नही करेगा।

'द इडियन न्यूज' के सम्पादक ने ठीक ही कहा ह कि नतिकता का प्रश्न बडा जटिल ह। इस प्रश्न के महत्त्व को वे नकारने की शक्ति नही रखते क्योंकि जैसा श्री अरविन्द ने कहा था, "ईसाइया के लिए नतिकता और आध्यात्मिकता में कोई अन्तर हो नहीं होता[१]।" क्योंकि अधिकाशत योरोपीय मन कभी भी आत्मा + शरीर के सिद्धात के आगे जा ही नही पाता। सामान्यतया मन का आत्मा में (Soul) जोड देता ह और शरीर के अलावा सब-कुछ को मन में सम्मिलित कर लेता है[२]।" नतिकता के बारे में धारणाएँ सामाजिक नियमा के प्रतिबधन के सदभ में बनायी जाती हैं। वे जो अपनी वासनाआ की पूर्ति सिफ इसलिए नही करते क्योंकि समाज से डरते हैं सम्माननीय हो सकते हैं मैं उन्हें शुद्ध नही मान सकता।[३]

फिर क्या श्री अरविन्द नतिकता का नही मानते ? ऐसी बात नही ह कि वे नतिकता का विराध करते ह। वे असल में समाज में प्रचलित थोथी और ऊपरी नतिकता के विरुद्ध थे। उन्होने स्पष्ट कहा है "नतिकता से तुम ज्यादा मानवीय बनत हो, पर मनुष्य से आगे नही बढ सकते। नतिकता ने मनुष्य को बहुत लाभ पहुँचाया ह, पर शायद उसने हानि भी काफी पहुँचायी ह। सवाल ह कि क्या तुम नैतिकता द्वारा मनुष्य से ऊपर उठ सकते हो ? भारतीय संस्कृति नतिकता का मूल्य जानती थी और अनतिकता का भी। उपनिषद् और गीता इसलिए स्पष्ट नतिकता से आगे जाने की खुली घोषणा करते हैं[४]।

श्री अरविन्द विकास की वनानिक प्रक्रिया को देखते हुए जिस दिव्य मनुष्य जीवन की स्थापना करना चाहते हैं उसम प्रधानता न ता शास्त्रा की रूढिवादिता को ह, न किसी उच्च ज्ञानवादीय आदश की है, न अहप्रेरित 'कासिएन्स' की ह, जो प्राय गलत हा सकता ह, बल्कि सम्पूण मानव मन क रूपान्तरण की ह जिसके होने पर अनेक समस्याएँ जो असत्य या अर्द्धसत्य को ही सत्य माननेवाली बुद्धि से उपजी हैं अपने आप समाधान पा जाती हैं।

●

कलकत्ते से सिफ ग्यारह मील दूर हुगली जिले में एक गाँव ह कोन्ननगर। पता

१ इवनिंग टॉक्स प्रथम भाग, पृ० ७९।
२ सत्ता के विभिन्न अग और लोर मोरानर पृ० ६९ ७०।
३ इवनिग टॉक्स दूसरा भाग पृ० १४३।
४ वही प्रथम भाग, पृ० ७९।

नहीं कब और कहाँ से घोष परिवार के पूर्वज यहाँ आकर आबाद हुए। बंगाल के अनेक परिवारों की ही तरह इनके पूर्वपुरुष भी किसी समय पश्चिमोत्तर या मध्यदेश से आकर यहाँ आबाद हुए होंगे।[1]

कोन्नगर ने बांग्ला पुनर्जागरण में अपने प्रशंसनीय अवदान द्वारा काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। शिवचन्द्र देव जिन्होंने ब्रह्मसमाज के प्रचार प्रसार के लिए काफी प्रयत्न किया इसी गाँव के थे।

श्री अरविन्द के पिता डा० कृष्णधन घोष के समय तक आते आते घोषों का पुश्तैनी रुतबा और प्रभाव करीब करीब नष्ट हो चुका था। डा० कृष्णधन घोष की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। डॉ० कृष्णधन घोष के पिता थे श्री कालीप्रसाद घोष और माता थीं श्रीयुक्ता कैलाश कामिनी घोष। जब डॉ० कृष्णधन घोष सिर्फ बारह वर्ष की वय के थे, उनके पिता का देहावसान हो गया। उनकी माँ कैलाश कामिनी ने काशीवास ले लिया। इस तरह किसी की देखरेख में न रहने के कारण कोन्नगर में घोषों का पूर्वज गृह प्रायः उजड़ गया। श्री बारीन्द्र कुमार घोष ने लिखा है "हमारा पैतृक वास कोन्नगर में था। वह मकान सुना अब भी है। पर मैंने अपनी आँखों उसे अभी तक नहीं देखा। मेरे पितामह की मृत्यु के बाद बाबा (पिता) और काका अपने-अपने कार्यक्षेत्र में चले गये। पितामही ने काशीवास ले लिया। इस तरह हमारा कोन्नगर निवास समाप्त हो गया।[2] परन्तु डॉ० कृष्णधन घोष के व्यक्तित्व में परिस्थितियों से जूझने की असीम क्षमता थी। श्री मनमोहन घोष ने लिखा था "मेरा परिवार अब दुखद पतन की स्थिति में आ गया है। पूर्वजों का भवन या कोठी जो बहुत ही महान् थी और कलकत्ता से कोई खास दूर भी नहीं है खण्डहर हो गया है। मेरे पिता तब बच्चे थे बहुत गरीब थे। मित्रों की सहायता से जीवन चलाते रहे। और यह उनके अतिमानवीय साहस का परिणाम है कि हम लोगों ने उस विगत यश को थोड़ा बहुत पुनः प्राप्त कर लिया है।[3]

कृष्णधन घोष के बारे में मनमोहन घोष ने १८८७ में बिन्यान के नाम एक और पत्र में लिखा था "मेरे पिता एक ऐसे चरित्र के इन्सान हैं जिसे 'मुकम्मल' (Thorough) कहा जा सकता है। वे सुदृढ़ कठिनाइयों से लड़ते हुए भी हम अच्छों निगा

१ श्री अरविन्द के मझले भाई श्री मनमोहन घोष ने अपने मित्र लारेंस बिन्यान को पत्र में लिखा था "घोष परिवार के लोग अत्यन्त निम्नतर ग में पंजाब के सीमाक्षेत्र से बंगाल आये थे। घोष का अर्थ यश घोषणा (fame) है और वे जाने हाते थे ये लोग अभिमानी योद्धा जाति (warrier caste) के थे।—[illegible] श्री [illegible] बी० पुराणी पृ० १२।

२ [illegible] पृ० १२।

३ [illegible] पृ० १२।

दिलाना चाहते है, वे लौह स्नायु के आदमी ह। मैं तुमसे उसका आधा निहा भी नही बयान कर सकता, जितना उन्होंने सहा ह। वे कहा करते ह, 'मेरे मस्तिष्क की ही तरह मेरा शरीर भी उतना ही सख्त ह कि मैं वे तमाम कष्ट सह सका[1]।"

इस संकेत से श्री कृष्णधन घोष के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उजागर हो जाते ह।

वस्तुत वे अपनी धारणाओ म अडिग रहनेवाले व्यक्ति थे। यह अडिगता अक्सर जिद लगे तो भी आश्चय नहा, पर वह उनमें थी और उन्होने कभी भी इसके लिए पश्चाताप नही किया।

श्री कृष्णधन घोष अंग्रेजी शिक्षा और रहन-सहन पर बुरी तरह लट्टू थे। यद्यपि वे प्रसिद्ध देशभक्त नेता श्री राजनारायण वास के जामाता थे। राजनारायण बाबू हिन्दुत्व में विश्वास रखनेवाले तजस्वी नेता थे। १८६७ में आयोजित होनेवाले 'हिन्दू मेला' के साथ उनका नाम जुडा हुआ ह। हालांकि उक्त मेले के प्रेरक और संस्थापक महर्षि देवेन्द्रनाथ टगोर थ। गणेन्द्रनाथ टगोर मन्त्री और गोपाल मित्र सहायक मन्त्री थे। इस मेले का प्रमुख उद्देश्य था स्वदेशी वस्तुओ के निर्माण और प्रयोग को वरीयता दना अपनी भाषा और शरीर विज्ञान के विकास का प्रयत्न करना। श्री राजनारायण वास ने १८६१ में ही इन उद्देश्यो की वकालत करते हुए ओजस्वी शब्दो में कहा था, 'क्या तुम लोग इतने मन्द बुद्धि हो कि यह भी समझ नही सकते कि ये विजेता मानव मुद्दों के समूह नही हैं। वे तुम्हारे हित के लिए नही, बल्कि अपने स्वार्थ साधन के लिए आये हैं। क्या तुम सोचते हो कि ये अपने बर्किंघम और मनचेस्टर से उदासीन होकर तुम्हारी कला और उत्पादन को प्रश्रय देंगे? पददलित जाति के लोगो, ध्यान रखो, उन्नति की इच्छा करनेवालों को स्वय प्रयत्न करना होता ह।'[2]

राजनारायण वास ने राष्ट्रीय भावनाओ के प्रचार प्रसार के लिए वहुत प्रयत्न किया। अंग्रेजियत का सब प्रकार म विरोध उनका व्रत था। अंग्रेजी भाषा, वेशभूषा, अंग्रेजी पद्धति के खानपान के स्थान पर बांग्ला भाषा, हिन्दू रीति रिवाज खान-पान, खेल व्यायाम के प्रचार के लिए नेशनल सोसायटी की स्थापना हुई। १८७१ तक राजनारायण वास भी ब्रह्मसमाजी विचारधारा के समर्थक थे, पर अंग्रेजियत के [illegible] नही थे। उन्होने २७ नम्बर कार्नवालिस स्ट्रीट भवन म नेशनल सोसायटी की [illegible] 'हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता' पर अपना इतिहास प्रसिद्ध भाषण दिया। उस दिन [illegible] भवन की स्थिति का विवरण केशवचन्द्र सेन के प्रमुख शिष्य पंडित [illegible] अपनी पुस्तक 'रामतनु लाहिडी ओ तत्कालीन बंग समाज' म इन शब्दो [illegible] 'हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता दीपक भाषण ने लोगों की दृष्टि को इस [illegible]

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १३।
२ स्पीरिट इन द बंगाल रेनेसाँ पृ० १७।

ऐसी तरग जगायी, जसी शायद ही कभी देखी गयी हो।[१]"

स्वय राजनारायण बाबू ने लिखा, "उस भाषण के दिन सभाभवन लोकारण्य लगता था। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने सभापति का स्थान ग्रहण किया। डॉ० राजेंद्र लाल मित्र प्रभृति अनेक लोग उपस्थित थे। विख्यात बगाली खृस्तान रेवरेंड लाल बिहारी दे ने कहा कि श्रीहट्ट और मेदिनीपुर से लाये हुए चूने की सफेदी ने हिंदू धम की कालिमा पोंछ दी। केशव बाबू ने उस भाषण के विरुद्ध कलकत्ते में दो और इलाहाबाद में एक भाषण दिये। पडित शिवनाथ शास्त्री न भी उसके विरोध म भाषण दिया। प्रत्येक दिन प्राय 'मिरर' (समाचार पत्र) खोलते ही मुझे दी गयी गालिया के दशन होते[२]।"

इस भाषण के ऐतिहासिक महत्त्व को प्राय सभी ने स्वीकार किया।[३]

गिरिजाशकर राय चौधरी का यह कथन पता नही कहाँ तक प्रामाणिक ह कि उक्त भाषण के समय श्री अरविन्द को मातगभ में आये एक मास हो चुका था।[४]

राजनारायण बाबू का यह परिवतन निश्चय ही बगाल के पुनजागरण में विशिष्ट महत्त्व रखता ह। क्योंकि वे ब्रह्मसमाजी थे। उन्होंने १८६५ ई० में अपनी कन्या स्वर्ण लता का विवाह भी ब्राह्म पद्धति से ही किया था। उन्हीं के शब्दों में, इस विवाह में केशवचन्द्र ने प्रधान आचाय का विजयकृष्ण गोस्वामी ने तथा मेदिनीपुर के परमोत्साही ब्राह्म और जिला स्कूल के हेडपण्डित भोलानाथ चक्रवर्ती महाशय ने आचाय कम तथा अयोध्यानाथ पाकडाशी ने पुरोहित कम किया।'[५]

डॉ कृष्णधन घोष के चित्त म भारतीयता के प्रति सामान्य आदर जगाने का श्री राजनारायण बाबू ने हमेशा प्रयत्न किया। १८६९ म जब डा० कृष्णधन घोष उच्चतर शिक्षा के लिए इगलण्ड की यात्रा पर केशव चन्द्र सेन के साथ रवाना हुए तभी राज नारायण बाबू ने उन्हें बहुत चेतावनी दी। उन्होंने स्वय लिखा ह 'मेरे ज्येष्ठ जामाता डा० कृष्णधन घोष जब चिकित्सा विद्या के विकास के लिए विलायत जाने लगे तो मैंने अग्रजी में चार चतुदशपदिया (सॉनेटस) लिखी। कुछ पक्तिया इस प्रकार ह[६]—

१ रामतनु लाहिडी ओ तत्कालीन बग समाज पृ० ३२२।
२ आत्मचरित पृ० ८७।
३ डा० रमेशचन्द्र मजुमदार ब्रिटिश पैरामाउन्टसी एण्ड इण्डियन रेनेसाँ भाग २ पृ० ४७२।
४ श्री अरविन्द आ बागलार स्वदेशी युग पृ० १५।
५ आत्मचरित पृ ८०।
६ आत्मचरित पृ० १६० और आग

Go Son beloved as pilgrim bold
Thou art not one who fears to cross sea 1

साहसी यात्री की तरह जाओ प्रिय पुत्र—
तू वह नहीं है जिसे सिन्धु बनाता है डरपोक[१]
मैं तुम्हारी स्वतन्त्रता की करता हूँ कद्र
पर अतिवाद की प्राय ही रोक-टोक।[२]
उन बन्दरों की तरह न जा
जो बदल लेते हैं वेश और तौर-तरीके।
जबान तक
जो बेशर्मी से कहने लगते हैं इंग्लण्ड को अपना घर
और मानने लगते हैं मातृभूमि और अपनी भाषा को बदतर।[3]
जाओ, बिना अपने को खोये पश्चिम से अर्जित करो विद्या शुभ्रतर।[४]

श्री राजनारायण बोस के इन उपदेशों का डा० कृष्णधन घोष पर कोई अच्छा असर नहीं हुआ। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय से चिकित्सा की डिग्री पा चुके थे और उन्होंने स्काटलैण्ड के एबरडीन विश्वविद्यालय से एम० डी० की डिग्री प्राप्त करने के लिए विदेश यात्रा की। वे १८७१ में डिग्री लेकर वापस लौटे। इस यात्रा के बाद उनका अंग्रेजी रहन सहन के प्रति पहले से ही अनुरक्त मन पूर्णत विलायती हो गया।

उनके श्वसुर श्री राजनारायण बोस की अपेक्षा शायद इन परिवर्तनों का सही साक्ष्य दूसरा कोई न दे सके। श्री राजनारायण बाबू ने बड़े दु ख के साथ लिखा है, "१८७१ ई० में मेरे ज्येष्ठ जामाता विलायत से लौट आये। मैंने अपने अंग्रेजी में लिखे सॉनेटों में आशा व्यक्त की थी, ताकि उन्हें याद रहे कि वे विलायत निवासकाल में अपने देशीय भावबोध को नष्ट होने से बचायें। किन्तु दु ख का विषय यह है कि वे पूर्णत अंग्रेज होकर आये हैं। विलायत जाने के पूर्व वे एक निष्ठावान उत्साही ब्राह्मण थे, विलायत से लौटने पर मैं उनमें ऐसा विपर्यय देख रहा हूँ। देखता हूँ कि नास्तिकवादिता उनके भीतर कितने परिमाण में प्रविष्ट हो गयी है। 'धर्मतत्त्वदीपिका' जब मैंने उन्हें अर्पित की थी, तब मैंने उसके पृष्ठ पर लिखा था कि वे डाक्टर होकर जिस रूप में लोगों के शारीरिक रोग दूर करेंगे, वैसे ही धर्मोपदेश द्वारा लोगों के आध्यात्मिक रोगों का भी निवारण करेंगे। अपनी आशा के विफल होने से मैं मर्माहत हूँ। उनमें अनेक साधारण गुण हैं। वे आर-

Thy freedom I esteem thought thsy excess I check off 2
But not like apes who change their manners and dress
And language
They England their home do shameless call
And recken motherland tounge as gall 3
Go losing not yourself Learn from the west 4

पार भद्र है। अमायिक और परोपकारी हैं। विलायत आवास में ये गुण नष्ट नहीं हुए। उनका मन अतिशय मधुर है। वही माधुर्य उनकी मुखश्री से प्रतिफलित होता है। जब मैं कानपुर में था तो वहाँ के अंग्रेजी पल्टन के पादरी रवरेण्ड मिल साहब ने कहा था, 'I have never seen such a sweet face as his' (मैंने आज तक कभी भी ऐसा मधुर चेहरा नहीं देखा जैसा इनका है)।"[१]

वे १८७१ में इंग्लैण्ड से लौटे तो तत्कालीन प्रथा के अनुसार पण्डितों ने प्रायश्चित के लिए जोर दिया। विदेश-यात्रा को हिन्दू कर्मकाण्ड में अभी हाल तक पाप कर्म कहा जाता रहा। जिन आर्यों ने समुद्र की अभ्यर्थना की जिनकी संततियों ने कालान्तर में दक्षिणपूर्व एशिया के विराट भू भाग पर नौ सेना के द्वारा आधिपत्य स्थापित किया, उन्हीं के वंशधरों के लिए किसी जमाने में समुद्रयात्रा करना वर्ज्य कर्म या पाप हो गया—

समुद्रयात्रास्वीकारः कमण्डलुविधारणम्।
द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥
वृ० नारदपुराण २४।१३

द्विजातियों के लिए समुद्र यात्रा, कमण्डलुधारण और असवर्ण कन्या के साथ विवाह वर्ज्य हो गया। निर्णय सिन्धु जैसे ग्रन्थों ने इस तरह के वर्ज्य कर्मों की पूरी सूची तो दी ही, प्रायश्चित के दुःसह कर्मकाण्डीय विधान भी बताये।

डॉ० कृष्णधन घोष इस समुद्रयात्रा के पाप से मुक्ति पाने को तैयार न हुए। उन्होंने स्पष्ट ढंग से शुद्धि विधान का अस्वीकार कर दिया। उनके इस इन्कार के पीछे आर्थिक कठिनाई वगैरह का कारण नहीं था। यह उनकी अपनी तर्कमूलक मान्यता का सीधा परिणाम था।

उन्होंने प्रायश्चित नहीं किया। उन्होंने ग्राम छोड़ देना मंजूर किया पर नैतिक साहस छोड़ना नहीं। उन्होंने अपनी जायदाद घाटा सहकर बेच दी। सब कुछ के बावजूद उनकी अपनी परम्परानुरक्त माँ के प्रति अपूर्व भक्ति थी। इसी कारण उन्होंने माँ की मृत्यु के बाद उनकी अंतिम इच्छा की पूर्ति के लिए काशी में और्ध्वदैहिक क्रिया में करीब हजार रुपये खर्च कर दिये[२]।

डॉ० कृष्णधन घोष सरकारी डाक्टर के रूप में भिन्न भिन्न स्थानों पर कार्य करते

१ आत्मचरित पृ० १९१-१९२।
२ सन्ध्यागो आर० आर० दिवाकर पृ० २३।
इस प्रसंग में श्री गिरिजाशंकर राय चौधरी ने 'श्री अरविन्द ओ बंगलार स्वदेशी युग' में लिखा है कि उन्होंने अपनी माता की इच्छानुसार काशी विश्वनाथ मन्दिर के कलश के लिए १००० रुपये खर्च करके एक स्वर्णपत्र बनवा कर दिया था। पृ० २।

रहे। आरम्भिक हिन्दी के विशिष्ट पत्रकार श्री झावरमल्ल ने अपनी पुस्तक 'श्री अरविन्द चरित' में लिखा है, "डॉ० घोष में यह विशेषता थी कि रंगरूप से साहब बन जाने पर भी उनका हृदय कविवर माइकेल मधुसूदन दत्त की भांति बंगाली था। उनके प्राण दुखिया के दुःख देखकर रो उठते थे। दीनों की सहायता करना उनका नित्य का साधारण काम था। उनकी इस परदुःखकातरता और परोपकार प्रधान उदारता के कारण उन्हें स्वयं ही नहीं उनके पुत्रों को भी विदेश में अर्थकष्ट सहन करना पड़ता था। उनकी उदारता और स्वार्थ-त्याग के गान आज भी पूर्व बंगाल के रंगपुर, खुलना और यशोहर (जैसोर) आदि जिलों में बड़ी कृतज्ञता के साथ गाये जाते हैं।"[1]

उनकी नौकरी का अधिकांश भाग खुलना में बीता। वर्मे रंगपुर में एक नहर का नाम उनके नाम पर आधारित है। खुलना में एक स्कूल का नामकरण भी उनकी स्मृति में हुआ। ये सारी बातें इस बात का प्रमाण उपस्थित करती हैं कि डा० घोष बहुत ही योग्य उदार डाक्टर थे और जनता में काफी लोकप्रिय थे।

श्री राजनारायण बोस ने अपने जामाता श्री कृष्णधन घोष को बहुतेरा समझाया, पर वे न माने और उन्होंने अपने तीनों बच्चों को दार्जिलिंग के लोरेटो कान्वेण्ट स्कूल में भरती करा दिया। यह स्कूल भारत में नौकरी करनेवाले अंग्रेज अफसरों के बच्चों की शिक्षा के लिए खोला गया था। उस समय श्री अरविन्द सिर्फ पांच साल के थे। पांच वर्ष की उम्र से अरविन्द का परिवार से अलग रहने का अभ्यास होता गया। बीच में छुट्टियों के समय वे अपने माता पिता के साथ रहने खुलना आया करते और वहीं से अपने नाना राजनारायण बोस के यहाँ देवघर भी आना-जाना होता रहता। उनके सभी जीवनी लेखकों का कहना है कि दार्जिलिंग के इस कान्वेण्ट स्कूल में बिताये दो वर्षों के बारे में बहुत कम सूचनाएँ मिलती हैं। उनका शुरू-शुरू में अपनी मातृभाषा बांग्ला से सम्पर्क तक न हो पाया। 'मेरे पिता जी के घर में केवल अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी बोली जाती थी। मैं बांग्ला नहीं जानता था।'[2]"

दार्जिलिंग आवास काल के श्री अरविन्द द्वारा बाद में बताये गये दो दिलचस्प संस्मरणों की अक्सर चर्चा होती है। श्री अरविन्द की व्यंग्यविनोद में अद्भुत रुचि थी और अत्यन्त बचपन में घटी ये विनोदात्मक घटनाएँ उन्हें आजन्म याद रहीं। लोरेटो कान्वेण्ट (दार्जिलिंग) से सम्बद्ध शयन-कक्ष में बच्चे साथ थे। एक लेट लतीफ ने रात में दरवाजा खटखटाना शुरू किया और सांकल खोलने को कहा। श्री अरविन्द के अग्रज मनोमोहन ने उत्तर दिया "नहीं खोल सकता भाई सो रहा हूं।"[3]

[1] श्री अरविन्द चरित, झाबरमल्ल पृ० ७। पुस्तक समवत १९२१ ई० में छपी।
[2] श्री अरविंद अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में पृ० ६।
[3] लाइफ ऑफ श्री अरविन्द पृ० ४।

दूसरी घटना छुटिटया में घटी जब बच्चे अपने नाना के यहाँ देवघर में थे। एक साथ वे उनके साथ घूमने गये। बूढ़े नाना काफी पिछड गये थे। इसलिए बच्चे उन्हें साथ ले आने के लिए मन्द करने पीछे लौटे। लौटकर देखा तो हरत से तानते रह गये, नाना जी खडे खडे सो गये थे[१]।

कहा जाता है कि शैशव निश्चिन्तता की अद्भुत अवस्था है। जिसमें खुशियाँ ही खुशियाँ होती है। किन्तु श्री अरविन्द ने अपन शशव की, जब वे लौरेटो कॉन्वेण्ट में पढते थे एक बडी ही दारुण स्थिति का भी वणन किया है। और कहना न होगा कि यह छोटी सी घटना श्री अरविन्द क भविष्यत विकास और मानवता के लिए किये गये उनके महत प्रयत्ना की बडी गूढाथ व्यजक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है। श्री अरविंद न स्वप्न स्थिति का वणन करते हुए कहा मैं सो रहा था कि मैंने देखा कि एक विराट अधेरा मेरी ओर झपट रहा है। वह मुझे और विश्व को पूरी तरह ढँक लेता है। उसके बाद मुझे निरन्तर यह बोध होता रहा कि यह तमस लगातार मेरे ऊपर इग्लण्ड के पूरे आवास काल तक लटकता रहा। मैं सोचता हूँ कि अधेरा कहीं न कहीं तमस से जुडा है, जो मुझ में आया। भारत आने पर ही मैं इसस मुक्त हो सका।[२]"

सन् १८७९ में डॉ० कृष्णधन घोष अपनी पत्नी स्वर्णलता और चार सन्ततियो के साथ पुन इग्लण्ड के लिए रवाना हुए। विनयभूषण मनोमोहन अरविन्द और सरोजिनी। सभी पर्याप्त छोटी उम्र के थे डा० घोष पूरे परिवार को इग्लैण्ड मे छोडकर अकेले खुलना म नौकरी करने के लिए लौट आये।

इस बीच उनकी पाचवी सन्तति का आगमन हो चुका था। वारीन्द्र का जन्म इसी यात्रा मे हुआ। दिनेन्द्रनाथ राय ने लिखा है 'उनके छोटे भाई बमकाण्ड के मुकदम के प्रधान अभियुक्त वारीन्द्र इग्लण्ड यात्रा के समय इग्लण्ड के समीपवर्ती समुद्रवक्ष में जहाज पर भूमिष्ठ हुए। इसलिए उनका नाम वारीन्द्र कुमार हुआ।[३] क्रायडान लन्दन के जन्म पजीकरण पत्र (Birth Register) में उनका नाम 'इमनुएल घोष लिखा है।[४]

कुछ समय इग्लड में रहने के बाद सरोजिनी और वारीन्द्र को लेकर श्रीमती स्वर्णलता घोष भारत लौट आयी और व अपने पति के कर्मस्थान खुलना पहुची। डा० घोष

१ लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो पृ० ४।
२ वही पृ० ४।
३ श्री अरविन्द प्रसग से उद्धृत।
४ लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो पृ० ५।
दिनेन्द्रनाथ राय के विवरण से भिन्न श्री वारीन्द्र ने लिखा है— मुझे गर्भ में लिये ही मा विलायत पहुँची। उसी स्थान पर क्रिस्टल पैलेस के सामने लन्दन के उपकण्ठ में नारऊड (Norwood) में मेरा जन्म हुआ।"—आत्मकथा पृ० १८।



बालक अरविन्द

ने दोनों बच्चों के साथ उनके रहने की व्यवस्था अपने से अलग, देवघर के समीपस्थ रोहिनी में की, क्योंकि उनकी दृष्टि से स्वर्णलता के साथ रह सकना मुश्किल हो गया था। श्रीमती घोष की मानसिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी और उनमें पागल होने के सभी लक्षण प्रकट होने लगे थे।

स्वर्णलता के मानसिक रोग की शुरूआत बहुत पहले हो गयी थी। एक दिन वे बहुत गुस्से में थीं। वे चीख चिल्ला रही थीं और मनमोहन को निर्दयता से पीट रही थीं। "श्री अरविन्द जो वहां उपस्थित थे भयभीत होकर, पानी पीने के बहाने कमरे से बाहर भाग गये[१]।'

विलायती शिक्षा ने डॉ० कृष्णधन घोष को भारतीय भेड़ियाधसान वृत्ति' से अलग रहने की अपूर्व क्षमता प्रदान की, किंतु इस बौद्धिक स्वावलम्बिता का एक कुप्रभाव भी पड़ा, जो उनके कई व्यवहारों में प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। शायद उन्होंने अपने बचपन के दिन बहुत संकट में गुजारे थे, इसी कारण उनके व्यक्तित्व में एक खास तौर की कठोरता भी आयी। जो भी हो, उन्होंने स्वर्णलता से अलग रहने की अपनी जो व्यवस्था की, वह उतनी खटकनेवाली चीज नहीं, जितनी अपने बच्चों का विदेश में किसी अन्य की देख रेख में छोड़ना। इसे भी हम उनकी कठोर वत्सलता मान ले सकते हैं। हो सकता है कि उनके मन में भावुकतापूर्ण पुत्रस्नेह की अपेक्षा दूरदर्शितापूर्ण उत्तरदायित्व का भाव रहा हो किंतु आगे चलकर हम देखेंगे कि उन्होंने अपने पुत्रों के लिए आर्थिक सहायता भेजना भी बन्द कर दिया। तीनों पुत्र बहुत लम्बे काल तक भाग्य के आसरे जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हुए।

डा० कृष्णधन घोष के तीनों बड़े बच्चे इंग्लैण्ड में पादरी विलियम एच० ड्रुएट के परिवार के साथ मनचेस्टर में रहते थे। रंगपुर के मैजिस्ट्रेट श्री जार्ज ग्लैजियर के ये सम्बन्धी थे। डा० घोष को ड्रुएट के विषय में जानकारी इन्हीं श्री ग्लैजियर से मिली थी और इन्हीं की सलाह पर उन्होंने विनयभूषण मनमोहन और अरविन्द को उनकी देख रेख में रखने का निश्चय किया।

ड्रुएट स्टाकपोर्ट रोड चर्च के पादरी थे जो आजकल आक्टागानल चर्च के नाम से जाना जाता है। विनयभूषण और मनमोहन मनचेस्टर के ग्रामर स्कूल में भरती किये गये क्योंकि उनकी स्कूल जाने की उम्र हो गयी थी, पर श्री अरविन्द छोटे होने के कारण ड्रुएट के घर पर ही रहते। पादरी ड्रुएट और उनकी पत्नी ने उन्हें घर पर ही पढ़ाना लिखाना शुरू किया। ड्रुएट लैटिन भाषा के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने श्री अरविन्द को अंग्रेजी और लैटिन पढ़ाना शुरू किया। श्रीमती ड्रुएट उन्हें इतिहास, भूगोल गणित और फ्रेंच पढ़ाती थीं। आरम्भिक भाषा ज्ञान के बाद श्रीअरविन्द ने

१ लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो पृ० ४।

वाली समय में बायबिल तथा शेक्सपियर, शेली, कीट्स आदि की कृतियों का अध्ययन शुरू किया। बचपन में ही पुस्तकों के प्रति उनका जो आकर्षण पैदा हुआ, वह निरंतर बढ़ता रहा, और पुस्तकें श्री अरविन्द के जीवन का अविभाज्य अंग बन गयी।

सात वर्ष की अवस्था में श्री अरविन्द को लन्दन के सन्ट पॉल स्कूल में प्रवेश मिला। डॉ० वाकर ने परीक्षा ली। लैटिन और दूसरे विषयों में उनकी योग्यता सन्तोषजनक मानी गयी, पर ग्रीक भाषा में उन्हें कमजोर पाया गया और डॉ० वाकर ने स्वयं व्यक्तिगत रुचि लेकर उन्हें ग्रीक पढ़ाना शुरू किया। डॉ० वाकर की यह स्वभावगत विशेषता थी कि वे प्रतिभाशाली छात्रों को तुरंत पहचान लेते और उन पर हमेशा अतिरिक्त ध्यान देते रहते। सन्ट पॉल स्कूल में श्री अरविन्द पाँच साल रहे। उन्होंने साहित्य में बटेवर्थ तथा इतिहास में बडरबाट पुरस्कार प्राप्त किया। स्कूल की *साहित्य-परिषद् की गतिविधियों में भी वे सक्रिय रहे और ५ नवम्बर १८८९ के दिन* स्विफ्ट के राजनीतिक विचारों की असंगति' विषय पर आयोजित वाद विवाद प्रतियोगिता में विशेष योग्यता प्रदर्शित की।

एक ओर उदीयमान प्रतिभा अपने पूर्ण विकास की प्रक्रिया में थी दूसरी ओर नाना प्रकार की कठिनाइयाँ प्रत्यवाय बनकर खड़ी होने लगी थी। डॉ० कृष्णधन घोष ने धीरे धीरे आर्थिक सहायता भेजना कम किया और बाद में एकदम बन्द कर दिया। लारेंस बियोन को लिखे मनमोहन घोष के पत्रों से यह स्थिति बहुत स्पष्ट हो जाती है।

पादरी डब्ल्यू० एच० ड्रूएट १८८२ के आसपास इंग्लण्ड छोड़कर आस्ट्रेलिया चले गये। उस समय उन्होंने घोष-बन्धुओं को किसी एक्रायड नामक सज्जन की देख रेख में छोड़ दिया। आरम्भिक दिनों में श्री अरविन्द के नाम के साथ जुड़े एक्रायड शब्द के पीछे भी एक रहस्य है। दिसम्बर १८७२ में एक्रायड उपाधिधारी एक महिला कलकत्ते आयी थी और वे श्री अरविन्द के नाम सस्कार के अवसर पर डॉ० घोष के परिवार में उपस्थित थी। *अंग्रेजियत के प्रेमी डॉ० घोष ने सम्भवत उन्हीं महिला के* पिता के नाम की यह वंश-उपाधि अपने पुत्र के नाम के साथ जोड़ दी थी और श्री अरविन्द घोष 'श्री अरविन्द एक्रायड घोष' नाम के भी अनायास अधिकारी बन गये।[1]

एक्रायड परिवार से इंग्लण्ड में घोष बन्धुओं का कोई बहुत निकट का सम्बन्ध नहीं रहा। पादरी ड्रूएट की अनुपस्थिति में उनकी माँ ने इनके लिए लन्दन में ठहरने आदि का स्थान तै किया था। शुरू-शुरू में वे वृद्ध महिला इनके साथ ही, ४९ स्टीफेंस

[1] लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो पृ० १ १२।

एवन्यू में रहती थी। लन्दन निवास के छह वर्षों में इन्हें तीन चार स्थान बदलना पड़ा। इसका मुख्य कारण आर्थिक तंगी ही थी। डॉ० घोष यह आकांक्षा रखते थे कि श्री मनमोहन अपने छोटे भाई और बहन के लिए लन्दन में ठहरने का इन्तजाम करने में सफल होंगे ताकि वे दोनों भी अच्छी शिक्षा पा सकें।"[1] जब कि लन्दन में उपस्थित तीनों घोष-बन्धु आर्थिक कठिनाइयों से बुरी तरह जूझ रहे थे। श्री अरविन्द की स्थिति थोड़ी बेहतर थी, क्योंकि जब उन्होंने किंग्स कॉलेज केम्ब्रिज में प्रवेश लिया सेण्टपॉल से स्कालरशिप पाते रहे और आई० सी० एस० की तैयारी के दिनों में भी अस्सी पौंड का वजीफा मिलता रहा पर यह रकम तीनों भाइयों के खर्च के लिए अपर्याप्त थी। इन कठिनाइयों के बावजूद श्री अरविन्द अध्ययन में लगे रहे। साहित्य उनका मनपसन्द विषय था। वे अंग्रेजी साहित्य कविता कहानी फ्रांसीसी साहित्य तथा यूरोप के मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास सम्बन्धी दुनिया का अध्ययन करते रहे। उन्होंने इसी समय इतालवी भाषा भी सीखी थोड़ी जर्मन और कुछ-कुछ स्पेनी भी।

सेंटपॉल स्कूल के अन्तिम दो वर्षों के अध्ययन-काल में ही श्री अरविन्द आई० सी० एस० के उम्मीदवार के रूप में स्वीकृत हो गये थे। उनके पास पैसा नहीं था कि वे दूसरे उम्मीदवारों की तरह व्यक्तिगत शिक्षक रखकर पढ़ सकें। उन्होंने सारी तैयारी अपने बलबूते की। किंग्स कॉलेज में ट्राइपास (त्रिवर्षीय बी० ए० क्लासिक्स) की डिग्री के लिए साथ ही आई० सी० एस० परीक्षा के लिए एक साथ तैयारी करना मामूली श्रम की बात नहीं थी। ट्राइपोस के प्रथम खण्ड की परीक्षा में उन्होंने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। अपने पिता के नाम लिखे एक पत्र में श्री अरविन्द ने कैम्ब्रिज के सुप्रसिद्ध अध्यक्ष (Don) आस्कर ब्राउनिंग की चर्चा की। आस्कर ने इस परीक्षा में सफल होने पर श्री अरविन्द से कहा था—तुमने एक असाधारण उच्च परीक्षा उत्तीर्ण की है। मैं लगातार तेरह परीक्षाओं की उत्तर पुस्तिकाएँ जाँच चुका हूँ पर इस अवधि में मैंने आजतक ऐसे उत्कृष्ट उत्तर नहीं पढ़े जैसे तुम्हारे थे।[2] साधारणतया इस प्रथम खण्ड में पास होने पर ही बी० ए० की उपाधि दी जाती है। परन्तु उनके पास केवल दो वर्ष का समय था। इसलिए उन्हें यह परीक्षा कैम्ब्रिज में द्वितीय वर्ष में ही पास करनी पड़ी। प्रथम खण्ड की उपाधि तभी प्राप्त होती है जब परीक्षा तृतीय वर्ष में दी जाय, किन्तु यदि कोई प्रथम खण्ड द्वितीय वर्ष में पास कर ले तो उपाधि के लिए चतुर्थ वर्ष में द्वितीय खण्ड की परीक्षा देनी होती है। यदि वे प्रथम खण्ड की उपाधि प्राप्त करना चाहते तो प्रार्थनापत्र दे सकते थे और वह उन्हें मिल जाती, पर उन्होंने

१ श्री मनमोहन घोष का लॉरेन्स बिन्यान को लिखा १८८७ का पत्र।

२ द ओरिएण्ट, कलकत्ता २७-२-४९ का अंक।

उसकी परवाह नहीं की। उन्हीं के शब्दों में—"अंग्रेजी की उपाधि की महत्ता उसी के लिए होती है जो अध्यापक का जीवन अपनाना चाहता हो।"[१] आई० सी० एस० की परीक्षा में उनको ग्यारहवां स्थान मिला, जो किसी भी भारतीय के लिए अभूतपूर्व सफलता कही जायेगी।

सेंटपाल स्कूल में श्री अरविन्द की शैक्षिक योग्यताओं का विवरण इस प्रकार लिखा है—

घोष, अरविन्द एक्रायड (१५ अगस्त १८७२) ४९, सेंट स्टीफेंस एवन्यू स्टपडबुश।

आई० सी० एस० कक्षा जुलाई १८९० में त्यक्त। बेटरवर्थ (द्वितीय पुरस्कार) १८८९, किंग्स कालेज कैम्ब्रिज के स्कालर १८९० प्रथम श्रेणी (तृतीय वर्ग) क्लासिकल ट्राइपोस पार्ट १ (१८९२) रावले पुरस्कार (ग्रीक) १८९२, इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा (११ वाँ स्थान) १८९० नियुक्ति जुलाई १८९२।

पादरी ड्रुएट को डॉ० कृष्णधन घोष ने दो हिदायतें दीं—पहली यह कि इन लड़कों को किसी भारतीय से परिचय न करने दिया जाये और न उन पर किसी तरह का भारतीय प्रभाव पड़ने दिया जाय।' श्री अरविन्द ने स्वीकार किया है कि इन निर्देशों का अक्षरशः पालन किया गया और वे भारतवर्ष इसकी जनता और इसके धर्म एवं संस्कृति से पूर्णतया अनभिज्ञ रहते हुए ही बड़े हुए। दूसरी हिदायत इन लड़कों के धार्मिक निर्णय के सम्बन्ध में थी। डा० घोष ने पादरी ड्रुएट को को स्पष्ट कर दिया था कि—'जब तक बच्चे उस वय को प्राप्त न कर लें कि अपनी धार्मिक निष्ठा के बारे में सही निर्णय ले सकें इस विषय में कुछ न किया जाये।'[२]

तो भी एक गलत अफवाह यह फैलायी गयी कि श्री अरविन्द ने क्रिस्तानी धर्म में दीक्षा ली थी। उन्होंने इस मिथ्या धारणा को निरस्त करते हुए पूरी घटना का स्वयं वर्णन किया है जब हम इंग्लैण्ड में थे एक बार कम्बरलैण्ड में अनुवर्ती (Non Conformists) मत के पादरियों की एक छोटी सभा हुई। पादरी ड्रुएट की बूढ़ी माँ मुझे वहाँ ले गयीं। प्रार्थना खत्म होने पर सभी चले गये, कुछेक भक्तों को छोड़कर, जो थोड़ी देर और रुके रहे। ऐसे ही समय में धर्म-दीक्षाएँ हुआ करती थीं। मैं पूरी तरह बोरियत का अनुभव कर रहा था। तभी एक पादरी मेरे पास आया और उसने कुछ पूछा। मैं कुछ न बोला। तभी सब मिलकर चिल्ला उठे— इसका कल्याण हो गया। और सभी मेरे लिए ईश्वर से प्रार्थना करने और कृतज्ञता प्रकट करने लगे। मुझे कुछ नहीं

१ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में पृ० २।
२ श्री अरविन्द पृ० ८।

मालूम था। पादरी मेरे पास आया और उसने ईश्वर की प्रार्थना करने को कहा। मुझे प्रार्थना की आदत न थी। मगर किसी किसी तरह मैंने उसी प्रकार प्रार्थना कर दी जैसी बच्चे खाने के पहले दिखावे के लिए किया करते हैं। बस इतना भर हुआ था। मैं चर्च नहीं जाता था। मैं उस वक्त सिर्फ दस साल का था।'[1]

न सिर्फ भारत में बल्कि सारे विश्व में धर्म के नकली गौरव के लिए जाने कितना झूठ बका जाता है। श्री अरविन्द रामकृष्ण मिशन में भी दीक्षित हुए थे—उन्हें और न जाने कितने गुरुओं का शिष्य बताने की बाद में कोशिशें हुई। विभिन्न मतवादी इतना भी ख्याल नहीं करते कि धर्म के प्रति आस्था कोई भौतिक लेबल नहीं है कि वह किसी के भी ऊपर चिपका दिया जाये। यह तो अपनी आन्तरिकता का सहज समर्पण है जिसे उसके द्वारा स्पष्ट स्वेच्छया स्वीकृत किये जाने पर ही प्रामाणिक कहा जा सकता है। *ऐसी चीजों में प्रधानता व्यक्ति की स्वीकृति को मिलनी चाहिए अवांछित आरोपण को नहीं।*

श्री अरविन्द के मन में उक्त वृद्ध महिला के प्रति कोई दुर्भाव न था, पर अचानक एक छोटी-सी घटना के कारण जब उनके साथ रहने से सहसा मुक्ति मिल गयी तो निश्चय ही श्री अरविन्द बहुत प्रसन्न हुए—"पादरी ड्रूएट की वृद्धा मा के साथ पारिवारिक प्रार्थना में या बाइबिल पाठ में तीनों भाइयों को भाग लेना पड़ता। एक दिन प्रार्थना के समय मनमोहन खीझे हुए थे और उन्होंने कहा—'जनता ने मूसा के आदेश को ठुकराकर उचित काम किया।' वृद्धा यह सुनकर इतनी चिढ़ी कि उन्होंने कहा—'मैं ऐसे विधर्मियों के साथ एक ही छत के अन्दर नहीं रह सकती क्योंकि यह कभी भी टूटकर गिर सकती है। ऐसा कहकर वृद्धा अन्यत्र रहने चली गयी। हमें मुक्ति मिली और मैं मन ही मन दादा के प्रति कृतज्ञता से भर गया। उनके बेटे (पादरी ड्रूएट) कभी भी ऐसे मामलों में नहीं पड़ते थे, क्योंकि वे बहुत दृढ़ व्यावहारिक बुद्धि के व्यक्ति थे। तब वे आस्ट्रेलिया में थे। उन दिनों मैं बड़ा कायर था। उस समय कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मेरे जैसा आदमी कभी फाँसी के तख्ते के सामने भी अडिग रह सकता था अथवा क्रान्तिकारी आन्दोलनों का संचालन कर सकता था।"[2]

इंगलैण्ड प्रवास का उनका जीवन अटूट कष्टों की लम्बी कहानी है। वे खुद इतने संकोची थे कि उन घटनाओं को जो उनसे संबद्ध थीं, सुनाना नापसन्द करते थे, पर ऐसे अनेक दस्तावेज उपलब्ध हैं जो उनकी तत्कालीन परिस्थितियों का बहुत स्पष्ट ढंग से उद्घाटित कर देते हैं। लॉरेंस बिन्योन को लिखे मनमोहन घोष के पत्रों से घोष बन्धुओं की स्थिति का बहुत-कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। वृद्धा ड्रूएट के

१ निरोद और श्री अरविन्दो पृ० ८।
२ निरोद और श्री अरविन्दो पृ० १५।

व साथ की इस घटना के बाद ४९ स्टीफेन एवयू ये मकान का छोडकर तीनों भाइयों का दूसरे आवासा की व्यवस्था करनी पडी। यह इनके इग्लैण्ड प्रवास का सब स कष्ट कर समय था। इन्ही स्थितियो मे बीच श्री अरविन्द अपनी बी० ए० की परीक्षा तथा आई० सी० यस० को प्रतियोगी परोक्षा की तैयारियाँ करत रह।

श्री पुराणी ने लिखा ह कि कम्ब्रिज में श्री अरविन्द क तीन क्रियाकलाप थे—ट्राइपास और आई० सी० यस० परीक्षाओ की तयारी इण्डियन मजलिस नामक सस्था के कार्यों म सक्रिय भाग लेना और कविताएँ लिखना। पुराणी क विवरणा से पता चलता ह कि उस समय आर्थिक तगी के कारण इन्हें बार-बार आवास बदलने पड। विनयभूषण जम्स कॉटन क व्यक्तिगत सहायक क रूप में काम करक एक सप्ताह में पाच शिलिंग उपार्जित करत। जम्स काटन केनसिंग्टन लिबरल क्लब के सेक्रेटरी थे। वही एक कमरे में विनयभूषण के साथ श्री अरविन्द रहते। न तो कमरे को गम करन की व्यवस्था थी, न शरीर को शीत स बचान क लिए गरम कपड। बगल में ही रलव लाइन था जिस पर निरन्तर धडधडाती गाडियाँ गुजरती रहती—इन्ही के बीच रहकर श्री अरविन्द को परीक्षाओ क लिए तयारी करनी थी। उन्होने स्वय भी कहा ह—पूरे वष प्रात काल सण्डिविच के एक दो टुकडे और मक्खन तथा एक प्याला चाय और शाम को एक आने का कबाब—यही हमारा भोजन था। एक बार तो किंग्स कालेज के एक वरिष्ठ अध्यापक ने डा० घाष को एक बहुत ही कडा पत्र लिखा कि यदि व शीघ्र पसे नही भेजते तो श्री अरविन्द को दूकानदार उधारी चुक्ता न करने के जुम में कचहरी ले जायेंगे। डॉ० घोष ने पसे तो भेज दिये पर श्री अरविन्द को फिजूल खर्ची के लिए करारी डाट भी सुननी पडी। बाद म, बात चलते पर पाण्डिचेरी में श्री अरविन्द ने हँसते हुए कहा—'उस वक्त फिजूलखच बनने के लिए साधन ही कहाँ था?'[1] वस्तुत डॉ० घोष आरम्भ में पादरी ड्रूएट को ३६० पौण्ड वार्षिक भेजा करते थे। यह सिलसिला कुछ वर्षों तक चला। बाद मे रकम म कटौती होती गयी और अन्तत खर्चा आना एकदम बन्द हो गया।

इन्ही दिनो श्री अरविन्द के पास उनके पिता 'बगाली नामक अग्रेजी अखबार भेजने लगे। डा० कृष्णधन घोष का अब अग्रेजी शासन की क्रूरताओ से घृणा होने लगी थी। श्री अरविन्द ने एक बार मजाक में कहा था— मेरे पिता खुलना म अत्यन्त लोकप्रिय थे। वे जहाँ भी जाते बडा प्रभाव रहता। जब वे रगपुर म थे उनकी अग्रेज कलक्टर से मित्रता थी। हम लोग उनके भतीजे ड्रूएट के साथ इगलण्ड में ठहर। पर जब नया कलक्टर आया तो उसे पता चला कि यहाँ तो डाक्टर के सामने किसी की कुछ चलती ही नहीं। बस उसने सरकार से शिकायत का और डॉक्टर का खुलना के

१ पुराणी। इवनिंग टॉक्स तीसरा भाग पृ० ११।

लिए तबादला करा दिया गया। मेरे पिता को इस व्यवहार से बडा दुख हुआ। तभी से वे राष्ट्रीय हो गये। यानी तब से उन्हें अंग्रेजी शासन नापसन्द हो गया, उसके पहले हर विलायती चीज ही अच्छी लगती। वे चाहते थे कि उनके सभी लडके महान् बनें और उस वक्त महान् होने का मतलब ही आई० सी० यस० अफसर होना था।"[1]

डॉक्टर घोष 'बंगाली' के अंकों में ऐसे हर स्थान पर, जहाँ अंग्रेजों की कठोरता और दुर्व्यवहार का समाचार होता, निशान लगा देते। अपनी चिट्ठियों में भी वे ब्रिटिश सरकार को हृदयहीन सरकार कहकर निन्दा करने लगे थे। इन समाचारों ने श्री अरविन्द को भविष्य के लिए अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाने में बडी सहायता पहुंचायी। "ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उन्हें इस बात का तीव्र अनुभव हो गया था कि जगत में एक सार्वभौम उथल पुथल और महान क्रान्तिकारी परिवर्तनों का समय आ रहा है और स्वयं उनका भी उसमें भाग लेना दैव निर्दिष्ट है। कम्ब्रिज जाने के पहले ही वे ऐसा निश्चय कर चुके थे और वहां भारतीय मजलिस के एक सदस्य तथा कुछ काल तक मंत्री के रूप में उन्होंने अनेक क्रान्तिकारी भाषण भी दिये। बाद में उन्हें पता चला कि भारत की सिविल सर्विस से उन्हें अलग रखने में अधिकारियों के निर्णय में इन भाषणों का भी हाथ था।[2]

उसी समय लंदन में रहने वाले कुछ भारतीय विद्यार्थियों ने एक गुप्त संस्था की स्थापना के उद्देश्य से एक बैठक बुलायी। उन्होंने उक्त संस्था के लिए एक रूमानी नाम तलाश किया—'कमल और कटार'। श्री अरविन्द भी अपने भाइयों के साथ इसके सदस्य बने। किन्तु यह संस्था कुछ खास कार्य न कर सकी।

श्री अरविन्द आई० सी० यस० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए किन्तु घुडसवारी में असफल होने के कारण सिविल सर्विस में नहीं लिये गये। उनके जीवनीकार श्री पुराणी ने अकाट्य प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि श्री अरविन्द जान-बूझकर घुडसवारी इम्तहानों के मौकों पर अनुपस्थित होते रहे और इस तरह उन्होंने सर्विस में जाने से इनकार की जगह जो उनके पिता को नापसन्द होता अपने को उसके अयोग्य बना लिया।

अनेक शुभेच्छुओं के आग्रह और अधिकारियों से लिखा-पढी के बाद उन्हें घुडसवारी के इम्तहान का दुबारा मौका दिया गया पर उन्होंने उस वक्त को लन्दन की गलियों में घूमकर गुजार दिया और इम्तहान के स्थान पर तब पहुँचे जब घोडा और परीक्षक दोनों थाकर लौट गये थे।

इस सिलसिले में श्री जम्स एस० कॉटन और कैम्ब्रिज के प्राध्यापक जी० एस०

१ लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो, प्रथम भाग पृ० १९।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में पृ० ४।

प्रोथेरो ने श्री अरविन्द के लिए काफी कोशिशें की। श्री प्रोथेरो ने कॉटन के नाम २० नवम्बर १८९२ को लिखा—"मुझे सुनकर बड़ा दुःख हुआ है कि घोष को घुड़सवारी में असफल होने के कारण इण्डियन सिविल सर्विस की अन्तिम परीक्षा में अस्वीकृत कर दिया गया है। यहाँ के दो वर्षों की अवधि में लगातार उनका आचरण अत्यन्त उदाहरणीय रहा है। क्लासिक में खुली प्रतियोगिता में (आई० सी० एस० की प्रथम परीक्षा उत्तीर्ण करने के पहले) उन्होंने फाउण्डेशन स्कालरशिप' प्राप्त की। उनकी आर्थिक स्थिति ने आई० सी० एस० परीक्षा के लिए उम्मीदवार चुने जाने के बाद भी इस वजीफे को न छोड़ने के लिए मजबूर किया और वजीफे के नियमों के कारण उन्हें क्लासिक की पढ़ाई में अधिक समय देना पड़ा जिससे कुछ हद तक आई० सी० एस० परीक्षा की तैयारी में भी बाधा पड़ी होगी। इस निर्णय के अनुसार इस व्यक्ति ने जहाँ तक कालेज का सम्बन्ध है, अपने कार्य को अत्यन्त सम्माननीय ढंग से पूरा किया और द्वितीय वर्ष में क्लासिकल ट्राइपोस परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्त किया।

उन्होंने अपनी अंग्रेजी दक्षता और साहित्यिक योग्यता का परिचय देते हुए अनेक विद्यालयीय पुरस्कार भी जीते। इस आदमी ने ऐसा कर दिखाया है जो अधिकांश स्नातकों के लिए काफी से भी अधिक है और साथ ही आई० सी० एस० की तैयारी भी करते जाना निश्चय ही असाधारण श्रम और क्षमता का प्रमाण है। क्लासिक में पाये जानेवाले वजीफों के अतिरिक्त इन्होंने अंग्रेजी साहित्य का ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है जो सामान्य नवयुवक अंग्रेज स्नातकों की पहुँच के बाहर है तथा ये जैसी शैलीबद्ध अंग्रेजी लिखते हैं वह अधिकांश अंग्रेज नवयुवकों से कहीं अच्छी है और ऐसी योग्यता के आदमी को भारतीय शासन सिर्फ इसलिए कि वह घोड़े की पीठ पर बैठने में सफल नहीं हुआ या निश्चित वक्त पर वहाँ पहुँचा नहीं, यदि खो दे तो इसे क्षमा करेंगे, मैं अधिकारियों की ऐसी अदूरदर्शिता ही मानूँगा जिसका कोई जवाब नहीं है।

इस आदमी में सिर्फ योग्यता ही नहीं चरित्र है। इन्हें पिछले दो वर्षों से बड़ी सख्त चिन्तायुक्त जिन्दगी बसर करनी पड़ी है। घर से आनेवाली सहायता प्रायः पूर्णतः बन्द हो गयी, और इन्हें अपने साथ अपने दो भाइयों की भी देखभाल करनी पड़ी तो भी कभी इनका साहस और सहनशीलता डिगी नहीं। मैंने कई बार इनके पिता को लिखा पर अक्सर असफलता हाथ लगी। अभी हाल में इनके पिता से किसी कदर इतनी रकम निकाल पाया कि दुकानदारों का बकाया चुकाया जा सके। वरना ये दुकानदार उनके पुत्र (श्री अरविन्द) को जिला कचहरी में खींच ले गये होते। मुझे विश्वास है कि ये आर्थिक परेशानियाँ घोष की किन्हीं फिजूलखर्चियों का परिणाम नहीं हैं क्योंकि इनकी जिन्दगी का तरीका बिल्कुल साधारण और अतिवादी रूप से कम खर्चीला है, और उसमें फिजूलखर्ची का तो कोई मेल ही नहीं है। ये स्थितियाँ उनके

वन के बाहर के कारणों का परिणाम है। किन्तु इन जैसी परिस्थितियों ने निश्चय ही इन्हें कई प्रकार से विवश किया होगा और इन्हें घुड़सवारी सीखने के लिए आवश्यक व्यय से भी रोका होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि घुड़सवारी के इम्तहान के लिए निश्चित मौके पर वूलविच न पहुँच सकने के पीछे पैसे का अभाव मूल कारण रहा होगा।

आखिर में मैं आशा करता हूँ कि श्री घोष को चुने हुए उम्मीदवार के रूप में स्वीकृत किये जाने की आपकी कोशिश सफल होगी। क्योंकि यदि उन्हें अन्ततः अटका दिया गया, तो यह भले ही कानूनी तौर से जायज माना जाये, यह उनके प्रति नैतिक *अन्याय और भारत सरकार का वास्तविक नुकसान सिद्ध होगा। शायद यह कहना भी* उचित हो कि ऐसे योग्य हिन्दू को, इस बिना पर छाँट देना कि वह घोड़े पर नहीं चढ़ सकता, भारत में भयानक गलतफहमी पैदा करेगा।"

प्रोथेरो ने घुड़सवारी के इम्तहान के मौके पर वूलविच न पहुँच सकने का कारण धन का अभाव बताया। धन का अभाव निस्सन्देह था, पर उस मौके पर श्री अरविन्द जानकर नहीं पहुँचे क्योंकि उन्हें 'उस प्रशासकीय नौकरी' से कोई दिलचस्पी नहीं थी। दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार मजलिस के कार्यों से यह भलीभाँति जान गई थी कि श्री अरविन्द उनके लिए विकट पहेली बन सकते हैं। और उनकी इस मान्यता को निराधार नहीं कहा जा सकता। उन्होंने पाण्डिचेरी में एक बार विनोद के साथ कहा था—'मैं अब सोचता हूँ कि यदि कहीं मैंने भारतीय सिविल सर्विस में नौकरी कर ली होती तो क्या होता? शायद वे मुझे आलसी बताकर काम पूरा न कर सकने के कारण निकाल बाहर करते[१]।"

प्रवास का यह पहला दौर बीतने को आया। श्री अरविन्द ने १८९३ में भारत लौटने का निश्चय किया।

आई० सी० एस० परीक्षा में चुने न जाने का समाचार डॉ० घोष को नहीं मालूम था। वे जानते थे कि उनका पुत्र आई० सी० एस० हो चुका है। इसलिए डॉ० घोष अपने पुत्र के स्वदेश-आगमन की उत्सुक प्रतीक्षा कर रहे थे। श्री ब्रजेन्द्रनाथ डे के संस्मरणों से पता चलता है कि डॉ० कृष्णधन घोष ने एक महीने की छुट्टी ले रखी थी ताकि वे बम्बई जाकर अपने पुत्र का स्वागत कर सकें, पर दैव-दुर्विपाक से यह सम्भव न हुआ। डॉ० घोष को उनके बैंकर्स "ग्रिंडले ऐण्ड कम्पनी' ने गलत सूचना दी कि अरविन्द अमुक दिन अमुक जलयान से लौट रहे हैं। उन्होंने जिस जहाज की सूचना दी थी, वह पुर्तगाल के पास समुद्र में डूब गया। डॉ० घोष ने खबर पढ़ी और उन्होंने विश्वास कर लिया कि अरविन्द उसी जहाज में थे अतः डूब गये होंगे। बम्बई से उनके एजेंट ने तार दिया कि उनके लड़के का नाम उस सूची में नहीं है जो उस जहाज से

१ इवनिंग टॉक्स तृतीय भाग १६ जनवरी १९३९ की वार्ता।

आनेवाले हैं। इससे उनकी आत्मा और भी पक्की हो गयी। श्री अरविन्द बाद में 'कारथेज' नामक एक छोटे समुद्री जहाज से आये। यह १८९३ की फरवरी में किसी दिन बम्बई पहुँच गया।

ब्रजेन्द्रनाथ दे ने डॉक्टर की मृत्यु का विवरण देते हुए लिखा है कि "उस रात पुलिस सुपरिण्टेण्डण्ट के साथ डॉक्टर मेरे यहाँ खाने पर आने वाले थे। सुपरिण्टेण्डण्ट तो आ गये पर डॉक्टर का पता नहीं था। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद मैंने एक अर्दली को भेजा कि वह डॉक्टर को याद दिला दे। अर्दली ने आकर बताया कि डॉ० बहुत बीमार हो गये हैं। हम तुरन्त वहाँ पहुँचे। तार की बात वहीं मालूम हुई और हमने डॉक्टर को सख्त बीमार और बेहोश पाया। दूसरे डॉक्टरों ने पूरी कोशिश की। मैंने भी, जो कर सकता था किया, पर बेचारे डॉक्टर एक या दो दिन तक मुश्किल से खिंच सके और फिर चल बसे।[1] मरते वक्त डॉक्टर के होठों पर श्री अरविन्द का नाम था।

श्री अरविन्द भारत लौटे। पिता थे नहीं। बड़ौदा में तुरन्त नौकरी पर जाना था। वहाँ से वे कलकत्ते गये अपने परिवार के लोगों से मिलने। उनकी बहन सरोजिनी ने उस वक्त श्री अरविन्द की आकृति का वर्णन करते हुए लिखा— सेज दा (अरविन्द) का चेहरा अत्यन्त कोमल था लम्बे अंग्रेजी काट के बाल थे। वे बड़े लज्जालु व्यक्ति थे। माँ ने उन्हें पहचाना नहीं। वे कहती रहीं—'मेरा आरो इतना बड़ा नहीं था। वह छोटा था।' उन्हें समझाया गया कि वे इंग्लैण्ड से बहुत वर्षों के बाद शिक्षा पूरी करके आ रहे हैं।[2] पिता रहे नहीं माँ ने पहचाना नहीं। जिन्दगी का वह ऐसा मोड़ था जहाँ श्री अरविन्द प्रवास से लौटकर भी प्रवासी ही रह गये। पश्चिम छोड़कर चले तो उनके मन में इंग्लैण्ड के प्रति कोई मोह नहीं रहा।[3] भीतर और बाहर दोनों से प्रवास दोनों से मुक्ति।

●

●

१ रेमिनिसेन्सेज ऑफ एन इण्डियन मेम्बर ऑफ आइ०सी०एस द कलकत्ता रिव्यू १९५४।

२ लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो पृ ५६।

३ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता के विषय में पृ० ७।

अंग्रेजी भाषा और योरोपीय विचार एवं साहित्य से प्रेम था पर देश के रूप में इंग्लैण्ड में वहाँ के लोगों ने कुछ समय के लिए लिया था उन्होंने कोई नाता नहीं जोड़ा था और न इंग्लैण्ड को अपना वृत देश (Adopted Country) ही बनाया था। इसके विपरीत यदि निवास देश के रूप में योरोप के किसी प्रदेश से आसक्ति थी तो वह बौद्धिक और सौन्दर्य रूप से उस प्रदेश से थी जिसे उन्होंने न तो देखा था और न जिसमें वे रहे ही थे अर्थात् इंग्लैण्ड नहीं बल्कि फ्रांस।

परिवेश की पहचान

अह राष्ट्री सगमनी वसूना चिकीतुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
ता मा देवा व्यदधु पुरुत्राभूरिस्थाना भूर्यावेशयन्तीम् ॥

ऋग्वेद १०।१०।१२५

मै राष्ट्र की अधिश्वरी समृद्धियों का सगम परमब्रह्म से अभिन्न तथा सभी देवताओं में प्रधान हूँ। पूरे परिवेश में मैं ही स्थित हूँ। नाना स्थानों में रहनेवाले देवता जो भी करते हैं, वह मुझे जानकर ही करते हैं

चौदह वष पयन्त मातभूमि से दूर, भारतवासियो से दूर रहकर जब श्री अरविन्द स्वदेश लौटे, तो बम्बई के अपोलो बन्दरगाह पर जहाज से उतरते ही एक विचित्र प्रकार की आत्मीयतापरक अनुभूति ने उन्हें पूरी तरह अपने आगाश में ले लिया। मातभूमि के प्रति, उससे दूर रहने के कारण, स्वाभाविक आकषण और उत्कठा की भावना के कारण ही ऐसा नही हुआ। एक विचित्र प्रकार की विशाल शान्ति' भौतिक स कुछ अधिक अथ रखती ह। वे स्वय कहते ह कि इस शान्ति ने उन्हें सब ओर से व्याप्त कर लिया और "कई महीनों तक बनी रही। इसे वे अप्रत्याशित ढग स प्राप्त प्रथम अनुभव कहते हैं। उस समय उन्होंने न तो योग शुरू किया था और न तो योग क विषय में यही जानते थे कि यह क्या होता है।"[1] वे विदेश में शिक्षित पूणत आधुनिक बुद्धिवादी व्यक्ति से कतई भिन्न न थे।

आज का बौद्धिक पाठक ऐसी अनुभूतियों को रहस्यवादी भावावश कह कर टाल सकता ह पर हम यह कभी नही भूलना चाहिए कि मनुष्य की मेधा से विश्लेषित न हो सकने वाली ऐसी अनेक घटनाएँ अक्सर होती रहती हैं और कभी-कभी वे सामान्य व्यक्तियो को मनुष्य जाति का पूरा इतिहास बदलने की क्षमता वाले महापुरुषो में परिवर्तित कर देती ह।

आई० सी० एस० की परीक्षा में घुडसवारी में असफल कहकर, एक मामूली बहाने स अग्रजी सरकार ने अरविन्द को अस्वीकृत कर दिया। उन्ही दिनों बडौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड विलायत-यात्रा पर थे। वे निर्विवाद रूप से उन दिनो के भारतीय नरेशों में अपेक्षाकृत अधिक जागरूक और प्रबुद्ध थे। विभिन्न क्षेत्रो स निश्चित कार्यों क लिए योग्य व्यक्तियो को चुन-चुन कर ले आना उनकी इसी प्रबुद्धता का

[1] श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में पृ० ४ ।

द्योतक है। इसी कारण निकट अतीत में बड़ौदा भारतीय रजवाड़ों में सर्वाधिक सुव्यवस्थित सरकारी तंत्र वाला राज्य माना जाता रहा।

"बड़ौदा के बारे में मैं जब भी सोचता हूँ मेरे दिमाग में गायकवाड़ से सम्बन्ध ताजे हो जाते हैं। यह कैसा विचित्र है कि परिस्थितियों के बीच घटनाएँ अपने आप एक रूप ले लेती है। मैं आई० सी० एस० में फेल होने के कारण जब किसी नौकरी की खोज में था गायकवाड उन्हीं दिनों लन्दन आये हुए थे। मुझे मालूम नहीं कि वे हमारे यहाँ आये या हम उनसे मिलने गये पर एक वृद्ध सज्जन जिनसे हमलोगों ने राय बात की २०० रु० मासिक का प्रस्ताव रखने को पूर्णतः तैयार थे क्योंकि वे मानते थे कि १० पौंड प्रति माह खासी अच्छी रकम है। गायकवाड़ ने इसे मान लिया और सबसे कहते रहे कि मैंने २०० रु० माहवार पर एक आई० सी० एस० (सिविलियन) रखा है। अचंभा है कि २०० रु० प्रति मास की रकम पर अधिकारी भी खूब संतुष्ट थे। मैंने बात चीत करने का सारा दायित्व अपने बड़े भाई पर छोड़ दिया था क्योंकि जिन्दगी के बारे में मेरा कोई खास ज्ञान नहीं था।"[१]

श्री अरविन्द ने ८ फरवरी १८९३ के दिन बड़ौदा की नौकरी आरम्भ की। शुरू-शुरू में उस कार्य का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कराने के उद्देश्य से उन्हें भूमि व्यवस्था विभाग में रखा गया। उसके बाद स्टाम्प्स आफिस में फिर केन्द्रीय राजस्व कार्यालय मे तथा मंत्रालय (सेक्रेटेरिएट) में कार्य करना पड़ा। वे बड़ौदा महाराज के व्यक्तिगत मंत्री के पद पर कभी नियुक्त नहीं हुए जैसा कि श्री गिरिजाशंकर राय चौधरी ने लिखा है।[२] वे सचिवालय मे अवश्य इसीलिए रखे गये थे कि चिट्ठी पत्री आदि का मसविदा तैयार करा सकें। श्री अरविन्द स्वयं लिखते हैं—'इस बीच कभी जब महाराज *आवश्यक समझते थे चिट्ठियाँ लिखने भाषण तैयार करने या अनेक प्रकार के सर*कारी कागजों का जिनके शब्द विन्यास में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती मसविदा बनाने के लिए बुला भेजते थे। व्यक्तिगत मंत्री के पद पर नियुक्ति नहीं हुई थी। एक बार महाराज कश्मीर यात्रा में मंत्री के रूप में साथ ले गये परन्तु यात्रा काल में दोनों के बीच बहुत मतभेद उठ खड़ा हुआ और इसीलिए वह परीक्षण पुनः नहीं दुहराया गया।"[३]

इसी यात्रा में श्री अरविन्द को एक और अप्रत्याशित विशेष अनुभूति हुई जिसका उन्होंने जिक्र किया है। 'तख्त ए-सुलेमान नामक पर्वत शृंखला पर भ्रमण करते हुए उन्हें शून्य अनन्त का मार्मिक बोध हुआ।'[४]

१ इवेनिंग टाइम्स तृतीय भाग १६ १ १९३९
२ श्री अरविन्द ओ बांगलार स्वदेशी युग पृ० ५३
३ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाता ना के विषय में पृ० ९
४ वही पृ० ४५

था अरविन्द स्वय इन घटनाजा के पीछे स्थित किसी तर्कपूण आधार को खोजने का प्रयत्न करते है। वे आस्त मूदकर इस तरह की रहस्यवादी चीजा को स्वीकार कर लेने क पक्ष में प्रतीत नही होते। उन्होंने इन पर चर्चा के सिलसिले में कहा था—"ऐसी घटनायें या ता प्राचीन सस्कार या रक्त में छिप कारणों से उत्पन्न होती हैं या फिर किसी विशिष्ट स्थान के सम्पक से। मैक्समूलर क द्वारा अनूदित वेदात पढते वक्त अचानक मैंने आत्मा के विषय में सोचा कि यह ऐसी सच्ची चीज हैं जिसे उपलब्ध करना चाहिए। उस वक्त मैं बहुत कुछ भौतिकतावादी या कहो ता नास्तिक था। इस तुम जगह का असर नही कह सकते। यह मेरे रक्त में था, या कह सकते हो कि पूव-जन्म का सस्कार था। अपालो बन्दरगाह पर पर रखते ही मैंने जिस विराट् शान्ति और नीरवता का अनुभव किया वह निश्चय ही स्थान-सम्पर्क की देन है। ऐसी ही अनुभूतियाँ स्थान-सम्पर्क से उत्पन्न कही जा सकती है जैसे शकराचाय पहाडी पर कश्मीर में मैंने अनन्त सत्ता का अनुभव किया, या पूना की पावती पहाडी का अथवा कर्नाली मदिर में विभिन्न दवताओ का अनुभव स्थान-सम्पर्क से हुआ।"[1]

गायकवाड और उनके सम्बधा स प्रतीत हाता है, कि वे धीरे धीरे प्रशासकीय कार्यों से अलग हाकर शिक्षा के क्षेत्र में जाने का उत्सुक हुए। इन्हें बडौदा कालेज में हफ्ते में छह घटे फ्रेंच पढाने का काय दिया गया। उस समय उनको अपने मुख्य सेवा विभागों से अस्थायी रूप स फ्रेंच पढाने के लिए भेजा जाता था। बाद में कालेज के और काय भी जुडते गये। प्रिंसिपल ने महाराजा से प्रायना की कि श्री अरविन्द को अग्रेजी के प्रोफेसर-पद पर नियुक्त किया जाय। तब उनकी कालज में अग्रेजी के उपाध्याय के रूप में स्थायी नियुक्त हुइ। व धीरे धीरे उपाचाय (वाइस प्रिंसिपल) के पद पर पहुँचे। एक बार प्रिंसिपल के अवकाश पर होने पर कायवाहा प्रिंसिपल का भी काय किया।

बडौदा राज्य की नौकरी उन्होंने ८ फरवरी १८९३ का स्वीकार की थी और वहा स १८ जून १९०७ को त्यागपत्र दकर व सेवामुक्त हुए। इस तरह बडौद में उनका कुल आवासकाल १३ वष ५ महीने १७ दिनों का रहा।

उपयुक्त समय का दखन हुए एक बडी विचित्र बात सामन आती है वह यह कि वे करीब-करीब जितने वष इग्लैण्ड में रहे कुछ कम करीब करीब उतने ही वष बडौदे में। इग्लैड में रहकर उन्हाने आर्थिक तगी और अन्य परेशानियों के बीच पश्चिमी सभ्यता सस्कृति और जीवनपद्धति का अर्थात् एक शब्द में पूरे पश्चिमी परिवश को सही ढग स जानने-पहचानने का प्रयत्न किया ता बडौदे में रहकर भारतीय परिवश को।

इन दिनों उनके साथ श्री दिनेन्द्रराय रहते थे। वे उन्हें बाग्ला सीखने में सहायता

१ गाम दि श्री अरविन्द प्रथम भा पृ० ३७८ ३७९

करते थे। उन्हें बांग्ला सिखाने के एकाध और दावेदार रहे हैं, परन्तु उन्होंने स्पष्ट कहा है—'मेरे एक मात्र बांग्ला शिक्षक दिनेन राय थे।'[1] इन्हीं दिनेन्द्रनाथ राय ने अरविन्द प्रसंग में उनके बड़ौदा जीवन पर काफी विस्तार से लिखा है। दिनेन्द्रनाथ के इस विवरण में कतिपय स्थानों पर तथ्यात्मक भूलें भी हैं खास तौर से, जहां उन्होंने परोक्ष में घटित बातों पर अनुमान लगाने की कोशिश की है। अन्यथा प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाओं स्थितियों और दिनचर्या आदि का उन्होंने बहुत ही प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत विवरण से कुछ विशेष बातें नीचे दी जा रही हैं

(१) वे प्रतिदिन प्रातःकाल एक गिलास इसबगोल मिश्रित जलपान करते थे। इसबगोल के बिना उनका एक दिन भी नहीं चलता था। बड़ौदा के बाजार में उसका अभाव होने पर दूसरी जगह से मँगाते थे। व्यायाम में उनकी विशेष रुचि नहीं थी, किन्तु प्रतिदिन सन्ध्यापूर्व एक घण्टा बरामदे में पदचारी करते थे। वे संगीतानुरागी थे पर गाना-बजाना नहीं जानते थे।

(२) रात्रि में बड़ी देर तक काव्यालोचन में लगे रहना उनका नित्य का कार्य था। इसीलिए सवेरे उठने में उन्हें देर हो जाती थी। चार-पाँच रुपये की एक खुले मुंह की घड़ी हर समय उनके पास रहती और पढ़ने की टेबिल पर एक छोटी टाइमपीस। अरविन्द प्रातःकाल चाय पीकर कविता की कापी खोल कर बैठ जाते। इस समय वे महाभारत का अनुवाद करते थे। बंगभाषा अच्छी तरह न समझ पाने पर भी संस्कृत में रामायण-महाभारत खूब अच्छी तरह समझते थे।[2]

श्री अरविन्द ने हिन्दी कभी नहीं पढ़ी परन्तु संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं से अभिन्न होने के कारण उन्होंने हिन्दी बिना किसी नियमित अध्ययन के ही आसानी से सीख ली। जब वे हिन्दी पुस्तकें या समाचार पत्र पढ़ते तो उनको समझने में उन्हें कठिनाई नहीं होती थी। संस्कृत उन्होंने सीधे संस्कृत ग्रंथों से अथवा अंग्रेजी द्वारा सीखी।

बड़ौदा में रहते हुए श्री अरविन्द ने संस्कृत के अभ्यास के लिए महाभारत और रामायण का अंग्रेजी अनुवाद आरंभ किया। इन्हीं दिनों भवभूति और कालिदास का रचनाओं का अध्ययन और कतिपय अंशों का अंग्रेजी अनुवाद भी चल रहा था। १८९८ ई० में सुप्रसिद्ध बंगाली इतिहासकार अनुवादक और सरकारी मुलाजिम श्री रमेशचन्द्र दत्त बड़ौदा आए। वे श्री अरविन्द से मिले। उन्होंने अरविन्द से महाभारत के कुछ अंशों का अनुवाद बहुत आग्रह करके सुना। और कहा— मैंने यदि तुम्हारे

१ [illegible] श्री अरविन्द [illegible] भाग पृ० १८ ।
२ अरविन्द [illegible] बांग्ला [illegible] पृ० ३/३ ।

अनुवाद पहले देख लिये होते तो व्यर्थ ही अपनी शक्ति का क्षय न करता और अपने अनुवाद हर्गिज प्रकाशित [एवरी मन्स लाइब्रेरी इंग्लैण्ड से प्रकाशित] न करता। रमेशचन्द्र दत्त सरकारी कर्मचारी होते हुए भी स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करने वालों के प्रति छिप तौर से काफी सहानुभूति रखते थे। श्री अरविन्द ने उनकी मृत्यु के बाद लिखे अपने एक लेख में—'उन्हें कम से कम मौलिक किंतु प्रचण्ड अध्यवसायी और परिश्रमी व्यक्ति कहा है।' एक बार मज़ाक में उन्होंने कहा—'उन दिनों बंगालियों को रोने में बड़ा मज़ा आता था। रमेशदत्त ने महाभारत से सावित्री का अनुवाद किया और उसे हमेशा रुदन्ती या रोवनी बनाये रखा। महाभारत में उसके रोने का कोई प्रसंग ही नहीं आता। जब उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था तो भी उसकी आँखों में आँसू नहीं आए। उस रोने वाली नारी के रूप में चित्रित करके रमेशदत्त ने वह समूची शक्ति ही गायब कर दी जिससे सावित्री बनी थी।"[२]

एडोकेट आर० एन० पाटकर ने, जो बड़ौदा में अरविन्द के विद्यार्थी थे, एक चर्चा में रमेशदत्त को अरविन्द के सामने महाकवि कहकर याद किया। श्री अरविन्द ने कहा 'तुम क्या रमेशदत्त को कवि मानते हो? तुम उन्हें अधिक से अधिक "तुक्कड़" कह सकते हो कवि नहीं, जो लोग पद्य लिखते हैं वे सभी कवि नहीं होते, जब कि एक गद्य लेखक भी यदि काव्यात्मक क्षमता रखता है, कवि हो सकता है।[३]

(३) पुस्तकों के प्रति श्री अरविन्द का अद्भुत प्रेम था। उनके वेतन का अधिकांश पुस्तकों में खर्च हो जाता है। दिनेन्द्र राय ने लिखा है कि बड़ौदा में अवस्थान में बम्बई के प्रसिद्ध पुस्तक व्यवसायी 'मेसर्स राधाबाई आत्माराम सगुण', मेसर्स थकर स्पिक एंड कम्पनी से प्राय पुस्तकों के पार्सल आते रहते। महीने के महीने या कभी-कभी प्रति सप्ताह नई पुस्तकों की तालिका अरविन्द के पास पहुँच जाती थी। उसमें से अपनी पसन्द की पुस्तकों के नाम चुनकर वे आर्डर भेज देते थे। वेतन पाते ही ५०–६० रुपये या उससे भी अधिक रुपये पुस्तक विक्रेताओं के पास मनीआर्डर कर दिये जाते। 'डिपाजिट एकाउण्ट' प्रणाली से वे पुस्तकें मंगाते।

इसी सिलसिले में बांग्ला 'गल्प भारती' में श्री अरविन्द की मौसेरी बहन वसन्ती (कृष्णकुमार मित्तर की कन्या) ने उनका संस्मरण लिखा है—वह छुट्टियों में देवघर आया करती। चतुर्दिक फैली पहाड़ियों की सुन्दरता सबको आकृष्ट करता। श्री अरविंद पूजा की छुट्टियों में आते। सभी बच्चे जोगेन्द्र मामा के आसपास बैठकर कहानियां

१ 'ऋषि दयानन्द निलय' का अन्तिम निबन्ध पृ ७६-७७।
२ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० २९४।
३ ग्लिम्प्स ऑफ श्री अरविन्दो पृ ७१।

सुनते। वसन्ती ने लिखा ' मारा दा दा मा तीन बडे बडे बक्स लेकर आते। हम सोचते कि इनम महगे सूट, और दूसरी आलकारिक इत्यादि चीजें होगी किन्तु जब व उन्हें खोलते तो हम देखकर आश्चय से ठग रह जाते। यह क्या ? कुछ मारला कपडे और बाकी किताबें, किताबें और कुछ नही, सिफ किताबें। क्या आरो दा यह सब पन्ना पसन्द करते ह। हम अवकाश का आनन्द लेने आते ह और य क्या छुट्टी को भी पन्न में बिता देंगे ?

इसी सदभ में मुझे अचानक फ्रास के प्रसिद्ध दार्शनिक लेखक सात्र की याद आती ह। उन्होंने पुस्तकों के बार में लिखा ह "मैंने किताबा स जिन्दगी शुरु की और इसमें सन्देह नही, उन्ही म खत्म होगी। मेरे नाना स्वाइतजर के अध्ययन कक्ष में चारो ओर किताबें ही किताबें थी। मुझ उन्हें वष में एक दिन क अलावा कभी साफ करने की भी अनुमति नही मिली। यद्यपि मैं उन्हें पढना नही जानता था, पर मैं उन खडे पत्थरो को सीधे या झुके हुए एक के साथ एक सटे ईटो की तरह या भद्र ढग से आलमारी के खानो रूपी गलियो में कतारबद्ध खडा देखकर श्रद्धा से झुक जाता था '।[1]

श्री अरविन्द के लिये किताबें जीवन थी, पर उन्हें बहुत पढकू होन का गव तक छू न गया था। उन्होंने स्वय लिखा ह—मैंने अपेक्षाकृत कम पढा ह। सिफ मैंने उस कम पढे से ज्यादा कमाया ह। भारत म ऐसे कई लोग ह जो हमसे पचासगुना या सौ गुना ज्यादा पडे हुए हो सकते ह।'[2]

(४) छोटे आकार के ग्रे ग्रनाइट रग क चिटठी लिखने वाले कागजा पर कविताएँ लिखते थे। प्राय ही काटाकुटी नही करते थे। लिखने के पहले ही सिगरेट पीते पीते सोचत रहते और उसके बाद उनकी लेखनी मुख से मन्दाकिनी प्रवाहित हो जाती। वे जल्दी लिखना शुरू नही कर देते थे। उस बीच में कोई उनसे कुछ पूछ दे तो विरक्त हो जाते किन्तु उस विरक्ति को दूसरा भाप नही सकता था।

(५) प्राय दस बजे तक लिखकर अरविन्द स्नानागार म प्रवेश करते। स्नान के बाद फिर कापी लेकर बठ जाते। सुबह लिखे हुए की उस वक्त आवृत्ति करते दो तीन बार पढने पर कभी दो एक शब्द बदल देते। उसी समय मेज पर खाना लगाया जाता। खाना खाते खाते वे अखबार देख लेते। बडौदा राज्य का खाना हम रुचता न था। किंतु अरविन्द उसके अभ्यस्त हो गये थे। किसी किसी दिन खाना ऐसा कदथ होता था कि वह मुह से लगाया भी नही जा सकता था परतु अरविंद अकुण्ठित भाव से उसे गले के नीचे उतार लेत। रसोइये स इस पर उन्होंने एक दिन भी असतोष व्यक्त नही किया।

१ दवन्म १० २५
२ कारेसपान्डेंस विद श्री अरविन्दो प० ९

(६) श्री अरविन्द के पास एक तांगा (विक्टोरिया गाडी) था। घोडा तो खूब बडा था, पर चलने में गधे का भी दादा था। चाबुक लगाने पर भी उसकी गति में वृद्धि नहीं होती थी। गाडी कितनी पुरानी थी यह तो जानना भी कठिन है। अरविन्द का सब कुछ विचित्र था। जैसी वेशभूषा वैसी ही गाडी, वैसी ही बाडी (गृह)।

(७) ग्रीष्मकाल में दुःसह रौद्र घाम में खपडा तप कर आग जैसा हो जाता। जाडे के शीतकाल में ऐसा सद कि हृदय का रक्त जम जाय। किंतु अरविन्द ग्रीष्म शीत में समान भाव से निर्विकार रहते। क्या ग्रीष्म क्या शीत, कभी भी उन्हें एक दिन भी कातर नहीं देखा। इस बगले में दिन में मक्खी और रात में मच्छरों के उपद्रव से मैं अस्थिर हो जाता। घर का खपरलें पुरानी हो गयी थी। वर्षा में अवसर टप टप करके पानी घर में चूता रहता। घर बहुत दिनों से बिना मरम्मत पडा था। हमारे देश के अनेक लोगों की गोशालायें भी इससे अच्छी होती हैं। किंतु ऐसे कदर्य गृह में वास करने में मैंने अरविन्द के मन में बिंदुमात्र कुंठा या आपत्ति नहीं देखी। इसी जीर्ण गृह में वे दीर्घकाल तक रहे। अरविन्द रात्रि में एक बजे तक मशकदंश की उपेक्षा करते हुए टेबल से लगी कुर्सी पर बैठ हुए लैम्प की रोशनी में साहित्य का अध्ययन करते रहते। उन्हें मैं पुस्तक पर आँखें गडाये घंटों इसी तरह बैठा पाता। वे मानो निमग्न तपस्वी की तरह बाह्यज्ञान शून्य लगते। अरविन्द इसी प्रकार नाना भाषाओं के जाने कितने ग्रंथ काव्य, उपन्यास इतिहास, दर्शन आदि का पाठ करते, उनकी संख्या बताना मुश्किल है। उनके पाठागार में नाना भाषाओं के ग्रंथ स्तूपीकृत रखे रहते। फारसी, जर्मन, रशियन, अंग्रेजी, ग्रीक, लटिन, हिब्रू[१] प्रभृति भाषाओं की किस प्रकार की पुस्तकें हैं, उनका परिचय मैं नहीं जानता।

(८) बडौदा मरु-सन्निहित स्थान कहा जाता है, अतः वहाँ गर्मी और सर्दी कडाके की हुआ करती किन्तु माघ मास के शीतकाल में भी अरविन्द को किसी दिन रजाई का उपयोग करते नहीं देखा। कम्बलवन्तं खलु भाग्यवन्तं। अरविन्द अल्प मूल्य के कम्बल से रजाई का अभाव दूर करते। पाँच रुपये मूल्य का एक नीला आलवान उनका शीत-वस्त्र था। जितने दिन उनके साथ एकत्रवास किया उन्हें ब्रह्मचर्य निरत, परंतु अकातर, आत्मत्यागी संन्यासी से भिन्न कुछ मानने का जी नहीं होता। ज्ञान संचय ही उनका व्रत था। इसी व्रत के उद्या

१ प्रमोद सेन ने भी अपनी पुस्तक श्री अरविन्द की जीवनी में उन्हें हिब्रू का जानकार बताया था जिसपर मजाक करते हुए उन्होंने कहा कि क्यों नहीं मैं अम्हेरी और दूसरी अफ्रीकी भाषाएं जानता हूं यह भी लिख दिया। इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० १२१।

पन के लिए वे कम कोलाहल मुखरित ससार में रहकर कठोर तपस्या म मग्न रहते।[1]

दिनेन्द्रनाथ राय के इस वणन से श्री अरविन्द की न सिफ दिनचर्या स्पष्ट होती ह, वल्कि उसके सदाचारी जीवन और स्वाध्याय निरत व्यक्तित्व का बहुत निकट से परिचय मिलता ह। उनकी दूसरी गतिविधियाँ दिनन्द्रनाथ क परोक्ष चलती थी, इसलिए उनपर पूण विश्वास करना ठीक न होगा।

श्री अरविन्द ने बहुत थोड समय म किन्तु गहरे और कष्टसाध्य अध्यवसाय के द्वारा भारतीय परिवश को क्रमबद्ध रूप से आत्मसात किया। वे अपने पश्चिमी ज्ञान विज्ञान से ज्ञाणित दृष्टिकोण क द्वारा भारतीय वाङ्मय को पुन परीक्षित कर सके और पुराकाल से लेकर तब तक का भारतीय परिवेश जीवन्त प्राणवान् सत्ता क रूप में उनका सहचर बन गया।

भारतीय पुनर्जागरण

उस वक्त का भारत क्या था? आजतक का कोई भी इतिहासकार १८५० से लेकर १९०० के भारतीय परिवेश को कोई भी सवसायक और बहु आयामी नाम नही दे सका ह। एच० सी० जकरिया की 'रिनासेंट इण्डिया (१९३३) अमित सेन का *"नोटस आन बेंगाल रिनेसा' गुप्त की स्टडी इन बेंगाल रिनेसाँ"* सी० एफ० एण्ड्रूज की रिनेसाँ इन इण्डिया" जेम्स एच० कजि स की 'रिनेसा इन इण्डिया [मद्रास १९१८] आदि पुस्तको में बार बार रिनेसाँ का प्रयोग हुआ ह। भारतीय पुनर्जागरण या 'इण्डियन रिनेसाँ' कहने स एक गुरु गभीर शब्दाथ का बोध भले होता हो पर पश्चिम से उधार लिया हुआ यह शब्द तत्कालीन भारतीय परिवेश को उसकी सम्पूण गरिमा में समेटे पाने में असमथ ह। यह मात्र धार्मिक पुनर्जागरण नही था न तो सुधारवाद तक ही सीमित था बल्कि इसमें एक साथ बौद्धिक पुनर्जागरण धार्मिक सुधार औद्योगिक विकास तथा सर्वोपरि स्वतन्त्रता की अभीप्सा और राष्ट्रीयता की भावना का पूर्ण सपुजन था। हम इस बहुविध परिप्रेक्ष्य वाले इस काल को तब तक ठीक से जान न पायेंगे जब तक इस चतुरायामी विकास को सम्यक रूप से देखने और समझन का प्रयत्न नही करते।

या तो विश्व के सभी महान धम हिन्दू बौद्ध क्रिश्चियन, इस्लाम सभी एशिया महाद्वीप की ही देन ह, किन्तु अनेकानेक कारणा से एशिया इस्लाम और ईसाई धर्मावलबिया द्वारा बेतरह प्रताडित होता रहा ह। ईसाई धर्मावलम्बी शासको ने एशिया को जहाँ एक और वनानिक और तक्नीकी दृष्टि और उपकरण दिये, वही यह कहना भी अनुचित न होगा कि इस पूरे महाद्वीप के आर्थिक शोषण का सबसे बडा

१ अरविन्द प्रसग (बाग्ला में लिखित) पृ० २८ २९।

उत्तरदायित्व भी उन्हीं के मत्थे जाता है। शासक-वर्ग हमेशा ही शासित जातियों को अपनी तुलना में असभ्य, असंस्कृत और निर्बल मानता रहा है। शायद यह उचित न हो, स्वाभाविक तो था ही। इन्हीं परिस्थितियों की प्रतिक्रिया में उत्पन्न रिनेसाँ को भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखने का प्रयत्न किया गया। इस शब्द का व्यवहार करने वाले अनेक विद्वान् इस इटली के बौद्धिक चिंतकों द्वारा यूनान और रोम की संस्कृति के पुरामूल्यों का साज व प्रयत्नों के समानान्तर रखकर प्राचीन भारतीय संस्कृति का पुनरन्वेषण कहना चाहते हैं। अर्थात उनकी दृष्टि से पुनर्जागरण और पुनरुत्थान एक जैसी चीजें हैं। दूसरा ओर ऐसे विचारक मिलेंगे जो भारतीय पुनर्जागरण को नवीनता और आधुनिकता का पर्याय मान लेने में संकोच का अनुभव नहीं करते। इस अध्ययन की समग्रता के लिए हमें इन दोनों ही अतिवादी छोरों से बचकर चलना होगा।

इस तरह भारतीय पुनर्जागरण को समझने के लिए उसके उपर्युक्त चारों पहलुओं को, पुनरुत्थानवादी अथवा अति आधुनिकताग्रही दृष्टिदोषों से बचकर विश्लेषित करने की आवश्यकता है।

वस्तुत जब हम भारतीय रिनेसाँ कहते हैं तो हमारा दिमाग बहुत करके *तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों या राजनीतिकों पर केन्द्रित हो जाता है।* इस दिशा में सर्वप्रथम पहल करने वालों में शीर्षस्थ नाम राजा राममोहन राय का लिया जाता है। निकल मकनिकल ने उन्हें 'सत्य के नये महाद्वीप के अन्वेषण में भारतीय कोलम्बस'[1] की उपाधि दी है। रवीन्द्र नाथ ने उन्हें मानव जाति की सार्वभौमिकता का आदर्श रखकर भारत को बाकी दुनिया से जोड़ने वाला व्यक्ति कहा है।'[2] इसी समारोह में, राधाकृष्णन् और विपिनचन्द्र पाल ने भी उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की थी। राजा की प्रमुख देन ब्रह्म समाज की स्थापना थी जो १८२८ में हुई। मैक्समूलर ने इसके विषय में कहा था— 'यदि भारत में कभी कोई नया धर्म होगा तो मुझे विश्वास है वह अपने जीवन-संचार के लिए राममोहन राय, और उनके योग्य शिष्य देवेन्द्रनाथ टगोर और केशवचन्द्र सेन का अवश्य याद करेगा।[3]

ब्रह्मसमाज एक उत्कट तथा निकट अतीत का प्रेरणादायी आन्दोलन था जो मात्र बंगाल में सिमट कर रह गया। राममोहन राय ने पटने में फारसी और अरबी का, बनारस में संस्कृत का तथा ईसाई धर्म को समझने के लिए अंग्रेजी के अलावा हिब्रू, लैटिन और यूनानी भाषाओं का अध्ययन-मनन किया। परम्परावादिता का विरोध करते हुए उन्होंने मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड आदि का खंडन किया। उन्होंने हिन्दू, इस्लाम और ईसाई धर्मों के समन्वय का प्रयत्न किया। मोनियर विलियम्स ने ठीक ही

१ निकल मेकनिकल राममोहन राय पृ० २९
२ भारत पथिक राम मोहन राय १८३३ में शताब्दी समारोह का भाषण
३ वायोग्रैफिकल एसेज पृ० ८३

कहा था कि वे "हिंदुस्तान में तुलनात्मक धर्मविज्ञान के पहले अनुसंधानकर्ता थे।" सच्चे ईश्वर का सिद्धांत सभी धर्मों का सामान्य तत्त्व है। यही तत्त्व मानव जाति के सामान्य धर्म का मूलभूत अंग कहा जा सकता है। इस सार्वभौम धर्म का उपयोग सदा क्षेत्रीय और राष्ट्रीय वातावरण के अनुसार होगा। मनुष्य की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।[1] सती प्रथा का विरोध, प्रेस की स्वाधीनता का आंदोलन जैसे संवैधानिक कार्यों में भी वे सक्रिय रहे। वे अंग्रेजों द्वारा पर्याप्त समादृत हुए। हाउस आफ लार्ड्स में उन्हें जाने का अवसर मिला पेरिस में लुई फिलिप के अतिथि रहे और उसी यात्रा में १८८३ में ब्रिस्टल में स्वर्गवासी हुए।

सच्चे धर्म की खोज के ऐसे प्रयत्न ने राममोहन राय के शिष्य देवेन्द्रनाथ ठाकुर [१८१७–१९०५] को तत्त्वबोधिनी सभा के निर्माण के लिए प्रेरणा दी। इसे बंगाल के साहित्यिक और आध्यात्मिक इतिहास में नये युग के सूत्रपात का सूचक कहा गया। उन्होंने तत्त्वबोधिनी पत्रिका भी प्रकाशित की। इसमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राजेन्द्रलाल मित्र जैसे लोगों के लेख निकलते थे। ब्राह्मधर्म की शिक्षा के लिए तत्त्वबोधिनी पाठशाला खुली। संस्कृत के प्रामाणिक ग्रंथ विशेषत वेदों को मूलरूप में देखने की इच्छा से बनारस आए।[2] उन्होंने ब्रह्मसमाज की ओर से वेदों की अमोघता का खंडन किया। यद्यपि उनकी दृष्टि में राममोहन राय की अपेक्षा ईसाई धर्म के प्रति श्रद्धा कम था। वे सूफीमत के प्रति आकृष्ट थे। हाफिज को "श्रद्धेय पागल" कहकर हृदय से प्यार करते थे। इन्हीं कारणों से बंगाल के कट्टरपंथी टैगोर परिवार को 'पिराली' ब्राह्मण कहकर निंदित करते थे।[3] विपिनचन्द्र पाल ने स्पष्ट लिखा है कि उनकी उपनिषदों की व्याख्या न वेदांती न वैष्णव मुख्यत इस्लामी है। इस्लामी भक्ति में ईश्वर की धारणा विषयक मतों से वे बहुत प्रभावित थे। बाद में पूर्णत रहस्यवादी होते गये। १९०५ में अपनी मृत्यु के समय तक वे एकान्तवास में रहे। अण्डरहिल ने उनकी 'आत्मकथा" में मिलनेवाले समन्वयबोध को रहस्य चेतना की सर्वोत्तम उपलब्धि कहा है।[4]

केशवचन्द्र सेन [१८३८—१८८४] ने हिन्दू कालेज में शिक्षा पाई। देवेन्द्रनाथ की प्रेरणा से वे ब्रह्मसमाज में आये। प्रचारकार्य का ऐसा उत्साह जगा कि उन्होंने बैंक आफ बैंगाल की नौकरी छोड दी। १८६१ में उन्होंने 'इंडियन मिरर' नामक पत्रिका शुरू की। १८६४ में पश्चिमी और दक्षिणी भारत की विस्तृत यात्रा की।

१ शिवनाथ शास्त्री हिस्ट्री आफ ब्रह्मसमाज।
२ वे १८४७ में काशी आये थे और वेदों के त्रुटिहीन प्रमाण होने के पक्ष विपक्ष में प्रमाण-संग्रह करते रहे।
३ कृष्ण कृपलानी रवीन्द्रनाथ टैगोर—बायोग्राफी अध्याय २।
४ देवेन्द्रनाथ की आत्मकथा की भूमिका।

उसी वर्ष उन्होंने धमतत्त्व पत्रिका का, जो प्राय दशन और धम विषयक सामग्री प्रस्तुत करती थी, आरम्भ किया। १८६९ में अपने किंचित उग्र सिद्धान्ता के कारण आदि ब्रह्मसमाज से उन्होंने सम्बन्ध तोड लिया और 'ब्रह्म समाज आफ इंडिया' की स्थापना की। १८७० में उन्होंने इंग्लैंड की यात्रा की जिसका अत्यन्त रोचक और दिलचस्प विवरण डॉ० जे० कारपेण्टर से प्रस्तुत किया ह।[1] उन्हाने ग्लैडस्टन डिजराइली मक्समूलर न्यूमैन, मार्टिनो और जान स्टुअट मिल से मुलाकात की। वे मल्लिका विक्टोरिया से भी मिले। केशवचन्द्र सेन का "मानव वैयक्तिकवाद" बहुत कुछ समन्वयवादी मुखौटा जसा ही लगता ह। डा० शर्मा का यह कथन बहुत कुछ सत्य लगता ह कि "उनका धम ब्राह्मतकवाद वैष्णव भावुकता, ईसाई अतिप्रकृतिवाद और वेदान्त के रहस्यवादी तत्त्वों का मिला जुला ढेर है। इन सबको एक व्यापक सवादितापूर्ण सगति और समन्विता देने की उनमें क्षमता न थी"।[2]

केशवचन्द्र सेन की सबसे बडी विशेषता उनके उन प्रयत्नों में दिखाई पडती है जिनमें उन्होंने योरप की जगह एशियाई संस्कृति के महत्त्व का पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया। केशवचन्द्र सेन ने लिखा—"मैं एशिया का बेटा हूँ। उसके दु ख मेरे दु ख हैं, उसका आनन्द मेरा आनन्द ह। मुझे इस बात का गव है कि एशिया के एक छोर से दूसरे छोर तक मेरा विराट घर है। इसमें व्यापक राष्ट्रीयता और आत्मीयता मौजूद ह।"[3] इसी भूमिका पर खड़ा हो कर वे हिन्दू, इस्लाम और ईसाई धम को एशिया की प्रसूति मानकर उनके समन्वय का प्रयत्न करते ह। उसके हिसाब से ईसाई धम की स्थापना और विकास एशियावालों ने एशिया में ही किया। जीसस मेरे पौरस्त्य स्वभाव के समीप है। गास्पल की बिम्ब योजनाओं रूपकों, प्राकृतिक वर्णना रीति रवाजों को योरपवासियों की अपेक्षा एशियावासी कहो अधिक दिलचस्पी और शक्ति तथा सुन्दरता के साथ समझ सकते हैं।[4] केशव इसीलिए ईसाइयों को समझाते हुए कहते हैं— "यह ठीक नही ह कि ईसाई धम भारतीयों को राष्ट्रीयताहीन बनाये। हमें ईसाई मत की भावना को पाश्चात्य सभ्यता के फैशना स अलग करके समझना चाहिए।"[5]

यह सब होते हुए भी वे अपने का ईसूदास कहे जाने म सकोच का अनुभव नही करते थे। साथ ही वे हिन्दू धम के महत्त्व को भी कम करना नही चाहते थे। यही द्विविधाग्रस्त बोध पूरे ब्रह्मसमाज का अन्तर्विरोध ह जा उसे पूरी तरह खा गया। हालांकि उसकी सामयिक देन को नकारा नहीं जा सकता।

१ केशवचन्द्र सेन ऐन इंग्लैंड २४ नवम्बर १९०७ का भाषण।
२ हिन्दूइज्म थ्रू ऐजेज पृ० ७८
३ एशियाज मसेज टू योरप पृ० १८८३।
४ महानन्द केशव पृ० १८७
५ जीसस क्राइस्ट योरप एण्ड एशिया।

ब्रह्मसमाज के समानान्तर या कुछ बाद श्री रामकृष्ण और उनकी परिषद् सम्भवत सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र बनी। श्री रामकृष्ण (१८३६ १८८६) परमहस को बचपन में मिट्टी के खिलौनो को रखने-सजाने का शौक था, और कहना न होगा कि उन्होंने अपने इस कौशल का प्रयोग आगे चलकर अपने शिष्यो के व्यक्तित्व को सँवारने में भी खूब किया। पढ़ने लिखने में खास रुचि न थी। २० वष की आयु में अपन भाई राम कुमार के साथ कलकत्ते रहने लगे। भाई दक्षिणेश्वर में कालीमदिर के पुजारी थे, वही उनकी मृत्यु के बाद वे पुजारी नियुक्त हुए। श्री रामकृष्ण के व्यक्तित्व में हम श्री अरविन्द के शब्दो में—"अतिमहान् आध्यात्मिक सामथ्य देखते हैं, जो पहले तो दिव्य साक्षात्कार तक सीधे वेग मे जा पहुँचती है, माना जबदस्ती स्वगलोक अधिकृत कर लेती है और फिर एक के बाद एक कितनी ही योग-पद्धतियों का पकडती है तथा अविश्वसनीय शीघ्रता के साथ उनमें से सारतत्त्व को निचोड लेती है। ऐसा वह सदा ही सम्पूण विषय के हृदय में वापस आने के लिए, प्रेम की शक्ति द्वारा, जन्मजात आध्यात्मिकता को नानाविध अनुभवो के रूप में विस्तारित करके तथा स्वबोधिजन्य ज्ञान की स्वत स्फूत क्रीडा के द्वारा भगवान् को प्राप्त करने तथा अधिकृत करने के लिए करती है।"[1] उन्होने भरवी ब्राह्मणी से तन्त्र भ्रमणशील वष्णव साधु से वष्णवप्रेम, तोतापुरी से ज्ञानमार्ग, इस्लामी पद्धति से सूफीचिन्तन शभुचरण मल्लिक आदि से ईसाइयत और बायबिल सीखा। वे अन्त केशवचन्द्र के सम्पक में आकर ब्रह्मसमाज और अंग्रेजी शिक्षा से उत्पन्न स्थितियों को भी भलीभाँति जान सके। केशव की मृत्यु पर श्रीरामकृष्ण ने कहा था—मेरा अर्धांश मर गया है।[2] अपन अनुभूति जन्य ज्ञान को सहजात सहज ढग से और परम आत्मीयता के साथ व्यक्त करन के कारण श्रीराम कृष्ण निरन्तर लोकप्रिय होते गये। उनक इद गिद श्रद्धालुओं और जिज्ञासुओ क दल मडराने लगे। वे ईश्वर को प्रेम से पाने की शिक्षा देते। कोई दशन या ज्ञान बघारना उनका न उद्देश्य था न मनपसन्द विषय। वे विनय की, अनुशासन की सयम की शिक्षा देते। कचन-कामिनी से दूर रहने का आग्रह करते। श्री रामकृष्ण ने मनुष्य जीवन के सामाजिक पक्ष पर ज्यादा बल नहीं दिया कारण वे अपनी वैयक्तिक साधना से समय नहो निकाल पाये। वे समाज सुधारको में बहुत आस्था भी नही रखते थे। एक बार उन्होने कहा—'यदि तुम ईश्वर से कभी मिलोगे तो क्या यह कहोगे कि मुझे

१ योग-विचार पृ० २७

२ केशवचन्द्र सेन और रामकृष्ण में से किसने किसे प्रभावित किया यह विवाद व्यथ है। मैं समझता हूँ कि मैक्समूलर की पुस्तक 'राममोहन टु रामकृष्ण' इस विचार को स्पष्ट करने वाला प्रामाणिक परन्तु साभिप्राय ग्रन्थ है। मृत्यु के समय केशवचन्द्र सेन के मुख से 'माँ माँ' की रट श्रीरामकृष्ण के प्रभाव को स्पष्ट कर देती है। लाइफ आफ रामकृष्ण—रोमाँ रोलाँ पृ० १८१।

शक्ति दो कि मैं नहरें खुदवा सकूँ, स्कूल बनवा सकूँ, अस्पताल स्थापित कर सकूँ ?"[1] वस्तुत रामकृष्ण स्वकीय साधना के बल पर इतने उच्च स्तर पर उठे हुए आदमी थे कि उनका व्यक्तित्व ही प्रकाशस्तम्भ बन गया। उनके सिद्धान्तो का सामाजीकरण तो विवेकानन्द ने किया।

विवेकानन्द [१८६३ १९०२] कुल चालीस वर्ष तक इस ससार में रहे, किन्तु अपने सक्रिय दीप्त व्यक्तित्व, अटूट आत्मबल और तूफानी कार्यक्रमो के द्वारा उन्होने भारत को ही नही, पूरे विश्व को झिंझोड कर रख दिया। यदि यह कहा जाय कि वे भारतीय पुनर्जागरण की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विभूति थे तो अनुचित न होगा। श्री अरविन्द ने उन्हें एक वाक्य में भगवान शिव का परमदीप्त कटाक्ष कहा था।[2] वे ध्यानस्थ चित्रो में शिव के तुल्य प्रतीत होते ह शात गम्भीर निर्विकार, पर जब सक्रिय जीवन में उतरते है तो उनके पैरो में ताण्डव की गत्वरता सवत्र दिखाई पडती ह और उनकी कविता "श्यामा नाचे' याद आने लगती ह। पश्चिमी ज्ञानविज्ञान से पूर्ण परिचित वे युवावस्था में १८८१ में श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आये। तब से लेकर मृत्यु-पर्यन्त भारतीय राष्ट्र, उसकी सस्कृति, उसके दर्शन को पुनरुज्जीवित करने में निरन्तर लगे रहे। 'अभय बनो—उनका उपदेश था। "जागो'—उनका संदेश था। "अपने को पहचानो"—उनका मत्र था। "वेदान्त के ज्ञान को गुफाओं से निकालकर समाज तक पहुँचाना चाहते थे।[3] वे रहस्यवादी ढग-ढरों क विरुद्ध थे। वे बीस करोड देवताओं में अधश्रद्धा के बदले नास्तिक हो जाना बेहतर समझते थे। वे भारतीय अध्यात्म को छोडकर पश्चिमी पद्धति की नकल के जितने विरोधी थे, उतने ही जीवन की दीनता के भी। उन्होंने कहा था—"ससार में डूबकर कर्म का रहस्य जानो। ससार-यत्र के पहिया से भागो मत। भीतर जाकर देखो कि यह कसे चलता ह, और विश्वास करो तुम्हें इससे निकलने का रास्ता मिल जायेगा।' वे गरीबी और जहालत के सख्त विरोधी थे। उन्होने बडे तैश से कहा था—"मैं वैसे ईश्वर में विश्वास नही करता जो मरने के बाद स्वर्ग को अनन्त आनन्द देगा, पर इस जगत में मुझे रोटी भी नही दे सकता।"[4] वे भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्ण समर्थक थे, क्योकि उनकी दृष्टि से 'स्वाधीनता का सघर्ष मनुष्य को ब्रह्माण्ड से जोडता ह।'[5] उन्होने श्री रामकृष्ण

१ गास्पेल आफ रामकृष्ण पृ० ४२७

२ थाट्स एण्ड अफोरिज्म पृ० २६—एक दूसरी जगह उन्होंने उन्हें शिव का अंश कहा है। मदर इण्डिया, समनोट्स आफ १९२२ २६, भाग २२ स० ६, पृ० ३३३

३ रोमा रोलां लाइफ आफ विवेकानन्द पृ० २१९

४ लेक्चर्स फ्राम कोलम्बो टु अल्मोरा पृ० ५४

५ उन्नति की पहली शर्त है स्वाधीनता। मनुष्य को जिस प्रकार विचार और वाणी की स्वाधीनता मिलनी चाहिये वैसी ही उसे खान पान, रहन-सहन, विवाद आदि हर बात की स्वाधीनता

मिशन को सङ्गठित करके दरिद्र नारायण की सेवा का अभियान आरम्भ किया।[१]

विवेकानन्द की शिष्य बहना निवेदिता ने भी भारतीय पुनर्जागरण में अपनी शक्ति के अनुसार महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

राममोहन राय के द्वारा संस्थापित ब्रह्म समाज का प्रभाव बंगाल के बाहर यदि कहीं दिखाई पड़ा तो वह प्रदेश है महाराष्ट्र। १८६४ में केशवचन्द्र ने महाराष्ट्र की यात्रा की। उनके बाद प्रतापचन्द्र मजूमदार, गौर गोविन्दराय, अमृतलाल वसु आदि ने वहाँ का दौरा किया। १८६७ में आत्माराम पाण्डुरंग की अध्यक्षता में बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। १८७२ में थीइस्टिक समाज की स्थापना हुई। महादेव गोविंद रानाडे [१८४२ १९००] प्रार्थना समाज के प्रमुख स्तंभ थे। उन्होंने १८७३ में महाराष्ट्र की आर्थिक स्थिति पर सरकार को अपनी रिपोर्ट दी। सार्वजनिक सभा की स्थापना ही ऐसे कार्यों के लिए हुई थी। रानाडे का मत उनके "ईश्वरवाद का दर्शन" शीर्षक निबन्धों में अच्छी तरह उभरा है। ईसाई धर्म के प्रति उदारता बरतने वाले वे पहले महाराष्ट्री व्यक्ति थे। उनके शिष्य भंडारकर ने उनके आन्दोलन और विचारों को आगे बढाया। इस दिशा में न० जी० चन्द्रवारकर और रमाबाई का भी महत्त्व है। रानाडे के इन उदारतावादी समझौतापरक विचारों का तिलक ने खुला विरोध किया और "एज आफ कान्सेन्ट बिल' को लेकर चलने वाला उनका विरोध १८९५ ई० में इस सीमापर पहुँचा कि तिलक ने रानाडे को अपदस्थ करके "सार्वजनिक सभा' पर अधिकार कर लिया।

भारतीय पुनर्जागरण को बहुत दीप्त भूमिका प्रदान करने वालों में स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४ १८८३) का स्थान प्रमुख है। वैदिक साहित्य के प्रति वे इतने श्रद्धालु और निष्ठावान थे कि पूरी हिन्दूजाति को आर्यधर्म की ओर लौटाना उनका उद्देश्य बन गया। वेदों के प्रति उनकी भक्ति बहुतों को दुराग्रह लग सकती है किन्तु दयानन्द ने शुद्ध राष्ट्रीय पुनर्जागरण की एक नई धारा को समानान्तर उपस्थित करके बहुत बड़ा कार्य किया है। इसमें सन्देह नहीं। वे इसी कारण यदि ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज या ईसाईमत पर आक्रामक दृष्टिकोण रखते थे तो इसे अतिवादी कहकर टाला नहीं जा सकता क्योंकि दयानन्द के आर्यसमाजी आन्दोलन से दो विचारधाराओं के टकराव [इनकाउन्टर] की स्थिति खड़ी करके बहुतों को आत्मपरीक्षण का अवसर भी दिया। दयानन्द ने अपने धार्मिक आन्दोलन को पूर्ण सामाजिक पीठिका भी प्रदान की। वर्ण व्यवस्था की प्रगतिशील व्याख्या एंग्लो वैदिक स्कूलों की स्थापना नारी शिक्षा की

होनी चाहिये। इसके लिए आवश्यक है शक्ति की उपासना। क्षात्र धर्म की प्रतिष्ठा।" स्वाधीन भारत जय हो (विवेकानन्द) पृ० २६।

१ जो जाति रोगी के लिये तरस रही है उसके हाथ में दर्शन और धर्मग्रन्थ रखना उसका मजाक उड़ाना है।

आयोजना, रूढ़िवादी संस्कारों का विरोध, सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार उनकी रचनात्मक प्रतिभा की देनें हैं। उन्होंने सवसध समन्वय के प्रयत्ना द्वारा पुनर्जागरण को सगठित गम्भीरता देने का भी असफल प्रयत्न किया।

१८७२ में कलकत्ते की यात्रा के अवसर पर उनकी केशवचन्द्र से मुलाकात हुई थी। केशव ने कहा था कि अफसोस है कि वेदों का अद्वितीय विद्वान अंग्रेजी नहीं जानता अन्यथा इंग्लैण्ड जाते समय मेरा इच्छानुकूल साथी होता। दयानन्द ने तपाक उत्तर दिया—'शोक है कि ब्रह्मसमाज का नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है जिसे वे समझते ही नहीं।'[1] दयानन्द ने गुजराती होते हुए भी अपने सारे आन्दोलन के लिए हिन्दी भाषा को चुना जिसे वे आर्यभाषा कहा करते थे। आर्य समाज ने पूरे पश्चिमोत्तर भारत को अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रमों से जिस प्रकार प्रभावित किया वैसा प्रभाव अन्यत्र शायद ही किसी आन्दोलन का पड़ सका।

इसी समय उत्तर भारत में थियासोफिकल आन्दोलन भी आरंभ हुआ। श्रीमती एनीबेसेंट १६ नवम्बर १८९३ को भारत आयीं। वे १८८९ में ही मैडम ब्लेवात्स्की की शिष्या हो चुकी थीं। कर्नल ओल्काट और श्रीमती ब्लेवात्स्की १८७९ ई० में ही भारत आ गये थे और उन्होंने दयानन्द से वार्ता करके दोनों आन्दोलनों को एक में मिलाने का प्रस्ताव भी किया पर असफल हुए। मदाम ब्लेवात्स्की रहस्यवादी थीं। श्री अरविन्द ने उनके बारे में कहा था 'कुछ यथार्थ तो है पर कल्पना (Romance) भी कम नहीं है। जितना सत्य उतनी ही कल्पना। निवेदिता थियासोफिस्टों को 'रूई भरे माथे' वाले लोग कहा करती थीं।[2] थियोसोफी आन्दोलन एनीबेसेंट के आगमन के पहले से चल रहा था, क्योंकि यह एक अन्तराष्ट्रीय आन्दोलन का हल्का रूप ले चुका था परन्तु भारत में इसे पूर्ण व्यवस्थित करने का श्रेय एनीबेसेंट को ही प्राप्त होता है। हिन्दू बौद्ध और तिब्बती लामा गुह्य साधना के समन्वय पर खड़ा यह आन्दोलन रहस्यवादी साधनाओं के कारण कुछ लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल भी हुआ, किन्तु इसे पूर्ण व्यापकता एनीबेसेण्ट ने दी। एनीबेसेंट भारतीय संस्कृति रहन-सहन और राष्ट्रीय आत्मा की भक्त थीं और उनकी ओजस्वी वाणी में एक जादू था। भारत को अपनी मातृभूमि कहती थीं। उन्होंने भारतीयों को निद्रा त्याग कर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। काशी में एक पण्डित ने इन गुणों से मुग्ध होकर उन्हें 'सर्वशुक्ला सरस्वती' की उपाधि दी थी। हिन्दू स्कूल की स्थापना उनके हिन्दूधर्म के प्रति प्रेम का प्रमाण है। 'वेक अप इंडिया' के व्याख्यान निश्चय ही प्रेरणाप्रद हैं। उन्होंने अपने दो अखबारों 'कामनवील' और 'न्यूइण्डिया'[3] के माध्यम से होमरूल आन्दोलन को बड़ी शक्ति दी।

१ श्रीमद्दयानन्द प्रकाश पृ० ५०७
२ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० २८।
३ मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार पर कुछ कहने के लिए एनीबेसेंट ने अरविन्द से बहुत आग्रह किया।

इस विशिष्ट व्यक्तिया मे विवरण से यह समझने की गल्ती नहीं होनी चाहिए कि ये ही व्यक्ति मात्र पुनर्जागरण से सबधित थे ।

बगाल मे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को भुलाया नही जा सकता वे निश्चय ही प्रगतिशील समाज सुधारक थे । स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उनका अप्रतिम योगदान ह। बहु विवाह और बाल विवाह के विरोध में भी वे सक्रिय थे । विधवा विवाह का उनका आन्दोलन बहुत बडा ऐतिहासिक महत्त्व रखता ह। उनके इस आन्दोलन का पुरातनवादी हिन्दुओ ने राधाकान्त देव के नेतृत्व में खुला विरोध भी किया । बकिमचन्द्र का इस पुनर्जागरण में ऋषि तुल्य स्थान ह क्योकि उन्होने वन्देमातरम् के मत्र से राष्ट्रीयता की दीक्षा दी । सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी मुख्यत राजनीतिक रगमच पर काय करते रहे। वे उदारवादी नेता थे । अपने 'बगाली' पत्र के माध्यम से व कभी-कभी सरकारी कुकृत्या का हल्का सा विरोध भी करते थे । उन्होने १८८३ में अपन दशभक्तिपूर्ण कार्यों के लिए दो महीने का कारावास दण्ड भी सहर्ष स्वीकार किया। १८७६ में उन्होंने इडियन ऐसोसियेशन की स्थापना की ।

हिन्दू पुनर्जागरण के साथ ही साथ देश में मुस्लिम पुनर्जागरण भी चल रहा था। सर सयद अहमद खा (१८१७ १८८८) अग्रेजों के कृपापात्र और मुसलमानो के सुधारवादी नेता थे। १८५५ में वे बिजनौर में नियुक्त हुए वही उन्होने गदर के समय अग्रेजो की रक्षा की । १८५८ में गदर पर उन्होने एक पत्र लिखा जिसमें उसका कारण जनता की अज्ञानता बतायी गयी । १८६३ म गाजीपुर में वज्ञानिक सभा की स्थापना की और अग्रेजी ग्रथा का उर्दू में अनुवाद कराया । उन्होने 'सोशल रिफामर' नामक पत्र निकाल कर मुसलमानी समाज में सुधार के प्रयत्न किये। उनकी सबसे बडी देन मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ ह जिसे वे इस्लामी कौम की बौद्धिक राजधानी बनाना चाहते थे।

भारतीय पुनर्जागरण के उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता ह कि यह आन्दोलन पूरे भारत में, खास तौर से उत्तरभारत में बहुत व्यापक रूप ले चुका था और इसके परिणाम स्वरूप देश में बौद्धिकता नवीनता और आत्मविश्वास की एक लहर पैदा हो गयी थी पर यह आन्दोलन अपने भीतर के विरोधाभासों से मुक्त नहीं था। इन विरोधाभासो को श्री अरविन्द अच्छी तरह समझते थे और उन्हाने अपनी पुस्तिका 'रिनेसा इन इडिया से इसका सविस्तर विश्लेषण किया।

पुनर्जागरण अरविन्द की दृष्टि

ईस्वीय १८५७ में भारत अनेक प्रयत्ना के बावजूद अग्रेजी शासन से मुक्ति न पा

उन्होंने न्यू इडिया' में एक भारतीय राष्ट्रवादी के नाम से लेख लिखा। ये सुधार चीनी पहेली की तरह है। चीनी पहेली भी सुलझायी ना सकती है पर उन्हें सुलझा पाना कठिन है। सरकार के द्वारा दी हुई हर चीज छायामात्र थी, और ये सुधार तो महाछाया है"—इवनिंग टाक्स द्वितीय भाग पृ० २२ ।

सका। यह वर्ष भारतीय इतिहास में बहुत ही महत्त्व का स्थान रखता है, चाहे भिन्न भिन्न दृष्टिकोण वाले लोग इसे स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कहकर इसकी अभ्यर्थना करें, चाहे सिपाही विद्रोह कहकर इसका अवमूल्यन। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसे सिपाही विद्रोह से कुछ ज्यादा महत्त्वपूर्ण लोकप्रिय विद्रोह और भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम की संज्ञा दी है।[1] उनका यह कहना भी ठीक है कि 'असमय फूट पड़ने के कारण इस विद्रोह ने संचालकों की योजनाओं में उथल-पुथल पैदा कर दी।[2] स्वतंत्रता संग्राम या लोकप्रिय विद्रोह असफल हुआ किन्तु यह भी सही है कि इससे विदेशी सत्ता से त्राण पाने के लिए जनता के भीतर जो शक्ति मंथन पैदा किया वह निरर्थक नहीं गया। राजनीतिक रंगमंच पर असफल होने के कारण जनचेतना ने अपने प्रवाह को प्रणाली में परिवर्तन किया और वह धार्मिक जागरण, समाज सुधार के नये नये आन्दोलनों और राष्ट्रीयता को ज्यादा सुसंगठित करने वाले प्रयत्नों में नये उत्साह के साथ प्रवाहित होने लगी।

बंगाल निःसंदेह इस धार्मिक पुनर्जागरण या रिनेसाँ का अग्रदूत रहा। श्री अरविन्द ने लिखा है— इस विषय पर जेम्स एच० कज़िन्स ने बहुत ही *आलोकदायी निबंध* लिखे हैं और भी अनेक लोगों ने इसके अनेक पहलुओं पर विचार किया है। यह रिनेसाँ भारत में नवीनता का यह जन्म निश्चय ही भारत के लिए और विश्व के लिए भी बहुत बड़े महत्त्व की चीज है। भारत के लिए इस लिए कि समय प्राप्त प्राचीन अन्तरात्मा और मूल्यों की पुनरुपलब्धि या उसमें परिवर्तन हो सकेगा और विश्व के लिए, इसलिये कि भारत की शक्ति के पुनर्जागरण से जो दूसरी शक्तियों से अनेक मामलों में भिन्न है और जिसका स्वभाव और प्रातिभ बल उस शक्ति से अलग है जो इस समय विश्व मानव का नियंत्रण कर रही है। भारतीय नवजाग्रत शक्ति भविष्य में नियंत्रण कर सकनेवाली शक्ति से संभवतः करीब होगी इसलिए उससे अनेक संभावनायें और अपेक्षायें हो सकती हैं।[3]

श्री अरविन्द की दृष्टि से भारतीय रिनेसाँ का मुख्य उद्देश्य प्राचीन जीवित मूल्यों की पुनरुपलब्धि जीर्ण मूल्यों का नवीन में परिवर्तन और इनके माध्यम से भारतीय राष्ट्रात्मा का विश्व के विकास में अपेक्षित सहयोग दे सकना था या होना चाहिए।

श्री अरविन्द ने बड़े ही विस्तार से कज़िन्स के निबन्धों का विश्लेषण किया वस्तुतः तब तक श्री कज़िन्स की पुस्तक ही प्रकाशित हो सकी थी, जिसके साथ 'रिनेसाँ शब्द

१ डिस्कवरी आफ इण्डिया पृ० ३२४। २ वही पृ० ३२४।

३ द रिनेसाँ इन इण्डिया पृ० १। श्री अरविंद की यह पुस्तिका धारावाहिक रूप से अगस्त-नवंबर १९१८ के 'आर्य' में चार अंकों में छपी। इसका विश्लेषण यहाँ भारतीय पुनर्जागरण पर उनके विचारों से परिचय पाने के लिए किया जा रहा है।

जुड़ा था।[1] वे स्व पूछते हैं कि क्या इसे रिनेसां कहा जाय, जिस अर्थ में योरप में कहा जाता है। वे यो य रिनेसां की अपेक्षा आयरलैंड के पुनर्जागरण को भारतीय रिनेसां के ज्यादा करीब है। वे इस विषय पर तीन बिन्दुओं से विचार करना चाहते हैं— [१] भारतीय संस्कृति और जीवन का गौरवमय अतीत जो आज निराशा और तमिस्रा में डूबा है। [२] पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क का पूर्वार्ध, जिस काल में यह संस्कृति पूर्णतः म्रियमाण होकर नष्ट होने की प्रक्रिया में थी और [३] दो दावों से चलने वाला पुनर्जागरण जो पुनः ऊर्ध्व की ओर गत्वर हुआ है और जिसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई पड़ने लगी है।

कजिंस कहते हैं कि भारत हमेशा से जाग्रत रहा है। पुनः जागरण का प्रश्न क्यों? श्री अरविन्द कहते हैं कि कजिंस की दृष्टि यहाँ भारतीय आध्यात्मिकता पर केंद्रित है जिसे वे जाग्रत रहने का सबूत मानते हैं और इस दृष्टि से वे ठीक भी हैं, क्योंकि इसी शक्ति ने प्रत्येक संकट में भारत को विनष्ट होने से बचाया है किन्तु आत्मा भले ही थोड़ी बहुत जाग्रत रहती रही हो शरीर जीर्ण शीर्ण होता रहा है। इस लिए भारत को अपनी आत्मा को सुरक्षित रखते हुए अपने शरीर संगठन में संभावित परिवर्तन लाना होगा। उसे एक नये शरीर की संरचना करनी होगी। नवीन दार्शनिक, कलात्मक, साहित्यिक सांस्कृतिक राजनीतिक और सामाजिक रूपों में ढालना होगा। यद्यपि यह सब कुछ उसी आत्मा के पुनरुज्जीवन के माध्यम से ही होगा।

आध्यात्मिकता भारतीय जीवन की कुंजी है। किन्तु भारतीय आत्मा आध्यात्मिकता, वह भी पश्चिमी अर्थ में गुह्यवादिता तक सीमित नहीं थी। इसलिए हमें भारतीय आत्मा या चिति को ठीक से समझने की आवश्यकता है। भारतीय आत्मा (Spirit of India) को पहेली न रहने दिया जाय और यदि उसे विश्लेषित और परिभाषित करने का प्रयत्न किया जाये तो हम देखेंगे कि वह प्रायः कुछ निश्चित किस्म की गुणात्मक विशेषताएँ रखती है जिसका परिणाम भारतीय समाज और इतिहास में निरंतर मिलता है। श्री अरविन्द इन विशेषताओं को तीन श्रेणियों में रखना चाहते हैं। कजिंस ने भारतीय आत्मा को समझने के दौरान उसे अध्यात्म और परलोकवाद तक सीमित कर लिया। श्री अरविन्द कहते हैं कि आध्यात्मिकता सृजनात्मकता, और बौद्धिकता ये तीन खास विशेषताएँ हैं। भारत कभी भी भौतिक जगत की अस्वीकृति नहीं करता। वह भौतिक नियमों का महत्ता के प्रति जागरूक था। वह भौतिक शास्त्रों के महत्त्व को समझने की गहरी दृष्टि रखता था। वह जीवन के सामान्य धर्मों का व्यवस्थित करने की कला से खूब परिचित था पर वह यह भी अच्छी तरह जानता था कि भौतिक पक्ष कभी भी अपना सही अर्थ तब तक नहीं पा सकता जब तक वह अतिभौतिक (Supra physical) में अपने सम्बन्धों को न जान ले। वह जानता था कि विश्व की

१ रिनेसां इन इण्डिया, ऐस्से ऑन कजिन्स स्पेलिंग एण्ड कम्पनी मद्रास १९१८ ई०।

ाचीदा निर्माण प्रक्रिया को आज के भौतिक मानवीय परिभाषाओ से समझाया नह ा सकता, न तो उसकी सतही दष्टि से उसे देखा ही जा सकता ह, क्योकि उसके पीछे कुछ और शक्तियाँ काय कर रही है। उसके भीतर भी कुछ और काय चल रहा ह, जिससे वह प्राय सामायत अनजाना ही रह जाता ह, वह अपने बारे में भी अज्ञत ही जान पाता है। वह जानता था कि अदृश्य दृश्य को, अनेय नेय को उसी प्रकार घेरे ह जसे असीम ससीम को।[1] इसलिए भारत जीवन में निहित अदश्य की बहुत ही विस्तृत और खुली व्याख्या करने में समथ हुआ। इससे ही पश्चिमीजगत इसकी ओर आकृष्ट होना ह।

पर क्या भारत ने इस अदश्य के पीछे दीवाना होकर ससार की अवहेलना की ? श्री अरविन्द कहते ह—'जब प्राचीन भारत की ओर देखते ह तो सवत्र एक विराट सिसृक्षा, कभी भी खाली न होनेवाले जीवन का आनन्द, और उसकी अकल्पनीय रच नाओ का प्रयत्न हमें आश्चयचकित कर देता ह। कम स कम तीन हजार वर्षों तक, निश्चय ही यह अवधि और लम्बी हो सकती ह वह निरन्तर, भरपूर मात्रा में, उदार खर्ची के साथ अनन्त पहलुओ, ढग और ढरों म बिखर, लोकतत्र, राज्य, साम्राज्य दशन विश्व प्रक्रिया के सिद्धान्त, विज्ञान, मतमतान्तर, कला और काव्य, नाना प्रकार के स्मारक, महल मदिर, जन कल्याण के काय, जातियो समाज, धार्मिक शास्त्र विधान नियम कमकाड, भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान तथा योगपद्धतिया, राजनयशास्त्र, व्यवस्था और शासन के सिद्धान्तो, आत्मिक और सासारिक कलाओ, उद्योग धन्धा व्यापार, और उत्तम कला की वस्तुओ का निर्माण करता रहा। जाने यह सूची कितनी लम्बी हो सकती है। और प्रत्येक क्षेत्र में आपको सक्रियता का ज्वार उमड़ता दिखेगा। वह रचता ह। रचता जाता है और थकता नही, उसे कही इसका जसे अन्त ही नजर नही आता, उसे सुस्ताने के लिए न स्थान चाहिए न समय'।[2]

अध्यात्म और नाना प्रकार की असीम सजनात्मक सक्रियता के बीच कोई वस्तु चाहिए जो इस ठीक से, सतुलित और सयमित रखे और वह गुण था भारतीय बौद्धिकता। इसके न होने पर शायद वह सब कुछ नीले आसमान के नीचे बिछी अव्यवस्थित शीतो ष्णीय वनस्पतियों जसा हो जाता। यह सब नही हुआ क्योकि भारतीय चिति की तीसरी विशेषता सशक्त बौद्धिकता थी, एक साथ सयमित और समद्ध विराट और क्रियान्वयन में बारीकिया के प्रति पूण जिज्ञासु और कुतूहलपूण बौद्धिकता।[3]

इसलिए यह सोचना बहुत गलत ह कि गरीबी और जहालत में आध्यात्मिकता का

१ रिनेसाँ इन इण्डिया पृ० ६
२ रिनेसा इन इण्डिया पृ० ८
३ वही पृ० ९।

विकास होता ह। आधी मरी हुई जिन्दगी, और प्रताड़ित और लांछित बुद्धि यह सब कुछ नही रच सकती। इन स्थितियों में जो आध्यात्मिकता पनपती ह वह सडी गली मुमूर्षु होती ह और प्रतिक्रियावादी खतरा को निमन्त्रित करती है। भारत में अभी अभी अत्यधिक शक्ति और समृद्धि के विस्फोट के बाद जिस अध्यात्म का जन्म हुआ ह या हो रहा ह वह उसकी बीमार जिन्दगी क डाक्टर जसी प्राचीन आध्यात्मिकता से भिन्न ह। प्राचीन भारत में स्वस्थ और समृद्ध वातावरण में ही आध्यत्मिकता का जन्म हुआ था, उसे जिन्दगी के इनकार का परिणाम मानव वाले बौद्ध दृष्टिकोण से पूरे भारत को देखने की गलती करते हैं। बौद्धिकता को सही ढग से पनपने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता चाहिए। इसलिए भारत की स्वर्णयुग वाली कल्पना का अर्थ ही था स्वच्छन्द आध्यात्मिक अराजकतावाद। इसीलिए भारतीय बौद्धिक कह सकता था—'ओ राजन् तू क्या ह सिर्फ जनता का प्रधान नौकर ही न? भारतीय आध्यात्मिकता के अतिवाद ने कभी भी जीवन के व्यापक इन्द्रियात्मक क्षेत्रों की गहराई नापने और उससे आनन्द पाने से रोका नही और वहा भी वह प्रतिभा इन्द्रिय भोगो की गहराई को जानने और व्यक्त करने में अद्वितीय ऐन्द्रिक समृद्धि और उसके बारीक से बारीक ब्यौरे म सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर तक उतरती गयी। किन्तु यह सर्वदा ध्यान रखने की चीज ह कि सर्वाधिक विरोधी अतिवादी क्रियाओं की इस यात्रा ने कभी अव्यवस्था नही पैदा की और इसके सर्वाधिक भोग लिप्सात्मक युग ने भी कभी उस अनियन्त्रित भ्रष्टाचार को जन्म नही दिया जिसे इसी तरह की प्रवृत्तिया ने कई बार योरप म पदा किया ह। क्योंकि भारतीय मानस न सिर्फ आध्यात्मिक और नैतिक ह बल्कि बौद्धिक और कलात्मक भी ह। और बुद्धि का अनुशासन और सौन्दर्य का छन्द कभी भी उच्छृखलता के आत्मविरोधी रूप को स्वीकार नही करता।[1]

प्रश्न उठता ह कि यदि भारतीय मानस के पास इस सकट म अपने को बचा लेने की ये क्षमताएँ प्राप्त थी तो वह आज इस हालत को प्राप्त क्या हुआ? कहाँ गयी भारतीय आत्मा? कहा गया उसका ओज? इस पतन के लिए कई प्रकार के जिम्मेवार कारण ढूँढे जा सकते ह, पर श्री अरविन्द ने मुख्यत तीन कारण बताये ह। १—*प्राणिक शक्ति का ह्रास, जीवन में आनन्द और रचनात्मक प्रतिभा का बुझना* २—प्राचीन बौद्धिकता का रुद्ध होना और वैज्ञानिक तथा समीक्षात्मक जागरूक मानस की मूर्च्छा। ३—आध्यात्मिकता का मृत न होते हुए भी जीवन को तेजोदीप्त करने के कार्य से अलग हो जाना।

यह सब मानव चक्र की स्वाभाविक गति प्रक्रिया में उपस्थित हुआ। ऊर्ध्वमुखी रेखा इस बिन्दु पर अधोमुखी हो रही थी, उसी समय योरोपीयों का भारत पर

१ रिनेसाँ इन इण्डिया प० १४।

आक्रमण हुआ। परिणामत एक विरोधी सभ्यता से सघष पैदा हुआ। देश पराधीन बना। उसकी सम्पूण आशा निराशा में बदल गयी। इस आक्रमण ने प्राचीन जीण को धक्का देकर धूलिसात् कर दिया। नई रचनात्मकता सामने आयी, पर वह विदेशी सस्कृति की वाहिका थी। नतीजा हुआ कि हम अपने ऊपर मृत अतीत और विदशी रचनात्मक क्रियाओं की नक्ल का दुहरा बोझ उठाने की कोशिश में गिर पडे।

ऐसी स्थिति में पुनर्जागरण सभव कसे हुआ। विदशी सभ्यता और सस्कृति की टक्कर ने मूछित सुसुप्त और क्षत भारतीयता को पुनरुज्जीवित होने की चुनौती दी। अध्यात्म रचनाशीलता और बौद्धिकता को विदशी सस्कृति के टकराव ने पुन शक्ति सम्पन्न कर दिया। किन्तु बदलते हुए युग में प्राचीन तौर-तरीका को अपनाये हुए ये विशेषताएँ उपयागी नही हो सक्ती थी, अत भारतीय आत्मा की अपनी जीवनी शक्ति और सकट के अनुकूल अपने में परिवतन लाने की क्षमता ने इस चुनौती को सही ढग से स्वीकार करने का निश्चय किया। इस प्रक्रिया में प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञान का पुन अन्वेषण जरूरी हुआ। इस पूरे विषय को युगानुकूल दशन, साहित्य, कला, विज्ञान आदि में ढालना दूसरी आवश्यकता थी। किन्तु पुनर्जागरण की तीसरी अपेक्षा बहुत महत्त्वपूण होती है वह है नवीन समस्याओं का भारतीय मिजाज के अनुकूल मौलिक समाधान ढूढना और उनके साथ भारतीय आध्यात्मिक ढग से गठित समाज का सही समन्वय स्थापित कर पाना। यह तीसरा काम बहुत पचीदा और कठिन था। भारतीय पुनर्जागरण के प्रथम दौर ने उपयुक्त दो उद्देश्या की बहुत हद तक सफलतापूवक पूर्ति कर ली, पर वह तीसरी आवश्यकता को पूरा न कर सका।

श्री अरविन्द ने अपने द्वारा निर्धारित उपयुक्त तीन मानदण्डा के अनुसार भारतीय पुनजागरण के ऐतिहासिक विकास की समीक्षा भी उपस्थित की। रिनेसाँ काल में उपस्थित सघष और टकराव को उन्होंने दष्टिकोण और कायप्रणाली तथा उपलब्धियों का दखते हुए दो वर्गों में विभक्त किया। पहला वग वह था जो योरोपीय सस्कृति का स्वीकारते हुए अपने अतीत के मूल्यों का पुन परीक्षण कर रहा था। इसने नि सदेह जीण शीण रूढियों का नकारने का काय किया, परन्तु प्राचीन भारतीय सस्कृति क कुछ अत्यन्त प्राचीन और जीवन्त मूल्या को भी नकारा तथा कुछ ने पूरी प्राचीन सस्कृति का नकारने की क्रांतिकारी कोशिशें भी की। हम इसे ही पीछे उदारतावादी दल या नरम दल कह आए हैं। दूसरा वग वह था जो पश्चिमी सस्कृति के विरोध में भारतीय सस्कृति की प्रतिक्रिया का महत्त्व देता था यह प्राय पश्चिमी सस्कृति के प्रभावों को अस्वीकृत करने प्राय सब कुछ का अस्वीकृत करने के लिए उद्यत था। वह प्राचीन भारतीय सस्कृति के सभी आवश्यक तत्त्वों यहा तक कि ध्वस्त और रूढ़ तत्त्वों, को भी जिलाये रखना चाहता था। तीसरा पक्ष अभी (१९१८ तक) उभर रहा है जो प्राय उस नवीन रचनात्मकता पर बल देता है जिसमें भारतीय आध्यात्मिक शक्ति प्रधानत

अपना रचनात्मक रूप ले ले अपने नागरों को पुनः जागृत करे और उनमें से जो ठीक और सारभूत हैं तथा नवीन विचारों और रूपों में अपने को ढाल देने में सक्षम हैं उन्हें ग्रहण कर ले। इन्हें इस ढंग से विकसित किया जाये कि नवीनतम विचारों का सम्यक् स्वागत और आत्मीयकरण हो जाय कि उनका निर्विरोध प्रवेश हो जाय और व भारतीय संस्कृति, भारतमाता की अपनी मौलिक विचारधारा जैसे बन जायें। इनमें कम से एक सम्मिलित पक्ष था जो तत्पूर्ण हो मोड़ को उसी पर आधारित पाश्चात्य विचारों को लक्ष्य कर कुछ साहित्य सृजन भी किया। इस भारतीयकरण के भी कुछ अच्छे परिणाम निकले। इसने प्राचीन भारतीय बौद्धिकता को जागृत कर प्रसार किया। शुरू शुरू में यह बौद्धिकता प्राचीन से जुड़ी तक सिमटी रही किन्तु अब वह धीरे-धीरे आधुनिक जीवन के परिवेश को ठीक से समझ कर प्राय सभी साहित्य क्षेत्रों में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का उपयोग कर रही है। इस भारतीयकरण का एक और अच्छा नतीजा सामने आया। प्राचीन गुरुत्व संस्कृति के साथ। एक दम नये विचारों को ग्रहण करके इसने हमें सम्पूर्ण भारतीय दृष्टिकोण से अलग नये ढंग से सोचने और तदनुरूप अपने को ढालने की प्रेरणा दी। जिसका परिणाम यह हुआ कि हम नये दृष्टिकोण से भारत अतीत का पुनः परीक्षण करने की दिशा में प्रयत्नशील हुए। इस प्रयत्न के द्वारा हम अपनी संस्कृति के मूलभूत स्वभाव के अनुरूप तथा नये रूपों को दृष्टि में रखकर नये प्रकाश का कुछ ऐसे जिन्होंने प्राचीन सत्यों को नये पहलू और रचनात्मक तथा विकासशील नई क्षमताएं प्रदान कीं। बंकिमचन्द्र इसी प्रकार की प्रतिभावान व्यक्ति थे। उन्होंने अपने देश को पृथ्वी के एक टुकड़े की जगह जीवित भारतमाता का रूप प्रदान किया। श्री अरविन्द के ही शब्दों में — जब तक मातृभूमि हमारी आँखों के सामने अपने को पृथ्वी के एक अंश या व्यक्तियों के समूह से भिन्न एक देवता, एक मातृशक्ति के रूप में प्रकट नहीं करती, जिसका सौंदर्य बुद्धि को आकृष्ट करे हृदय पर अधिकार कर ले और छोटे-मोटे आत्मरक्षा के भय आदि भाव मातृभूमि के प्रति प्रेम और सेवा के सामने विनष्ट हो जाय, और ऐसी देशभक्ति जन्म ले जो अभिशप्त देश को बचा लेने के लिए आश्चर्यकारी करिश्मे कर दिखाये तब तक राष्ट्र का जन्म नहीं होता।'[1] बंकिम ने 'वंदेमातरम्' मंत्र से यह सब कुछ सिद्ध करके दिखा दिया। रचनात्मक क्षमता का एक और रूप टैगोर में प्रतिफलित हुआ। वह उसके वर्ग के प्रतिनिधि रचनाकार हैं जो शुरू में विदेशी प्रभावों से बहुत भरा भरा था, किन्तु जिसने शीघ्र अनुभव कर लिया कि भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण के दबाव में ज़िद पूर्वक पश्चिम को पकड़े रहना संभव नहीं है। अतः इस वर्ग की बहुत बड़ी संख्या एक नई रचनात्मकता की ओर आकृष्ट हुई। यानी पश्चिमी आधुनिकता को पूरी तरह अपनाते हुए भी

१ बंकिम, तिलक, दयानन्द पृ० १४।

प्राचीन भारतीय अभिप्राया और भावा को व्यक्त करना। पहले की अपेक्षा ज्यादा सुदर आन्तरिक दष्टि के साथ इन लोगा ने भारतीय वस्तुओ और उनके स्वभावा का उदघाटन किया। यहा भारतीय आत्मा की स्वीकृति पर ज्यादा जोर रहा, उसके पुराने कलेवर पर नही, इसलिए सस्कृति एक नई विशेषता से उदभासित हो गई थी।

इसी के समानान्तर धार्मिक क्षेत्रो में प्रतिक्रियाए चलती रही। आरभ में यह प्रतिक्रिया प्रत्येक भारतीय धारणा को सही साबित करने और उसकी पुन स्वीकृति के लिए सघर्षरत रही। स्वामी दयानन्द इसी वग के प्रतिनिधि थे। उनके बारे में श्री अरविन्द ने बहुत ही विस्तार से लिखा है—"यह वह व्यक्ति ह जिसने अनुद्यत वस्तुआ के भीतर किसी भी बाहरी मिश्रण का स्वीकार नही किया पर इन वस्तुआ और व्यक्तियो पर अपनी ऐसी जबदस्त मुहर लगाई जिसे मिटा सकना असभव ह। उनके सभी काय उनकी सच्ची सततिया हैं, उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व की तरह ही दढ और पुष्ट।[1]" स्वामी दयानन्द के महत कार्यों की अपनी अशेष श्रद्धाजलि देन हुए श्री अरविन्द ने लिखा है—" ईश्वरीय उद्योगशाला में मैंने जब भी इस महान कलाकार (Artisan) को देखा ह मेर सामने आकृतिया का एक ऐसा समूह खडा हो जाता ह जा युद्ध क्षेत्र में पल थे, उनका समूचा काय युद्ध और विजय के श्रम की सफलता स मडित था। इसी सदभ में मैंन अपन से कहा, यह देखा, यह ह ज्योति का सनिक ईश्वर का सिपाही, मनुष्या का बनाने वाला मूर्तिकार, सस्थाओ का निर्माता, कठिनाइया पर विजय पाने वाला सख्त चट्टानी और साहसी व्यक्ति, जिसने सब कुछ आत्मा के लिये दे दिया। सब कुछ मिलाकर वे मेरे ऊपर आध्यात्मिक व्यावहारिकता के शक्ति शाली प्रभाव छोड गये। भौतिक और आध्यात्मिक जगत की सारी धारणाए जो हमारे मन में इतना अलग अलग रहती हैं एकाकार होकर मेर लिए दयानन्द की परिभाषा बन गयी।"[2] किन्तु दयानन्द ने भविष्य को, नवीन को उसका प्राप्य नही दिया।

इसलिए दयानन्द के कार्यों क प्रति अपनी समुचित श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए भी श्री अरविन्द स्वीकार करते हैं—"अतीत और वतमान को स्वतन्त्रतापूवक समझते हुए, नई रचनात्मकता द्वारा उन्हें सुरक्षित और विकसित करने के महान प्रयत्न का उदाहरण ह विवेकानन्द का पूरा जीवन।'[3] अतीत और वतमान का ठीक में जोडे बिना काम नही चलेगा।

किन्तु पुनजागरण के इस समूचे विवेचन का निष्कष हमें सन्तुष्ट नहा कर सकता, क्योंकि भारतीय समाज आज भी सर्वाधिक अराजक स्थिति म पडा ह। पुराने मूल्य टूट रहे

१ बकिम दयानन्द और तिलक, पृ० ४९।
२ वही पृ० ५०।
३ रिनैसाँ इन इण्डिया प० २८।

ह , वचारिक और इच्छाशक्ति की जडता के कारण वह स्थिति नही पैदा हो रही है कि नये मूल्यो को जन्म दे सके। इसे अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए तीसरे चरण से गुजरना ही होगा जो श्री अरविन्द के अनुसार भारतीय आध्यात्मिक शक्ति का सही चरण होगा। *उन्होने बलपूर्वक उन गलत धारणाओ का निरसन किया है जो यह* मानकर चलती है कि समाज, संस्कृति कला, विज्ञान आदि से अध्यात्म का कोई सरोकार नही होता। एसे लोग इस अध्यात्म को बेसुरा राग (Twang of Sp ri tuality) कहते है क्योकि उनके लिए अध्यात्म का अथ है जीण शीण प्रतिक्रियावादी धारणाए तर्कहीन गुह्य रहस्यवाद, अध विश्वासमूलक धार्मिक कर्मकाड, आधुनिकता का विरोध। श्री अरविन्द की दृष्टि से अध्यात्म का अथ न तो जिन्दगी से पलायन है न जगत का इकार न आधुनिकता से घबराहट और न तो फैशन से परशानी। अध्यात्म को मनवाद के रूप म देखने वाले खुद राजनीतिक मतवादो का रूढिग्रस्त *लबादा ओढे कूपमडूक की तरह टर टर करने में शान का अनुभव करते है। श्री* अरविन्द की आध्यात्मिकता एक पक्ति में समझाने की चीज नही है। कहना चाहें तो उसे "जीवन का ऐसा ढाचा कह सकते है जिसमें मनुष्य अपनी निजी अन्तरात्मा के अनुसार विकास कर सके जहा (अधसत्यवाले मानवीय वादो के स्थान पर) दिव्यता को जगह मिले, जहा मनुष्य बल्कि यों कहें कि पूरा मानव जाति प्रकाश, शक्ति, शाति एकता, समन्विता आदि दिव्य गुणो को उपलब्ध कर सके जिस ओर पूरी मानव जाति विकसित होने के लिए लगातार प्रयत्नशील है। यही न कम न बेशी हमारी आधात्मिकता का अथ है।

भारतीय पुनर्जागरण के इसी तीसरे चरण को जो प्रक्रिया के अवरुद्ध हो जाने से विकसित न हो सका उपलब्ध करना उत्तर योगी का असली मिशन था उद्देश्य और सकल्प था।

बडौदा आए अभी छह महीने ही हुए थे। श्री अरविन्द देश की स्थिति का बडी बारीकी स अध्ययन कर रहे थे। बडौदे में खासीराव जादव उनके घनिष्ठ मित्रो म थे। जब भी वे बम्बई आते श्री अरविन्द को अपने साथ रखने के लिए डण्डिया बाजार स्थिति अपने मकान पर ले जाते। श्री के० जी० देशपाण्डे श्री अरविन्द के इग्लण्ड म सहपाठी रह चुके थे। वे इग्लण्ड से लौटकर बम्बई में बरिस्टर बने। इन्दुप्रकाश पत्रिका के अग्रेजी अश का सम्पादन उनके जिम्मे था। इस पत्रिका का मराठी अश भी हुआ करता था।

पुराने की जगह नये दीये

के० जी० देशपाण्डे ने इन्दुप्रकाश के ७-८-१८९३ के अक में लिखा —

हमने अपने पाठको से कुछ समयपूर्व यह वादा किया था कि हम अपनी राजनी

१ रिनेसाँ इन इण्डिया पृ० ४८-४९।

तिक प्रगति पर एक अत्यन्त सुयोग्य और आधुनिक परिवेश को सूक्ष्म दृष्टि से देखने में सक्षम व्यक्ति की लेखमाला प्रकाशित करेंगे। हमें अपने पाठकों के सामने लेखमाला की पहली किस्त उपस्थित करते हुए प्रसन्नता हो रही है। लेखमाला का शीर्षक है 'पुराने की जगह नये दीये, जो रूपकात्मक होते हुए भी सकेतगर्भी है। × × इस लेखमाला में अभिव्यक्त विचार प्राय आज के राजनीतिकों के विचारों से मेल नहीं खाते। इसी लिए ये ज्यादा महत्वपूर्ण है। हमें लगता है कि राजनीतिक प्रगति का हमारा प्रयत्न खडित हो गया है और उसमें क्षमता का अभाव है। हमारे राजनीतिक आन्दोलनों में धोखेबाजी और आडम्बर का पाप छाया हुआ है। कुटिल और वक्र दृष्टिकोणों का फैशन चल रहा है। ऐसी स्थिति में सच्ची तथ्यात्मक और ईमानदारी पूर्ण आलोचना की सख्त जरूरत है। हमारी संस्थाओं की नीव बडी कमजोर है और वे भहराकर गिर जाने की स्थिति में आ गई है। हमारी राजनीतिक प्रगति के लिए सकल्पित शक्ति यदि गलत दिशा में लग रही हो तो इन स्थितियों में चुप रहना, सुस्ती ही नहीं, भयानक अपराध माना जायेगा × × अत हमने अद्भुत साहित्यिक प्रतिभा सम्पन्न उदार सास्कृतिक और काफी अनुभव तथा लेखनकला प्रवीण एक व्यक्ति की सेवाए प्राप्त की है। वे अपनी व्यक्तिगत असुविधाओ तथा अपने को गलत ढंग से समझे जाने के जोखम के बावजूद अपने विचारों को बिना सकोच और अनिश्चय के एक खास शैली में जो, उनकी बिल्कुल अपनी है प्रकट करेंगे। हम अपने पाठकों से लेखक की ओर से आग्रह करते है कि आप इस लेखमाला का लगातार अवधानतापूर्वक देखे और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इन निबंधों में ऐसी सामग्री है जो आपको सोचने के लिए प्रेरित करेगी और आपकी दम्भभरितपूर्ण आत्मा को झकझोर कर रहेगी।

यह व्यक्ति और कोई नहीं, श्री अरविन्द थे। देशपाडे ने उनके लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया था, उसे लन्दन आवास में साथ रह कर चरितार्थ पाया था। लेखन शैली और सत्यकथन में हर जोखम को स्वीकार करने वाले उस नवयुवक की प्रतिभा और ईमानदारी के वे कायल थे। इसीलिए बिल्कुल नये आदमी की—ऐसी लेखमाला जिसमें उसका नाम नहीं दिया जाता था, प्रकाशित करने का उन्होंने साहस किया।

पाठकों की आत्मा सिहरी, झकझोरित हुई या नहीं, यह तो कौन जाने, पर उस वक्त के बडे-बडे राजनेताओं की कुर्सी हिलने लगी और पैरों के नीचे की धरती खिसकने लगी। ७ अगस्त १८९३ से ६ मार्च १८९४ तक इन्दुप्रकाश में ये कुल ग्यारह राजनीतिक निबन्ध धारावाहिक प्रकाशित होते रहे।[1] आरम्भ के सिर्फ दो निबन्धों ने ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बजुगवार नेताओं को कम्पित कर दिया। इन निबन्धों के कुछ चुने हुए अंशों की बानगी देखें —

१ श्री अरविन्दाज पोलिटिकल थाट्स हरिदास और उमामुकर्जी पृ० ६१ १२३। (नौ निबंधमात्र)

'कांग्रेस के बारे में मुझे कहना है कि इसके उद्देश्य गलत हैं, अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जिस भावना से वह चल रही है उसमें न तो ईमानदारी है, और न तो पूर्णता। इसके चुने हुए तरीके गलत हैं जिन नेताओं को हमने अपना विश्वास सौंपा है, वे नेता होने लायक सही आदमी ही नहीं हैं संक्षेप में यह कि हम अंधे नीत हैं, भले ही नेता अंधे न हों, पर काने तो वे निश्चित ही हैं।[1]"

ऐसा नहीं कि श्री अरविन्द कांग्रेस संस्था के विरुद्ध थे जैसा बहुत से लोग सोचते हैं। उन्होंने खुद कांग्रेस नाम के मादन का विवरण देते हुए लिखा था—"हमें ऐसे पारदर्शी शब्द कहाँ मिलेंगे जो हमारी उन आसङ्की प्रभाती आशाओं को और बगास सूर्य जैसे प्रसर हमारे उत्साह को प्रकट कर सकें। कांग्रेस हमारे लिये वह सब कुछ थी जैसे किसी इन्सान के लिये उसकी सर्वाधिक प्रिय वस्तु होती है। सर्वोच्च, पवित्रतम, सहारा के रेगिस्तान से भी ज्यादा दारुण हमारे जीवन के मरुद्यान का यह जीवन-जल भरा कुँआ थी, स्वतन्त्रता के महायुद्ध की विजयध्वजा थी वह कौमों की एकता और मिल्लत का पवित्र मंदिर थी।'[2]

कांग्रेस के समूचे संगठन, कार्य-व्यापार और नेतृत्व से श्री अरविन्द इतने चिढ़े क्यों? यह चिढ़ना नहीं है बल्कि उदासमन से कांग्रेस की असफलता की जागरूक स्वीकृति है। मोहभंग का खुला दस्तावेज है। उदारदल के नेताओं को खुली चुनौती है और उनसे साफ साफ कहा गया है कि ब्रिटिश राज्य से याचक की मुद्रा में दान मांगने से स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। श्री अरविन्द को कांग्रेस का पूरा कार्यक्रम अपूर्ण और दयनीय प्रतीत हुआ। असल में उस वक्त की कांग्रेस उन व्यक्तियों के नेतृत्व में चल रही थी जो प्रार्थनापत्रों की मुद्रा में शासन के सामने गिड़गिड़ाकर जनता के लिए कोई मामूली वैधानिक या छोटी मोटी आर्थिक सहायता या लगान मुल्तवी जैसी अतिसामान्य सुविधायें मांगकर और पाकर अपने होने के अहसास का सबत्र प्रचार किया करते थे। अरविन्द का रोप उस कार्यप्रणाली पर था जो जनता की मूलभूत शक्ति से न जुड़कर अपने कार्यों के लिये विदेशी शासन से याचना कर रही थी। जनता का अर्थ मध्यवर्ग के कुछ सफेदपोश लोगों तक सीमित था। जो यह मानकर चलते थे कि मूक जनता के पास अपनी कठिनाइयों को व्यक्त करने के लिये शब्द नहीं है, सामर्थ्य नहीं है और जब तक ऐसा नहीं होता वह काम हम करेंगे। श्री फीरोज शाह मेहता ने १८९० के कलकत्ता अधिवेशन में कहा था कि यदि जनता अपनी मांगों को शब्द दे सकने की स्थिति में आ गई है तो समय सलाहकार समितियों का नहीं प्रतिनिधि-समितियों का आ गया है, किन्तु जनता अभी ऐसा करने में समर्थ नहीं है

१ इन्दुप्रकाश २८ अगस्त १८९३।
२ इन्दुप्रकाश ७ अगस्त १८९३।

इसलिये यह कार्य उनके पढ़े लिखे भाई-बन्धुओं के ऊपर आ गया है कि वे उनके दुःख का अनुभव करें, समझें और उसे सरकार के सामने उपस्थित करें।'[1]

ऐसी ही मनोवृत्ति वालों को सम्बोधित करते हुये श्री अरविन्द ने ४ दिसम्बर, १८९३ के इन्दुप्रकाश के निबन्ध सं० ७ में लिखा है—"कांग्रेस एक मध्यवर्गीय संगठन बनकर रह गई है, स्वार्थी, जनकार्यों में पूर्णतः कपटी अपने आदर्शों के प्रति खोखले और देशभक्ति से रहित लोगों का संगठन। श्री फीरोज शाह मेहता अपनी सावधानतापूर्ण प्रतिबंधित और औसत दर्जे के तापमान वाली देशभक्ति की उदारता के द्वारा हमें विश्वस्त करना चाहते हैं, बड़ी भद्रता के साथ समझाते हुये कि भारतीयों का अपने अज्ञान और दुःखों के प्रति जागरूक होने का कतई कोई महत्व नहीं है और इस दिशा में किया गया शक्ति का अपव्यय पूर्णतः नासमझी का परिणाम होगा। किन्तु मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि हमारे देश का सर्वहारा ही, जो कष्टों में पड़ा अज्ञान की जिन्दगी जी रहा है, मध्यवर्गीय लोगों के ईमानहीन, शक्ति और निर्णय की क्षमता से रहित सिद्ध हो चुकने पर, हमारी आशा का एकमात्र केन्द्र बिन्दु, और हमारे भविष्य की एकमात्र संभावना बच रहता है, चाहे हम उसे पसन्द करें या नापसन्द। मुझे, जानता हूँ सिद्धान्त बघारने वाला बकवादी कहा जायेगा, परन्तु मैं साफ साफ जोर देकर कहना चाहता हूँ कि सर्वहारा का उत्थान और उनको जाग्रत बनाना हमारा पवित्रतम कर्तव्य है।"[2]

बहुत से पाठक भी संभवतः सर्वहारा (Proletariat) के प्रति श्री अरविन्द की उस हिमायत से चौंकेंगे। किन्तु ऐसा आश्चर्यकारी धक्का उन्हें ही लगेगा जो यह मानकर चलते हैं कि श्री अरविन्द धार्मिक महात्माओं की कोटि के वर्ण व्यवस्था, जाति पाँति, यानी एक शब्द में मध्यकालीन बोध को ढोने वाले योगी थे। वे कट्टर क्रान्तिकारी और अनेक अर्थों में आर्थिक वैषम्य के विरुद्ध जेहाद बोलनेवाले समाजवादी थे। उन्होंने अपने को अनेक बार आध्यात्मिक साम्यवादी (स्पिरिचुअल कम्युनिस्ट) कहा है।[3] श्री अरविन्द को पूँजीपतियों का रक्षा-कवच नहीं बनाया जा सकता, इसे जानकर ही, उनके झण्डे के नीचे आने की हिम्मत करनी चाहिये। वरना ऐसे लोगों को बाद में बड़ा निराशा होती है।

सर्वहारा क्या है ? उसका महत्व क्या है ? उसकी क्षमता और शक्ति क्या है। इसे आज भारत के लोग जानने लगे हैं। पर १८९३ में श्री अरविन्द ने लिखा था— "जैसा मैंने अब तक समझाने का प्रयत्न किया, सर्वहारा ही इन सारी समस्याओं की

१ प्रोग्रेस आफ इण्डियन नेशनलिज्म में उद्धृत पृ० ७१।

२ इन्दुप्रकाश निबंध नं० ७, ४ दिसम्बर १८९३।

३ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ०३३ द्वितीय भाग १०३। 'वाद में वे किसी भी वाद को तन्निहित अपूर्णता के कारण स्वीकार करना उचित नहीं समझते थे क्योंकि किसी तथाकथित वाद के घेरे में उनका पूरा दर्शन समा नहीं पाता।" रेमिनिसेंसेज एण्ड एनकडोट्स पृ० ६३।

असली कुन्जी ह। वह अभी गुप्त ह, निष्क्रिय हैं, वह वह अभी एक सचमुच की शक्ति नही लगता किन्तु वह एक महान् छिपी हुई शक्ति ह और जो भी इस शक्ति को समझना और इस्तेमाल करना जान जायेगा वह इसी तथ्यानुसार भविष्य का नियामक भी बन जायेगा। हमारी स्थितियाँ निश्चय ही बहुत कठिन और उलझी हुई ह। जिसकी कल्पना वणिक बुद्धि के सामर्थ्य के बाहर ह, किन्तु इसम जो चीज सबसे अधिक साफ और स्पष्ट ह इसे हमारे जन प्रतिनिधियो को जान लेना चाहिय। उनके लिये मात्र सफल नीति जो भविष्य में सफलता की एक मात्र सभावना वाली नीति हो सकती ह वह अपन कायक्रमो में सवहारा को आधार बनाकर सचालित करन की हो हो सकती ह। हमारे जननेताओं को जागना ह और राष्ट्र की समूची शक्ति को सगठित करना ह। तभी उस एक अन त महत्व और वशिष्ट्य मिल सकेगा जिसके माध्यम से वह राजनीतिक और स माजिक दोनो तरह के अधिकारो को उपलब्ध कर सकेगा।

'पुराने की जगह नय दीये' शीषक लेखमाला में अग्रेजी शासन व्यवस्था और अग्रेजी नीतियो पर भी जमकर हमला किया गया। डा० कण सिंह ने इस दृष्टि से अरवि द के महत्वपूण योगदान को स्वीकार करते हुए लिखा ह—"अरविन्द के आन क पहले तक यह समीक्षा घुमा फिरा कर दबे हुए स्वर में, तथा बुरी तरह छद्मशब्दावली की आड में इस तरह अभिव्यक्त होती थी कि शासन के क्रोध और दण्ड विधान से बचा जा सके। श्री अरवि द के इ दुप्रकाश के लेखो न एक नयी तम्नीली पदा की और प्रचलित डर से अलग एक सीधी और मुखर आलोचना का श्रीगणेश हुआ जिसन पूरे देश को एक नवीन तरह के भावोत्तजन से भर दिया।'[२]

श्री अरविन्द की दृष्टि सिफ राजनीति पर ही केंद्रित नही थी। व पश्चिमी समाज और सस्कृति से परिचित थे। पूर्वी परिवश एक म था जो ह की हवा के लगते ही प्रज्वलित हो उठा। उ होन लिखा—'हम भारतवासी जिनकी अनेक जातियाँ, जो आज के किसी भी प्रगतिशील आ दोलन में आगे ह ज्यादातर फ्रासीसी और एथेनियन के नजदीक ह अपेक्षाकृत एग्लो सेक्सन (इन्ही में अग्रेज जाति भी आती ह) के, किन्तु अग्रेजी पराधीनता की दुघटना के कारण हमारी बौद्धिकता शुद्ध अग्रेजी खुराक पर पाली गयी ह। नतीजा यह हुआ कि हम अपनी स्वभावज विशेषताओ के अनुरूप बाहर से किसी राजनीतिक विचार धारा का दाम झाम न खरीद कर, अपन अरगनी पर अपनी मामूली और कम पोशाको के साथ ही अपने अग्रेज मालिको की पुरानी चियडी खखडी उनरने लटकाये रहत ह।'[३]

१ इन्दुप्रकाश निबध ११ माच ६ १८९४।
२ प्राब्लेम आफ इण्डियन नेशनलिज्म पृ० ५२।
३ इन्दुप्रकाश निबध स० ५ ३० अगस्त १८९३।

इस तरह की समाजशास्त्रीय व्यंग्यात्मक समीक्षा अंग्रेजों के लिए भी बड़ी सनसनी खेज प्रतीत होने लगी। अरविन्द को अंग्रेज नौकरशाही से सख्त घृणा था। उनकी सन्ध्या वार्ताओं में कई जगहों पर अंग्रेज अफसरों के घिनौने कृत्यों पर धिक्कार सुनाई पड़ती है। उन्होंने इन्दुप्रकाश में लिखा "मैं मानता हूँ कि ये अभद्र और घमंडी होते हैं। ये बुरी तरह शासन करते हैं। ये महान या उदार भावनाओं से रहित हैं, इनका आचरण चतुर्दिक फैले हुए दासों के देश में स्थित छावनियों के मालिकों से मिलता-जुलता है। यह सब कहने का अर्थ यह है कि ये अत्यन्त मामूली लोग हैं जो गैरमामूली जगहों पर नियुक्त हैं। ये सचमुच के मामूली लोग हैं, न सिर्फ मामूली, बल्कि मामूली अंग्रेज यानी मध्यवर्गीय मामूली अंग्रेजों के नमूने जिन्हें शिष्ट अंग्रेजी के मुहावरे में असंस्कृत और अभद्र (Philistines) कहा जाता है जो संकुचित दिमाग और व्यापारी बुद्धि के हुआ करते हैं।"[१]

इन निबन्धों ने कांग्रेस के उदारतावादी नेताओं की नींद हराम कर दी। श्री रानाडे ने जो पत्र के संचालन से भी सम्बद्ध थे, देशपांडे को धमकी दी कि उनपर राजद्रोह का शीघ्र मुकदमा चल सकता है। देशपांडे ने श्री अरविन्द से आग्रह किया कि निबन्धों का स्वर थोड़ा मृदु कर दें। श्री अरविन्द ने खुद लिखा है—"*यह निर्भीक और अकाट्य आलोचना एक नरमदल के नेता के कार्य के फलस्वरूप बन्द हो गई, जिन्होंने सम्पादक को भय दिखाया और इस तरह उस पत्र में उन विचारों को पूर्णरूप से विकसित नहीं होने दिया। उन्हें आगे के निबन्धों में कांग्रेस को प्रवृत्तियों का मध्यवर्ग के क्षेत्र से परे विस्तृत करने तथा उसमें सर्वसाधारण जनता को स्थान देने की आवश्यकता आदि सामान्य विषयों की ओर ध्यान देना पड़ा। अन्त में उन्होंने (श्री अरविन्द ने) इस* प्रकार का सब सार्वजनिक कार्य बन्द कर दिया और १९०५ तक सिर्फ पर्दे के पीछे हो काम करते रहे।[२] असल में यह लेखमाला उनके विलायत से लौटने के बाद तुरन्त शुरू हो गई थी और इसमें जो बाधाएं खड़ी हुईं उन्हें देखते उन्होंने अध्ययन को ज्यादा प्रमुखता दी, ताकि परिवेश को ठीक से जान सकें।

श्री अरविन्द को उस व्यक्ति से मिलने का मौका भी मिला, जिसके कारण इन्दुप्रकाश में चलने वाली लेखमाला का स्वर बदलना पड़ा था और बाद में उसे बन्द कर देना पड़ा था यानी महादेव गोविन्द रानाडे से। *१८९४ में यह भेंट बम्बई में हुई।* रानाडे इस अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति से मिलने के इच्छुक हुए। यह भेंट उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण थी, क्योंकि वे इस आदमी को कांग्रेस पर प्रहार करके शक्तिक्षय करने की अपेक्षा सुधारवादी कार्यों में लगाना चाहते थे। उनके हिसाब से सबसे महत्वपूर्ण सुधार

१ इन्दुप्रकाश दिनांक सं० र २१ अगस्त १८९३।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माताजी के विषय में, पृ० २२।

वादी काय जेल की स्थिति का अध्ययन करना और उसमें कुछ विशेष तरह की सुविधाओं का प्रबन्ध करना था। श्री अरविन्द ने उनकी सलाह का तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया। बाद में उन्होंने व्यंग्यपूर्वक लिखा—'रानाडे महोदय ने जेलप्रणाली के संशोधन का भार मेरे ऊपर देने की इच्छा प्रकट की थी। रानाडे महाशय की इस अनिश्चित युक्ति से मैं बहुत हैरान और असंतुष्ट हो गया था, और उस भार को अपने ऊपर लेने से मैंने इन्कार कर दिया था। उस समय मैं नहीं जानता था कि यह बात केवल दूर के भविष्य का आभास है। और एक दिन भगवान् स्वयं एक वर्ष के लिए जेल में रखकर इस प्रणाली की निठुराई और उसके संशोधन की आवश्यकता मुझे समझायेंगे।'[१]

इसी वर्ष १६ अगस्त से २७ अगस्त के इन्दुप्रकाश के अंकों में उन्होंने बंकिमचन्द्र पर धारावाहिक लेख लिखा जिनमें उनकी रचनाओं की साहित्यिक समीक्षा प्रस्तुत की गई। ये लेख इस बात के द्योतक हैं कि उन्होंने लिखित प्रकाशित बांग्ला खूब सीख ली थी, पर बोलने का अभी ठीक अभ्यास नहीं हुआ था। १८९८ में उन्होंने दिनेन्द्रनाथ राय को वैतनिक बंगाली अध्यापक के रूप में रख लिया ताकि उनसे वे बंगाली मुहावरे और उच्चारण सीख सकें।

१८९९ में जब प्रा० लिटिलडेल छुट्टी पर गये तो श्री अरविन्द को फ्रेंच के साथ ही साथ अंग्रेजी पढ़ाने का काम भी सौंपा गया। इन्हीं दिनों उन्होंने बड़ौदा कालेज के एक समारोह में "आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज" पर एक भाषण दिया। उस भाषण की कुछ पंक्तियाँ ध्यान देने की हैं क्योंकि इनमें उनकी राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की बहुत सी धारणायें बीज बिन्दु के रूप में विद्यमान हैं —

(१) अध्यापन का अर्थ सूचनाएं देना नहीं, बल्कि मनुष्य की बौद्धिक और ऐसी ही दूसरी क्षमताओं को प्रकट करना या अभिव्यक्त होने के लिए अवसर प्रदान करना है जिनके द्वारा मनुष्य मनुष्य बनता है।

(२) विश्वविद्यालयों (आक्सफर्ड-कैम्ब्रिज) का वातावरण बुद्धि का विस्तार चरित्र की दृढ़ता सामाजिक शक्तियों का विकास, करके किसी भी छात्र को तीन वर्षों में बालक से मनुष्य में बदल देता है। मस्तिष्क बड़े मस्तिष्कों के सम्पर्क से परिपक्व होता है उसके पूर्वग्रह नष्ट होते हैं। असामाजिक और अहंकार पूर्ण दुर्गुण खत्म होते हैं।

(३) पुस्तकीय शिक्षा से ज्यादा महत्वपूर्ण वह सामाजिक शिक्षा है जो व्यक्ति को महान समस्याओं पर सोचने की शक्ति देती है और उसे सुसंस्कृत समाज का अंग बना देती है। हमारे विश्वविद्यालयों को ऐसी सामाजिकता की शिक्षा देनी है कि हर विद्यार्थी अपने को समाज का हिस्सा और एक ही मातृभूमि का पुत्र समझे।

१ श्री अरविन्द चरित कारागृह अनु० शावरमल पृ० ५३-५४।

(४) विभागों में इस तरह की बड़ी मेधा वाले अध्यापक होने चाहिए, ऊँचे दर्जे के बौद्धिक, जो उस विद्यालय का क्षेत्रीय न रखकर अन्तरराष्ट्रीय ख्याति का केन्द्र बना दें। तभी विद्यालय का गौरव स्थायी रह सकेगा।

(५) विश्वविद्यालय किसी भी व्यक्ति की शिक्षा को कभी पूरा नहीं कर सकते, वे केवल ऐसी सामग्री और पद्धति बताते हैं कि आप अपने जीवन में, जो पूरा करना चाहें कर सकें। किसी भी छात्र की योग्यता और आचरण ही उसके अध्यापक का प्रमाणपत्र होता है।[1]

इसी वर्ष सितम्बर १८९९ में श्री अरविन्द के नाना श्री राजनारायण बोस का देहान्त हो गया। कहना न होगा कि श्री अरविन्द के मन में अपने नाना के प्रति काफी श्रद्धा का भाव था उन्होंने उनकी मृत्युपर एक शोक-कविता लिखी। वह कविता इस बात का प्रमाण है। वे उन्हें शक्तिशाली और चैतन्य आत्मा कहते हैं, जिसका स्वागत पुराने आनन्दों के स्वर्ग में नहीं, बल्कि शाश्वत विचारों के उस जगत में होगा, जिसके वे अंश थे।[2]

प्राध्यापक के रूप में अरविन्द की ख्याति निर्विवाद है। उसके अनेक शिष्य इस बात को खुले आम स्वीकार करते हैं। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने लिखा है—'मेरा सम्पर्क उनसे १९०२ में हुआ, जब मैंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके बड़ौदा कालेज में प्रवेश लिया। यद्यपि मैं व्यक्तिगत रूप से इसके पहले उनसे एकाध बार ही मिल सका था, परन्तु कालेज में अरविन्दीय निजधरी कथाएं (Legends) सर्वत्र व्याप्त थीं जिनसे उनके प्रति मेरे मन में भयमिश्रित श्रद्धा का भाव जग गया और जब भी वे अंग्रेजी प्राध्यापक के रूप में बोलते मैं एक एक शब्द पर आश्चर्य से टंगा रह जाता।'[3] श्री अरविन्द के व्याख्यान पूर्णतः अन्तःप्रसूत और मौलिक हुआ करते थे। इस प्रसंग में उन्होंने खुद कहा था 'मैंने कभी बाजारू कुञ्जियां नहीं देखीं। कभी-कभी मेरे द्वारा बताये हुए अर्थ कुञ्जियों में लिखे अर्थों से भिन्न होते। मैं अंग्रेजी प्राध्यापक था कुछकाल के लिए फ्रेंच का भी। जो बात मुझे सर्वाधिक आश्चर्यचकित करती थी वह यह कि लड़के पंक्ति-प्रति-पंक्ति हर चीज लिख कर रट लेते थे। ऐसी चीजें इंग्लैण्ड में नहीं होतीं। बड़ौदा में मेरे व्याख्यानों के नोट्स लेने के अलावा लड़के किसी बम्बई के प्राध्यापक की भी कुञ्जियां खरीदते खास तौर में यदि वह परीक्षक होता। एक बार मैं शायद 'नेलसन के जीवन' पर व्याख्यान दे रहा था तभी एक छात्र ने कहा—यह तो

१ बड़ौदा कालेज मिसलनी भाग ५ सं० ११ सितम्बर १८९९ पृ० २८–३३ श्रीपुराणी ने लाइफ आफ अरविन्दो के परिशिष्ट में पूरा भाषण प्रस्तुत किया है।

२ ट्रांसिट नाव पेरिट कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्लेज, भाग १ पृ० ३४

३ श्री दिवाकर महायोगी की भूमिका (फोरवर्ड) पृ० १

उस कुञ्जी में लिखी चीजों से मेल नहीं खाता। मने कहा म कुञ्जियां नहीं पढ़ता जो हों वे एक दम कूड़ा होती ह।[1] उनके एक दूसरे विद्यार्थी, श्री आर० वी० चन्दवानी जो सर्वेन्टस आफ द पीपुल सोसाइटी के सदस्य हैं लिखते हैं—"हम तमाम विद्यार्थी जो दूसरे अध्यापकों का मजाक उड़ाते श्री अरविन्द को भय और श्रद्धा से देखते। प्रिंसिपल घोष थोड़े मितभाषी और लज्जालु लगते। वे हमेशा सफेद सूट और साफा पहनते यद्यपि वे दाढ़ी नहीं रखते थे पर शानदार मूँछे रहती थी। सबसे अधिक आकर्षक उनकी आंखें थीं जो रहस्य में डूबी लगती और उनका मस्तिष्क लगातार सक्रिय लगता। हमें व अंग्रेजी पढ़ाते थे। बायां हाथ व मेज पर रख देते। उस वक्त उनका अंगूठा किसी उंगली के सिरे को छूता रहता और वे गंभीरतम विचारों का धाराप्रवाह अभिव्यक्त करते जाते।[2]

श्री अरविन्द एक सफल अध्यापक के रूप में आकर्षण और श्रद्धा के केन्द्र इस कारण हुए कि उनके व्यक्तित्व में एक साथ विद्वत्ता और सदाचारिता का अद्भुत समन्वय था। दूसरी ओर व सम्पूर्ण शिक्षा तन्त्र को भलीभांति समझते थे उसकी त्रुटियाँ और खामियां उनके सामने प्रत्यक्ष थीं जिन्हें दूर करने के लिए उन्होंने भारतीय राष्ट्र के अनुकूल एक नवीन और युगान्तरकारी शिक्षा पद्धति का निर्माण किया। इस दिशा म पहला महत्वपूर्ण काय बंगाल राष्ट्रीय महा विद्यालय द्वारा सम्पन्न हुआ और शिक्षा के सवथा नये क्षितिज का उद्घाटन श्री अरविन्दाश्रम के अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र द्वारा हो रहा ह।

परिणीता म सहधर्मिणी की खोज

१७ अप्रल १९३६ को श्री नीरदवरण ने श्री अरविंद से शिकायत की–"पता नहीं धमगुरुओं को विवाह की क्या पड़ी रहती ह? बुद्ध ने शादी की और उनकी पत्नी की कसी हृदयविदारक स्थिति रही। नीरद ने उपयुक्त उद्धरण बांग्ला में लिखी कन्फ्यूशस की जीवनी स उपस्थित किया था जिसम आगे कहा गया था श्री अरविन्द ने भी जो यद्यपि धमगुरु नहीं ह धम पागल ह यही किया? कहिए श्रीमान? श्री अरविन्द ने उत्तर दिया—'आडम्बर पूर्ण नतिक बनने के ढोंगी गध की अपेक्षा (जैसा कि वह जीवनीकार ह) धमपागल होना बेहतर ह। नीरद इतने पर ही छोड़ने वाले न थे यह विवाहित जीवन अध्यात्म के रास्ते में बाधक ह तो इन्हें शादी करने की जरूरत ही क्या थी। श्री अरविन्द ने लिखा— नि सदेह सवाल उठता ह। पर जब उन लोगों ने विवाह किये (बुद्ध कन्फ्यूशस रामकृष्ण, अरविन्द आदि न) तब इस प्रकार

१ रेमिनिसेन्सेज एण्ड इम्प्रेशन्स पृ० १२२
२ रेमिनिसेन्सेज आफ श्री अरविन्दो एण्ड इम्प्रेशन आफ हिज आश्रम, मदर इण्डिया १५ अगस्त १९७१ पृ० ४६८-४६९।

का सवकालिक ढग स विद्यमान रहने वाला यह जीवनीकार गया वहा नही था जो बताता कि तुम लोग जल्दी हो धमगुरु या धमपागल होने जा रहे हो। + + + इसमें आश्चय क्या ? क्या तुम सोचते हो कि बुद्ध बन्दपूतस या मैं इस बात के साथ जन्मे थे कि हम अध्यात्मिक जीवन स्वीकार करेंगे ? जब तक कोई सामान्य चेतना में जीता होता ह वह साधारण लोगों जसी जिन्दगी जीता ह जब जागरण होता है, नई चेतना विकसित होती ह वह उस जिन्दगी का छोड देता ह, इसमें अचभा क्या।'[1]

श्री गिरिजाशकर राय चौधुरी ने श्री अरविन्द क विवाह को लेकर बडे ही सकुचित चित्त स कुछ बातें लिखी हैं। श्री अरविन्द न विवाह क लिए समाचार पत्रों में विज्ञापन दिया था। इसमें आश्चय क्या कोई भी व्यक्ति जो एक खास प्रकार की रुचि, शिक्षा और स्वभाव रखता ह जीवनसगिनी के चुनाव में सतकता बरतेगा ही। "मैंने दिनेन्द्रकुमार राय स सुना कि इसी समय श्री अरविन्द विवाह क लिए उत्सुक हुए। (अरविन्द प्रसग, पृ० ६२) और उन्होंने कागज में विज्ञापन दिया कि वे विवाह करेंगे अत उसके लिए पात्री चाहिए। भूपाल बसु विलायत से लौटे हिन्दू और अरविन्द ब्रह्मसमाज मुक्त युवक थे। अत श्वसुर और जामाता दोनों ने प्रायश्चित करके हिन्दुत्व स्वीकार किया।'[2]

गिरिजा शकर महाशय ने श्री अरविन्द के साले डॉ० गिरिशकुमार बसु का अपने किसी मित्र को राची से २५-११-४१ का लिखे पत्र का अविकल प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया ह। पत्र अग्रेजी में ह अनुवाद नीचे दिया जा रहा ह —

(१) श्री अरविन्द ने विवाह योग्य कन्या के लिए पत्रों में विज्ञापन दिया। मेरे पिता क जीवनपयन्त मित्र, बगवासी कालेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल स्व० गिरीश चन्द्र बोस ने विवाह ठीक कराया। श्री अरविन्द ने मेरी बहन को गिरीश बाबू के मकान पर देखा था और उसे पसन्द किया।

(२) विवाह-सस्कार शुद्ध हिन्दू रीति से सम्पन्न हुआ। श्री अरविन्द ब्राह्म थे और मेरी बहन विलायत लौटे हिन्दू की पुत्री अत दोनों का विवाह क पहले प्रायश्चित द्वारा शुद्धीकरण आवश्यक था। मेरे चाचा ने कन्यादान किया था।

(३) उस समारोह के मुख्य अतिथि थे-लाड सिन्हा, व्योमकेश चक्रवर्ती गिरीश चन्द्र बोस सर जगदीशचन्द्र बसु आदि।

(४) स्थान-बठक खाना रोड स्थित एक किराये का मकान।

(५) श्री अरविन्द की विवाह तिथि १३ बशाख १३०८ (अप्रैल १९०१) मेरी बहन ने उस वक्त करीब करीब अपनी उम्र का १४ वा वष पूण किया था। बहन की जन्म तिथि ६ माच १८८७ (२५ फाल्गुन १२९४)।

(६) विवाह के बाद श्री अरविन्द अपनी पत्नी के साथ देवघर, नैनीताल होते हुए

१ करैसपान्डेंस विद श्री अरविन्द पृ० १०९ २००

२ श्री अरविन्द ओ बाग्लार स्वदेशी युग पृ० २४० २४१

उस कुञ्जी में लिखी चीजों से मेल नहीं खाता। मैंने कहा मैं कुञ्जियाँ नहीं पढ़ता जो हाँ वे एक दम कूड़ा होती हैं।[१] उनके एक दूसरे विद्यार्थी, श्री आर० वी० चंदवानी जो सर्वेंटस आफ द पीपुल सोसाइटी के सदस्य हैं लिखते हैं—"हम तमाम विद्यार्थी जो दूसरे अध्यापकों का मजाक उड़ाते श्री अरविंद को भय और श्रद्धा से देखते। प्रिंसिपल घोष थोड़े मितभाषी और लज्जालु लगते। वे हमेशा सफेद सूट और साफा पहनते यद्यपि वे दाढ़ी नहीं रखते थे पर शानदार मूछें रहती थीं। सबसे अधिक आकर्षक उनकी आँखें थीं जो रहस्य में डूबी लगती और उनका मस्तिष्क लगातार सक्रिय लगता। हमें वे अंग्रेजी पढ़ाते थे। बाँया हाथ वे मेज पर रख देते। उस वक्त उनका अंगूठा किसी उंगली के सिरे को छूता रहता और वे गंभीरतम विचारों को धाराप्रवाह अभिव्यक्त करते जाते।"[२]

श्री अरविंद एक सफल अध्यापक के रूप में आकर्षण और श्रद्धा के केन्द्र इस कारण हुए कि उनके व्यक्तित्व में एक साथ विद्वत्ता और सदाचारिता का अद्भुत समन्वय था। दूसरी ओर वे सम्पूर्ण शिक्षा तंत्र को भलीभाँति समझते थे, उसकी त्रुटियाँ और खामियाँ उनके सामने प्रत्यक्ष थीं जिन्हें दूर करने के लिए उन्होंने भारतीय राष्ट्र के अनुकूल एक नवीन और युगान्तरकारी शिक्षा पद्धति का निर्माण किया। इस दिशा में पहला महत्वपूर्ण कार्य बंगाल राष्ट्रीय महा विद्यालय द्वारा सम्पन्न हुआ और शिक्षा के सर्वथा नये क्षितिज का उद्घाटन श्री अरविन्दाश्रम के अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र द्वारा हो रहा है।

परिणीता में सहधर्मिणी की खोज

१७ अप्रल १९३६ को श्री नीरदबरण ने श्री अरविंद से शिकायत की—"पता नहीं धर्मगुरुओं का विवाह को क्या पड़ी रहती है? बुद्ध ने शादी की और उनकी पत्नी की कैसी दुःखपरिणामक स्थिति रही। नीरद ने उपर्युक्त उद्धरण बाइबिल में लिखी कपट्ट [illegible] के जीवन से उपस्थित किया था जिसमें आगे कहा गया था, श्री अरविंद ने भी जो यद्यपि धर्मगुरु नहीं हैं धर्म पालक हैं, वही किया? कहिए श्रीमान्? श्री अरविन्द ने उत्तर दिया— [illegible] पूर्ण [illegible] के द्वारा गध को आगा (लगता कि यह आविष्कार है) धर्मशास्त्र [illegible] अन्तर है। नीरद इतने पर ही शान्त [illegible] न थे 'यह विशाल आत्मा अध्यात्म के मार्ग में बाधक है तो इन्हें शादी करने की जरूरत ही क्या था। श्री अरविंद ने लिखा— निःसन्देह सवाल उठता है। पर तब उन लोगों ने विवाह किए (बुद्ध [illegible] रामकृष्ण अरविन्द आदि ने) तब इस प्रकार

१ [illegible] उद्धरण [illegible] पृ १८२
२ [illegible] [illegible] १५ अगस्त
  [illegible]

का सवकालिक ढग से विद्यमान रहने वाला यह जीवनीकार गया कहा नही था जो बताता कि तुम लोग जल्दी ही धमगुरु या धमपागल होन जा रहे हो। + + + इसमें आश्चय क्यों ? क्या तुम सोचते हो कि बुद्ध कनफूशस या मै इस बात के साथ जन्मे थे कि हम अध्यात्मिक जीवन स्वीकार करेंगे ? जब तक कोई सामान्य चेतना में जीता होता है, वह साधारण लोगों जैसा जिन्दगी जीता है जब जागरण होता है नई चेतना विकसित होती है, वह उस जिन्दगी को छोड देता है इसम अचभा क्या। [1]

श्री गिरिजाशकर राय चौधुरी ने श्री अरविन्द के विवाह को लेकर बड ही सकुचित चित्त स कुछ बात लिखी हैं। श्री अरविन्द ने विवाह के लिए समाचार पत्रों में विज्ञापन दिया था। इसमें आश्चय क्या कोई भी व्यक्ति जो एक खास प्रकार की रुचि, शिक्षा और स्वभाव रखता है, जीवनसगिनी के चुनाव में सतकता बरतगा ही। "मैंन दिनन्द्रकुमार राय स सुना कि इसी समय श्री अरविन्द विवाह के लिए उत्सुक हुए। (अरविन्द प्रसग, पृ० ६२) और उन्होंने कागज में विज्ञापन दिया कि व विवाह करेंगे अत उसके लिए पात्री चाहिए। भूपाल वसु विलायत से लौटे हिन्दू और अरविन्द ब्रह्मसमाज मुक्त युवक थ। अत श्वसुर और जामाता दोनों ने प्रायश्चित करके हिन्दुत्व स्वीकार किया।"[2]

गिरिजा शकर मोशाय ने श्री अरविन्द के साले डॉ० शिशिरकुमार वसु का अपने किसी मित्र को राँची स २५-११-४१ को लिखे पत्र का अविकल प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया ह। पत्र अग्रेजी में ह अनुवाद नीचे दिया जा रहा है —

(१) श्री अरविन्द ने विवाह योग्य कन्या के लिए पत्रों में विज्ञापन दिया। मर पिता के जीवनपयन्त मित्र, बगवासी कालेज क भूतपूव प्रिंसिपल स्व० गिरीश चन्द्र बोस न विवाह ठीक कराया। श्री अरविन्द ने मेरी बहन को गिरीश बाबू के मकान पर देखा था और उसे पसन्द किया।

(२) विवाह सस्कार शुद्ध हिन्दू रीति से सम्पन्न हुआ। श्री अरविन्द ब्राह्म थ, और मेरी बहन विलायत लौट हिन्दू की पुत्री अत दोनों का विवाह के पहले प्रायश्चित द्वारा शुद्धीकरण आवश्यक था। मेर चाचा न कन्यादान किया था।

(३) उस समारोह के मुख्य अतिथि थे लाड सिन्हा, व्योमकेश चक्रवर्ती, गिरीश चन्द्र बोस सर जगदीशचन्द वसु आदि।

(४) स्थान—बैठक खाना रोड स्थित एक किराय का मकान।

(५) श्री अरविन्द का विवाह तिथि १३ वशाख १३०८ (अप्रल, १९०१) मेरी बहन ने उस वक्त करीब करीब अपनी उम्र का १४ वा वष पूण किया था। बहन की जन्म तिथि ६ माघ १८८७ (२५ फाल्गुन १२९४)।

(६) विवाह के बाद श्री अरविन्द अपनी पत्नी के साथ देवघर, नैनीताल होते हुए

१ करेसपान्डेंस विद श्री अरविन्दो पृ० १११ २००

२ श्री अरविन्द ओ बाङ्लार स्वदेशी युग, पृ० २४० २४१

बडौदा लौट आये। पति पत्नी का लोकप्रिय फोटोचित्र, नैनीताल में लिया गया था।

शिशिर बोस के पत्र म प्रायश्चित द्वारा शुद्धीकरण की बात ह जब कि गिरिजा इसे "हिंदुत्व को स्वीकार करना" कहते ह। शिशिर बोस का विवरण शुद्धीकरण वाले प्रसग को छोडकर काफी कुछ ठीक ह। श्री पुराणी ने इस तथ्य की जाच करके लिखा था "शुद्धीकरण की बात उठी, उसे श्री अरविंद ने वस ही अस्वीकार कर दिया जस उनके पिता डा० कृष्णधन घोष ने किया था। अत में मुडन कराने को कहा गया, जब इसे भी अस्वीकृत कर दिया गया तो एक पुरोहित ने पसे को दृष्टि म रखकर सारी बातें शास्त्रानुमोदित कहकर स्वीकार कर ली।'[1]

विवाह के बाद श्री अरविन्द देवघर आये और वहाँ से वे २८-५-१९०१ को बहन सरोजिनी और पत्नी मृणालिनी के साथ ननीताल गये। और कुछ दिन तक वहा रहे जसा कि श्री भुवन चक्रवर्ती को लिखे उनके पत्र से पता चलता ह —

प्रिय भुवन बाबू

मैं यहा २८मई तक अपनी पत्नी और बहन के साथ ननीताल म हू। यह स्थान बहुत रमणीय ह किन्तु मैं जितना सद समझता था उसका आधा भी सद नही ह। वस्तुत दिन म, यदि बारिश न हो तो बडौदा से थोडा ही कम गरम लगता ह। महाराजा यहा से शायद २४ को जायेंगे यदि बडौदा म बारिश हो रही हो तो किन्तु चूकि व रास्ते में आगरा, मथुरा, महो आदि जगहों में रुकेंगे इसलिए जुलाई के आरभ में ही बडौदा पहुँचेंगे। मैं सभवत अलग से यात्रा करूगा और पहली जुलाई को बडौदा पहुँचूगा। यदि आप चाहें तो कुछ पहले भी जा सकते ह और वहाँ देशपाण्डे के साथ रह सकते ह। मैंने माधवराव से कहा ह कि मेरे नये मकान का सुसज्जित करा दें, मैं नही जानता कि उन्होंने उस बाबत अभी तक क्या किया। आपका

अरविन्द घोष

श्री अरविंद के ब्राह्म समाज के स्थान पर हिंदुत्व ग्रहण के कारणों की खोज करने में गिरिजा शकर राय ने व्यथ की माथापच्ची की ह। बकिम प्रसग में उन्होंने हिंदु नारी के हृदय की गभीरता एक निष्ठा, मृदुता और सुन्दरता आदि विशेषताओं के चित्रण में बकिम की प्रतिभा की जो प्रशसा की ह[2] अथवा बगाली स्त्रियाँ द्वारा बगाली साहित्य के सरक्षण और विदेशी भाषा के सामने आत्मसमपण न करने की उनकी दृढ़ता को जिस ढग से रखांकित किया ह[3] इससे यह अथ लगाना कि उन्होंने ब्रह्मसमाज छोडकर हिंदुत्व ग्रहण किया[4] शुद्ध प्रलाप ह। उनके पिता न ब्रह्ममत स्वीकार

१ लाइफ आफ श्री अरविन्द पृ० ६२।
२ इन्दुप्रकाश १३ अगस्त १८९४। [बकिम पर लख]
३ इन्दुप्रकाश २७ अगस्त १८९४। [बकिम पर लख]
४ श्री अरविन्द ओ बाग्लार स्वदेशी युग पृ० २४४।

किया था। श्री अरविन्द ने नही। वे न सिर्फ हिंदुत्व में आस्था रखते थे बल्कि अपने जीवन में चरम लक्ष्य की उपलब्धि के लिए हिंदू शास्त्रों को अपना मार्ग दर्शक मानते थे किन्तु संस्कृति या भारतीय आत्मा के प्रति अमोघ श्रद्धा का निरंतर भाव रखते हुए भी श्री श्री अरविन्द धार्मिक सीमाओं के स्थूल भेद को स्वीकार करने वाले व्यक्ति नही थे। उनका लक्ष्य ब्रह्मसमाज, हिंदूधर्म ईसाई तथा बौद्ध, इस्लाम आदि की सीमाओं को अतिक्रान्त करने वाली दिव्य चेतना थी न कि संकुचित मतवाद। वे निःसंदेह भारतीय नारी की, खास तौर से हिन्दू नारी की पतिपरायणता के प्रशंसक थे, क्योंकि इन्हीं गुणों के कारण वह मात्र पत्नी या भोग्या न होकर सहधर्मिणी बन सकने की क्षमता रखती है। वे उस समय भी, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, आध्यात्मिक चेतना में पूर्णतः जीवन व्यतीत करने वाली स्थिति में न होते हुए भी, "विवाह के द्वारा अपने महत् कार्यों में जिन्हें शालीनतावश वे तीन "पागलपन" कहते हैं, जिनका संकेत श्रीमती मृणालिनी देवी के नाम लिखे उनके ३० अगस्त १९०५ के प्रसिद्ध पत्र में किया गया है सहयोग करनेवाली सहधर्मिणी की खोज में थे। सहधर्मिणी की प्राप्ति के इस प्रयत्न ने, नाना प्रकार के कष्टों को झेल सकने की योग्यता वाली और अपने जैसे 'पागल," किन्तु अद्भुत संकल्प वाले व्यक्ति की सहायिका बन सकने की क्षमता वाली नारी को अपेक्षा ने ही उन्हें विज्ञापन द्वारा योग्य पात्री की खोज के लिए प्रेरित किया था। वे यह भी मानते थे कि चाहे कोई हजार ब्राह्मस्कूलों में शिक्षा दीक्षा पाये, वह अपने भीतर बहने वाले हिंदू रक्त को नकार नही सकता।'[1] यदि नानाधर्मों की सीमाओं को अतिक्रांत करनेवाली चेतना को समझ पाना श्री गिरिजाशंकर के लिए कठिन था तो कोई बात नही, पर रक्त और आनुवंशिकता के अत्यंत मामूली और कमजोर सिद्धांत का अभिप्राय तो उनके लिए समझ में आने लायक चीज होना ही चाहिए था जिसकी उन्होंने अपनी पुस्तक में अभ्यर्थना की थी।[2]

चार बरस चार मास के विवाहकाल के ठीक बाद यह पत्र लिखा गया था उस समय श्री अरविन्द ने ३३ वर्ष पारकर के ३४वें में प्रवेश किया था। पूरा पत्र श्री अरविन्द के संकल्पों और मनोभावों को समझने की कुंजी है।

प्रियतमा मृणालिनी ३० अगस्त १९०५

तुम्हारा २४वीं अगस्त का पत्र पाया। तुम्हारे पिता माता को फिर वही दुःख हुआ। कौनसा लड़का परलोकगत हुआ है, यह तुमने नही लिखा। दुःख होने से क्या हो? संसार में सुख अन्वेषण करने से ही उस सुख में दुःख देखा जाता है। दुःख सदा सुख से लिपटा रहता है। यही नियम पुत्रकामना के सम्बन्ध में भी घटता है, सो बात

१ श्री मृणालिनी देवी के नाम ३० अगस्त १९०५ का पत्र।

२ लाइफ आफ श्री अरविंदो में गिरिजा शंकर के उद्बोधन में प्रकाशित श्री अरविन्द की जीवनी पर लिखे निबंधों की पुराणी द्वारा समीक्षा, पृ० ३५०।

नहीं। सांसारिक कामना का फल यही है। धीरचित्त से सुख दुःख सबको भगवान के चरणों में अर्पण करना ही मनुष्य के लिये एक मात्र उपाय है।

मैंने बीस रुपये न पढ़कर दस रुपये पढ़े थे, इसी से दस रुपये भेजने को लिखा था। पन्द्रह रुपये यदि आवश्यक हैं तो पन्द्रह रुपये ही भेजूँगा। इसी महीने में सरोजिनी ने तुम्हारे लिए दार्जिलिंग में जो कपड़े खरीदे हैं उसके रुपये भेज दिये हैं, तुम जो इधर उधार लिए बैठी हो मैं यह कैसे जानता? पन्द्रह रुपये लगे हैं, भेज दिये हैं और तीन चार लगेंगे सो आगामी महीने में भेजूँगा। तुम्हें इस बार बीस रुपये भेजूँगा।

अब वही बात कहता हूँ। तुम बोध होता है इस बीच में जान पायी होगी, कि जिसके भाग्य के साथ तुम्हारा भाग्य जुड़ा हुआ है वह बड़ी विचित्र धारणा का आदमी है। इस देश में आजकल के लोगों का जैसा मन का भाव, जीवन का उद्देश्य, कर्म का क्षेत्र है, मेरा वैसा नहीं है। सभी विषय भिन्न हैं, असाधारण हैं। साधारण आदमी असाधारण मत, असाधारण चेष्टा, असाधारण उच्च आशा को जैसा समझते हैं, मैं समझता हूँ उसे तुम जानती होगी। इन सब भावों को पागलपन कहते हैं, परन्तु पागल को कर्मक्षेत्र में सफलता पाने पर उसको पागल न कहकर प्रतिभावान् महापुरुष कहा जाता है। किन्तु कितने आदमियों की चेष्टा सफल होती है? हजार आदमियों में दस असाधारण और उन दस में भी एक आदमी ही कृतकार्य होता है। अपने कर्मक्षेत्र में सफलता तो दूर की बात, पूरी तरह से उसमें अवतरण भी कर नहीं सका। अतएव लोग मुझे पागल ही समझेंगे। पागल के हाथ में पड़ना स्त्रियों के पक्ष में बड़ा अमंगल है, कारण स्त्री-जाति की सभी आशायें सांसारिक सुख-दुःख में ही आबद्ध होती हैं। पागल अपनी स्त्री को सुख नहीं देता, दुःख ही देता है।

हिन्दू धर्म के प्रणेता लोग इसे समझते थे। वे असामान्य चरित्र, चेष्टा और आशा को खूब प्यार करते थे। पागल हो या महापुरुष हो, असाधारण आदमी को वे बहुत मानते थे। किन्तु इन सबमें स्त्री की जो भयंकर दुर्दशा होती है उसका क्या उपाय होगा? ऋषियों ने उपाय निश्चित किया। उन्होंने स्त्री जाति से कहा कि तुम 'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्' इस मन्त्र को ही स्त्री जाति का एक मात्र मन्त्र समझना। स्त्री स्वामी की सहधर्मिणी है। वह जिस कार्य को भी स्वधर्म कहकर ग्रहण करेगा उसमें स्त्री सहायता देगी, मंत्रणा देगी, उसको देवता कहकर मानेगी। उसके सुख में सुख, दुःख में दुःख समझेगी। कार्य-निर्वाचन करना पुरुष का अधिकार है और उसमें सहायता देना उत्साह देना स्त्री का धर्म है।

अब बात यह है कि तुम हिन्दुधर्म का पथ पकड़ोगी या नये सभ्य धर्म का पथ ग्रहण करोगी? पागल के साथ विवाह किया है, यह तुम्हारे पूर्व जन्म के कर्मफल का दोष है। अपने भाग्य के साथ एक समझौता करना अच्छा है। वह [illegible] किस प्रकार

होगा ? पाँच जना के मत का आश्रय लेकर तुम भी क्या उसको पागल कहकर उड़ा दोगी ?

पागल तो पागल पन के रास्ते दौड़ेगा। दौड़ेगा ही तुम उसे पकड़ कर रख नही सकोगी। तुम्हारी अपेक्षा उसका स्वभाव ही बलवान ह। तब तुम क्या कोने में बैठ कर केवल रोआगी अथवा उसके साथ ही दौड़ोगी, पागल क उपयुक्त पगली बनने की चेष्टा करोगी ? जिस प्रकार अंधे राजा की रानी दोना आखा पर वस्त्र बाधकर स्वय अंधी बनी थी ? चाहे हजार ब्राह्मस्कूल में पढी हा ता भी तुम हिंदू घर की स्त्री हो पूव पुरुषों का रक्त तुम्हार शरीर में है मुझे सन्देह नही तुम शेषोक्त पथ ही ग्रहण करोगी।

मेरे तीन पागलपन ह पहला पागलपन यह ह कि मुझे दढ विश्वास ह कि, भगवान् न जो गुण जा प्रतिभा, जो उच्च शिक्षा और विद्या जा धन दिया है सब भगवान् का ह। जो परिवार के करण पापण में लगता ह और जा नितान्त आवश्यक ह उसी का अपने लिए सुख के लिये, विलास के लिय खच करने का अधिकार हैं जो बच रहे उसे भगवान् को वापस दना उचित है। मैं यदि सभी अपने लिये, सुख क लिय, विलास के लिए खर्च करू तो मैं चोर हू। हिंदू शास्त्र कहता है, जो भगवान के पास से धन लेकर भगवान को नही दता वह चार ह। अब तक भगवान् का दो आन दकर चौदह आने अपने सुख म खच कर, हिसाब चुराकर साधारिक सुखमें मत्त रहा हू। जीवन का अधाश वृथा गया पशु भी अपना और अपने परिवार का उदर पूण करके कृताथ होता ह।

मैं इतने दिना पशुवृत्ति और चौय वृत्ति करता आ रहा हू। यह समय सका हूँ। समझने पर बडा अनुताप और अपने ऊपर घृणा हुई ह। अब और नही। उस पाप को जन्म का भाति छोड दिया ह। भगवान को देने का अर्थ क्या ह ? अथ ह धमकाय में व्यय करना। जा रुपये सरोजिनी वा उषा का दिये ह, उनके लिये कुछ अनुताप नही है। परोपकार धम ह आश्रित की रक्षा करना महाधम है, किन्तु केवल भाई-बहन को दने से हिसाब नही चुकता। इस दुर्दिन में समस्त दश मेरे द्वार का आश्रित है। मेरे बीस कराड भाई-बहन इस देश में ह, उनमें अनेक अनाहार से मरते ह, अधिकाश कष्टों और दुःखों से जजरित हो कर किसी तरह बच रहे ह, उनका हित करना होगा।

क्या कहती हो, इस विषय में मेरी सहधर्मिणी होगी ? केवल साधारण आदमी की भाँति खाकर, पहनकर जा ठीक ठीक आवश्यक ह वही खरीद कर और सब भगवान का दूगा—यह मेरी इच्छा ह। तुम्हारे सम्मति देने पर ही, त्याग स्वीकार कर सकने पर ही, मेरी अभिसधि पूण हो सकती है। तुमने कहा था, मेरी कोइ उन्नति नही हुई—यह एक उन्नति का पथ दिखा दिया। क्या इस पथपर चलोगी ?

दूसरा पागलपन यही है कि किसी तरह भी भगवान् का साक्षात दर्शन लाभ करना होगा। आजकल का धर्म है, भगवान का नाम बात-बात में मुँह में लेना, सबके सामने प्रार्थना करना। लोगों को दिखाना कि मैं कैसा धार्मिक हूँ। मैं यह नहीं चाहता। ईश्वर यदि है तो उसका अस्तित्व अनुभव करने का, उसके साथ साक्षात करने का कोई न कोई रास्ता होगा। वह मार्ग कितना ही दुर्गम हो, मैं उसपर जाने का दृढ़ संकल्प करके बैठा हूँ। हिन्दू धर्म में कहा है, अपने शरीर में ही, अपने मन में ही वह मार्ग है। जाने के नियम दिखा दिये हैं, उन सब का पालन करना आरम्भ किया है। एक महीने में अनुभव कर सका हूँ कि हिन्दू धर्म की बातें मिथ्या नहीं हैं। जिन जिन चिह्नों की बातें कही गयी हैं वे सब मिल रही हैं। अब मेरी इच्छा तुम्हें भी उसी पथ में ले जाने की है। ठीक से साथ साथ जा नहीं सकोगी। कारण, तुम्हें इतना ज्ञान नहीं हुआ है, किन्तु मेरे पीछे-पीछे आने में कोई बाधा नहीं है। उस मार्ग में सबको सिद्धि मिल सकती है, किन्तु प्रवेश करना इच्छा पर निर्भर है। कोई तुम्हें पकड़कर नहीं ले जा सकेगा। यदि सम्मति हो तो इस सम्बन्ध में और भी लिखूँगा।

तीसरा पागलपन यह है कि अन्य लोग स्वदेश को एक जड़ पदार्थ, मैदान, खेत, वन, नदी समझते हैं किन्तु मैं स्वदेश को माँ कहकर जानता हूँ, भक्ति करता हूँ। माता की छाती पर बैठकर यदि एक राक्षस रक्तपान करने को उद्यत हो तो लड़का क्या करे? निश्चिन्त भाव से आहार करने बैठे, स्त्री पुत्र के साथ आमोद करने बैठे अथवा माता का उद्धार करने को दौड़ जाये? मैं समझता हूँ इस पतित जाति का उद्धार करने का बल मेरे पास में है। शारीरिक बल नहीं, तलवार या बन्दूक लेकर मैं युद्ध करने नहीं जाता हूँ। ज्ञान का बल है। क्षात्रतेज एक मात्र तेज नहीं है, ब्रह्मतेज भी है, वह तेज ज्ञान पर प्रतिष्ठित है। यह भाव नया नहीं है, आजकल का नहीं है। इस भाव को लेकर मैं जन्मा हूँ, यह मेरा मज्जागत भाव है। भगवान् ने इस महाव्रत को साधन करने के लिये मुझे पृथ्वी पर भेजा है। चौदह वर्ष की अवस्था में बीज अंकुरित होने लगा, अठारहवें वर्ष में प्रतिज्ञा दृढ़ और अचल हुई। तुमने न-मासी (नौवी मौसी) की बात सुनकर सोचा था कहीं का बदमाश आदमी मेरे सरल सज्जन स्वामी को कुपथ में घसीटकर ले गया है। किन्तु तुम्हारे सज्जन स्वामी ने ही उस आदमी को और सैकड़ों आदमियों को उसी पथ में—चाहे वह कुपथ हो चाहे सुपथ—प्रवेश कराया है और भी वह हजारों लोगों को प्रवेश करायेगा। कार्य सिद्धि मेरे रहते ही होगा यह मैं नहीं कहता किन्तु होगा निश्चय ही।

अब कहता हूँ, तुम इस विषय में क्या करना चाहती हो? स्त्री स्वामी की शक्ति है। तुम उषा की शिष्या बनकर साहब-पूजा मन्त्र, जप करोगी? उदासीन होकर स्वामी की शक्ति कुण्ठित करोगी। किंवा सहानुभूति और उत्साह द्विगुणित करोगी? तुम कहोगी इन सब महत् कार्यों में मेरे समान साधारण स्त्री क्या कर सकती है, मुझमें

मनका बल नही, बुद्धि नही, इन सब बातो को सोचकर डर लगता है। किन्तु इसका सहज उपाय है। भगवान् का आश्रय लो, ईश्वर-प्राप्ति के पथ में एकबार प्रवेश करो, तुम्हारे जो जो अभाव है, उनको वे शीघ्र पूर्ण करेंगे। जिसने भगवान् का आश्रय लिया है, उसको धीरे धीरे भय छोड देता है, और यदि मुझपर विश्वास कर सको दसजनो की बात न सुनकर यदि मेरी ही बात सुनो तो तुम्हें अपना बल दे सकता हूँ उससे मेरे बल की हानि न होकर वृद्धि होगी। मैं कहता हूँ स्त्री स्वामी की शक्ति है अर्थात स्वामी स्त्री में अपनी प्रतिमूर्ति देखकर उससे अपनी महत आकाक्षा की प्रतिध्वनि पाकर द्विगुणित शक्ति लाभ करता है।

बराबर क्या इसी भाव से रहोगी ? मैं अच्छा कपडा पहनू, अच्छा खाना खाऊँ, हसूँ नाचू, सभी तरह के सुखों का उपभोग करूँ—मन की इस अवस्था को उन्नति नही कहा जाता। आजकल हमारे देश की स्त्रियो के जीवन ने यही सकीर्ण और अतिहेय आकार धारण कर लिया है। तुम यह सब छोड दो, मेरे साथ आओ। जगत में भगवान् काम करने को आये हैं। इस कामको आरम्भ करें।

तुम्हारे स्वभाव में एक दोष है। तुम बहुत ही सरल हो। कोई जो कुछ कहता है, उसे सुनती हो। इससे मन चिरकाल अस्थिर रहता है। बुद्धि विकास नही पाती, किसी कर्म में एकाग्रता नही होती। इसको सुधारना होगा। एक व्यक्ति की ही बात सुनकर ज्ञान-सचय करना होगा। एक लक्ष्य करके अविचलित चित्त से कार्य साधन करना होगा। लोगो की निन्दा और व्यग्य को तुच्छ समझ कर स्थिर भक्ति रखनी होगी।

और एक दोष है। तुम्हारे स्वभाव का नही, कालका दोष है। बगदेश में काल ऐसा आ गया है। लोग गभीर बातको भी गम्भीर भाव से सुन नही सकते। धर्म परोपकार महत आकाक्षा महत चेष्टा, देशोद्धार इत्यादि—जो गम्भीर जो उच्च और महत विषय हैं, सभी को लेकर हसी मजाक ? सभी को हसी में उडा देना चाहते है। ब्राह्म स्कूल में रहते रहते तुममें यही दोष कुछ-कुछ आ गया है। थोडे परिमाण में हम सभी इस दोष से दूषित है, देवघर के लोगो में तो आश्चर्य जनक वृद्धि हुई है। इस मन के भावको दृढ़ता से हटाना होगा, तुम यह सहज में कर सकोगी। एक बार चिन्तन करने का अभ्यास करने से तुम्हारा असली स्वभाव विकसित होगा। परोपकार और स्वार्थ त्याग की ओर तुम्हारा झुकाव है, केवल एक मनके बल का अभाव है, ईश्वर की उपासना से उस बल को पाओगी।

यही थी मेरी गुप्त बातें। किसी के आगे प्रकाश न करके अपने मन में धीरचित्त से इन सब पर विचार करो। इनमे भय करने का कुछ नही है, किन्तु सोच विचार के लिये अनेक चीजें हैं। पहले और कुछ करना नही होगा, केवल प्रतिदिन आध घण्टे भगवान् का ध्यान करना होता है। उनके प्रति प्रार्थना रूप से बलवती इच्छा प्रकाश

करना पड़ता है। मन क्रम क्रम से तैयार होगा। उसके सामने सदा यही प्रार्थना करनी होगी कि मैं स्वामी के जीवन उद्देश्य और ईश्वर प्राप्ति के पथ में व्याघात न करके सर्वदा सहायक बनूं, साधनभूत होऊं। यह करोगी?

तुम्हारा—स्वामी

पत्नी को लिखे हुए इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि श्री अरविन्द के लिए देशोद्धार यानी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना, समता अर्थात् आर्थिक वैषम्य को दूर करना और भगवत्‌-साक्षात्कार ये तीन प्रमुख उद्देश्य थे। लोग उनके योगी होकर पांडिचेरी में जाने की बातों को आश्चर्यकारी समझते हैं उन्हें यह पत्र पढ़कर उनके दृढ़ व्रतों को जानने की कोशिश करनी चाहिए।

पहले पागलपन का दौर : त्याग और गरीबी का जीवन

प्रोफेसर अरविन्द घोष कालेज के अपने कार्यों को अच्छी तरह निभाते हुए अपने मूल उद्देश्यों की ओर निरंतर ध्यानबद्ध रहे। विवाह के कुछ महीनों बाद एक दिन जब वे सोकर प्रातः उठे ही उठे थे कि देखा उनके छोटे भाई बारीन्द्रकुमार उपस्थित हैं। बारीन्द्र के हाथ में एक गंदा बनवस का थैला था और वैसे ही गंदे कपड़े। उन्होंने तुरंत बारीन्द्र को स्नानघर में भेजा। देवघर आते जाते श्री अरविन्द हमेशा बारीन्द्र को क्रांतिकारी भावनाओं से उत्तेजित करते रहे। बारीन्द्र का बड़ौदा पहुंचना उन्हीं उपदेशों का जैसा नतीजा था। अब बड़ौदा के घर में अरविन्द और मृणालिनी के अतिरिक्त सरोजिनी और बारीन्द्र भी हो गये। वैसे भी वे अपनी माँ के खर्चे और सरोजिनी की पढ़ाई के लिए हमेशा बांकीपुर रुपए भेजते रहे थे। विनयभूषण और मनमोहन इंग्लैंड से लौटने के बाद धनोपार्जन कर रहे थे किन्तु परिवार की वे कोई सहायता नहीं कर पाते थे। उस समय तक श्री अरविन्द का विवाह नहीं हुआ था, पूछने पर वे कहते—'दादा कूचविहार में एक ऊंची सर्विस में हैं अतः उसके अनुकूल जीवन स्तर बनाना पड़ता है। मनमोहन ने विवाह कर लिया है और विवाह एक महंगा शौक है।'[1]

इस महंगे शौक के उठाने के बाद भी यह व्यक्ति अपने उपार्जित धन को मनमाने ढंग से खर्च करना पशुवृत्ति या चोर वृत्ति मानता था। यही नहीं यह धन नाना प्रकार से राजनीतिक और व्यक्तिगत उपकार पूर्ण कार्यों में निःसंकोच खर्च किया जाता था।

इस संदर्भ में बड़ौदा के एडवोकेट श्री आर० एन० पाटकर के संस्मरण बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। पाटकर लिखते हैं—'१९०६ के आस-पास शाम को वे कोई पकाया हुआ खाना नहीं लेते थे। केवल फल, खास तौर से केला और एक प्याला दूध। जब तक वे बड़ौदा रहे इस तरह का नियमित आहार वे लगातार करते रहे। जब मैं बड़ौदा आया

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ५७।

मैं मामूला लडका था, कुछ सोल्ह वप का इसलिए सभी चीजा को सही ढग से समझ नही सकता था, फिर भी मैंने कुछ चीजें, जो विशेष लगी, नोट कर ली। वे रहन-सहन में बहुत सामान्य थे। अपनी रुचियों में भी वे शौकीन नही लगते थे। उन्हें खाने पीने या कपडे लत्ते की बहुत परवाह नही थी। वह कपडे खरीदने बाजार नही जाते थे। घर में उन्हें हमेशा धाती और सदरी में देखा, बाहर निकलते तो सफेद सूट पहनते। वे कभी मुलायम गद्दे पर नही साते थे, जैसा हम लोग प्राय करते है, बल्कि नारियल की रस्सी स बुनी चारपाई पर, जिसपर एक मालाबारी घास की चटाई बिछी रहती जो शायद शय्यापरिच्छद का काय करती। उनकी एक और विशेष आदत थी कि वे पस में कोई रुचि नही लते थे। वे तीन महीने का वेतन एक थले में ले आकर टेबुल पर रखी ट्रे में उलट दत थे। वे कभी भी इन रुपया को तालाकुजी के अन्दर नही रखते थे। क्या खच हुआ, उसका हिसाब भी नही रखते थे। मैंने एक बार पूछा—आप अपने रुपये इस तरह क्यों रखते हैं? उन्होने कहा—"यह इस बात का सबूत नही ह कि हम ईमानदार और अच्छे लोगा के बीच रह रहे ह?" पर आप तो कोई हिसाब रखते हो नही, फिर कसे दूसरा की ईमानदारी को प्रमाणित करेंगे? उन्होने शान्त भाव से कहा—"मेरे बच्चे, भगवान खुद मेरा हिसाब रखता ह। वह उतना दे देता ह जितने की मुझे जरूरत होती ह शेष अपने पास रख लेना है। जो भी हो, वह मुझे अभाव में नही रखता, तो फिर मैं चिन्ता किस बात की करू?'

वे पढ़ने में ऐसा तल्लीन रहते कि उन्हें किसी का कुछ ख्याल भी न होता। रसोइया आकर कहता—'साहब खाना रक्खा ह।' वे बिना सर हिलाये सिफ कहते—"अच्छा। और फिर वसे ही पढ़ने में लगे रहते। घटे भर बाद जब नौकर थाली वगरह ले जाने आता तो उसे वैसी की वैसी देखकर आश्चय म पड जाता। अपने मालिक से कुछ कहने की उसकी हिम्मत न होती तो वह मुझसे कहता। मैं उनके कमरे में जाकर खाना रखे होने की बात कहता, वे मुस्कराते। मेज के पास जाकर चुप चाप खाने लगते और बहुत जल्दी खा पीकर पुन पढने में लग जाते।"[१]

दिनेन्द्रकुमार राय और पाटकर के सस्मरण उनके साद जीवन और समन्वित रहन सहन की साक्षी देते हैं। इस सदाचारिता या या कहें कष्टपूर्ण जिन्दगी व्यतीत करने के पीछे उनके पहले पागलपन का हाथ था। यानी गरीब देशवासियो के बीच अमीरी का जीवन बिताना वे चौर वृत्ति मानते थे। ये सस्मरण अपने को ऐसी वृत्ति स अलग रखने की उनकी दृढता को रेखांकित करते हैं। इस ही मैंने आरम्भ में श्रेयस के लिए प्रेयस का अग्नि की लपटों में सौंप देने वाली वृत्ति का उत्तरयोगी कहा ह।

दूसरा पागलपन आध्यात्मिक प्रयत्नो का दौर

श्री अरविन्द के व्यक्तित्व की मूल चेतना शुरू से ही आध्यात्मिक रही। भारत में

१ लाइफ आफ अरविंदो में उद्धृत पृ० ७३-७४

कालीतल्ला में सुल्ना के सुधीर घोष तथा जोशी (मराठा) तथा मेरे निरीक्षण में प्रका शित की गयी। यह एक १५ १६ पृष्ठा की पुस्तिका थी जिसमें भवानी के एक मदिर की स्थापना का प्रस्ताव था जो किसी दुर्लघ्य पवतीय प्रदेश में बनाया जाता। यद्यपि कोई क्षेत्र सूचित नही किया गया था किन्तु एक स्थान सोन नदी क्षेत्र में अमूर पवत शृखला में त किया गया। वारीन्द्र स्थान की खोज में पहाडों में गए थे और वहा से भयकर पहाडी बुखार लेकर लौटे। श्री अरविन्द ने स्वय कहा ह—"योग से रोग दूर हो सकता ह, इसका प्रथम अनुभव मुझे एक नागा साधु या सन्यासी के काय स हुआ। वारीन्द्र जब अमर कटक की पहाडियो में घूम रहा था, ज्वर ग्रस्त हुआ। सन्यासी ने एक ग्लास पानी मगवाया और उसने एक चाकू से खडा और पडी लकीरें खोचकर पानी का चार भागा में बाट दिया और वारीन से कहा कि पी जाओ तुहे कल से बुखार नही आयेगा। वारीन पी गया और उसे सचमुच दूसरे दिन से बुखार नही आया।

श्री अरविन्द इस क्रिया से प्रभावित हुए। उन्होंने इसका रहस्य जानने का भी प्रयत्न किया।[१]

उन्ही दिनो वारीन्द्र ने स्वत चालित लेखन का अभ्यास शुरू किया। एक बार एक आत्मा जो मेरे पिता की समझी गयी, आई और उसमें कुछ भविष्य वाणिया की। आत्मा ने कहा कि वारीन्द्र को उन्होन सोने की एक घडी दी थी। वारीन्द्र ने बहुत सोचा तो उसे याद पडा कि वात ठीक ह। उस आत्मा ने यह भी कहा कि लाड कर्जन जल्दी ही भारत छोड देगा। वह आत्मा कजन को नीले समुद्र की ओर ताकती देख रही थी, उस समय तक कजन के भारत छोडने की कोई चर्चा तक न थी पर वात सच निकली। कजन का लाड किचनर ने झगडा हो गया और उसे भार छोडना पडा। आत्मा ने यह भी कहा कि देवघर के मकान में एक दीवाल पर हनुमा की तस्वीर थी। देवघर ने बहुत साचा पर याद नही पडा। उसने वह बात अस्वीका कर दी। जब वह घर गया और उसने अपनी मा से पूछा तो उन्होने बताया कि कभ यहा एक दीवाल में जडी हनुमान की तस्वीर थी पर वाद म वह प्लास्टर में दब गई आत्मा ने यह भी कहा कि जब सभी हमारा साथ छोड देंगे तब जो आदमी साथ देग वह ह तिलक। यह भी प्रमाणित हुआ।

एक दूसरी वार रामकृष्ण परमहस की आत्मा बुलाई गई। उन्होने इतना ह कहा—"मन्दिर गन्न। उस समय हम भवानी मदिर की योजना बना रहे थे, इसलि सोचा कि उसी के बार में कह रहे ह। पर बाद में मैंने उसका अथ निकाला कि अपन शरीर को भगवान् के मदिर के रूप म तयार करो।

१ श्री अरविन्द ओ बाग्लार स्वदेशी युग, पृ ४१० ४११।
२ रेमिनिसेन्सेज एण्ड एनक्डोट्स पृ० ११३।

इन घटनाओं ने मुझे योग की ओर मुड़ने का, आखिरी आधार दे दिया। मैंने सोचा कि इतने बडे लोग केवल भ्रमजाल के पीछे नही दौड़े होगे और यदि सचमुच मानव से अधिक शक्तिशाली कोई चीज है तो उसे क्यो न प्राप्त किया जाये।

श्री अरविन्द लेले से मिलने के पहले और बाद में भी बहुत दिनो तक इस 'प्लेनचेट' के रहस्योद्घाटन में लगे रहे। इसका बहुत ही प्रामाणिक वर्णन नलिनीकान्त गुप्त ने अपने संस्मरण में दिया है। इन कार्यों का प्रत्यक्ष देखा हुआ वर्णन सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती की बांग्ला पुस्तक स्मृति कथा में भी मिलता है। श्याम बाजार के श्यामपुकुर लेन में मकान नं० ४ में कर्मयोगी (अंग्रेजी) और धर्म (बांग्ला) पत्रिकाओं का कार्यालय था, जिन्हें श्री अरविन्द ने जेल से छूटने के बाद शुरू किया। इसी मकान में ऊपरी तल्ले पर यह प्लेनचेट प्रक्रिया चलती रहती थी। नलिनीकान्त लिखते हैं—"यहां हमारा एक भिन्न प्रकार का शिक्षण, एक नये तरह के अनुभव, आश्चर्यकारी अनुभव का शिक्षण शुरू हुआ। श्री अरविन्द ने हमें स्वतः चालित लेखन का तो दृश्य दिखाया ही, स्वतोद्भूत भाषणों का भी हमने अनुभव किया। बत्तियां बुझा दी गयी। आठ बजे शाम को हम उन्हें घेर कर चारों ओर बैठ गए। तभी अरविन्द के मुख से आवाज उठी, वह स्पष्ट ही उनकी आवाज नही थी। कभी अनेकानेक आवाजें उठती, प्रत्येक ध्वनि और स्वभाव में एक दूसरे से भिन्न। एक बार एक आवाज उठी उसने शिक्षा, साहित्य और अपने देश की स्थिति पर बहुत अच्छी अच्छी चीजें कही। हमने उनका नाम जानना चाहा। काफी देर तक इनकार के बाद उन्होंने नाम बताया बंकिमचन्द्र। वे अंग्रेजी में बोल रहे थे। उन्होंने एक शब्द का प्रयोग किया ओबफ्युस्कटेड (obfuscated) चूँकि हममें से कोई इसका अर्थ नहीं जानता था इसलिए अर्थ पूछा गया। उत्तर मिला—"अपने समय में हम लोग तुम लोगों से बेहतर अंग्रेजी जानते थे।' दूसरे दिन एक अन्य साहब आए और वही कर्कश आवाज में अपना परिचय देते हुए बोले—"मैं डन्टन हूँ, टेरर, रेड टेरर [संत्रास रक्त संत्रास]। वे फ्रांस की क्रान्ति में रक्तपात की उपयोगिता पर बोलते रहे। एक अन्य ने आकर अपने को प्राचीन यूनान का राजनीतिज्ञ पेरीमेनिस बताया। वे बहुत धीमी और गंभीर आवाज में राजनीति पर भाषण देते रहे[२]।

प्लेनचेट को श्री अरविन्द ने केवल उसके भीतर निहित रहस्य को जानने के उद्देश्य से स्वीकार किया था। बाद में उन्होंने इसी माध्यम से पांडिचेरी में यौगिक साधना नामक पुस्तक लिखी जिसे अपनी चीज न होने से उन्होंने प्रकाशन से वापिस

१ टॉक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० १६६-१६७।

२ रेमिनिसेंसेज, नलिनीकान्त गुप्त, सं० अमृता, श्री अरविन्दाश्रम पांडिचेरी, १९६७, पृ० ३७-३८।

कर लिया। उन्होंने प्लेनचेट प्रक्रिया पर अपने प्रयोगो के नतीजों को स्पष्ट करते हुए कहा था—"स्वतःचालित लेखन या सन्ध्या की आत्माह्वानिक गोष्ठियाँ एक मिश्रित किस्म का प्रयोग थी। कुछ अंश अवचेतन से, कुछ बैठने वालो के अवचेतन से आता है। किन्तु यह कहना सही नही है कि सब कुछ नाटकीय कल्पना और स्मरण शक्ति से आता है। कभी-कभी ऐसी चीजें आती है जिन्हें वहाँ बैठे लोगो में से किसी ने कभी नही जाना। कभी कभी यद्यपि प्रायः कम ही, भविष्य की झलकें भी मिल जाती। किन्तु ऐसी चीजें प्रायः ही बहुत निचले स्तर के लोक के प्राणिक जीवात्माओं या शक्तियों के सम्पर्क का परिणाम होती है जो खुद बहुत अस्पष्ट असम्बद्ध बातें करने वाली और चालबाज होती है। और इसलिए इनसे सम्पर्क रखना या इनके प्रभाव में जाना खतरनाक होता है[1]।' अन्यत्र उन्होंने पुनः इस प्रक्रिया पर कहा—"बाहरी आत्माओं का सच्चे ढंग से उपस्थित होना प्रायः विरल है। मृत व्यक्ति जीवित व्यक्तियों से वार्तालाप कर सकते हैं यदि वे ऐसा चाहें। श्रीमां इस आत्माह्वानिक प्रक्रिया को जानती है। वे अपनी शक्ति से कमरे की मेज को इधर उधर खिसकने के लिए बाध्य कर सकती है। किंतु यह धारणा, कि सभी तरह के मृत लोग शताब्दियों से इसलिए लटके हुए है कि उन्हें मेज ठोक कर बुलाया जायेगा, पूर्णतः बकवास है[2]।'

श्री अरविन्द अपने से उपलब्ध स्वकीय तरीके से साधना करते रहे। प्लेनचेट ही की तरह उनकी ज्योतिष में भी अभिरुचि हुई। पर इसके अध्ययन के बाद उन्होंने जाना कि यह पूर्णतः विश्वसनीय विज्ञान नही है। हाँ, इसमें गति रखने वाले कभी कभी बहुत सटीक भविष्यवाणियां कर सकते है—कलकत्ते के नारायण ज्योतिषी ने मेरे राजनीतिक जीवन के बारे में कुछ भी न जानते हुए भविष्यवाणी की कि मेरा म्लेच्छों से संघर्ष होगा। मेरे विरुद्ध तीन मामले चलेंगे और तीनों बार मैं छूट जाऊँगा। उन्होंने मेरी कुंडली देखकर मेरी उम्र ६३ वर्ष की बताई और कहा कि योग से उम्र बढ़ाकर पूर्णायु व्यतीत करेंगे[3]।' प्राणायाम और अन्य सामान्य साधनायें लगातार चलती रहीं किन्तु राजनीतिक कार्यों के दबाव से साधनाक्रम टूट गया। उन्होंने कहा है—'उस समय मेरी साधना का क्रम टूट गया क्योंकि कार्यों का भार बहुत अधिक था। साधना लेले के सम्पर्क में आने के बाद ही पुनः शुरू हो सकी[4]।'

अवधूत सम्प्रदाय के गुरु लेले से अरविन्द की साधना पद्धति का कोई मेल नहीं है। इस बात को दृष्टि में रखकर शिष्यों के पूछने पर उन्होंने एक बार अत्यंत स्पष्ट

१ श्री अरविन्दो ऑन हिमसेल्फ एण्ड ऑन द मदर पृ० ६३।
२ इवनिंग टाक्स विद श्री अरविन्द भाग पृ० १७३।
३ टेलिनिसेंस ऑफ़ श्री अरविन्दो पृ० ११।
४ टाक्स विद श्री अरविन्दो द्वितीय भाग पृ० २४७।

में अपनी साधना का क्रमिक रूप बताया था।

"मैंने लेले के साथ साधना नहीं शुरू की। मैंने अपने से सीखकर प्राणायाम शुरू किया। मैं सांस को सिर में चढ़ाने का अभ्यास करता था। इससे मुझे स्वास्थ्य, हल्कापन और सोचने का बल प्राप्त हुआ। साथ ही साथ कुछ आध्यात्मिक अनुभूतियां भी हुई। बाद में राजनीतिक कार्यों के कारण ये चीजें बन्द कर देनी पड़ी।

जब मैं सूरत कांग्रेस से लौटकर बड़ौदा आया तो बारीन्द्र ने लिखा था कि वह एक ऐसे योगी को जानता है जिनसे वह बड़ौदा में मेरा परिचय करायेगा। बारीन्द्र ने बड़ौदा से लेले को तार देकर बुलाया। वे आये। उस समय मैं खासीराव यादव के मकान में रहता था। हम लोग सरदार मजुमदार के स्थान पर गये। उस मकान के ऊपरी तल्ले पर हम तीन दिन अपने को बन्द किये रहे। लेले ने मुझसे कहा कि तुम कुछ मत करो सिर्फ तुम्हारे मन में जो विचार आयें उन्हें बाहर निकाल दो। तीन दिनों में मैंने ऐसा कर लिया। हम ध्यान करने साथ साथ बैठे। मैंने उसी वक्त शान्त ब्रह्म चेतना का साक्षात्कार किया। मैं सिर के ऊपर सोचना शुरू किया। जब से मैं लगातार वैसा ही करने का अभ्यस्त रहा। कभी रात में वह शक्ति आती और कुछ विचार लाती जिसे मैं ग्रहण कर लेता। प्रातःकाल में इन चीजों को कागज पर लिख लेता।

उसी शान्ति में, विचारहीनता की स्थिति में हम बम्बई गये। मुझे वहां नेशनल यूनियन में भाषण देना था। मैंने लेले से कहा अब मैं क्या करूं। उन्होंने कहा प्रार्थना करो। लेकिन मैं तो नीरव ब्रह्म चेतना में खोया था, मैंने कहा प्रार्थना करने की मुझमें मन स्थिति नहीं जग रही है। तब उन्होंने कहा कि दूसरे प्रार्थना करेंगे तुम सीधे सभा में जाओ और जनता को नारायण समझकर नमस्कार करना, एक आवाज तुम्हारे भीतर से बोलेगी। मैंने वैसा ही किया जैसा उन्होंने कहा। सभा-स्थल की ओर जाते वक्त किसी ने मेरे हाथ में पढ़ने के लिए एक समाचार पत्र दिया। उसमें कुछ शीर्षकों पर मेरी आंखें पड़ी और वे मेरे मन में रह गयीं। मैं जब सभास्थल पर भाषण देने के लिये खड़ा हुआ मेरे मस्तिष्क में विचार कौंधा और अचानक मेरे भीतर से कोई बोल पड़ा। यह लेले की सहायता से प्राप्त दूसरा अनुभव था। इससे यह भी पता चलता है कि लेले को दूसरों को यौगिक क्षमतायें प्रदान करने की सिद्धि थी।

जब मैं बम्बई में था एक मित्र के मकान के छज्जे से मैंने सड़क पर बम्बई शहर की सारी व्यस्त गतिविधि को देखा जो मुझे सिनेमा की तस्वीर की तरह एकदम अयथार्थ प्रतीत हुई, जैसे सब कुछ छाया हो। यह एक वेदान्तिक अनुभव था। तब से मैंने मन की जो शान्ति पायी वह कभी मुझसे अलग नहीं हुई। संकट से संकटपूर्ण स्थितियों में भी मैं उससे अलग नहीं रहा। बम्बई से कलकत्ते लौटते वक्त मैंने यात्रा के

बीच जितने भाषण दिये, वे सभी उसी तरह की मानसिक नीरवता से उत्पन्न किस्म के भाषण थे, कुछ अंशों में शायद मानसिक विचारों का थोड़ा बहुत मिश्रण रहा हो।

लेले से विदा लेते वक्त मैंने कहा—"अब शायद ही हमारा मिलना हो, इसलिए मैं चाहूंगा कि आप मुझे साधना के लिए निर्देश दें। मैंने अपने हृदय में अचानक उठे हुए मन्त्र की भी उनसे चर्चा की। वे मुझे निर्देशन दे रहे थे तभी अचानक उन्होंने पूछा—'क्या तुम उस पर पूर्णतः अपने को निर्भर कर सकते हो जिससे तुम्हें मन्त्र मिला?' मैंने कहा—सर्वदा। लेले बोले—तब तुम्हें किसी निर्देश की जरूरत नहीं है। हम अपने अपने गन्तव्य को चले गये। कुछ महीनों बाद लेले कलकत्ते आये। उन्होंने पूछा—"क्या तुम सुबह शाम ध्यान करते हो? मैंने कहा—नहीं। उन्होंने सोचा किसी आसुरिक शक्ति ने मेरे ऊपर अधिकार कर लिया है और उन्होंने पुनः निर्देश देने शुरू किये। पर मैंने उनकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया। मुझे भीतर से आदेश मिला कि अब मानव गुरु की आवश्यकता नहीं है। बेशक जहाँ तक ध्यान का प्रश्न है, मैं उनसे कहना नहीं चाहता था कि वह प्रायः निरंतर पूरे दिन चला करता है। मैंने जो कुछ 'वन्दे मातरम्' या 'आर्य' में लिखा उसी स्थिति में लिखा। तब से मैंने लगातार भीतरी निर्देशन पर ही विश्वास किया है यहाँ तक कि कभी कभी यह लगा कि आदेश मुझे गलत दिशा में ले जा रहा है तो भी। आर्य और उसके बाद का लेखन मस्तिष्क की उपज नहीं है यह उसी आंतरिक महाशक्ति की क्रिया थी। मैं अब उस तरीके का प्रयोग नहीं करता। मैंने उसे पूर्ण विकसित करके छोड़ दिया।"[1]

तीसरा पागलपन : क्रांतिकारी राजनीतिज्ञ

बंगाल जिस प्रकार पुनर्जागरण का जन्मक्षेत्र था, वैसे ही क्रांतिकारी संगठनों और आन्दोलनों का भी। क्रांतिकारी संघटना का आरंभ किस तिथि से हुआ यह तो कहना कठिन है किंतु यह निश्चित है कि स्वदेशी के प्रचार प्रसार और अंग्रेजों के विरुद्ध उत्पन्न जनमत ने इसे पैदा किया। सेडिशन कमेटी ने अपने रपट में लिखा है कि—'बम्बई के सार्वजनिक गणपति पूजा' शिवाजी उत्सव और रैण्ड की हत्या से विप्लवी कार्यों की पहली सूचना मिलती है।"[2] मालूम होना चाहिए कि इनमें से प्रथम दो कार्यों के संगठन का श्रेय तिलक को दिया जाता है। श्री अरविन्द ने लिखा है—"न केवल भारत के राजनीतिक मानस को ही पुनर्जाग्रत करने की जरूरत नहीं थी, बल्कि उसकी आत्मा को अतीत और भविष्य के समन्वय द्वारा जगाने की आवश्यकता थी। यह काम बहुत ही चमत्कारपूर्ण प्रचार द्वारा तिलक ने किया जिसकी चरमोपलब्धि शिवाजी और गणपति महोत्सवों के संपन्न में दिखाई पड़ती है।"[3] 'भारते जातीय आन्दोलन' के

१—इवनिंग टाक्स द्वितीय भाग पृ० ७२ ७४।

२ भारते जातीय आन्दोलन प्रथम संस्करण पृ० १२ पर उद्धृत।

३ बंकिम तिलक दयानन्द पृ० २०।

लेखक ने स्वीकार किया है कि—"राजनारायण बोस, बंकिमचन्द्र, योगेन्द्रनाथ मुखर्जी (मजिस्ट्रेट) प्रभति में विप्लववाद का प्रथम स्वर सुनाई पड़ता है तिलक, विपिनचन्द्र पाल और अरविन्द उस भाव के प्रवर्तक थे—ये थे विप्लव युग के दूसरे स्वर। विप्लव युग का तृतीय काय था यथार्थ विप्लवी कम जो बाद में शुरू हुआ।"[1]

सोमेन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि राजनारायण बोस द्वारा संचालित हिन्दू मेले के कारण नवयुवकों में आत्मविश्वास और स्वाभिमान की भावना उत्पन्न हुई। वर्नाक्यूलर ऐक्ट ने अपनी बात कहने सुनने का मौका छीन लिया तथा "आर्म ऐक्ट" ने अरक्षा की भावना जगाई। परिणामत गुप्त समितियों की स्थापना हुई। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस प्रसंग में राजनारायण बोस की "संजीवनी सभा" की चर्चा की है और अपने को तथा ज्योतिन्द्रनाथ टैगोर को उसका सदस्य बताया है। गोपाल हलदार ने लिखा है कि गंभीर विचार वाले लोगों के लिए इन गुप्त समितियों की आवश्यकता अनिवार्य विवशता बन गई थी क्योंकि प्रतिष्ठा की रक्षा का अन्य विकल्प नहीं था। राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्राम के अस्त्र के रूप में राजनारायण बोस द्वारा उद्भावित आतंकवाद भारतीय युयुत्सु वर्ग द्वारा नैतिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया गया था, तथापि इसे पूर्णत क्रियान्वित होने में अभी विलम्ब था, क्योंकि अरविन्द घोष, बारीन्द्र घोष और सत्येन बोस के नेतृत्व की प्रतीक्षा करनी थी।

श्री अरविन्द ने बंगाल की गुप्त समिति का परिचय देते हुए स्वयं लिखा है—"मैं न तो उसका संस्थापक था न संचालक। श्री पी० मित्तर और कुमारी घोषाल ने बरान आकाकुरा की प्रेरणा से इस समिति की स्थापना की। मेरे बंगाल जाने के बहुत पहले इसे उन्होंने वहां गठित कर लिया था मैं जब वहाँ पहुँचा तो मैं इसके बारे में जान सका।"[3]

वस्तुत इसी तरह का एक संगठन और शायद बंगाली संगठनों से पहले से महाराष्ट्र में भी चल रहा था। जैसा कि सेडिशन कमेटी की रिपोर्ट से जाहिर है कि विप्लवी कार्यों का आरंभ महाराष्ट्र से हुआ। इस संगठन का नेतृत्व उदयपुर के एक राजपूत सरदार रामसिंह के हाथ में था। श्री अरविंद ने स्वयं लिखा है— 'बड़ौदे और बम्बई का कोई भी मित्र उनकी ओर से बंगाल नहीं गया। उनका पहला गुप्तचर एक बंगाली युवक था। बड़ौदा सैन्य में काम करने वाले श्री अरविंद के मित्रों की सहायता से घुड़सवार सेना में एक सैनिक के रूप में भरती हो गया था। तब तक भारत की किसी भी सेना में किसी बंगाली को भरती करना ब्रिटिश सरकार की ओर से मना

१ भारते नानीय आन्दोलन पृ० १२७।
२ इवोल्यूशन आफ स्वदेशी थाट स्टडीज इन द बैंगाल रिनेसां, पृ० २०१।
३ टॉक्स विद श्री अरविंदो प्रथम भाग पृ० ५८।

था।[१] इससे मालूम होता है कि बड़ौदे के क्रान्तिकारियों से अरविन्द का मैत्री सम्बन्ध था।

इन सज्जन का नाम यती न्द्रनाथ बैनर्जी था जो बाद में निरालम्ब स्वामी के नाम से जाने गये। श्री पुराणी ने लिखा है—ये बड़ौदा में सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से १९९८ या ९९ में आए।[१] खाशीराव जादव और माधव राव की सहायता से श्री अरविंद ने इन्हें सेना में भरती कराने में सफलता पाई। व यू० पी० के रहने वाले घोषित किये गये।[२]

श्री अरविन्द ने महाराष्ट्र गुजरात की गुप्त समिति की सदस्यता जिसके नेता उदयपुर के श्री रामसिंह (ठाकुर साहब) थे, १९०१ ई० में स्वीकार कर ली थी। शपथ (जिसका एक खास महत्वपूर्ण तरीका था) का काम मांडवले ने पूरा कराया था। यह शपथासव उस वक्त बहुत विशिष्ट समझा जाता था।[३] ठाकुर साहेब सम्पूर्ण आन्दोलन के नेता के रूप में सबसे ऊपर थे तब कि कौंसिल (महाराष्ट्र गुजरात) सम्पूर्ण महाराष्ट्र तथा मराठा राज्यों का सगठित करने में उनकी सहायता करती थी। वे स्वयं मुख्य रूप से भारतीय सेना को अपने साथ करने के लिए काय करते थे, जिसको दो तीन पल्टनों को वे अपने पक्ष में कर भी चुके थे। इनमें से एक पल्टन के भारतीय छोटे अधिकारियों एवं सैनिकों से मिलने तथा बात चीत करने के लिए श्री अरविन्द ने मध्यभारत की विशेष यात्रा की थी।[४]

गिरिजाशंकर राय ने वारीन्द्र के कथन का कि 'ठाकुर साहब तब जापान में थे और गुजरात गुप्त समिति के अधिपति बड़ोदा में थे जिनके आदेश से बड़ौदा सेना का काय छोड़कर यतीन्द्र को कलकत्ता भेजा गया—अथ लगाया है कि वारीन्द्र ने जानकर श्री अरविन्द का नाम छिपाया है।[५] गुप्त समितियों के सदस्यों तक के नाम छिपाये जाते थे तो यदि अरविन्द जसे वरिष्ठ व्यक्ति का नाम वारीन्द्र ने 'चाँप दिया" तो कौन सा अनौचित्य हो गया? स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है— इस युवक ने अत्यन्त उद्यागशील और योग्य था कलकत्ते में प्रथम दल का निर्माण किया जो बड़े वेग से विकसित हुआ और इसकी अनेक शाखाएँ स्थापित हुई। पी० मित्तर और अन्य क्रान्तिकारियों से भी जो बंगाल में पहले से काय कर रहे थे सम्पर्क स्थापित किया। पीछे वारीन भी जो इस बीच बड़ौदे आये थे उससे जा मिले।[६]

१ श्री अरविन्द अपने तथा माता जी के विषय में पृ० १३।
२ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ६१।
३ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ६३।
४ श्री अरविन्द अपने तथा माता जी के विषय में पृ० १५।
५ श्री अरविन्द ओ बाङ्गलार स्वदेशी युग पृ० २७६।
६ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में पृ० १३।

यतीन को श्री अरविंद ने कलकत्ते भेजा। उन्हें क्रान्तिकारी कार्यों को सगठित करने के लिए तयार किया। यतीन कलकत्ते पहुँचे। १९०२ म वारीन्द्र के कलकत्ते आ जाने से काम की गति और भी अधिक बढ गई। कलकत्ते म इस सस्था का काय १०६, अपर सक्यूलर रोड में चल रहा था। यतीन, वारीन्द्र और अविनाश मुख्य कायकर्ता थे। यतीन प्राय शिक्षित जनता में वकील डाक्टरों आदि के बीच काय करते और वारीन तथा अविनाश स्कूली छात्रा में। जब कभी इनको अवसर और स्थान मिलता य नौजवाना को लाठी चलाना, तथा घुडसवारी आदि को भी शिक्षा देते। छह महीनों तक लगातार एक साथ काय करने के उपरान्त वे अचानक एक दूसरे से अलग हो गये। वारीन्द्र और अविनाश मदन मित्तर लेन में और जतीन सीताराम घोष स्ट्रीट में रहने लगे।

श्री अरविन्द ने इसी समय २२-२-१९०३ से २१-३-१९०३ तक अवकाश लिया। इसके बाद उन्होंने बगाल यात्रा से लौटने के बाद अतिरिक्त कक्षायें लेकर अपने अध्यापन काय को नियमित बनाया। श्री अम्बालाल पुराणी ने बगाल के क्रान्तिकारी दल के टूटने की घटना के बारे में पूछे जाने पर जो कुछ श्री अरविंद ने बताया उसका बहुत स्पष्ट विवरण दिया ह। उनकी कलकत्ता-यात्रा का उद्देश्य ही इन सदस्या के बीच उत्पन्न मतभेद को दूर करना था। ऐसा लगता है कि यतीन बडौदा की सैनिक शिक्षा के बाद बहुत सख्त अनुशासनवादी हो गये थे और व हमेशा नवयुवका पर सख्ती से अनुशासन कायम रखने का प्रयत्न करते थे। बारीन शायद वरिष्ठ नेताओं को छोड कर किसी और की मातहती में काय करने की इच्छा नहीं रखते थे। यतीन अपनी सख्ती के कारण काफी अलोकप्रिय हो गये। कहा जा सकता है कि दोनों म नेतत्व के लिये लडाइ चल रही थी। श्री अरविन्द इसे दूर करने बगाल पहुचे। व एक सरकारी कमचारी और क्रान्तिकारियों के प्रति शुभेच्छा का भाव रखने वाले योगेन्द्र विद्याभूषण के यहाँ रुके। देवव्रत, सुरेन समाजपति वारीन की ओर थे। हेमचन्द्र दास भी वारीन की ओर झुके लगते थे क्योंकि उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा ह—'यतीन मे काय करने की अदम्य इच्छा थी इसके होते हुए भी चूकि वह एक सनिक थे, और बगाली के लिए एक सनिक हो जाना भी इतना अकल्पनीय लगता ह कि वह सेनापति का स्वभाव रखने लगता ह। यतीन अपने अधीन के नवयुवका पर अपनी जरनेली का पूरा तरह लागू करना चाहता था।' श्री अरविंद ने दोनों पक्षों की बातें सुनी और निणय दिया कि जतीन वैसे हो काय करते रहेंगे। अन्तिम निणय का अधिकार न यतीन को मिलेगा न वारीन को। इसके लिए पाँच सदस्यों की एक कमेटी बना दी गई जिसमें पी० मित्तर और सिस्टर निवेदिता भी थी।

वस्तुत इन कार्यों को बहुत व्यापक रूप में सगठित करने का काय पी० मित्तर ने किया। उनके प्रयत्नों से हजारों हजार युवक क्रान्तिकारी भावनाओं से प्रेरित होकर

संगठन में भाग। इसी वर्ष १९०३ में श्री अरविन्द अहिंसात्मक महूलार्द से मिले। मशीन के विभाग पर जब वे और उनके भाषण में चार कर रहे थे, बारीन्द्र अहिंसात्मक का ले भाग। उस समय निकाई गई। उसी वक्त श्री अरविन्द ने कहा कि यह बहुत अच्छा मौका है। बंगभंग के विरुद्ध भारी शाप की ओर भी अधिक विचार के रहने हो। हमें आप लोग के लिए बहुत से कार्यकर्ता मिल गए हैं। इतना लिखा श्री अरविन्द ने समझौता नहीं 'सीधा एक दिन इस सिरा बिना बलात्कार का कोई प्रश्न उठाने का तैयार नहीं हुआ। आज महाराज के एक प्राणिदारा पुरस्कार पर यह कन्याव किया गया और राजा राज हाथ से कुछ हजार प्रति टोकर मांगा गई।'[1]

गिरिजाशंकर राय श्री अरविन्द के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को दो प्रकार से लांछित करने का प्रयत्न किया है। पहला तो यह कि वे क्रान्तिकारी दलों के संहारक षोडशी शताब्दी के प्रधान पुरुष थे। किन्तु उनका प्रथम आविर्भाव प्रभात की सूर्य किरणों से उद्भासित नहीं था। बल्कि अन्धकार के आच्छन्न भयावह पथ पर गोपन पदक्षेप द्वारा उन्होंने प्रवेश किया। यह आविर्भाव गुप्त, भयंकर अथच अद्भुत।[2] दूसरा आरोप भी ऐसा ही अद्भुत अथच भयावह और अभिप्रायप्रेरित है। वह यह कि पी० मित्तर या विपिन पाल गुप्त हत्या आदि से इतना घबराते थे कि वे ऐसी संस्थाओं का नेतृत्व नहीं कर सकते इसलिए इन संस्थाओं के इतिहास प्रणेता नेतृत्व का उत्तर दायित्व अरविन्द को स्वीकार करना चाहिए।[3] इसी के साथ-साथ एक लगातार किन्तु छद्म प्रयत्न इस लेखक का यह भी रहा है कि यदि क्रान्तिकारी कार्यों का कोई महत्त्व होता हो और यह भी लाटना के साथ अरविन्द को मिलने जाता हो तो भी भारतीय स्वतंत्रता में क्रान्तिकारियों का भाग तो यह उन्हें देना उचित नहीं क्योंकि उनके साथ विवेकानन्द की प्रेरणा और निवेदिता का सहयोग हमेशा रहा।

गिरिजाशंकर राय यहाँ भी चित्त भी अपनी वाली धोखेबाजी के माहिर लगते हैं। श्री अरविन्द ने कभी भी अपने को हिंसक या स्वतंत्रतावादी क्रान्ति का विरोधी नहीं घोषित किया। वे सम्पूर्ण भारत को हिंसक सशस्त्र क्रान्ति से ही स्वराज्य दिलाने के पक्षपाती थे। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि—"कहीं कहीं यह धारणा फैली हुई है कि श्री अरविन्द का राजनीतिक दृष्टिकोण पूर्णरूप से शान्तिवादी था, सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में वे हिंसा मात्र के विरुद्ध थे और आतंकवाद और राजद्रोह आदि की यह कह कर निन्दा करते थे कि हिन्दूधर्म की भावना और उसके शास्त्र पूर्ण रूप से इसका निषेध करते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि वे अहिंसावाद के अग्रदूत थे यह

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ६९ ७०।
२ श्री अरविन्द ओ बांगलार स्वदेशी युग पृ० २७८।
३ वही पृ० ४५० ४५१।

सवथा असत्य है।"[1]

श्री अरविन्द अहिंसावादी नही थे न तो पौरुषहीन नैतिकतावादी और न दुर्बल शांतिवादी। उन्होंने अपने राजनीतिक कार्यों में वरीयता उग्रराष्ट्रवाद को दी। वे स्वराज्य का भारतीय अध्यात्म पर प्रतिष्ठित मानते थे, और आरभ में सगठित सशस्त्र क्रांति द्वारा ही इसे प्राप्त करना चाहते थे। "गोपनता विशेष' क्रांतिकारियों के लिए अवगुण कब से हो गया। गोपनीयता की तो शपथ ही दिलाई जाती थी। इसे अनतिक कहने वाले पौरुषहीन नतिकतावाद के शिकार और पाखण्डी ह। जब उन्होंने देखा कि सशस्त्र क्रांति के लिए आवश्यक सगठन का अभाव है, या वह अभी पूणत तैयार भी नही हुआ था कि दिशाहारा होकर ध्वस्त कर दिया गया ह तब उनके सामने "गोपन से प्रत्यक्ष' होने का विकल्प आया और वे प्रत्यक्ष हुए।

श्री गिरिजाशकर ने यदि 'डाक्ट्रिन आफ पैसिव रेसिस्टस' का ठीक से अध्ययन किया होता जिसकी उन्होंने बार बार चर्चा करके क्रांतिकारिता और निष्क्रियता के तालमेल का मजाक उडाया ह तो उन्हें पता लग जाता कि राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा स्वीकृत कायक्रम के अनुरूप निष्क्रिय प्रतिरोध का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए भी उन्होंने कभी हतवीय कायरता और नपुसक नतिकता को प्रश्रय नही दिया ह। इसका बहुत ही विस्तृत विश्लेषण अगले अध्याय में किया गया ह, तो भी राय चौधुरी मोशाय की कृपा दृष्टि के सम्मुख उसकी कुछ पक्तिया उपस्थित कर रहा हूँ– 'नये दल की राजनीति को इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि एक सीमा के बाद नि शस्त्र प्रतिरोध या निष्क्रिय प्रतिरोध सहनशक्ति पर ऐसा दबाव डालना ह जिसे सहना सभव नही ऐसी हालत में यदि यह स्थिति आ जाय तो हमें या तो अत्याचार के नीचे टूट जाना पडेगा या हिंसक क्रांति द्वारा अपने को इसके चगुल से छुडा लेना होगा।"[2] यदि ऐसी स्थिति आती ह तो एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय रहने के लिए हम आबद्ध नही हैं। + + जहा ऐसा अत्याचार शुरु हो जाय निष्क्रिय प्रतिरोध समाप्त हो जाता ह और और सक्रिय सशस्त्र प्रतिरोध को शुरु करना हमारा धम हो जाता ह।'[3]

रही बात विवेकानन्द के प्रभाव और निवेदिता के सहयोग की, तो मैं जानना चाहूगा कि उसका श्री अरविन्द ने प्रतिवाद कब किया।

उन्होंने स्पष्ट कहा—"मनोरजन गुहा ठाकुरता, जो विजय गोस्वामी के शिष्य थे गुप्त समिति म मेरे सहकर्मी थे। ब्रह्मबान्धव उपाध्याय जसे और भी जाने कितने लोग थे, रामकृष्ण और विवेकानन्द का प्रभाव भी पीछे से काम कर रहा था। स्वतन्त्रता का

१ श्री अरविन्द अपने तथा माता जी के विषय में पृ० १९ २०।
२ डाक्ट्रिन आफ पसिव रेसिस्टेंस पृ० ४६।
३ वही पृ० ४४।

आन्दोलन और गुप्त समितिया ? ऐसा व्यापक रूप ले लिया था कि किसी राजनीतिक अतीत वाले देश में फ्रास की क्रान्ति जगा कोई करिश्मा हो गया होता। सारे राष्ट्र की सहानुभूति हमारे साथ थी। दुकानदार तक युवा पर पक्ष करते थे। मैं तुम्हें एक घटना बता रहा हूँ। श्याम बाजार में एक पुलिस अफसर को मारकर एक नवजवान भागा। वह अपनी पिस्तौल फेंकना भी भूल गया। वह उसे वैसे ही हाथ में लिये था। तब तक एक दूकानदार ने देखा और चिल्लाया—"अपनी पिस्तौल छिपा दो।' इसी प्रसग में श्री अरविन्द ने यतीन के बारे में कहा है—"वह एक आश्चर्य कारी आत्मा था वह कही भी मानवता की अग्रिम पक्ति में रखा जा सकता है। सुन्दरता और शक्ति का ऐसा समन्वय मने कही नही देखा। वह एक योद्धा था। जब शिष्या न श्री अरविन्द से पूछा—

'क्या वह ऐंडरसन था जिसने बगाल के विप्लव को कुचल दिया?' "कतई नही। इस आन्दोलन के पीछे की शक्ति ही नष्ट हो गई, लोग भ्रष्ट हो गए। उस तरह का नेतत्व उसमें फिर पैदा ही नही हुआ।' [१] उन्होंने कहा था।

इसी सिलसिले में निवेदिता के बारे म भी विचार कर लेना चाहिए। निवेदिता की योग्यताओ को कभी श्री अरविन्द ने नकारा नही। निवेदिता विवेकानन्द का सुयोग्य शिष्या, दढ इच्छाशक्ति की भद्रमहिला थी, जिसने भारत की भूमि को अपनी मातभूमि मान लिया था। निवदिता १९०२ में कुछ भाषण देने बडौदा आई। महाराज की आज्ञा से श्री अरविन्द उसे लाने के लिए स्टेशन गये और उन्होंने उस स्थान तक पहुचाया, जहा उसके ठहरने का प्रबध था। "मैं निवदिता के साथ महाराजा स मिलने गया। निवदिता न यह मिलन भेंट महाराजा से अपन लिए तय की थी।'[२]

एक बार कुछ शिष्यो न निवदिता के बारे में महात्मा गाधी के इस कथन को कि वह 'बडी अस्थिर और चचल बुद्धि की थी, उद्धत किया। इस पर श्री अरविंद बोले—' निवदिता और चचल? बकवास है। वह दढ कार्यकर्त्री थी। एक बार वह गायकवाड से मिली और उनसे क्रान्तिकारियो के साथ मिल जाने का कहा और फिर बोली— 'इस विषय म और कुछ जानना हो तो कृपया श्री घोष (अरविन्द) से बात कर लें।" गायकवाड ने मुझस कभी राजनीति पर बात नही की। बाद में कलकत्ते के स्वदेशी आन्दोलन और पाडिचेरी के मेरे कार्यों को देखत हुए कहा था— श्री घोष अब एक बुझा हुआ ज्वालामुखी हो गये है। वे योगी हो गये है

निवेदिता के बारे म सिर्फ एक अबूझ पहेली मेरे सामने आई। वह गोखले के बारे में बडा प्रशसापूर्ण भाव रखती थी। म नही समझ पाता कि कोई क्रान्तिकारी उन्हें कैसे

१ टाक विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग ४७ ४८।
२ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ६७।

पसन्द कर सकता है। एक बार गोखले के सामने उनकी हत्या का संकट उठ खड़ा हुआ। निवेदिता बड़ी परेशान हुई। वह मेरे पास आई और बोली—'श्री घोष, वह अपना तो कोई आदमी नहीं जा यह करने जा रहा है।' मैंने कहा नहीं।' उसने राहत की सांस ली और बोली 'तब कोई व्यक्तिगत हरकत है।

जब वह मुझसे मिली, उसने कहा—'मैंने सुना है मि० घोष की आप शक्ति के पुजारी हैं। वह अहिंसा में कत्तई विश्वास नहीं करती थी। उसकी दृष्टि में कला प्रियता भी थी। खासीराव यादव और मैं उसे स्टेशन से लाने गए। स्टेशन के पास की धर्मशाला देखकर उसने कहा—आह कितना सुन्दर। जब कि कालेज की इमारतें देखकर बोली 'आह कितनी बदसूरत हैं ये।' खासीराव ने मुझसे कहा 'यह थोड़ा पागल लगती है। + + रामकृष्ण मिशन के लोग उसकी कार्यवाहियों से थोड़ा भयभीत थे और उन लोगों ने कह रखा था कि वह अपने राजनीतिक कार्यों को आश्रम के कार्यों से अलग रखे।'[1]

एक बार पुराणी ने पूछा—'मैंने सुना है कि निवेदिता भी कुछ कुछ क्रांतिकारी थी?'

श्री अरविन्द ने कहा—'कुछ कुछ क्या? वह क्रान्तिकारियों के नेताओं में एक थी। वह लगातार अनेक स्थानों पर जा जा कर जनसम्पर्क करती। वह खुले ढंग से निःसंकोच स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी क्रांतिकारी योजनाओं पर लोगों से बातें करती। जब भी वह क्रान्ति के बारे में कुछ कहती, उसकी पूरी आत्मा, पूरा व्यक्तित्व जैसे ऊपर आ गया हो। उसका सारा दिमाग और जीवन भी ऐसा ही स्पष्ट था। योग की बात अलग है, वह तो क्रान्तिकारी कार्यों के लिए ही जन्म आई थी। वह अग्नि थी। 'श्री मा काली' शीर्षक उसकी पुस्तक बड़ी उत्प्रेरक और क्रान्तिकारी है और कतई अहिंसक नहीं है।"[2]

स्वयं गिरिजाशंकर ने अरविन्द और निवेदिता के मिलन के प्रसंग को इस प्रकार उपस्थित किया है—भगिनी निवेदिता और अरविन्द प्रथम साक्षात्कार के समय ही एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हुए और दोनों एक दूसरे की शक्ति के समन्वय द्वारा एक ही उद्देश्य के लिए कार्य करने को प्रतिज्ञाबद्ध हुए। भगिनी निवेदिता ने कहा—"कलकत्ते को आपकी जरूरत है?' अरविन्द ने कहा—'नहीं, मैं पर्दे के पीछे रहूँगा। मेरा कार्य ऐसे आदमियों का निर्माण करना है। भगिनी निवेदिता ने अरविन्द के हाथ में अपना हाथ प्रस्तुत करते हुए कहा—'आप मेरे सहयोग का विश्वास करें मैं आपकी सहकर्मी हूँ।'[3]

गिरिजा ने यह अंश भगिनी 'निवेदितार फरासी जीवन चरित' के पृष्ठ २३३ से उद्धृत किया है। जीवनीकार लिजेले रेमां ने स्पष्ट लिखा है'—'भारत के इस स्वतःस्फूर्त उत्साहपूर्ण वातावरण में जो देश की अपनी जरूरतों से पैदा हुआ था, वह

१ ट्राक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ०, २९३ २९४।

२ वही पृ० २९२।

३ श्री अरविन्द ओ बांग्लार स्वदेशी युग पृ० २८१।

२७ सितम्बर १९०५ को एक वगभग ऐतिहासिक तथ्य के रूप में सामने आ
गया। इसी समय १२ मार्च १९०६ को अंग्रेजी साप्ताहिक 'युगान्तर' का जन्म हुआ।
यह वारीन्द्र घोष का पत्र था। किन्तु वारीन्द्र ने इसके लिए श्री अरविन्द से अनुमति
ली थी और पत्र का नियन्त्रण सदा उन्हीं के हाथ में रहा। इस पत्र का उद्देश्य था
खुले विद्रोह और अंग्रेजी राज्य के पूर्ण बहिष्कार का प्रचार करना। गुरिल्लायुद्ध की
शिक्षा देनेवाली लेखमाला आदि निकालना।[1] इसमें श्री अरविन्द प्रायः क्रान्तिकारी
विषयों और देश की स्थितियों पर निबन्ध लिखते रहे किन्तु उन दिनों अभी वे
बड़ौदा रियासत की नौकरी में थे अतः ये रचनाएं उनके नाम के साथ नहीं छपती थीं।
१४ अप्रैल १९०६ को वारीसाल में बंगाल प्राविन्शियल कांफ्रेंस' में भी श्री अरविन्द
उपस्थित थे। उस सभा पर पुलिस ने हमला करके उसे भंग किया था। श्री मनोरंजन
गुहाठाकुरता बारीसाल के ही थे। उन दिनों उनके पुत्र चित्तरंजन अचानक पूरे बंगाल
में हिंसक आन्दोलना के प्रेरणा केन्द्र बन गये। नलिनी कान्त गुप्त ने उस वक्त का
संस्मरण इन शब्दों में प्रस्तुत किया है बालक चित्तरंजन लगातार वन्देमातरम् का
नारा लगाता रहा और पुलिस उसे लगातार निर्ममतापूर्वक पीटती रही। वह खून से
लथपथ घायल होकर जमीन पर गिर पड़ा किन्तु उसके मुंह से वन्देमातरम् का नारा
बन्द नहीं हुआ। इस घटना ने पूरे देश को झकझोर दिया। प्रायः पूर्ण प्रतिवाद की लहर सारे
देश में व्याप्त हो गयी। इस घटना से आतंकवाद के लिए मानो प्रेरणा का काम किया।
इस प्रकार के अमानवीय अत्याचारों ने ही भावुक क्रान्तिकारियों को आतंकवा-
बनने के लिए विवश किया। नलिनीकान्त ने ठीक ही लिखा है—हम लोगों के दिल
जो सम्पन्न प्रतिरोध के पक्ष में थे इस तरह की सहनशीलता स्वीकार नहीं था। इस
घटना के बाद जब पत्रकार और कवि सामूहिक रूप से मनस्वी गुणों के प्रतीक बारी-
सार को गाया गान लगे, उस समय हमने इसमें किंचित् व्यंग्य के साथ इतना और
जोड़ दिया—"धन्यवाद बारीसाल को [?] के लिए धन्यवाद।"[3]
लिप्त बन्द रही थी। क्रान्तिकारी आन्दोलन आतंकवाद की ओर बुरी तरह झुक
सकता था। हम इस राजनीतिक दृष्टि से गलत कह सकते हैं क्योंकि इसके परिणाम स्व-
रूप राष्ट्रीय आन्दोलन कमजोर हुआ परन्तु अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचारों को देखते हुए
क्रान्तिकारियों के मन पर बदले की भावना का उमड़ना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।
श्री अरविन्द किस प्रकार का क्रान्तिकारी संगठन चाहते थे इसकी बहुत विस्तृत
रूप रेखा उन्होंने अपना भवानी मन्दिर पुस्तिका में प्रस्तुत की है।

१ [illegible]
२ [illegible] १९११ पृ० १०।
३ वही पृ० १०।

भवानी मंदिर

ॐ नम चण्डिकायै

पर्वतों में मंदिर बनाया जाने को है जो माँ भवानी को अर्पित किया जायेगा। माँ भवानी के तमाम पुत्रों का आह्वान किया जा रहा है कि वे इस पवित्र कार्य में सहायता करें।

भवानी कौन हैं

मा भवानी कौन है, और इनके लिए क्यो एक मंदिर बनाना चाहिए ?

भवानी अनन्त शक्ति है। जगत को अनन्त क्रान्तियो में, वे शाश्वत चक्र को शक्ति-पूवक सचालित करने वाली, अनन्त ऊर्जा है जा शाश्वत से उदगमित होकर इन चक्रों का परिचालन करती ह, जो व्यक्तियो की प्रतीति में नाना रूपा और अनगिनत पहलुओं में प्रकट होती ह। हर पहलू एक एक युग को निश्चित और निर्मित करता ह। कभी वे ज्ञान ह कभी वराग्य, कभी दया। यही अनन्त शक्ति भवानी हैं। वे ही दुर्गा ह, वे ही प्रेमास्पदा राधा ह, लक्ष्मी है। वे हमारी माँ और जगतप्रसू ह।

भवानी शक्ति हैं

आज के युग में माँ बल के रूप में प्रकट हुई है। वे शुद्ध शक्ति ह।

सारा विश्व उन्ही शक्ति से आपूर्ण होकर विकास कर रहा है।

आखें उठाकर देखिये इस विश्व को। जहा भी दष्टि जाती ह हमारे सामने शक्ति के विराट समूह आश्चयकारी सक्रिय और अविजित शक्तियाँ, दत्याकार शक्ति की आकृतियाँ, शक्ति के भयानक तीव्रगामी दल सबत्र दीख पडते ह। सभी कुछ यापक और महत होता जा रहा ह। युद्ध शक्ति, धन शक्ति, विज्ञान शक्ति जो पहले से दस गुनी बल्पूण और ऊर्जित, सौगुनी अधिक भयानकता से अपनी क्रिया में रत हजारगुनी साधन सम्पन्न और समृद्ध। नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र और यत्रा से सुसज्जित, जसा कि इतिहास म कभी देखा नही गया। सवत्र माँ की क्रिया जारी ह। उसके शक्तिशाली और आकृतिप्रदान करने वाले हाथा से नाना रूपाकार राक्षस, असुर, देवता निकलते और विश्व के रण स्थल में उतर रहे ह। हम लोगा ने धीमे किन्तु शक्तिशाली ढग से विश्व के बलवान साम्राज्या को पश्चिम में उभरते देखा ह। हमने जापान को जीवन की अतिशीघ्र अनिवार्य समृद्धि को प्राप्त करते दखा है। कुछ म्लेच्छ शक्तिया हैं जो बादल की तरह कालिमा से घिरी है। एकदम कृष्णा या नीललोहित रग की तमस या रजस प्रधान। दूसरी आयशक्तियाँ ह जो वैराग्य और आत्मबलिदान की शुद्ध ज्वाला में स्नान किये हुए—पर सभी माँ की शक्तियाँ ह। यह उसका नया रूप हैं, नया निर्माण और सजन ह। वह अतीत में नयी आत्मा डाल रही है। वह जीवन में नवीनता का वात्याचक्र लिए आ रही है।

हम भारत म शक्ति के अभाव में सवत्र असफल हुये

किन्तु भारत में प्राणशक्ति धीमी गति से चलती ह उस पूर्णत आने में विलम्ब लगता है। भारत, प्राचीन माँ पुनर्जन्म के लिए प्रयत्नशील ह। दुख और अश्रु में प्रयत्न करते हुए भी वह सफल नहीं हो रही ह। इतना महान और विराट भारत जिसे शक्तिशाली होना चाहिये था, दुखी ह। क्या ह दुख इसका ? निश्चय ही कोई भारी त्रुटि ह कुछ न कुछ बहुत जीवन्त चीज होनी चाहिये, जिसका अभाव हो गया ह। उसे समझना भी कठिन नही ह। हमार पास सब कुछ ह पर हम शक्तिहीन ह ऊर्जा रहित ह। हमने शक्ति को छोड दिया ह, इसलिए शक्ति ने हम छोड दिया है। मा अब हमार दिल में नही ह हमारे मस्तिष्क में नही ह हमारी भुजाओ में नही ह।

पुनर्जन्म की कामना हमार भीतर प्रचुर मात्रा में ह, वहाँ कमी नही ह। जान कितने प्रयत्न किये गए, जाने कितने आदोलन शुरू हुए धम, समाज, राजनीति, सभी क्षेत्रों में पर वही दुर्भाग्य सवत्र सामने आया या फिर आने को ह। ये एक क्षण के लिए चलते ह, तभी प्रेरणा खत्म हो जाती आग बुझ जाती ह और यदि कुछ समय चलते रहे तो खाली खाल की तरह जिसमें से आत्मा निकल चुकी ह अथवा उसके स्थान पर तमस और जडता ने घर बना लिया ह। हमारी शुरुआतें महान होती ह पर न तो उनस नतीजे निकलते ह न फल मिलत ह।

अब हम एक नई दिशा में शुरुआत कर रहे ह। हम एक नया औद्योगिक आदोलन चला रहे ह जिसका उद्देश्य इस गरीब देश को समृद्ध करना और पुनर्जीवित करना ह। अनुभव से अशिक्षित हम यह भी नही जानते कि यह आदोलन भी पहले के प्रयत्नो की तरह निष्फल होगा, यदि हमने अत्यन्त आवश्यक चीज प्राप्त नही की वह ह शक्ति।

शक्ति के अभाव म हमारा ज्ञान मुरदा है

क्या हमारे अन्दर ज्ञान नही ? हम भारतीय एक ऐसे देश में जन्मे और पले हैं जहाँ ज्ञान मानवजाति के आरभ से ही भरा हुआ रहा है। हजारो वर्षों से परम्परा से एकत्रित यह ज्ञान हमारे लिए चारों ओर बिखरा ह। ज्ञान के उच्चतम व्यक्तित्व आज भी हमार बीच पदा होत ह जो उस राशि म कुछ न कुछ जोड रहे ह। हमारी क्षमता खत्म नही हुई ह हमारी मेधा का पैनापन न तो धूमिल हुआ ह न भोथरा। इसकी ग्रहणशीलता उतनी ही बविध्यपूर्ण ह जितनी प्राचीन में थी। पर ज्ञान मुरदा ह एक बोझ जो हमारी कमर तोड रहा ह एक विष जो हमें धीर धीर मार रहा ह। इसे हमें सँभालने का अवलम्ब और हमार हाथो का हथियार होना चाहिए था पर ऐसा नही हुआ क्योकि प्रत्येक महान वस्तु के साथ ऐसा ही होता ह कि जब व प्रयुक्त नही होती या गलत तरीके स प्रयुक्त होती हैं, तब वे प्रयोक्ता का ही विनाश करती ह।

हमारा ज्ञान हमारा तामसिक भार क नीच जडता और नपुसकता से अभिशप्त

पडा हुआ ह। हम सचमुच की कपना करते है कि यदि हम विनान जान जायँ, तो हम ठीक हो जायेंगे। पहले हमें सोचना चाहिए वि उस नान स, जा हमें प्राप्त था, हमने क्या विया। या उन लोगो ने जिन्होने विनानशास्त्र का नान प्राप्त किया, भारत क लिए क्या किया? नकल करने के आदी और स्वत प्रेरणा में प्रमादी, हम इग्लड के तरीका का अनुसरण करते है। हमारे पास शक्ति नही ह, हम अय कही ज्यादा शक्ति सम्पन्न जापान के लोगा की नकल करेगे, ता क्या इसमे अच्छी सफलता मिल जायगी? योरोपीय विनान जिस महान शक्ति को उत्पन्न करता ह, वह शक्तिशाली क हाथ का शस्त्र ह, वह भीमसेन की गदा ह, एक सीकिया आदमा इसे लेकर अपने को कुचलने के अलावा और क्या करेगा?

शक्ति के बिना भक्ति हमारा कुछ उपकार नही कर सकती

क्या प्रेम उत्साह, भक्ति की कमी ह? यह वा भारतीय स्वभाव म जन्मजात पडी ह। पर शक्ति के अभाव में हम एकाग्र नही हा सकते, उसका अभ्यास नही कर सकते और न ता उसकी रक्षा ही कर पायेगे। भक्ति लपट ह शक्ति इधन ह। यदि इधन ही कम ह तो आग कब तक ठहरेगी।

जब स्वस्थ स्वभाव नान स दीप्त, कम से अनुशासित और विराट शक्ति से सयुक्त होता ह तभी वह ईश्वर के प्रति प्रेम से प्रेरित होता ह। वही भक्ति ह जो जीवात्मा को ईश्वर के साथ हमेशा जोडे रहती ह। पर कमजोर स्वभाव, बहुत अक्षम ह कि वह पूर्ण भक्ति की महान ताकत का सँभाल सक। वह एक क्षण का ऊपर तो उठता ह लपट स्वग का छूने लगती ह, पर वह पथ्वी पर थका हारा लौट आता ह और पहले स भी दुबल हो जाता ह। हर प्रकार के आदोलन जिनक उत्साह और भक्ति जीवन ह, निश्चय ही नाकामयाब हागे जब तक कि मानवीय भौतिक आधार, जहा स व उठते है कमजोर और सारतत्त्व से हीन है।

इसलिए भारत को केवल शक्ति चाहिये

ज्यो ज्यो गभीरता से हम विचार करें पायेंगे कि केवल एक चीज जिसे हमें सबसे पहले प्राप्त करने का प्रयत्न करना होगा ह ह शक्ति। भौतिक शक्ति, मानसिक शक्ति, नतिक शक्ति, और सबस ऊपर आध्यात्मिक शक्ति जो तमाम शक्तियों का अक्षय स्रात ह। यदि हमारे पास शक्ति ह ता बाकी चीजें अपने आप हासिल हो जायगा। शक्ति क बिना हम स्वप्न देखने आदमी की तरह है, जा हाथ रखत हुए भी न कुछ पकड सकता ह न कर सकता ह जा पैर रखते हुए भी चल नही सकता।

जीर्ण हुए भारत को इच्छाशक्ति जगाकर पुन जन्म लेना होगा

जब भी हम कुछ करने चलते हैं उत्साह का प्रथम वेग समाप्त हो जाता ह और निरुत्साहना का रुकवा हमें गिरफ्त कर लेना ह। हम अक्सर बूढे लोगों का देखत है कि उनका वर्षों का अनुभव और नान का अतिरेक ही उनकी कम शक्ति और इच्छा

नक्ति को जड बना देता ह। कभी जब तीव्र भावावेश उमरता ह। जब उन्हे उसके दबाव में कुछ करने को उद्यत होना पडता ह, वे झिझकते हैं, सोचते ह तक वितक करते ह कोई सामयिक उपाय कर लेते ह ताकि प्रतीक्षा करने का मौका मिले और उसमें से कोई सबसे आसान और खतरा से हीन रास्ता निकल आये। वे उसी क्षण सीधी कायवाही नही कर पात और जब करते हैं समय हाथ से गुजर चुका होता ह। हमारी जाति वसे ही बूढे आदमी की तरह हो गई ह, जिसके पास ज्ञान का भडार ह, अनुभव और इच्छा करने की क्षमता ह पर जो जराजन्य मन्दगति भीरुता और दुबलता के पक्षाघात स पीडित ह। यदि भारत को जीवित रहना ह, उसे फिर से नवयुवक होना होगा ऊर्जा का तीव्र खलखलाता वग उसके भीतर भरना होगा, उसकी आत्मा का, पुन जसी वह प्राचीन युग में थी, यानी इच्छानुसार हिल्लोलपूण व्यापक, पराक्रमी, शात, आदोलित यानी नक्ति और सक्रियता के समुद्र की तरह होना होगा।

भारत का पुनजन्म हो सकता है

हममें से बहुत से लोग जो तमस से जडता के काले और भारी भरकम राक्षस से पूणत आक्रान्त ह, कहते ह भारत का पुनजन्म असभव ह क्योंकि वह पूणत जीण शीण रक्तहीन, प्राणहीन हो चुका ह, अत वह पुन स्वास्थ्य लाभ करने में बिल्कुल अक्षम ह अर्थात हमारी जाति का विनाश निश्चित ह। यह मूखतापूण प्रलाप ह। कोई भी व्यक्ति या राष्ट कमजोर नही रह सकता, यदि उसने वैसा रहने का ही निश्चय न कर लिया हो। कोई भी व्यक्ति या राष्ट विनष्ट नही हो सकता यदि उसने ऐसा होने का ही निश्चय न कर लिया हो।

राष्ट्र क्या है ? लाखो देशवासियो की शक्ति ही तो

राष्ट्र क्या ह। हमारी जन्मभूमि क्या ह ? यह जमीन का एक टुकडा नही ह, न तो एक शाब्दिक नाम ह, न तो मन की कपोल कल्पना ह। यह एक विराट शक्ति ह जो लाखो लाख लोगों की नक्तियो का जिनसे राष्ट बनता ह, समुच्चय ह जसे महिषासुर मर्दिनी भवानी लाखा लाख दवताओ की सम्मिलित शक्ति से उदभूत हुई। वह शक्ति जिसे हम भवानी भारती कहते ह, वह तीस करोड व्यक्तियों की सम्मिलित नक्ति का जीवन्तरूप ह पर वह निष्क्रिय, तमस के जादुई चक्र में आबद्ध, तथा अपने ही पुत्रों के स्वत पसन्द अज्ञान और जडता में कद ह। इस तमस से छुटकारा पाने के लिए हमें अपने भीतर के ब्रह्म को जाग्रत करना ह।

यह हमारे ऊपर है कि हम एक राष्ट्र बनते हैं या विनष्ट होते है

वह क्या चीज ह जिसका हजारो हजार पवित्रात्माओ, साधुओ और सन्यासियो ने अपने मौन जीवन द्वारा उपदेश किया ह ? वह क्या सदेश था जो भगवान रामकृष्ण परमहस के व्यक्तित्व स प्रकट हुआ ? वह क्या था जिसने विवेकानन्द को वाग्मिता को

वह सारतत्त्व प्रदान किया जिसे उनके सिंहोपम हृदय ने प्राप्त किया और विश्व को हिलाकर रख दिया। वह यह था कि इन तीस करोड़ मनुष्यों में, राजा के सिंहासन से लेकर कुली के श्रम तक, सध्या करते हुए ब्राह्मण से लेकर दूसरों द्वारा अस्पृष्ट चाडाल तक सर्वत्र ईश्वर ही विराजमान् ह। हम सभी भगवान् हैं निर्माता हैं क्योकि ईश्वरीय शक्ति हमारे भीतर ह और पूरा जीवन ही उसकी सृष्टि ह। नये रूपो का निर्माण ही सृजन नही हैं, प्राचीन की सुरक्षा भी सृजन ह, ध्वस खुद में सृजन ह। यह हम पर निर्भर ह कि हम कैसा सृजन चाहते हैं। यदि हम खुद ही नियति और माया के हाथ की कठपुतली बनना चाहते ह तो बात दूसरी ह वरना हमें चुनना होगा कि हम क्या चाहते है, क्योकि हम सर्वशक्तिमान के ही अश और रूप हैं।

भारत को पुनजन्म लेना ही होगा, क्योंकि विश्व के भविष्य के लिए इसकी माग है

भारत नष्ट नही हो सकता, हमारी जाति खत्म नही हो सकती, क्योंकि मानवता के सभी समूहो में यह केवल भारत के लिए निर्दिष्ट है कि वह सर्वोच्च और सुदरतम नियति को प्राप्त करे जो सारी मानव जाति के भविष्य के लिए अत्यावश्यक है। यह भारत ही है जो सम्पूर्ण विश्व के लिए भविष्य धर्म का अवदान देगा। सनातन धर्म सभी धर्मों को एकाकार करके, उनमे समस्वरता पैदा करके, दर्शन और विज्ञान को समन्वित करके विश्व मे एकात्म की प्रतिष्ठा करेगा। नैतिकता के क्षेत्र मे उसी का दायित्व है कि वह मानवता से म्लेच्छता और बर्बरता को निकाल कर विश्व को आर्य बनायेगा। ऐसा करने के लिए सबसे पहले उसे अपना आर्यीकरण करना होगा।

इसी महान कार्य का किसी भी जाति का सौंपे गये अब तक कार्यो मे सर्वोच्च और आश्चर्यकारी कार्य का आरम्भ करने के लिए भगवान रामकृष्ण आये और विवेकानन्द ने उपदेश दिये। यदि यह सकल्पित कार्य आज पूरा नही हो पा रहा ह तो सिर्फ इस लिए कि हमने एक बार पुन तमस् के भयानक बादलो को, भय, सन्देह, सकोच और आलस्य को अपनी आत्मा पर छा जाने के लिए ढील दे दी ह। हममें से कुछ ने भक्ति ग्रहण किया जिसे एक ने दिया, कुछ न ज्ञान ग्रहण किया जिसे दूसरे ने दिया, पर शक्ति और कर्म के आभाव के कारण हम अपना भक्ति का जीवन्त नही बना सके। हमें हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि वह काली थी जो भवानी ह शक्ति, जो रामकृष्ण की आराध्या थी और जिसके साथ उन्होंने सायुज्य प्राप्त कर लिया था।

भारत की नियति व्यक्तिया की गल्तियो और असफलताओं पर कृपा करके प्रतीक्षा नही करती रहेगी। मा की माग ह कि हमें उसकी पूजा आरम्भ करने के लिए सनद्ध होना होगा और उसे सार्वभौम बनाना होगा।

शक्ति पाने के लिए हमे शक्ति की उपासना करनी होगी

शक्ति, और शक्ति, पुन शक्ति–यही हमारी जाति की आवश्यकता है। और हमें

यदि यह शक्ति पानी है तो बिना शक्ति की पूजा के वह कैसे मिलेगी ? वह अपने लिये यह पूजा नहीं चाहती, बल्कि इसलिए कि वह अपने को हममें सचरित कर सके और हमारी सहायता कर सके। यह अति काल्पनिक धारणा नहीं है। अंध विश्वास नहीं है बल्कि प्रकृति का साधारण नियम है। देवता, चाहे भी तो अभीप्साहीन जगह में नहीं आ सकते। शाश्वत ईश्वर भी मनुष्य के अनजाने में अवतरित नहीं होता। हर उपासक जानता है कि हम ईश्वर की ओर मुड़ना होगा उसकी उपासना करनी होगी, तभी दिव्य चेतना हमारे भीतर अनिन्द्य सौन्दर्य और आनन्द से हमारी आत्मा को आप्लावित कर सकती है। जो शाश्वत ईश्वर के लिए सत्य है वही शक्ति के लिए सत्य है, क्योंकि वह उसी से निकलती है।

धर्म, सत्य मार्ग

जो लोग पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित हैं वे शक्ति प्राप्त करने के प्राचीन तरीकों पर सन्देह करने लगते हैं वे इन मौलिक बातों पर विचार करें।

जापान का उदाहरण

(१) पूरे इतिहास में, किसी भी देश के इतने आश्चर्यकारी और आकस्मिक उत्थान का उदाहरण नहीं मिलता जैसा कि आधुनिक जापान का। इस उत्थान को व्याख्यायित करने के नाना सिद्धान्त और तरीके समझाये जाते हैं पर अब स्वयं जापानी बौद्धिक बताने लगे हैं कि उनके उदय के मूल स्रोत क्या थे। वे धार्मिक स्रोत थे। वह आमेई' के वेदान्तिक उपदेश थे, शिन्तो धर्म की पुनरुपलब्धि थी, जिससे जापान को 'मिकाडो' की मूर्ति के रूप में जापान की राष्ट्रीय शक्ति की पूजा करने के लिए प्रेरित किया और उसी कारण छोटे से द्वीप के इस राज्य ने पश्चिम के ज्ञानविज्ञान को उसी तरह आसानी और कुशलता से प्रयुक्त किया जैसे अर्जुन ने गाण्डीव को किया था।

भारत में आध्यात्मिक पुनर्जागरण की आवश्यकता है

(२) भारत के लिए धार्मिक स्रोत से शक्ति लेने की आवश्यकता जापान की अपेक्षा कहीं अधिक है। क्योंकि जापान को एक ऐसी शक्ति को पूर्ण और जीवन्त बनाना था, जो उसे उपलब्ध थी। हमें शक्ति लानी है, क्योंकि हमारे पास शक्ति है ही नहीं हमें अपना स्वभाव बदलना है। हम नये हृदय के नये मनुष्य बनना है, इसलिए पुनर्जन्म लेना है। यह कोई वैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं है मशीनी भी नहीं, शक्ति केवल आत्मा के शाश्वत और अनश्वर स्रोत से निकाल कर ही निर्मित की जा सकती है, क्योंकि यह शाश्वत की आद्याशक्ति का मूल स्रोत है जो सारे नवीन अस्तित्व का स्रोत है। लेने का मतलब कुछ नहीं सिर्फ अपने भीतर के ब्रह्म का जागरण करना है और यह आध्यात्मिक प्रक्रिया है शरीर और बुद्धि का कोई भी प्रयत्न इसे प्राप्त नहीं कर सकता।

राष्ट्रीय मन के लिए धर्म की सहज माग है

(३) भारत के तमाम महान् जागरण, उसके सब शक्तिमान और वैविध्यपूर्ण आज के काल धर्म के गंभीर जागरण के स्रोतों से संयुक्त रहे है। जब कभी भी धार्मिक जागृति पूर्ण और महान रही है, राष्ट्रीय शक्ति का विराट और पराक्रमपूर्ण रूप सामने आया है। जब कभी धार्मिक आन्दोलन संकुचित और अपूर्ण रहे हैं, राष्ट्रीय आन्दोलन वैसे ही खंडित, अपूर्ण और अस्थायी हुए है। इस घटना की पुनरावृत्तियाँ ही इस बात का प्रमाण है कि यह हमारी जाति के स्वभाव में धँसी हुई चीज है। यदि तुम कोई भिन्न विदेशी तरीके के प्रयोग की कोशिश करते हो, तो हमें अपने उद्देश्य को बहुत धीमी गति से, दुखपूर्ण ढंग से और अपूर्ण रूप में प्राप्त करना होगा या असफल होना होगा। फिर क्या स्पष्ट ईश्वर और माँ के पथ को छोड़कर, जो तुम्हारे लिए तै है, अपने लिए धूमिल और भ्रान्त पथ चुनते हो।

हमारी अन्तरात्मा ही शक्ति का सच्चा स्रोत है

(४) हमारे भीतर का ब्रह्म, आध्यात्मिक शक्ति का एक मात्र अदश्य समुद्र, वही है जिससे समूचा भौतिक और मानसिक जीवन उत्पन्न होता है अब इसे पश्चिमी चिन्तक भी उसी प्रकार स्वीकार करने लगे है, जिस प्रकार पूरब के प्राचीन चिंतक स्वीकार करते थे। यदि यह ऐसा ही है तो स्पष्ट ही आध्यात्मिक शक्ति ही सभी शक्तियों का उद्गम है। वही है वे तमाम अमापनीय स्रोत, गहरे, असंख्य स्रोत। पिछले सतही स्रोतों तक आसानी से पहुँचा जा सकता है पर वे जल्दी सूख जाते हैं। परिणाम ही श्रम का प्रतिदान होता है।

तीन चीजों की जरूरत

१—भक्ति—माँ भवानी का मंदिर

हम तब तक शक्ति नहीं पा सकते जब तक माँ की उपासना नहीं करते। इसलिए हम गौरी भवानी के लिए एक मंदिर बनायेंगे। जो शक्ति प्रकट है भारत माता है। हम इसे आधुनिक शहरों से सुदूर से अलग, मनुष्यों द्वारा कम से कम पादाक्रान्त ऐसी जगह में बनायेंगे जहाँ शान्ति और शक्ति से भरपूर शुद्ध हवा बहती हो। यह मंदिर उसकी उपासना का वह केन्द्र होगा जहाँ से उसकी पूजा सारे देश में फैलेगी। क्योंकि वह पर्वतों में पूजित अग्नि की तरह सभी दिलों और दिमागों में फैल जायेगी। यह माँ भवानी की आज्ञा है।

२—कर्म—ब्रह्मचारियों का एक नया सम्प्रदाय

उपासना मृत और प्रभावहीन होगी यदि इसे कार्य में उतारा न जाय इसलिए हम एक ऐसा मठ बनायेंगे जिसमें नये ढंग के कर्मयोगी होंगे, वे व्यक्ति जिन्होंने मातृ सेवा के लिए अपने सब कुछ का त्याग कर दिया हो। इनमें से कुछ, यदि वे चाहते है तो पूर्ण संन्यासी भी हो सकते हैं। अधिकांश ब्रह्मचारी होंगे जो अपना नियत कार्य पूरा

करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश ले सकते हैं। सबको वैराग्य स्वीकार करना ही होगा।
३—क्यों ? कारण

(१) क्योंकि जितना ही अधिक हम अपनी शारीरिक वासनाओं और रुचियों से इंद्रियभोगों लिप्साओं, इच्छाओं, भौतिक जगत के आकर्षणों से अपने को अलग कर देंगे, उतनी ही क्षमता से हम अपने भीतर की आध्यात्मिक शक्ति के निकट पहुँच सकेंगे।

(२) क्योंकि शक्ति के विकास के लिए पूर्ण एकाग्रता जरूरी है। मन पूर्णत, अपने उद्देश्य की ओर उसी तरह परिचालित होना चाहिए जैसे कुन्त अपने निशाने की ओर जाता है। यदि दूसरी चिन्तायें और इच्छाएँ मन को अस्थिर कर देती हैं कुन्त अपने सही रास्ते से हट जायेगा और निशाना चूक जायेगा। हम ऐसे व्यक्तियों का एक केन्द्र चाहते हैं जिनके भीतर शक्ति पूर्णत विकसित हो चुकी हो जिनके भीतर व्यक्तित्व का प्रत्येक अणु इससे प्लावित हो और वह इस तरह उच्छलित हो रही हो कि जमीन को उपजाऊ बना सके। ये लोग माँ भवानी की अग्निशिखा को अपने दिल और दिमाग में लिये हुए देश के कोने कोने में यह ज्योति फैलाने का कार्य करेंगे।

ज्ञान, महान् सन्देश

भक्ति और कर्म पूर्ण और स्थायी नहीं हो सकते यदि वे ज्ञान पर आधारित न हो। इस सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी इस प्रकार से शिक्षित किये जायेंगे कि वे अपनी आत्मा को ज्ञान से दीप्त कर सकें और अपने सभी कार्य उसके सहारे सम्पादित कर सकें। इस ज्ञान का आधार क्या होगा ? महान् मन्त्र सोऽहं वेदान्त के इस परम सूत्र के अलावा और आधार क्या हो सकता है। इस पुराने वचन को राष्ट्र के हृदय में व्याप्त करा देना है। ज्ञान, जो कर्म और भक्ति से संयुक्त होगा, वह मनुष्य को सभी भयों और दुर्बलताओं से मुक्त कर देगा।

माँ का सन्देश

इसलिए जब तुम पूछते हो कि भवानी कौन है, वे स्वयं उत्तर देती हैं—"मैं अनन्त शक्ति हूँ जो शाश्वत से निकल कर शाश्वत भाव से तुम्हारे भीतर विद्यमान हूँ। मैं विश्व जननी संसारों की प्रसूता, और इस पवित्र भूमि आर्यभूमि की, जो मेरी ही मिट्टी से बनी है मेरे ही सूर्य और हवाओं से पालित है, सन्ततियों के लिए मैं भवानी भारती हूँ, भारतमाता हूँ।

यदि तुम पूछते हो कि हम क्या भवानी के लिए मंदिर बनायें, तो उसका उत्तर सुनो— *'क्योंकि मैंने ऐसा आदेश दिया है, क्योंकि भविष्यत धर्म के लिए केन्द्र बनाकर* तुम शाश्वत प्रभु की तात्कालिक इच्छा की पूर्ति करोगे और उस गुण का अर्जन करोगे

जो इहलौकिक जीवन को वल्पूण, और पारलौकिक को महान बनाता ह। तुम एक राष्ट्र के निर्माण में सहायक बनोगे, एक युग व निर्माता होगे, और विश्व को आय बना सकोगे। यह राष्ट्र तुम्हारा राष्ट्र ह, यह युग तुम्हारा युग ह और विश्व जमीन का वह खड नही ह जो पवता और समुद्रों से घिरा ह वल्कि यह लाखा लाख लोगा की अपनी पथ्वी ह।

इसलिए आओ, माँ का आह्वान सुनो, वह तुम्हारे दिलो में बैठी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही ह कि वह प्रकट हो, पूजित हो। अभी वह निष्क्रिय है, क्याकि हमारे भीतर का ईश्वर तमस से घिरा ह, उसकी निष्क्रियता से आहत ह, दुखी ह क्याकि मा क बच्चे अपनी सहायता के लिए उससे प्राथना नही कर रहे हैं। तुम यदि अपने भीतर उसकी प्रेरणा अनुभव करते हो, अह का काला पर्दा चीड कर फेंक दो, सासारिक आकपण की उन दीवारो को जो तुम्हें कद किये हैं तोड दो। माँ की सहायता में उठो जो भी तुम्हारी क्षमता हो शरीर से बुद्धि स, वाक स, धन से, प्रायना से, उपासना से, जसे भी सभव हो उसकी सहायता में खडे हो। पीछे मत हटो, क्योकि जिन्हें उसने पुकारा है और जिन्होने पुकार नही सुनी वे उसके आगमन पर ही उसका मूल्य समझेंगे, पर जो उसके आगमन में किंचित भी सहायता करेंगे, उससे माँ का चेहरा कितना सुदर और दैदिप्यमान् हो उठेगा।

●

इस आह्वान के नीचे एक परिशिष्ट' भी जुडा ह जिसमें इस केन्द्र के कायकर्ताओ के लिए नाना प्रकार के नियम दिये हुये हैं। सामान्य नियम, जनता के लिये काय करन के ढग, मध्यवग म काय के तरीके, धनी वग के साथ काय की विधि और अन्त में पूरे देश के लिए कायक्रम उपस्थित किया गया है। इस दस्तावेज के नीचे श्री अरविन्द के हस्ताक्षर ह।[1]

भवानी मदिर के उपयुक्त दस्तावेज से स्पष्ट हो जाता ह कि १९०५ के आसपास श्री अरविन्द ब्रह्मचारियो का एक ऐसा सगठन तयार करना चाहते थे जो न सिफ देश की आत्मा को उसकी निजी आध्यात्मिक शक्ति से पुनरुज्जीवित कर सके, बल्कि वह उग्रराष्ट्रीयतावादी विचारधारा को आगे बढाते हुए मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त भी करा सके। इस दस्तावेज से स्पष्ट ह कि इसे श्री अरविन्द ने बारीन्द्र आदि की राय से तैयार किया, क्योकि क्रातिकारियो पर पडने वाले रामकृष्ण और विवेकानन्द के प्रभाव की यहा स्पष्ट स्वीकृति है। यह उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण का सही राज

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ७६ ८८ पर उपस्थित मूल का लेखक द्वारा प्रस्तुत अनुवाद।

नैतिक कार्य का दस्तावेज है। न्यायाधीश रौलेट की अध्यक्षता में १९१८ में राजद्रोह की छानबीन करने के लिये एक कमेटी बनी। उसी रौलेट कमेटी ने अपनी रपट में 'भवानी मंदिर' की इस योजना को बहुत खतरनाक बताया था और लिखा था— 'यह पुस्तिका धार्मिक आदर्शों को राजनीतिक उद्देश्यों में बदलने की दुरभिसंधि का विशिष्ट उदाहरण है। यह निश्चय ही हिन्दू क्रांतिकारी आन्दोलन के संक्रामक कीटाणु से भरी है।' पी० सी० चक्रवर्ती ने अपने निबंध "श्री अरविन्दो एण्ड इंडियन फ्रीडम मूवमेंट" में लिखा— 'भवानी मंदिर का उद्देश्य धार्मिक आदर्शों को राजनीतिक मन्तव्यों में ढालना नहीं बल्कि राष्ट्रीयता को एक धर्म के रूप में परिवर्तित करना और राजनीतिक संघर्ष को आध्यात्मिक पृष्ठभूमि प्रदान करना था।'[1] स्वयं श्री अरविन्द ने अपने शिष्यों से बातचीत में भवानी मंदिर की योजना के विषय में ये बातें कही थीं।

'इसमें और आनन्द मठ में काफी समानता है क्योंकि दोनों में आध्यात्मिक जीवन और राजनीति को एक साथ चलाने पर जोर है। भवानी मन्दिर की स्थापना का उद्देश्य मातृभूमि के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव जगाना था। यह राजनीतिक संन्यासी पैदा करने के उद्देश्य से स्थापित किया जाने को था। यह योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। मैं राजनीति में आ गया और बारीन्द्र क्रांतिकारी संगठन में चला गया। बारीन्द्र ने विन्ध्याचल की पहाड़ियों में भवानी मन्दिर के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश भी की पर वहां से पहाड़ी ज्वर लेकर लौट आया।'[2]

बाद में श्री अरविन्द ने इन क्रांतिकारियों से अपना सम्बन्ध पूर्णतः विच्छिन्न कर दिया। ऐसा उन्होंने क्यों किया? गिरिजाशंकर राय जैसे लोग यह कहना चाहते हैं कि उन्होंने कभी सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया। उन्होंने श्री अरविन्द के चरित्र में

जाकर मैं यहा श्री अरविन्द के मन को ही उद्धृत कर रहा हू —

"वारीन्द्र ने अपनी पुस्तक में सारी स्थितियो का सच्चा रूप नही दिया है। मैं उक्त संस्था का न तो संस्थापक था और न चालक। वस्तुत पी० मित्तर और मिस घोषाल ने बरान ओकाकुरा से प्रेरणा पाकर इसे शुरू किया। जब मैं बगाल आया तो मैं इसके बारे में जान पाया। मैं सिर्फ इनकी गतिविधियो से अपने को वाकिफ बनाये रहता था। मेरी धारणा सम्पूर्ण भारत में सशस्त्र क्राति की थी, उन्होने उस वक्त जो किया या कर रहे थे वह बहुत बचपनापूर्ण था। किसी मजिस्ट्रेट की हत्या आदि। बाद मे यह आतकवाद में बदल गया और डाकेजनी आदि भी की गयी। ऐसी कभी भी न मेरी धारणा थी और न उद्देश्य ही। बगाली बहुत भावुक होता है और हर चीज को जल्दी नतीजा देख लेना चाहता है, वह वर्षो की प्रतीक्षा के बाद पूर्णत तैयार होना नही चाहता। हम पूरे रूप मे आत्म जागरण के बाद एक छापामार तौर का आयरलैंड के सिनफिन (Sinn Fein) किस्म का युद्ध चलाना चाहते थे। अब तो आज के युद्धात्मक तौर तरीको में ऐसी चीजें व्यर्थ और असफल होने के लिये निश्चित प्राय हो गई है।"[1]

नीरदबरण ने जो सम्भवत इस सदर्भ में गिरिजा जैसे लेखको द्वारा उनके चरित्र पर बचनात्मक दोष लगाने वाले लेखको के आरोप से पूर्ण परिचित थे पूछा—"आपने आतकवादी आन्दोलन को रोका क्यो नही ?" श्री अरविन्द ने कहा— किसी भी चीज को जो बहुत आगे बढ गई हो रोकना बुद्धिमानी नही होती। हो सकता है उससे कोई अच्छा चीज ही निकल आती।'[2]

श्री अरविन्द पूर्णत तब तक उनके कार्यों से निराश नही थे। उनका अलगाव तो बाद के कारनामो का परिणाम था। उस वक्त भी वे उन्हें सिर्फ सलाहें ही देते थे। इसी सिलसिले में उनके सहयोगी क्रातिकारी श्री नलिनीकान्त गुप्त के संस्मरणो का अपना विशेष महत्व है। नलिनी जब मानिकतल्ला के क्रातिकारी सगठन में सम्मिलित होने को उत्सुक हुए तो उनकी पत्नी वारीन्द्र के सामने हुई।[3] पकडे जाने के बाद की स्थिति का वर्णन करते हुए नलिनीकान्त गुप्त ने लिखा है —श्री अरविन्द उदाहरण देकर कहते थे कि श्रीकृष्ण जरासध द्वारा पकडा जाना पसन्द न करके द्वारका भाग गये ताकि शत्रु से दुबारा युद्ध करने की तयारी करें। इसलिए श्री अरविन्द आवश्यक पलायन या पीछे हटने की पद्धति को कभी बुरा नही समझते थे। इसीलिए उन्होने वारीन्द्र और उनके सगठन को आदेश दे रखा था कि पुलिस द्वारा पकडे जाने पर उन्हे तुरन्त

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्र० भा० पृ० ४८।

२ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्र० भा० पृ० ५८।

३ रैमिनिसैंसेज पृ० ७।

अपराध स्वीकार करने की जल्दीवाजी नही करनी चाहिए। उन्हें अपना मुह बन्द रखना चाहिए और समय आने पर बाद में जो कहना हो, कहना चाहिए। पर यह सही ह कि वारी द्र और दल के कुछ वरिष्ट लोगो ने गिरफ्तारी के थोडी देर बाद ही पूणत अपराध स्वीकार कर लिया। उन्होंने ऐसा अपने दल के लोगों को पूणत नष्ट होने से बचाने के उद्देश्य से किया।[1] श्री अरविन्द यदि क्रान्तिकारी सघटनो को चतुराई और बुद्धिमत्तापूवक काय करने को सलाह देते थे, तो यह उनके चरित्र की कभी यह और कभी वह वाली त्रुटि वसे कही जा सकती ह, जैसी की गिरिजाशकर राय ने किसी और नेता में नही देखी। य कुछ लोगा को अबूझ भले लगे गलत कही स नही ह। क्या स्वय महाभारत के कृष्ण ने नही कहा था

न च वो हृदि कतव्य यदय घातितो रिपु।

मिथ्यावध्यास्तथोपायवहव शत्रवोऽधिका ॥—महा० गदा०। ६२। ६७।

अपने अधिक शक्तिशाली शत्रु को मिथ्याचार से अर्थात कूटनीति से मारने पर पश्चाताप नही करना चाहिए। हमेशा ही आसुरी शक्तियो से युद्ध करते हुए देवताओ ने इस माग का अनुसरण किया हैं। इसलिए इस 'सद्भिश्चानुगत माग का अनुसरण करन में कोई अनौचित्य नही ह। इसी प्रसग में नलिनी बाबू ने एक और आकषक प्रसग का उद्घाटन किया ह। पुलिस ने वारवार श्री अरविन्द को समझाया, कुछ चापलूसी द्वारा पिघलाने क लिए या उत्तेजित हो कर उनके कथनानुसार मान लेन क लिए कि आप जसे एक शक्तिशाली सच्चे स्पष्टवादी आदमी को छद्म ढग नही अपनाना चाहिए या कुछ छिपाना नही चाहिए वे एक एसे साहस वाले आदमी ह कि जिस काय को अपना धम और उचित समझकर किया ह, उसे खुल आम मान लेना चाहिए परन्तु श्री अरविन्द एसी चालबाजियो में फसन वाले नही थे। उनके सामने उद्देश्य की सफलता का महत्व होता था अपनी क्षमता और गुणा के प्रदशन द्वारा चरित्र की श्रेष्ठता प्रमाणित करने का नही।[2]

वहरहाल बगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन नष्ट हो गया। कुछ तो आतकवाद के सस्ते और निष्प्रयोजन रास्ते को अपनाने क कारण और कुछ भावुक क्रान्तिकारियो की जल्दबाजी के कारण। अत श्री अरविन्द जसे व्यक्ति के लिए स्पष्टत राजनीति में आने क अलावा कोई रास्ता नही बचा। श्री धनजय कीर ने अपनी पुस्तक लोकमान्य तिलक में ठीक ही लिखा ह कि श्री अरविन्द ने अपनी जन्मभूमि को ठीक उसी समय कमभूमि के रूप में चुना जिस समय बगाल को उनके जैसे उत्साहमय व्यक्तित्व की सख्त जरूरत था।[3]

१ स्निमिनैथन पृ० २४।
२ वही पृ० २३।
३ पॉपुलर प्रकाशन बम्बई, १९६९ पृ० २५४।

स्वराज्य के बलिपथी

सहस्र साकममचत परिष्टोभत विंशति
शतैनमन्वनोनुवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
ऋग्वेद १।८०।९

देशवासियो! सहस्रों मिलकर स्वराज्य की अर्चना करो। बीसियों मिलकर इसे निनादित करो सैकड़ों मिलकर स्वराज्य के लिए उद्यत बलिपथी इन्द्र की स्तुति करो। सभी स्वराज्य के पुजारी बनो।

स्वराज्य के लिये प्रयत्न तो श्री अरविन्द ने बड़ौदा रहते ही आरंभ कर दिया था। क्रान्तिकारियों के संगठन का कार्यारंभ हो चुका था। वे कई बार बंगाल की इस उद्देश्य से यात्रा भी कर आये थे किन्तु अभी तक प्रकट रूप से राजनीतिक मंच पर आने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा थी। "यह निर्विवाद सत्य है कि उग्रवादी भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के वे सर्वाधिक आकर्षक व्यक्तित्वों में से एक थे।"[1]

श्री अरविन्द का राजनीतिक क्रिया-कलाप तीन दृष्टियों से संगठित और संचालित हो रहा था। क्रान्तिकारी संगठनों द्वारा सशस्त्र क्रांति के माध्यम से स्वराज्य प्राप्त करने की योजना के सूत्रधार वे ही थे।[2] यह कार्य उन्होंने किसी भी योग्य राजनीतिक संगठन के अभाव में स्वीकार किया था। क्योंकि उनके उग्र राष्ट्रवाद को स्वीकार करने वाली कोई राजनीतिक संस्था न थी। इसी को लक्ष्य करके आयंगर ने लिखा था— "नरमदल वालों की साधुतावादी नीति से कांग्रेस ग्रस्त थी, राष्ट्र की नब्ज का तापमान काफी गिरा था, यहाँ तक कि उनके स्वयं के प्रान्त बंगाल में भी कोई खास जागृति न थी, अतः यह संभव न था कि वे बंगाल को अपने उग्रराष्ट्रवाद के अनुरूप बना पाते।"[3] जीवनी लेखक आयंगर ने स्थिति का ठीक विश्लेषण किया है, किन्तु ऐसा नहीं कि इन स्थितियों में अरविन्द चुप रहे। उन्होंने ऐसी स्थिति में अपने को गुप्त समितियों के साथ जोड़कर क्रान्तिकारी कार्यों को बढ़ाने का प्रयत्न किया, जिनका हम पीछे विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। पूरे सुषुप्त भारत को, जो स्वतन्त्रता प्राप्ति को असंभव करिश्मा समझकर चुप्पी साधे पड़ा था, प्रचार और राजनीतिक उद्बोधन के लेखों भाषणों आदि

१ द रिनेसाँ इन मिलिटेंट नेशनलिज्म इन इण्डिया शंकर घोष एलाइड पब्लिशर्स १९६९, पृ० २३३।
२ आन हिमसेल्फ, लाइफ आफ अरविन्दो पृ० २१९।
३ के० आर० श्री निवासआयंगार, श्री अरविंदो, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, पृ० १०६।

से जाग्रत करके, अपने को राष्ट्र के रूप में एक और अविच्छिन्न सत्ता के रूप में सोचने की शक्ति और क्षमता देने तथा स्वतन्त्रता के लिये असीम अभीप्सा जगाने के कार्य के आरम्भकर्ता भी वे ही थे। जनता की ऐसी वैधानिक संस्थाओं के निर्माता भी वे ही थे जो सरकारी तन्त्र और अत्याचार का अवज्ञात्मक प्रतिरोध करने के लिये तत्पर हुई। सच तो यह है कि उस पद्धति से, जिससे भारत ने स्वाधीनता प्राप्त की, यानी सविनय अवज्ञा आंदोलन और निष्क्रिय या निःशस्त्र प्रतिरोध की पद्धति के उद्भावक भी वे ही थे।

इसी बीच तिलक से उनकी प्रगाढ़ मैत्री हो चुकी थी। अहमदाबाद कांग्रेस में उनसे मिले थे। वे तिलक को क्रांतिकारी दल का एकमात्र संभावित नेता मानते थे। क्रांतिकारी दल के कार्यक्रम में स्वदेशी की भावना के प्रचार को वरीयता दी गई थी, जो बाद में राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रमों का आवश्यक अंग बन गयी। महाराष्ट्रीय क्रांतिकारी सखाराम गणेश देवस्कर ने, जो बांग्ला के कुशल लेखक थे, अरविन्द के कहने पर 'देशेर कथा' नामक पुस्तक लिखी। जिसमें अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण का बड़ा तथ्यात्मक वर्णन था। देवस्कर ने ही शिवाजी पर लिखी अपनी जीवनी में पहली बार स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया था। देवस्कर की 'देशेर कथा' उन दिनों तरुणों के लिए सबसे अधिक प्रेरणाप्रद पुस्तक थी।

तिलक के साथ श्री अरविन्द ने कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया था। इसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। इस अधिवेशन में उग्रदल ने, अभी तक अल्पसंख्यक होते हुए भी तिलक के नेतृत्व में अपने राजनीतिक कार्यक्रम का कुछ भाग कांग्रेस पर लादने में सफलता प्राप्त की।[1] सुबोध मल्लिक ने जो गुप्त कार्य में और तदन्तर कांग्रेस के राजनीतिक कार्यों में श्री अरविन्द के एक सहयोगी थे, और जिनके घर में वे कलकत्ता निवासकाल में प्रायः ही रहा करते थे बंगाल राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना के लिए एक लाख रुपये दिये थे और यह शर्त रखी थी कि अरविन्द को इस महाविद्यालय में १५०रु० के वेतन पर प्रिंसिपल का पद दिया जाये।[2] श्री पुराणी ने लिखा है कि— ३ अप्रैल १९०५ में जब वे प्रिंसिपल के रूप में बड़ौदा में कार्य करने लगे, उस समय उनका वेतन ५५० रु० + १६० रु० = ७१० रुपये महीने था।[3] यह सब कुछ छोड़ छाड़ कर राष्ट्रीय महाविद्यालय में १५० रु० मासिक वेतन पर उन्होंने

१ जिस प्रकार तिलक और सुरेन्द्रनाथ के बीच मनोमार वार्तायें हुई इसका बहुत विस्तृत वर्णन रेमिनिसेंसेज एण्ड एनक्डोट्स एबाउट लोकमान्य तिलक में मिलता है। देखिए—द्वितीय भाग पृ० ५९–१२०।

२ श्री अरविन्द आश्रम तथा श्रीमाताजी के विषय में पृ० २९।

३ एस्पेक्ट्स ऑफ श्री अरविन्दो पृ० ८८।

प्रिंसिपल का पद स्वीकार कर लिया। इसे क्या श्रेयस् के लिए प्रेयस का बलिदान नही कहा जायेगा।

हम पिछले अध्याय में ही यह दिखा चुके है कि आध्यात्मिक साधना के बल पर आत्मसाक्षात्कार की सिर्फ उनके मन में कल्पना ही नही जगी, बल्कि उन्होंने उस उद्देश्य के लिए सतत प्रयत्न आरंभ कर दिया था। मृणालिनी देवी के नाम लिखे पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदूधर्म ने 'शरीर में ही, मन में ही ईश्वर को प्राप्त करने का जो मार्ग" बताया है, उस पर वे चल रहे थे। उन्होंने यह भी लिखा था कि "एक महीने में अनुभव कर सका हूं कि हिन्दूधर्म की बातें मिथ्या नही है।" इस पत्र से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चाहे वह मार्ग कितना भी दुर्गम क्यों न हो वे उसपर जाने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे।

उत्तर योगी श्री अरविंद की यह विशेषता है कि वे गुफा गह्वर में ब्रह्म को ढूँढने वाले योगी नही, बल्कि योग की सबसे बडी शर्त स्वतंत्रता के लिए प्राणों को हथेली पर लेकर संघर्ष करनेवाले सेनानी भी थे। भारत के प्राचीन इतिहास में इस प्रकार का समन्वय सिर्फ श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में दिखाई पडता है जो एक साथ योगेश्वर, दार्शनिक, गुरु और राजनीतिज्ञ की कई भूमिकाएँ समन्वित ढंग से निभाते हैं।

श्री अरविंद ने एक स्थान पर लिखा है—'जिस समय वैयक्तिक पूर्णता या मुक्ति लक्ष्य बन गया साधारण कर्मों (सांसारिक अभ्युदयादि) से एक प्रकार का संबंध विच्छेद-सा बन गया, जीवन का त्याग अंतिम उपलब्धि हो गया,[१] भारत के पतन का आरंभ हो गया। भारतीय पुनर्जागरण की यह एक विशेषता थी कि उस वक्त के आध्यात्मिक व्यक्ति प्रायः स्वतंत्रता सेनानी या क्रान्तिकारी भी थे। एक बार बातचीत के सिलसिले में श्री अरविंद ने कहा—'यह कितना आश्चर्यजनक है कि इतने अधिक संन्यासियों ने भारतीय स्वतंत्रता पर ध्यान दिया। विवेकानंद का राजनीतिक कार्यों की ओर पूरा ध्यान था। क्रांतिकारी ओज के उत्साहपूर्ण संवेग भी उनमें बराबर उठते रहे। उन्हें एकबार एक (विजन) प्रतीति भी हुई थी जो बहुत कुछ मानिकतल्ला बगान से मिलती-जुलती कही जा सकती है। महर्षि रमण के नौजवान शिष्य क्रांतिकारी थे, हमारे योगानंद के गुरु (श्री युक्तेश्वर गिरि) भी क्रान्तिकारी धारणायें रखते थे। ठाकुर दयानंद क्रांतिकारी थे। नगाई जप्ता जिन्होंने उत्तरयोगी [श्री अरविंद] के बारे में कहा था वे भी क्रांतिकारी थे।[२]"

यहाँ इतना जोड देना अप्रासंगिक न होगा कि श्री बंकिम की आनंदमठ की

१ योग-समन्वय, पृ० २६।

२ ईवनिंग टॉक्स विद श्री अरविंदो प्रथम भाग पृ० ३९४।

कल्पना ऐसे ही सन्यासियों को देखकर प्राप्त हुई। बंगाल का सन्यासी विद्रोह तो अपना ऐतिहासिक महत्व रखता ही है, बंकिम की प्रेरणा भी वही था।

जिस प्रकार श्री अरविन्द का योग सन्यासियों की "नकार" की तीव्र नकार है, उसी प्रकार उनकी क्रान्तिकारी और राजनीतिक गतिविधियां भी उपयुक्त सन्यासियों की अतिवादिता से बिल्कुल भिन्न है। वे मात्र क्रान्तिकारी नहीं, क्रान्तिकारी आन्दोलन के सूत्रधार थे। वे क्रान्ति के नाम पर छिटपुट हिंसात्मक कार्यों और डाकेजनी के सख्त खिलाफ थे इसीलिए बाद में उन्होंने बंगाल के पथभ्रष्ट क्रान्तिकारियों से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। सभी प्रकार के राजनीतिक क्रिया-कलापों के लिये उन्होंने पर्दे की आड़ में रहकर जब बंगाल में भूमि तैयार कर ली, तभी वे कलकत्ते आये।

६ अगस्त १९०६ को विपिन चन्द्र पाल ने 'वन्देमातरम' नामक पत्रिका की घोषणा की। वे ही उसके सम्पादक थे। गिरिजा शंकर लिखते हैं "आगे विप्लवर मुखपत्र युगान्तर परे निष्क्रिय प्रतिरोधेर मुखपत्र वन्देमातरम। अरविन्द जीवन इतिहास उ ठिक ताइ।"[1] गिरिजा शंकर श्री अरविन्द के व्यक्तित्व में क्रान्तिकारी और निष्क्रिय प्रतिरोधवादी का विरोधाभास देखते हैं।

'विपिनचन्द्र पाल ने जो बहुत पहले से अपने साप्ताहिक पत्र में स्वावलम्बन और असहयोग की नीति का प्रतिपादन करते आ रहे थे वन्देमातरम नाम से एक दैनिक चलाना आरंभ किया पर इसके बहुत दिन चलने की आशा न थी। क्योंकि इस शुरू करते समय उनकी जेब में केवल ५००) ही थे और भविष्य के लिए आर्थिक सहायता का कोई दृढ़ आश्वासन भी उन्हें प्राप्त न था। इस साहसिक कार्य में श्री अरविन्द से सहयोग के लिए उन्होंने प्रार्थना की तो उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया, क्योंकि उन्होंने देखा कि उन्हें अब अपने क्रान्ति के कार्य के लिए आवश्यक सार्वजनिक प्रचार आरंभ करने का अवसर मिलेगा।'[2]

श्री अरविन्द ने न सिर्फ आर्थिक दृष्टि से भार स्वरूप वन्देमातरम को स्वीकार किया बल्कि इसके निमित्त उन्होंने कलकत्ते के चरम पंथी या उग्रविचारधारा के कार्य कर्ताओं को एकत्र करके उन्हें महाराष्ट्र-गुजरात में तिलक द्वारा संगठित नये दल के साथ मिलकर एक शक्तिशाली दल बनाने की प्रेरणा भी दी ताकि कांग्रेस के नरमदल का विरोध किया जा सके। "मैंने बंगाल के नेताओं से कहा, एक क्षिपत चलने से काम नहीं। हमें कांग्रेस पर कब्जा करना ही होगा। नरम दल के नेताओं को निकाल बाहर करना ही होगा। मैंने प्रस्ताव किया कि तिलक को अखिल भारतीय नेता मान कर हम उनका साथ दें। तिलक ने, जो उत्तरभारत में बहुत प्रसिद्ध नहीं थे नेतृत्व

१ श्री अरविन्द ओ बांग्लार स्वदेशी युग पृ० ४८१।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में पृ० २९।

स्वीकार कर लिया, वे निश्चय ही महान् और विशिष्ट व्यक्ति थे।[1]" 'वन्देमातरम' इस उग्र दल का मुखपत्र घोषित हुआ और इसके आर्थिक पक्ष को मजबूत करने के लिए एक कम्पनी बना दी गयी। श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, हेमेन्द्र प्रसाद घोष और विजय चटर्जी जैसे सुयोग लेखकों की सहायता से अरविन्द के सचालन में (सम्पादक की जगह उनका नाम नही जाता था) वन्देमातरम धीरे धीरे अखिल भारतीय स्तर का पत्र होने लगा। पार स्वय स्वराज्य के पक्षपाती थे पर उन्होंने कभी इस शब्द को पूणत परिभाषित करने का प्रयत्न नही किया। किया भी तो वह नरमदल वालो के स्वायत्तशासन के करीब का लग सकता था। इस स्वराज्य की अपने अपने हिसाब स मनमानी व्याख्याएँ हाती रही। दादा भाई नौरोजी न कलकत्ते अधिवेशन में स्वराज्य शब्द की मनमानी व्याख्या करक इसे औपनिवेशिक स्तर की स्वायत्तता बतान की कोशिश भी की। श्री अरविन्द ने पूण स्वराज्य की खुली घोषणा की और वन्देमातरम् के पृष्ठों पर लगातार इसके लिए आग्रहपूण निबंध लिखते रहे। गोखले जैसे लोगों ने बार बार कहा—"पागलखाने स बाहर आया आदमी ही पूण स्वराज्य की बात कर सकता ह, अग्रेजी शासन की जगह हमारे सामने कोई दूसरा विकल्प नही, सिफ अभी के लिए नही, बल्कि आने वाले समया के लिए भी।"[2]

डा० कण सिंह ने अपनी पुस्तक में इस प्रसग में बहुत ही मौलिक प्रश्न उठाया ह—'अब इस सवाल पर विचार करना चाहिए कि क्या श्री अरविन्द अपने देश के लिए पूण स्वराज्य स कम कोई दूसरी चीज स्वीकार करने को तैयार नही थे, जब कि उस समय पूण स्वराज्य की धारणा लोगों को पूणत अव्यावहारिक और उसकी प्राप्ति असभव लगती थी।" उन्हान स्वय इसका उत्तर देते हुए लिखा ह—"पहला तो यह कि अपनी मूल आध्यात्मिक और आदशवादी धारणा के अनुकूल वे मातभूमि को दिव्य महा शक्ति मानते थे जिसका स्वतत्र करना उसकी सन्ततियों का वे पावन कतव्य मानते थे। साथ ही वे यह भी मानते थे कि भारत की स्वाधीनता भारत के लिए ही नही विश्व मानवता के लिए अत्यन्त आवश्यक ह।[3]' दूसरा यह कि भारत का पुनर्निर्माण, यानी मुख्यत आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक या जो कुछ और विकास की दिशायें हो सकती ह, बिना पूण स्वराज्य के सभव नही।[4]"

वन्देमातरम ३ मई १९०८ के अक में उन्हाने अपने इस स्वराज्य का पूणत विश्लेषित करते हुए लिखा—"पूण स्वराज्य राष्ट्रीय मानस के लिए जादू का-सा असर रखना

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० ६१।
२ स्पीचेज ऑफ श्री अरविन्दो पृ० ११४८ पर उद्धृत।
३ प्रोफेट ऑफ इडियन नेशनलिज्म, पृ० ८४।
४ वही पृ० ८८।

ह। मन की इस माँग को दबा पाना असम्भव है क्योंकि राष्ट्रीय मानस भारतीय भावना से ओतप्रोत एक ऐसी वस्तु है जो पाश्चात्य भौतिकवाद के स्थूल कल्मष से रहित है। योरोपीय धारणा का स्वराज्य यानी, व्यक्तिगत सत्ता के स्वीकरण के लिए राजनीतिक-स्वराज्य भारत को जगा नहीं सकता। प्राचीन भारतीय जीवन की आधुनिक परिस्थितियों में चरितार्थता पाने के लिये राष्ट्रीय महत्ता के सतयुग की पुनरावृत्ति के लिये, भारत को पुनः विश्व के गुरु और निर्देशक की हैसियत से कार्यारम्भ के लिए, और अन्त में वेदान्तिक आदर्श (समता) को राजनीति में उतार कर जनता को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और चरम चरितार्थता दिलाने के लिये भारत को पूर्ण स्वराज्य चाहिए ही। विश्व के तमाम गर्वोन्नत देशों की एक परिणति पहले से ही निर्धारित है कि जब मानवता के कल्याण के लिये उनका निश्चित और सीमित कार्य पूरा हो जाता है वे जीर्ण-शीर्ण होकर बिखर जाते हैं। किन्तु भारत का मुख्य कार्य है अपने शाश्वत स्रोत से विश्व को प्रकाश और पुनर्नवीकरण का अवदान देते जाना। जब भी शक्ति का प्रथम कार्य समाप्त होता है, जगत थकावट और वार्धक्य ग्रस्त हो जाता है, भौतिकतावाद से लबालब भरा, समस्याओं से पूर्णतः जर्जर जिन्हें सुलझाने का कोई उपाय नहीं, तब भारत का कार्य शुरू होता है यानी जगत् को यौवन प्रदान करना तथा अमरता का आश्वासन देना। भारत अपने हृदय देश से प्रकाश भेजता है जो स्वर्ग और जगत को पूर्णतः उद्भासित कर देता है और मानव जाति सेंट जाज की तरह जीवन के कूप में स्नान करके पुनः शक्ति और नई आशा प्राप्त करके अपनी यात्रा पर चल पड़ती है। आज वैसा ही समय आन पड़ा है। आज विश्व को भारत की स्वतन्त्र भारत की आवश्यकता है।'

इन पंक्तियों का यदि ठीक से पढ़ा जाय तो एक आश्चर्यकारी तथ्य सामने आता है। वे १९०८ में ही भारत के लिए जिस स्वराज्य की माँग कर रहे थे वह भारत के लिये तो महत्त्वपूर्ण था ही नई मानवता या अतिमानसिक दिव्य मानवता के लिये अनिवार्यता मानकर उसके लिये वे प्राणप्रण से लगे हुए थे। १९१० में उनका राजनीति से हटना और फिर अतिमानसिक समन्वित योग की प्रतिष्ठा करना एक ही मूल सूत्र की स्वाभाविक परिणति लगती है। क्योंकि उनके स्वराज्य का मुख्य लक्ष्य भौतिक समृद्धि ही नहीं वल्कि आध्यात्मिक जागरण भी था। साथ ही भारतीय स्वाधीनता को वे विश्व मानवता के लिये एक उपयोगी वस्तु समझते थे। हम इस विषय पर 'भारत नई मानवता का अन्तरिक्ष यान' शीर्षक अध्याय में विस्तार से देखेंगे कि वे अपने राजनीतिक प्रयत्नों को किस सुदूर भविष्य की दृष्टि में रखकर संचालित करते थे।

वन्देमातरम निरन्तर भारतीय राष्ट्र को अपने मूल उद्देश्य यानी स्वराज्य की प्राप्ति के लिए जाग्रत बनाने में जुटा रहा। विपिन चन्द्रपाल नये दल के कार्यक्रमों को समर्थन के लिए जब जिलों का दौरा कर रहे थे, श्री अरविन्द ही उसकी व्यवस्थापक

कम्पनी का सचालन कर रहे थे। विपिन पाल से कम्पनी के अन्य सदस्यों का वैचारिक मतभेद हो गया। परिणामत विपिन पाल वन्देमातरम से अलग हो गये। इस तथ्य को भी लोगों ने कई दृष्टियों से उपस्थित किया है। इस घटना पर प्रकाश डालते हुए स्वय श्री अरविन्द ने लिखा है—"वे कभी भी पाल के अलग होने को स्वीकार न करते क्योंकि वे पाल के गुणों को वन्देमातरम की महान सम्पत्ति समझते थे। श्री अरविन्द की अनुपस्थिति में, जब कि व ज्वर के भयानक आक्रमण से शनै शनै स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, पाल पत्र की सेवा से अलग हो गये।[1]" स्वर्गीय श्री चारुचन्द्रदत्त ने बाग्ला पत्र 'उदबोधन' के १९४४ के अकों में प्रकाशित गिरिजाशकर राय चौधरी की श्री अरविन्द लेखमाला पर कुछ प्रश्न पूछे थ। उत्तर मे श्री अरविन्द ने लिखा—'हेमेन्द्रप्रसाद घोष और श्यामसुन्दर को भी सम्पादकीय विभाग में रखा गया था, पर विपिन बाबू के साथ इनकी निभ न सकी। अत में मुझे स्मरण नहीं, नवम्बर या दिसम्बर में विपिन पाल को पत्र से अलग होना पडा। मैं स्वय अत्यधिक रुग्ण था और सरपेंटाइन लेन में अपने श्वसुर के घर मरणासन्न सा पडा था। मुझे पता नही था कि वहा क्या चल रहा है। उन्होने मेरी स्वकृति के बिना ही सम्पादक के रूप में मेरा नाम दे दिया। इस पर मैंने मत्री को कुछ कडे शब्दों में भर्त्सना की और आगे से अपना नाम देना बन्द करा दिया।'[2] इसे और भी अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होने एक सध्या वार्ता में कहा—"कुछ लोग उन्हें वन्देमातरम से निकालना चाहते थे। उन्होने मेरा नाम भी जोड दिया। मैंने उप सपादक को बुलाकर काफी झाडा। किन्तु शरारत हो चुकी थी। पाल महान वक्ता थे उस वक्त उनके भाषण काफी प्रेरणाप्रद और उत्साहप्रद थे जैसे किसी ऊपरी शक्ति का अवतरण हुआ हो। बाद में वह शक्ति भी नष्ट हो गई।"[3]

असहयोग, निष्क्रिय प्रतिरोध स्वदेशी, विदेशी बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा तथा क्रान्ति का राजनीतिक दर्शन आदि कुछ ऐसे मुख्य विषय थे जिन पर वन्देमातरम म श्री अरविन्द लगातार लिखते रहे।

विदेशी शासन जिस ढग से वैधानिक आड लेकर भारतीय जनता का शोषण करता था उसका बहुत स्पष्ट ढग स पर्दाफाश करना वन्देमातरम का उद्देश्य हो गया। श्री अरविन्द के इन लेखो ने तहलका मचा दिया। मजेदार बात यह थी कि ये लेख बहुत अधिक उग्र होते हुए भी कही से भी कानूनी पकड में आने लायक नही थे। स्टेट्समैन म सम्पादक की शिकायत थी कि "इस पत्र की प्रत्येक पक्ति में राष्ट्र द्रोह की गध आती

१ श्री अरविन्द अपने तथा माताजी के विषय में पृ० २६।
२ वही पृ० ५४।
३ रेमिनिसेंसेज एण्ड एनक्डोट्स पृ० १९१।

ह, पर ये ऐसी दानवी चतुराई से लिखे जाते ह कि कोई कानूनी कायवाही नहो की जा सकती।"[१]

इसी पत्रिका में श्री अरविन्द का धारावाहिक लेख डाक्टिन आफ पैसिव रेसिस्टेंस प्रकाशित हुआ जिसने सम्पूण भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा दी।

सिविल नाफरमानी अथवा अवज्ञात्मक आन्दोलन के उद्भावक

"आश्चय ह कि तुम्हें यहा देख रहा हूँ।" प्रसिद्ध अमेरिकी चिन्तक एमसन ने जेल में बन्द थोरो से कहा। थोरो गैरवाजिब सरकारी कानून की अवज्ञा के अपराध में जेल में बन्द किये गये थे।

आश्चय ह कि अब तक आप यहा नहो ह।" थोरो ने मुस्करा कर कहा था। थोरो के जीवनीकार हेनरी साल्ट को लिखे अपन एक पत्र में महात्मा गाधी ने कहा था कि 'ज्हा तक मुझे याद ह उनके विचारो से मेरा परिचय १९०७ में हुआ जब मैं दक्षिण अफ्रिका में भारतीयो की स्वतन्त्रता के युद्ध में सलग्न था। थोरो के निबध सिविल डिसओबिडिएस का मेरे ऊपर गहरा प्रभाव पडा और मैंने उसके कुछ अशो का अनुवाद पाठको के उपयोग के लिए 'इडियन ओपीनियन' में प्रकाशित किया।

आपको यह जानकर बडी प्रसन्नता होगी कि महात्मा गाधी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में हो रहे इस महान प्रयोग की प्रत्येक गतिविधि को तत्कालीन राष्टीय पत्र पडी मुस्तदी से देख रहे थे और जनता के सामने उपस्थित कर रहे थे। ८ जून १९०७ के बन्देमातरम के अक में घोषणा की गयी—"श्री गाधी (सरकारी) नियम की अवज्ञा करेंगे। जेल जाने को पूणरूप स तैयार।"

इसी ब देमातरम के ९ अप्रिल से २३ अप्रिल १९०७ के अको में श्री अरविन्द का एक बहुत ही सुविचारित और भविष्योन्मुखी प्रभावकारी निबध, जिसका शीषक था 'डाक्टिन आफ पैसिव रेसिस्टेंस लगातार प्रकाशित हुआ। हमें यह जानना चाहिए कि बन्देमातरम उन दिनों पूण स्वराज्य की माग करने वाले गरमदल के नेताओ का मुख पत्र था और जब उसमें 'पसिव रेसिस्टेंस पर इस प्रकार धारावाहिक निबध निकल रहा था तो उसे निश्चय ही तत्कालीन परिस्थितियो के अनुसार सर्वोत्तम रणनीति का सिद्धात मानकर ही प्रकाशित किया जा रहा था।

१९१४ ई० महात्मा गाधी भारत आये। सविनय अवज्ञा और विदेशी बहिष्कार उनके द्वारा सचालित आन्दोलन के दो बडे ही महत्वपूण मुद्दे ह। हमारी स्वतन्त्रता की लडाई में गाधी की इस अहिंसक विचार धारा का ऐतिहासिक महत्त्व ह। डा० लोहिया ने ठीक ही लिखा ह कि किसी भी व्यक्ति को सिफ अपने बलबूते, बिना किसी की सहायता के अत्याचार का विरोध करने के योग्य बनाना, मेरी समझ से, गाधी के

१ रेमिनिसन्सेज एड एनकाउन्टर्स पृ० १९१।

व्यक्तित्व और कर्मधारा की सबसे बड़ी विशेषता है।[1]"

विश्व के सामने गांधी एक अद्वितीय राजनेता और संत के रूप में इसीलिए सर्वाधिक चर्चित हुए कि उन्होंने इतने विशाल देश की असंगठित जनता को अहिंसक क्रान्ति के रास्ते तत्कालीन विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति से टक्कर लेने के योग्य बनाया और अंत में इसी रास्ते उन्होंने देश को स्वतन्त्रता भी दिलाई, जिसे प्राप्त करने में उनसे पहले और बाद के दिनों में अनेक पराधीन देशों को खून के सैलाब के बीच से गुजरना पड़ा।

हमारे आज के प्रबुद्ध पाठक इस दिशा में डा० राममनोहर लोहिया के योगदान को भी याद करते हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता के बाद अपने ही देश की सरकार के विरोध में उसके काले कारनामों के विरुद्ध सिविल नाफरमानी के दर्शन को एक नई जीवनी शक्ति प्रदान की।

इन्हीं संदर्भों में श्री अरविन्द के उस प्रथम सिद्धान्तीकरण के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न उठता है ताकि हम यह जान सकें कि श्री अरविन्द के तत्कालीन अवनात्मक प्रतिरोध सम्बन्धी विचारधारा का परवर्ती आन्दोलनों में क्या योग रहा यानि क्या हम आज भी इस विचारधारा की उपयोगिता के विषय में सोचते हुए उक्त निबंध के विश्लेषण से कुछ पा सकते हैं या नहीं। अभी बांग्ला देश की क्रान्ति के सिलसिले में शेख मुजीबुरहमान की सिविल नाफरमानी की असफलता का भी ज्वलन्त प्रश्न सामने है। बांग्ला देश में सिविल नाफरमानी के असफल होने से बहुत से समाजवादी युवजन इस सिद्धान्त की उपयोगिता पर ही सन्देह करने लगे हैं। ऐसी ही मनःस्थिति में मैंने "डाक्ट्रिन आफ पैसिव रेसिस्टेंस" को दुबारा पढ़ा और मुझे यह कहते संकोच नहीं होता कि यदि यह पुस्तक गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन अथवा सत्याग्रह तथा लोहिया या मुजीब की सिविल नाफरमानी के समानान्तर पढ़ी जाती रही होती तो इस कदर की निराशा न होती।

"डाक्ट्रिन आफ पैसिव रेसिस्टेंस" श्री अरविन्दाश्रम से एक छोटी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हो गया है। इसका अन्तिम निबंध 'बायकाट' यानी बहिष्कार भी उसी क्रम में प्रकाशित होने के लिए लिखा गया था, पर इसी बीच पुलिस ने वन्देमातरम कार्यालय पर छापा मारकर उस हस्तलेख को अपने कब्जे में ले लिया था, जिसे मई १९०८ ईस्वी में अलिपुर षड्यन्त्र काण्ड के मुकदमें में सरकारी दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत किया गया। वह निबंध भी इस पुस्तिका में ले लिया गया है।

निष्क्रिय प्रतिरोध के चिन्तन को उस वक्त सामने लाया गया जब कांग्रेस के कलकत्ते के अधिवेशन में काफी बहस के बाद भी स्वराज्य के रूप और उसकी उपलब्धि के

१ मार्क्स गांधी एण्ड सोशलिज्म पृ० १०२।

तरीके पर कोई मतैक्य नहीं हुआ । उस वक्त उग्र राजनैतिक चेतना के कुछ व्यक्तियों ने यह सोचा कि चूंकि हमारे पास पूर्ण प्रतिरोध का साधन और सम्बल नहीं है इसलिए राष्ट्रीय आत्म विकास (Notional Self government) और राष्ट्रीय आत्म सहयोग (National Self help) के द्वारा ही हम अपने अभीष्ट की ओर बढ सकते है । श्री अरविन्द ने लिखा—'अपने निजी प्रयत्नों द्वारा उपलब्ध राष्ट्रीय आत्मविकास मुक्ति के लिए अनिवार्य वस्तु है चाहे हम इसे शान्तिपूर्वक अन्त तक ले जा पायें अथवा नहीं, हम किसी भी दूसरे रास्ते से घातक पराधीनता से छुटकारा नहीं पा सकते । सौ वर्ष व्यापी अंग्रेजी नियंत्रण ने हमें निष्क्रियता और बचारपन की स्थिति में टालकर जकड़ रखा है ।'[1] नये मत वालों की सारी बातें अभी तक कांग्रेस स्वीकार नहीं कर सकी थी । पर उसने स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा को अपने कार्यक्रम का अंग मान लिया था । बहिष्कार को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया था पर व्यवहार में उस पर अंकुश रखे गये थे । ऐसी स्थिति में, जो कुछ भी कारगर कार्यक्रम स्वीकृत हुए, उनके सामने विदेशी नौकरशाही सबसे बड़ी बाधा के रूप में खड़ी दिखाई पड़ी । ऐसे ही संदर्भ में श्री अरविन्द ने लिखा कि बचावात्मक या निष्क्रिय प्रतिरोध के अलावा हमारे सामने कोई रास्ता नहीं है ।

बचावात्मक प्रतिरोध का उद्देश्य क्या है । पुस्तक का दूसरा अध्याय इसी को स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है ।

उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय आन्दोलन मुख्यतः छोटे छोटे उद्देश्यों से प्रेरित रहा । कभी सख्त भूमिकर कानूनों के खिलाफ, तो कभी नौकरशाही के जुल्मों से बचने के लिए शासन और न्याय-पालिकाओं को अलग-अलग कराने के लिये, कभी इस्लेम रारी बन्दोबस्त को जल्दी से जल्दी लागू कराने के उद्देश्य से कभी ब्रिटिश राजकीय सेवाओं में अधिक से अधिक हिन्दुस्तानियों के लिये जाने की प्रार्थना के रूप में ये आन्दोलन उठते और गिरते रहे । श्री अरविन्द ने स्वीकार किया कि ये सभी प्रश्न निश्चित ही जालिम नौकरशाही के कारण उत्पन्न होते हैं जिसे न्यायपालिका की पूरी मदद मिलती है । किन्तु क्या शासक और शासक न्यायाधीश कभी भी अलग अलग किये जा सकते हैं जब कि दोनों एक ही विदेशी केन्द्रीय सत्ता के इशारे पर काम करने के लिए वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में यहां भेजे गये है । इनमें से कुछेक स्थानों पर यदि हिन्दुस्तानी भी ले लिये जाते हैं तो क्या व्यवस्था में कोई खास परिवर्तन आयेगा ? हिन्दुस्तानी अफसर आमतौर पर अधिक निकृष्ट और अपने ही देशवासियों के कंधे पर रखे गुलामी के जुए को और कसने और भारी बनाने की कोशिश करेगा क्योंकि वह अंग्रेज अफसरों की तरह शासक जाति का न होकर गुलाम जाति से सम्बद्ध होने के कारण

[1] डॉक्ट्रिन ऑफ पैसिव रेसिस्टेंस पृ ५८ ।

हमेशा अपनी पदोन्नति के लिए अपने मालिक को खुश करने के लिये, उत्साह के अतिरेक का परिचय देने के लिये ज्यादा जुल्म करेगा। इन सारी स्थितियों को ठीक से न समझ सकने के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक अंग्रेजों से प्रार्थनायें करने में विश्वास करते रहे जिसका परिणाम हमेशा ही देश के लिये बुरा होता रहा। इसी सदर्भ में नये दल ने यह घोषणा की है कि वे जनता और राष्ट्र की अदम्य साहसिकता में पूर्ण विश्वास करते हैं और इसी विश्वास के कारण वे आन्दोलन के महत्तर उद्देश्य को यानी पूर्ण स्वराज्य की मांग को लेकर सामने आये हैं और उसे उपलब्ध करने के लिए बचावात्मक प्रतिरोध की रणनीति प्रस्तुत की जा रही है। उन्हीं के शब्दों में–'हमारे इस कार्यक्रम का एक ही उद्देश्य है–प्रतिरोध चाहे सक्रिय हो या निष्क्रिय चाहे आक्रामक हो या बचावात्मक—इसका एक ही सच्चा उद्देश्य है यानी स्वतंत्र लोकप्रिय सरकार का निर्माण और उसके लिए भारत की पूर्ण स्वीकृति।'[१]

इस प्रतिरोध की आवश्यकता क्या? चूंकि हमारे पास सशस्त्र क्रान्ति की क्षमता और साधन नहीं है फिर भी हम पराधीनता के संकट और घातक प्रभावों से मुक्त होना चाहते है, इसलिये हमें एक रास्ता चुनना है। श्री अरविन्द के शब्दों में हमारी साम्प्रतिक समस्या तुरन्त बौद्धिक या पूर्णतः सब प्रकार से सभी चीजों को जानने वाला राष्ट्र बनने की नहीं है न तो धनी और औद्योगिक बनने की है बल्कि अपने को राष्ट्र के रूप में मृत्यु-मुख में जाने से बचाने की है, इस श्वेत सन्त्रास से बचकर अपने अधिकारों की दृढ़तापूर्वक रक्षा करते हुए जीवित रहने की है।[२] श्री अरविन्द इसी प्रसंग में आयरलैंड के क्रान्तिकारी पारनेल की प्रतिभा की चर्चा करते है, जिसने जनता को अत्याचारी शासन के विरुद्ध कर न देने के लिए सनद्ध किया। वे वस्तुतः पारनेल से बहुत प्रभावित थे। उनकी एक मशहूर कविता जिसे उन्होंने पारनेल और आयरलैंड को दृष्टि में रखकर लिखी उनकी मनोभावना को बड़े सशक्त ढंग से व्यक्त करती है। पारनेल को आयरलैंड की जनता ने प्रवंचित किया उसके प्रति समुचित आदर का भाव व्यक्त नहीं किया गया। १८९६ में श्री अरविन्द ने उक्त कविता लिखी। इसे अंशतः नीचे दिया जा रहा है —

तुम्हारे देवोपम हृदय में ताकत के बीच
अचानक वक्रगति आ गयी।
टूटते स्वास्थ्य के हाथों से छूट गया
अनतिदूर लक्ष्य।
आखिर को दलना पड़ा घोर श्रम से

१ पैसिव रेसिस्टेंस पृ० १५।
२ वही पृ० २८।

किये गये काम को होते हुए नष्ट।
पराधीनता मे जकडे रहने को अभिशप्त
कोई देश जब करता है अपने ही मुक्तिदाता
को कलंकित अपनी ही बदसूरत गलतियो से
उसके विराट श्रम की उपलब्धि की उपेक्षा,
जब स्वार्थ और सुविधा को
श्रेयस्कर मानता है।
तब ऐसे ही सब कुछ गिरता है और
खत्म हो जाता है।

इसके विषय में उनकी भतीजी लतिका घोष ने ठीक ही लिखा है —"इस कविता में एक अदभुत विचारोद्दीप्ति और आग है। श्री अरविन्द जो पारनेल के बहुत प्रशसक थे आयरलैंड की उसके प्रति व्यक्त कृतघ्नता से स्तंभित रह गये। वे ऐसे कमजोर लोगो के प्रति घृणा का भाव व्यक्त करते हैं जो उसके बाद आयरलैंड की व्यवस्था में उच्च पदाधिकारी हुए। इन पंक्तियों में गहरी राजनीतिक विचारवत्ता स्पष्ट है।'[1] श्री अरविन्द ने आयरलैंड का ही नही इस संदर्भ में रूस का भी उदाहरण सामने रखा है। वे लिखते हैं—"हमने देखा कि किस प्रकार निहत्थी रूसी जनता के अदम्य साहस ने अपने समय के सबसे सख्त और निरंकुश तानाशाह को, उसकी क्रूर नौकरशाही को जिसके पास जन आन्दोलनों को कुचल देने के सभी साधन उपलब्ध थे, घुटने टेक देने के लिए मजबूर कर दिया है।'[2] इन उदाहरणों का साक्ष्य इसलिए देना पडा क्योंकि वे निष्क्रिय प्रतिरोध को स्वतंत्रता के लिए इस्तेमाल करने के पक्ष में थे, किसी छोटे मोटे ध्येय की पूर्ति भर के लिए नही।

इसी संदर्भ में वे सशस्त्र क्रांति की भी चर्चा करते हैं। वे बचावात्मक प्रतिरोध के पक्ष में इसलिए नही थे कि वे रक्तपूर्ण क्रान्ति को गलत मानते थे बल्कि इसलिए कि तत्कालीन स्थितियों में सशस्त्र क्रांति संभव नहीं थी। उन्होंने स्पष्ट लिखा है— युद्ध के नीतिशास्त्र से शान्ति का नीतिशास्त्र बिल्कुल अलग होता है। युद्ध की स्थिति में रक्तपात और हिंसा से विमुख होना निन्दनीय दुर्बलता का द्योतक है। इस मनोवृत्ति की वैसी ही प्रताडना जरूरी है जैसी कुरुक्षेत्र के युद्ध क्षेत्र में अर्जुन का, अपने सगे सम्बन्धियो की व्यापक हत्या में विमुख होने पर श्रीकृष्ण ने दी थी। स्वतंत्रता किसी भी राष्ट्र के जीवन की सांस है और जब उसे घोटने की कोशिश की जाती है तो किसी भी प्रकार के हिंसात्मक झटके से मुक्त होने और आत्मरक्षा के लिए किये गये सभी काम जायज

१ मनमोहन घोष की कनिष्ठ कन्या लतिका घोष द्वारा लिखित "इण्डियन राइटर्स आफ इंगलिश वर्स" पृ० १२९।
२ पैसिव रेसिस्टैंस पृ० २१।

है अत्याचार के दबाव की किस्म ही प्रतिरोध की किस्म का निर्णय करती है। रूस में स्वतंत्रता को दबाने और अस्वीकृत करने के लिए कानूनी हत्या और फांसी का प्रयोग हुआ अथवा आयरलैंड में क्रूर बल प्रयोग किया गया, तो वहां हिंसा के उत्तर में हिंसा अनिवार्य और पूर्णतः औचित्यपूर्ण थी। जहां भी स्वतंत्रता की तुरंत आवश्यकता हो, और यदि वह राष्ट्र के जीवन मरण का प्रश्न बन गई हो तो वहां रक्तिम क्रांति एक मात्र रास्ता होती है। किन्तु जहां शासन अत्याचार के लिए वैधानिक आवरण में सूक्ष्म तरीकों का सहारा ले रहा हो और जीवन, स्वतंत्रता, सम्पत्ति आदि के विषय में कुछ सम्मान बचा हो, और वहां यदि अभी भी सांस लेने की गुंजायश हो, तो परिस्थितियां का तकाजा हो जाता है कि हम शांतिपूर्वक, किन्तु दृढ़ प्रतिरोध का प्रयोग करें। यद्यपि यहां रक्तपात और आक्रामक उग्रता कम होगी किन्तु यहां किसी भी प्रकार से कम शौर्य की जरूरत नहीं है, बल्कि व्यापक चेष्टा के लिए विराट सहनशक्ति की कहीं अधिक आवश्यकता है।[1]

जाहिर है कि श्री अरविन्द बचावात्मक प्रतिरोध के लिए कुछ खास तरह की स्थितियों का अनिवार्य मानते हैं जो एक प्रकार की लाचारी है, वे स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए रक्तपातमूलक क्रान्ति को किसी प्रकार से अनुचित या अमानवीय नहीं कहते। चूंकि भारत की परिस्थितियां सशस्त्र क्रांति के लायक नहीं थी, इसलिए निष्क्रिय प्रतिरोध को उन्होंने तत्कालीन रणनीति के रूप में स्वीकार किया।

निष्क्रिय प्रतिरोध की पद्धति क्या हो सकती है। श्री अरविन्द इस संदर्भ में सक्रिय प्रतिरोध अथवा आक्रमक प्रतिरोध और निष्क्रिय बचावात्मक प्रतिरोध का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—'पहले का उद्देश्य शासन को निश्चित रूप से क्षतिग्रस्त करना है जब कि दूसरे का शासन को किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त कर सकने से रोकना है। इस तरह व्यापक दृष्टि से उद्देश्य करीब समान है, पर रास्ता भिन्न है" ।[1] निष्क्रिय प्रतिरोध का पहला सिद्धान्त है, जनता की सगठित शक्ति से असहयोग द्वारा शासन को पंगु बनाना बहिष्कार, शासन का विदेशी सामानों का, विदेशी सत्ता को सहायता पहुंचाने वाली सभी क्रियाओं का बहिष्कार। इस बहिष्कार द्वारा हम विदेशी सत्ता को इस गरीब देश का निरन्तर शोषण करते रहने से यथासंभव रोक सकते हैं। कर मत दो यह बहुत ही महत्वपूर्ण नारा है, जिसे निष्क्रिय प्रतिरोध शीर्ष स्थान देना चाहता है? जैसा अनेक योरोपीय देशों में किया गया, पर अभी हम इस कार्यक्रम पर तुरंत अमल करना नहीं चाहते।"[2]

निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलन की कुछ बाध्यताएं हैं जिनका पालन करना अनिवार्य है। पहली बाध्यता है—"सभी अमानवीय कानूनों की अवज्ञा। ऐसे कानूनों को बदलने की

१ पैसिव रेसिस्टेंस पृ० ३।
२ पैसिव रेसिस्टेंस पृ० २४।

प्रार्थना के स्थान पर इन्हें खुले आम तोड़ना जरूरी है। यदि विदेशी सरकार हमारे कार्य को गैरकानूनी करार देती है, तो भी हम अपना कर्तव्य करना है, झूठ बोलकर, कानून न तोड़ने की सफाई देना अपने को पतित बनाना है, अपने पौरुष को कलंकित करना है। इसके परिणाम स्वरूप नौकरशाही यदि जेल देती है तो हमें स्वेच्छा से और हममें यदि जरा भी भद्रता शेष है तो प्रसन्नतापूर्वक जेल जाना चाहिए'।[1]
निष्क्रिय प्रतिरोध की एक और बाध्यता है। सशस्त्र क्रांति में गद्दारी का बहुत महत्व नहीं होता क्योंकि अन्त में जो उच्चस्तरीय शस्त्रबल है वह विजयी हो ही जाता है परन्तु निष्क्रिय प्रतिरोध में गद्दारी अक्षम्य है क्योंकि ऐसी एक भी घटना यदि क्षमा कर दी जाती है तो भयानक रूप ले लेगी और हो सकता है पूरे आन्दोलन को तहस नहस कर दे, इसलिए गद्दारों का सामाजिक बहिष्कार इस आन्दोलन की बहुत महत्वपूर्ण बाध्यता है।

गद्दारों से सावधान रहने की चेतावनी देकर ही वे संतुष्ट नहीं हो गये। वे जानते थे कि आदमी की सहनशक्ति की एक सीमा है। उसे हद से ज्यादा खींचने पर या तो गद्दारी पैदा होगी या निष्क्रियता हिंसा में बदल जायगी। ऐसी स्थिति में वे गद्दारी के नहीं हिंसा के पक्ष में थे। इन स्थितियों को पूर्णतः स्पष्ट करते हुए श्री अरविन्द इस प्रकार के आन्दोलन की सीमा पर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं— जब तक शासन की प्रतिक्रिया शांतिपूर्ण ढंग की रहती है और लड़ाई के नियमों के भीतर कार्य चलने दिया जाता है निष्क्रिय प्रतिरोध निश्चय ही शांत रहेगा। किन्तु इससे भिन्न स्थिति आने पर निष्क्रियता का एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय रहने की जरूरत नहीं है। अमानुषिक अपमानिक अत्याचारों के आगे झुकना या समर्पण कर देना देश की वैधानिक व्यवस्था के नाम पर अपमान और गुण्डागर्दी सह लेना कायरता है और देश के पौरुष को पतित करना है यह कार्य हमारे अपने और मातृभूमि के भीतर निहित देवत्व का अपमान है।"[2]

निष्क्रिय प्रतिरोध के अरविन्दीय चिन्तन में चार-पाँच मुद्दे बहुत ही स्पष्ट उभर कर सामने आते हैं—(१) प्रतिरोध वहीं चल सकता है जहाँ शासन वैधानिक छल छद्म के द्वारा अपना चेहरा छिपाए हुए जन आन्दोलन को कुचलने की साजिश करता है। जहाँ इस प्रकार की स्थिति न हो यानी सत्ता मानवता और विचार का सहारा या आवरण भी नहीं रखता वहाँ निष्क्रिय प्रतिरोध व्यर्थ है। (२) यह प्रतिरोध गैरवाजिब कानूनों का अवज्ञा और विदेशी माल के बहिष्कार को मुख्य कार्यक्रम मानता है। (३) इस आन्दोलन में धोखा देनेवाले गद्दारों का सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए। (४) कानून तोड़ने वाले का हमेशा साहस और प्रसन्नता के साथ जेल

जाने का तैयार रहना चाहिए। (५) यदि सत्ता निरकुश और अमानवीय हो जाय तो निष्क्रिय प्रतिराध छाड देना चाहिए और सक्रिय प्रतिरोध की तयारी करनी चाहिए।

महात्मा गाधी का सत्याग्रह जिन ध्रुवीय विन्दुआ पर चलता ह उसस अरविन्दीय चिंतन का अन्तर स्पष्ट ह। महात्मा गाधी सत्याग्रह का घोर से घोर अमानवीय वल प्रयोग क सामने भी अहिंसक हो रखना चाहते हैं, उन्होंने स्पष्ट लिखा ह—' मेरा पक्का विश्वास है कि हिंसा स कोई स्यायी वस्तु कभी निर्मित नहीं हा सकती।[१] उन्होंने अहिंसा को पूरी जीव-जाति का नियम कहा। 'पशु शारीरिक वल के अलावा और कोई नियम नहा जानता परतु मनुष्य की महिमा क लिए उच्चतर नियम का पालन जरूरी ह'।[२] व प्रत्येक अमानवीय अत्याचार को सहने के लिए प्रेरित करत ह। उनके मतानुसार अहिंसा का अथ ही ह सावभौम प्रेम। इसलिये—"प्रतिराध और प्रेम में मेल नहीं हो सकता। प्रतिराध का मान लने पर प्रेम जोवन के नियम के रूप में नहो रह सकता और तव एक ही नियम बन जाता ह वह है शक्ति का नियम"।[३] टाल स्ताय क इस कथन स गाधा पूणत सहमत थे। प्रश्न उठता ह कि यदि विदशी सत्ता ववरता का नग्नताडव करे तो सत्याग्रही को क्या करना चाहिए। गाधी ने कहा कि बुरे से बुरे मनुष्य का हृदय-परिवतन हा सकता ह। इसलिए अत्याचारी कभी भी हमारा शत्रु नहीं हा सकता सिफ दाषी होना ह। इसलिए वे अप्रतिराध की बात करते हैं। हृदय परिवतन की वात करत ह। अपने विशुद्धतम रूप में "अहिंसा का अथ ह अधिकतम प्रेम, अधिकतम उदारता। अहिंसा अनिष्टहीनता की नकारात्मक स्थिति नहीं ह वल्कि प्रेम की, बुराई करने वाले की भी भलाई करन की सकारात्मक स्थिति ह।'[४] जाहिर है कि गाधी जो अरविन्द के निष्क्रिय प्रतिराध वाले चिन्तन स पूण परिचित थे, इसीलिए उन्हें अपनी अहिंसा और सत्याग्रह वाली नीति क पक्ष में यह कहना जरूरी लगा कि ' अहिंसा निष्क्रिय नहीं हाती। वह कायरता की चीज नहीं ह। असहाय चूहा अहिंसक नहीं हो सकता।'[५] अर्थात भय पर विजय पाकर ही व्यक्ति अहिंसक हा सकता ह।

श्री गाधी के हृदय परिवतन वाले सिद्धान्त को कोई भी व्यक्ति एक मानवतावादी ऊँचे आदर्श के अलावा कोई दूसरा महत्त्वपूण स्थान शायद ही दे पाये। डॉ० लोहिया ने इस सिद्धान्त की बडी हमदर्दी से व्याख्या की और वे इस नतीजे पर पहुँचे—"गाधी

१ यंग इन्डिया २ जुलाइ १९३१।
२ नेहरू आन गाधी पृ० ४८।
३ ७ सितम्बर १९१३ को गांधी के नाम लिखा टालस्टाय का पत्र।
४ यग इडिया जनवरी १९२१।
५ वही २ जुलाइ १९२१।

जो एक साल तक स्मट्स, इर्विन, और विलिंग्डन का हृदय परिवर्तन करते रहे। चालीस वर्षों तक ये ऐसे व्यक्तियों में साहस का संचार करके उन्हें हृदयपरिवर्तन के लिए प्रेरित करते रहे। उनके किसी भी कार्य के सामान्य मूल्य का पता या अनुमान का प्रयत्न एक गलती होगी। गांधी के इन कार्यों के पीछे निरंतर उनकी यह भावना थी कि आदमी स्वभावतः अच्छा होता है जब कि कुछ परिस्थितियों में उसका बुरा होना प्रायः निश्चित सा है। इस भावना का क्या महत्व है? खासतौर से भारत से अंग्रेजों के निष्कासन में इसका कितना योगदान माना जाय? भारत की अहिंसक लड़ाई में करीब करीब मरने वालों की संख्या हिंसक क्रांति में मरनेवालों के बराबर ही ठहरेगी। और यदि उसमें भारत विभाजन की प्रक्रिया में मरनेवालों की संख्या भी जोड़ दी जाय, जैसा कि करना चाहिए तो बढ़ोत्तरी ही निकलेगी और फिर भारत से अंग्रेजों का हटना शायद मानवीय इतिहास की विडम्बनाओं में सर्वाधिक भ्रष्ट विडंबना के साथ पूर्ण है, यानी भारत विभाजन।[1] विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने में यह हृदय-परिवर्तन जिस परिणाम को प्राप्त हुआ, उससे भिन्न स्थिति पूँजीवादियों के हृदय परिवर्तन के प्रयत्नों में नहीं दिखाई पड़ती। लोहिया के ही शब्दों में— गांधी जी एक भी पूँजीपति का हृदय परिवर्तन नहीं करा सके। अधिक से अधिक उसे आधा ट्रस्टी और आधा पूँजीपति ही बना पाये। यह संभव है भी नहीं।[2]"

हृदय परिवर्तन की इस अव्यावहारिक धारणा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री अरविन्द ने कहा था—

'तुम युद्ध से कैसे बच पाओगे यदि दूसरा व्यक्ति लड़ने पर ही आमादा हो। तुम इससे बच सकते हो यदि तुम उससे ज्यादा शक्तिशाली हो या ऐसे लोगों से मिलकर जो उससे अधिक शक्तिवान् हों या फिर उस तरह जैसा गांधी जी कहते हैं यानी सत्याग्रह से उसका हृदय परिवर्तन करके। यहाँ भी गांधी जी को यह कहने के लिए विवश होना पड़ा है कि उनका कोई भी अनुयायी सत्याग्रह का सही तरीका नहीं जानता। वस्तुतः सिर्फ उन्हें छोड़कर ऐसा कोई है ही नहीं जो सत्याग्रह के बारे में पूर्ण ज्ञान रखता हो। यह सत्याग्रह के लिए कोई बहुत आशाजनक बात तो नहीं है, खास तौर से तब जब सत्याग्रह को पूरी मानवजाति की समस्याओं का समाधान बनाने का इरादा हो।[3]

श्री गांधी के इस अहिंसात्मक सत्याग्रह के बारे में जिसमें पीड़ा सहने की शक्ति को बहुत गौरवान्वित किया गया है श्री अरविन्द ने एक बार कहा था—"मुझे लगता

१ मार्क्स, गांधी एंड सोशलिज्म पृ० १५६।
२ वही पृ० १४७।
३ पुराणी, ईवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० ११९।

है कि गाधी इस बात को नही जानते कि जब कोई आदमी अहिंसा और सत्याग्रह को स्वीकार करता है तब उसकी स्थिति क्या होती ह। वे सोचते हैं कि आदमी इससे पवित्र होता ह। लेकिन जब कोई आदमी इच्छापूवक दु ख सहन करता ह या दु ख में अपने को डालता ह तब उसका प्राणिक शरीर सशक्त होता ह। ये चीजें केवल प्राणिक व्यक्तित्व को ही प्रभावित करती हैं, अन्तर की चीजो को नही। बाद में होता यह ह कि जब तुम अत्याचार का विरोध नही कर पाते तब तुम दु ख सहने का निश्चय करते हो। यह दु ख सहन प्राणिक (Vital) ह, अत इससे शक्ति मिलती ह। ऐसे दु ख से गुजरने वाला को जब सत्ता मिलती ह तब वे बदतर अत्याचारी बन जाते ह।[1] उनका यह कथन स्वतन्त्रता के बाद की सरकारो के व्यवहार से प्रमाणित भी होता रहा। बात-बात में गाधी जी की शपथ लेने वाली सरकारें छात्रो मजदूरो और दूसरे वग की जनता के वैधानिक आन्दोलनो को कुचलने में जिस क्रूरता का परिचय देती रहीं, वह किसी से छिपा नही ह। फिर क्या आज का भारत गाधी की अहिंसा को मानकर जीना चाहे तो जी सकता ह? शायद नही। तीन-तीन युद्धो का भुक्तभोगी भारत ही जवाब दे।

श्री गाधी के बाद, जिस व्यक्ति ने बचावात्मक प्रतिरोध को एक नयी भूमिका दी, वह निश्चय ही डा० राममनोहर लोहिया थे। उन्होने अपनी पुस्तिका 'सिविल नाफरमानी सिद्धान्त और अमल में लिखा ह— सिविल नाफरमानी किसी दिन हिन्दुस्तान को और दुनिया को खून और रक्तपात से बचायेगी। सिर्फ प्रचार और तक नपुसक होता ह। प्रचार और तक में ताकत तब आती ह जब कि सिविल नाफरमानी उससे जुड जाती ह। डा० लोहिया इस सिद्धान्त का विश्वजनीन पृष्ठभूमि देना चाहते हैं। सिविल नाफरमानी अथवा अन्याय से शान्तिपूवक लडना अपने आप में एक कत्तव्य ह। कत्तव्य में आगा पीछा या नफा नुकसान नही देखा जाता।'[2] गाधी जी के हृदय परिवतन वाले कमजोर हर्रे को छोड कर लोहिया ने असली तरीका बताते हुए लिखा— "इसकी कसौटी विरोधी का दिमाग नही ह, बल्कि सिविल नाफरमानी करनेवाला का दिमाग उनके दोस्त, जानी पहचानी पडोसी और आसपास के रहने वाला का दिमाग। लोहिया ने गाधी के प्रेम वाले सिद्धान्त को अधूरा मानकर सत्याग्रह के दूसरे पक्ष पर जोर दिया यानी तेजस्विता पर, गुस्से पर। गरीबी बेईमानी, बदमाशी और जुल्म से गुस्सा करो और उससे लडो।" लोहिया मानते ह कि यदि बुरे को बुरा कहने वालो की तादाद बढे तो दुनिया बेहतर हो सकती ह। वे सिविल नाफरमानी को व्यापक पृष्ठभूमि में जन—आन्दोलन का रूप लेते देखना चाहते ह। उनका ख्याल था कि लाखो

१ पुराणी इवनिंग टाक्स द्वितीय भाग पृ० ५७।

२ सिविल नाफरमानी अमल और सिद्धान्त, पृ० ७।

लोग यदि अपनी तकलीफ भूल कर अन्याय से लडने के लिए आमादा हो जाय तो सरकार झुक जायेगी। उन्होने स्पष्ट लिखा— उनका प्रण है सिविल नाफरमानी को ससार म फला देना और सरकार चाहे गोली मारे अपनी ओर से कक्ड भी नही फेंकना है—मारेंगे नही, लेकिन मानेंगे नही।" [1] इस सिलसिले म लोहिया ने एक और बात कही—"सरकार प्रचार करती है लोग माफी माँग कर छूट रहे है।" यानी एक तरफ की गद्दारी। लोहिया यहा अरविन्द की तरह उनका सामाजिक बहिष्कार नही चाहते। वे कहते है— कौन नही तकलीफ के सामने थोडी देर के लिए झुक जाया करता है। मैं सब लोगो से कहूगा कि माफी मागने वाले पर कभी ऐसा गुस्सा मत करना कि हमेशा के लिए उसकी जिन्दगी बिगाड दो। उसको प्रेम और अच्छे बर्ताव से दुबारा लड़ाई के लिए तयार करना।' [2]

लोहिया का सिविल नाफरमानी पर लिखा यह सिद्धान्त और अमल' मुकम्मल नही लगता क्योकि एक बुनियादी प्रश्न को न तो उठाया गया है और न तो उसका माकूल उत्तर दिया गया है। प्रश्न है कि यदि सरकार का जुल्म सहनशक्ति स बाहर हो जाय तो ? लोहिया कहते है "य बहुत बुरी चीजें है लेकिन इसम एक अच्छाई है कि सोशलिस्ट पार्टी तप रही है' [3] असल में तपने से आत्मशक्ति के विकास की बात खुद म एक समाधान नही बन जाती। तपने तक गनीमत है, यदि बाग्लादेश जसी तपिश आ जाय तो ? लोहिया ने इस पर ध्यान नही दिया। हो सकता है वे इस पर बाद म कुछ लिखते। यह भी हो सकता है कि उनके दूसरे दस्तावेजो म इस पर रोशनी डालने वाली बाते कही मौजूद हो। जो भी हो उनके सिद्धान्त को यदि अमली रूप देना है तो उनके अनुयायियो को इसे खुद मुकम्मल करना ही होगा।

बाग्ला देश म मुजीब ने सिविल नाफरमानी शुरू की। वह आन्दोलन वधानिक और शान्तिपूर्ण चलता रहा। कानूनो की अवज्ञा कर न देने का निश्चय, सामूहिक रूप से सरकारी जुल्मों के विरोध में सभायें। सभी कुछ ठीक ठीक ढग स चलता रहा। इसी बीच पश्चिमी पाकिस्तान की सनिक तानाशाही ने बाग्ला देश का गला दबोच लिया। सांस का आना जाना रुकने लगा। मुजीब पकड लिये गए। फौज ने अमानवीय बबरता और दमन का रास्ता अपनाया। यानी श्री अरविन्द के शब्दों में—' वह स्थिति जहाँ निष्क्रिय प्रतिरोध खत्म हो जाता है और सक्रिय के लिए तयार होना अनिवार्य हो जाता है। बाग्ला देश की पूरी लड़ाई निष्क्रिय प्रतिरोध के सक्रिय प्रतिरोध में बदलने का प्रमाण है। इसे जो लोग गाधी के सत्याग्रह से प्रभावित बताते हैं, व या तो मुजीब

१ सिविल नाफरमानी अमल और सिद्धान्त पृ० २१।
२ वही पृ० १९।
३ वही पृ० १९।

को गलत करार रहे है या गाधी को। बगला देश की क्रान्ति बगाली पुनर्जागरण के अरविन्द जस चिन्तनों से प्रभावित ह। रक्तिम क्रान्ति में परिवतन इसका प्रम ण ह।

वैयक्तिक जीवन

आरभ में श्री अरविन्द सुबाध मल्लिक के १२ वलिंग्टन स्ट्रीट वाले मकान पर रहते थे। अविनाश भी तब उनके साथ थे। कुछ महीना बाद अविनाश को दूसरा मकान ढूँढन के लिए कहा गया। ऐसा इसलिए करना पडा कि मृणालिनी और सरोजिनी श्री अरविन्द के साथ रहना चाहती थी दूसर सुबाध मल्लिक का परिवार हर प्रकार के क्रान्तिकारिया का अपने परिवार में रखने का तयार नही था।

उही दिना का बात ह। एक बहुत ही वयक्तिक घटना हुई। इसका वणन श्री चारुदत्त ने "पुरानी कथार उपसहार' में बड विस्तार स किया ह। चारुदत्त की कई बाता को, इस प्रसग को नही, क्याकि इसपर उनमे किसी ने पूछा ही नही, श्री अरविन्द ने स्वय अतिरजित कहकर टाल दिया था। किन्तु इस प्रसग की वणनशली, स्थितिया और परिणाम कुछ इस कदर के ह, हम इस कपालकल्पित नहा कह सकते। यह पूरा नाटकीय वृतान्त पूणत अरविन्दीय लगता ह।

"उन दिना श्री अरविन्द राष्ट्रीय आन्दोलन के मुख्य नेता के रूप में मुक्तिसग्राम के अग्रद्वार पर खडे थे। एक दिन श्री अरविन्द क श्वसुर भूपाल वास उन्हें रात्रि भाजन का निमत्रण दे गये। यह भा कह गये कि उनकी कन्या मृणालिना अरविन्द स मिलने कलकत्ते आई है, अत उन्हें वही रात्रि वास करना हागा।

सुबाध मल्लिक के घर की अन्त पुरवासी महिलाओ में आनन्दोल्लास मुखरित हो हा उठा। पति-पत्नी क आसन्न मिलन का सम्वाद पाकर सब का बडी खुशी हुई। महिलायें अरविन्द की साज सज्जा सजाने में जुट पडी। दपदप धुला स्वत कुर्ता, चुनट दार धाती, बेले के दो गजरे भी आ गये। अरविन्द यह सब देखते मुस्कराते खड रहे। चारुदत्त लिखते हैं

"जब वह कमरे से बाहर निकले तो उन्हें सजे धजे भव्य रूप में देखा। सबस आकषक थी उनकी सलज्ज स्मिति रेखा। हम सब तो बहुत पहले से उन्ह जमाई बाबू के वश में देखने की प्रतीक्षा में खडे थे।

लीलावती (चारु बाबू की पत्नी) ने आगे आकर उनके हाथ में दोना मालायें रख दा। बाला-"एक माला आप दीदी के गले में डालेंगे। दूसरी माला आपका दीदी पहनायेंगी। भूलियेगा मत।'

अरविन्द ने मीठी हँसी हँसते हुए जवाब दिया—'आप जसा कह रही है वैसा ही करुगा लीलावती जी।"

सुबाध मल्लिक ने भी बार बार अरविन्द से अनुरोध किया कि उन्हें रातभर वही विश्राम करना होगा। उन्हान दरवान से बुलाकर कहा, 'देखो फाटक बन्द कर रखना,

घोष साहब आज की रात बाहर रहेंगे।"

दूसरे दिन सवेरे सब ने विस्मय से देखा, अरविन्द नित्य की भांति आज भी मल्लिक निवास में चाय की टेबुल के पास उपस्थित हैं। पिछली रात ही वे वापस आ गये थे। बाहर का फाटक बन्द रहने के कारण चाहरदीवारी फाँद कर वे अपने कमरे में चले आये थे।

उत्साही बन्धु बान्धवियों ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। अंत में अरविन्द ने कहा "अच्छा सुनिये। अनेक विध चर्ब्य चोष्य भोजन के बाद ग्यारह बजे रात को ही मैं वहाँ से चला आया। और लीलावती जी, आपने जो मालायें दी थीं उस संबंध में मैंने आपकी आज्ञा का पूरा पालन किया। सबने बड़ी व्यग्रता से कहा "तो फिर आप मध्यरात्रि में ही क्यों भाग आये। ऐसी बात तो तय नहीं हुई थी?

अरविन्द के मुख और नेत्र सहास्य हो उठे। बोले, "मैंने उसको सारी बातें समझा दीं। उसने मुझे लौटने की अनुमति दे दी और मैं चला आया।"[१]

सरोजिनी और मृणालिनी के साथ श्री अरविन्द छाकू खान सामा रोड में एक मकान लेकर रहने लगे। तब उनके साथ अविनाश और वारीन्द्र भी थे। फिर २३ स्काटलेन में मकान लिया गया। वारीन मुरारिपोखर बगान चले गये। शेष श्री अरविन्द के साथ रहे।

अक्तूबर १९०६ में श्री अरविन्द बुरी तरह बीमार पड़े। उन दिनों वे अपने श्वसुर भूपालबाबू के सर्पेन्टाइन लेन वाले मकान पर थे। ४ नवम्बर को बुखार ने बहुत भयानक रूप ले लिया। नवम्बर अन्त में कुछ कुछ हालत में सुधार हुआ, किन्तु दिसम्बर में बुखार फिर आने लगा। ११ दिसम्बर १९०६ को वे फिर देवघर गये, इस आशा से कि शायद जलवायु-परिवर्तन से स्वास्थ्य में कुछ सुधार आये पर उसी समय कलकत्ते में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन होने वाला था, अतः वे २६ दिसम्बर को पुनः कलकत्ते आ गये।

निरन्तर टूटते हुए स्वास्थ्य की इस दारुण स्थिति में उन्होंने कलकत्ते कांग्रेस में तिलक के सहयोग से नरमदल वालों को गरमदल के कार्यक्रमों को स्वीकार करवाने में जो सफलता पायी उसका संकेत पहले किया जा चुका है, परन्तु इस आपाधापी और कमरतोड़ व्यस्तता में शरीर को निरन्तर उपेक्षा भी चलती रही। श्री सुबोध मल्लिक के निवास स्थान पर तिलक के नेतृत्व में गरमदल के प्रस्तावों को, जो स्वागत समिति द्वारा स्वीकृत हो गये थे, व्यापक राष्ट्रीय पृष्ठभूमि देने के लिए प्रान्तीय समितियों से समर्थन

१ श्री अरविन्द के अत्यन्त निकटवर्ती शिष्य ने मुझसे कहा था कि यह घटना मैंने श्रीमती दत्त के मुख से सुनी थी और श्रीमती दत्त कहानी गढ़ने वाली महिला नहीं थीं। अतः घटना सत्य है।" मैं उन सज्जन का नाम आदेशानुसार उद्धृत नहीं कर रहा हूँ। —लेखक

पाने का श्री अरविन्द ने लगातार प्रयत्न किया।

कलकत्ते कांग्रेस में गरमदल वालों की यह सफलता बहुत महत्त्व रखती है। किंतु बहुत थोड़े से लोग जानते हैं कि इस कर्मकोलाहल में तल्लीन रहने के कारण उनकी पारिवारिक स्थिति क्या हो गयी। यह सही है कि दिसम्बर १९०६ में जब उन्होंने देवव्रत के साथ खुलना का दौरा किया तो सर्वत्र उनका शाही स्वागत हुआ। उनके पिता डा० कृष्णधन घोष ने खुलना के लोगों की जो सेवायें की और उनके पुत्र श्री अरविन्द राष्ट्रीय स्वराज के लिए जो कुछ कर रहे थे, उसके कारण वहाँ की जनता के लिए वह नितान्त आत्मीय और श्रद्धास्पद हो गये।

इसी वर्ष वे रवीन्द्रनाथ से रात्रि भोजन के लिए निमन्त्रण पाकर उनके 'जोड़ा साँको' स्थित निवास-स्थान पर गये। एक जापानी कलाकार, सर जगदीश चन्द्र बोस और अन्य कई प्रतिष्ठित लोग वहाँ उपस्थित थे। रवीन्द्रनाथ अक्सर कृष्णकुमार मित्तर के 'संजीवनी'—कार्यालय चले जाते, जहाँ उनसे अरविन्द की भेंट होती। मनमोहन ने अरविन्द की प्रशंसा करते हुए कहा था—"इस वक्त भारत में कुल ढाई आदमी हैं। एक अरविन्द, दूसरे रवीन्द्र और आधे तिलक।'

सब कुछ हुआ, परन्तु मृणालिनी जो २६।३ छक्कू खानसामा लेन के मकान में रहती थी, उनकी जीविका और अन्य आवश्यकताएँ प्रायः उपेक्षित रहीं। श्री पुराणी ने स्पष्ट लिखा है कि '२०।१२।१९०७ तक मृणालिनी देवी के लिए खर्च की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की जा सकी।[1]" इस प्रकार की स्थिति में वह महान नारी बिना किसी शिकवे शिकायत के अपना कार्य चलाती रही। ३।१२।१९०७ के अपने पत्र में मृणालिनी ने सूचित किया कि "अब अविनाश विवाह करने जा रहे हैं और विवाहोपरान्त आपके घर का कोई काम न कर पायेंगे। अविनाश श्री अरविन्द के परिवार के साथ रहते थे और घर के काम-काज में हाथ बँटाते थे। पत्नी के पत्र के उत्तर में श्री अरविंद ने लिखा—

१७ फरवरी १९०७

प्रिय मृणालिनी,

अनेक दिनों से चिट्ठी नहीं लिखी। यह मेरा चिरन्तन अपराध है। इसके लिये यदि तुम अपने निजी गुणों से क्षमा करो तो ही वरना मेरे लिए और उपाय क्या है? जो मज्जागत है वह एक दिन में बाहर नहीं होता। इस दोष का सुधारने में मुझे जान पड़ता है, यह जन्म चला जायेगा।

८ जनवरी को आने की बात थी, आ नहीं सका, यह मेरी इच्छा से नहीं हुआ। जिस जगह भगवान् ले गये हैं, उसी जगह जाना पड़ा है। इस बार मैं अपने काम से

१ स्टडी आफ श्री अरविन्दो, पृ० १००।

लिये नहीं गया। उसी के काम में था। इस बार भर मनकी अवस्था दूसर ही प्रकार की हो गयी है। यह बात इस पत्र में प्रकाश नहीं करूँगा। तुम इस जगह आओगी, तब जो कुछ कहने को है सो कहूँगा। यहाँ केवल यही बात कह देनी पड़ती है कि इसके बाद मैं अपने इच्छाधीन नहीं रहूँगा। जिस जगह भगवान् मुझ ले जायेंगे उसी जगह पुतले की तरह मुझे जाना पड़ेगा, जो करावेंगे पुतले की तरह मुझे करना होगा। यहाँ इस बात का अर्थ समझना तुम्हारे लिये कठिन होगा। इसलिये बता देना आवश्यक है, नहीं तो मेरी गतिविधि तुम्हारे आक्षेप और दुःख की बात हो सकती है। तुम मत समझना कि मैं तुम्हारी उपेक्षा करके काम करता हूँ, यह मन में मत लाना। अब तक मैंने तुम्हारे विरुद्ध अनेक दोष किये हैं असन्तुष्ट हुई थी, यह स्वाभाविक है, किन्तु अब मुक्त और स्वाधीनता नहीं है। इसके बाद तुम समझ सकोगी कि मेरे सब काम अपनी इच्छा पर निर्भर न होकर भगवान के आदेश से ही हुए हैं। तुम आओगी तब मेरा तात्पर्य हृदयंगम कर सकोगी। आशा करता हूँ, भगवान ने मुझे अपनी अपार करुणा का जो प्रकाश दिखाया है उसे तुम्हें भी दिखायेंगे किन्तु यह उनकी इच्छा पर ही निर्भर है। तुम यदि मेरी सहधर्मिणी होना चाहो, तो वह तुम्हारी एकान्त इच्छाके बल से तुम्हें भी करुणा पथ दिखायेंगे। इस पत्रको किसी को भी देखने को नहीं देना कारण जो बातें कही हैं वे बड़ी गोपनीय हैं। तुम्हारे सिवा और किसी को भी कहीं कहना। निषिद्ध है। आज यहीं तक।

तुम्हारा स्वामी

पुनश्च संसार की (घरकी) बातें सरोजिनी को लिखी हैं। अलग तुम्हें लिखना अनावश्यक है सो पत्र देखकर समझोगी।

घर-परिवार की बातें सरोजिनी को लिखी गयी। पत्र में पत्नी के प्रति अनचाही उपेक्षा की भावना से ही अरविन्द का हृदय हिल जाता है पर वे अपने पागलपना से लाचार थे जिनके सामने उन्होंने अपने को सभी भांति समर्पित कर दिया था। श्रीपुराणी बताते हैं कि ६।१२।१९०७ को सम्भवतः मृणालिनी का पत्र मिलते ही उन्होंने जो उस समय देवघर में थे रुपये भेजे।[१]

काल कोठरी के काले पंजे का पहला आघात

वन्देमातरम की गतिविधि तेज हो गई थी। अग्रज पत्रकार एस० के० रैट विलफ ने जो अनेक वर्षों तक स्टेटसमन से सम्बन्धित रहे मैनचेस्टर गार्जियन के २६ दिसम्बर १९५० के अंक में लिखा था— हम अरविन्द घोष को एक क्रांतिकारी के रूप में ही जानते हैं तथा एक ऐसे पत्रकार के रूप में जिन्होंने एक प्रज्वलित पत्र के माध्यम से भारत की दैनिक पत्रकारिता को नया स्तर प्रदान किया। कर्जन के हटने के तुरन्त बाद

१ लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो पृ० १००।

१९०६ में अरविन्द और उनके मित्रों ने वन्देमातरम का प्रकाशन शुरू किया। यह पूरे आकार का शीट था जो बहुत स्पष्ट अक्षरों में हरे कागज पर निकलता था। और उसमें सम्पादकीय और दूसरे निबंध ऐसी शक्तिशाली अंग्रेजी में लिखे जाते जिनकी चनझनाहट भारतीय पत्र-जगत के लिए तब तक बिल्कुल अनजानी थी। वह उग्र राष्ट्रीयता का पत्र था।"

इसी वन्देमातरम में अरविन्द का निष्क्रिय प्रतिरोध पर धारावाहिक लेख २३ अप्रैल १९०७ को पूरा हो गया था। श्री अरविन्द अपने व्यस्त जीवन में किस प्रकार काय करते थे, इसकी एक झाकी, सह सम्पादक श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने प्रस्तुत की है।

"श्री अरविन्द स्काटलेन के अपने मकान में बैठे हुए थे। श्यामसुन्दर चक्रवर्ती आये और उन्होंने सम्पादकीय देने के लिये कहा। श्री अरविन्द ने सामने की मेज से कागजों के ढेर में से पकिंग के लिए इस्तेमाल कागजों को खीचकर एक तरफ खाली हिस्से पर लिखना शुरू किया। पन्द्रह मिनट में लेख पूरा कर दिया। एक भी काटकूट नही, एक भी परिवर्तन नही और लिखने में एक क्षण का कही अवरोध नही। दूसरे दिन वन्देमातरम छपा। वही सम्पादकीय पूरे देश में फले राष्ट्रीय विचार वाले हृदयों में देश प्रेम की अग्नि को धधका देता है।"[१]

१५ जुलाई १९०७ का बाग्ला पत्रिका 'सन्ध्या' का जन्म हुआ।[२] गिरिजाशकर राय चौधरी ने सन्ध्या का प्रकाशन काल १९०५ का उत्तरार्ध बताया है। उपाध्याय ब्रह्म बान्धव इसके सचालक सपादक थे। ३० जुलाई १९०७ को वन्देमातरम कार्यालय पर पुलिस ने छापा मारा। इसके पहले ही 'सन्ध्या' में तथाकथित राजद्रोहमूलक निबन्ध लिखने के अभियोग में विवेकानन्द के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त गिरफ्तार किये गये थे। भूपेन्द्रदत्त अपनी सुरक्षा के लिये अदालती कार्यवाही करना चाहते थे परन्तु श्री अरविन्द ने इसे स्वीकार नही किया कि कोई क्रान्तिकारी विदेशी अदालत को न्यायाधिकरण मानकर उसके निर्णय को स्वीकृति दे।

२४ जुलाई १९०७ को बगाल पुलिस ने वन्देमातरम के विरुद्ध मुकदमा दायर किया। श्री अरविन्द, विपिन चन्द्रपाल और कई अन्य अभियुक्त माने गये।

श्री अरविन्द ने २ अगस्त १९०७ को राष्ट्रीय विद्यालय के प्रिंसिपल पद से त्याग पत्र देकर मुक्ति ले ली। १६ अगस्त को उनके पास वन्देमातरम के २७ जून १९०७ के अक में प्रकाशित एक पाठकीय पत्र 'इण्डिया फार द इण्डियन्स' को देश द्रोहात्मक करार देकर गिरफ्तारी का परवाना आया। श्री अरविन्द ने १९ अगस्त को पुलिस के सामने आत्मसमर्पण किया।

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ९८।

२ श्री अरविन्द ओ बांग्लार स्वदेशी युग, पृ० ३७१-३७३।

वन्देमातरम के २३ अगस्त १९०७ के अंक में, बंगाल नेशनल कालेज और स्कूल के छात्रों और अध्यापकों की ओर से श्री अरविन्द के प्रति संवेदना प्रकट करते हुये जो प्रस्ताव पास किया गया वह इस प्रकार छपा —

'बंगाल राष्ट्रीय महाविद्यालय के छात्रों और अध्यापकों की एक सभा श्रीयुत सतीशचन्द्र मुखर्जी एम० ए०, बी० एल० अवैतनिक प्रिंसिपल और निरीक्षक, बंगाल राष्ट्रीय महाविद्यालय की अध्यक्षता में श्री अरविन्द घोष बी० ए० (कण्टब), भूतपूर्व प्रिंसिपल के त्यागपत्र से उत्पन्न स्थिति पर हार्दिक अफसोस और उनके सामयिक संकट के प्रति अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट करने के लिये हुई। कालेज के अस्तित्व में आने के प्रथम वर्ष तक उन्होंने प्रिंसिपल के गरिमामय पद पर जिस दुर्लभ योग्यता से वैयक्तिक त्यागपूर्ण ढंग से सेवा की तथा एक अध्यापक के रूप में उनके गुणों के वैशिष्ट्य के प्रति यह सभा अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।'

श्री अरविन्द की गिरफ्तारी ने पूरे बंगाल को सहानुभूति, क्षोभ और क्रोध की लपटों में समेट लिया। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस अवसर पर अपने हृदय के उदगारों को व्यक्त करते हुये निम्नलिखित कविता लिखी —

अरविन्द, रवीन्द्रेर लहो नमस्कार। हे बंधु हे देशबन्धु, स्वदेश आत्मार।
वाणी मूर्ति तुमि। तोमा लागि नहे मान, नहे धन, नहे सुख, कोनो क्षुद्र दान॥
चाहो नाइ कोनो क्षुद्रकृपा, भिक्षा लागि, बाडाओनि आतुर अंजलि। आछो जागि।
परिपूर्णतार तरे सब बाधाहीन, जार लागि नर देव चिर रात्रि दिन॥
तपोमग्न, जार लागि कवि वज्ररवे गेयेछेन महागीत, महावीर सबे।
गियेछेन संकट यात्राय, जार काछे, आराम लज्जित शिर नत करियाछे॥
मृत्यु भूलियाछे भय, सेई विधानार, श्रेष्ठदान-आपनार पूर्ण अधिकार।
चेयेछो देशेर हे जे अकुंठ आशाय सत्येर गौरव दृप्त प्रदीप्त भाषाय॥
अखंड विश्वासे तोमार प्रार्थना आजि, विधाता के सुनेछेन? तार उठे बाजि।
जयशंखतार तोमार दक्षिण करे, ताइ कि दिलेन आज कठोर आदरे॥
दुःखेर दारुण दीप, आलोक जाहार ज्वलियाछे बिद्ध करि देशेर आधार।
ध्रुवतारकार मत। जय तव जय। के आजि फेलिबे अश्रु के करिबे भय॥
सत्येरे करिबे खर्व कोन कापुरुष निजेरे करिते रक्षा। कोन अमानुष।
तोमार वेदना हेते ना पाइबे बल। मोछरे, दुर्बल चक्षु मोछ अश्रुजल॥
देवतार दीप हस्ते जे आसिल भवे सेइ रुद्रदूते, बलो, कोन राजा कबे।
पारे शास्ति दिते। बंधन शृंखलतार, चरण वन्दना करि करे नमस्कार॥
कारागार करे अभ्यर्थना रुष्ट राहु, विधातार सूर्य पाने बाडाइया बाहु।
आपनि विलुप्त हय मुहूर्तेक परे छायार मतन। शास्ति शास्ति तारि तरे॥
जे पारे ना शास्तिमये हइते बाहिर, लंघिया निजेर गडा मिथ्यार प्राचीर।

कपट वेष्टन,—जे नपु स कोनो दिन, चाहिया धर्मेर पाने निर्भीक स्वाधीन ॥
अन्यायेरे बलेनि अन्याय, आपनार, मनुष्यत्व, विधिदत्त नित्य अधिकार।
जे निलज्ज भये लोभे करे अस्वीकार, सभामाझे, दुर्गतिर करे अहंकार ॥
देशर दुर्दशा ले ये जार व्यवसाय, अन्नजार अकल्याण मातृरक्त प्राय।
सेइ भीरु नतशिर चिरभास्तिर भारे, राजकारा बाहिरेते नित्य कारागारे ॥
हेरिया तोमार बन्धनहीन आनन्दरे गान, महातीय यात्रीर संगीत चिरप्राण।
आनार उल्लास गभीर निभय वाणी, उदार मृत्युर भारतेर वीणापाणि ॥
हे कवि तोमार मुखे राखि दृष्तार, तारे-तारे दियेछे न विपुल झंकार।
नाहि नाहि दुखतान नाहि छुद्र लाज, नाहि दयनाहि त्रास ताइ शुनि आज ॥
कोथा हे ते झंझा साथे सिन्धुर गजन अधवेगे निर्भरर उन्मत नत्तन।
पाषाण पिंजर टूटि वज्रगजरव भेर मन्द्रे मेघ पुन्ज जागाय भैरव ॥
ऐ उदात्त सगीतेर तरग माझार, अरविन्द, रवीन्द्रेर लहो नमस्कार।
तार परे तारे नमि, जिनि क्रीडाच्छले, गडेन नूतन सृष्टि प्रलय अनले ॥
मृत्यु हे ते देन प्राण विपदेर वूके, सपदेरे करले लालन, हासिमुखे।
भक्तेरे पाठाये देन कटक कातारे, रिक्त हस्ते शत्रुमाझे रात्रि अधकारे ॥

जिनि नाना कठे कन नाना इतिहासे, सकल महत् कर्म, परम प्रयासे।
सकल चरम लाभे—"दुःख किछु नय क्षत मिथ्या, क्षति मिथ्या, मिथ्या, सब भय ॥
कोथा मिथ्या राजा, कोथा राजदण्ड तार, कोथा मृत्यु, अन्यायेर कोथा अत्याचार।
ओरे भीरु ओरे मूढ, तोलो तोलो शिर, आमि आछि, तुमि आछो, सत्य आछे स्थिर ॥

विभिन्न पत्रों ने इस मुकदमें पर अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की। २२ अगस्त के वन्देमातरम ने अनेक प्रतिक्रियाओं को प्रकाशित किया। मराठा समाचार पत्र ने लिखा—"हमारा अंक अभी प्रेस में गया ही था कि हमें तार से समाचार मिला कि वन्देमातरम में लेख लिखने के लिए अरविन्द घोष गिरफ्तार किये गये है। श्री अरविन्द घोष ने आई०सी०यस०पास कर लिया था, पर घोडे पर चढ नही पाये। आज वे जिस शासक की इजलास में कैदी रूप में दण्डनीय होकर खडे है, यदि वे ठीक से घोडे पर चढ गये होते तो यह न्यायाधीश हाकिम उनके अधीन निम्न कर्मचारी के रूप में काय करता होता। इंडियन पैट्रियट ने लिखा 'एक अत्युच्च सुसस्कृत, सर्वप्रिय स्वभाव वाला यह मनुष्य कितना हँसमुख है। विनोद और व्यग्य की क्षमता से उद्दीप्त इस व्यक्ति के साथ रहने में किसे आनन्द नही मिलता। इस आदमी के हृदय मे एक महान् लक्ष्य के लिए निरन्तर अदस्य देश भक्ति की ज्वाला जलती रहती है।" मद्रास स्टैंडर्ड ने लिखा "बंगाल के बाहर बहुत थोडे से लोग अरविन्द का नाम जानते थे। यहाँ तक कि लदन टाइम्स जैसे पत्र में भी यह भ्रान्त धारणा चलती रही कि वन्देमातरम् का सम्पादन

सचालन सभी कुछ विपिन चन्द्र पाल कर रहे हैं। किन्तु पहली बार यह भ्रम टूटा है और सभी जान सके हैं कि इस पत्र के पीछे की शक्ति अरविन्द थे।"

सरकारी वकील श्री ग्रेगरी ने इलजाम में कहा कि यह मुकदमा 'पालिटिक्स फार इण्डियन्स' और 'इण्डिया फार इण्डियन्स' नामक दो राजद्रोहमूलक निबन्धों के लिए चलाया जा रहा है। उन्होंने इन दोनों निबन्धों का अपराध श्री अरविन्द पर डालने की पूरी कोशिश की। उन्होंने नजीर में भूपेन्द्रनाथ दत्त के मामले को पेश किया।

ग्रेगरी ने बड़ी उत्तम वक्तृता दी। गिरिजाशंकर लिखते हैं— किन्तु दुसर विषय ए प्रबंधगुलिर दायित्व अरविन्देर स्कन्ध आरोप करिवार यथष्ट प्रमान शेष पर्यन्त पाउया गेल ना। प्रमानाभावे अरविन्द खालास पाइलेन।"[1]

गिरिजाशंकर के इस दुख की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। अरविन्द की खलासी यानी कारामुक्ति के प्रति खेद या दुख क्यों? क्योंकि ग्रेगरी के भाषण की असफलता पर दुख हुआ?

इन्हीं दिनों जब श्री अरविन्द की मुक्ति का आनन्दोल्लास चल रहा था श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनसे मिलने आए। १२ वलिंग्टन स्ट्रीट वाले मकान पर राष्ट्रभक्तों की भीड़ थी। रवि बाबू ने श्री अरविन्द से आलिंगन बद्ध होकर बांग्ला में कहा— 'आपने मुझे बड़ा धोखा दिया।' (जेल जाने की बात सोचकर कवि ने कविता लिखी थी)। श्री अरविन्द ने अंग्रेजी में उत्तर दिया—'बहुत दिनों तक नहीं। आपको ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।'[2] उन्होंने श्री रवीन्द्रनाथ से जेल से बहुत दिनों तक बाहर न रहने की जो बात कही, वह सच्ची निकली जिसके बारे में आगे विचार किया जायेगा।

५ नवम्बर १९०७ को बंगाल के गवर्नर सर एण्ड्रयू फ्रेजर की जो रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे थे, नारायणगढ़ के निकट खड़गपुर के पास बम फेंक कर हत्या का प्रयत्न किया गया। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में श्री अरविन्द मिदनापुर में थे। उस समय वहां जिला कांग्रेस की सभा थी। श्री के० बी० दत्त उस सभा के लिए नरमदल द्वारा मनोनीत अध्यक्ष थे। किन्तु उन्हें सभा में बोलने नहीं दिया गया। 'गरमदल वालों ने ८ नवम्बर को एक अलग सभा बुलाई। श्री अरविन्द उनके अध्यक्ष चुने गए। इस सभा का उन्होंने सफलतापूर्वक सचालन किया। नरमदल के अनेक प्रस्ताव जो कलकत्ता कांग्रेस में स्वीकार हुए थे, बहुचर्चित हुए। जिला-सभा की ओर से इन प्रस्तावों को सूरत कांग्रेस के लिए भेजने का निर्णय भी लिया गया।"[3]

१ श्री अरविन्द ओ बांग्लार स्वदेशी युग पृ० ६१४।
२ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ९९।
३ लाइफ वर्क आफ श्री अरविन्दो ज्योतीशचन्द्र घोष पृ० ३७।

इस अवसर पर श्री अरविन्द क्रान्तिकारी सत्येन्द्र बोस और खुदीराम बोस से भी मिले।

नरमदल के नेता गुप्त क्रान्तिकारियों और प्रत्यक्ष गरमदल की कार्यविधि को एक साथ जोडकर न सिर्फ उसमें से मनमाफिक निष्कर्ष निकालते थे, बल्कि इन घटनाओं द्वारा अपने भविष्य के बारे में भी चिन्तित रहते थे। गिरिजाशंकर इन्हीं बातों को अपने शब्दों में इस प्रकार कहते हैं—"अरविन्द दिवालोक ओ अवतार, निष्क्रिय प्रतिरोध ओ सग्रामवाद एइ उभय श्रेनीर राजनीतिक्षेत्रे एकइ समय नेतत्व करितेछेन।"[1]

वस्तुत गरमदल राजनीतिक विधानों के भीतर जिस लक्ष्य के लिए सचेष्ट था, क्रान्तिकारी अपने तरीके से उसी की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील थे। जैसा कि पहले ही कहा गया दोनों की ही गतिविधियों का नियमन श्री अरविन्द ही कर रहे थे किन्तु बारीसाल में बालक चितरंजन पर होनेवाले अमानुषिक अत्याचार तथा इसी प्रकार के अन्य अपमानजनक अंग्रेजी कृत्यों ने क्रान्तिकारियों के भीतर प्रतिशोध का भाव भर दिया। लक्ष्य सिद्धि के इन दोनों ही प्रयत्नों पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे लोगों का ख्याल था कि वे दुरभिसंधि पूर्वक योजना बद्ध चल रहे हैं। "करीब करीब उसी समय उसी दिन जब फ्रेजर की हत्या का प्रयत्न किया गया काग्रेस के जिला अधिवेशन को, जो मिदनापुर में आयोजित हो रहा था, भंग करने का प्रयत्न किया गया। इन भंजकों में कुछ ऐसे लोग भी थे, जिनपर अराजकतावादी आन्दोलन के सदस्य होने का पूरा सन्देह किया जा सकता है। किन्तु वहां जो कुछ हुआ वह मेरे लिए चक्षु-उन्मीलक था, क्योंकि यह एक उपक्रम था। यह पूर्व सूचना उन सारे दृश्यों की थी जो महीनों भर बाद सूरत काग्रेस के नाटक में रचाये जाने को थे। वैधानिक तरीकों द्वारा लक्ष्य प्राप्ति का लोकप्रिय विश्वास हिल गया है। नवयुवक और प्राणप्रण से कार्यकरने वाले लोग निराश होकर, देश सेवा के प्रति दृढ निष्ठा के कारण गैर कानूनी हिंसक और खतरनाक रास्तों पर चल पड़े हैं। उन्होंने अपने बुजुर्गों की अनसुनी कर दी है।"[2] याद रखना चाहिए कि हत्या का प्रयत्न ५ नवम्बर को हुआ, अधिवेशन भंग ७ को किया गया किन्तु सुरेन्द्रनाथ जैसे उत्तरदायी आदमी उन्हें एक ही दिन एक समय पर नियोजित कार्य मानते हैं।

श्री अरविन्द ने पाडिचेरी में एक बार सुरेन्द्रनाथ के बारे में कहा था "सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का व्यक्तित्व चुम्बकीय शक्ति रखता था। ये मधुरभाषी थे, व किसी को भी अपने साथ मिला सकते थे। उनकी इच्छा थी कि वे बंगाल के विरोधहीन एकमात्र

१ श्री अरविन्द ओ बागलार स्वदेशी युग पृ० ६७१।
२ ए नेशन इन मेकिंग, पृ० २३५।

नता मान लिये जायँ। य इसके लिए गरमदल वालो को तलवार के रूप में इस्तेमाल करना चाहते थे। वे व्यक्तिगत वार्ता में क्रांतिकारी आदोलनो को स्वीकार कर लेने तक का साहस दिखाते थे। वारीन एक बार उनके पास एक बम लेकर गया। और उन्होने बडा उत्साह दिखाया। उसके पास सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का एक पत्र भी था। जब वह मानिकतल्ला म गिरफ्तार हुआ, वह चिट्ठी भी थी। पुलिस ले गयी। किन्तु अदालत में जैसे ही नाटन ने सुरेन्द्रनाथ का नाम लिया मामला दवाकर रफा दफा कर दिया गया।[1]

ये थे असली सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जो क्रान्तिकारियों को कोसते हुए सकोच का अनुभव नही करते।

क्या क्रान्तिकारी और गरमदल के लोग किसी स्वार्थसिद्धि के लिए यह सब कर रहे थे? क्या अग्रेजो के सामने याचक मुद्रा में स्वायत्तता की माग करने वाले नतिक पवित्र और पुण्यात्मा थे और बाकी लोग जो जान हथेली पर लेकर देश सेवा के लिए विभिन्न कायक्रमो को जो भले ही तथाकथित गैरकानूनी रहे हो, पूरा करने में प्रत्येक सुविधा यहा तक कि कष्ट की इन्तहा और जानजोखम को भी उठा रहे थे वे अनैतिक और निकृष्ट थे? आज का भारतीय नवयुवक अच्छी तरह जानता ह कि नपुसक और क्लीव पुरानी समझौतावादी पीढी ऐसे मौको पर युवा पीढी को निराधार रूप से कलकित करने के लिए क्या क्या हथकडे अपनाती ह यदि ऐसा ही कृत्य निकट अतीत म दुहराया गया तो इसमें आश्चय क्या ह।

श्री अरविन्द इन परस्पर विरोधी खिचावो के बीच, परिवार की सारी असुविधाओ पत्नी और बहन के गुजर-बसर का ठीक से इन्तजाम न कर पाने की आत्मग्लानि पर देश के लिए सब कुछ को उत्सग कर देन के प्रण के मिले-जुले भावबोध के बीच पत्नी के नाम अपने जीवन का आखिरी पत्र लिखते ह। इस पत्र की भाषा, वस्तु सभी इस बात के प्रमाण ह कि इस स्थिति में सामान्य शक्ति का कोई आदमी या तो पागल हो जाता या टूट कर बिखर जाता। मिदनापुर काग्रेस अधिवशन में वे उसी दिन गये।

६ दिसम्बर १९०७

प्रिय मृणालिनी

मैंन परसो चिट्ठी पायी थी। उसी दिन रैपर (अलवान) भी भेजा गया था। क्यों नही पहुँचा, सो समझ नही सका हू।

मुझे यहा एक मुहूत भी समय नही ह। लिखने का भार मुझपर ह। वन्देमातरम की गोलमाल मिटाने का भार मेरे ऊपर ह। इसके सिवा मेरा निज का काम भी ह, उसे

[1] रेमिनिसेन्सेज एण्ड एनक्टोटस पृ० १८९।

भी छोड नही सकता ।

मेरी एक बात सुनोगी क्या ? मेरा यह समय बडी दुर्भावना का समय है। चारा ओर से टान पड रही ह, पागल हाने की बात ह। इस समय तुम्हारे अस्थिर हाने स मेरी भी चिन्ता और दुर्भावना बढेगी तुम्हारे उत्साह और सान्त्वनामय पत्र लिखने से मुझे विशेष शक्ति मिलेगी।

प्रफुल्ल चित्त से सभी विपाद और भय को पार कर सकूगा। मैं समझता हूँ देवघर में तुम्हें अकेली रहने में कष्ट होता ह, तथापि मन को दढ करने एव विश्वास पर निभर रहने से दु ख मनपर उतना आधिपत्य नही कर सकेगा। जब तुम्हारा मेरे साथ विवाह हो गया ह, तब तुम्हारे भाग्य में यह दु ख अनिवाय ह। बीच-बीच में विच्छेद हागा, कारण मैं साधारण बगाली की तरह परिवार या स्वजना के सुख को जीवन का मुख्य उद्देश्य नही बना सकता। इस अवस्था में मेरा धर्म ही तुम्हारा धम ह। मेरे निर्दिष्ट काय की सफलता के सुख समझने के अलावा तुम्हारे लिये दूसरा उपाय नही ह। एक बात और जिनके साथ तुम इस समय रहती हो उनमें स अनेक तुम्हारे, मेरे गुरुजन हैं। उनके कडी बात कहने, अन्याय बात बोलने पर भी तुम बुरा न मानना और वे जो कहें वे सभी उनके मन की बातें हैं और तुम्हें दु ख देने के लिये कही गयी हैं—यह विश्वास न करना। अनेक बार गुस्सा आने पर ऐसी अनिच्छित बातें निकल पडती हैं, उनको मन में रखना अच्छा नही। यदि अकेली नही रह सका ता मैं गिरीश बाबू को कहूगा। मैं जितने दिना काग्रेस में रहूँगा। तुम्हारे दादा महाशय घर में रह सकेंगे।

मैं आज मेदिनीपुर जाऊगा। लौटकर यहाँ की सब व्यवस्था कर सूरत जाऊगा। सम्भवत १५ या १६ को जाना होगा। जनवरी दूसरी तारीख तक लौट आऊगा।

तुम्हारा

सूरत काग्रेस विभाजक रेखा का अवतरण

सूरत काग्रेस के अधिवेशन के आरभ होने के पहले ही श्री अरविन्द अपने दल बल के साथ महाराष्ट्र की यात्रा पर चल पडे। उन्हांने २० दिसम्बर को वन्देमातरम में लाला लाजपतराय द्वारा सभापति हाने से इनकार करने की घटना का "भयानक भूल" कह कर प्रकाशित किया। सभापति डा० रासबिहारी घोष चुने गये।

श्री अरविन्द ने २१ दिसम्बर को यात्रारभ की। श्री बारीन्द्रकुमार ने लिखा ह—"मैंन अरविन्द और श्यामसुन्दर बाबू के साथ यात्रा की। बाम्बे मेल आइ। मुझे स्टेशन पर खडा देखकर अरविन्द ने बुलाया। जाने पर देखा वे भी ततीय श्रेणी में हैं, यानी नरक गुलजार किये हुए। प्रत्येक स्टेशन पर फूल माला, पूडी मिठाई और

चाय। अनेक स्टेशनों पर तो बहुत से लोग निराश होकर लौट गये। किसी ने सोचा भी नहीं कि देश का इतना बड़ा नेता, गणमान्य मनुष्य प्रथम श्रेणी में नहीं, तो द्वितीय से कम में तो यात्रा क्या करेगा? उस रात्रि हमें नींद नहीं आयी पेट में खाली स्थान नहीं था सेजदा। (सझले बड़े भाई) के गले की मालाओं से गाड़ी भरी थी।"[1]

इस यात्रा में अरविन्द नागपुर में उतर पड़े। २२ दिसम्बर को नागपुर के थिएटर हाल में श्री अरविन्द ने भाषण किया। बारीन्द्र कुमार ने लिखा है—'नागपुर में वक्तता स्थान पर अपार भीड़ थी। सेजदा को किसी तरह भीतर पहुँचाया गया। इतने बड़े मानव समूह के भीतर भाषण का खूब अच्छी तरह सुनाई पड़ सकना मुश्किल था, तो भी हजारों हजार आदमी भीड़ जोड़ खड़े रहे।[2] श्री अरविन्द ने एक बार कहा था—'सूरत कांग्रेस जाते वक्त हम नागपुर में रुके। मेरा भाषण थियेटर हाल में होने को था। अगली कतार में मोरोपंत जोशी बैठे थे बगल में देशमुख। जोशी लगातार मुझे घूर घूर कर देखते रहे।"[3]

सूरत कांग्रेस का भारत के आधुनिक राजनीतिक इतिहास में अद्भुत महत्व है। यह अपने तरह का अकेला अधिवेशन था जिसमें नरम और गरम दल में रंगमंच पर खुले आम टकराहट हुई। २६ दिसम्बर १९०७ को अधिवेशन शुरू हुआ किन्तु दोनों दलों के लोग हफ्ते भर पहले से अपने अपने मोर्चे सम्भालने में व्यस्त थे। गरमदल के सामने दो लक्ष्य थे—(१) जहाँ तक हो सके नरमदल से कांग्रेस का नेतृत्व छीनना। (२) और यदि यह सम्भव न हो तो कलकत्ता कांग्रेस में जिस नये कार्यक्रम को किसी तरह स्वीकार करवाने में सफलता मिली है उसे और आगे बढ़ा सकने का पूरा प्रयत्न करना।[4]

इस अधिवेशन में श्री अरविन्द की सलाह पर बंगाल के अनेक क्रांतिकारी भी कांग्रेस प्रतिनिधियों के रूप में आये थे। बंगाल का महत्वपूर्ण जत्था था। बारीन्द्र ने अरविन्द को पत्र लिखकर उग्रवादियों और गरमदल के प्रतिनिधियों से बातचीत का सुझाव दिया। तिलक लाजपतराय तथा खरे, खापर्डे आदि स्वयं या प्रतिनिधियों द्वारा इन लोगों से सम्पर्क सूत्र बनाये रहे।

सूरत कांग्रेस में 'न्यू स्पिरिट इन इंडिया' के लेखक नेविन्सन विद्यमान थे और उन्होंने इसका आँखों देखा हाल बड़े विस्तार से लिखा है। ढाई बजे अपराह्न में अधिवेशन शुरू हुआ। सभापति का नाम प्रस्तावित हुआ। सम्मेलन में रखे जाने वाले

१ बारीन्द्र, आत्म कहानी पृ० १२१७।
२ वही पृ० १७-१९।
३ टाक्स आफ श्री अरविन्दो पृ० १००।
४ रिपोर्ट आफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस १९०७ प्रस्ताव सं० १३।

प्रस्तावों की एक तालिका गोखले ने तिलक को दी। सभापति का नाम प्रस्तावित होने पर सुरेंद्रनाथ बनर्जी समर्थन करने उठे। बंगदेश के प्रतिनिधियों ने नारा लगाया 'मिदनापुर को याद रखो।' मध्यप्रदेश के प्रतिनिधि चिल्लाए 'नागपुर को याद रखो।' मध्यप्रदेश वालों की नाराजगी का कारण था फीरोज शाह मेहता की चालबाजी, जिसके कारण अधिवेशन नागपुर में न होकर सूरत चला गया। सुरेंद्रनाथ क्या कह रहे हैं, यह किसी को सुनाई न पड़ा। स्वागताध्यक्ष मालवी ने गोलमाल बंद करने के लिये बनारसी घंटी बजाई, पर सब बेकार गया। सभापति डा० रासबिहारी घोष ने भाषण शुरू किया—प्रतिनिधि बंधुओ, देवियों और सज्जनो। वे उसके आगे बोल नहीं पाये। उसी समय तिलक अपनी कोई बात कहने की इच्छा से मंच पर चढ़ आये। मालवी* ने कहा—"आप इस वक्त कोई रावन का कोई प्रस्ताव नहीं कर सकते। मैं आपके इस काम को अनुचित करार देता हूँ।" तिलक ने कहा। "मैं सभापति के चुनाव में एक छोटा सा परिवर्तन प्रस्तावित करने आया हूँ और आप सभापति की कुर्सी पर नहीं हैं।' सभापति की कुर्सी से घोष ने तिलक से कहा—"मैं आपके इस काम को अनियमित घोषित करता हूँ।'

"मैं आपको अनियमित घोषित करता हूँ।" तिलक ने कहा। 'आप इसके लिए नहीं चुने गये हैं।" डा० घोष बोले। तिलक ने उत्तर दिया। "मैं प्रतिनिधियों से कुछ कहने आया हूँ।"[१] उसी वक्त एक चीज आसमान में उछली। वह था एक मराठा जूता। लाल चमड़ा, मुड़े हुए नुकीला मुँहवाला तल्ले में कीलें जड़ी थीं। जूता सीधे सुरेंद्रनाथ बनर्जी के गाल पर आघात करते हुए सर फीरोजशाह मेहता के बगल से निकल गया। मैंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इस अधिवेशन को गोलमाल में खतम होते देखा। मैं भी इस बाल्मी युद्ध (बटिल आफ़ बाल्मो) के मौके पर गेटे की तरह कह सकता हूँ—"आज का दिन नय युग का सूत्रपात कर रहा है और तुम कह सकते हो कि तुम तब वहाँ उपस्थित थे।'[२]

असल में गरमागरमी तो पहले से ही थी। तिलक को जब बोलने की अनुमति नहीं दी गई और वे डटे रहे तो उन्हें पीटने के लिए कुछ गुजराती नवयुवक स्वयंसेवकों ने कुरसियाँ उठा लीं। तभी मराठे ने जूता मारा और अनेक मराठे युवक मंच पर दौड़

१ हेनरी० डब्ल्यू० नेविनसन न्यू स्पिरिट इन इन्डिया पृ० २५६ २५७।

२ वही पृ० ५८।

* यहाँ पर किसी को भ्रम न हो कि यह प० मदन मोहन मालवीय थे। ये सज्जन स्वागत समिति के अध्यक्ष त्रिभुवन दास मालवी थे। यह मालवी जी बनारसी नहीं थे। देखिए डा० पट्टाभि सीतारमय्या द हिस्ट्री आफ़ इंडियन नेशनल कांग्रेस प्रथम भाग पद्मा पब्लिकेशन बम्बई १९४६ पृ० ९६ ९७।

पड़े। इस तरह अधिवेशन भंग हो गया। किन्तु यह निश्चय ही एक नये युग की सूचना था। श्री आर० आर० दिवाकर का कहना ठीक ही है कि "सूरत कांग्रेस हुल्लड़बाजी में खत्म हुई। किन्तु एक इतिहास बना गयी। कांग्रेस का शरीर नरमदल वालों के कब्जे में रहा पर आत्मा गरमदल के पास चली गयी। अगले दस वर्षों तक राष्ट्रीयता का विकास कांग्रेस के भीतर से नहीं बाहर से हुआ। १९१६ में जब यह पुनः अपना कर्तव्य निभाने चली तो देखा गया कि नरमदल पूर्णतः नष्ट प्राय हो गया है, यद्यपि नरमदल वालों ने कांग्रेस के बाहर अपना यत्किंचित अस्तित्व बनाये रखा, पर वे बिल्कुल प्रभावहीन हो गये।[1]"

गरम और नरम दलों की पृथक-पृथक सभायें २८ दिसम्बर को की गयीं। गरम दल के सभापति हुए श्री अरविन्द और मुख्य वक्ता थे तिलक। नेविन्सन ने लिखा है—"गम्भीर और शान्त मुद्रा याद है बिना एक शब्द बोले श्री अरविन्द कुर्सी पर बैठे अचंचल भाव से सुदूर कहीं देखते रहे मानो वे भविष्यत पर दृष्टि लगाये हुए थे। बहुत ही स्पष्ट छोटे वाक्यों में बिना वाग्मिता या भावुकता के तिलक बोलते रहे। सन्ध्या हो आई। तारे उगने लगे तो किसी ने एक लालटेन जलाकर उनके बगल में रख दी।"[2]

कांग्रेस भंग हो गई। गिरिजा बाबू वही परेशानी से पूछते हैं—कांग्रेस भांगिले केन? के भांगिला? कांग्रेस किसने तोड़ी अरविन्द ने? तिलक ने?

गिरिजा भाशाय ने बड़ी जासूसी के बाद पता लगाया कि यह काम अरविन्द ने किया। जी हां अरविन्द ने ही किया। अरविन्द ने खुद लिखा— इतिहास उन घटनाओं का उल्लेख कदाचित ही करता है जो होनी तो है निर्णायक पर घटित होती है पर्दे की ओट में। वह पर्दे के सामने के चमकीले भाग का वर्णन करता है। बहुत कम लोग जानते हैं कि मैंने ही (तिलक से सलाह किये बिना) आज्ञा दी थी, जिससे कांग्रेस भंग हो गया। मेरे ही कारण राष्ट्रवादियों (गरमदल) ने नरमदलीय सम्मेलन में भाग लेने से इन्कार कर दिया। और सूरत अधिवेशन की ये ही दो निर्णायक घटनाएं थीं।"[3]

सूरत कांग्रेस की समाप्ति पर श्री अरविन्द ने कई आध्यात्मिक पुरुषों से मुलाकात की। साधना में अनेक अनुभव प्राप्त किये। साथ-साथ राजनीतिक कार्य भी चलते रहे। बम्बई से कलकत्ते लौटते वक्त उन्होंने कई स्थानों पर भाषण दिए। उनका पूना का भाषण बहुत ही महत्वपूर्ण था जिसके बारे में धनंजय कीर ने लिखा है—

१ म... ी पृ० ६०।
२ ने... ...ट इन इन्डिया पृ० २५६।
३ श्री अर... ...न ... पृ० ४४।



सूरत कांग्रेस के समय गरम दल की सभा —
श्रीअरविन्द की अध्यक्षता में तिलक की वक्तृता

"पूना में श्री अरविन्द घोष का अद्भुत स्वागत हुआ। पूना ने एक महान् बंगाली का भाषण सुना जिनकी पूर्ण स्वराज्य की माग का तेवर तिलक को भी लाघ गया था।"[1] श्री अरविन्द फरवरी १९०८ में कलकत्ते लौट आए।

सूरत कांग्रेस से लौटने के बाद की राजनीतिक गतिविधि

सूरत से, जैसा पहले ही कहा गया, लौटते हुए श्री अरविन्द ने लेले के साथ साधना करते हुए तीन दिन के भीतर ही निर्वाण स्थिति का बोध कर लिया। १९ जनवरी, १९०८ को उन्होंने महाजनवाडी, बम्बई म नेशनल यूनियन के सम्मुख नीरव और स्थित मस्तिष्क से आन्तरिक चैतन्य की सहायता द्वारा सुप्रसिद्ध भाषण दिया। लौटते वक्त पूना, नासिक, धूलिया, अमरावती, नागपुर आदि स्थानो पर भाषण देते हुए ये फरवरी के आरंभिक सप्ताहान्त में कलकत्ते पहुँचे।

इसी समय क्रान्तिकारी बारीन्द्र ने लेले महाराज को पत्र लिखकर कलकत्ते म आमंत्रित किया। तब तक लेले को यह पता नहीं था कि उनके शिष्य किस प्रकार की राजनीतिक गतिविधि में मशगूल ह। लेले कलकत्ते आये और सील्स लाज में ठहरे। श्री नलिनीकान्त गुप्त ने बारीन्द्र द्वारा लेले का बुलाने का कारण बताते हुए लिखा ह कि यद्यपि हमने बम बनाने क उद्देश्य से इस एकान्त जगह को चुना था, पर हम एकदम स हृदयहीन मनुष्य नहीं थे यानी न तो भौतिकतावादी थे और न तो नास्तिक ही। यह हमारी योजना का एक अंग था कि हम कुछ समय प्रतिदिन अपने आन्तरिक जीवन के संस्कार में भी लगायेंगे।[2] इसी उद्देश्य से बारीन्द्र ने लेले महाराज को बुलाया। लेले मानिकतल्ला बगान पहुँचे। जब लेले महाराज को पता लगा कि हम लोग बम सम्प्रदाय म शामिल हो गये हं तो उन्होंने घनघोर आपत्ति की। बोले— "साधना और बम एक साथ नहीं चल सकते। जिस तरह का राजसिक हिंसक काय तुम लोगों ने अपनाया है, उससे हृदय के पवित्रीकरण में सहायता नहीं मिल सकती। उन्होंने यह भी कहा कि यद्यपि भारत की स्वतन्त्रता एक अभीष्ट वस्तु ह, सबके लिए आवश्यक और अभीप्सित ह, पर वह एक दम भिन्न किसी दूसरे तरीके से प्राप्त होगी। स्वतन्त्रता मिलेगी, मिलकर रहेगी, पर वह शान्ति के तरीको से आयेगी। उसके लिए रक्तपात की आवश्यकता नहीं होगी। हम बहुत निराश हुए और अविश्वस्त भाव से, शायद कुछ उपेक्षा से भी उनकी ओर देखते मुस्कराते रह। हम वैष्णव

१ लोकमान्य तिलक पापुलर प्रकाशन बम्बई पृ० २८६।

२ बंगाल के अधिकांश क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल आदि विवेकानन्द स और अरविन्द के अध्यात्म से प्रभावित थे मार्क्स और लेनिन से नहीं। मन्मथनाथ गुप्त द लिव्ड डैंजरसली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली पृ० ७०। इसी लेखक ने रामनलाहिड़ी के नास्तिक से आस्तिक होने का श्रेय भी अरविन्द दर्शन को दिया है। पृ० १८८।

नही थे । हमारी इष्टदेवता मृत्यु की देवी, खप्परों का जयमाल पहननेवाली काली थी जिसके हम निरन्तर गीत गाते थे—

ओ बहादुर बेटो, ओ रे मनुष्यो
मा के भाल को अपने रक्त की बिन्दी से
सुशोभित करो ।

लेले महाराज ने हमें एक दूसरी चेतावनी से भी भयभीत किया । बोले—'यदि तुम लोग यह सब छोड नही देते तो न सिर्फ असफल होगे बल्कि भयानक खतरो में भी पडोगे । भले ही वह पूर्ण ध्वंस न हो ।"[1] लेले की दोनों ही भविष्यवाणियाँ सच निकली ।'

लेले ने श्री अरविन्द को भी समझाया । वहा प्रसग दूसरा था । उन्होंने १० फरवरी को अरविन्द को पत्र लिखा । लेले से वे मिले । लेले ने उनसे कहा— 'उस रास्ते को छोड दो, जिसपर चल रहे हो । तुम्हारे भीतर से जो आदेश आता है वह आसुरी है । उन्होंने कहा कि यदि तुम ऐसा ही करते रहे तो उससे होनेवाले नतीजे के लिए वे कतई जिम्मेदार न होंगे । श्री अरविन्द ने उन्हें अपना उत्तरदायित्व लेने से मुक्त कर दिया । वे तब से सिर्फ अपने आतरिक आदेश में ही विश्वास करके सब कुछ करते रहे । इसी तिथि से श्री अरविन्द का लेले के साथ शिष्य-गुरु का संबंध समाप्त हो गया । हालांकि वे निरन्तर उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता का भाव रखते रहे और उनका सदा आभार मानते रहे ।[2]'

बगाल की स्थिति दिन प्रतिदिन भयावह होती जा रही थी । सूरत काग्रेस में गरमपंथियों की सफलता अंग्रेज सरकार को पसन्द नही आयी । कलकत्ते तथा बगाल के दूसरे स्थानों में उनके विरुद्ध दमनचक्र शुरू हुआ, जिसका किंचित परिचय हम क्रान्तिकारियों के भीतर उत्पन्न प्रतिकार भावना के कारणों की खोज के सिलसिले में पीछे दे चुके हैं । कर्जन की जगह मिन्टो वायसराय बने । उनका तरीका इतना बर्बर और उच्छृंखलापूर्ण था कि विलायत में भारत के मामलों को देखने वाले सचिव लार्ड मोरले ने मिंटो को चेतावनी देते हुए लिखा—' मैं यह स्वीकार करूंगा कि देशद्रोह आदि के लिए दिये जा रहे वज्रपात जैसे दण्ड मुझे काफी विचलित और चिंतित कर रहे हैं । कानून बनाये रखना है किन्तु दण्ड में इस तरह की कठोरता कानून और शांति के रास्ते की ओर हमें नही ले जा सकती । ठीक इसके विपरीत यह रास्ता 'बमबाजी' का प्रेरित करने वाला है ।"[3]

१ रेमिनिसेन्सेज गुप्त अमृता पृ० २७-२९ ।
२ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० ११५ ।
३ लाइफ एण्ड टाइम्स आफ सी० आर० दास लेखक पी० सी० राय उद्धृत पृ० ५८ पाद टिप्पणी ।

एक ओर अंग्रेज सचिव इस दमन की निंदा कर रहा था। दूसरी ओर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे लोग सारा दोष क्रांतिकारियों के मत्थे मढ रहे थे। इन्हीं में पाचवें सवार के रूप में श्री गिरिजाशंकर राय चौधुरी भी यदि सम्मिलित होने के लिए पसीने पसीने नजर आते हैं, तो इसे बहुत महत्व देना शायद ठीक न होगा। ब्रह्मबान्धव उपाध्याय, भूपेन्द्रदत्त आदि देशद्रोह के अपराध में बन्द किये गये। उपाध्याय ने अपने अखबार 'सन्ध्या' के माध्यम से बंगाल में गरमपंथी विचारधारा को फैलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। उनके मामले की अभी सुनवाई भी पूरी न हो सकी थी कि उनकी कैम्पवेल अस्पताल में मृत्यु हो गयी।

४ अप्रैल, १९०८ को चन्द्रनगर में गरमदल वालों का अधिवेशन होने को था जिसे टाडवल ने अवैध घोषित करके बन्द करा दिया। ११ अप्रैल को टाडवल के घर पर बम फेंका गया, जिसका विस्फोट नहीं हो सका।

इन्हीं दिनों श्री अरविन्द ने कुछ स्थानों पर भाषण दिये। श्री गिरिजाशंकर ने उनके एक भाषण का अंश उद्धृत करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि श्री अरविन्द का 'माया ईश्वर' तत्त्व उनका अपना नहीं है।

"कुछ लोग कहते हैं कि हमारे पास अपने पैरों खड़े होने की शक्ति नहीं है। इसीलिए हमें विदेशियों के सहयोग से कार्य करना चाहिए। दूसरी ओर उनका विरोध भी करना है। किन्तु क्या आप एक साथ ईश्वर और माया दोनों पर निर्भर कर सकते हैं? आप जिस अनुपात में विदेशियों पर निर्भर करेंगे उसी अनुपात में माया आपको अपने बन्धनों में बांधती जायेगी। किसी भी राष्ट्र का अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करना पहला उद्देश्य होना चाहिए। यह स्वतन्त्रता कहीं बाहर नहीं हमारे राष्ट्र के भीतर ही है। और जब आप भीतर से स्वतन्त्रता का अनुभव करेंगे तो बाहर से भी स्वतन्त्र होंगे। तभी आप सचमुच स्वतन्त्र हो सकेंगे। इसीलिए हम पूर्ण स्वराज्य के मन्त्र का उपदेश करना चाहते हैं।"[१]

गिरिजाशंकर ने यदि उनके बम्बई नेशनल यूनियन के समक्ष दिये भाषण को ठीक से पढ़ा होता तो उन्हें ऐसा कहने का आधार न मिलता। सभी जानते हैं कि बम्बई का भाषण एक खास मनःस्थिति में स्वतःस्फूर्त हुआ था। डा० करणसिंह ने ठीक ही लिखा है—'बम्बई का भाषण जो 'आज की स्थिति' पर दिया गया, इस बात का सबूत है कि वक्ता किसी आन्तरिक शक्ति से परिचालित था। यह वही भाषण है जिसमें उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता के विषय में वह सुप्रसिद्ध वाक्य कहा था कि राष्ट्रीयता, ईश्वरप्रदत्त एक धर्म है, इसीलिए यह दिव्य अमर और अपराजेय धर्म है। इसी भाषण में उन्होंने घोषणा की कि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रीय आन्दोलनों के पीछे

१ बारुइपुर का भाषण, श्री अरविंद ओ बांग्लार स्वदेशीयुग पृ० ७२२।

दिव्यशक्ति काम कर रही है। एक ऐसी महाशक्ति, जो किसी प्रकार की बाधा को कभी भी स्वीकार नहीं करती और वह अन्ततः विजयी होकर रहेगी। यह सत्य कि यह वाग्मिता पूर्ण भाषण, जिनसे आध्यात्मिक राष्ट्रीयता का उद्घोष किया, जेल में साथ की गई यौगिक साधना के ठीक बाद दिया गया अतः यह अपना एक अलग वशिष्ट्य रखता है। कलकत्ते लौटने के बाद के उनके सभी भाषण इसी आध्यात्मिकता से प्रेरित थे।'[1]

कलकत्ते के पान्तिस मठ में दिया गया १० अप्रैल १९०८ का भाषण भी आध्यात्मिक राष्ट्रीयता के रंग में रंगा है।

मोरले द्वारा चेतावनी देने पर भी मिंटो का रवैया नहीं बदला। उन्हीं दिनों तिलक द्वारा सम्पादित केसरी में 'बामचे रहस्य' नामक लेख निकला। यह लेख मुजफ्फरपुर में खुदीराम द्वारा फेंके गये बम के बाद लिखा गया था, जिसके लिये तिलक को छह वर्षों का कारावास मिला।

गिरिजाशंकर राय चौधरी ने 'श्री अरविन्द और अन्धकार की राजनीति' में यह दिखाने की कोशिश की है कि अंग्रेजों की हत्याओं के पीछे उनका नेतृत्व था, इसलिए वे अन्धकार के राजनीतिज्ञ थे। चूँकि अलीपुर केस में वे निरपराधी घोषित करके छोड़ दिये गये इसलिये गिरिजा बाबू को कहना पड़ा—"अदालत ओ आइनके अतिक्रम करिया आमरा इतिहासेर विचारालये उपस्थित हइयाछि। इहा भरसा जे इतिहासेर विपल्वी अरविन्द के अन्धकारेर राजनीतिते जे मूर्तिते देखा जाइबे ताहा आईन ओ अदालतेर मूर्ति हइते भिन्न।[2]

इतिहासकार गिरिजाशंकर के लिये यस्त अभिप्राय वाली अपनी बुद्धि की अदालत सर्वोपरि है किन्तु इतिहास की विराट कालधारा ऐसे विचारकों को कूड़े-करकट की तरह तट पर फेंक कर निरन्तर आगे बढ़ती जाती है। ऐसा न होता तो श्री जवाहर नेहरू न यह न कहा होता—"सक्रिय राजनीति का उनका जीवन बहुत छोटा था। केवल १९०५ से १९१० तक। और उसके बाद ही वे पांडिचेरी में यौगिक साधना और अभ्यास के लिये चले गये। किन्तु सिर्फ इन पाँच वर्षों का तेजोदीप्त उल्का की तरह उन्होंने उद्भासित कर दिया और भारत की युवापीढ़ी पर शक्तिशाली प्रभाव छोड़ गये।'[3] एक अन्य स्थान पर श्री अरविन्द और तिलक के नेतृत्व में चलने वाले गरम दल की कार्यवाहियों की प्रशंसा करते हुये नेहरू ने लिखा—"तिलक की हलचल और श्री अरविन्द घोष की खबरें और बंगाल की जनता जिस ढंग से स्वदेशी, विदेशी-बहिष्कार आदि की प्रतिज्ञाएँ ले रही थी, उनसे इंगलैण्ड में रहने वाले तमाम हिन्दुस्तानियों में

१ बम्बई के भाषण के लिए देखिए स्पीचेज पृ० ५२८ प्रॉफेट आफ इंडियन नेशनलिज्म पृ० १५०-५१।

२ श्री अरविन्द ओ बांग्लार स्वदेशी युग पृ० ७२९।

३ कर्णसिंह की पुस्तक प्रोफेट आफ इण्डियन नेशनलिज्म की भूमिका पृ १।

खलबली मच जाती थी। हम तमाम लोग तिलक-दल या गरम दल के थे।'[1]

सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ० क० मा० मुंशी लिखते हैं—

"वे हमारी युयुत्सु राष्ट्रीयता के पुरोधा थे जिन्होंने उत्साही नवयुवकों के चित्त में शाश्वत और कालातीत भारतमाता का सम्प्रदाय प्रवर्तन किया। क्रांतिकारी गुप्त समितियों की स्थापना की। राष्ट्रीय कांग्रेस के मुखर गरम दल का नेतृत्व करके नये साहसपूर्ण काम किये, यद्यपि उन्होंने कांग्रेस को क्रांतिकारी कार्यों का पूरा कर सकने वाले संघटन में बदलने की अपनी कोशिश में सफलता प्राप्त नहीं की, तो भी देश को असहयोग अंग्रेजी सामानों का बहिष्कार, सरकारी संस्थाओं के स्थान पर राष्ट्रीय विद्यालय, अदालतों के पंचायती न्यायालय, तथा जनकार्यों के लिये स्वयंसेवक संघटनों का निर्माण—यानी ऐसे कार्यक्रम जिनका आनेवाले दशकों में गांधी जी ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया।"[2] डा० कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का उपर्युक्त कथन ध्यान देने योग्य है, क्योंकि वे जानते थे कि—'श्री अरविन्द का जीवन और दर्शन इतना बहुमुखी है कि इस आश्चर्यकारी जिन्दगी के विश्लेषण में ठीक न्याय कर पाना असंभव है। उनके अनेकमुखी गंभीरतम ज्ञान और उपलब्धियों के साथ जो केवल राजनीति, दर्शन और धर्म के क्षेत्र की ही नहीं, बल्कि आत्मा के उच्चतर लोक की उपलब्धियां हैं नाप तौल करके साथ न्याय कर पाना कठिन है।'[3] शंकर घोष ने ठीक लिखा है कि "अलीपुर के बम काँड में श्री अरविन्द का हाथ था या नहीं, पर इतना सत्य है कि उन्होंने कभी भी अपने इस विश्वास को छिपाने की कोशिश नहीं की कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये हिंसा का सहारा लेना पूर्णतः नैतिक है, उन्होंने कभी भी मात्र अहिंसक रास्ते की बात नहीं कही।[4]

आचार्य नरेन्द्र देव ने बहुत स्पष्ट ढंग से लिखा है—"कलकत्ते से दैनिक वन्दे मातरम आता था हम उसे बड़े चाव से पढ़ते। इसके लेख बड़े प्रभावशाली होते थे। श्री अरविन्द घोष इसमें प्रायः लिखा करते थे।'[5]

नेहरू और नरेन्द्रदेव जैसे राजनीतिक श्री अरविन्द घोष के प्रकाशदायी निबंधों को पढ़ने के लिये बेचैन रहते थे।

कांग्रेस के इतिहास के सुप्रसिद्ध जानकार बी० पट्टाभि सीतारमय्या ने लिखा है—'भारतीय आकाश में श्री अरविन्द वर्षों तक सर्वाधिक चमकदार तारे की तरह प्रकाशित रहे। यद्यपि वे आकाश की इस ऊँचाई पर कुछ वर्षों ही रहे, पर कन्याकुमारी से

१ मेरी कहानी जवाहरलाल नेहरू पृ० ३२४।

२ महायोगी भूमिका पृ० १०।

३ वही पृ० १।

४ द रिनेसाँ ड मिलिटेंट नेशनलिज्म इन इंडिया पृ० २२४।

५ समय वर्ष २० अंक २६ नरेन्द्रदेव विशेषांक।

से हिमालय तक का सारा क्षेत्र उनकी विस्मयकारी आभा से भर गया।"[१]

श्री मुंशी जैसे इतिहासकार को, जो व्यक्तित्व इतना विराट व्यापक और प्रकाशदायी लगता है वही गिरिजाशंकर के लिए अंधकार का राजनीतिज्ञ प्रतीत होता है। जो नेहरू जैसे विरल राजनीतिज्ञ के लिए उल्का की दीप्ति से भासमान् था, वही गिरिजाशंकर के लिए अंधकाराच्छन्न है। सीतारमय्या जिसे आकाश का सबसे प्रभावान नक्षत्र कहते हैं गिरिजाशंकर उसी से मात्र कालिमा ग्रहण कर पाते हैं। इसमें किसे दोषी कहें प्रकाश का या उसे न सहन वाली आंख का।

शायद यह बताने की जरूरत नहीं कि इतिहास की वेगवती धारा ने नेहरू, नरेन्द्रदेव, सीतारमय्या और मुंशी का ही समर्थन किया। इतिहास कभी भी क्षुद्र अहं ग्रस्त तुच्छ बुद्धि के निष्कर्षों को ढोता नहीं फिरता, क्योंकि वह कभी भी व्यक्तिगत नहीं होता। इतिहास निर्वैयक्तिक (Impersonal) चेतना का ही मानसिक प्रवाह है।

नीरदबरण ने ठीक ही लिखा है कि सभी राजनीतिक झगड़ों, समझौतों में जिनमें से कुछ उनके भाषणों में संकलित हैं उनके व्यक्तित्व में नीचता, प्रवंचना, चालबाजी आदि का जो आज के राजनीतिज्ञों में बहुत आम चीजें हो गई हैं, हल्का स्पर्श भी नहीं मिलेगा। उन्होंने एक ऐसा यश प्राप्त किया जो सबने दिया, शत्रु ने मित्र ने। नौजवान विद्यार्थी उन्हें प्यार करते थे, और बाकी तमाम उनकी सच्चरित्रता ईमानदारी तथा आत्मबलिदानी प्रवृत्ति के कारण सम्मान करते थे।[२]

मन्मथ नाथ गुप्त जैसे गाँधी विरोधी लेखक ने भी स्वीकार किया है कि गाँधी इर्विन पैक्ट के पहले कोई भी स्वतन्त्रता का सेनानी समझौतावादी नहीं था। उन्होंने तिलक अरविन्द और बारीन्द्र को ऐसे ही क्रान्तिकारियों की पंक्ति में रख कर उनकी प्रशंसा की है।[३]

कुछ गरम मिजाज के क्रान्तिकारी लड़कों ने ब्रह्मबान्धव उपाध्याय की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय किया। उन्होंने मुजफ्फरपुर के जिलाधीश किंग्सफोर्ड को बम से उड़ा देने की तैयारी की। किंग्सफोर्ड के प्रति इस विद्वेष का मूल कारण यह था कि उन्होंने कलकत्ते में एक कम उम्र युवक सुशील सेन को अदालत में किसी तथाकथित राजद्रोहमूलक अपराध में लगातार कोड़े लगाने का हुक्म दिया था।

१० अप्रैल को दो युवकों ने, जिनमें एक खुदीराम बोस थे एक घोड़ागाड़ी पर बम फेंका। उनकी धारणा थी कि किंग्सफोर्ड इसी में जा रहा है। पर इस बम विस्फोट से दो निर्दोष निरपराध स्त्रियां मारी गयीं। वे श्रीमती प्रिंगले कनेडी की पत्नी और पुत्री थीं।

इस घटना से अंग्रेजों का बौखलाना स्वाभाविक था। दमनचक्र और खानातलाशी

१ द हिस्ट्री आफ इण्डियन नेशनल मूवमेंट प्रथम भाग पृ० ७०।
२ श्री अरविन्दो फादर आफ नेशनलिज्म मदर इण्डिया अगस्त १९७० पृ० ४०८।
३ दे हिस्ट्री ऑफ इंडियन रेवोल्यूशनरी मूवमेंट पृ० ३२१।

का बाजार गर्म हुआ। चारों ओर धरपकड़ शुरू हुई। मानिकतला के बम बगान का भी पता लग चुका था। पुलिस ने २ मई को छापा मारा। कई क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गये। गिरफ्तार किये गये नलिनीकान्त गुप्त ने पुलिस के छापे और क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी का प्रत्यक्ष विवरण प्रस्तुत किया है।

'हमारी गुप्त समिति सिर्फ नाम के लिए गुप्त थी। सारे काम खुले आम होते थे। कोई आदमी कहीं से भी बगान में घुस सकता था, क्योंकि यह एकदम खुला स्थान था, न तो इसमें कटीले तारों का बाड़ था न चारदीवारी। गिरफ्तारी के दिन दो एक स्थानीय लड़के भी घुस आये थे, वे गिड़गिड़ाते रहे—महाशय, हम निर्दोष हैं, हम तो सवेरे घूमने-टहलने आ गये थे। रात में कुछ लोग बातें करते भीतर घुसे। कुछ लालटेनें भी थीं। उन्होंने पूछा—कौन हो तुम लोग, यहां क्या कर रहे हो? हम लोगों ने चालू किस्म के उत्तर दे दिये। वे बोले—ठीक है, हम फिर सुबह आयेंगे और इसे ठीक से देखेंगे। हमने इस तरह की हर चीज को जो शिनाख्त की जा सकती थी, हटाना शुरू किया। जो चीज हमारे दिमाग में अचानक आई वह यह थी कि दो या तीन रायफलें, जो अविनाश के पास थीं, उसी मकान में थीं जहां श्री अरविन्द रहते थे क्योंकि अविनाश श्री अरविन्द के घर पर ही रहते थे। वे बन्दूकें तुरन्त लाई गयीं। सारी चीजें दो बक्सों में रखकर जिसमें हमारी पिस्तौलें और बम बनाने के सामान वगैरह भी थे, जमीन में गाड़ दिये गये। कागज पत्र इकट्ठा करके जला दिये गये, पर पूरे जले नहीं कुछ नाम बच गये थे, जिनके सहारे पुलिस ने और भी गिरफ्तारियां कीं। हम रात में सोये कि दिन निकलते ही भाग चलेंगे, किन्तु तभी चिल्लाने की आवाजों ने हमें जगा दिया। हम बिस्तरे पर जग कर बैठ गये। चारों तरफ छायाकृतियां घूम रही थीं। बूटों की मचर-मचर और दड़-दड़ आवाजें आ रही थीं।

"तुम गिरफ्तार किये गये, तुम्हारा नाम?'

"वारीन्द्रकुमार घोष।'

"अरविंद घोष?

"नहीं, वारीन्द्र कुमार घोष'

"अच्छा, अच्छा देखेंगे।

दूसरी चीज जो मुझे याद है। एक आदमी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा और बोला— चलो।'[1]

४ मई को प्रातः श्री अरविन्द भी गिरफ्तार कर लिये गये।

●

●

१ रेमिनिसेंसेज गुप्त-अनुवाद पृ० २१-२३।

कालकोठरी मे रोशनी का वातायन

द्वारस्तु सर्वा पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ।
ता कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवे ॥
श्री मद्भागवत १०।३।४८ ४९

कालकोठरी के बन्द दरवाजे जिनमें शृंखलाएँ भी कीलें जड़ी थीं कृष्ण को लिए हुए वसुदेव के सामने स्वयमेव ऐसे खुल गये जैसे सूर्य के आगे अंधकार।

नारायण ज्योतिषी की भविष्य वाणी सच निकली। कालकोठरी के बाहर पड़े का दूसरा आघात बहुत तीव्र था । श्री अरविन्द उसकी गिरफ्त में आ गये ।

जेल हमारे देश के राजनीतिज्ञो के लिये अब कोई बहुत भयावह और अज्ञात चीज नही रह गया है । पर कारागार कोई खेल नही है, उनके लिये भी नही जो वहाँ जाकर भविष्य में उसका लाभ बटोरने की इच्छा रखते हैं ।

श्री अरविन्द के सामने कारागार सिर्फ कारागार था । न वहाँ से लौटने की आशा थी न लौटकर उसको भुनाकर लाभ बटोरने का सस्कार ।

जेल या मुकदमा एक ऐसा सकट है जिसके भीतर से गुजरते अक्सर लोगों का तन ही नही मन प्राण भी लहू लुहान हो जाता है । काफ्का और कामू जैसी दृष्टि वाले व्यक्तियों ने कारावास या मुकदमे के भीतर से गुजरने वाले मनुष्यों की मानसिक स्थितियों का विशद वर्णन किया है और अपने सवेदात्मक वर्णन से एक ऐसी दृष्टि पैदा की है जो आजकल के आधुनिक पाठक को बहुत आकृष्ट करती है । कामू की दृष्टि में यह विसगति का बोध (Philosophy of Abserdity) है । कामू के 'मिथ आफ सिसिफस" में अधघाटी में कद देवता सिसिफस सोचता है– विसगति और खुशी एक ही धरती की जोड़ुवा सन्ततियाँ है । वे अविभाज्य है । खुशी में विसगति और विसगति में खुशी की उपलब्धि ही जीवन दृष्टि है । चार्ल्स रोला ने ठीक ही लिखा है–"विसगति पर सार्त्र, मालरो आदि ने भी विचार किया पर कामू उनस भिन्न है क्योंकि वह विसगति से निराश नही होता बल्कि वह उसके लिए एक ऐसा विरोधात्मक साधन है जो जिन्दगी को और अच्छी तरह जानने का मौका देकर उसे निश्चिन्त और खुशगवार बना देता है ।"[1] काफ्का इसके ठीक विपरीत दुनिया की गठन से इतना असन्तुष्ट है कि वह मानता है कि हर ईमानदार को ट्रायल के भीतर स गुजरना ही पड़ेगा, जहा कुत्ते की तरह मरने के अलावा कोई विकल्प नही ।

१ द एटलाण्टिक मई १९५८, पृ० २७ ३३ ।

श्री अरविंद योरप के इन दोनों ही अस्तित्ववादियों से भिन्न कारागार को शिक्षा केन्द्र में और अपनी बन्द जिन्दगी को एक नई अवस्था प्रदान करने वाली आश्रम-साधना में बदल लेते हैं। वह कामू की तरह विसंगति से खुशी नहीं कष्ट और पीड़ा से सुखी ढूँढने का प्रयत्न करते हैं और उसमें सफल होते हैं। उनकी 'काराकाहिनी' इसीलिए कारावास की डायरी न होकर सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्रदान करने वाली मंत्रगुटका बन जाती है। श्री अरविंद ४ मई १९०८ से ५ मई १९०९ तक यानी पूरे एक वर्ष एक दिन तक अवाधाधीन (Under Trial) बन्दी थे। वे पूरे वर्ष तक जेल में रहेंगे इसकी उन्हें कल्पना भी न थी।

ऐसा नहीं कि कारावास से उनको प्रीति थी। आरंभ में वे भी उसी सदमे के भीतर से गुजरे, जिससे हर बंदी इन्सान गुजरता है—

"मैं यह नहीं जानता था कि आजका दिन मेरे जीवन के एक खंड का अंतिम पृष्ठ है। मेरे सम्मुख एक वर्ष का कारावास है। इस समय से ही मनुष्य जीवन के साथ जो कुछ बन्धन है सब छिन्न भिन्न होंगे। एक वर्ष के लिए मनुष्य समाज से बाहर पशुओं के समान पिंजरे में बन्द रहना पड़ेगा और फिर जब कर्मक्षेत्र में लौटकर आऊँगा तो वह पुराना परिचित अरविन्द न रहूँगा। बल्कि एक नया मनुष्य, नया चरित्र नयी बुद्धि नया प्राण, नया मन लेकर और एक नये कार्य की अपने ऊपर जिम्मेदारी लेकर अलीपुर के आश्रम से बाहर आऊँगा।'

अलीपुर का जेल श्री अरविंद के लिए आश्रम हो गया, किन्तु यह सब उस अविजेय आत्मा के संघर्षों का अन्तिम परिणाम कहा जायेगा। उपयोगितावादी दृष्टि से हम भले ही आश्रम के प्रति एक हल्के आकर्षण का अनुभव करें, संघर्षों की लहूलुहान कहानी की दारुणता कहीं से कम नहीं होती। उन्होंने अपनी आत्मशक्ति के द्वारा इस कारावास को वनवास या आश्रमवास में बदल लिया क्योंकि वे राजनीतिक कार्यों में संलग्न रहते हुए भी निरन्तर हृदयस्थ नारायण के साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील थे और इसी कारण उन्होंने इस दारुण स्थिति का जीवन के परमलाभ का अवसर मान लिया। परन्तु बाहर की परिस्थितियों की विकटता ने उन्हें कम संत्रस्त नहीं किया। उन्हें जेल की कालकोठरी में बैठे बैठे पिछले दिनों घटी घटनाएँ निरन्तर याद आती रहीं। शुक्रवार की वह रात्रि जिसके खत्म होते-होते सुबह पाँच बजे सरोजिनी घबराई घबराई उन्हें पुकारते आ रही थी। फिर सुपरिटेंडेंट क्रेगन, चौबीस परगना के क्लार्क साहब पुलिस की दलाली में मग्न विनोदकुमार गुप्त का आगमन खानातलाशी, सरोजिनी के वक्ष पर सफेद चमड़ी वाले गोरे की अड़ी हुई पिस्तौल—सभी कुछ सिनेमा की छवियों की तरह दिमाग में घूमता रहा। श्री अरविन्द जमीन पर सोते थे। क्रेगन ने पूछा—"मैंने सुना है आपने बी० ए० (कैंटब) पास किया है फिर ऐसे शिक्षित मनुष्य के लिए ऐसे मकान में शय्याहीन कमरे में जमीन पर सोना क्या लज्जाजनक नहीं है?'

अरविन्द ने कहा था—"मैं दरिद्र धनहीन हूँ। दरिद्रों के समान ही रहता हूँ।" साहब गरजकर बोला—'तो क्या आपने धनवान बनने के लिए यह षडयन्त्र रचा है?' फिर निर्ममता और बुद्धिहीनतापूर्वक एक एक चीज की तलाशी फिर गिरफ्तारी। लाल बाजार थाने के दो मंजिले के एक कमरे में कैद बार बार पुलिस दलालों का आकार उलटा सीधा समझाने का प्रयत्न और उससे उत्पन्न असह्य सिरदर्द—"मैंने अनुमान किया कि जैसे महाराजा के मुकदमे में श्रद्धास्पद तिलक को झूठा पाखंडी, प्रवचक और अत्याचारी प्रमाणित करने की चेष्टा की गई थी और उस चेष्टा में बम्बई की सरकार ने सांठ गांठ करके प्रजा का धन जिस तरह नष्ट किया था उसी तरह यहाँ पर भी कई एक लोग मिलजुल कर हमें विपत्ति में फँसाने की चेष्टा कर रहे हैं।"[1] पुनः मजिस्ट्रेट थार्नहिल का इजलास और कारावास में भेजे जाने का हुक्म और अन्त में ९ × ६ फीट की वह कालकोठरी।

नहाने के प्रबंध से पीने के पानी का प्रबंध और भी अच्छा था। वह ग्रीष्म ऋतु का समय था मेरे छोटे से कमरे में वायु के प्रवेश की बिल्कुल ही मनाही थी, किन्तु मई के महीने की उग्र और प्रचण्ड धूप बिना किसी रोक टोक के मेरे कमरे में आ सकती थी। वह मेरा छोटा सा कमरा थोड़ी ही देर में एक जलती हुई भट्ठी के समान हो जाता था। उस भट्ठी में सिद्ध होते-होते जल की उत्कट प्यास को कम करने का एकमात्र उपाय उस टीन की बाल्टी का गरम जल था। मैं बार बार उसी को पीता था। प्यास तो कहाँ बुझ सकती थी, वरन् पसीना निकलने लगता था और फिर प्यास भड़कती थी परन्तु किसी किसी के आँगन में एक मिट्टी का घड़ा रखा हुआ था। वे लोग उसको पूर्व जन्म की तपस्या का फल समझकर अपने को धन्य समझते थे। *उस अवस्था में घोर पुरुषार्थवादी को भी अदृष्ट पर विश्वास करना ही पड़ता था।*

इस उत्ताप से संतप्त श्री अरविन्द की दृष्टि में जन्म जन्मान्तर के भाव उदित होते हैं। सत्ता और लोक लोकान्तर' के विषय में जानने के लिए चेतना प्रयत्न करती है। अदृष्ट क्या है? कर्म और प्रारब्ध क्या है? अब तक यह सब उन्होंने पढ़ा था, अब इसे भोगकर अनुभव करने का अवसर आ गया। एक पत्र में उन्होंने लिखा है—"किसी विशेष जीवन में जो घटित होता है, उसे जब तक अनेक जन्मों के सम्पूर्ण क्रमविकास में न देखा न जाय तब तक उसका आशय और प्रयोजन समझ में नहीं आ सकता। परन्तु जो लोग साधारण मन और भावों के ऊपर उठकर वस्तुओं को समग्र रूप में देखने में समर्थ होते हैं वे यह जान सकते हैं कि भूल-चूक दुर्भाग्य और संकट भी यात्रा

१ यह विवरण श्री अरविन्द की पुस्तक 'कारा काहिनी' से लिया हुआ है जिसका अनुवाद बहुत पहले श्री शंकरमान्य ने 'अरविन्द चरित' के परिशिष्ट में प्रस्तुत किया। यह कारा काहिनी का सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद है।

के सोपान होते हैं।"[1] यह यात्रा दोनों ही दिशाओंमें होती है। अपने भीतर और अपने बाहर। भीतर की यात्रा दिव्यसत्ता को प्राप्त करने के लिए और बाहर की यात्रा मनुष्य को रूपान्तरित करने के उद्देश्य से। उन्होंने जेल जीवन में अपनी पहले से ही चली आती युगल यात्रा को और भी तीव्रगति से मंजिल की ओर ले चलने का प्रयत्न किया। दोनों ही यात्रायें अक्सर समानान्तर चलते चलते नाना बिन्दुओं पर मिलती भी चलती हैं। भेदबुद्धि का नाश दोनों यात्राओं का प्रथम मिलन बिन्दु है।

'एकता और जातीयता के भावों का होना यह दो प्रधान अंग हैं। मैंने सोचा कि उसी मत को कार्य में परिणत करने के लिए सूरत जाते समय हम सब मिलकर एक तीसरे दर्जे की गाडी में गये थे, कम्प में नेताओं ने अपना-अपना स्वतंत्र प्रबन्ध न कर सब किसी के रहन सहन का प्रबंध साथ ही किया था। धनी, दरिद्र ब्राह्मण वैश्य, शूद्र बंगाली, मरहठे, पंजाबी, गुजराती सब भ्रातृभाव से एक साथ मिलकर रहते, सोते तथा खाते थे। पृथ्वी पर सोते थे दाल भात दही खाते थे। सब प्रकार से पूरे स्वदेशी थे। कलकत्ता और बम्बई के विलायत से लौटे हुए लोग और मदरास के तिलकधारी ब्राह्मण मानो एक साथ दूध-पानी हो गये थे। इस अलीपुर की जेल में रहते समय हमारे देश के कैदी, हमारे देश के कृषक, लोहार कुम्हार डोम इत्यादि सबका समान भोजन, समान रहन समान कष्ट, समान मानमर्यादा पाकर मैंने समझा कि इस साम्यवाद, इस एकता और देशव्यापी भ्रातभाव द्वारा सर्वान्तर्यामी नारायण मेरे जीवन को सार्थक कर रहे हैं, अपने साथ के कैदियों और अन्य कैदियों के प्रेमपूर्वक व्यवहार करने को और दाम्भिक अधिकारियों के इस रहस्य भाव को इस कारावास में देखकर मेरे हृदय में उस शुभ दिन का पूर्वाभास उत्पन्न हुआ, जिस दिन जन्मभूमिरूपिणी जगद्जननी के पवित्र मण्डप में देश की सब श्रेणियों के लोग भ्रातृभाव से एक प्राण होकर जगत के सम्मुख उन्नत मस्तक हो कर खडे होंगे, उस दिन का चिन्तन कर मैं बार-बार हर्षित और प्रफुल्लित हो जाता था। उसी दिन मैंने याद किया कि पूना के "इण्डियन सोशल रिफार्मर" नामक एक समाचार पत्र ने मेरी एक साधारण उक्ति को लेकर उस पर हंसी उडाई थी—"आज कल जेल में भगवत प्रेम की कुछ अधिकता देखने में आती है।' हाय प्रतिष्ठा की लालसा करने वाले अल्पविद्या और थोडे ही से सद्गुण रखनेवाले ऐसे मनुष्यों के अभिमान और अहंकार पर कितना शोक होता है। जेल में, कुटी में आश्रम में, दुखियों के हृदय में यदि भगवत प्रकाश न हो, तो क्या धनियों के विलास मंदिर में अथवा अपना सुख ढूँढने वाले स्वार्थ में अन्धे बने हुए सांसारिक मनुष्यों की आराम शय्या में उनका विशेष प्रकाश होना सम्भव है? भगवान् विद्वान् प्रतिष्ठा, लोकप्रशंसा, बाहर की स्वच्छन्दता और ऊपरी सभ्यता को नहीं देखते। वे दुखियों के

१ श्री अरविन्द के पत्र पृ० २७५।

निकट दयामयी माता के रूप में प्रकट होते हैं। जो पुरुष मनुष्य मात्र में जाति में स्वदेशी में दुखिया में, धनहीनों में पतित लोगों में पापियों में नारायण को देखता और उस नारायण की सेवा में अपने जीवन को अर्पण करता है उसी के हृदय में नारायण वास करते हैं। और जो लोग किसी पतित जाति का उठान का उद्योग करते हैं उन्हीं देश सेवकों के निर्जन कारागार में भगवत प्रेम के प्रकाश की अधिक सम्भावना है।

भेदबुद्धि के नाश से समदर्शिता उत्पन्न होती है यानी नर में नारायण को देखने का दृष्टिकोण। समता स्वयं में एक उपलब्धि है बहुत थोड़े से लोग समता का अर्थ समझते हैं। 'समता पूरे अस्तित्व का एक ऐसा दृष्टिकोण है जिससे संसार और उसमें घटित होनेवाली स्थितियों को खास ढंग से देखा जा सकता है। संसार नाना प्रकार की भयंकर और त्रासद चीजों से भरा है। समता का अर्थ है इन्हें सब बोध से देखना कि वे हमें विचलित और उद्विग्न न कर सकें। गीता की समता प्रसिद्ध ही है। मनुष्य तो मनुष्य प्रकृति से सभी पदार्थों जीव जंतु वनस्पति में, सर्वत्र समत्वबुद्धि रखना एक महान उपलब्धि है। इसी के द्वारा श्री अरविन्द ने एकान्त और निर्जनता को अपने जीवन का चिरसहचर बना लिया।

आनन्द और पीड़ा क्या सचमुच के वास्तविक विरोधी भाव हैं। श्री अरविन्द ने समूची जीवसृष्टि को अपना सहचर तो बना लिया पर क्या ये सहचर भी समत्वबुद्धि रखते थे? एक बार कालकोठरी में उनके ऊपर कुछ जीवों ने भयानक हमला किया। उस हमले से उत्पन्न पीड़ा और आनन्द की भावनाओं पर उनके अनुभूति परक दृष्टिकोण की उपलब्धि का हाल उन्हीं से सुनिये—' जहाँ तक दिव्य आनन्द की अनुभूति का प्रश्न है फिर, पर या शरीर के किसी हिस्से पर लगने वाली चोट को पीड़ा के शारीरिक आनन्द या मात्र पीड़ा या आनन्द या शुद्ध शारीरिक आनन्द के रूप में अनुभूत किया जा सकता है। मैंने स्वयं स्वेच्छया इस तरह के प्रयोग किये हैं। और अपने प्रयोगों में काफी गौरवपूर्ण ढंग से उत्तीर्ण हुआ हूँ। यह प्रक्रिया अलीपुर जेल में शुरू हुई। कालकोठरी में बहुत ही भयानक लाल रंग के योद्धा चींटों ने हमला किया और मुझे खूब काटा। बाद में मैंने अनुभव किया कि पीड़ा और आनन्द कुछ नहीं सिर्फ हमारी इन्द्रियों द्वारा चीजों का अनुभव करने का रूढ़ियाँ हैं।'[2] इन्द्रियों की रूढ़ियों को तोड़ने वाला ही समत्वदर्शी होता है।

लाल बाजार के जेल खाने की अपेक्षा यह निर्जन कारावास अधिक अच्छा मालूम होता था। लाल बाजार का वह कमरा निर्जनता का और भी अधिक निर्जन

१ ईवनिंग टॉक्स द्वितीय भाग पृ० ६२।
२ टेल्स ऑफ प्रिज़न लाइफ पृ० ८।

बनाने का मानो एक उपाय था। परन्तु इस छोटे से कमर की दीवारें मेरी साथी बन कर ब्रह्ममय होकर मेरे निकट आकर मुझे आलिंगन करने को उद्यत होती थी। लाल बाजार के दो मंजिले कमरे की ऊँची ऊँची खिडकियों से आकाश भी दिखाई न देता था। कभी-कभी तो यह कल्पना करना भी कठिन हो जाता था। इस स्थान पर आंगन का फाटक खुले रहने के कारण सीखचों के भीतर बैठने से जेल के बाहर खुला मैदान और कैदियों का आना जाना दिखाई देता था। आंगन की दीवार पर एक पेड था उसकी नीलिमा को देखकर मैं अपने नयन और हृदय को तृप्त करता था। छह डिगरी[1] के कमरे के सामने जो सन्तरी घूमा करता था अनेक समय उसके मुख और पैरों के शब्द परिचित बन्धु के समान प्रिय मालूम होते थे।"

मानव हृदय में सम्यक बुद्धि का जन्म होते ही विश्व के तथाकथित जड पदार्थ भी चिन्मय सत्ता में बदल जाते हैं। दीवार ब्रह्ममय होकर पिघल जाती है, 'जिस दीवार का तुम्हें अनुभव होता है वह अहं की दीवार है उसका आधार है बाह्य व्यक्तित्व और उसकी चेष्टाओं के साथ अपने को एकाकार करना। इस दीवार को स्थिरता और धैर्यपूर्वक भूमिसात करना ही होगा।"[2] कहना न होगा कि श्री अरविन्द के आन्तर और बाह्य को अलग करने वाली दीवार ने ब्रह्ममय होकर उन्हें आलिंगन में लपट लिया था। फिर क्या प्रेम का उच्छल समुद्र फूट पडा।

'पासकी गाँवाला के कैदी मेरे कमरे के सामने से गाय चराने को ले जाते थे। मेरे लिये गौ और गोपालकों का दृश्य नित्य प्रिय था। अलीपुर की जेल में मैंने एक अपूर्व प्रेम की शिक्षा प्राप्त की। इस स्थान पर आने से पहले मेरा प्रेम बहुत थोडे से मनुष्यों में आबद्ध था। एवम् पशु पक्षियों की ओर प्रेम का स्रोत बिल्कुल बहता ही न था। मुझे याद है कि रवीन्द्र बाबू की एक कविता में भैंस के प्रति ग्राम्य बालक का गम्भीर प्रेम, बडे सुन्दर भाव से वर्णन किया गया है, उस कविता को पहले पहल पढ़कर मैं किसी तरह से भी हृदयगम नहीं कर सकता था, वरन् मुझे उस समय उस भाव में अस्वाभाविकता और अत्यन्त भक्ति का दोष दीख पडता था किन्तु अब उस कविता को पढ़ने से मेरे चित्त में कुछ और ही भाव उत्पन्न होते हैं। अलीपुर में रहकर मैंने जान लिया कि हर प्रकार के जीव-जन्तुओं के प्रति मनुष्य के हृदय में कैसा गम्भीर प्रेम उत्पन्न हो सकता है। कभी-कभी गाय चिडियाँ अथवा चींटी तक को देखकर मनुष्य का हृदय कैसे तीव्र आनन्द के साथ फडक उठता है।"

पर क्या यह आनन्द का भाव सदा कैद में पड़े मनुष्य को प्रसन्न रख सकता है? कदापि नहीं है। जमानवीय अत्याचारों के लिए अंग्रेजी शासन के जमाने की जेलें

१ फाँसी पाने वाले कैदियों की श्रेणी।

२ श्री अरविन्द के पत्र पृ० २०७।

मशहूर या बदनाम रही ह। सच तो यह है कि स्वतन्त्रता क बाद भी जेल जीवन में कोई बहुत खास किस्म का अतर नहीं आया ह, हा अब इतना जरूर होता ह कि इन बबरताओ के प्रति विरोधी दल के लोग ससद में कुछ हाय-तोबा मचा सकते हैं। ऐसी ही स्थितियों में जब सामान्य सुविधाओं के अभाव म प्राणिक सत्ता तडप उठी। श्री अरविन्द ने लिखा—

जेल की भाषा में लपसी का अर्थ मांड मिला हुआ भात ह। यही बन्दियों की छोटी हाजरी है। लपसी के तीन स्वरूप अथवा उसकी तीन अवस्थायें हैं। पहले दिन लपसी का प्राग्भाव अर्थात अमिश्रित मूल पदार्थ शुद्ध शिव मूर्ति दिखाई पडी। दूसरे दिन लपसी हिरण्यगर्भ दाल में उबली हुई पीतवर्ण नानाधर्म सकुल—खिचडी क नाम से प्रसिद्ध हुई किन्तु तीसरे दिन भ्रू घ्रवण लपसी का विराट रूप जिसमें कुछ गुड मिला हुआ था दिखाई पडा। यह लपसी कुछ कुछ मनुष्य के खाने योग्य थी। मैंने यह समझ कर कि प्राग्भाव और हिरण्यगर्भ साधारण मनुष्यों के लिये नहीं ह, उन्हें न खाया, किन्तु विराट के कभी कभी दो एक कौर पेट में डालकर ब्रिटिश राज्य क सद्‌गुण और पाश्चात्य सभ्यता के मानवतावाद (Humantarianism) क उच्च आदर्शों का सोचकर मैं आनद में मग्न हो जाता था।'

अत्यन्त कष्ट में भी विनोद यही उनका स्वभाव था और विनोद भी कैसा ? मन के अन्तस्थल में तो निरन्तर ब्रह्म के नाना रूपों का विश्लेषण और अनुभावन चल रहा था, परिणामत सामने रखा कदन्न भाजन भी ब्रह्म के नाना रूपों शिवमूर्ति, हिरण्य गर्भ, विराट का प्रतीक बन गया।

जेल म श्री अरविन्द ने अपने को कठोर साधना में डुबा देने का सकल्प लिया। गीता और उपनिषदें उनकी मार्ग दर्शिकाएँ थी। इन्ही दोनो द्वारा सुझाये हुये रास्ते से वे ध्यान करते।

शुरू शुरू म वह अलग कालकोठरी में रखे गये। बाद म वे सभी बन्दियों के साथ एक बडे हाल म रख गये थे। एक साथ रहते हुये कैदियों के बीच भी वे अपनी व्यक्तिगत साधना निर्बाध चलाते रहे। इसी बीच नरेन गोसाइ की हत्या हुई। नरेन गोसाइ मुखबिरी करने लगे थे, इसलिये यह हत्या क्रान्तिकारियों द्वारा जेल में ही की गयी। परिणामत पुन सबको अलग-अलग कालकोठरियो में बन्द कर दिया गया।

श्री अरविन्द की साधना बहुत गोपनीय ढग से चलती रही। हालाकि कई अभियुक्त यह जानते थे कि व किसी योगमार्ग का अनुसरण कर रहे ह, पर उन्हें तथ्यात्मक स्थिति का कोई ज्ञान न था। 'वसे मैंने अपनी योग साधना १९०४ से शुरू कर दी थी किन्तु उस समय मेरा कोई गुरु न था। बाद में महाराष्ट्री योगी से सहायता पाकर मैंने अपनी साधना के आधार दृढ किये। मेरी साधना पहले या बाद की, पुस्तकों पर आधारित न होकर मुख्यतया अनुभवो पर आधारित रही। जेल में मेरे पास गीता और

उपनिषदें थी। मैं गीतावत योग का अभ्यास करता हूँ और उपनिषदों द्वारा निर्देशित पद्धति से ध्यान करता कभी भी किसी समस्या या संकट के उठ खड़े होने पर मैं गीता से ही दिशानिर्देश पाता रहा।

पचानन तक चूडामणि अपने अनेक शिष्यों के साथ उसी जेल में थे। पचानन संस्कृत के अद्भुत विद्वान थे। एक बार सह अभियुक्त अविनाश भट्टाचार्य ने श्रीअरविन्द से किसी उपनिषद के कुछ अंशों की व्याख्या पूछी। श्री अरविंद ने अपनी अनुभूतिपरक पद्धति से व्याख्या की। अविनाश ने पचानन को यह व्याख्या सुनाई। पचानन ने कहा— "*अविनाश जैसी व्याख्या श्री अरविन्द ने सहज-सरल ढंग से कर दी मैं उसे उस तरह* स्पष्ट करने में कभी समर्थ न होता।"

हेम सेन भी सह अभियुक्त थे। वे किसी प्रकार बिस्कुटें और दूसरे खाद्य पदार्थ बाहर से मँगा लेते। वे इन चीजों को अपने तकिये के नीचे छिपाकर रखते। दूसरे अभियुक्त इन चीजों को चुराकर खा जाते। एक दिन जब इन चीजोंकी चोरी हो रही थी चोर ने श्री अरविन्द को जाग्रत पाया। चोर यानी अविनाश ने कुछ बिस्कुटें श्री अरविन्द के हाथ पर रख दी। श्री अरविन्द मुस्कराये और लेटकर चुप चाप उन्हें खाते रहे।

इन खट्टी मीठी अनुभूतियों के बीच योग-साधना चलती रही। श्री अरविन्द को साथी अभ्युक्तों के कोलाहल के बीच अपनी साधना करनी पड़ती। मैंने अपने योगाभ्यास का अत्यधिक शोरगुल कोलाहल के बीच करते रहने का तरीका सीख लिया था।[1]

किन्तु यह सीखना बहुत आसानी से नहीं हुआ। इसके कारण अनेक बार मन को परेशानी हुई। चित्त को एकाग्र करने में मन के भीतर व्याप्त चिन्ताएं भी बाधा पहुंचातीं। इन सब पर विजय पाए बिना साधना को आगे बढ़ पाना मुश्किल था। उन्होंने अपनी कारा काहिनी में स्पष्ट तौर से इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है—

'किन्तु कुछ दिन पीछे वह आलाप रहित चिन्तायें भी जो कि विषय शून्य, असहनीय तथा अकर्मण्य थी, धीरे धीरे मेरे मन से लोप होने लगी, मेरी अवस्था ऐसी हो गयी कि मानो सहस्रों अस्पष्ट चिंताएं मेरे मनके किवाड़ों के चारों ओर घूमती रहती, किन्तु उनके प्रवेश करने का द्वार न था। दो एक चिंताएं प्रवेश करने में समर्थ भी हुई किन्तु हृदय राज्य को एकदम सुनसान पाकर धीरे धीरे वे भी भागने लगीं। मैं बेकारी और लाचारी के कारण बहुत ही मानसिक कष्ट पाने लगा। प्रकृति की शोभा से अपने चित्त की वृत्ति को स्निग्ध करने तथा जलते हुए हृदय को ठंडा करने की आशा से मैंने एक बार बाहर की ओर दृष्टि डाली, किन्तु वहाँ एक मात्र वृक्ष वहीं थोड़ा सा नाले

१ उपर्युक्त सारा विवरण स्वयं उन्हीं द्वारा कथित है जिसे उन्होंने शिष्यों के पूछने पर १३ सितम्बर १९४६ की संध्या वार्ता में बतलाया था।

जेल में लगातार पन्द्रह दिनों तक आते रहे। और जब तक मैंने यह पूरा समझ नहीं लिया कि उच्चतर चेतना की क्रियायें कैसी होती हैं और मैंने वह अतिमानस की ओर ले जाती हैं वे लगातार बताते रहे। उन्होंने तब तक मुझे नहीं छोड़ा जब तक वह बात मेरे मन में अच्छी तरह बैठ नहीं गयी।'[1]

नीरदवरण का उपर्युक्त वार्ता विवरण 'मदर इण्डिया' में धारावाहिक छप रहा था। उस वक्त मदर इण्डिया के सम्पादक ने नीरद के लेख पर एक टिप्पणी दी थी जिसमें उन्होंने इस विषय को और स्पष्ट करने वाला श्री अरविन्द का दूसरा कथन उद्धृत किया— यह सत्य है कि मैं जेल की एकान्त वाली कोठरी में लगातार विवेकानन्द की आवाज सुनता रहा और उनकी उपस्थिति का अनुभव करता रहा। यह आवाज आध्यात्मिक अनुभव के एक अत्यन्त सीमित किन्तु बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष पर लगातार बोलती रही और तब अचानक उसे जितना कहना था कहकर चुप हो गयी (श्री अरविन्दो आन हिमसेल्फ एण्ड आन द मदर, पृ० ११५) शिष्यों को इतने पर भी संतोष न हुआ। श्री नीरद वरण के बार बार पूछने पर उन्होंने कहा— विवेकानन्द ने मुझे अतिमानस की ओर जाने के लिए पहले चरण के रूप में स्वयंप्रकाश ज्ञान (Intuition) के बारे में बताया। ऐसा मैंने कहा होगा, पर इसका यह अर्थ नहीं है जो तुम समझ रहे हो। इसका अर्थ है कि स्वयं प्रकाशित ज्ञान के धरातल से अतिमानस की एक झलक पाई जा सकती है, और ऐसी ही एक झलक मेरा पहला चरण बन गया।'[2] श्री अरविन्द ने एक अन्य स्थान पर इस स्थिति को और भी स्पष्ट किया है। श्रीविवेकानन्द को यह पद्धति जीवित रहते प्राप्त नहीं थी।[3]

याद रखना चाहिये कि श्री अरविन्द ने विवेकानन्द की आत्मा की सहायता से जिस अनुभूति को प्राप्त किया उसके पहले वे विष्णु भास्कर लेले के साथ ध्यान करते हुए शान्त असीम ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके थे तथा अलीपुर जेल में उन्होंने सर्वत्र सभी जीवों में ईश्वर-दर्शन की अनुभूति भी कर ली थी।

श्री अरविन्द ने जेल में रहकर अपने जीवन को आमूल बदल लिया। उन्होंने बड़े आत्मविश्वास के साथ लिखा कि जेल में अग्निपरीक्षा लेकर भगवान् ने मुझे तीन शिक्षायें दीं—(१) मन की दृढ़ अवस्था होने पर संकट में मनुष्य जन्म तत्त्व की सही व्याख्या कर सकता है और उस व्याख्या का निष्कर्ष होगा अमानुषिक निठुराई को हटाने का दृढ़ संकल्प। (२) भगवान ने भयानक निर्जन स्थान में रखकर मुझे उसके भय से मुक्त कर दिया। जो आदमी योग साधन करना चाहता है उसे जनता और

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो पृ० २१२।

२ टाक्स विद श्री अरविन्दो द्वितीय भाग पृ० २३२-२३३।

३ लाइफ आफ श्री अरविन्दो १० जुलाई १९२६ की वार्ता पृ० २०४।

निजनता एवं समान होनी चाहिए। (३) तीसरी शिक्षा यह मिली कि योग साधन केवल किसी व्यक्ति के अपने प्रयत्न से ही सफल नहीं हो सकता। इसके लिए भगवान के चरणों में समर्पित होना आवश्यक है। इस निर्माण के बाद ही पता चलता है कि उसका कोई भी काय, अपने लिए दारुण से दारुण लगने वाला काय भी, कोई न कोई उत्तम उद्देश्य छिपाये होता है। मैं यदि विक्षिप्तता का अनुभव कर रहा था, तो वह भी किसी न किसी प्रयोजन के लिय था।

इसी कारण भगवान ने मेरी यह दशा कर दी थी। उन्होंने मुझे पागल न बनाकर निजन कारावास में उमत्तता कसे धीरे धीरे उत्पन्न होती है, इसी का खेल मेरे हृदय पर करके बुद्धि को उस अभिनय का अविचलित दशक बना रखा था। इस सबसे मुझे शक्ति प्राप्त हुई तथा निष्ठुरता और अत्याचार से पीडित मनुष्यों पर मेरी दया और सहानुभूति अधिक होने लगी। प्राथना करने की असाधारण शक्ति तथा सफलता भी मुझ में बढने लगी। श्री अरविन्द के शरीर में उनकी इस साधना का प्रभाव दिखाई पड़ने लगा। एक बार उनके अत्यन्त चमकील बालों को देखकर उपेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय ने, जो सह अभियुक्त थे, पूछा—"क्या आपको बालों के लिये तेल मिल जाता है?" नहीं मैं तो स्नान भी नहीं करता। यह शारीरिक परिवतन साधना के कारण हुये हैं? उपेन्द्र-नाथ ने शोर गुल के बीच निरन्तर तटस्थ रहकर साधना करते रहने की उनकी क्षमता की भी चर्चा की है। लोगों के पूछने पर कि मुकद्दमें का फैसला क्या होगा। उन्होंने कहा मैं सिफ अपने बारे में कह सकता हूं। वह यह कि मैं छूट जाऊँगा।[1]"

इस साधना से उत्थापन की सिद्धि भी हासिल हुई। उन्होंने खुद लिखा है—"मैं एक दिन उत्थापन के बारे में सोच रहा था कि अचानक शरीर ऊपर उठकर दीवाल से लगा रहा। मैं ऐसा भौतिक ताकत लगा कर नही कर सकता था। मैं ने यह भी अनुभव किया कि शरीर उसी अवस्था में बिना भौतिक शक्ति लगाये ठहरा रहा।'

'उन्ही दिनों एक और घटना हुइ। मेरी काल्कोठरी में डा॰ डाली और सहायक जेल निरीक्षक प्राय प्रतिदिन आया करते और थोडी-बहुत बातें करते। मैं नही जान पाया कि किस कारण वे मेरे प्रति इतने उदार हो गये थे। म उनसे ज्यादा बातें भी नही करता था सिफ उनकी जिज्ञासाओं का उत्तर दे देता, बस। मैंने प्राय मौन रहकर उनकी बातें सुनता और अपनी आलोचना नहीं जडता था। वे तब भी आते रहे। एक दिन डा॰ डाली ने कहा— मैंने सहायक जेल निरीक्षक द्वारा जेल निरीक्षक से कहलवाया है कि वे आपको कोठरी के बाहर कुछ देर घूमने की अनुमति दे दें, नहीं तो इस तरह बन्द रहने से आपके स्वास्थ्य पर बुरा असर पडेगा।'

१ मेम्वायस आफ ए रिवोल्यूशनरी पृ० ९२ ९४।
२ रेमिनिसेंसेज एण्ड एनक्डोट्स, पृ० ९३।

मैंने इसे बहुत पसन्द किया। एक तरफ जेल की कोठरी और दूसरी ओर की गोशाला के बीच में अपने स्वराज्य में विचरण करने लगा। उसी समय आश्रम में उपनिषद् की ऋचायें पढ़ता या जेल के कायस्ताओं को आता जाता देखता रहता। मैंने सब जगह ईश्वर को देखा। हर मनुष्य में वृक्ष, पक्षी और वृक्ष तक में मैंने उसे देखा मैं इस मन्त्र को दुहराता रहता कि ईश्वर प्रत्येक धातु में पृथ्वी में और जीवन में विद्यमान है। मैंने इसे बहुत सफलतापूर्वक अनुभूत किया और उसी में खो गया। मेरे लिये उसी दिन से बदलाना बदलाना नहीं रह गया।[1]

और इन तमाम कष्टों दुखों, तितिक्षाओं साधनाओं अभ्यासों के बाद एक दिन ऐसा क्षण आया कि श्री अरविन्द जेल में जाने से पहले वाले अरविन्द से बिल्कुल बदल कर नये अरविन्द के रूप में आ गये। उन्होंने जेल को आश्रम माना था उसी में उनकी साधना की सिद्धि भी मिल गयी। उनका पूरा अस्तित्व जगत की दृष्टि से सीमित पर उनके स्वाधीन राज्य का स्वामित्व पा गया।

"एक ओर जेलरी कारखाना और दूसरी ओर गोशाला यही मेरा स्वाधीन राज्य की सीमा थी। कारखाने से गोशाला और गोशाला से कारखाने की ओर घूमा करता और घूमते घूमते उपनिषदों के गम्भीर भावोद्दीपक और अमोघ शक्ति दायक मंत्रों की आवृत्ति करता रहता अथवा कैदियों के काम और उनका आना जाना देख इस मूल तत्त्व को समझने की चेष्टा करता कि समस्त घट घट में नारायण ही व्यापक है। वृक्षों, मकानों, दीवारों मनुष्यों पशुओं पक्षियों धातु मिट्टी सब खल्विदं ब्रह्म" इस मंत्र को मन ही मन में उच्चारण करता और उसी प्रकार अनुभव करने की चेष्टा करता। ऐसा करते करते मेरी यह अवस्था हो जाया करती कि कारागार मुझे कारागार नहीं प्रतीत होता था। वह ऊँची चारदीवारी वे लोहे के सीखचे वे सफेद दीवारें वे सूर्य की किरणों से चमकते हुए वृक्षों के नीले पत्ते वे सब छोटी-बड़ी चीजें मानो अब मेरे लिये अचेतन न थीं, किन्तु सर्वव्यापी चैतन्य रूप धारण कर सजीव हो गयी थीं। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे सब पदार्थ मुझे प्यार करते हैं—और मुझे आलिंगन करने को उद्यत हैं। मनुष्य, गाय, चींटी, चिड़िया सब चलते उड़ते गाते तथा बातें करते हैं। किन्तु वह सब प्रकृति का केवल एक खेल है। इन सबों के भीतर एक महान निर्मल निर्लिप्त आत्मा शान्तिमय आनन्द में निमग्न हैं। कभी कभी ऐसा बोध होता था कि मानो भगवान उन वृक्षों के नीचे आनन्द की बाँसुरी बजाते हैं और उसकी मधुरता से मेरे हृदय को अपनी ओर खींच रहे हैं। मुझे सर्वदा यही प्रतीत होता था कि मानो कोई मुझे आलिंगन किये हुए हैं कोई मुझे अपनी गोद में लिये हुए है।"

उन्होंने भुवन मोहन श्रीकृष्ण का साक्षात्कार कर लिया। सारा जीवन उनकी

१ रेमिनिसेंसेज एंड एनक्डोट्स पृ० ८६ ८७।

माधुरी और ऐन्द्रजालिक आनन्द धारा में निमग्न हो गया। कालकोठरी में परात्पर ज्योति का वातायन खुल गया। यह बाँसुरी वह रूप उन्हें कभी नहीं भूला। १९२९ में उन्होंने 'कृष्ण' शीर्षक कविता में लिखा—

मैंने अमर वे सुहाने नेत्र देखे हैं प्रिय के
उन्मादकारी बाँसुरी का राग भी सुना है सदा
विस्मय का महानन्द कभी नहीं मरता है
कसक एक उठती है मौन रह जाती है।
कभी नहीं कभी नहीं राग बन्द होता है
आश्चर्यभरी खुशियों से जिन्दगी सिहरती है
प्रकृति समूची एक विस्तृत प्रतीक्षा है नाथ की
आयें वे छुवें इसे, लेकर आलिंगन मे इसको कृतार्थ करें।[1]

अदालत का नाटक प्रथम दृश्य

गिरफ्तारी के समय श्री अरविन्द अपने ४८ ग्रेस्ट्रीट वाले मकान में थे। पुलिस ने सारे मकान की खाना तलाशी ली। कागजपत्र उठा ले गये। एक लकड़ी के बक्स में दक्षिणेश्वर की मिट्टी था जिसे एक क्रान्तिकारी वहाँ रख गया था। अफसरों का लगातार भ्रम रहा कि कहीं वह बम बनाने का कोई पदार्थ न हो। मुरारीपुकुर बगान से पहले ही बारीन्द्र उल्लासकर इन्द्रभूषण, उपेन्द्रनाथ बनर्जी आदि गिरफ्तार हो चुके थे। ५ मई सन १९०८ को प्रफुल्ल चकी गिरफ्तार किये गये और उन्होंने खुद गोली मारकर आत्महत्या कर ली, ताकि पार्टी के अन्य लोगों का भेद न खुले। ८ मई को सुबोध मल्लिक के वाराणसी स्थित मकान पर छापा मारा गया। १० मई को सुधीर सरकार की खुलना में गिरफ्तारी हुई। १७ मई को मुकदमा बिर्ले के इजलास में लाया गया।

बिर्ले एक नवयुवक मजिस्ट्रेट था। उसकी अदालत में मुकदमा शुरू होने पर अरविन्द की ओर से "मनुएल एण्ड अगरवाला" ने पैरवी शुरू की। उन्हीं दिनों देशवासियों के नाम सरोजिनी का खुलापत्र प्रचारित हुआ। "मेरे देशवासी जानते हैं कि मेरे सहोदर अरविन्द घोष पर एक गंभीर मामले को लेकर मुकदमा चल रहा है। लेकिन मैं विश्वास करती हूँ और मैं साधारण रूप से कह सकती हूँ कि देशवासियों का एक बहुत बड़ा समुदाय इस बात मे विश्वास करता है कि वे पूर्ण निर्दोष हैं। मैं सोचती हूँ कि यदि एक सुयोग्य वकील उनकी पैरवी कर सकें, तो वे छूट जायेंगे। पर जैसा कि उन्होंने देशसेवा के लिए दरिद्रता में जीवन का व्रत लिया है वे इस

१ लास्ट पोयम्स, अरविन्द आश्रम, १९५२।

स्थिति में नहीं हूँ कि किसी विशिष्ट बरिस्टर की सेवायें प्राप्त कर सकें। इसलिए दुःख के साथ आवश्यकता को देखते हुए उनकी ओर से मैं जनता से सहायता की अपील करती हूँ। मैं जानती हूँ कि मेरे सभी देशवासी उनकी राजनीतिक धारणाओं को स्वीकार नहीं करते फिर भी मैं किंचित संकोच से कह सकती हूँ कि संभवत ऐसे इने गिने ही भारतीय होंगे जो उनकी महान् सफलताओं, आत्मत्याग, देश के प्रति एकात्म निष्ठा और उनके चरित्र की उच्च आध्यात्मिकता की प्रशंसा न करें। मेरी जैसी नारी को, इन चीजों ने साहस दिया है कि मैं भारत के प्रत्येक पुत्र और पुत्री से अपने और उनके भाई की रक्षा के निमित्त सहायता के लिए कहूँ। इस दिशा में सहायता सीधे मुझे ६, कालेज स्क्वयर कलकत्ता के पते पर या मेसर्स मनुएल एण्ड अगरवाला, नं० २, हेस्टिंग्स स्ट्रीट के पते पर भेजी जा सकती है।[1]

"मुकदमे का स्वरूप कुछ विचित्र ही था। मजिस्ट्रेट वकील, गवाह गवाही सबूत के प्रमाण और अभियुक्त सभी विचित्र थे। प्रतिदिन गवाहों का अविराम स्रोत जारी रहता वकीलों का अभिनय बाल स्वभाव मजिस्ट्रेट की बच्चों जैसी चपलता और लघुता उन अपूर्व अभियुक्तों का अपूर्वभाव देखते देखते अनेक बार यह कल्पना हृदय में उत्पन्न होती थी हमलोग ब्रिटिश न्यायालय में नहीं वरन किसी नाटकघर के तमाशे में अथवा कल्पनापूर्ण उपन्यास के राज्य में बैठे हुए हैं।[2]"

श्री अरविन्द को यह पूरा इजलास नाटक जैसा लग रहा था। असल में गल्प को सही प्रमाणित करने की कोशिश हमेशा नाटकीय रूप ले ही लेती है। १८ मई को इजलास में अभियुक्त लाये गये। गाड़ी में बैठते ही लगातार १५ दिनों से अलग अलग निर्जन कालकोठरियों में बन्द अभियुक्तों को एक अरसे के बाद एक दूसरे से मिलकर अद्भुत खुशी हुई। हँसी और दिल्लगी का अजस्र स्रोत फूट पड़ा। दस मिनट के लिए जब सब सार्जेंटों से चौतरफा घिरी यह गाड़ी इजलास की ओर चलती भीतर से ठहाके लगते रहते। इसी पिंजड़ेनुमा गाड़ी में बन्द श्री अरविन्द को फेरर ने, जो उनका कैम्ब्रिज का सहपाठी था देखा। 'फेरर स्वयं बरिस्टर थे। उसने मुझे पिंजड़े में बन्द देखा। बहुत दुःखी हुआ पर सोच न पाया कि वह मुझसे क्या कहे। इसी व्यक्ति ने मुझे [illegible] मोटर [illegible] की कुश्ती बताई था।[3]

श्री अरविन्द की दृष्टि में नाटक के प्रधान अभिनेता सरकारी वकील नार्टन साहब थे। 'नार्टन जैसी विचित्र प्रतिभा के मनुष्य विरले ही होते हैं। उनकी वक्तृता का अनर्गल स्रोत बातों की चिरनवीनता छोटी सी गवाही को बड़ा बनाने की अद्भुत

१ वन्देमातरम् १३ जून १९०८ के अंक में प्रकाशित।
२ कारा काहिनी [illegible] कृत अनुवाद पृ० १४।
३ ईवनिंग टाइम्स प्रथम भाग पृ० ८०।

शक्ति अमूल्य अथवा अल्पमूल्य उक्तिया की दु साहसिकता, गवाह तथा छोटे बैरिस्टरों पर तम्बीह तथा सफेद का काला बनाने की उनकी मनमोहिनी अतुलनीय प्रतिभा देख कर कौन मुग्ध नहीं होता।

नार्टन की अद्भुत प्रतिभा ने जिस नाटक का निर्माण किया उसके मुख्य नायक अरविन्द घोष थे। अरविन्द घोष असाधारण तीक्ष्ण बुद्धिसम्पन्न क्षमतावान तथा दु साह सिक बुरा आदमी था। उनके हिसाब से वही राष्ट्रीय आन्दोलन का आदि और अन्त, स्रष्टा तथा ब्रिटिश सरकार का सहार करने का प्रयत्न करनेवाला विध्वसक था। नार्टन ज्यों ही किसी उत्तम अंग्रेजी में लिखे तेजस्वी लेख को देखते, उछल पड़ते, और उच्च स्वर से कहते—'अरविन्द घोष'।

बिर्ले व्यक्तित्व में नार्टन से कहीं से भी कम नहीं थे। जितनी लम्बी काठी थी, उतना ही छोटा सिर। वे अभियुक्तों के वकील व्योमकेश चक्रवर्ती को बहुत नापसन्द करते, क्योंकि चक्रवर्ती उनके छोटे से सिर को छोटा ही मानने की लगातार हरकतें करते। पहले वे खुश रहा करते थे। नार्टन के साथ हँसते, उसी के साथ उछलते। नार्टन क्रुद्ध होते तो बिर्ले क्रुद्ध होते, पर अचानक जब व्योमकेश चक्रवर्ती ने जिरह शुरू की तो बिर्ले उदास हो गये। भुवन चटर्जी अभियुक्तों के बरिस्टर थे। वे नाटक देखने की कला से अनभिज्ञ एक अरसिक आदमी थे। इसलिए वे प्रत्येक दृश्य वार्तालाप और अभिनय में दोष निकालते। इसी से अप्रसन्न होकर बिर्ले ने एक बार चिल्लाकर कहा—"मिस्टर चटर्जी, बैठ जाओ।' ऐसे में गवाहों की फजीहत का क्या कहना। सभी गवाहों से उनका राजनीतिक विश्वास जानना जरूरी था, क्योंकि मामला राजद्रोह का था। नार्टन पूछते—"आपका क्या मत है, यानी किस दल में आस्था रखते हैं।" गवाह बिचारा क्या करे। क्या जवाब दे। उसने ऐसे पेचीदे विश्वास पर कभी सोचा हो तब न। वह चुप रहता। नार्टन चीखते—"तुम क्या समझते हो उत्तर हाँ में या ना में दो। गवाह न तो हाँ ही कह पाता और न तो ना ही। लोग नार्टन को समझाते कि इन बेचारों का अपना कोई मत नहीं है वे केवल सन्देह में झूल रहे हैं। नार्टन को ऐसा उत्तर नहीं चाहिए इसलिए वे गरजते—"बोलो बोलो क्या है तुम्हारा मत? नार्टन की वज्रपात जैसे आवाज से गवाह का पसीना छूटने लगता। दूसरी ओर बिर्ले चिंघाड़ते— तोमरा क्या विश्वास है।

भूखे व्याघ्रों के बीच पड़ा गवाह क्या करता, सिर्फ मन ही मन प्रार्थना करता कि किसी तरह छुट्टी मिले और वह भागे। १९ अगस्त, १९०८ को बिर्ले ने मुकदमा दौरा जज को सुपुर्द किया

दूसरा दृश्य

अलीपुर के अतिरिक्त दौरा जज बीचक्राफ्ट की अदालत में नाटक का दूसरा दृश्य शुरू होता है। १९ अक्तूबर, १९०८ से इस इजलास में पेशियाँ शुरू हुई। सी०

गोसाइं की हत्या के अभियोग में कन्हाई को फांसी हो चुकी थी। पर ये घटनाएँ तथा जेल की यातनाएं क्रान्तिकारियों का मनोबल कभी भी ध्वस्त न कर सकीं। श्री अरविन्द अपने सह अभियुक्तों के क्रिया कलापों को देखते हुए यह कहने से अपने को रोक न सके।

"अदालत के भीतर इन बालकों का आचरण देखकर मुझे यह भलीभांति प्रतीत होता था कि बंगाल में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ है, एक नयी सन्तति माता की गोद में वास करने लगी है। पहले समय के बंगाली लड़के दो प्रकार के हुआ करते थे। एक तो शान्त शिष्ट, निरीह सच्चरित्र, भीरु तथा आत्मसम्मान व उच्चाकांक्षाशून्य और दूसरे दुश्चरित्र दुर्दान्त चंचल ठग तथा संयम व सत्यता रहित। इन दो चरम अवस्थाओं के बीच में अनेक प्रकार के जीवों ने बंगमाता की गोद में जन्म लिया था किन्तु आठ दस भविष्यत काल के पथ दिखलाने वाले असाधारण प्रतिभावान तथा शक्तिवान् मनुष्यों को छोड़कर इन दो श्रेणियों से अलग तेजस्वी आर्यसंतानें प्रायः देखने में नहीं आती थीं। बंगालियों में बुद्धि और मेधा थी, किन्तु उनमें शक्ति और मनुष्यत्व नहीं था। परन्तु इन बालकों को देखकर ऐसा बोध होता था कि ये सब लोग किसी दूसरे काल के, अन्य प्रकार की शिक्षा पाये हुए उदार चित्त दुर्दान्त तथा तेजस्वी पुरुष फिर से भारतवर्ष में लौट आये हैं। उनकी वह निर्भीक तथा सरल दृष्टि व तेज से भरी हुई बातें और वह भावनाशून्य तथा आनन्दमय हँसी इस घोर विपद् के समय में भी उनकी वह अक्षुण्ण तेजस्विता, मन की प्रसन्नता, विषण्ण भावना अथवा सन्ताप की कमी उस समय के तप क्लिष्ट भारतवासियों की सी नहीं थी। यह सब नूतन युग नूतन जाति तथा नूतन कर्मस्रोत के लक्षण हैं। ये लोग यदि हत्यारे हों भी तो कहना पड़ेगा कि हत्या की रक्तमय छाया उनके स्वभाव पर नहीं पड़ी थी। क्रूरता, उन्मत्तता अथवा पाशविक भाव उन लोगों में बिल्कुल ही न थे'।[१] वे स्वयं जेल की यातनाओं को बड़ी खुशी से सह रहे थे। एक बार जरूर उनपर क्रोध का दौरा आया था। "जब मैं अलीपुर जेल में था एक बड़ी दुर्घटना होते होते बची। काल कोठरियों में जाने के पहले कैदियों को कुछ देर रुककर इन्तजार करना पड़ता। हम लोग खड़े थे कि एक स्कॉच वार्डर ने मुझे धक्का दे दिया। मेरे चारों ओर खड़े नवयुवक कैदी बहुत उत्तेजित हो गये। मैंने कुछ नहीं किया, सिर्फ उसकी ओर ऐसी दृष्टि से देखा कि वह भागा और जाकर जेलर को बुला लाया। जेलर ने जो एक धार्मिक आदमी था वार्डर के यह कहने पर कि मैंने उसे नीची दृष्टि से देखा मुझसे पूछा। मैंने सब बातें बताकर कहा कि मैं ऐसे व्यवहार का आदी नहीं हूँ।' उसने सबको शान्त किया और बोला— हममें से प्रत्येक को अपना क्रूस ढोना ही होगा।" श्री अरविन्द की ऐसी ही प्रज्वलित

१ काराकाहिनी।
२ रेमिनिसेंसेज एण्ड एनक्डोट्स पृ० ९।

आँखों की दमक और कपाल के उभार देखकर बगल के बैठे ने पास बैठे से कहा "क्या तुमने श्री अरविन्द घोष की आँखें देखी हैं। बिल्कुल पागल की आँखों जैसी आँखें हैं। कल अलीपुर जेल का मुआयना करने आये थे। पागलों का यह लक्षण। मुझे बड़ी कठिनाई हुई कि ऐसी आँखें पागलपन के कारण नहीं योग के कारण हुई हैं।'

चितरंजन दास ने श्री अरविन्द के मुकदमे में एक नई प्रणाली का प्रचार कर दिया। मुकदमे की कार्यवाही रोज के तमाम समाचार पत्रों में बड़े विस्तार के साथ छपने लगी। मुकदमे की बेतिया के दिलचस्प वर्णनों से अखबार भरने लगे।

७२ वीं पेशी में नागपुर के हेड कांस्टेबिल की गवाही हुई। उसने कहा कि नागपुर में अरविन्द घोष का स्वागत राजाओं जैसा किया गया। वकील के पूछने पर उसने बताया कि अरविन्द घोष गरम दल के हैं। वकील इस जानकारी पर फूले न समाये। उन्होंने झट पूछा— नरम दल और गरमदल में क्या अंतर है? गवाह ने कहा— 'नरमदल वह है जो सरकार की तरफदारी करता है और गरमदल वह है जो सभाओं में जाता है।'

सारी इजलास हँसते हँसते लोट-पोट हो गयी।

२५ मार्च १९०९

प्रातःकाल इजलास शुरू हुआ। अभियुक्त लाये गये। हाल में घुसते ही एक अभियुक्त ने भैरवी राग में गाना शुरू किया। उसकी पियूष वर्षी आवाज से अदालत गूँज उठी सब पर गाने ने जादू सा असर किया। जज, वकील, दर्शक, पहरेदार सभी मंत्रमुग्ध होकर सुनते रहे—

साथक जनम आमार जन्मेछि ए देशे।
साथक जनम मागो तोमाय भाल बेशे।
कोन काननें जानिने फूल, गन्धे एत करे आकुल
कोन गगने उठेरे चाद एमन हाँशि हेँसे।
साथक जनम आमार जन्मेछि ए देशे॥
ओ मा! आखि मेलि तोमार आलो, देख आमार चोख जुड़ालो।
ए आलोके नयन रखे मुदबो नयन शेषे॥
साथक जनम आमार जन्मेछि ए देशे।

इस देश में जन्म लेकर मेरा जीवन साथक हुआ। माता जन्मभूमि तुमसे प्रेम करके जीवन सफल हुआ। नही जानता कि किसी और कानन के फूलों की गंध प्राणों को ऐसा व्याकुल कर सकती है नही जानता कि किसी और गगन में चाँद इस तरह

१ सन्ध्यावाना ३ जनवरी १९३९ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १२०।

की हँसी हँसता है। आ माँ, तुम्हारे आलोक की आभा में भरने से मेरे चक्षु जुड़ा जाते है। इसी आलोक की आभा में धारण किये ही अन्तकाल में नयन बन्द करूँगा।

श्री अरविन्द ने अपने बचाव के लिए चितरंजन बाबू को कुछ आदेश देने चाहे, किन्तु आन्तरिक आदेश ने उन्हें कुछ भी करने से मना कर दिया। चितरंजन बाबू ने बड़े विस्तार से उद्धरण दे देकर यह समझाया कि 'युगान्तर' और 'वन्देमातरम' दो भिन्न दृष्टिकोण के पत्र थे। श्री अरविन्द ने निसन्देह देश की स्वतन्त्रता के लिये जनता को जागत किया। उन्होंने स्वतन्त्रता का शंखनाद किया है। श्री दास कहा—'यदि यह माना जा रहा हो कि देश की स्वतन्त्रता का संदेश देना कानून की दृष्टि से अपराध है, तो मैं अपराध स्वीकार करता हूँ। यदि यही यहाँ का कानून है तो मैंने वैसा किया है और मेरी प्रार्थना है कि मुझे दण्ड दिया जाय। स्वतन्त्रता की धारणा का प्रचार करना यदि अपराध है, तो मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने यह किया है और इसे कभी अस्वीकार नहीं करता। इसीलिए मैंने अपने जीवन की सारी आशाओं का बलिदान किया है। इसीलिये मैं सब कुछ छोड़कर कलकत्ते आया और इसी के लिए लगातार प्रयत्नशील रहा। यह मेरे जागत अवस्था का एकमेव विचार रहा है, सोते वक्त का एकमात्र सपना रहा है। यदि यही अपराध है तो गवाही साक्षी की कोई जरूरत नहीं। मैं यहाँ हूँ और उसे स्वीकार करता हूँ। यदि यही मेरा अपराध है तो खुले आम कहा जाय, मैं इसके लिए प्रसन्नतापूर्वक हर तरह की सजा भोगने को तैयार हूँ। मैं मानता हूँ कि मैं यहाँ इसलिए जन्मा हूँ कि भारतवासियों से कहूँ कि विश्व के रंगमंच पर भारत का एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है यदि यह कहना अपराध है तो मुझे हथकड़ियों से जकड़ दो, जेल में डाल दो, पर मुझसे इस धारणा से इनकार नहीं करा पाओगे। मैं साहस के साथ कहना चाहता हूँ कि स्वतन्त्रता के आदर्श का सन्देश देने का मेरा कार्य कानूनी दण्ड की किसी भी धारा के अन्तर्गत नहीं आता, और न उसके लिए किये गये कार्य ही इसके अन्तर्गत आते हैं।[१]"

जज बीचक्राफ्ट ने पूछा कि क्या अरविन्द ने अंग्रेजी सरकार को उखाड़ फेंकने की सलाह नहीं दी ? श्री दास ने कहा—"अरविन्द की भाषा कहती है कि आपने जो सत्ता प्राप्त की है वह देश की जनता और उसकी सरचना ने आपको नहीं दी है यहाँ की सरकार जनता के भीतर से नहीं उभरी है, जैसा कि अन्य स्वतन्त्र देशों की सरकारें *होती हैं। मैं सरकार का विरोध इसलिए नहीं करता कि वह लोकतान्त्रिक नहीं है* या उसने ऐसे कई कार्य किये हैं जिनकी दूसरों ने निन्दा की है। मेरी आपत्ति तो यह है कि यह सरकार जनता के भीतर से उसके ही अंगभूत संगठन के रूप में पैदा नहीं हुई है।'

अपनी बहस को समाप्त करते हुए चितरंजन दास ने जो पंक्तियाँ कहीं, वे भारतीय

१ लाइफ वर्क आफ श्री अरविन्दो ज्योतीशचन्द्र घोष पृ० १८४-१८५।

लिखा है— मैंने कभी भी अरविन्द को गुस्सा करते नहीं देखा। वे हाल में बैठ लिख रहे हैं। उनकी चप्पल कुछ दूरी पर पड़ी है। अम्मा आतीं और उनकी चप्पल पैरों में डालकर छज्जे पर टहलने चली जातीं। कुछ देर बाद कुछ लोग अरविन्द से मिलने आते। श्री अरविन्द बैठकखाने में जाने के लिए उठते। इधर-उधर ढूंढने पर चप्पलें खोज नहीं पाते। वे अम्मा के पास जाकर कहते— मौसी तुमने मेरी चप्पलें तो नहीं पहन ली हैं? बाहर से कुछ लोग मिलने आये हैं। अम्मा चप्पलें उतार देतीं। श्री अरविन्द को प्रतीक्षा करनी पड़ती, पर इन सब बातों से उन्हें किंचित् भी झुंझलाहट नहीं होती।[1]

जेल ने श्री अरविन्द को कुछ का कुछ बना दिया था।

•

•

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो, पृ० १२३।

पाँचवा क्षितिज

एप स्या युजाना पराकात्पञ्चक्षितो परिसद्यो जिगाति ।
ऋग्वेद—७।७५।३

दूरस्थ होने हुए भी उषा का प्रकाश उद्योगियों के लिए सब कुछ पार करके पाचवें क्षितिज तक पहुँच जाता है

बगाल में ब्रह्मसमाज तथा दूसरे विदशी सस्कृति प्रभावित सगठनो स अपनी रक्षा करने के लिए सनातनी हिन्दुओं ने धमरक्षिणी सभा की स्थापना की। जेल से छूटने के बाद श्री अरविन्द का पहला भाषण इसी सभा में हुआ।

सभा की ओर से श्री अरविन्द को ले आने के लिए अमरेन्द्रनाथ चैटर्जी का भेजा गया। अमरेन्द्र गुप्त-समितिया के क्रिया कलाप के सिलसिले में श्री अरविन्द के सम्पक में आ चुके थे। श्री अरविन्द ने ही उनको गुप्त समिति की दीक्षा दी थी।[1] अमरेन्द्र न लिखा हूँ—"मैं सजीवनी कार्यालय में श्री अरविन्द को लाने के लिए गया। मैंने उन्हें पूण नीरव और शान्त देखा मानो ध्यानस्थ हो। इसलिए मैंने भी कोई खास बात चीत नही की। हम रेलगाडी से उत्तरपाडा के लिए चले। उसी रेलगाडी स उत्तर पाडा भाषण का सुनने के उत्सुक अनेक लोग भी आये थ। रेलगाडी ३ बजे पहुची। सभा शाम पाच बजे स शुरू हाने वाली थी। उत्तरपाडा के जमीदार पियारी मोहन और उनके पुत्र मिछरी बाबू स्टेशन पर स्वागत के लिए खडे थे। सुरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायके निवास पर थोडा आराम करके श्री अरविन्द ने चाय पी। गगा तट पर स्थित पुस्तकालय के प्रागण के पूरब तरफ खुले मैदान म सभा का आयोजन था। सभा में करीब दस हजार व्यक्ति उपस्थित थे। उनकी आवाज बहुत ऊँची नही थी, अत श्रोता भाषण सुनने के लिए स्वय पूण शान्त और नीरव बने रहे।

उत्तरपाडा अभिभाषण

मुझसे जब इस सभा में कुछ कहने के लिए अनुरोध किया गया था तब मुझ को हिन्दूधम पर कुछ कहने की इच्छा हुइ थी। किन्तु अब मैं बता नही सकता कि उस विषय कुछ कहूँगा कि नही, क्योंकि यहा मेरे जी में कुछ और ही बात कहने की तरग

१ उपेन्द्रनाथ बैनर्जी ने अमर को अरविन्द के सम्मुख उपस्थित किया। श्री अरविन्द ने अमर से कहा— तुम अपने को ईश्वरापण कर दो। ईश्वर और जगज्जननी की शपथ लेकर भारत की सेवा में लग जाओ। तुम्हारे लिए यही मेरी दीक्षा है। अमर ने लिखा है—उस दीक्षा ने मेरा जीवन बदल दिया। सारे भय सारे मोह-बन्धन मुझसे अलग हो गए।" —लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १०७।

उठ रही है। यह बात कारागार में रहते समय मुझसे कही जाती थी। वही बात मुझे सम्पूर्ण भारतीय जाति से कहनी है। वस्तुतः उसी बात को अपनी जाति से कहने के लिये मैं कारागार से छूटकर आया हूँ।

वर्षभरसे कुछ अधिक हुआ मैं अन्तिम बार जब इस सभा में आया था, तब भारत की राष्ट्रीयता के एक धुरंधर अग्रदूत मेरी बगल में बैठे हुए थे। वे उस समय अपने भगवत-निर्दिष्ट एकान्त वास से छूटकर आये थे। भगवान की पवित्र वाणी सुनने के लिये ही उनके उस एकान्त कारागार की व्यवस्था हुई। आप लोगों में से सैकड़ों सहस्रों महानुभाव सम्मिलित होकर उनका स्वागत करने के लिये उपस्थित हुए थे। अब वे बहुत दूर हैं, हमसे हजारों मील दूर पर विराज रहे हैं। मैंने एक वर्ष एकान्त में बिताया है। अब बाहर आकर देख रहा हूँ कि पहले की सभी बातें बदल गयी हैं। देश एक बड़े भारी तूफान से गुजर रहा है। एक सज्जन जो सदा मेरे साथ रहते थे, मेरे हर काम में सम्मिलित होते थे, ब्रह्मदेश में देश निकाले का दंड झेल रहे हैं।[1] दूसरे उत्तर भारत में नजरबन्दी का दुःख भोग रहे हैं।[2] जब मैं कारागार से छूटकर आया तब इधर उधर देखा, जो लोग सदैव मेरे साथ रहते थे, प्रेरणा और सम्मति के लिये जिनकी ओर मैं ताकता था उनको देखने के लिए इधर उधर दृष्टि दौड़ाई, किन्तु वे न मिले। इससे भी कुछ अधिक ही घटा है। जब मैं जेल गया था तब मैंने सम्पूर्ण देश को वन्दे मातरम् की गर्जना से सजीव देखा था। सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता की सजीव आशा धड़क रही थी। यह आशा अवनति की दशा से उठे हुए करोड़ों मनुष्यों की बड़ी ही प्यारी आशा थी। जब मैं जेल से छूटकर आया तब पुनः उसी ध्वनि को सुनना चाहा, किन्तु उसकी जगह सर्वत्र मौन का राज्य देखा। एक स्तब्धता देश पर छा गया है।

सभी कुछ स्तब्ध प्रतीत हो रहा है। लगता है कि अचानक हमारी आंखों के सामने से भविष्य की आशाओं से भरा ईश्वरीय क्षितिज तिरोहित हो गया है। अब हमारे सामने मानवीय निराशा और क्षोभ के काले बादल मंडरा रहे हैं। कोई भी नहीं जानता कि किधर चलें। सब ओर से एक प्रश्न उठ रहा है कि हम क्या करें, अब क्या करना चाहिए।

मैं भी नहीं जानता कि अब किधर चलना चाहिए। अब क्या करना चाहिये, किन्तु मैं इतना जानता हूँ कि भगवान की सर्वशक्ति ने वह ध्वनि उठाई थी, वह आशा जगाई थी और वह उसी की इच्छा है जिसके कारण सर्वत्र मौन छा गया है। जो जय जयकार और नारों के बीच था वही चुप्पी और मौन के बीच भी है। उसने हमें मूर्च्छित किया है कि यह राष्ट्र एक क्षण स्तब्ध होकर अपना और अन्तरीय दशा का टोह ले पहचान ले। इस मौन-शान्ति को देखकर मैं निराश नहीं हुआ हूँ। क्योंकि

१ [illegible]
२ [illegible]

मौन-साधन का अभ्यास मुझको है और वर्षभर की लम्बी कैद ने मौन और चुप्पी के भीतर से इस चीज को देखने की मुझे शिक्षा दी है। जब विपिनचन्द्र पाल जेल से लौटे, वे एक सन्देश लेकर आये। वह सन्देश ईश्वरीय प्रेरणा से भरा था। मुझे वह भाषण याद है। एक ऐसा भाषण था जो उतना राजनीतिक नहीं था जितना धार्मिक था। उन्होंने जेल में अपने ईश्वरीय अनुभवों की बातें कहीं, हम सबके भीतर विद्यमान ईश्वर के विषय में कहा। पूरे राष्ट्र में विद्यमान ईश्वर के विषय में कहा। उन्होंने बाद के अपने अनेक भाषणों में इस आन्दोलन के पीछे क्रियारत किसी महत्तर शक्ति की चर्चा की।

मैं भी वैसे ही आज आपसे जेल से छूटकर मिला हूँ तथा उत्तर पाड़ा के वे ही लोग आज सर्वप्रथम मेरा स्वागत कर रहे हैं। यह राजनीतिक सभा नहीं है। यह हमारे धर्म की रक्षा के लिए है। विपिनचन्द्र पाल को सन्देश बक्सर जेल में मिला। मुझे ईश्वर ने वही अलीपुर जेल में दिया। मुझे अलीपुर जेलखाने में वर्ष भर की लम्बी कैद में भगवान् हर घड़ी सन्देश देते थे। उसी सन्देश को उन्होंने मुझे छूट आने पर आपको सुनाने के लिये आज्ञा दी है।

मैं जानता हूँ कि मैं छूटकर जाऊँगा। वर्षभर का एकान्तवास मेरी शिक्षा का वर्ष था, अन्यथा मुझे जेल में ईश्वरीय प्रयोजन से अधिक समय के लिए बन्द रखने की सामर्थ्य किसमें हो सकती थी। भगवान् ने आपसे कहने के लिए मुझे में अपनी वाणी डाल दी है और यहाँ करने के लिये उन्होंने काम बता दिया है। जब तक मैं उनके वचन सुना न लूँ, किसकी सामर्थ्य है कि मुझे मौन कर दे, जब तक उनका बताया हुआ काम कर न लूँ किसमें यह सामर्थ्य हो सकती है उनके माध्यम यन्त्र को, चाहे वह कितना भी कमजोर क्यों न हो, कार्य करने से रोक दे। अब जब मैं बाहर आया हूँ, इन कुछ मिनटों में भगवान् ने अपनी वाणी कहने की आज्ञा मुझे दी है, मेरे जी में जो बात चुभी हुई थी उसे वे भगवान् मेरे मनसे निकालकर बाहर कर रहे हैं। उन्हीं की आज्ञा से उन्हीं के दबाव से मैं यह भाषण कर रहा हूँ।

जब मैं गिरफ्तार हुआ जब मैं लाल बाजार की हवालात में डाला गया, मैं भगवान का भीतरी अभिप्राय जान नहीं सका था। क्षणभर के लिये मैं आगा-पीछा करने लगा। मैंने उनसे चिल्लाकर पूछा था कि "भगवान! यह क्या हुआ?" मुझे विश्वास था कि जब तक मैं उनका काम कर न लूँ तब तक मैं उनकी रक्षा के अधीन हूँ। फिर मैंने सोचा कि मैं क्यों यहाँ लाया गया। उस समय अन्त में मेरे हृदय में यह वाणी आयी कि चुप होकर देखो कि क्या होता है। बस मैं शान्त हुआ और चुपचाप सब देखने लगा। मैं लाल बाजार हवालात से अलीपुर जेलखाने पहुँचाया गया। एक मास के लिये मैं और लोगों से अलग काल कोठरी में डाला गया। मैं दिन रात भगवान् की वाणी सुनने की, मुझे क्या करना होगा, यह जानने की अपेक्षा करने लगा। उस

एका त में पहले पहल मेरे हृदय में वह वाणी डाली गयी। मुझे आदेश हुआ कि चुप चाप एकान्त म रहा। अपने हृदय में स्थित भगवान् म रमते रहो। मैं दुवल था। उस आदश को मानना मुझसे नही बना। जो काम मैं करता था, वही मुझे प्रिय लगता था। इसलिये अहकारवश मैं विचारने लगा कि उस काम से मेरा अलग होना कतई ठीक नही ह। भगवान् की वाणी पुन सुनाई पडी। उ होने कहा कि जिस बन्धन को तोडने की तुझम सामथ्य नही ह उसे मैंने तोड दिया ह। क्योकि उस बन्धन को अधिक दिन स्थिर रख सकना मेरी इच्छा के विरुद्ध ह। तर इस मोह को तोडने के लिए ही मैं तुझे यहाँ ले आया हू। तुमसे मुझे एक दूसरा काय कराना ह उसी के लिये मैं तुझे यहाँ ले आया क्योकि बाहर रखकर अपने से तू वह नही सीख सकता था और न तो तू मरे काम लायक बन सकता था। बस उन्होने मेरे हाथ में गीता धर दी। गीतोक्त साधना में लग गया। गीता को बौद्धिक ढग से समझ लेना ही मेरा काम नही था, बल्कि वह अनुभवगत सामथ्य पाना जो श्रीकृष्ण अजुन से या भगवान् का काय करनेवाले से अपेक्षा रखते ह।

ईश्वर का काय करने के लिए आदमी को आशा निराशा से अलग होना होगा, उसके लिए सिफ निष्काम भाव से बिना फल की इच्छा के काय करना होगा, अपनी इच्छाओ को छोडकर सिफ उसकी इच्छा का समर्पित माध्यम बन जाना होगा, उसके हाथ का खरा और सच्चा यत्र जो ऊँच और नीच में शत्रु मित्र में, सफलता विफलता में, कोई भेद नही करता, तो भी भगवान् के काय को पूरा करते रहने में कहीं से भी शिथिलता या लापरवाही नही आने देता। मैं अनुभव करने लगा कि हिदूधम का अथ क्या ह। हम हिदुधम सनातन धम की बात कहा करते ह, किन्तु बहुत थोड ही लोग उसका अभिप्राय समझते ह।

दूसरे धम कौल और विश्वास के धम ह सनातन धम जीवन ह। यह उतना विश्वास करने की चीज नहा ह, जितना जीने की चीज ह। सनातन धम मनुष्यत्व प्राप्ति और बन्धन से मुक्ति का धम ह। पृथ्वीभर में फलाने के लिए वह महान् धम हमको मिला ह। पथ्वी भरको उसे अपण करने के लिए ही हिन्दुस्तान जाग रहा ह। उसका जागरण दूसरे देशो के उठ खडे होने की तरह नही ह। दूसरे देश उठते ह दुबल लोगो को पैरो से कुचल डालने के लिए। हिन्दुस्तान उठ रहा ह, पृथ्वी भर में धम की पवित्र ज्योति फलाने के लिए। भारत का अस्तित्व हमेशा मानवता के लिए रहा ह, अपने लिए नही, और इसीलिए यह जरूरी ह कि वह अपने लिए नही, बल्कि मानवता के लिए महान बने। इसलिए पहले भगवान ने हिदूधम के केन्द्रस्थित सत्यका अनुभव मेरे हृदय में डाल दिया। उन्होने मुझे कद करनेवालो का हृदय मेरी ओर फर दिया। जेलखाने का भार जिस अग्रेज पर था उससे मेरे कैद करनेवालो ने बताया कि यह आदमी कालकोठरी की यन्त्रणा सह रहा ह और न हो तो इसे सबरे और शाम को आधा घण्टा

अपनी कोठरी के बाहर टहलने दो।

उन्होने वैसा ही प्रबन्ध कर दिया। मैं टहलने लगा। टहलते समय भगवान् की शक्ति मेरे भीतर प्रविष्ट हो गयी। मैंने देखा कि जेल की ऊँची दीवालो में, जिन्होने मुझे मानव जाति से अलग कर रखा था मैं कैद नहीं हूँ। स्वयं वासुदेव सर्वत्र मुझे घेरे हुए हैं। मैं एक वृक्ष की शाखाओ के नीचे छाया में टहल रहा था, मैंने देखा कि पेड पेड नहीं है, वह तो स्वयं वासुदेव है।

श्रीकृष्ण वृक्ष बनकर मुझे धूप से बचा रहे हैं। मैंने कैदखाने के सीखचों की ओर देखा। पहरा देने वाले को देखा। वह पहरेदार नहीं वासुदेव थे। वे नारायण ही थे जो पहरा दे रहे थे और संतरी की तरह मेरे दरवाजे पर खडे थे। जब मैं जेल में प्राप्त रूखे कम्बलो पर लेटा तो अनुभव हुआ कि मैं श्रीकृष्ण की, अपने प्रेमी और मित्र की भुजाओं में लिपटा हुआ हूँ।

मुझे यह प्रथम दर्शन मिला, प्रतीति मिली। मैंने जेलखाने के कैदियो को देखा। चोरों को हत्यारो को, ठगो को, और जब मैंने उन्हें देखा, वे नारायण थे वासुदेव थे जो इन तमस् पूर्ण गलत कार्यों के लिये इस्तेमाल किये गये शरीरो में विद्यमान थे। इन चोरो और डाकुओं में कई ऐसे थे, जो अपनी सहानुभूति कृपालुता और मानवीयता के द्वारा मुझे लज्जित कर देते थे। उनके भीतर के ये गुण प्रतिकूल परिस्थितियो के भीतर भी विजयी होकर विद्यमान थे। इनमें से एक व्यक्ति को मैंने खास तौर से देखा, जो मुझे महात्मा जैसा लगा। वह अपने राष्ट्र का एक किसान था। वह न लिखना जानता था, न पढना जानता था, वह एक अभियुक्त डाकू था जो दस वर्ष सख्त कैद की सजा भोग रहा था। वह उन्ही में से एक था, जिन्हें हम बडप्पन के अहंकार में 'छोटा लोग' कहकर दुत्कारते हैं।

एक बार पुन श्रीकृष्ण ने कहा—"देख, यह है वह जनता, जिसमें तुझे ले आया हूँ। मैंने इन्ही के बीच तुझे भेजा, ताकि तू मेरा छोटा काम कर सके। यही राष्ट्र का सच्चा रूप है, इन्हें देख और उस उद्देश्य को समझ, जिसके लिये मैं इन्हें जगा रहा हूँ।"

जब छोटी अदालत में मुकदमा शुरू हुआ, और हम मजिस्ट्रेट के सामने लाये गये। मैं उसी अन्तर दृष्टि में डूब गया। उन्होने मुझसे कहा—"जब तुम जेल में डाले गये, क्या तुमने हृदय से निराश होकर नहीं कहा था कि हे ईश्वर तेरी वह कृपा कहाँ गई? देख, सामने मजिस्ट्रेट को, देख सरकारी वकील को'। मैंने उन्हें देखा, वहाँ मजिस्ट्रेट नहीं था वासुदेव थे, वहाँ न्याय पीठ पर नारायण विराजमान थे।

मैंने सरकारी वकील को देखा, वह सरकारी वकील नहीं श्री कृष्ण थे। वहाँ मेरा प्रेमी और मित्र बैठा मुस्करा रहा था—'क्या तुझे अब भी भय है?' उन्होंने कहा 'मैं सभी आदमियों में स्थित हूँ, मैं उनके वचन और कार्यों का नियन्ता हूँ। मैं अब भी

तेरी रक्षा कर रहा हूँ तू डर मत। यह मुकदमा जो तेरे खिलाफ लाया गया ह, उस मेरे हाथ म छोड दे। यह तेर बस का नही ह। मुकदमे के लिए मैं तुझे नही लाया किसी और काम के लिए तुझे यहाँ ले आया हू। मुकदमा मेरे काय करन का एक तरीका मात्र ह, इससे अधिक कुछ नही।"

बाद म जब मुकदमा शुरू हुआ मैंने अपने वकील के लिए बहुत से निर्देश लिखन शुरू किये। गवाहियो म क्या गलत ह और किन चीजों के बारे म गवाहो से खाद विनोद करना चाहिए। तभी एक ऐसी घटना घटी जिसकी मुझे कभी सभावना भी नही थी। मर बचाव के जो भी प्रबध किये गये थे, व अचानक बदल दिए गए। एक दूसरा बरिस्टर मेरे बचाव के लिए उठ खडा हुआ। अचानक आये, वे मेर मित्र थे, पर मैं नही जानता था कि व आयेंगे। आप सभी लोग उनका नाम जानते ह, जिन्होन उस वक्त हमशा क लिए दूसरे कार्यो स नाता तोड लिया, अपनी प्रैक्टिस छोड दी। दिन प्रति दिन आधी रात तक जाग-जाग कर काम करक उन्होने मेरे बचाव के लिए अपनी सहत बिगाड ली। व थे श्रीयुत चितरजनदास।

जब मैंने उन्हें दखा। मुझ सतोष हुआ। पर मैंन उन्हें भी जरूरी निर्देश लिखन का विचार किया। तभी अन्तर से आवाज आई यही आदमी ह वह जो तुझ बचायगा, तुम्हार पैरो म पडी बेडिया छुडायेगा। वे कागज अलग रख दो। वह तुम नही हो जो उसे निर्देश दोगे। मैं निर्देश दूँगा।

उस वक्त स मैंन एक श द नहा कहा और यदि कभी कोई सवाल पूछा गया तो मैंने पाया कि मर उत्तर मर बचाव में सहायक नही हुए। मैंन सारा कुछ उनके हाथ म छाड दिया और उन्होन सारा भार अपने ऊपर ल लिया। नतीजा आप सब लोग जानते ह। मैं हमशा जानता था कि ईश्वर मेरे लिए क्या कर रहे ह क्योंकि मैं बार बार भीतर स यह आवाज सुनता—"मैं उसका पथप्रदशन कर रहा हू, तू चिन्ता न कर। तू अपने काम में लग जा जिसके लिए मैं तुझे जेल में ले आया। और याद रख जब तू जेल स बाहर निकले, कभी डरना मत, क्योकि चाहे जो भी घटाए घिरें चाहे जो भी खतर और कठिनाइयाँ आए, असभव से लगते काम हो, तो भी कुछ भी असभव नही ह कुछ भी कठिन नही ह। याद रख, यह मैं हू जो सब कुछ कर रहा हू। करने वाला न तू ह न कोई दूसर ह। मैं ही राष्ट्र म व्याप्त हू। मैं ही उसके जागरण म व्याप्त हू। मैं वासुदेव हू। मैं नारायण हू। मैं जो चाहूगा वही होगा दूसरो का चाहा नही होगा। मैं जो कुछ लाने की सोच रहा हू कोई मानवीय शक्ति उसे रोक नही सकती। ✓

इसी बीच व मुझे एकान्त से हटाकर उन लोगो के बीच ले आए, जो मेरे ही साथ ही जेल आये थे। आपने आज मेरे आत्म-त्याग की बहुत प्रशसा की ह, मेरी देशभक्ति की बहुत सराहा ह। मैं इस तरह की कृपापूर्ण प्रशसाएँ लगातार सुन रहा हूँ, जब से

जल से आया हूँ। पर मैं इन्हें जभी सुनता हूँ, सकोच का अनुभव करता हूँ, एक पीडा का भी। क्योंकि मैं अपनी दुबलता को भलीभाति जानता हूँ। मैं अपनी ही त्रुटियों और अघवत्तियो का शिकार होता रहा हूँ। मैं उनसे पहले भी अनजान नही था। और जब वे सभी एक साथ काल्कोठरी में उठीं, मैंने उन्हें पूरा का पूरा अनुभव किया। तब मैंने जाना कि मैं एक कमजोरियों का ढेर हूँ। एक त्रुटिपूण और अपूण यन्त्र हूँ। मैं मजबूत तभी लगता हूँ जब एक उच्चतर शक्ति मेरे भीतर उतरती ह। जब मैं इन नौजवानो के बीच आया और इनमें से कइयो के भीतर जब मैंने सशक्त साहस और आत्म बलिदान का भाव देखा तो मुझे लगा कि उनकी तुलना में मैं कुछ नही हूँ। मैंने देखा कि इनमें स दो एक सिफ चरित्र और शक्ति में ही नही, जिसमें और भी बहतरे थे बल्कि बौद्धिक क्षमता में भी, जिसका मुझे गव था मुझसे बेहतर थे। तभी उन्होने (श्रीकृष्ण) कहा—"देख यह ह नई पीढ़ी, नया और शक्तिशाली राष्ट्र, जो मेरे आदेश से जाग रहा है। ये तुझसे महान ह। फिर तुझे भय किस बात का? यदि तू विनाराक्शी कर ले या सो जा तो भी मेरा काम होकर रहेगा। यदि तू कल एक ओर फेंक दिये जाओ, तो यहाँ ह वे नौजवान जो तुम्हारा काम उठा लेंग। और जसा तूने किया ह उसस कहो ज्यादा अच्छी शक्ति के साथ इसे पूरा करेंगे। तुम्ह मैंने थोडी सी शक्ति दी ह राष्ट्र के नाम एक सन्देश पहुँचाने के लिए, जो उनक जागरण म सहायक होगी। यही दूसरी चीज थी जो उ होंने मुझसे कही।

तभी अचानक एक घटना घटी और मैं काल कोठरी के एकान्तवास में डाल दिया गया। उस समय मेरे साथ क्या क्या घटा, मैं उसे कहने की इच्छा नही रखता। पर इतना जरूर कहूँगा दिन पर दिन भगवान् मुझे अपना चमत्कार दिखाने लगे। उन्होने मुझे हिन्दू धम की सच्चाई अनुभव कराई। तब मेरे मन में अनेक शकाए थी। मैं इग्लड में विदेशी भावो और वातावरण के बीच में पला हूँ। मे हिन्दू धम को कल्पना स्वप्न और व्यथ की सामग्री और माया समझता था। मैं विचारता था कि उसम कुछ भी सच्चाई नही ह। मैं एकान्तवास के समय शरीर, मन और हृदय में हिन्दूधम की सच्चाई अनुभव करने लगा। वह मेरे लिये सजीव सत्य बन गया। मेरे लिये ऐसे ऐसे विषय उभारे गये, जिन्हें कोई भी भौतिक विज्ञान समझा नही सकता। भगवान् की शरण में पहुँचा तब ठीक ठीक भक्ति के अनुभव स नहो पहुँचा और न ज्ञान के अनुभव से ही पहुँचा। बहुत दिन पहले जब स्वदेशी आन्दोलन का आरम्भ भी नही हुआ था मैं बडौदा में रहते समय भगवान् की ओर खिंचा, पर तुरन्त जनता के कार्यों में लग गया। उस समय मेरे हृदय में भगवान् पर वसा विश्वास भी नही था। उस समय मेरे व्यक्तित्व में तार्किक था, नास्तिक था और सन्देहालु जीव भी था। मुझे इस बात तक में विश्वास न था कि कोई ईश्वर होता ह। मैं उसकी उपस्थिति से अनजान था। फिर भी कोई चीज थी जो मुझे वेदो की ओर, गीता व

सत्य की ओर, हिन्दू धर्म के सत्य की ओर खींच ले गयी। मैंने सोचा कि इस योग विद्या में कहीं न कहीं सत्य होगा। इस धर्म का एक ऐसा शक्तिशाली सत्य जो वेदान्त पर टिका है। मैं योग की ओर मुड़ा और मैंने प्रण करके अभ्यास शुरू किया, ताकि जान सकूं कि मेरी धारणाएं कहाँ तक सही हैं। मैंने यह सब भगवान के प्रति इस प्रार्थना और भाव के साथ शुरू किया, "यदि तू है तो तू मेरे हृदय को जानता है। तू जानता है कि मैं मुक्ति नहीं चाहता। मैं वह नहीं मांगता जो दूसरे मांगते हैं। मैं तुमसे केवल वह शक्ति मांगता हूं जिससे इस राष्ट्र को उन्नत बनाया जा सके। मैं केवल इस जनता के लिए जिसे मैं प्यार करता हूँ जीने और कार्य करने की अनुमति चाहता हूँ। मेरी प्रार्थना है कि मेरा सारा जीवन इनकी सेवा में व्यतीत हो।" मैंने योग की ससिद्धि के लिए लम्बा प्रयत्न किया। और अन्ततः कुछ पाया भी किन्तु जिसे मैं अधिक चाहता था, उसी से सन्तुष्ट न हो सका। जेल की तन्हाई में मैंने पुनः प्रार्थना की, "मुझे अपना आदेश दो मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना है और कैसे करना है। मुझे सन्देश दो।" योगावस्था में मुझे दो आदेश प्राप्त हुए। पहला आदेश था मैंने तुम्हें एक कार्य सौंपा है वह है इस राष्ट्र को उठाना। थोड़े समय बाद ही तुम जेल से बाहर जाओगे। क्योंकि मेरी इच्छा नहीं है कि इस बार तुम्हें सजा मिले या तुम देश के लिए पीड़ा सहते हुए दूसरों की तरह समय गंवाओ। मैंने तुम्हें एक कार्य के लिए यहाँ बुलाया है। यही मेरा आदेश है कि तुम जाकर मेरा कार्य करो।

दूसरा संदेश यह आया— तुम्हारे इस एकान्तवास के वर्ष में तुम्हें कुछ दिखाया गया है। कुछ ऐसा जिसमें तुम्हें सन्देह था। वह हिन्दू धर्म की सच्चाई है। उसी सच्चाई को मैं पृथ्वी के सम्मुख प्रकट करना चाहता हूँ। उसी सच्चाई को मैंने ऋषियों सन्तों और अवतारों के द्वारा पूर्णता तक पहुंचा दिया है अब यह धर्म सभी राष्ट्रों के बीच मेरा कार्य करने के लिए भेजा जायेगा। मैं अपनी वाणी संसार में फैलाने के लिए इस जाति को जगा रहा हूँ। यही सनातन धर्म है, यही अविनाशी धर्म है, जिसे तुम पहले नहीं जानते थे और जिसे मैंने तुमपर प्रकट किया है। मैंने तुम्हें ऐसे प्रमाण दिये हैं जिनसे तुम्हारे भीतर के तार्किक और नास्तिक चुप हो गए हैं क्योंकि मैंने तुम्हारे भीतर से और तुम्हारे बाहर से ऐसे प्रमाण दिये हैं भौतिक और व्यक्तिगत दोनों, जिनसे अब तुम पूर्ण रूप से कायल हो गये हो। जाओ अपनी जाति में जाकर तुम यह वाणी सुनाओ कि सनातन धर्म के लिये ही तुम्हारी जाति जाग रही है। सुनाओ कि पृथ्वी में सनातन धर्म की महिमा प्रचार करने के लिये ही तुम्हारी जाति खड़ी हो रही है। मैं तुम्हें पृथ्वी के उपकार के लिये स्वतन्त्रता देता हूं। तुम जाओ और संसार को यह संदेश सुनाओ कि जब हिन्दुस्तान के जागरण की बात कही जाती है तब सनातन धर्म के जागरण की बात कही जाती है। जब हिन्दुस्तान की बड़ाई की बात कही जाती है तब सनातन धर्म की बड़ाई हो गायी जाती है। जब हिन्दुस्तान की वृद्धि की

बात कही जाती ह तब ससार में सनातन धम की वद्धि ही समझाई जाती ह। जब भारत के विकास और विस्तार की बात कही जाती ह तब सनातन धर्म के विकास और विस्तार की बात कहा जाती ह। केवल धम के लिए और धम के द्वारा भारत का अस्तित्व ह। धम की महिमा से ही भारत की महिमा ह। मैं तुम्हे दिखा चुका हूँ कि मैं सवत्र विद्यमान हूँ। मैं केवल उन्ही में काम नही कर रहा हूँ, जो देश के लिये प्रयत्न कर रहे हैं मैं उनमें भी काम कर रहा हूँ, जो उनके माग में बाधा डाल रहे हैं। मैं हर आदमी में काम कर रहा हूँ क्योंकि सभी लोग काम करने वाले और बाधा देने वाले भी मेरा ही काम कर रहे ह। सभी कार्यों में लगे हुए भी तुम लोग नही जानते कि किस पथ से तुम चल रहे हो। करना कुछ चाहते हो, होता कुछ ह। तुम परिणाम कुछ चाहते हो और उसका उल्टा नतीजा दिखाई पडता ह। मेरी शक्ति भेजी जा चुकी ह और जनता में प्रविष्ट हो गई ह। बहुत दिनों से मैं उसकी तयारी कर रहा था। और अब समय आ गया ह और यह मैं हूँ जो उन्हें अभीष्ट की ओर ले जाऊँगा। यही सदेश है जो मैं तुम्हें देना चाहता हूँ।

आपकी सभा का नाम धम रक्षिणी सभा ह। अत हिन्दू धम की रक्षा और विश्व के सामने उसका उदय हमारा अभीष्ट है। हिन्दू धम क्या ह? सनातन कहा जानेवाला यह धम क्या है? यह हिन्दू धम है क्योंकि इसे ही हिन्दू राष्ट्र ने स्वीकार किया ह, इस उपमहाद्वीप में समुद्र और हिमालय के बीच के एकान्त क्षेत्र में यही उत्पन्न हुआ ह और यही धम इस पुराने और पवित्र देश में आय जाति को युगयुगान्तर तक रक्षा क लिए सौंपा गया ह किन्तु यह किसी एक देश की सीमा में बद्ध होने के लिए नही आया ह यह हमेशा-हमेशा के लिए इसी सीमित क्षेत्र में बँधे रहने के लिए नही आया ह। हम जिसे हिन्दू धम कहते ह वह सनातन धम ह क्योंकि वह वश्विक धम ह जो सभी को अपने में मिला लेता ह। यदि धम वश्विक नही ह,तो सनातन नही हो सकता। एक सकुचित धम, एक साम्प्रदायिक धम मात्र, कुछ लोगो में सीमित धम, सिफ सीमित समय के लिए सीमित प्रयोजन के लिए जीवित रह सकता ह। यही एक धम ह जो भौतिकतावाद पर विजय पा सकता ह क्योंकि इसी में वह क्षमता ह कि वह विज्ञान की खोजों और आगामी सभावनाओं को और दशन की धारणाओं को आत्मसात कर ले। यह एक मात्र धम ह जो मानव जाति को ईश्वर के निकट ले जाता ह और अपने घेरे म व सभी भिन्न भिन्न रास्ते समेट लेता ह जो ईश्वर की ओर ले जाते ह। यह वही धम ह जो हर क्षण इस सत्य पर जोर देता ह जिस पर सभी धर्मों का विश्वास ह कि ईश्वर सभी मनुष्यों में ह, पदार्थों में ह, और हम उसी में अपना जीवन धारण करते और उसी में जीते हैं। यह एक मात्र धम ह जो सत्य को समझना और उसमें विश्वास करना सिखाता ह। यही ह जो अपने अस्तित्व के हर हिस्से द्वारा उस सत्य का हृदयगम

करने का उपाय बताता है। यही एक मात्र धर्म है जो संसार को बताता है कि संसार क्या है? संसार वासुदेव की लीला है। यही धर्म है जो सिखाता है कि उस लीला में हम अपनी भूमिका सबसे अच्छे तरीके से किस प्रकार अदा कर सकते हैं। यही धर्म है जो जीवन के छोटे से छोटे अंग को भी धर्म से अलग नहीं करता। यही धर्म है जो जानता है कि अमरता क्या है और इसी ने हमारे हृदय से मृत्यु के भय को निकाल बाहर किया है। यही वचन थे जो मुझे दिये गये। मैं ही वचन मैं आपको सुनाने आया हूँ। जो मुझसे कहने को कहा गया वह चुका इससे अलग मुझे और कुछ नहीं कहना है। मैंने कभी इसी शक्ति को प्राप्त करके कहा था कि यह आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन नहीं है, राष्ट्रीयता राजनीति नहीं है धर्म है धर्म है। मैं आज फिर यही कह रहा हूँ। परन्तु अब मैं इसे दूसरे ढंग से कहना चाहता हूँ। अब मैं यह नहीं कहता कि राष्ट्रीयता धर्म है, कर्म है विश्वास है मैं अब कहता हूँ कि राष्ट्रीयता सनातन धर्म है जो हमारे लिये राष्ट्रीयता है। यह हिन्दू राष्ट्र सनातन धर्म के साथ अस्तित्व में आया वही इसे परिचालित करता है वही इसे विकसित करता है। जब सनातन धर्म च्युत होता है तब राष्ट्र च्युत होता है और यदि सनातन धर्म नष्ट होने की चीज होगा तो यह राष्ट्र भी नष्ट हो जायगा। सनातनधर्म राष्ट्रीयता है यही वह संदेश है, यही कहने मैं यहाँ आया था[1]।

श्री अरविन्द के भाषण ने उपस्थित जन समुदाय को मन्त्र विमुग्ध कर लिया। यह भाषण राष्ट्रीयता की नई व्याख्या था और इसने धर्म की नई परिभाषा प्रस्तुत की। इस भाषण ने, सनातनधर्म की युगानुरूप परिवर्तित होने की क्षमता तो दिखायी ही उसे भारत के सीमित क्षेत्र से यानी अपने चारों क्षितिजों से निकाल कर पावर्व क्षितिज की यात्रा का नया संदेश भी दिया। यह भाषण ईश्वरीय वचन की पवित्रता से पूर्ण प्रखर और दीप्त तो था ही कारागार में वासुदेव को सत्ता में निमज्जित वक्ता के व्यक्तित्व से जुड़कर एतिहासिक महत्त्व की चीज बन गया।

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का यह पहला दस्तावेज ऊपर-ऊपर से देखने से हिन्दुत्व को जोरदार ढंग से रेखांकित करता प्रतीत होता है परन्तु इसके मर्म को समझने के इच्छुक से यह छिपा नहीं रहेगा कि उस हिन्दुत्व की इस भाषण में कहीं अभ्यर्थना नहीं है जो संकुचित साम्प्रदायिकता से ग्रस्त है जो आत्मखंडित और संकुचित है जो विश्व को अपनी भुजाओं में समेटने की शक्ति नहीं रखता। यह भाषण उस हिन्दुत्व का विजयगान करता है जो विज्ञान की आधुनिकतम हो नहीं भविष्यत उपलब्धियों को आत्मसात करने की क्षमता रखता हो। जो पूरे विश्व के कल्याण के लिए अपने को

१ साप्ताहिक कर्मयोगी में जून १९०९ में प्रकाशित उत्तरपाड़ा स्पीच प्रथम संस्करण १९१९, श्री अरविन्द आश्रम। लेखक द्वारा प्रस्तुत अनुवाद। आश्रम ने भी इसका अनुवाद छापा है।

समर्पित कर दे, ऐसा हिन्दुत्व जो सक्षेप में समता, विश्वबन्धुत्व और भेदभाव विहीन मानवता तथा वैश्विक चेतना के बीच पूर्ण सक्षम सेतु का काय कर सके। यदि हिन्दू धर्म अपनी समूची अन्तर्निहित विशेषताओं के द्वारा वैश्विक धर्म नहीं बनता, कुछ व्यक्तियों तक सीमित एक साम्प्रदायिक धर्म मात्र रह जाता है, जो दिव्य शक्ति को अभीष्ट नहीं है तो श्री अरविन्द यह मानते हैं कि यह सीमित समय तक सीमित उद्देश्यों के लिए ही जीवित रह सकता है। यानी ऐसे सकुचित धर्म के लिए जीवित रहने की सभावना नहीं के बराबर है। इसलिए श्री अरविन्द का उत्तरपाडा अभिभाषण एक ओर हिन्दूधर्म के भीतर आ गये कूडा करकट को साफ करने की प्रेरणा देता है जो इसकी शारीरिक बनावट में सदियों की परतन्त्रता के कारण घुस गया है, तो दूसरी ओर वह इस धर्म को वैश्विक चेतना से समन्वित होकर विश्वजनीन मानवता के लिए अपनी ईश्वर प्रदत्त भूमिका निभाने की भी प्रेरणा देता है, इसी दृष्टि से उत्तरपाडा का अभिभाषण आध्यात्मिक राष्ट्रीयता का बहुमूल्य दस्तावेज बन गया।

उत्तरपाडा की उस सभा में वकील अमरेन्द्र "उन्हें राशिभूत मालायें और हार अर्पित किये गये थे, अधिकाश चमेली की मालायें थी। उन्होंने स्वाभावानुकूल वे मालाएँ भाषण की समाप्ति पर वसी ही पडी छोड दी। एक बहुत ही शानदार और लम्बी माला, जिसे जमीदार के पुत्र मिछरी बाबू ने पहनायी थी, किसी ने चुरा ली। चुराना कहना ठीक न होगा, किसी ने उसे अवसर के प्रतीक के रूप में ले लिया किसे अरविन्द को अर्पित माला लने का लोभ न होगा। मिछरी बाबू बहुत क्रुद्ध हो गये। मैंने उन्हें समझाया कि ऐसे मौके पर ऐसा लोभ स्वाभाविक है।"

दूसरे दिन मिछरी बाबू माला पा गये। पर अब वे शान्त हो चुके थे। माला ले जाने वाले से उन्होंने कहा—"जाओ और ईश्वर से क्षमा मागो। मैं तो कब का क्षमा कर चुका हूँ।

'कल यदि यह पकड में आ गया होता तो बुरी तरह पिटता, पर इसे क्या मालूम कि इस बीच लोहा सोने में बदल चुका है।"

"तुम ठीक कहते हो। मिछरी बाबू बाले—श्री अरविन्द के भाषण ने तुरन्त असर डाला।

श्री अरविन्द के सम्पर्क में आने के बाद अमर को अनेक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त हुई जिन्हें वह हितवादी के सम्पादक पचकौडी बनर्जी को सुना दिया करता। पचकौडी महाशय शास्त्र का वचन उद्धृत कर समझाते कि आध्यात्मिक अनुभूतियाँ किसी को सुनानी नहीं चाहिए। "मेरे गुरु शास्त्र निर्माता हैं, वे उसके पिछलग्गू नहीं हैं। अमर कहता।[1]

कर्मयोगी का धर्म

श्याम बाजार के श्यामपुकुर लेन के मकान न० ४ में कर्मयोगी और धर्म के कार्या-

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १२१२४।

लय थे। य दोनो पत्र परिवर्तित श्री अरविंद की देन ह। जसा कि उनक सहयोगी श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती ने लिखा ह—"स्पष्ट लगता था कि उनके लिखने क ढग में एक परिवतन आ चुका ह। पहले जब वे वन्देमातरम के लिए लिखते थ, उनका लेखन मुख्यत राजनीतिक किस्म का होता था। किन्तु कमयोगी और धम क निबन्धो में किसी को भी एक गभीरतर आन्तरिक उद्रेक दिखाई देगा। ऐसा लगता था कि अब व भारत की अन्तरात्मा को ऊपर लान की तयारी कर रह थे। अग्रेजियत से प्रभावित माहौल में राजनीतिक पत्रकारिता के चिरपरिचित उथले और सतही रूप को चीरकर वे भारत की शाश्वत आत्मा को बाहर लाने के लिए प्रयत्नशील थ। अब राजनीति उनक लिए एक वसीला थी। किसी को भी इन रचनाओ म एसे तत्त्व मिल जायेंगे जो उनक भविष्यत पथ की ओर हल्का सा सकेत देते जसे दिखते ह।

'कमयोगी और धम' उत्तरपाडा भाषण में अभिव्यक्त ईश्वरीय आदेशों को पूरा करने क माध्यम थे। ये दोनो ही पत्र एक अग्रेजी म दूसरा बाग्ला में, पर जसे य एक दूसरे के पूरक हों और दोनो मिलकर भविष्यत भारत के कमयोगियों क लिए धम की दीक्षा देने का काम कर रहे हों। इन पत्रो का स्वर राजनीति से रहित नही था, हा भी कसे सकता था, जब कि उन्हें पूण रूप से आश्वस्त किया जा चुका था कि इन समूचे राजनीतिक आन्दोलनो के पीछे वासुदेव ही क्रियारत ह तो भी इतना निसकोच कहा जा सकता ह कि इनका तेवर उग्र राजनीतिज्ञ का न होकर एक गभीर अन्तदृष्टि वाले कमयोगी का ही प्रतीत होता ह। कमयोगी की मुख्य देन थी उग्रवादी दल की राजनीतिक धारणाओ और कायक्रमो को अधिक से अधिक मजबूत और दृढ आधार प्रदान करना। राष्ट्रीयता, पूण स्वराज्य स्वदेशी राष्ट्रीय शिक्षा और बहिष्कार जसे कायक्रमों पर कमयोगी म भी लगातार व वसे ही लिखत रहे पर कमयोगी उन्ही के शब्दो में "एक साप्ताहिक पत्रिका न होकर राष्ट्रीय चिन्तन का पत्र होगा। हम दनंदिन घटनाओ की उतनी ही नोटिस लेंगे जितनी व राष्ट्रीय जीवन के तथा राष्ट्रीय आत्मा के विकास म सहायक या बाधक होंगी। राजनीतिक और सामाजिक समस्याओ पर विचार करते वक्त हम हमेशा उनके आत्मिक स्रोत और आन्तरिक कारणों की जांच पडताल करते हुए उनके आकार प्रकार को समझने और समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। उसी प्रकार हम राष्ट्र को शक्ति प्रदान करनेवाले सभी तत्त्वो का, चाहे वे प्राचीन हों या नवीन समझ में आने योग्य विश्लेषण करेंगे ताकि वे हमारे जीवन का अग बन सकें। ये तत्त्व निश्चय ही गतिमान होंगे जड नही, रचनात्मक होंग, रूढग्रस्त नही क्योंकि यदि सृजन नही ह तो वहा विखण्डन होगा ही, यदि प्रगति और विजय नही ह तो अवगति और पराजय होगी ही।'[२]

१ रेमिनिसेंसेन गुप्त और अमृता पृ १३२।

२ १९ जून १९०९ के कमयोगी के प्रवेशाक का 'हम लोग' शीषक सम्पादकीय।

कर्मयोगी कुल आठ महीने से अधिक नहीं चला, किन्तु इस छोटी सी अवधि में ही उन्होंने पत्रकारिता को अभूतपूर्व दीप्ति से मंडित कर दिया। उपनिषदों के अनुवादों, कालिदास के ऋतुसंहार तथा बंकिम के आनन्द मठ के कुछ अंशों के अंग्रेजी अनुवाद 'राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति' पर गंभीर चिन्तन, ब्रेन आफ इंडिया शीर्षक विचारोत्तेजक निबंध कला का राष्ट्रीय मूल्य तथा कर्मयोगी के आदर्श शीर्षक धारावाहिक निबंधमाला ने कर्मयोगी को अविस्मरणीय साप्ताहिक बना दिया।

उसी प्रकार 'धर्म' में उन्होंने बांग्ला भाषा में अनेक निबंध लिखे। इन बीस निबंधों में धर्म और राष्ट्रीयता के विभिन्न पक्षों पर बहुत ही प्रेरणादायी और गंभीर चिन्तन प्रस्तुत किया गया जो श्री अरविंदाश्रम से "धर्म और जातीयता" नाम से प्रकाशित हो चुका है। यहीं से श्री अरविन्द का सक्रिय राजनीतिक जीवन समाप्त होता है।

वे निश्चित रूप से केवल पाँच वर्षों तक सक्रिय राजनीति में रहे। इन पाँच वर्षों में उन्होंने जो कुछ भी कार्य किये, उसका अनेक लोगों ने अनेक दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया है। प्रायः लोगों ने यह स्वीकार किया है कि वे उन सभी राष्ट्रीय कार्यक्रमों के पुरस्कर्ता और चिन्तक थे जो बाद में कांग्रेस ने स्वीकार किये और जिनके द्वारा देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। वे भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे। डॉ० एम० ए० बुश ने "द डवलपमेंट आफ कान्टम्परेरी इण्डियन थाट" में उनके 'राष्ट्रीयता' शीर्षक निबंध को गौरव के साथ संकलित किया है।

इस विषय पर विस्तृत शोध करने वालों में कर्ण सिंह का कार्य सबसे अधिक प्रामाणिक और स्वाध्याय पूर्ण है। डॉ० कर्ण सिंह ने श्री अरविन्द के राजनीतिक चिन्तन की विशेषताएँ बताते हुए लिखा है— 'उनकी आध्यात्मिक राष्ट्रीयता की धारणा ने भारतीय स्वाधीनता संघर्ष को विशेष प्रकार की दीक्षा दी। उन्होंने पूर्ण स्वराज्य के आदर्श को प्रस्तुत करके राष्ट्रीय आन्दोलन को अपूर्व शक्ति, प्रेरणा और उग्रतावादी स्वभाव प्रदान किया। उन्होंने अनाक्रामक आन्दोलन और बहिष्कार के साथ साथ ही आवश्यकता पड़ने पर सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग खुला रखा। उनको इस विश्वास ने कि चूँकि भारत को स्वाधीन होकर विश्व के लिये महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है तथा मानव एकता के बारे में उनकी धारणाओं ने भारतीय राष्ट्रवाद को राष्ट्रीय सीमाओं का *अतिक्रान्त करने की क्षमता प्रदान की*'।[1] डॉ० कर्ण सिंह यह स्वीकार करते हैं कि श्री अरविंद के व्यक्तित्व में राजनीतिक चिन्तक और कार्यक्रमों को व्यवहार में उतारने वाले रणनीति विशेषज्ञ की क्षमताएं अपूर्व रूप में सम्मिलित थीं।[2] औरों की बात जाने दीजिये। एकदम नास्तिक कहे जाने वाले रूसी इतिहासकारों की ओर आइये। सोवियत यूनियन

१ प्राफेट आफ इण्डियन नेशनलिज्म, पृ० १६९।

२ वही, पृ० १४२।

के एकेडमी आफ साइंसेज के 'इंस्टीट्यूट आफ पीपुल्स आफ एशिया' की ओर से आई० एम० रेज़नर और एन० एम० गोल्डबर्ग द्वारा सम्पादित ग्रंथ "तिलक एण्ड स्ट्रगल फार इण्डियन फ्रीडम" बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस ग्रंथ में अनेक स्थानों पर श्री अरविन्द के कार्यों को याद किया गया है। वैसे तो इस ग्रन्थ में चाहे तिलक हों या अरविन्द दोनों ही बोर्जुवा लोकतंत्रीय नेता ही माने गये हैं जिन्हें भारत के आर्थिक मसलों के प्रति आवश्यक रूप से जागरूक नहीं कहा जा सकता पर ई० एन कामरोव ने प्रो० हरिदास मुखर्जी और उमा की पुस्तक थी अरविन्दोज़ पोलिटिकल थाट्स' से यह अंश उद्धृत किया है—"हम उग्रवादी प्राचीन से लड़ना नहीं चाहते बल्कि उसमें परिवर्तन चाहते हैं। व्यक्ति का परिवर्तन, वर्गगत तानाशाहों की जगह वर्गगत शासन, स्वयं का शासन या स्वराज्य, उत्तराधिकार से प्राप्त स्वतोद्भूत लोकतंत्र विरोधी जातिवाद की जगह उदार लोकतंत्रीय वितरण जो समाजवाद की आवश्यक माँग है।' मुखर्जी की पुस्तक में वन्देमातरम से लिया गया यह अंश पृ० १२८ पर दिया गया है। इसे कामारोव बोर्जुवा लोकतान्त्रिक जागरण कहते हैं।[1] समाज वाद पर आज नाना झगड़े हैं। शुद्ध क्या है संशोधन वादी क्या है इसके प्रपंच में जाना बेकार है पर इतना सत्य है कि भारत में समाजवाद की चर्चा भी अरविन्द ने ही सर्वप्रथम की।

कर्मयोगी और धर्म कार्यालय में अर्थात ४ श्यामपुकुर लेन के मकान में श्री अरविन्द प्रतिदिन शाम को पहुँचते थे। सुरेशचक्रवर्ती ने लिखा है हम लोग, जो उस मकान में रहते थे, चाय नहीं पीते थे। किन्तु उनके आने की प्रतीक्षा में चाय के सामान वगैरह तैयार रखते। जब वे आते एक प्याला चाय तथा उसी के साथ 'ग्रे स्ट्रीट' के नुक्कड़ की दुकान से लाई गई लूची, आलूदम और थोड़ा हल्वा उन्हें दिया जाता। अखबारों से सबंधित अपने कार्यों में व्यस्त हो जाते। फिर वहाँ से उठकर हममें बात चीत करते और स्वतः चालित लेखन का दैनादिन कार्यक्रम चलता रहता। उस वक्त वे तमिळ पढ़ रहे थे। एक दक्षिण भारतीय सज्जन श्यामपुकुर निवास पर आया करते और उन्हें तमिळ पढ़ाते। मुझे याद है एक दिन वे अपना पाठ खत्म करके चौदह वर्षीय लड़के की तरह खिलखिलाते हुए हम लोगों से बोले—"क्या तुम लोग जानते हो कि पिरेन्टर नाट टटकोप्टा क्या चीज है?' हम अनकी तरह चुप रहे। वे बोले—"ये हैं वीरेन्द्रनाथ दत्तगुप्त तमिळ में। चूँकि तमिल में संस्कृत वर्णमाला के पाँच वर्गों में केवल प्रथम और अन्तिम वर्ण ही होते हैं और चूँकि वह संस्कृत के तीन स्वरों को भी स्वीकार नहीं करती और न तो संयुक्त व्यंजनों को ही इसलिये वीरेन्द्रनाथ दत्तगुप्त, पिरेन्टर नाट टटकोप्टा बन जाते हैं।[2]

१ तिलक एण्ड स्ट्रगल फार इण्डियन फ्रीडम अंग्रेजी संस्करण, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली १९६६ पृ० ३१।

२ रेमिनिसेन्सेज़ गुप्त-अमृता पृ० १३०।

तमिळ की पढाई क्या ? नलिनी बाबू ने लिखा है कि "उन्होने एक दिन अचानक, व्यवस्था कर दी कि एक पंडित आया करेंगे और वे हम लोगों को प्रतिदिन एक घटा हिंदी पढाया करेंगे। हिंदी ने अपना साम्राज्यवादी रूप ले लिया है, सभवत इसे वे पहले से ही जानते थे, इसलिये उन्होने बहुत पहले से ही हमें इसके लिये तयार करना शुरू कर दिया था[1]।'

नलिनी बाबू जिस हिन्दी का सामाजी स्वभाव कहते हैं, उसे ही श्री अरविन्द ने देश की एकता का बरकरार रखने वाला एक सर्वसम्मत चुनाव कहा था। उन्होने लिखा था—"काग्रेस म हम नाना प्रकार के स्तव स्तोत्रों के द्वारा जिस भारतमाता की पूजा करते थे, वह कल्पित थी, अग्रेजो की सहचरी और प्रिय दासी थी। म्लेच्छ-भूषा सज्जित दानवी माया थी, वह हमारी मा नही थी, उसके पीछे निविड स्पष्ट आलोक में छिपी हुई हमारी सच्ची मा हमारे प्राणमन को आकर्षित करती थी। जिस दिन हम अखड रूप से मातमूर्ति का दर्शन करेंगे, उसके रूप लावण्य से मुग्ध होकर उसके काय में जीवन उत्सग करने के लिये उन्मत्त हो जायेंगे, उसी दिन यह बाधा तिरोहित हो जायेगी, भारत की एकता, स्वाधीनता और उन्नति सहज साध्य हो जायगी। उस समय भाषाभेद के कारण कोई बाधा उपस्थित नही होगी सब लोग अपनी अपनी मातभाषा की रक्षा करते हुए साधारण भाषा के रूप में हिंदी भाषा को ग्रहण करेंगे और यह बाधा दूर हो जायेगी[2]।'

श्री अरविन्द ने हिन्दी के भविष्यत साम्राजी स्वभाव को देखकर नही देश की एकता, स्वाधीनता और उन्नति के लिये हिन्दी को सवमान्य भाषा के रूप में स्वीकार करने का आदेश दिया था।

तमिळ की पढाई निश्चित ही निकट भविष्य में घटित होने वाले उनके पाडिचेरी प्रवास के पूर्वाभास का परिणाम थी।

पाचवे क्षितिज की ओर—काले पजे का तीसरा आघात

फरवरी, १९१० में श्री अरविन्द को पता चला कि अंग्रेजी सरकार उनकी गिरफ्तारी के लिये वारट जारी कर चुकी है। सुरेन्द्र चक्रवर्ती ने लिखा "स्वत चालित लेखन का काय चल रहा था कि एक नवयुवक जो अभी तीस की आयु के नीचे ही था, पर साफ सुथरा रहनेवाला, श्री अरविन्द के कमरे में घुसा। ये थे रामचन्द्र मजुमदार। ज्यो ही ये कमरे में आये उन्होने श्री अरविन्द से कहा कि उन लोगों ने गिरफ्तारी के लिये एक नया वारट जारी किया है। यह सूचना एक प्रामाणिक स्रोत से प्राप्त हुई थी। एक ऊँचे पुलिस अफसर ने सूचना भिजवाई थी। यह कोई आकस्मिक घटना नही

१ रेमनिसेंसेज गुप्त गुप्त अमृता पृ० ३६।
२ धम और जातीयता पृ० ९८।

थी। क्योंकि काफी दिनों से अफवाह चल रही थी कि अंग्रेजी सरकार तब तक चैन से नहीं रहेगी, जब तक उन्हें फिर वह जेल में नहीं डाल लेती। तो भी पूरे कमरे का वातावरण इस सूचना के मिलते ही बिल्कुल बदल गया। वह जगह जो अभी अभी तक खिलखिलाहटों से गूंज रही थी चुप्पी में डूब गयी। हम सभी जिज्ञासा भरे हृदय से उनकी ओर देखते रहे। व कुछ क्षण सोचते रहे फिर बोले, "मैं चन्दर नगर जाऊंगा।"

"अभी?" राम बाबू ने पूछा।

"अभी इसी क्षण' श्री अरविन्द ने कहा।

श्री अरविन्द उठे और रामबाबू के साथ कमरे से बाहर निकल गये। उनसे थोड़ी दूरी पर वीरेन चल रहे थे और उनसे भी पीछे मैं इन तीनों का अनुसरण कर रहा था।

जब तक श्री अरविन्द इस मकान में आते रहे हमेशा सी० आई० डी० इस पर नजर रखती थी। स्वत चालित लेखन वाली गोष्ठियाँ इनके कारण ऊपर सड़क से लगे कमरे से हटाकर दूसरे कमरे में होने लगी थी किन्तु उस विशिष्ट शाम को सी० आई० डी० का वहाँ पता भी न था।

सुरेन चक्रवर्ती इस घटना को ईश्वरीय विधान से जोड़ते हैं और उस सी० आई० डी० अफसर को इस ढील के लिए क्या कुछ भोगना पड़ा इसकी जिज्ञासा करते हैं। बहरहाल वे यह भी मानते हैं कि यदि वहां पुलिस होती भी तो भी कोई खास फरक नहीं पड़ता। रामबाबू इसी मुहल्ले के थे इसीलिए वे इसकी हर गली और नुक्कड़ से भलीभाँति परिचित थे। वे जानकर टेढ़े मेढ़े रास्ते से मुख्य मार्ग को छोड़कर भीतर की गलियों से चलते हुए नदीघाट पर पहुँचे। मैं शहर में नया नया आया था, इसलिए मैं स्पष्ट नहीं जानता कि यह कौन सा घाट था, शायद बाग बाजार घाट या कोई और। रामबाबू ने एक माझी को बुलाया— क्यों भाड़ पर जाओगे? रामबाबू के ये शब्द आज भी मेरी स्मृति में वैसे ही गूंजते हैं। उसके बाद उन्होंने माझी से धीमी भाषा में बातें कीं। श्री अरविन्द नाव पर बैठे। वीरेन और मैं भी। रामबाबू ने विदाई ली। नाव ज्यों ज्यों आगे बढ़ती गयी और बीच धारा में पहुँची, यह स्पष्ट हो गया यह शुक्ल पक्ष की रात है। लहरें चांद की रोशनी में नाचती चमकती चारों ओर अठखेलियाँ कर रही थीं। रविबाबू के शब्दों में—

आज शुक्ला एकादशी हेरो निद्राहारा शशी
ओई स्वप्न पारावार खेया, एकला चालाय बोसि
उनींदा चांद स्वप्न पारावार को पार करता अपनी तरी में बैठा चल पड़ा

सब कुछ अब कितना सुदूर प्रतीत होता है। पुलिस, घृणा हिंसा और संघर्ष भरा शहर, देश की स्वतन्त्रता के वे प्रश्न तक जो हमेशा दिमागों में भर रहते थे। सभी बन्धन शिथिल और व्यर्थ हो गए। हमें लगा मानो मनुष्य निर्मित सभ्यता के बसे हुए

वन्धनो से अलग प्रकृति की शान्त विस्तीर्णता म हमारा पुनर्जन्म हुआ है।[1]

श्री अरविन्द की चन्दर नगर यात्रा को लेकर नाना प्रकार के वाद विवाद चलते रहे हैं। इन वाद विवादा का उद्देश्य यदि सत्य की खोज होता तो इनकी तह्वो भी वर्दाश्त करने की चीज होती, पर ये विवाद हमेशा ही न्यस्त अभिप्राय से उन्हें अनाव श्यक रूप से इस या उस मठ से जोडने के लिए होते रहे।

श्री अरविन्द ने स्वय भी इन घटनाओ का ब्यौरा दिया है। उनके जीवनीकार पुराणी ने काफी विस्तार से इसकी चर्चा की ह।

रामबाबू स गिरफ्तारी की सूचना मिलने वे वहुत पहले बहन निवेदिता ने सूचना दी थी कि सरकार ने श्री अरविन्द को देशनिकाला देने का फैसला कर लिया ह। तव निवेदिता ने उनस आग्रह किया था कि वे कही बाहर चले जाये और वही से देश के लिए काम करें। तब श्री अरविन्द ने निवेदिता से कहा कि मेरी समझ से अभी उसकी जरूरत नही ह। मैं एक ऐसा पत्र लिखूँगा जिससे उनकी योजना स्थगित हो जायेगी। फलत उन्होने ३१ जुलाइ, १९०९ का कर्मयोगी म देशवासियो के नाम यह खुला पत्र लिखा

सभी महान आन्दोलनो को अपने ईश्वर प्रदत्त नेता की प्रतीक्षा होती ह, क्योकि वही ईश्वरीय शक्ति की अभीप्सित प्रणाली बन सकता ह और जब वह सामने आ जाता ह तभी उनकी विजयपूर्ण ससिद्धि भी होती ह, जिन लोगो ने अब तक नेतृत्व किया वे दढ, महान प्रतिभा सम्पन्न नेतक्षमता से युक्त व्यक्ति थे, फिर वे इस विश्वव्यापी आन्दोलन की मूलधारा के लिए पर्याप्त नही थे इसोलिए राष्ट्रीय दल को (काग्रेस) को जिसके हाथो भविष्य का धरोहर सौपी गई ह निश्चय ही उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करनी होगी जो आनेवाला ह। यह पत्र हम पहले भी उदधृत कर चुके हैं और बता चुके हैं कि इसे लोग गाधीजी के प्रति उनकी भविष्यवाणी मानते हैं।

जो हो इस पत्र ने अपना अभीष्ट पूरा किया। देश निकाले की योजना रद्द हो गई। निवेदिता ने स्वय अरविन्द से कहा कि वह पत्र अपने उद्देश्य में सफल हुआ है।[2]

चन्दर नगर की यात्रा के पीछे निवेदिता की प्रेरणा को ही महत्त्व नही दिया गया बल्कि यह भी कहा गया कि चन्दर नगर जाते हुए श्री अरविन्द ने बाग बाजार मठ म श्री शारदा मा का दर्शन किया। इन आरोपो का उन्होने अपनी सन्ध्यावार्ता में बहुत विस्तत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया ह।

"गोनेन महाराज ने मुझे सभावित गिरफ्तारी और कर्मयोगी कार्यालय पर पुलिस हमले की सूचना नही दी, बल्कि कर्मयोगी में काम करने वाले एक नवयुवक (रामबाबू)

१ स्मृतिकथा रेमिनिसेंसेन, गुप्ता अमृता पृ० १३५ १३८।

२ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में पृ० ५१ ५२।

से यह सूचना मिली। उनके पिता को किसी उच्चपुलिस अधिकारी ने चेतावनी दी थी कि जल्दी ही कर्मयोगी पर पुलिस का धावा होने वाला है और अरविन्द गिरफ्तार किए जायेंगे। इस मामले में बहुत सी दन्तकथाएँ बना ली गई हैं। इसमें अब यह भी जोड़ा गया है कि मैं हाई कोर्ट में हुई सी० आई० डी० अफसर शम्सुल आलम की हत्या में भागीदार होने के अपराध में पकड़ा जाने को हूँ और वहाँ निवेदिता ने मुझे बुलाया और हम लोगों ने बातचीत की जिसके कारण मैंने पलायन किया। यह सब निराधार है। मैंने कभी भी इस कारण से गिरफ्तारी की बात नहीं सुनी। और न तो इस पर हमारी निवेदिता से कोई बातचीत ही हुई। मुकदमा पुनः राजद्रोह के लिए ही चलाया जाने को था। निवेदिता तो जाने के बारे में मेरे चन्दर नगर जाने के पहले तक कुछ नहीं जानती थी। मैं चन्दर नगर पहुँचा। निवेदिता या गणेन मुझे घाट पर पहुँचाने नहीं आये। क्योंकि उन्हें सूचित करने का समय भी नहीं था। क्योंकि सूचना मिलते ही उसी क्षण मुझे ऊपर से आदेश मिला—चन्दर नगर जाओ—और मैं चल पड़ा। मुश्किल से दस मिनटों में मैं घाट पहुँचा और वहाँ से एक नाव पर दो नवयुवकों के साथ चन्दरनगर चल पड़ा। यह एक सामान्य नाव थी जैसी गंगा में चलती हैं। फ्रांसीसी नौका की भव्यता के मनोहारी वर्णन और नाव चलने पर बिजली की रोशनी का धीरे धीरे कालिमा में डूबना आदि शुद्ध कल्पना मात्र है। मैंने एक आदमी को कार्यालय से निवेदिता के पास भेजा था कि मेरी अनुपस्थिति में वे कर्मयोगी का सम्पादन भार सँभाल लें। उन्होंने स्वीकार कर लिया और सम्पादन सँभालने से लेकर पत्र के बन्द होने तक वही उसे चलाती रहीं। मैं अपनी साधना में लगा था इसलिए मैंने कर्मयोगी में फिर कुछ भी नहीं लिखा। कोई हस्ताक्षरित चीज लिखी ही नहीं। कर्मयोगी में मेरा अंतिम लेखन वही पत्र था, जिसने तत्कालीन संभावित मुकदमे को स्थगित कराया। मैं चन्दरनगर में जहाँ रहता था उस स्थान के चुनाव में निवेदिता का कोई हाथ नहीं था। मैं बिना कोई सूचना दिये चन्दरनगर पहुँचा और मोतीलाल राय के के यहाँ रुका। उन्होंने वहाँ ठहरने के लिए गोपनीय प्रबन्ध किये। मेरे और कतिपय मित्रों के अलावा कोई नहीं जानता था कि मैं कहाँ हूँ।

जहाँ तक श्री माँ शारदामणि के दर्शन करने का प्रश्न है, उस विषय में श्री अरविन्द ने लिखा है—'चन्दर नगर जाते समय मैं रास्ते में बाग बाजार मठ नहीं गया न तो श्री शारदा देवी को मैंने प्रणाम ही किया। सच तो यह है कि अपने जीवन में मैं उनसे कभी नहीं मिला, न कभी उनके दर्शन ही किये। बाग बाजार घाट से नहीं बल्कि गंगाघाट से मैं नौका में बैठकर सीधे चन्दरनगर गया।[2]

१ सितम्बर १३ १९४६ की सन्ध्यावार्ता।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाताजी के विषय में पृ० ५१।

चन्दरनगर में

नौका चन्दरनगर के तट पर लगी। बीरेन और सुरेश उतरे। उन्होंने चारुचन्द्र राय से पूछा कि क्या श्री अरविन्द के ठहरने का इन्तजाम कर सकते हैं। चारुचन्द्र राय भयभीत थे। कुछ बोल न सके। जब वे दोनों लौटकर नाव की ओर जाने को थे कि शिशिर घोष मिले जो उन्हें मोतीलाल राय के यहाँ ले गये। मोतीलाल श्री अरविन्द का आना सुनकर तुरन्त नौका की ओर चल पड़े। नाव को उन्होंने अपने निवास के निकट किनारे लगवाया। श्री अरविन्द मोतीलाल के घर गये। उनके कहने पर मोतीलाल ने उनके गुप्त वास के लिए सारा प्रबन्ध कर दिया। कलकत्ते में किसी तरह की शंका पैदा न हो इसलिए बीरेन और सुरेन कलकत्ते लौट आये।

पहले दिन तो मोतीलाल राय ने अपने बैठकखाने में ही उनके रहने का प्रबन्ध किया। वहाँ से उन्हें अपने गोदाम में ले गये, जहाँ अपनी फर्नीचर की दूकान के लिए कुर्सियाँ वगैरह रखा करते थे। इसी मकान के ऊपरी मंजिल में अरविन्द रुके। वे उनके भोजन के लिये कुछ सामान लाने गये। लौटकर देखा कि श्री अरविन्द ध्यानस्थ हैं। उन्होंने वे चीजें मशीनी ढंग से ले लीं। शाम को वे अपने स्नानागार में ले गए जहाँ उन्होंने स्नान किया। मोतीलाल हमेशा उनके लिए बाजार से खरीद कर खाना ले जाते, ताकि किसी को शंका न हो।

रात्रि को मोतीलाल उन्हें एक मित्र के यहाँ सुलाने के लिए ले गए। दूसरा दिन ऐसे ही बीता। शाम को जब मोतीलाल मिले श्री अरविन्द ने उनसे पृथक् प्रश्न करने को कहा। उस रात मोतीलाल उन्हें अपने घर पर ही ले गये। तीसरे दिन भी वे मोतीलाल के ही साथ रहे। मोतीलाल निरन्तर योग विषयक जिज्ञासाएँ करते रहे उन्होंने कई बातें स्पष्ट की और मोतीलाल को सलाह दी कि वे अपने को पूर्णत ईश्वर के सामने समर्पित कर दें। तीसरे दिन रात्रि में मोतीलाल उन्हें चन्दरनगर के उत्तरी गुड़लपाड़ा अथवा कुली लाइन्स में ले गये। वहीं बलाईचन्द्र के मकान में श्री अरविन्द रहे। चन्दरनगर प्रवास कुल डेढ़ महीने से अधिक का नहीं था।

यहीं उन्होंने मोतीलाल को साधना प्रदान की। और इस तरह चन्दरनगर के प्रसिद्ध 'प्रवर्तक संघ' का बीज वपन हुआ। मोतीलाल ने श्री अरविन्द के बारे में अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त की—"एक पूर्णत समर्पित व्यक्ति थे। जब वे बोलते तो लगता कि उनके भीतर से कोई और बोल रहा है। मैंने उनके सामने भोजन की थाली रखी, जिसे वे सिर्फ देखते रहे। फिर थोड़ा खाया, वह भी जैसे खाने को है तो खाया जा रहा है। वे हमेशा किसी भाव में खोये रहते। खाते वक्त भी उन्हें ऐसा ही पाया। वे खुली आँखों ध्यान करते थे और आध्यात्मिक प्रतीतियों का साक्षात्कार करते थे।"[1]

१ लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो पृ० १३१-१३३।

श्री अरविन्द से पाडिचेरी में जब 'प्रवर्तक संघ' के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने अयमनस्कता व्यक्त की और कहा—

"उस वक्त मेरे दिमाग में कुछ निर्माण करने या बनाने का विचार चल रहा था। मैं जानता था कि उन धारणाओं के पीछे कुछ ऐसा है जो सत्य है, फिर भी मुझे विश्वास नहीं था कि क्रियान्वित होने पर वह सफल ही होगा। जो भी हो मैंने व विचार मोतीलाल को बताए ताकि इसका प्रयोग करके देखा जाय। जैसा तुम लोग जानते हो मोतीलाल उस कार्यक्रम पर पूरी प्राणिक शक्ति से टूट पड़े और वह भी अपने अद्भुत तरीके से। परिणामतः प्राणिक शक्तियों ने कार्य और कार्यकर्ताओं पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। इन्हीं कारणों से मैंने एस (समाज संगठन जैसे) कार्यों की ओर दौड़ना बन्द कर दिया। यह योग कोई संकल्प पूरा करने की चीज नहीं है। यह अनुभव के विकास से सम्भव होता है। मैंने बाद में कुछ शक्ति का प्रयोग किया कि उसमें से जो किसी काम लायक हों वे यहाँ खींचे जा सकें। अब तो मैं सब भूल गया हूँ। मैंने चन्दरनगर को अपने वातावरण से निकाल दिया है। वहाँ कुछ भी अतिमानसिक नहीं था'।[1] इन्हीं मोतीलाल के पूछने पर कभी श्री अरविन्द ने अपने योग को आध्यात्मिक साम्यवाद बताया था।[2] बाद में वे वादों की सीमा को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। श्री अरविन्द ने चन्दर नगर में रहते हुए ध्यानावस्था में कुछ शक्तियों का दर्शन किया जिनकी संख्या चार थी। वे उस समय उन देवियों को अलग अलग पहचान नहीं पाये। वेदाध्ययन के दौर उन्हें बोध हुआ कि वे शक्तियाँ सुप्रसिद्ध वैदिक देवता इडा (इला) सरस्वती मही और भारती हैं। ऋग्वेद तीन शक्तियों की ही चर्चा करता है

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः । (ऋक् १।१३।९।)

मेधातिथि की इस त्रयी के समानान्तर गृत्समद आङ्गिरस का यह ऋक् देखा जा सकता है—

सरस्वती साधयन्ती धियं न इला देवी भारती विश्वतूर्तिः
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य। [म० २]

अगस्त्य का 'भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे [ऋ० १।१८८।८] भी इस बात की पुष्टि करता है कि मही और भारती एक ही हैं, अथवा एक ही चेतना की देवियाँ हैं। सरस्वती सूर्यमंडल चेतना की अग्नि है, मही और भारती अन्तरिक्ष की अग्नियाँ हैं तथा इळा या इडा भौमाग्नि है। देवरात ने भारती को "अन्तरिक्ष

१ रेमिनिसेंसेज एंड एनक्डोट्स पृ० २७-२८।
२ इवनिंग टाक्स द्वितीय भाग पृ० १०३।

सदने सा भारत वैनुनी" कहा है।[1] ये तीनों क्रमशः मानसिक चेतना के तीनों स्तरों की देवियां हैं।

इडा, मही और सरस्वती को क्रमशः भू, भुव, स्व की अधिष्ठात्री माना जाता है।

चन्दरनगर में रहते हुए श्री अरविन्द को अनेक गुमनाम पत्र उनके कलकत्ते के पते से भेजे हुए मिले। जिनमें उन्हें पलायन न करके बाहर आने को कहा गया था। श्री अरविन्द ने लिखा कि "मैं कहीं भागा नहीं हूँ। यदि मेरे नाम वारंट हो तो तुरन्त आने को तैयार हूँ।" श्री अरविन्द जानते थे कि ये पत्र पुलिस एजेंटों के हैं और इसकी सच्चाई की जाँच हो जायेगी यदि सचमुच का वारंट इसकी प्रतिक्रिया में निकल आए और वैसा ही हुआ भी। अरविन्द ने लिखा—"मैंने इसलिए राजनीति नहीं छोड़ी कि मैं निराश हो चुका था कि मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा। यह धारणा ही मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है। मैं यहां इसलिए आया कि मैं अपनी साधना में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं चाहता था। मुझे इस विषय में स्पष्ट आदेश मिला था अतः *मैंने राजनीति से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है,* क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैंने जो कार्य शुरू किया है और जो रास्ते बताये हैं, उन्हीं पर चलते हुए दूसरों द्वारा उसकी सफलता नियत है। मैंने जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया है वह बिना मेरी वैयक्तिक उपस्थिति के भी पूरा होकर रहेगा। मेरे राजनीति से हटने के पीछे न तो निराशा का भाव था न असफलता का।[2]

वे न तो भय से, न तो निराशा से और न तो असफलता से आक्रांत होकर गये। सारी स्थितियों का विश्लेषण करते हुए डा० कर्णसिंह का यह कथन सटीक है कि "जेल से छूटते ही कर्मयोगी का सम्पादन और उस पत्र की सामग्री पूरा प्रमाण है कि न तो उन्होंने विश्वास खोया था और न तो साहस। सच तो यह है कि यह सारी सामग्री एक अद्भुत आन्तरिक शक्ति से ओतप्रोत है जो उनके अन्तर में स्थिर गहरे आध्यात्मिक स्रोत से जुड़ी लगती है *इसलिए श्री अरविन्द के राजनीति से हटने को निराशा* और भय का परिणाम कहना निराधार है।[3]"

मार्च के अंत में मणि (सुरेश चक्रवर्ती) ने चन्दरनगर से एक पत्र प्राप्त किया। *इसमें कहा गया था कि पाडिचेरी जाओ और वहां एक मकान ठीक करो।* सुरेश २८ मार्च को गए। 'इण्डिया' नामक तमिळ साप्ताहिक पाडिचेरी से छपता था। इस क्रान्तिकारी राष्ट्रभक्त निकालते थे और उस दल के श्री निवासाचारी कलकत्ते के दल से

१ वेदार्थ कल्पना, देवराजकृत, हिन्दूविश्वविद्यालय वाराणसी, पृ० ४५-५२।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माताजी के विषय में, पृ० ४९।
३ प्रोफेट आफ इंडियन नेशनलिज्म, पृ० १६५।

सम्बन्धित थे। सुब्रह्मण्यम् भारती उसमें काम करते थे और कृष्णमाचारी उनके सहयोगी थे। मणि का एक परिचय पत्र लिया गया जो श्री श्रीनिवासाचारी के नाम था। कृष्णकुमार मित्तर के पुत्र सुकुमार मित्तर तथा मृणालिनी देवी के चचेरे भाई गोविन्द चन्द्र ने सुरेश को हावड़ा जंक्शन पर मद्रास की गाड़ी में द्वितीय श्रेणी के डब्बे में बैठाया। मणि एंग्लो इण्डियन पोशाक में कुल तीस रुपये लेकर पांडिचेरी के लिए चल पड़े।

जिस प्रकार श्री अरविन्द की चन्दर नगर यात्रा विवाद का विषय बनी उसी प्रकार उनकी पांडिचेरी यात्रा भी। श्री अम्बालाल पुराणी ने लिखा है कि उन सारे व्यक्तियों द्वारा जो श्री अरविन्द की पांडिचेरी-यात्रा की व्यवस्था करने वालों में थे, और तब जीवित थे एक विवरण तैयार किया गया उसपर नरेन्द्र कुमार गुहाराय ने हस्ताक्षर किया तथा सुकुमार मित्तर ने पूरी तस्दीक की। पुराणी द्वारा प्रस्तुत यह विवरण इस प्रकार है।

श्री अरविन्द ने मोतीलाल से अपनी यात्रा के लिए व्यवस्था करने को कहा। मोतीलाल ने उत्तर पाड़ा के अमर चटर्जी को पत्र लिखा। उस पत्र में लिखा गया था कि श्री अरविन्द २१ मार्च को चन्दर नगर से चलेंगे। अमर उन्हें कुमरटुली घाट से दूसरी नाव पर बैठाकर स्टीमर डुप्ले तक पहुँचायेंगे। दूसरी व्यवस्थाएं सुकुमार मित्तर करेंगे। सुकुमार कलकत्ता घाट पर उपस्थित मिलेंगे।

मोतीलाल ने दूसरा पत्र सुकुमार मित्तर को लिखा कि श्री अरविन्द पांडिचेरी जाना चाहते हैं और वे चाहते हैं कि सुकुमार मित्तर गोपनीय ढंग से सारी व्यवस्था करें। सुकुमार डुप्ले जहाज के लिए दो टिकट लेकर एक अरविन्द के लिए और दूसरा उस नवयुवक के लिए, जो उनके साथ जायेगा, कलकत्ता घाट पर मिलें। श्री अरविन्द के पत्र को पाते ही सुकुमार मित्तर ने नोआखाली के नगेन्द्रकुमार गुहाराय को बुलाया और उन्हें दो बक्से दिये कि इसे वे अपने मेस में जहाँ रहते थे, छिपा कर रखें। गुहाराय ने वे बक्से ४४।१ कालेज स्क्वायर में रखे। दूसरे दिन सुकुमार ने नगेन को रुपये दिये तथा दो नाम बताये जिनके लिए डुप्ले में द्वितीय श्रेणी में कोलम्बो के लिए दो टिकट खरीदने थे। ये दोनों नाम उन्होंने 'संजीवनी' पत्रिका के ग्राहकों की तालिका में से चुने थे। कोलम्बो को गन्तव्य स्थान के रूप में चुनना भी पुलिस से बचने के लिये किया गया।

२१ मार्च को सुकुमार ने नगेन गुहा और सुरेन्द्रकुमार चक्रवर्ती से किराये की नाव लेकर बागबाजार घाट से चन्दपाल घाट जाने को कहा। नाव में बक्से रखे जायेंगे। ये दोनों अपनी नाव लेकर मध्याह्न बाद जायेंगे और डुप्ले जहाज के केबिन में ये बक्से रख आयेंगे। फिर एक दूसरी नाव से दो यात्री आयेंगे, जो उस जहाज से यात्रा करने वाले हैं, उन्हें अपनी नाव में चढ़ाकर उन्हें जहाज में छोड़ना होगा। नगेन इन सब बातों से थोड़ा परेशान हो रहे थे इसलिए उन्होंने पूछा कि हम उन यात्रियों को पहचानेंगे कैसे? सुकुमार ने कहा कि इसकी बाबत मैं सुरेन्द्र को बता चुके हैं। नगेन को

अचानक कुछ सूझा और उन्होंने पूछा, "सुकुमार बाबू क्या ये यात्री श्री अरविन्द तो नहीं हैं तुम्हारे आरो दा? सुकुमार ने मुस्कराते हुए कहा–'तुमने बिल्कुल ठीक समझा। पर तुम्हें पता कसे चला? नगेन ने कहा—'मुझे भीतर से ऐसा लगा।' सुकुमार ने चेतावनी दी—'यह सही ह, इसीलिए बहुत सावधानी की जरूरत है।'

जसा कि पहल ही त था अमरेन्द्र चटर्जी' ने दुमरतल्ला घाट से अरविन्द को अपनी नाव में बठाया। मन्मथ विश्वास भी साथ थे। व लाग दुमरतल्ला घाट से कलकत्ता की तरफ चले। किन्तु उन्हें तब बडा आश्चय हुआ जब देखा कि उनको लेने के लिए न तो सुकुमार आये हैं और न तो विजय नाग ही। अमर ने एक तागा लिया और ये श्री अरविन्द को लेकर काल्ज स्कवेयर में सुकुमार के आवास की ओर चले। मकान से थोडी दूर तागा रोका गया। अमर ने जाकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि सुकुमार घर पर नही ह। सुकुमार घाट की ओर गये होंगे, इस सभावना से तागा पुन घाट की ओर लौट चला।

गडबडी इसलिए हुई कि नगेन गुहा ओर सुरेन्द्र की नदी पार करने में देर हुई और वे लोग उस नाव को भेंट नही पाये जिससे अरविन्द आने को थे। उन लोगो ने लौटकर सारी वाता सुकुमार को बतायी। सुकुमार ने तुरन्त केबिन से बक्से उतरवाये। नगेन को यह भी पता चला कि जहाज के यात्रियों की स्वास्थ्य परीक्षा करने के बाद डाक्टर अपने घर लौट गया ह। नगेन ने जहाज के कप्तन से डाक्टर के घर का पता पूछ लिया था। अब नगेन ने तांगा किया और सुकुमार के घर पहुँचे। सुकुमार उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हान नगन को फिर से घाट लौटाया और कहा कि वहाँ एक तागे में बठ श्री अरविन्द और अमर उनकी प्रतीक्षा कर रहे ह। उन्होन डाक्टरी परीक्षा की फीस के ३२) रु० भी नगेन को दिये। नगेन ने बक्से अपने तागे में लिये और वे चन्दपाल घाट आ गये। परिचित कुली ने देखते ही कहा कि आपके मुसाफिर सामने तागे में बठ हैं।' मैंन उन बाबुओं बता दिया ह कि आन बक्से से लकर गये हं। नगेन ने बक्से उस तागे पर रखवाये, खुद अमर के साथ बठे, दूसरी ओर अरविन्द और विजय नाग बैठे थे। कुली कोचवान के साथ बैठा और तागा डाक्टर के निवास चौरंगी की ओर चल पडा। कुली ने डाक्टर का पुकारा। नगन न टिकट दे दिय और यात्रियों के नाम और पते श्री अरविन्द को बता दिये। श्री अरविन्द ज्योतीन्द्रनाथ मित्तर और विजय नाग बंकिमचन्द्र बसाक के नाम से यात्रा करने वाले थे।

योरोपीय डाक्टर ने करीब आधा घन्टा इन्तजार कराया। कुली को लगा कि श्री अरविन्द घबडाये ह। उसने नगेन गुहा से ऐसा कहा भी। नगेन ने समझाया कि ऐसी बात नही ह। बाबू बीमार ह बस। कुली नही माना और वह अरविन्द के पास जाकर बोला—"बाबूजी, आप डरते काहे हो? डाक्टर भला आदमी ह, डरने की बात नही।" उसन अरविन्द का हाथ पकड कर हिलाया। कुली के इस व्यवहार पर सभी ताकते

रह गये और हस पडे।

डाक्टर के नौकर ने आकर दोनों आदमियो को जाच के लिए भीतर बुलाया। १५ मिनट के भीतर प्रमाण पत्र तयार हो गया। डाक्टर ने श्री अरविन्द की अंग्रेजी सुनकर कहा कि आप बहुत चुस्त दुरुस्त भाषा बोलते ह। अरविन्द ने कहा—"मैंने इग्लैंड में शिक्षा पाई ह।'

सभी उसी तागे से चन्दपाल घाट लौटे। श्री अरविन्द के चेहरे पर घबराहट का नामोनिशान नहीं था। अमर, नगेन वगरह थोडे घबडाये घबडाये लगते थे, पर अरविन्द जिनके लिये सभी परेशान थे, निश्चिन्त शान्त, मूर्तिवत बैठे थे मानो ध्यानमग्न हों।

११ बजे रात वे चन्दपाल घाट पहुँचे। सभी बक्सों के साथ सुरक्षित केबिन में पहुँच गये। अमर और नगेन हाथ जोडकर अरविन्द के आगे खडे हुए। अमर ने उत्तर पाडा क जमीदार राजन्द्रनाथ मुखर्जी द्वारा दिये हुए रुपये अरविन्द को सौंपे। दोनों ने विदाई ली। मोतीलाल राय सुरेश चक्रवर्ती जो पाडिचेरी जा चुके थे, अमर चटर्जी, मन्मनाथ विश्वास, सुरन्द्रकुमार चक्रवर्ती, सुकुमार मित्तर नगेंद्रकुमार गुहाराय, विजय कुमार नाग तथा उत्तर पाडा के जमीदार राजेंद्र नाथ मुखर्जी के अलावा इस यात्रा की किसी को जानकारी नही थी।[1]

पहली अप्रल, १९१० को ब्राह्ममुहूत में जहाज कलकत्त से खुल गया। श्री अरविन्द की इस यात्रा क बारे में आजो दसी कहने वाला की एक पूरी भीड ह। उनके अलग-अलग उद्देश्य हैं अलग अलग विचार और मन्तव्य ह। श्री अरविन्द के शिष्य पुराणी न बहुत परिश्रमपूर्वक इन तथ्यों की छानबीन करके सच्ची घटना और उसके प्रत्यक्षदर्शियो की साक्ष्य उपस्थित करके सारे विवाद के जगल को साफ कर दिया। पर विवाद कभी न मरनेवाली जगली विषबेलि ह। उससे बचना ही श्रेयस्कर ह।

इस विवाद न पहली अप्रल १९१० को कलकत्त क बन्दरगाह से छूटने वाले रूसी जहाज की केबिन में बठ उस आदमी की मन स्थितियों, उसे छोडकर लौटे व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं को जानन की न फुरसत दी और न किसी क अन्दर ऐसी उत्कंठा ही बची। जिस व्यक्ति न पिछले एक दशक स भारतीय राजनीति को अपने प्रचण्ड व्यक्तित्व से उद्भासित कर दिया उसके विदाह पर कहो भी शोक व्यक्त नहीं हुआ जिसने सारे बगाल में गुप्त समितियों का जाल बिछा दिया और बगाली युवा जगत् का नेता और राष्ट्र का पुरोधा दोना दी उसके महाभिनिष्क्रमण पर एक शब्द भी नहीं कहा गया। यह स्थिति शायद अचानक मुनि रविनाथ की य पंक्तियाँ बरबस याद आती है

१ उत्तरखण्ड श्री अरविन्दो पृ० १३१ १३९।

सकाल बेलाय घाटे ये दिन, भासिए दिलेम नौका खानि ।
कोथाय आमार जेते हबे से कथा कि किछुइ जानि ॥
दोसर छाड़ा एका देशे, एक यारे एक निमेषे ।
लओ रे बुके दुहात मेलि अन्तविहीन अजानारे ॥[1]

१ सवेरे घाट पर जिस दिन नाव छोड दी थी, मैं क्या जानता था कि मुझे कहाँ जाना है? उस एकान्त देश मे जहाँ दूसरा नहीं है हृदय पर हाथ रखकर मैं अनन्त अज्ञात से मिलने चल पड़ा।

मृत नगर में दिव्य जीवन का पीठ

जुहुरे विचितयन्तो अनिमिषं नृम्णं पान्ति आ दृढां पुरं विविशुः ॥

ऋग्वेद ५।१९।२

निरभिमानी योगी जिस पुरी में प्रवेश करता है वह निकृष्ट लोगों के आक्रमण से सुरक्षित दृढ़ नगर में बदल जाती है।

सुरेश चक्रवर्ती यानी मणि बाबू पांडिचेरी आ गये थे। उनके पास परिचय-पत्र भी था। वे श्रीनिवासाचारी से मिले भी। बिचारे ३१ मार्च को ही पहुँच गये थे, मगर किसी तरह वहां के क्रान्तिकारियों को समझा नहीं पा रहे थे कि सचमुच श्री अरविन्द ४ अप्रैल को पांडिचेरी आ रहे हैं। मणि को जासूस समझ कर वे लोग काफी आशंकित थे। मणि कोई मकान ठीक-ठाक करने की बात करते तो वे लोग यह कहकर टाल देते कि अरविन्द आ जायेंगे तो रहने का इन्तजाम हो जायेगा।

४ अप्रैल को प्रातः ४ बजे डुप्ले जहाज पांडिचेरी पहुंचा। बन्दरगाह पर, आनन्दित चित्त से सुब्रह्मण्यम भारती, श्रीनिवासाचारी खड़े थे। मणि भी थे, और निश्चय ही बिचारे की हालत खराब रही होगी। बहरहाल श्री अरविन्द और बिजयनाग उतरे। दो बक्से उतारे गये। मणि की जान में जान आयी। श्री अरविन्द ने चाय पी। और उन्हें ठहरने के लिए शंकर चेट्टी के मकान पर ले जाया गया। चेट्टी स्ट्रीट अब कम्यून मार्ग है और वह पुराना मकान ३९ नम्बर का मकान बन गया है। श्री अरविन्द इस मकान में अक्टूबर के अखीर तक रहे।

पांडिचेरी उन दिनों कई दृष्टियों से अपने तरह का खास शहर था। उसकी कई खसूसतें थीं। भारत में अंग्रेजों की तरह फ्रांसीसियों का कोई बहुत बड़ा साम्राज्य तो था नहीं इसलिए पांडिचेरी को बहुत समृद्ध नगर के रूप में बदलना उनका उद्देश्य नहीं था। अंग्रेजों की ही तरह एशिया और अफ्रीका में स्वाधीनता संग्रामों के चलने या शुरू होने से फ्रांसीसियों को भी औपनिवेशिक क्षेत्रों के प्रति विशेष आकर्षण नहीं रह गया था।

पांडिचेरी जिसे तमिळ में पुदुच्चेरी कहते हैं कभी विद्या का केन्द्र था। पांडिचेरी के कालेज दे फ्रांस के प्रोफेसर जूवा द्यूब्रेइ (Jouveau Dubreuie) ने जो प्राचीन इतिहास और पुरातात्विक शोध कार्य कर रहे थे प्राचीन दस्तावेजों और आलेखों के आधार पर एक बड़ी महत्त्वपूर्ण खोज की। उनके अनुसार किसी जमाने में पांडिचेरी वेदनगर के रूप में जाना जाता था।[1]

१ रेमिनिसेंसेज, गुप्त अमृता, पृ० ४७।

दक्षिण में वेद विद्या के सर्वप्रथम प्रचारक ऋषि अगस्त्य थे। ऋषि अगस्त्य अपनी दक्षिण यात्रा और निवासकाल में अनेक स्थानों पर रहे होंगे। इसका पता पश्चिमी समुद्रतट के गगोली बाजार (कुंदापुर गोवण बस मार्ग) के आगे स्थित अगस्त्याश्रम श्री रामेश्वरम् के अगस्त्यतीर्थ तथा मद्रास धनुषकोटि रेल्वे लाइन पर स्थित मायावरम के अगस्त्यतीर्थ से चलता है। किन्तु इस तट के स्थानों में निश्चय ही सबसे महत्त्वपूर्ण वेदाचलम् के नैऋत्य कोण में स्थित अगस्त्यतीर्थ है जो अगस्त्य का सही स्थान प्रतीत होता है। वेदाचलम मद्रास से ३५ मील दूर चेंगलपट्टू स्टेशन के पास स्थित है। इसी के निकट तिरुअण्णामलई के पास अरुणाचलम है जिसे पृथ्वी का हृदय और शिव का गिलीभूत रूप कहा गया है। अरुणाचलम, श्री शैल और वेदाचलम को कैलास के तीन शिखर भी कहते हैं (स्कन्द पुराण, माहे० अरुणा० मा० उत्तर० ३।१०–१४) चेंगलपट्टू से २२ मील दूर कांजीवरम है। ब्रह्माण्डपुराण के ललितोपाख्यान में इसे शिवका नेत्र कहा गया है।

रहस्य सम्प्रवक्ष्यामि लोपामुद्रापते शृणु।
नेत्रद्वयं महेशस्य काशी काञ्चीपुरी द्वयम ॥ (ललि० ३५।१५।)

लोपामुद्रा न केवल अगस्त्य की पत्नी थी बल्कि श्रीविद्या की सम्प्रदाय-प्रवर्तिका भी। श्री विद्या के दस विश्रुत सम्प्रदायों में मन्मथ और लोपामुद्रा की कादि और हादि विद्यायें ही सम्प्रति प्रचलित है। इनमें एक अगस्ति सम्प्रदाय की भी चर्चा है जो सम्भवतः बाद में हादिविद्या में ही अन्तर्मुक्त हो गया।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि मद्रास के दक्षिण कांजीवरम मायावरम, चिदम्बरम पक्षितीर्थ वेदगिरि, अरुणाचल तथा इन्हीं के मध्य समुद्रतट पर स्थित पांडिचेरी (तमिळ पुदुच्चेरी नया नगर) अगस्त्य से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध रहे हैं। अतीत में यह पूरा क्षेत्र वेद विद्या का सुप्रसिद्ध अध्ययन केन्द्र भी था। आज भी वेदाचलम इसका प्रमाण है।

अगस्त्य के जमाने में या बाद में भी पांडिचेरी जो रहा हो वेद विद्या का केन्द्र या जो कह लीजिये, श्री अरविन्द के पहुँचने के समय वह निश्चय ही "मृत नगर' कहा जाता था। नलिनीकान्त गुप्त ने लिखा है कि "श्री अरविन्द अपनी साधना के लिए किसी शान्त स्थान की खोज में थे, और पांडिचेरी ऐसा शान्त था कि अब हम कल्पना भी करना चाहें तो भी उस पांडिचेरी (१९१० वाले) को समझ नहीं सकते। यह शान्त नहीं था, मृत था। तब लोग इसे "मृत नगर" कहते ही थे। शायद ही कहीं कोई क्रय विक्रय यातायात आमदरफ्त दिखाई पड़े। खास कर उस हिस्से में जहाँ हम लोग रहते थे वहाँ तो सांझ ढल ही सन्नाटा छा जाता। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इसीलिए लोग कहते थे कि श्री अरविन्द ने अपनी साधना के लिए एक कब्रगाह चुनी है।'[1]

१ रेमिनिसेंसेन, पृ० ४२।

नवर चेट्टी के मकान पर रहते हुए श्री अरविन्द ने अपनी साधना जारी रखी। तब उनके साथ विजयनाग और सुरेश ही रहते थे। उधर कलकत्ते में अरविन्द के सम्बन्धी और शुभेच्छु उनकी सकुशल पहुँच की सूचना के लिए तरस रहे थे। एक हफ्ते बाद एक व्यक्ति ने कृष्णकुमार मित्तर को बताया कि उसने सरकारी कर्मचारी के नाम जो उस समय अपराध खोज विभाग में निर्देशक थे, प्राप्त सांकेतिक सन्देश में सुना कि श्री अरविन्द पाडिचेरी में हैं। श्री पुराणी ने इस स्थल पर ठीक ही लिखा है कि सुकुमार मित्तर ने जिन्होंने इस यात्रा की व्यवस्था में अग्रगण्य भूमिका निभायी, अपने पिता तक को भी इसकी सूचना नहीं दी।[१]" बहरहाल इस प्रकार उक्त सज्जन की सदाशयता के कारण श्री अरविन्द की नानी श्रीमती राजनारायण बोस, तथा मौसा-मौसी आदि जो उनके कुशल समाचार जानने को बहुत उत्सुक थे निश्चिन्त हुए। श्री अरविन्द की नानी ने एक बार ऐसी ही चिन्ता से, जब वे अलीपुर जेल में थे स्वामी विशुद्धानन्द [गंधी बाबा] से पूछा था—"मेरे अरो का क्या होगा ?" उन्होंने कहा, "जगज्जननी ने उसे अपनी गोद में ले लिया है। उसे कुछ नहीं होगा। पर अब वह तुम्हारा अरविन्द नहीं है। वह विश्व का अरविन्द हो जायेगा और उसकी सुगंधि से सारा विश्व भर जायेगा।"[२] गंधी बाबा की यह सुगंधित भविष्य वाणी चरितार्थ हुई। मोतीलाल राय ने सुदर्शन नामक एक व्यक्ति को भेजकर श्री अरविन्द की सकुशल पहुँच आदि का ब्यौरा प्राप्त किया। मोतीलाल राय थोड़ी बहुत आर्थिक सहायता भी भेजते रहे।

उन दिनों पाडिचेरी गुण्डों बदमाशों और शराबियों का शरणस्थल था। उनकी उर्वर जन्मभूमि भी कह सकते हैं। विदेशी जहाज पाडिचेरी के बन्दरगाह पर आते रहते। देशी विदेशी शराबों की सैकड़ा दुकानें थीं। मद्या देवी का अतुल प्रभाव था, और जहाँ इनका निवास होता है अपने आप गुण्डे, बदमाश, चोर जुआरी जंगली कुकुर मुत्ते की तरह पैदा हो जाते हैं। नलिनीकान्त ने तत्कालीन पाडिचेरी की अभ्यर्थना इन शब्दों में की है— 'इन पिशाचों के अग्रिम दस्ते में गुण्डे और बदमाश थे। इस तरह के जीव निश्चित ही महत् तामसिक वातावरण में ही पैदा हो सकते हैं। क्योंकि जितनी गहन जड़ता होती है उतनी ही अधिक राजसिक उत्तेजना की जरूरत होती है, ताकि सब कुछ सुषुप्ति के मौन में डूब सके। उन दिनों का पाडिचेरी एक और बात के लिए मशहूर था, वह थी सस्ती शराब की दुकानें। हर हफ्ते के अंत में बाहर से भी नर पिशाचों का हमला होता रहता। ये गुंडे स्थानिक रूप से फ्रेंच में बन्दे (Bandes) कहे जाते। पाडिचेरी का फ्रांसीसी शासन केवल सिद्धान्ततः स्वतन्त्रता समता और बन्धुत्व से

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १४१।

२ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० १४।

सम्वन्धित कहा जा सकता है क्योंकि वस्तुत वहा तब क्रांतिपूर्व फ्रांस की सामन्तशाही का ही पूर्ण प्रभाव था। इसे सभवत और भी बदतर कहना चाहिए, क्योंकि पाडिचेरी पर तीन चार फ्रांसीसी अफसरों तथा गलत तरीकों से धन जोड़ने वालों का शासन था। ये 'बन्द' ऐसे ही लोगों के पालतू कुत्ते थे जो उनकी आज्ञा का पालन किया करते और पुलिस में इनके कार्यों में हस्तक्षेप करने की न तो शक्ति थी और न इच्छा। राजनीतिक चुनावों के वक्त प्रचार का दौर चलने पर, पूर्ण अराजकता छा जाती, बलवा और हत्या का दौरा हफ्ता चलता रहता और रक्त बहता रहता। लोग बाग घरों से बाहर निकलने की हिम्मत नही करते। हम कभी खुलेआम यहा की राजनीति में उलझते नही थे, पर हमारे कुछ स्थानीय मित्र इनमें भाग लेते। ऐसे लोगों के पास मिलने जुलने के लिए हम लोगों में से कुछ को रात ढले श्री अरविन्द भेजा करते। स्थानीय लोग हमारे अनवरुद्ध साहस को दाँतों तले उँगली दबाकर देखा करते[1]।"

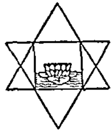
पाल ब्लूसों (Pual Bluson) की ओर से जो फ्रेंच चेम्बर के प्रतिनिधि के लिए खडे थे पॉल रिशार (Paul Richard) पहली बार पाडिचेरी आये। सर नायडू ने जो पॉल रिशार को जानते थे, श्री अरविन्द से मिलने की व्यवस्था करायी। पाडिचेरी में पाल रिशार को पता चला कि श्री अरविन्द यही योग साधना कर रहे है, पॉल रिशार की इन चीजो में बडी रुचि थी, अत वे उनसे मिलने को उत्सुक हुए।

पाल के मिलने का एक और भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारण था जिसका पूर्ण रहस्योद्घाटन १९१४ के बाद ही हुआ। किन्तु उसकी चर्चा यही कर देना सगत होगा। पाल रिशार और मिरा रिशार दोनो ही आध्यात्मिक साधना में रुचि रखते थे। मिरा रिशार ने पाल को एक प्रतीक का रेखाकन दिया था और कहा था भारत का जो आध्यात्मिक व्यक्ति इसका अर्थ बता दे, वही वह महान व्यक्ति है जिससे वे मिलना चाहती है। नलिनीकान्त गुप्त ने लिखा है—"उन्होंने जिस महान व्यक्ति की बात कही थी, वे श्री अरविन्द ही थे, यह उस प्रतीक से सिद्ध होगा जिसे वे भेज रही है, और जिसे वह व्यक्ति समझ सकेगा। यह प्रतीक श्री अरविन्द का अपना आध्यात्मिक प्रतीक ही था जिसे पश्चिम में "सालोमन रिंग' कहा जाता है।'[2]

इस घटना का बहुत ही स्पष्ट वर्णन के० अमृता ने इस प्रकार किया है। 'फ्रांस के विशिष्ट विद्वान और प्रान श्री पाल रिशार शकर चेट्टी के घर अरविन्द से मिले। उन्हें फ्रांस से मिरा ने जो बाद में श्रीमा के रूप में जानी गयी भेजा था। उन्होंने पाल को योगचक्र का एक रेखाकन दिया था और कहा था कि इसका व्याख्याता

१ रेमिनिसेंसेज पृ० ४२ ४३।
२ वही, पृ० ७१।

भारत में मिलेगा, और जो इसकी व्याख्या करे, वही योगसाधना में मेरा सहयोगी और गुरु होगा। पाल रिशार को इस चक्र की व्याख्या श्री अरविन्द से प्राप्त हुई। पाल रिशार अरविन्द का सन्देश लेकर फ्रांस लौट गये और जाते समय यह कह गये कि वे और मिरा १९१४ में भारत आने का प्रयत्न करेंगे।"[1] पाठकों के परिचय के लिए प्रतीक का चित्र और श्रीमा द्वारा उद्घाटित इसका अर्थ नीचे दिया जा रहा है।



अधोमुखी त्रिभुज सत चित और आनन्द का प्रतिनिधित्व करता है। ऊर्ध्व मुखी त्रिभुज भौतिक तत्व की अभीप्सा का सूचक है। जीवन, प्रकाश और प्रेम का यह प्रतिनिधि है। दोनों के मिलन स्थल पर ये द्वीय चतुर्भुज पूर्ण प्राकट्य का द्योतक है जिसके बीच का कमल परब्रह्म के अवतार का प्रतीक है। चतुर्भुज के भीतर का जल बहुविधि सृष्टि का सूचक है।[2]

श्री मा के लिए कमल अवतार का प्रतीक है पर श्री अरविन्द अपनी ओर से इसे दिव्यता की ओर चेतना के खुलने का प्रतीक मानते थे।[3] इससे अरविन्द के प्रति मा के भाव और अपने प्रति अरविन्द के भाव का पता चलता है। इसी स्थान पर पॉल रिशार के बारे में कुछ और भी जान लेना उचित होगा। पॉल रिशार से श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर जब जापान में मिले, तो उन्होंने लिखा—'जब मैं जापान में पॉल महाशय से मिला तो मेरे मन में सभ्यता के उच्चतर युग की प्रतिष्ठा के बारे में मेरा यह विश्वास दृढ़तर हो गया जो संसार में शान्ति स्थापना के लिए निर्माण की गई बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों की योजना से मुझे प्राप्त न हो सका था। जब विनाश की राक्षसी शक्तियां चारों ओर अपना ताण्डव नृत्य दिखा रही थी, तब मैंने देखा कि वह अज्ञात फ्रांसीसी युवक अकेला खड़ा हुआ है और उसके मुख पर नवोदित उषा का प्रकाश खिल रहा है। उसकी वाणी नवजीवन का सन्देश प्रदान कर रही है, मुझे यह देखकर इस बात का पूर्ण निश्चय हो गया कि महान् नवयुग की उषा का आविर्भाव पहले ही हो चुका है

१ रेमिनिसेंसेज ओल्डलाग सिन्स, पृ १६४। अमृत का दक्षिणी उच्चारण अमृता है।
२ द मदर आन श्री अरविन्दो पृ० १।
३ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १४१।

यद्यपि राजनीतिज्ञों के पचास में उसका अभी तक कोई उल्लेख नहीं हुआ है।'[१]

पॉल जापान में प्रथम युद्ध के दौरान गये थे, उसके पहले वे श्री अरविन्द के साथ रहकर आर्य पत्रिका के सम्पादन में सहयोग कर चुके थे। अस्तु।

पाल श्री अरविन्द से दो दिन लगातार तीन तीन घंटे तक मिले। शंकर चेट्टी के निवास पर श्री अरविन्द साधना मग्न रहे और उन्होंने प्राय ही अनावश्यक रूप से मिलने-जुलने के उत्सुक लोगों से अपने को अलग रखा। इसी स्थान पर रहते हुए उन्होंने साधना की आवश्यकता के कारण तेईस दिना का लम्बा उपवास भी किया। उन्होंने स्वयं ही कहा है— 'चेट्टी हाउस में रहते हुए मैंने २३ या इससे भी कुछ अधिक दिनों का उपवास किया। उस वक्त अन्न ग्रहण करने की समस्या का करीब-करीब समाधान जैसा हो गया। मैं करीब-करीब आठ घण्टे तक पैदल पहले ही की तरह टहलता रहा, मानसिक कार्य और साधना भी वैसे ही करता रहा और २३ दिनों के बाद भी मैंने अपने को कहीं से भी दुर्बल अनुभव नहीं किया। यह जरूर हुआ कि मांस वृद्धि कम हो गयी और इस खोये हुए तत्व को पुनरुत्पन्न करने का कोई तरीका नहीं पा सका। उपवास तोड़ने पर जैसा कि किया जाता है, मैंने शनै शनै भोजन की मात्रा बढ़ाने वाली पद्धति का पालन न करके, सामान्य भोजन लेना शुरू कर दिया।[२]

इन्हीं दिनों उनसे के० वी० रंगास्वामी आयंगार मिले जो नगाई जप्पा के आदेश से अपनी साधना के लिये गुरु की तलाश कर रहे थे।[३] आयंगार तमिळ साहित्य में वा० रा० के संक्षिप्त नाम से बहुत रूयात हुए।

अक्तूबर १९१० के अन्त में चेट्टी हाउस छोड़कर श्री अरविन्द नये मकान में आये। यह मकान सुन्दर चेट्टी का था। यह मकान पांडिचेरी कस्बे के दक्षिण भाग में था। यहां वे अप्रैल १९११ तक रहे। मृणालिनी के चचेरे भाई सौरिन अक्टूबर में पांडिचेरी आये और नवम्बर में नलिनीकान्त गुप्त। शंकर चेट्टी वाले मकान में भोजन का प्रबंध काम चलाऊ था। चावल, सब्जी, रसम और साम्भर तथा रात्रि में श्री अरविन्द को एक कप पयम (दूध चावल) मिल जाता। सभी जमीन पर सोते। अरविन्द के लिए एक पतला बिस्तर था, पर मणि और विजय घास की चटाइयों पर सोते। मणि और विजय अरविन्द के लिए कभी कुछ मन बदलाव की भी कोशिश करते यानी अंडे का कोई मामूली व्यंजन, अन्यथा, वही एक रस खाना चलता रहता।

३ अप्रैल, १९११ से १९१३ के रयू सेंट लुई के राघव चेट्टी के मकान में रहे। इसी समय चन्दरनगर से मोतीलाल पांडेचेरी आये और करीब डेढ़ महीने रहे।

१ महापुरुषों के साथ दिलीप कुमार राय राजकमल प्रकाशन पृ० २६०।
२. रेमिनिसेंज एण्ड एनकडोट्स आफ श्री अरविन्दो पृ० ५७-५८।
३ विस्तार से जानने के लिए प्रथम अध्याय 'उत्तरयोगी' देखें।

नलिनीकान्त गुप्त यानी मनीन्द्रनाथ राय सक्षेप में मुसिय (Monsieur) राय और साक्रा (चक्रवर्ती के लिए फ्रेंच में) आस पास काफी प्रसिद्ध हो गये क्योंकि दोनो फुटबाल खलने में बेजोड थे। विजय का नाम वकिम बसाक था और व फुटबाल टीम के "हाफ बक" थे।[१] ज्योतीन्द्रनाथ महाशय (श्री अरविन्द) इस टीम के कप्तान थ, पर व खेलने कभी नही जाते थे, घटो बरामदे में टहलत रहत थे। मातीलाल शहर म रके थे और हफ्ते में दो दिन श्री अरविन्द से मिलने आया करते थे। मातीलाल ने अपनी पाण्डिचेरी यात्रा का का अनुभव अपनी एक पुस्तक में लिखा ह जो श्री पुराणी के अनुसार नितात काल्पनिक है।

मोतीलाल क वणना में एक चीज निश्चित सही ह वह यह कि वह घनघोर आर्थिक सकट का काल था। 'खाना बारी बारी से तीनो शिष्य बनाते। सभी लोग नहा धाकर रसाइ घर म खाने की प्रतीक्षा म बठ रहते क्योंकि वही भोजन स्थल भी था। श्री अरविन्द सबसे बाद स्नान करते नहाने का एक मात्र तौलिया उनके लिये भी उतना ही उपयोगी था। स्नानोपरात सीधे रसोईघर में आते। घर में कुल दो बत्तियाँ जलती। एक किरासन बत्ती रसोई में और एक मोमबत्ती श्री अरविन्द क कमर म[२]। नलिनी कान्त गुप्त ने इस प्रसग का बहुत ही नाटकीय ढग से अपने सस्मरण में प्रस्तुत किया ह— आज आश्रम म कमरा में, प्रागणो में चारो तरफ प्रकाश ही प्रकाश ह। मकरी लाइट फ्लैश लाइट, स्पाटलाइट टाच लाइट और पूरा आश्रम लाइमलाइट' (प्रसिद्धि) में आ गया ह। आज सवत्र प्रकाश ह। सभी कुछ प्रकाश में चमक रहा ह। सवमिद विभाति। उन दिनो हमारे पास एक बढ़िया किरासन लम्प या लालटेन भी नही थी। केवल मुझे एक मोमबत्ती याद ह जो श्री अरविन्द के कमरे म रहती। हम चाहे जो भी बातचीत या बहस मुबाहिसा करते वह रात में ही और वह हमेशा अधेरे में चलता। अक्सर हम मौन रहने का ही अभ्यास करते।[३] उस वक्त जो भी कुछ आर्थिक सहायता बगाल या अन्य स्थाना के मित्रा से प्राप्त होती, श्री अरविन्द की गृहस्थी के लिए एक मात्र सहारा थी। हालत यहा तक खराब हो गयी, कि एक बार मोतीलाल का जा पाडिचेरी से लौट गये थे श्री अरविन्द ने ३।७।१९१२ को लिखा "आपकी भेजी हुई रकम और कपड मिल गये। यहाँ के डाकखाने ने एक आदत (जो अब तक समझ में नही आयी) बना ली ह कि वे दोपहर के पहले आपक पत्रादि देते नही। इसीलिए हम लागो न तार दे दिया कि शायद इस हफ्ते के लिए आपने पैसे नही भेजे ह। पहले हम आपका पत्र मगलवार को पा जाते थे फिर ये बुधवार को फिर गुरुवार को और अब रविवार का पहुँच रहे ह। यह फ्रासीसी लोकतत्र की स्वाभाविक

१ रेमिनिसेंसेज पृ० १२।
२ पुराणी-लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ १४६।
३ रेमिनिसेंसेज पृ० ५९।

उत्क्रान्ति हो सकती है या शायद कुछ और हो। मैं मुहर आदि तोड़े जाने के कोई लक्षण नहीं देख सका, किन्तु यह सुरक्षा का कोई निश्चित प्रमाण तो है नहीं। हो सकता है कि डाकिये को पुलिस कुछ देती हो। व्यक्तिगत रूप से मेरी धारणा है कि इसके पीछे लोकतान्त्रिक सिद्धान्तवाली पूर्वकथित बात ही होगी।

मैं साथ में एक और पत्र अपने मित्र एम० के नाम लिखा भेज रहा हूँ। यदि वे मेरे लिए कुछ दें तो कृपया अविलम्ब उसे भेजने का कष्ट करें। यदि ऐसा न हो पाये तो मैं आग्रह करूँगा कि आप जैसे भी हो, अपनी इच्छाशक्ति से या पृथ्वी या स्वर्ग की किसी भी शक्ति की सहायता से कम से कम ५० रु० उधार दें। यदि कहीं से न मिलें तो बी० बाबू से कहें स्थिति यह है कि हमारे पास मुश्किल से आठ आने बचे हैं। निःसन्देह ईश्वर कुछ करेगा किन्तु उसने अन्तिम क्षण तक देखते रहने की आदत बना ली है। मैं सोचता हूँ कि वह यह नहीं चाहता होगा हम ऋणात्मक परिमाण में जीना सीखें।"—काली।[1] यह पत्र ऊपर से श्री अरविन्द के धैर्य का प्रमाण है किन्तु अपने आश्रित लोगों की चिन्ता उन्हें कितने कारुणिक ढंग से आर्थिक सहायता की याचना के लिए विवश करती थी। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है जब कि उस समय एक आदमी के माहवारी खर्च के लिए १५ रुपया काफी होते थे। एक रुपये का चावल महीने भर चलता था। एक पैसे में काफी सब्जी मिल जाती। १९३३ तक आधा सेर चीनी एक आने में अच्छे सिल्क का कपड़ा १० आने गज, जर्मन घड़ी ३ रु० में मिलती थी। उस वक्त पांडिचेरी करमुक्त बंदरगाह था।[2] यह था आर्थिक स्थिति उस व्यक्ति की जिसने बड़ौदा की ७१० रु० मासिक की नौकरी छोड़ दी थी। श्रेयस के लिए प्रेयस का अग्नि की लपटों में झोंकने के संकल्प का और परिणाम भी क्या हो सकता था।

पांडिचेरी में अंग्रेजी शासन के भारतीय क्षेत्र से भागे हुए या निष्कासित क्रान्तिकारियों या देशभक्तों की संख्या बढ़ती जा रही थी। दक्षिण भारत के सुब्रह्मण्यम भारती श्री निवासाचारी, वी० वी० एस० अय्यर, नागास्वामी अय्यर आदि तो थे ही, श्री अरविन्द और उनके शिष्य सभी उत्तर भारत से यहां शरण खोजते आ गये थे। परिणामतः सी० आई० डी० की कार्यवाही भी तेज होती जा रही थी। अंग्रेजी सरकार स्थानीय गोयन्दा (एजेन्टस) के माध्यम से क्रान्तिकारियों को फँसाने की चेष्टा में व्यस्त थी। लार्ड मिन्टो ने कसम ली थी कि बिना अरविन्द धाप को कुचले वे चैन की सांस न लेंगे। श्री अरविन्द के नाम एक वारंट भी जारी किया गया जिसके उत्तर में उन्होंने 'सन्डे टाइम्स' में लिखा कि चूँकि वे एक आत्मिक आदेश को मानकर पांडिचेरी आ गये हैं

१ श्री अरविन्दो द होप आफ मैन केशवमूर्ति, पृ० २०७ उस वक्त श्री अरविन्द काली' नाम से हस्ताक्षरित पत्र भेजते थे।

२ वही, पृ० २०३।

और चूंकि वारंट उनके फ्रांसीसी क्षेत्र में आ जाने के बाद जारी किया गया है, इस लिए वे अपने को कलकत्ता पुलिस को सौंपने के लिए बाध्य नहीं हैं।

नन्दगोपाल चेट्टी नामक एक मछुआरे ने, जिसका परिवार न केवल पाण्डिचेरी आने वाले, बल्कि मद्रास, नागपट्टम आदि स्थानों पर भी रुकने वाले जहाजों पर सामान आदि लादने उतारने का काम करता था, गुंडों की सहायता से श्री अरविन्द का अपहरण करके उन्हें अंग्रेजों को सौंप देने की योजना बनायी। मणि और विजय को इस षड्यन्त्र का सुराग लग गया था। इस लिए उन लोगों ने बोतलों में एसिड भर कर अपने को अच्छी तरह तैयार रखा था कि घर में बलात प्रवेश करने वाले गुंडों से अच्छी तरह निबटा जाय। किन्तु ऐसा कुछ घटित न हुआ। नन्दगोपाल स्थानीय चुनावों में सक्रिय भाग लेता था। संभवतः उसी निश्चित दिन को विरोधी पक्ष के किसी उम्मीदवार द्वारा उसके ऊपर दायर किये गये जालसाजी आदि के सिलसिले में एक वारंट जारी हुआ और वह खुद पाण्डिचेरी से फरार होकर मद्रास भाग गया।

दूसरी घटना बाद में घटी। श्री अरविन्द और दूसरे क्रान्तिकारियों के विरुद्ध सक्रिय अंग्रेजी सरकार के गोयन्दों ने कुछ राजद्रोहमूलक कागज पत्र वगैरह एक दिन में रख कर वी० वी० एस० अय्यर के मकान में स्थित कुएँ में डाल दिया। चूंकि ये गोयन्दे सीधे फ्रांसीसी पुलिस से कुछ करा नहीं सकते थे अतः उन्होंने मयुरसन नामक स्थानीय नागरिक से पुलिस में शिकायत दर्ज कराई कि सुब्रह्मण्यम भारती आदि खतरनाक कामों में लगे हैं और यदि उनके मकान की तलाशी ली जाये तो बहुतेरे सबूत मिल जायेंगे। उसने अपनी शिकायत में अरविन्द का नाम नहीं दिया था, पर चूंकि ये सभी अरविन्द के मित्र थे, इसलिए फ्रेंच पुलिस ने उनके घर की तलाशी लेने का भी निर्णय लिया था।

किन्तु यह षड्यन्त्र भी असमय भंडाफोड़ हो जाने से नाकाम रहा। अय्यर की नौकरानी कुएँ से पानी लाने गयी और उसने वह दिन देखा। भारती तुरन्त श्री अरविन्द के पास आये और उनसे सलाह माँगी। श्री अरविन्द ने पुलिस को तुरन्त खबर करने को कहा। ताकि वे खुद आकर इस दिन की तहकीकात करें कि इसमें क्या है। भारती ने तहकीकात पर जोर देते हुए फ्रेंच पुलिस को खबर कर दी। पुलिस ने दिन अपने कब्जे में ले लिया उसमें कुछ राजद्रोहात्मक साहित्य, अखबार आदि थे। साथ ही कुछ ऐसे पम्फ्लेट भी थे जिनपर बमों का चित्रांकन था और बमों में इमारतें लिखा था। वहाँ काम करनेवाले दल के साथ फ्रेंच भारत के एक मजिस्ट्रेट मुशियो नांदो (M Nandot) थे। वे पाण्डिचेरी के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक और लोकाभियोजक (Pubpic Prosecu'or) के साथ अरविन्द के निवास पर पहुँचे। घर में एक मेज और कुर्सी को छोड़कर कोई दूसरा उपकरण नहीं था। कुछ बक्स थे। मेज की दराजें खोलने पर उन्हें कुछ किताबें और कुछ लिखे-अधलिखे कागज मिले। कागजों पर ग्रीक लिखी

थी। मुसिय नांदो ने अचमें से पूछा कि क्या आप ग्रीक जानते हैं ? जब उन्हें यह पता चला कि श्री अरविन्द ग्रीक के अलावा बहुत सी दूसरी योरोपीय भाषाएं भी जानते हैं तो न सिर्फ उनकी शकाएं जाती रही, बल्कि अरविन्द के प्रति वे अत्यंत श्रद्धालु हो गये। मयुरसन का पुलिस ने गलत अभियोग के लिए सजा देने की धमकी दी, वह भयभीत होकर पाडिचेरी छोडकर अंग्रेजी शासन क्षेत्र में चला गया। मुशिये नादो ने श्री अरविन्द को अपने यहां बुलाया और वे गये भी। उसी समय भारती आदि ने ऐसी घटनाओं से घबडाकर पाडिचेरी छोड देने का निश्चय किया। भारती ने श्री अरविन्द से कहा कि सम्भवत फ्रांसीसी सरकार अंग्रेजों के दबाव में आकर उन्हें उनके हाथों सौंप दगी। ऐसी हालत में वे कही और जाना चाहते हैं। उन्होंने अरविन्द की प्रतिक्रिया जाननी चाही। अरविन्द ने कहा "भारती, मैं पाडिचेरी से एक इंच भी हिलना नही चाहता। मैं जानता हूं मेरा कुछ नही बिगडेगा। जहाँ तक आपका मामला है आप खुद निर्णय लीजिए कि आपको क्या करना है। भारती चुपचाप कुर्सी पर काफी देर तक बैठे रहे। बाद में उन लोगों ने भी जिबुती (अफ्रीकी फ्रेंच उपनिवेश) हिन्द चीन या त्रिपोली जाने की अपनी योजना छोड दी।[1]

श्री अरविन्द अप्रल, १९१३ में लुई स्ट्रीट से हटकर मिशन स्ट्रीट के एक १५ रुपये किराये के मकान में आ गये। मकान-तब्दीली का मुख्य कारण आर्थिक तंगी थी। इसी मकान में के० अमृता ने उन्हें पहली बार देखा था। अमृता लिखते हैं—"मिशन स्ट्रीट के मकान में तीन आंगन थे। और हर आंगन के चारों ओर बरामदे थे। श्री अरविन्द का कमरा तीसरे भाग में था। पहले में नलिनी, सौरिन और विजय रहते थे। दूसरे में मणि रहते। मैंने सुना रखा था कि श्री अरविन्द शाम ५ बजे से बरामदों में चक्कर पर चक्कर लगाते रहते जब तक दूसरे लोग खेल के मैदान से आठ साढे आठ बजे तक लौट नही आते। जब मैं और चेट्टियर मकान के पास पहुँचे, दरवाजा बन्द था। हमने कुछ सकोच से खटखटाया। अचानक दरवाजा खुला और उढका छोड दिया गया। श्री अरविन्द धीरे से आये थे और दरवाजा खोल कर मुडकर घूमने लगे थे। मुझे ऐसा लगा कि वे अपने चेहरे की एक झलक भी हमें देखने देना नही चाहते थे। उस डूबती हुई गोधूलि वेला में मैंने कन्धे पर लटकते हुए केश और उनके अनिवर्चनीय सुन्दर छोटे छोटे पैरों को ही देखा। मेरा हृदय उस प्रकार धडक रहा था जैसे मैं अचानक देव भूमि में आ गया हूँ।"[2]

उस देवभूमि यानी मिशन स्ट्रीट के मकान को छोड देना पडा। अब की बार ये लोग ४१ र्‍यू फ्रास्वाँ मार्ते में आकर रहने लगे। वहाँ भी एक मजेदार घटना घटी।

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १५१ १५२।

२ ओड लाग सिन्स रेमिनिसेंसेज पृ० १४२।

इस समय के काफी पहले नलिनीकांत गुप्त आ चुके थे। इसलिए उस घटना का प्रत्यक्षदर्शी विवरण उन्ही से सुनिए। कुछ रोज पहले दो और लोग पांडिचेरी आए। एक तो विजय के रिश्तेदार नागन नाग थे जो बीमारी का बहाना करके परिवार वालों से छुटकारा पाकर आबोहवा परिवर्तन की बात कह कर यहां आ गये। दूसरे सज्जन वीरेन्द्र राय थे जो उनकी देख रेख करने के उद्देश्य से सहायक रूप में आए। एक दिन उस वीरेन्द्र ने अपना सर मुंडा लिया। मणि ने कहा कि वह भी अपना मुंडन करायेगा और कोई कारण नहीं था वीरन के मुंडन से प्रेरित होकर उसने भी मुंडन करा लिया। उसी दिन या संभवतः एक दिन बाद जब हम लोग रोज की तरह श्री अरविन्द के चतुर्दिक बैठे थे वीरेन्द्र खड़ा हुआ और जोर से बोला 'क्या आप लोग जानते हैं कि मैं कौन हूं ? शायद आप विश्वास न करें, पर मैं जासूस हूं। अंग्रेजी शासन की पुलिस का जासूस। मैं अब इस ओर नहीं छिपा सकता। इसलिए साफ कह देना चाहता हूँ। वह श्री अरविन्द के पैरों पर गिर पड़ा। हम भौंचक्के रह गये एकदम गूंगे की तरह अवाक्। हम आश्चर्य से सोचते रहे कि शायद यह झूठ बोल रहा है। भ्रम में पड़ गया है या कोई ऐसा ही दिमागी फितूर। तभी वह फिर बोला "ओह आपको विश्वास नहीं होता। तो मुझे कुछ और दिखाना होगा।' वह दूसरे कमरे में गया अपना बक्स खोलकर सौ रुपये का एक नोट लेकर लौटा, 'देखिए यह है सबूत। मैं भला कहाँ से इतने रुपये पाता। ये मुझे अपने पतित कार्यों के लिए पुरस्कार में मिले हैं मैं कभी भी अब ऐसा कार्य नहीं करूंगा। मैं वचन देता हूँ आप से क्षमायाचना करता हूं। हममें से कोई कुछ न बोला।

बात यह हुई कि वीरन ने अपना सिर एक खास उद्देश्य से मुड़ाया था। कोई पुलिस जासूस उससे मिलने आनेवाला था पहचान के लिए वीरन ने अपना मुंडन कराया था ताकि हममें से सबसे अलग करके उसे पहचाना जा सके। उसकी सारी योजना मणि के भी मुंडित हो जाने से अकारथ गयी। वीरेन को सन्देह हुआ कि शायद मणि उसके बारे में जान गया है और इसीलिए उसने सोद्देश्य अपना मुंडन कराया है। अतः कुछ तो डरकर कुछ पश्चाताप के कारण और कुछ किसी अदृश्य शक्ति के प्रभाव से वह पाप-स्वीकार करने को बाध्य हुआ। इस घटना से हम बहुत चिन्तित हुए। ऐसी चीज का घटित होना संभव कैसे हुआ ? एक शत्रु, जो हममें से कोई भी हो सकता है, हमारे बीच आ सकता है। अब क्या किया जाय। विजय बहुत क्रुद्ध हुआ उसे रोके रखना भी एक मुश्किल काम हो गया। बहरहाल वीरेन स्वयं चला गया। सुना जाता है वह द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय सेना के साथ मेसोपोटामिया के मोर्चे पर गया था।'[1]

१ रेमिनिसेंसेज पृ० ५२-५३।

इन दिनों श्री अरविन्द वेदों का अध्ययन कर रहे थे। साथ के लोग भी कुछ पढ़ना लिखना चाहते थे, पर पुस्तकों का नितान्त अभाव था। "श्री अरविन्द के लिए हम लोग किसी प्रकार ऋग्वेद का मूल दो खण्डों में ले आ सके। उनके पास अपनी भी ढेर सारी किताबें थी और कागज आदि के दो-तीन बक्सों में रखकर लाये थे। त हुआ कि हम लोग प्रतिमास १०) रु० किताबों पर खर्च कर सकते है। हमने अंग्रेजी के मूल क्लासिक्स खरीदने शुरू किए। आज आश्रम में बहुत बड़ी लाइब्रेरी है। एक नही कई। शारीरिक शिक्षण लाइब्रेरी, चिकित्साशास्त्र की लाइब्रेरी, स्कूल की लाइब्रेरी तथा अनेक व्यक्तिगत लाइब्रेरिया किन्तु, इन सबका मूल वही छोटा सकलन है जो हम लोगो ने शुरू किया था।'[1]

मणि, नलिनी और सौरिन बगाल की यात्रा पर गये। उस बीच की स्थितियो का विवरण के० अमृता के सस्मरणो में बहुत स्पष्ट ढग से प्रस्तुत है।

ऐसा शायद ही कोई दिन जाय जब शाम को भारती अरविन्द के पास न पहुँचें। भारती आदि लगातार गप्पें हाकते, कहानिया कहते, व्यग्य विनोद चलता। भारती को दिन भर का पढा हुआ उगल देने में ही शान्ति मिलती। इसलिए वे अखबारो के समाचार स्थानीय गतिविधियों का विवरण आदि सुना जाते और यदि कहीं श्री अरविन्द एकाध शब्द बोल दें तो क्या कहना। भारती की खुशी का ठिकाना न होता। भारती घर पहुँचते और तमाम लोग उन्हें घेर कर बैठ जाते—"क्या कहा श्री अरविन्द ने आज ?' इस प्रश्न में एसी कशिश थी मानो जीवात्माएँ परमात्मा की इच्छा जानना चाहती हो।[2]

के० अमृता के सस्मरणों में श्री अरविन्द की साधना का कोई उल्लेख नही है, अपेक्षा भी नही की जाती क्योंकि उन्हें छोड़कर उस रहस्यमय क्षेत्र में किसी और का दखल ही न था, पर धीरे धीरे लोग उनकी ओर श्रद्धापूर्वक आकृष्ट होने लगे थे। अमृता ने १५ अगस्त, १९१३ को मिशन स्ट्रीट वाले मकान में श्री अरविन्द के जन्म दिन के उत्सव का विवरण दिया है। लगातार कोशिश के बाद उस दिन जब सभी आगन्तुक चले गये, रामस्वामी आयगार ने जिन्होंने नगाई जप्ता के शिष्य रगस्वामी आयगार को श्री अरविन्द से मिलवाया था, अमृता से कहा, "तुम उनकी मेज के पास जाकर दर्शन कर सकते हो। हाथ जोड़ जाना। उनकी दाहिनी तरफ से होते हुए जाते वक्त एक मिनट रुक कर प्रणाम कर लेना। बात चीत की अनुमति नही है। अमृता, अक्षरश आज्ञा का पालन करते हुए अरविन्द के पास पहुँचे। छत से एक लालटेन लटक रही थी, जिसका प्रकाश मुश्किल से कमरे को प्रकाशित किये था। "मैंने श्री अरविन्द

१ वही पृ० ६९।
२ ओल्ड लॉग सिन रेमिनिसेंसेज पृ० १४६।

को हाथ जोडकर प्रणाम किया, उन्होंने एक क्षण मेरी ओर देखा। उनकी आँखें लालटेन की रोशनी से कहीं ज्यादा प्रज्ज्वलित थीं एक क्षण में जैसे भीतर का सारा अंधकार नष्ट हो गया।"[1]

अमृता ने फ्रांस्वा मार्तें स्ट्रीट में नये आवास में आने की घटना को लेकर दक्षिण के क्रांतिकारी देशभक्तों में, जिन्हें उन्होंने "स्वदेशियों" कहा है, उत्पन्न विवाद का भी जिक्र किया है। पांडिचेरी शहर को एक नहर दो भागों में विभक्त करती है। पूर्वी भाग योरोपीय साइड और पश्चिम भाग भारतीय साइड कहा जाता था। पूर्वी भाग में अक्सर गोरे अधिकार रहते थे। मिशन स्ट्रीट के मकान का किराया १५) रु० माहवार था जब कि फ्रांस्वा मार्तें के मकान के लिए ३५) रु० देना पड़ रहा था। फिर यह फिजूल खर्ची क्यों? लोगों ने भारती से कहा कि वे श्री अरविन्द से इसके बारे में पूछें। अमृता ने जिक्र तो नहीं किया पर लगता है इसके पीछे तत्कालीन भारतीय आवेग भी मिला जुला रहा होगा। किसी देशभक्त का अपने निवासियों को मुहल्ला छोड़कर गोरों के बीच बसना भी खटकता रहा होगा जो भी हो भारती ने कुछ नहीं पूछा क्योंकि वे जानते थे कि यदि यह निर्णय श्री अरविन्द ने लिया है तो इसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होगा।'[2] योगी बनने के इच्छुक अमृता को आर्थिक सहायता देकर श्री अरविन्द ने अग्रिम अध्ययन के लिए मद्रास भेजा।

श्री अरविन्द से मिरा रिशार और पाल रिशार २९ मार्च १९१४ को रयू फ्रांस्वा मार्तें के मकान पर ठीक साढ़े तीन बजे अपराह्न में मिले। श्री माँ की श्री अरविन्द से यह पहली मुलाकात थी। उन्होंने अपनी ३० मार्च की डायरी में लिखा, यदि सैकड़ों जीव अत्यन्त घने अंधकार में डूबे हैं तो इससे कुछ आता जाता नहीं। जिन्हें हमने कल देखा था वे तो पृथ्वी पर हैं ही। उनकी उपस्थिति यह सिद्ध करने के लिए काफी है कि एक दिन आयेगा जब अन्धकार ज्योति में रूपान्तरित हो जायेगा। उस वक्त निश्चित ही तेरा राज्य इस पृथ्वी पर स्थापित होगा। हे भगवान् हे इस आश्चर्य के दिव्य निर्माता! जब मैं इस बात को सोचती हूँ तब मेरा हृदय हर्ष और कृतज्ञता से भर जाता है। मेरी आशा की कोई सीमा नहीं रहती।[3]

मिरा रिशार का यह अनुभव एक ऋतावरी प्रज्ञा की सघन अनुभूति जैसा प्रतीत होता है। इन सीधे साधे आडम्बरहीन शब्दों में एक ऐसी अप्रतिम दिव्यता है जो इस बात का प्रमाण है कि २९ मार्च की यह प्रथम भेंट कोई सामान्य घटना नहीं थी। उन्होंने अपनी डायरी में आगे चल कर लिखा, 'मुझे लगता है कि एक समय जा रहा

१ ओल्ड लॉग सिन्स रेमिनसेंसेज पृ० १३९।
२ वही, पृ० १६१–१६२।
३ प्रेयर्स एंड मेडिटेशन्स, पृ० ८९।

णाम जान पडता था, वह लगता है कि वस तयारी ह। जो नया काल हमारे सामने खुल रहा है, वह एकाग्रता की बजाय विस्तार का एक काल है[१]।"

श्री अरविन्द की साधना का आतरिक रूप किसी को मालूम नही था पर बाहर से यह सभी जानते थे कि वे और उनके सहयोगी प्रबल आर्थिक तनाव के बीच से गुजर रहे ह। इस बीच मणि, नलिनी और सौरिन बगाल से लौट आए थे। वे सितम्बर १९१४ में ही आ गये। इसी बीच एक और दुघटना हो गई। बगाल देखने की इच्छा स विजय नाग कलकत्ते के लिये रवाना हुए, पर विल्पुरम् में गिरफ्तार कर लिये गये। वे कलकत्त के एक जेल में युद्ध के अत तक बन्दी रहे।

रिशार दम्पत्ति प्राय अरविन्द के पास भेंटवार्ता के लिये आते रहते। उनके साथ रहने वाला में इस नई उपस्थिति ने तरह-तरह की समस्याएँ जगा दी। इनम वरिष्ठनम व्यक्ति थी नलिनी बाबू लिखते हैं—"जब हमें मालूम हुआ कि एक महान महिला यहाँ आ रही ह, और काफी निकट रहेंगी, हमारे सामने बडी भारी समस्या खडी हो गयी। हमारा उनके प्रति व्यवहार क्या होना चाहिये ? क्या हमारे रहन सहन के तरीका में परिवतन अपक्षित ह ? हम एक अराजकतावादी (बोहमिन) ढग के जीवन के अभ्यस्त थे। क्याकि हम कपडा पहनने, बातचीत करने, सोने और खाने आदि के मामला में स्वच्छन्द अप्रवाहित शली अपनाये हुये थे, जिसे शायद कोई सभ्य समाज पूणत स्वीकार नही करता। जा भी हो, तै हुआ कि हम अपनी शैली कायम रखेंगे। हम अपनी स्वतत्रता या सुविधा को खडित क्या होने दें।[२]"

मिरा रिशार प्रतिदिन चार-साढे चार के आसपास अरविन्द के पास आती। वे गरी की बनी हुई मिठाइया ले आती। ५ बजे के करीब नलिनी मणि और दूसरे फुटबाल खेलने जाते। ५ बजे के आप-पास व श्री अरविन्द के लिए कोको (कहवा) बनाती इस वक्त तक पॉल रिशार भी आ जाते।

पॉल रिशार ने श्री अरविन्द से आग्रह किया कि व एक पत्रिका निकालें जिसमें न सिफ उनके समन्वित योग का पूण सिद्धात, वल्कि उनकी अपनी साधना की अनुभूतियो से उपलब्ध स्पष्टीकरण आदि भी जनता के सम्मुख तकपूण ढग से उपस्थित किये जायें। श्री अरविन्द ने इसे स्वीकार कर लिया और उन्हाने अग्रेजी में निकालने वाली इस पत्रिका नाम 'आय रखा।

१५ अगस्त, १९१४ को 'आय' का पहला अक प्रकाशित हुआ। आय का उद्देश्य इन शब्दा में घोषित किया गया। "इसका ध्येय हागा भविष्य की विचारधारा की अनुभूति, उसकी नीव जमाने की प्रक्रिया पर सोच विचार करना, और इसे प्राचीन के

१ वही पृ० ८९।
२ रेमिनिसेंसेज, पृ० ७६।

सर्वाधिक जीवन्त चिंतन से जोड़ना। यह पृथ्वी जड़ और जीवन से निर्मित संसार है किन्तु मनुष्य न तो वनस्पति है न तो पशु, वह एक आध्यात्मिक और सोचने विचारने वाला प्राणी है वह यहाँ इसलिए आया है कि अपनी पाशविक प्रणालियों को महत्तर उद्देश्यों के लिए रूपांतरित करे। इस महत् उद्देश्य के लिए उसे एक अपेक्षाकृत अधिक दिव्य तन में बदलना होगा। चिन्तन की समस्या है, सही विचार और उसकी *सम्भाव्यता का अन्वेषण। आत्मा के बारे में उपलब्ध प्राचीन सत्यों को नये ढंग से* प्रस्तुत करना होगा ताकि वे मानसिक और प्राणिक जीवन को अपने में समाहित करने, जीवन्त बनाने और अनुशासित करने का काम कर सकें। मनोवैज्ञानिक आत्मानुशासन तथा आत्म विकास की सर्वाधिक समीचीन पद्धति सामने लाना हमारा उद्देश्य होगा ताकि मनुष्य अपने आध्यात्मिक जीवन का उच्च पूर्ण समृद्धि विस्तार शक्ति और सम्भावनाओं के साथ अभिव्यक्त कर सके। इसके लिए हमें ऐसे साधनों की खोज करनी होगी जिनके द्वारा मनुष्य के बाहरी जीवन सामाजिक संगठन और संस्थान आदि प्रगतिशील ढंग से अपने को बदल सकें ताकि आत्मिक सत्य के प्रकाश में वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और सामाजिक एकता के बीच सुन्दर सम्भावना कायम की जा सके।

आरम्भ में आर्य का एक फ्रेंच संस्करण भी रेव्यू द ग्रान्ड सैंतज यानी महान् समन्वय के विचार नाम से प्रकाशित होता था।

नं० ३ डुप्लेस्ट्रीट में रहते थे। 'आर्य' के अंका को पढ़कर सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा था—'इन्हें पढ़कर मुझे विश्वास हुआ कि राष्ट्रसेवा के लिए आध्यात्मिक प्रकाश जरूरी है।'[1]

आर्य के प्रकाशन के साथ ही साथ यह चर्चा उठने लगी कि एक नया युग आरंभ होने को है। यह नया युग पूरी मानव जाति के कल्याण के लिए है। श्री अरविन्द इसके ऋषि हैं। कवि सुब्रह्मण्यम भारती इस चर्चा के उन्नायक थे। अमृता ने जो उस समय पांडिचेरी में स्कूली छात्र थे, लिखा है कि—'मेरे स्कूल के छात्र टोलियां बनाकर 'मदर" को देखने आया करते। तब हम नहीं जानते थे "मदर" क्या हैं? अमृता आमने-सामने कुर्सी पर बैठकर मदर से "यौगिक साधना" पढ़ते। इसी स्थल पर, अमृता ने जिन्होंने कि श्री अरविन्द के तत्कालिक शिष्यों की अपेक्षा 'मदर' के ज्यादा निकट पहुँचने की कोशिश की, लिखा है—'सिर्फ मैं ही नहीं उन दिनों के मेरे कुछ मित्र भी अनुभव करते कि हमारे भीतर कुछ खास तरह का परिवर्तन हो रहा है। उन्हें चाहे हम चाहते हों अथवा नहीं हमारे बिना जाने वे परिवर्तन न केवल हमारी चेतना में बल्कि बाह्य व्यक्तित्व में भी घटित हो रहे थे। हम नानाप्रकार की परस्पर-विरोधी धारणायें और सन्देहों को लिये दिये मां के पास पहुँचते और उनसे वार्ता करने के बाद हममें से प्रत्येक एक अनिर्वचनीय पवित्रता और आनंद का अनुभव करता।[2]

मई, १९१४ में मिरा रिशार का स्वास्थ्य गिर गया था। उन्होंने स्वयं ही लिखा है कुछ दिनों के लिए मेरे शरीर की सारी शक्तियों ने साथ छोड़ दिया है। मिरा रिशार के व्यक्तित्व में निरन्तर आध्यात्मिक अनुभूतियों से उत्पन्न परिवर्तन घटते रहते और २१ जुलाई, १९१४ को उन्हें निश्चय ही एक ऐसी अनुभूति हुई जिसे असीम के साथ एकत्व का बोध कहा जा सकता है— अब शरीर नहीं था। कोई इन्द्रिय बोध नहीं था। अब था केवल एक ज्योतिस्तंभ, जहाँ पर साधारणतया देह का आधार होना है, वहां से ऊपर की ओर उठकर वह जहाँ मस्तक होना है चांद की तरह प्रकाश की एक थाली जैसा बन गया फिर वहाँ से वह स्तंभ ऊपर की ओर उठता गया और अंत में फूटकर जाज्वल्यमान बहुवर्णमय एक विशाल सूर्य बन गया जिससे सुनहले प्रकाश की वर्षा होने लगी और सारी पृथ्वी में यह प्रकाश फैल गया।'[3]

जर्मनी ने फ्रांस के विरुद्ध ३ अगस्त को और ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध ४ अगस्त १९१४ को युद्ध की घोषणा कर दी। मिरा रिशार ने २१ अगस्त को अपनी डायरी में लिखा—'हे भगवान समूची पृथ्वी आन्दोलित हो गई है। कराह रही है दुःख भोग रही है। वह विपत्तियों से गुजर रही है ऐसा न हो कि उस पर जो कुछ कष्ट

१ एन इंडियन पिल्ग्रिम अनफिनिश्ड आटोबायग्रैफी एण्ड कलेक्टेड लेटर्स पृ० ५१।
२ रेमिनिसेंसेज ओल्ड लांग सिन्स पृ० १८०।
३ प्रेयर्स एंड मेडिटेशनस, पृ० १६० १६१।

आया है, यह व्यर्थ ही चला जाय, इस अपकार पूर्ण साद की गहराई से सम्पूर्ण सत्ता तुझसे प्रार्थना कर रही है कि तू उसे वायु और प्रकाश प्रदान कर। उसका दम घुट रहा है क्या तू सहायता करने नहीं आयेगा ?"[१]

२१ फरवरी, १९१५ को मिरा रिशार का जन्मदिन पाण्डिचेरी में ही मनाया गया और २२ का व पाल रिशार के साथ युद्धरत फ्रांस की ओर चल पड़ी।

आर्य का फ्रांसीसी संस्करण बन्द हो गया। अंग्रेजी संस्करण लगातार जनवरी १९२१ तक प्रकाशित होता रहा। सच तो यह है कि श्री अरविन्द के जीवन के ये छह वर्ष लगातार साधना और सम्बोधि को सैद्धान्तिक रूप प्रदान करने के वर्ष कहे जा सकते हैं। बाह्य जीवन की विशेष महत्वपूर्ण घटनाओं को कोई स्थान नहीं मिलता। चितरंजन दास के काव्यसंकलन "सागर संगीत" का अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने १९१४ में किया था। बदले में दास ने एक हजार रुपये दिये। श्री पुराणी ने लिखा है— १९१४ से १९२० की घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में उपलब्ध कर पाना कठिन है।"[२]

मृणालिनी की मृत्यु

फिर भी एक अत्यन्त दुःखद घटना इसी बीच घटी इसलिए उसका विवरण देना प्रासंगिक होगा। दिसम्बर, १९१८ में श्रीमती मृणालिनी देवी का इन्फ्लुएंजा से देहान्त हो गया। मृणालिनी ने अपने जीवन के हिन्दू नारी की पारम्परिक आत्म विसर्जन क्षमता को चरितार्थ कर दिया। उन्हें पता था कि वे अपने पति के कार्यों में सहयोग देने की क्षमता नहीं रखतीं उन्होंने अपनी सहनशीलता और पतिभक्ति के कारण हजार दुःखों को सह लेना स्वीकार कर लिया पर कभी भी पति के मार्ग में प्रत्यवाय नहीं बनी। राजनीतिक कारणों से व्यस्त रहते हुए श्री अरविन्द चाहते हुए भी मृणालिनी देवी की सुख सुविधाओं की माकूल व्यवस्था नहीं कर पाये। अलीपुर जेल में जब वे एक वर्ष रहे मृणालिनी उनकी बहन सरोजिनी के साथ एकाकी जीवन व्यतीत करती रहीं। जेल से छूटने के बाद वे धीरे धीरे योग साधना की ओर बढ़ते गये और अंत में पाण्डिचेरी जाने पर विशिष्ट किस्म की साधना के कारण जिसमें एकान्त और कठोर संयम की नितान्त आवश्यकता थी, वे मृणालिनी को साथ नहीं रख पाये। १९१८ में मृणालिनी को पाण्डिचेरी आने की उन्होंने अनुमति दी किन्तु दैव को यह भी मंजूर न हुआ और पाण्डिचेरी की यात्रा पर चली मृणालिनी कलकत्ते पहुंच कर बीमार हुयीं और वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। मृणालिनी के भाई डा० गिरिश कुमार ने तस्दीक किया है कि पति वियोग को उन्होंने बड़े धैर्य और गरिमा के साथ सहन किया। उन्हें मालूम था कि यद्यपि वे अपने पति की दृष्टि में बहुत ऊँचा स्थान रखती हैं तो भी वे एक

१ वही पृ० १७०।
२ लाइफ आफ श्री अरविन्दो, पृ० १५८।

समर्पित पत्नी के रूप में श्री अरविन्द पर दबाव डालकर अपने को उन्हें साथ रखने के लिए मजबूर करके उनकी कोई सहायता नहीं कर पायेंगी।[१]

श्रीमती मृणालिनी देवी ने अंतिम दिनों में श्री रामकृष्ण की पत्नी श्रीशारदामणि से दीक्षा प्राप्त की। श्री अरविन्द को जब यह सूचना मिली तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—"मुझे पता चला कि उस देवव्रत की बहन सुधीरा बोस वहाँ ले गयीं। मुझे पाडिचेरी आने के बहुत समय बाद यह बात मालूम हुई। मुझे बड़ी खुशी हुई कि उसने इतनी महान् आध्यात्मिक शरण प्राप्त की।[२]"

प्रश्न उठता है कि इस बीच श्री अरविन्द कैसी साधना कर रहे थे और क्या उसकी पद्धति का जानना सम्भव है। श्री अरविन्द ने निश्चय ही अपनी साधना प्रक्रिया के विषय में बहुत कुछ बताया है जो अपने शिष्यों के साथ की गई वार्ताओं या पत्राचारों में प्राप्त होता है। इस समय की साधना की ओर संकेत करने वाला एक बहुमूल्य पत्र अवश्य प्राप्त होता है। बारीन्द्र प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की संधि के फलस्वरूप १९१९ में अंडमान से मुक्ति पाकर भारत लौटे। उन्होंने श्री अरविन्द को एक पत्र लिखा जिसमें अनेक प्रश्न पूछे गये थे। बारीन्द्र पहले भी योग-साधना की ओर आकृष्ट थे और वे अपने योग के पथ प्रदर्शन का भार भी श्री अरविन्द को देना चाहते थे। "पाडिचेरीर पत्र" बारीन्द्र के नाम लिखा श्री अरविन्द का ऐतिहासिक महत्त्व का पत्र है।

७ अप्रैल, १९२०

स्नेह का—

तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ है। अब तक उत्तर लिखा नहीं गया। यह जो लिखने बैठा हूँ यह भी एक (Miracle) चमत्कार ही समझो। क्योंकि मेरा चिट्ठी लिखना होता है (Once in a blue moon) शायद ही कभी, विशेष कर बांग्ला में लिखना तो इन पांच सात वर्षों में एक बार भी नहीं हुआ। शेष करके यदि पोस्ट (डाक) में दे सकूं, तब ही (Miracle) असाध्य साधन पूरा हो।

प्रथम तुम्हारे योग की बात। तुम मुझे ही अपने योग का भार देना चाहते हो, मैं भी लेने को राजी हूँ। इसका अर्थ है, जो, मुझको और तुमको चाहे प्रकाश्य हो चाहे गोपन हो, अपनी भागवती शक्ति द्वारा चला रहा है उसी को देना। तथापि यह फल अवश्यम्भावी जानना कि उसी का प्रदत्त मेरा योग पथ है—जिसको पूर्ण योग कहते हैं—उसी पथ में चलना होगा—जो लेकर आरम्भ किया था—(लेले) वह भी मार्ग ढूंढने की अवस्था अर्थात इधर उधर घूमकर देखना, पुराने सभी योग-खंडों को छूना, उठाना और हाथ में लेकर परीक्षा करना। इसकी एक तरह पूरी अनुभूति पाकर

१ दिवाकर महायोगी भारतीय विद्याभवन बम्बई, पृ० ५०।
२ रेमिनिसेंसेज एंड सनक्डाट्स पृ० ११३।

उसको पहचाना जाता ह ।

इसके बाद पाडिचेरी में आकर वह चचल अवस्था कट गयी । अन्तर्यामी जगद्गुरु ने मुझ मरे पथ का पूण निर्देश दिया ह । उसका सम्पूण (सिद्धान्त) याग शरीर के दस अग ह, इन दस वर्षों में उन्ही का अनुभूति द्वारा विकास कर रहा हूँ, यह अब भी शेष नही हुआ ह । और दो वष लग सकते हैं और जितने दिना शेष नही हाता आर पन्ना ह बगाल में लौट न सकूँगा । पाडिचरी ही मेरी याग सिद्धि का निर्दिष्ट स्थल ह । अवश्य ही एक अग को छाडकर वह ह कम । मेर कम का केन्द्र ह बगाल । यद्यपि आशा करता हूँ—समस्त भारत और समास पथ्वी उसकी परिधि हागी ।

योग प थ क्या ह यह पीछे लिखूँगा अथवा तुम यहाँ आओ तभी वह बात होगी । इस विषय में लिखन की अपेक्षा मुखकी बात अच्छा ह । इस समय केवल यही कह सकता हूँ कि पूणज्ञान पूणकम और पूण भक्ति के सामजस्य और एक्य को मानसिक (भूमि) Level के ऊपर उठाकर मनको अतीत विज्ञान—भूमि में पूण सिद्ध करना ही उसका मूल तत्त्व है । पुरान योग में दोष यही था कि वह मन बुद्धि को जानता और आत्मा को जानता मन के भीतर ही अध्यात्म की अनुभूति पाकर सतुष्ट रहता किन्तु मन खण्ड को ही आयत्त कर सकता ह । वह अनन्त अखड का सम्पूण पकड नही सकता । उस मन द्वारा पकडने के समाधि, मोक्ष निर्वाण इत्यादि हो उपाय ह, और उपाय नहा । वह लक्ष्यहीन मोक्ष लाभ प्रत्येक आदमी कर सकता ह किन्तु लाभ क्या । ब्रह्म आत्मा, भगवान् तो ह ही । भगवान मनुष्य में जो चाहत ह वह ह उसको इसी जगह मूर्तिमान करना । व्यष्टि म समष्टि में To realise God in life भगवान् को प्राप्त करना ।

पुरातन योग प्रणाली अध्यात्म और जीवन का सामजस्य अथवा एक्य नही कर सकी, जगत को माया वा अनित्य लीला कहकर उडा देती ह । फल यह हुआ ह जीवनी शक्ति का ह्रास, भारत की अवनति । गीता म कहा गया ह— उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कम चेदहम —भारतके इम लोका ' सत्य ही उत्पन्न हा गये हैं । कई एक सन्यासी वरागी साधु सिद्ध मुक्त हो जायेंग कई एक भक्त प्रम म भावमें आनन्द में अधीर होकर नृत्य करेंगे और समस्त जाति प्राणहीन बुद्धिहीन होकर घोर तमोभाव में डब जायेगी यह किस प्रकार की आध्यात्म —सिद्धि ?

पहले मानसिक स्तर पर अनुभूति पाकर मन का आध्यात्म रस में प्लावित कर अध्यात्म प्रकाश से प्रकाशमान करना होता ह । इसके बाद ऊपर उठना, ऊपर अर्थात विज्ञान भूमि में बिना उठे जगत का शेष रहस्य जानना असम्भव ह । जगत की समस्या सुलझ नही पाती । वही आत्मा और जगत अध्यात्म और जीवन-द्वन्द्व की अविद्या नष्ट होती ह । उस समय जगत को माया कहकर नही देखा जाता, जगत भगवान् की सना तन लीला आत्मा का नित्य विकास ह । उसी समय भगवान को पूण रूप से जानना

पाना सम्भव होता ह। गीता में जिसको कहते हैं, "समग्र मा ातुम"। अ ामय देह, प्राण, मन बुद्धि, विनान—आन द—यह हुई आत्मा की पचभूमि। जितना ही ऊँचा उठता ह, मनुष्य के Spiritual ɛvolution (आध्यात्मिक विकास) की चरम सिद्धि की अवस्था उतनी ही निकट आती ह। विनान म उठने से आन द में उठना सहज हा जाता ह। अखड अनन्त आन द की अवस्था म स्थिर प्रतिष्ठा होती हैं। क्वल विश्वातीत परब्रह्म में नही—देह में, जगत जीवन में। पूरी सत्ता, पूरा चैत य, पूण आन द विकसित होकर जो जीवन में मूत होता ह वह चेष्टा ही मेरे योग पथ का मूल सूत्र सुराग ह।

इस प्रकार होना सहज नही। इन प द्रह वर्षों के बाद मैं केवल विनान के तीन स्तरों के निम्नतर स्तर में पहुँचकर नीचे की सभी वृत्तिया को उसमें खीचकर लाने के लिए उद्योग में हूँ। जब यह सिद्धि पण होगी तब भगवान् मेर द्वारा दूसरा को अल्प आयास में विनान सिद्धि देंगे, इसमें कुछ भी स देह नही। तभी मेरा असली काम आरम्भ होगा। मैं कम सिद्धि के लिये अधीर नही हूँ। जो होने को ह भगवान के निर्दिष्ट समय में हागा। उ मत्त की तरह दौडकर क्षुद्र 'अह की शक्ति से कम क्षेत्र में कूद पडने की प्रवृत्ति नही है। यदि कम सिद्ध नही हो ता धैयच्युत नही हूँगा। यह काम मेरा नही ह, भगवान का है। मैं और किसी का आह्वान नही सुनूँगा, भगवान जब चलावेंगे, तब चलूँगा।

बगाल ठीक प्रस्तुत नहीं ह, मैं जानता हूँ। जो आ यात्मिक बाढ आयी हैं, वह ह अनेकाश में पुरातन का नूतन रूप, कि तु असली रूपा तर नही है। तथापि इसकी भी दरकार थी। बगाल पुरातन याग का अपने में जगाकर उसका सस्कार (क्षय) करके असल सार (खाद) लेकर जमीन को उवरा कर रहा है। आगे था वेदान्त का अखाडा—अद्वतवाद, स यास, शकर की माया इत्यादि। इस समय जो हा रहा हैं, वह वैष्णव धम की बारी ह—लीला, प्रेम भाव के आन द में मत्त होना। यह सब बडा पुराना ह, नवीन युग के लिये अनुपयोगी ह। यह सब नही ठहरेगा, कारण इस प्रकार की उ मादना टिकने की नही। तथापि वैष्णव भाव का यह गुण है कि भगवान के साथ जगत का एक सबध रखता ह जावन का एक अथ होता ह। कि तु खड भाव होने से इसमें पूण सबध पूण अथ नही ह। जो दल्व दी का भाव देखते हो वह अनिवाय ह। मन का धम ह कि एक खण्ड को पूण कहना और सभी खण्डा का बहिष्कार करना। जा सिद्ध (पुरुष) भाव को ले आते ह, खण्डभाव का अवलम्बन करके भी पूण की कुछेक जानकारी रखते हैं—पूण को मूत न कर सकने पर भी। (कि तु) शिष्य उसका पाने में समय नही होता। मूत नही होने से पाटली बाधते ह (उल्चाव पैदा करते हैं) बधने दो, देश में जिस दिन भगवान पूण अवतीर्ण हागे पाटलो आप खुल जायेगी। वह सब अपूणता कच्ची अवस्था क लक्षण ह। इससे मैं विचलित नही हाता। अध्यात्मभाव देश में आना

चाहिये, जिस तरह से भी हो जितने दलों से भी हो—पीछे देखा जायेगा। यह नवयुग के दानव की (गर्भ) अवस्था है आरम्भ नही आभास मात्र है।

इस योग की विशिष्टता यही है कि सिद्धि कुछ ऊपर न आने से भित्ति भी पक्की नही होती। मेरे योग का जो साधन करते है उनके पहले अनेक पुरातन संस्कार थे, कितने ही मिट गये है, कितने ही अब भी हैं। आगे (तुम लोगो का) था सन्यास का संस्कार अरविन्द-मठ बनाना चाहते थे, अब (तुम्हारी) बुद्धि ने मान लिया है—सन्यास नही चाहते किन्तु प्राण पर से वह पुरातन की छाप अब भी पूरी तरह नही मिटी है। इसीलिये संसार में रहकर त्यागी संसारी होने को कहते हो। तुमने कामना त्याग की आवश्यकता समझी है किन्तु कामना-त्याग और आनन्द योग के सामंजस्य का पूर्ण रूप से पकड नही सके हो। और मेरा योग तुम लोगो ने ग्रहण किया था जैसा कि बंगाली का साधारण स्वभाव है—ज्ञान की ओर से उतना नही, जितना भक्ति की ओर से कर्म की ओर से। ज्ञान कुछ तो हुआ है पर बहुत सा बाकी पडा हैं और भावुकता की कुहेलिका (dissipated) विच्छिन्न नही हुई है। तुम लोग सात्विकता के घेरे को अब भी पूरी तरह से नही काट सके हो, अहम अब भी है। संक्षिप्त में कहने का आशय यह है कि उसका विकास नही हुआ है। मुझे भी कोई शीघ्रता नही है, मैं तुम लोगो को तुम्हारे स्वभाव के अनुसार विकसित होने देता हू। एक ही सांचे में सबको ढालना नही चाहता। असली वस्तु ही सबमें एक होगी नाना प्रकार से नाना रूप में फूलेगी सभी भीतर से grow कर रहे है (बढकर तयार हो रहे है) मैं बाहर से गढना नही चाहता। तुम लोगो ने मूल को प्राप्त कर लिया तो और सब आ जायेगा।

हमें भेदप्रतिष्ठ समाज नही चाहिये। हम आत्मप्रतिष्ठ–आत्मा के ऐक्य की मूर्ति संघ चाहते है। इस *Idea* (*भाव*) *को लेकर ही देवसंघ नाम दिया गया है जो देव* जीवन चाहते है उन्ही लोगो का संघ देवसंघ है। इस प्रकार का संघ एक स्थान में स्थापित करके पीछे सारे देश में उसकी स्थापना करनी होगी। इस प्रकार की चेष्टा में जब अहम की छाया पडती है तब संघ दल में परिणत हो जाता है। यह धारणा सहज में हो सकती है कि जो (शुद्ध) संघ अन्त में दिखाई देगा यह यही है, बाकी होगा इसी एक मात्र केन्द्र की परिधि जो इसके बाहर है व भीतर के लोग नही है, (अथवा भीतर के) होने पर भी वे भ्रान्त है हमारा जो वर्तमान भाव है, उससे वे नही मिलते है, इसीलिये (भ्रांत है)।

तुम कदाचित कहोगे संघ की क्या आवश्यकता है ? मुक्त होकर सब स्थानो में *रहेंगे, सब एकाकार हो जाय, उस बहुत एकाकार में ही जो कुछ बन जाय। यह सच* बात है, किन्तु (वह) सत्य का केवल एक भाग है। हमारा कारोबार केवल निराकार आत्मा को लेकर ही नही है, जीवन को भी (उसके साथ साथ चलाना होगा) और मूर्ति के ठोस रूप से सामने आने के अतिरिक्त जीवन की effective कार्यकारी गति

नही ह। अस्प जो मूत हुआ है, वह नामरूप ग्रहण माया की खामखयाली नही ह, स्पका प्रयोजन होने से ही रूप ग्रहण होता ह। हम लोग ससार का कोई भी काम छोडना नही चाहते, राजनीति, वाणिज्य, समाज, काव्य शिल्प कला, साहित्य इत्यादि सभी रहेगा। इन सबको नूतन प्राण, नूतन आकार देना पडेगा।

राजनीति मैंने क्यो छोडी ह ? हमारी राजनीति भारत की असली चीज नही होने से, वह विलायती आमदनी ह—विलायती ढग का अनुकरण मात्र ह। पर उसकी भी आवश्यकता थी। हमने ही विलायती ढग की राजनीति चलाइ ह, न चलाने स देश कदापि न उठता, हम लोगो का अनुभव प्राप्त नही होता, तथा पूण विकास भी नही होता। अब भी उसकी आवश्यकता ह, बग देश में उतनी नही जितनी भारत के अन्य प्रदेशो में। किन्तु अब समय आया ह छायाका विस्तारित न करके वस्तुको पकडने का, भारत की प्रकृत आत्मा को जगाकर सब कम उसी के अनुरूप करन चाहिये।

लोग अब राजनीतिको Spiritualise (अध्यात्म भाव में अनुप्राणित) करना चाहते है। उसका फल यदि कोई स्थायी फल हो तो एक प्रकार का भारतीय बोल शेविज्म होगा। इस प्रकार के कम में भी मेरी कोई आपत्ति नही ह, जिनकी जसी प्रेरणा है वे वैसा ही करें। लेकिन यह असली वस्तु नही ह, अशुद्ध रूप में आध्यात्मिक शक्ति ढालने स कच्चे घडे में कारणोदधि के जलके समान होगा—या तो वह कच्ची वस्तु टूट जायेगी जल गिरकर नष्ट हो जायेगा या आध्यात्मिक शक्ति को लुप्त करके वही अशुद्धरूप रह जायेगा। सवत्र ऐसा ही होता ह। अध्यात्मिक प्रेरणा (Spiritual influence) मैं द सकता हूँ, पर वह शक्ति व्यथ व्यय होगी। शिव मन्दिर में बन्दर की मूर्ति स्थापित करने में बन्दर कदाचित प्राण प्रतिष्ठा से शक्तिमान होकर भक्त हनुमान बनकर राम के अनेक काम कर देगा जब तक वह शक्ति रहेगी, परन्तु हम लोग भारत मन्दिर म हनुमान को नही, देवता, अवतार स्वय रामको चाहते ह।

सबक साथ हम मिल सकते है, किन्तु सबको सच्चे पथ में खीचने के लिये ही, और वह भी अपने आदश के भाव तथा रूप को अक्षुण्ण रखते हुए ही। ऐसा नही करन स मुझे भी दिग्भ्रम होगा और अभीष्ट कम नही हो सकेगा। व्यक्तिगत भाव स सब ओर स कुछ न कुछ अवश्य होगा, पर सघरूप स उसका सौ गुना होता ह। अभी उसका समय नही आया ह। शीघ्रता करने से ठीक जैसा चाहिये वैसा नही होगा। सघ होगा आदश में पले हुए लोगों का पहला रूप। जिन्होंने आदश प्राप्त कर लिया ह वे ऐक्य बद्ध होकर नाना स्थानो म काम करेंगे। बाद को Spiritual Commune (धम सघ) के समान रूप देकर सघबद्ध हो सब कर्मों को आत्मानुरूप युगानुरूप आहुति देनी होगी। कठोर बधा हुआ रूप नही, जल अचलायतन नही ह—स्वाधीनरूप, समुद्र क समान जो फल सकता ह, जो अनेक ढग से उसे घेरकर उसे प्लावित कर सबको एक आत्मसात कर लेगा ऐसा करते करते Spiritual Community (देवजाति)

बन सकगी। यह मेरा वतमान भाव अब भी पूरा विकसित नही हुआ ह। सब भगवान के हाथ म ह वे जो चाहे करायें।

अब तुम्हार पत्र की कुछ विशेष बाता की आलोचना करूँगा। अपने याग के विषय म तुमने जो लिखा ह उस सबध में इस पत्र मे विशेष लिखना नही चाहता, भेंट हाने पर ही सुभीता रहेगा। देहका शव देखना, सन्यास वे निर्वाण पक्ष का लक्षण ह, इस भावको लकर सासारिक बाते नही चल सकती। सब वस्तुओं में आन द चाहिये जसा आत्मा म वसा ही देह म। देह चतन्यमय ह देह भगवान् का रूप ह जगत में जो कुछ ह उसम भगवान् का देखने स "सवमिद ब्रह्म—वासुदेव सवमिति,' यह दशा पाने स विश्वानन्द हाता ह, शरीर में भी उस आन द की मूत तरग दौडती ह। इस अवस्था म आध्यात्मिक भाव म पूण होकर घरबार विवाह इत्यादि सभी कम किये जा सकत ह, सब कर्मो में भगवान का आनन्दमय विकास पाया जा सकता ह। (मैंने अपने भीतर) अनेक दिना स मानसिक भूमि म मन की इन्द्रिया के सब विषय तथा अनुभूति को आन दमय कर लिया ह। अब व सब विज्ञानानन्द (Supramental) का रूप धारण कर रह ह इसी अवस्था म सच्चिदान द का पूण दशन तथा अनुभूति होती ह।

देवसघ की बात कहत हुए तुम लिखत हो मैं देवता नही हू अनक प्रकार स पीट पाटकर तज किया हुआ लोहा हू। देवता कोई नही ह पर प्रत्येक मनुष्य के भीतर देवता वास करत ह। उन्ही का प्रकट करना देव-जीवन का लक्ष्य ह। एसा हम सभी कर सकत ह। आधार बडा होता ह यह बात मैं मानता हू पर तु तुमन अपने सबध में जो लिखा ह मैं यथाथ नही समझता। फिर भी आधार चाह जसा हो हो एकबार भगवान् का स्पश जब हो जाता ह आत्मा जाग्रत हो जाती ह तो बडे छोट' से कोई विशेष बनता बिगडता नही। अधिक बाधा हो सकती ह, अधिक समय लग सकता ह विकास में तारतम्य हो सकता ह इसका कुछ ठीक नही ह। भीतर का देवता उन बाधा विघ्नों का हिसाब नही रखता। उन्हें हटाकर आगे बढाता ह। मुझ में भी क्या कम दोष थे। मन चित्त प्राण तथा देह की कम बाधायें थी समय क्या नही लगा? भगवान् ने क्या कम पीटा ह? दिन पर दिन मुहूत पर मुहूत देवता हो रहा हूँ अथवा क्या हो रहा हूँ नही जानता, परन्तु कुछ हो गया हू या हो रहा हू-भगवान् ने जो बनाना चाहा ह वही यथेष्ठ ह। सबके विषय में यही कहा जा सकता ह। हमारी शक्ति नही भगवान की शक्ति ही इस योग की साधिका ह।

मैं जो अनेक दिनों स देख रहा हू उसकी दो एक बातें सक्षेप में लिखता हू। मेरी यह धारणा ह कि भारत की दुबलता का प्रधान कारण पराधीनता नही, दारिद्रय नही अध्यात्मबोध अथवा धम का अभाव नही किन्तु चिन्ताशक्ति का ह्रास। ज्ञान की जन्म भूमि में अज्ञानता का विस्तार ह। सवत्र अयोग्यता अथवा (Unwillingness to think) चिन्तन की अक्षमता दिखलायी पडती है। मध्ययुग में चाहे जसा रहा हो,

कि तु इस समय तो यह भाव घोर अवनति का लक्षण ह। मध्ययुग था—रात्रिकाल, अज्ञानी के जय का दिन। पर आधुनिक जगत में अब ज्ञान के जय का युग ह, जो अधिक चिन्ता करता ह, विश्व के सत्य को खोज खोज कर सीख सकता है उसकी उतनी ही शक्ति बढती ह। यूरोप की ओर देखो तो तुम्हें दो बातें दिखलाई देंगी—अनन्त विशाल चिन्तन का समुद्र तथा प्रकाण्ड वेगवती एव सुशृखल शक्ति का खेल। यूरोप की शक्ति उसी स्थान पर ह उसी शक्ति के बल से वह जगत को ग्रस लने म समर्थ ह। वह हमारे प्राचीन काल के तपस्वियों के समान ह जिनके प्रभाव से विश्व के देवता भी भीत, सदिग्ध तथा वशीभूत रहते थे। लोग कहते हैं यूरोप ध्वस की ओर दौड रहा है। मैं ऐसा नहा समझता। यह जो विप्लव ह यह जो उथल पुथल मची हुई ह—यह सब नयी सृष्टि की पूर्वावस्था ह।

इस छोडकर भारत की ओर देखो कुछ एकाग्र प्रतिभा सम्पन्न लोगों को छोडकर सवत्र औसत आदमी ह, अर्थात अधिकाश लोग जो चिन्तन नहीं करते, कर भी नही सकते, जिनम बिन्दुमात्र शक्ति नहीं ह, केवल क्षणिक उत्तेजना ह। भारत के लोग चाहते ह सरल विचार, सहज बात। यूरोप के लोग चाहते ह, गम्भीर चिन्तन गूढबात। वहा साधारण मजूर लोग भी चिन्तन करते ह, सब कुछ जानना चाहते ह। अधूरा जानकर सतुष्ट नहो होते। बात की भीतरी तह तक जाना चाहते ह। प्रभेद केवल इतना ही ह कि यूरोप की शक्ति तथा चिन्तन की (Fatal limitation) घातक सीमा ह। अध्यात्म क्षेत्र में आकर उसकी सोचने विचारने की शक्ति काम नही कर पाती। वहा यूरोप का चारा ओर दिखलाई पडता ह-गोरखधधा NebuLous Mataphysics (कुहाच्छन्नतत्त्व शास्त्र), Yogic Hallucination यौगिक मतिभ्रम, धूएँ मे आख रगड कर वह कुछ मालूम नही कर सकता, पर इस सीमा को Surmount (अतिक्रम) करने की चेष्टा भी अब यूरोप में कम नही हो रही ह। हमम अध्यात्मबोध है हमारे पूर्व पुरुषा के गुणवश और जिसे अध्यात्मबोध है उसके हाथ में ऐसा ज्ञान, ऐसी शक्ति ह कि जिसकी एक फूँक स यूरोप की प्रकाण्ड शक्ति तण के समान उड सकती है। किन्तु उस शक्ति का प्राप्त करने के लिये शक्ति की (उपासना की) आवश्यकता ह। पर हम लोग शक्ति के उपासक नहो ह, सहज के उपासक ह सहज में शक्ति नहीं पायी जाति। हमारे पूर्व पुरुषों ने विशाल चिंतन के समुद्र में तरकर विशाल ज्ञान प्राप्त किया था, विशाल सभ्यता खडी की थी, व मार्ग में जाते-जाते क्लान्त हो पडे चिन्तन का वेग कम हो गया उसके साथ-साथ शक्ति का वेग भी कम हो गया। हमारी सभ्यता हो गयी ह अचलायतन, धर्म बाहर का कट्टरपन, अध्यात्मभाव हो गया ह एक क्षीण आलोक अथवा क्षणिक उन्मादना की तरग। यह अवस्था जितने दिन रहेगी, उतने दिन तक भारत का स्थायी पुनरुत्थान असम्भव ह।

बग देश में ही इस दुर्बलता की चरम अवस्था ह, बगाली की बुद्धि क्षिप्र ह, उसमें

विचार शक्ति की योग्यता है, सबोधि ज्ञान (Intuition) ह, इन सब गुणों में वह भारत में श्रेष्ठ ह। यह सभी गुण आवश्यकीय ह, पर यही यथेष्ट नही ह इनके साथ यदि चिन्तन की गम्भीरता, धीर शक्ति विरोचित साहस, दीर्घ परिश्रम की क्षमता तथा आनन्द भी हो तो बगाल भारत का ही क्यों समग्र ससार का नेता हो जायगा। पर बगाली यह नही चाहता, सहज में काम चलाना चाहता ह। चिन्तन न करके ज्ञान चाहता ह परिश्रम न करके फल चाहता ह, सहज साधना कर सिद्धि चाहता है। उसके पास सबल ह भावकी उत्तेजना, किन्तु ज्ञानशून्य भावातिशय्य ही इस रोग का लक्षण ह। इसके पश्चात अवसाद और तमोभाव। इधर देश की क्रमश अवनति तथा जीवनी शक्ति का ह्रास हो रहा ह। अन्त में बगाली अपने देश में किस दशा को पहुँचा ह—खाने को पाता नही ह, कपड़े लत्ते मिलते नही चारो ओर हाहाकार मचा ह। धन, दौलत व्यवसाय वाणिज्य, जर जमीन खेती-बाडी तक का दूसरो के हाथ में जाना आरम्भ हो गया हैं। शक्ति ने भी हमें छोड दिया ह। प्रेम की साधना किया करते ह किन्तु जहाँ ज्ञान तथा शक्ति नही ह (वहाँ) प्रेम भी नही रहता। सकीर्णता, क्षुद्रता आती ह। क्षुद्र सकीर्ण मन म, प्राण में प्रेम का स्थान नही होता। प्रेम बग देश में कहाँ ह? झगडा मनोमालिन्य ईर्ष्या घृणा फट इस देश म जितनी भरी पडी ह भेदक्लिष्ट भारत में कही भी उतनी नही ह।

आर्यजाति के उदार वीर युग में इतना गुल-गपाडा इतनी दिखावटी बातें नही थी। पर व लोग जिस किसी भी चेष्टा का आरम्भ करते थे वह शताब्दियो तक स्थायी रहती ह।

तुम कहत हो कि हमे भाव उन्मादन तथा देश को जोशीला बनाने की आवश्यकता ह। राजनीतिक्षेत्र म यह सब मैं कर चुका हूँ। स्वदेशी क दिनो में जो कुछ मैंने किया था सब धूल में परिणत हो गया ह। अध्यात्म क्षेत्र स क्या शुभतर परिणाम होगा? मैं यह नही कहता हूँ कि कुछ भी फल नहा हुआ। हुआ था, जितने भी (आन्दोलन) होते हैं, उनका कुछ न कुछ फल अवश्य होता ही ह। पर वह अधिकाशत सभावना की वृद्धि ह स्थिर होकर काम रूप में परिणत करने का यह ठीक ढग नही। इसलिये मैं अब Emotional Excitement (भाव उन्मादना) का आधार नहीं बनाना चाहता। अपने योग की प्रतिष्ठा करने के लिए मैं विशाल धीरसमता चाहता हू। उस समता म प्रतिष्ठित आधार में सब धृतियों स पूर्ण, दृढ तथा अविचलित शक्ति समुद्र में उद्दाम सूर्य की किरणों का विस्तार ह, उस आनन्दमय विस्तार में अनन्त प्रेम आनन्द तथा एक्य का स्थिर Ecstasy (उत्फुल्लता) ह। लाख लोग शिष्य नही चाहता एक सौ अहकार वर्जित पूर्ण सच्चे मनुष्य भगवान् के यन्त्ररूप में यदि पाय जायें, व ही यथेष्ट हैं। प्रचलित गुरुगिरी पर मेरी आस्था नहीं ह, मैं गुरु होना नही चाहता। चाहे मेरे स्पर्श स जागकर हों चाहे दूसरे के स्पर्श स जागकर हों, कोई यदि भीतर स

अपने सुप्त देवत्व को प्रकाशित करके भगवत जीवन लाभ करे, मैं इतना ही चाहता हूँ। इस प्रकार का मनुष्य ही इस देश को उठायेगा।

इस (व्याख्यान) को पढकर यह मत समझना कि मैं बगदेश के भविष्य के सम्बन्ध में निराश हूँ। लोग जो कहते है कि बगदेश में ही इस वार महाज्योति का विकास होगा मैं भी वही आशा करता हूँ। पर मैंने Other side of the shield (वस्तु के दूसरे पहलू को भी) देखने की चेष्टा की ह। दोष, त्रुटि, न्यूनता कहाँ पर ह, यह देखने की चेष्टा की ह। ये सब रहने से वह ज्योति, महाज्योति भी नही होगी, स्थायी भी नही होगी।

इस असाधारण लम्बी चिटठी का तात्पय यह ह कि मैं भी पोटली ही बाध रहा हूँ। पर मेरा विश्वास है कि यह पोटली सेंट पीटर की चादर के समान ह। अनन्त के जितने भी शिकार है (उपलब्धिया ह) वे सब इसमें खलबली मचा रहे है। अभी पोटली नही खोलता हूँ, असमय खोलने से शिकार भाग सकते है। देश में भी अभी नही आना चाहता, इसलिये नही कि देश तैयार नही हुआ ह, बल्कि इसलिये कि मैं तैयार नही हुआ हूँ। अपक्व अपक्व के बीच में जाकर भला क्या काम कर सकता है?

इति—

तुम्हारा—सेजदा[1]

वारीन्द्र के नाम श्री अरविन्द की चिटठी उनके तत्कालीन कई क्रिया-कलापा और साधनादि के उद्देश्या तथा उनकी अपनी साधनोपलब्ध स्थितिया का बहुत अच्छा प्रमाण ह। वस्तुत इस पत्र में उनके दशन, योग, साधना—भाग तथा भविष्यत दिव्यजीवन के के लिए किये जाने वाले सघटन और कायक्रमा का बीज बिन्दु ह, सार सचयन की सक्षिप्त रूप रखा ह।

इस पत्र स ही पता चलता ह कि १९२० तक उनके मन में अधिमानस, अतिमानस चैत्यपुरुष जसे शब्द प्रकट नही हुए थे उनके अभाव में वे पुराने पारिभाषिक शब्दा से काम चलाने की कोशिश करते ह, और जहा सभव नही हो पाता अग्रेजी के टुकडा के माध्यम से उसे स्पष्ट करना चाहते ह।

देह, प्राण, मनबुद्धि, विज्ञान और आनन्द इन पाँच कोशा की जो चर्चा प्राचीन योगों म ह, उस ही ग्रहण करके वे मन को नीरव शान्त बनाकर विज्ञानमय कोश की साधना में तल्लीन थे। मन को परात्पर सत्ता को समझने में असमथ यत्र कहकर उसे वे अनुभूति रस से प्लावित बनाने की बात करते हैं, यही उनके चैत्यपुरुष वाले रास्ते का सकेत ह। मन को अतिक्रान्त करके 'अतीत विज्ञानभूमि में प्रवेश करना होता ह। अतिमानस के लिए यह शब्द सकेतक लगता ह, पर यह बहुत कुछ

१ बगाल में सझले भाई को सेजदा कहते हैं।

(Overmental) उपरिमानसिक का अर्थ लिए हुए भी है। वे अपनी साधना का मुख्य लक्ष्य स्वर्ग और धरती को जोड़ देना कहते हैं, दोनों का अलगाव नहीं है जैसा सन्यास और जीवन के बीच था। वे जगत को स्वीकार करते हैं। पूर्णत स्वीकार, परन्तु इसके अतिरेक से बचने के लिए भावावादना से अलग रहने की चेतावनी भी देते हैं।

वेद, उपनिषद और गीता

इन वर्षों में श्री अरविन्द वेदों के अध्ययन में काफी निमग्न रहे। परिणामत 'हिम्न्स टू द मिस्टिक फायर' १९४६ में प्रकाशित हुआ। १९५२ में इसके दूसरे संस्करण में और भी अनेक ऋचायें जोडी गयी। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि सायण के बाद जिस प्रकार वेद विद्या के अध्ययन में दयानन्द का नाम लिया जाता है उसी प्रकार वेदों की नई व्याख्या में श्री अरविन्द के योगदान का अप्रतिम महत्व है। डा सम्पूर्णानन्द ने ठीक ही लिखा है—"दयानन्द के बाद अभी तक कोई ऐसा विद्वान नहीं हुआ जिसने समूचे वेद या वेद के किसी बड़े भाग का भाष्य किया हो। आजकल इस दिशा में जो प्रयास हुए हैं उसमें मेरी समझ से श्री अरविन्द घोष का प्रथम स्थान है। उन्हें सायण का अनेकार्थत्वम' सिद्धान्त अभिमत नहीं है। श्री अरविन्द प्रसिद्ध योगी रहे हैं। उन्होंने योगी की दृष्टि से वेदमन्त्रों को देखा है। खेद है कि वे अपने कार्य को पूरा न कर सके।[1] उपनिषदों पर श्री अरविन्द का महत्त्वपूर्ण कार्य सामने आ चुका है। 'एट उपनिषद्स' १९५३ में छपा जब कि कठोपनिषद पूना से १९१९ में ही छप चुका था। श्री अरविन्द ने उपनिषदों से अपनी साधना में बहुत बड़ी सहायता प्राप्त की थी। डॉ० राधाकृष्णन् ने उपनिषदों के भाष्यकारों में उनको आदरपूर्वक याद किया है।[2]

गीता पर उनकी सुप्रसिद्ध व्याख्या 'एसेज ऑन गीता' नाम से उपलब्ध है। हिन्दी में 'गीता प्रबंध' शीर्षक से अनुवाद भी आ चुका है।

अलीपुर जेल में ही उपनिषद पर बताई हुई उनकी व्याख्या से बड़े बड़े लोग चमत्कृत होते रहे इसकी हम चर्चा कर चुके हैं। नलिनीकान्त ने लिखा है कि "तमिळ के सुप्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने उनके साथ बैठकर वेदों का अध्ययन किया था।[3]

१ वेदार्थ प्रवशिका भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९६९, पृ० ७३ ७४।
२ फिलोसफी आफ उपनिषद्स पृ० २१।
३ रेमिनिसेंसेज गुप्त-अमृता पृ० ६२।

नील ध्वजा और पद्मचक्र

ऊर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु। समानमर्थं चरणीयमाना
चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व॥ ऋग्वेद ३।६१।३

अमृत की ध्वजा ऊपर फहर रही है। समान उद्देश्य से चलने वाली ओ देवि नव्यता के चक्र का परिचालन करो।

'मेरी साधना का तरीका मेरे भीतर से आदिष्ट हुआ। मैंने उसका अभ्यास किया और उन्नति की, किन्तु इससे दूसरा की सहायता कर पाना संभव नही था। जब श्रीमाँ आयी तो उनके सहयोग से मैंने आवश्यक पद्धति प्राप्त की।'[1]

श्री अरविन्द अत्यन्त भद्र उदारता के साथ स्पष्टतः स्वीकार करते हैं कि यदि श्रीमा की सहायता न मिलती तो वे अपनी साधना के फल से दूसरों को लाभान्वित नहीं कर पाते। यही नही बहुत संभव था कि वे स्वयं साधना द्वारा सिद्धि की उस उच्चता को उपलब्ध न कर पाते। उनके शिष्यों ने एक बार पूछा—"बुलनावासी" पत्रिका में जो यह लिखा गया है कि आपको जो दस वर्षों में मिलता, उसे आपने श्रीमाँ की सहायता से एक वर्ष में पा लिया, कहाँ तक सही है? श्री अरविन्द ने कहा—"मैंने इन्ही शब्दों में कहा था या नही, पर जो कथन का सारांश है वह सही है।"[2] एक शिष्य को श्री अरविन्द ने लिखा था— यह स्पष्ट नही है कि मेरे पथ पर बढ़े होने से तुम्हारे गुरु का क्या अभिप्राय था। १९१५–१९२० के समय के बारे में यह कथन सत्य हो सकता था, जब कि मैं 'आर्य' के लिए लिख रहा था और साधना के काम श्रीमा के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।"[3] उनके एक दूसरे शिष्य डा० चिदानन्दन ने संध्या वार्ता के क्रम में लिखा है कि उन्होने एक बार कहा था कि "अभ्यन्तर का निर्देशक भी कभी कभी साधना के बीच सहायक नही होता। जब मैं पांडिचेरी आया मुझे भीतर से सहायता नही मिल रही थी। मैं उस समय किसी बाहरी व्यक्ति से प्रकाश पाना चाहता था। तभी मिरा आ गयी। और यदि न आयी होती तो शायद मैं वस ही लड़खड़ाता होता।"[4] इन संदर्भों से स्पष्ट है कि अरविन्द योग की क्रियाशक्ति श्रीमा है।

१ अनिल्वरण्स् जर्नल, द एडवेंचर आफ कानशियसनेस में उद्धृत पृ० ३०६।
२ टाक्स विद श्री अरविन्दो द्वितीय भाग पृ० २५०– ५१।
३ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में पृ० २१५।
४ मदर इंडिया अगस्त १९७१ पृ० ४५३।

प्रश्न उठता है कि श्री अरविन्द की सहधर्मिणी, सहयोगी व श्री माँ कौन हैं? मेरा विचार है श्री माँ हैं, यह कहना भौतिक यथातथ्य का माना गया है। उनके जीवन का संक्षिप्त रेखांकन शायद उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट करे। मैं गाढ़ा सहायक हो।

श्रीमाँ का जन्म २१ फरवरी १८७८ ई० में पेरिस (फ्रांस) में हुआ। उनके पिता बैंकर थे। परिवार धनाढ्य था। पर मीरा बचपन से ही आध्यात्मिक अनुभूतियों में डूबी रहती। उन्होंने स्वयं लिखा है कि 'जब मैं प्रत्येक रात बिछौने पर लेटती थी, तो मुझे लगता मालूम होता कि मैं अपने शरीर से बाहर निकल आयी हूँ और फिर धीरे-धीरे ऊपर की ओर अपने मकान के ऊपर फिर शहर के ऊपर बहुत ऊँचाई पर उठ गयी हूँ। फिर मैं देखती कि मैंने एक चमचमाता सुनहला चोगा पहन रखा है जो मुझसे बहुत बड़ा है, मैं जैसे-जैसे ऊपर उठती चोगा भी बढ़ता जाता और मेरे चारों ओर गोलाकार फैलता जाता मानो शहर के ऊपर एक विशाल छत का रूप ले लेता है। फिर मैं देखती कि सभी ओर से मनुष्य, स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, बीमार, दुःखी बाहर आते हैं। चोगा प्रत्येक व्यक्ति की ओर अलग-अलग फैल जाता, और ज्यों ही उनके छूता वे आश्वस्त और निरोग हो जाते। दिन के भर सभी काम, रात के इस काम के मुकाबले नीरस और भद्दे लगते।" श्रीमाँ के इस अनुभव की व्याख्या करते हुए [illegible] ने लिखा है—"सुनहले चोगे का फैलना उस भागवत कृपा शक्ति की एक अपूर्व क्रिया है, जो दुःखी मानव जाति के लिए नीचे की ओर झुकती है।"[1]

श्रीमाँ ने १६ वर्ष की उम्र में चित्रकला का अभ्यास शुरू किया और शिक्षण के लिए एक स्टूडियो में जाती रहीं। वहाँ की लड़कियाँ उन्हें 'स्फिंक्स' (मिस्र की पौराणिक देवी) कह कर उनकी रहस्यमयता पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करतीं। उन्होंने पेरिस में एक रहस्य जिज्ञासुओं का दल संघटित किया जिसका नाम था 'कास्मीक', जिसकी गतिविधियों का वर्णन "वर्ड्स आफ लाँग एगो" में आश्रम की ओर से प्रकाशित हुआ है। इन चीजों को पढ़कर कीव (रूस) के विद्यार्थियों के एक दल ने इस रहस्यमयी से सलाह लेने के लिए अपने एक साथी को भेजा, वे अत्याचारों से पीड़ित होकर क्रान्ति करना चाहते थे। क्रांति में कूदना कोई खेल तो है नहीं, कौन जाने इसका परिणाम विजय हो, दुःख मुक्ति हो या फिर घोर निराशा और मृत्यु। रहस्यमयी ने कहा— *'भला आप अन्याय की सहायता से न्याय, घृणा की सहायता से* प्रेम कैसे पा सकते हैं?' युवक सहमा नहीं। उसने एक सच्चे बाजारोव (क्रांतिकारी) की तरह कहा— 'जानता हूँ, पर इन घटनाओं द्वारा परिचालित होने से हम बरी कैसे हो सकते हैं? हममें से प्रत्येक व्यक्ति यदि नष्ट भी हो जाय तो भी, जो उत्तरदायित्व

१ इन द मदर्स लाइट भाग १, पृ० ६।

हमारे कंधों पर आ गया है, उसके साथ विश्वासघात कैसे कर सकते हैं ?" रहस्यमयी थोड़ी देर चुप रहीं, फिर बोलीं—"आपको कुछ दिनों के लिए इसे छोड़ देना होगा। पर्दे के पीछे हट जाना चाहिए। अपने आपको तैयार करना चाहिए। अपनी शक्ति को संगठित करना चाहिए, ताकि समय आने पर संगठनकारी बुद्धि की सहायता से और उस सर्वशक्तिपूर्ण यंत्र की सहायता से *विजय पायी जा सके, जो हिंसा से कभी हारता नहीं।*" युवक की आँखें विश्वास और आशा से चमक उठीं। उसने कहा—"ऐसे लोगों से मिलना कितना अच्छा लगता है, जिनपर विश्वास किया जा सके। ऐसे लोग जो न्याय के आदर्श को सामने रखते हैं और उस आदर्श को पूरा करने की हमारी इच्छा को अपराध या पागलपन नहीं मानते। नमस्कार।"[1] और वह क्रांतिकारी चला गया। उसे शान्ति मिली, आश्वासन मिला।

इस रहस्यमयी देवी ने तंत्रदीक्षा कब ली, कहना मुश्किल है पर इतना मालूम है कि अल्जीरिया के सुप्रसिद्ध तांत्रिक तेओ के साथ तंत्र साधना की। श्री अरविन्द ने रहस्योद्घाटन करते हुए कहा—"वे अल्जीरिया में तेओ से तंत्र सीखने गयी थीं। तेओ महान तांत्रिक थे। उनकी पत्नी उनसे भी आगे थी। वहीं से श्रीमा ने फ्रांस की अशरीरी यात्रा की और एक कागज पर कुछ लिखा। वह कागज अभी भी यहाँ है'।[2]

बहुत पहले एक बार आसरविसेकी (Osser Wicek1) की पुस्तक में वर्णित तांत्रिक गुह्य चमत्कारों पर बात चल रही थी। श्री अरविन्द ने कहा—"श्रीमा को इसका अनुभव है। वे जब अल्जीरिया में थीं उन्होंने अपना शरीर वहीं छोड़ दिया और पेरिस में अपने परिचितों के बीच उपस्थित हुई। एक कागज पर हस्ताक्षरादि किये और कोई चीज भी इधर से उधर हटायी। एक बार उन्होंने अपने प्राणिक सत्ता में रेलगाड़ी को रोका और चलाया और सब दृश्य देखे। माँ के प्रथम शिक्षक तेओ के पास ऐसी बहुत सी सिद्धियाँ थीं और प्रयोगों की वे पद्धति भी जानते थे' ।[3]

श्रीमा ने तांत्रिक शक्तियाँ ही नहीं प्राप्त कीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना की उच्च भूमिका को भी अवगत किया क्योंकि जब तक तांत्रिक शक्ति शुद्ध आध्यात्मिक शक्ति से जुड़ती नहीं, महान् सात्विक क्रियायें और दैवी अनुष्ठान संभव नहीं होते। श्री माधव पंडित ने ठीक ही लिखा है "तंत्रशास्त्र और उसका प्रयोग सर्वोत्तम रूप से फलप्रद तभी होता है जब वह आध्यात्मिक चेतना से निर्दिष्ट होता है। अध्यात्म जो कुछ अनुभव करता और समझता है उसे ही तंत्र स्पाकार करके इस विश्व में व्यवहार साध्य बनाता है। बिना आध्यात्मिक आधार की तंत्रशक्ति आसानी से खतरनाक अभिचरण का रूप ले लेती है, जिससे अपनी भी हानि हो सकती है और दूसरों की भी।

१ वर्ड्स आफ लांग एगो, पृ० ११-१२।
२ टाक्स विद श्री अरविन्दो द्वितीय भाग पृ० १६०।
३ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग, पृ० ८७।

किन्तु ऐसी आध्यात्मिकता जिसके पास तान्त्रिक कौशल न हो, प्राय ही दूसरा का प्रभावित करनेवाले पक्ष में कमजोर और अनिश्चित साबित होती है।"[1]

कहना न होगा कि ये पक्तियाँ इस बात को ही संकेतित करती है कि श्रीमाँ ने न सिर्फ तन्त्र की गूढ क्रियाओ को निष्ठापूर्वक शिक्षण द्वारा अर्जित किया बल्कि उन्होंने इस तान्त्रिक क्षमता को वास्तविक आधार प्रदान करने के लिए निरन्तर कठिन तपस्या द्वारा अध्यात्म की सर्वोच्च स्थिति भी उपलब्ध की।

उन्होने १९१२ में ही यह घोषणा की थी कि "जिस व्यापक उद्देश्य को हमें प्राप्त करना है वह है एक प्रगतिशील विश्वव्यापी सामजस्य का आविर्भाव कराना। इस उद्देश्य की सिद्धि का जहा तक पृथ्वी का सबंध है, साधन है, सबके अतरस्थ भगवान् को, जो एकमेवाद्वितीय है जाग्रत करके तथा सबके द्वारा उन्हें अभिव्यक्त करके मानव एकता को स्थापित करना। दूसरे शब्दों में ईश्वर के साम्राज्य की जो हम सबके भीतर विद्यमान है, स्थापना करके मानव एकता को स्थापित करना।"[2]

इस घोषणा को पढनेवाला आश्चर्य चकित हुए बिना नही रहेगा। श्री अरविन्द के उददेश्यों और श्रीमा के उद्देश्यों का यह "समानमथम" किसे विस्मय विमुग्ध नहीं करता। अरविन्द जिस विकसित मानव को 'अतिमानव' या महामानव कहते है, उसीको श्रीमा "भगवान् के पुत्रो की जाति" कहती हैं। १९१२ में ही उन्होने "कास्मीक" की गोष्ठियो में कुछ निबध पढे। इन निबधो का इतिहास भी कम दिलचस्प नही है। हर गोष्ठी में एक छोटा निबध पढा जाता वह प्रश्न उठाता, अगली गोष्ठी में इसका उत्तर सबको व्यक्तिगत रूप से देना पडता और फिर एक अन्य निबध पढा जाता। यही क्रम था। विश्व के अन्दर मेरा कार्य क्या है? गोष्ठी का प्रश्न है। मा कहती है—"निस्वार्थ कर्म के लिए आत्मनिवेदन।[3] भगवान् के प्रति यह आत्मनिवदन इस मार्मिक प्रार्थना में व्यक्त है—"शान्तभाव से जलने वाली दीपशिखा की भाति बिना हिले-डुले ऊपर की ओर उठनेवाले अगरबत्ती के धुए की भाँति मेरा प्रेम तेरी ओर जा रहा है। और बच्चों की भाति जो न तर्क करते हैं न परवाह, मैं अपने आपको तेरे हाथों सौंप रही हूँ। जिससे कि तेरी इच्छापूर्ण हो, तेरी ज्योति अभिव्यक्त हो। तेरी शान्ति विकीर्ण हो तेरा प्रेम जगत पर छा जाय।[4] किसी दिन उन्हें यह अनुभूति होती है कि दुखग्रस्त बिचारी पृथ्वी की प्रार्थना भगवान ने सुन ली है और आश्वासन दिया है कि सब कुछ असीम शान्ति, अन्धकार रहित ज्योति, और चरम सौभाग्य में बदल जायेगा तो वे प्रसन्न होकर भगवान से कहती हैं—"भारत के सुगन्धित द्रव्यों के धुए की तरह मेरी

१ द मदर आर ट्व प्रथम भाग पृ० ११२।
२ मातृवाणी भाग १ पृ० ७।
३ वर्ड्स आफ लाग एगो पृ० ६७।
४ वही पृ० ८।

कृतज्ञता तुझे समर्पित है।"[1]

अब वह समय आ जाता है, जब वह अपने हृदय में निरन्तर प्रतिफलित होते "व्यक्ति" से मिलने के लिए भारत आने को है, लिखती है—'जस जैसे प्रस्थान का दिन नजदीक आता जा रहा है, मन एकाग्रता में डूब रहा है।'[2] कागामारू जहाज उन्हें २९ मार्च १९१४ को पांडिचेरी ले आता है।

हमने पिछले अध्याय में देखा कि वे किस प्रकार भारत में श्री अरविन्द के रूप में आध्यात्मिक गुरु की प्राप्ति करती हैं और सहसा द्वितीय विश्वयुद्ध में फ्रांस को घिरा देख पुनः स्वदेश लौट जाती हैं। इस बीच वे 'आर्य' पत्रिका को एक जीवन्त रूप देती हैं। पांडिचेरी में उनका स्वास्थ्य टूट जाता है पर निरन्तर श्री अरविन्द के कार्यक्रमों को साकार करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं।

युद्ध का बिगुल बज रहा है और श्री मां उसमें हस्तक्षेप की मुद्रा में लिखती हैं—'ऐ प्यारे दुःखी और क्लान्त बच्चो और तू भी ऐ विद्रोहिनी प्रचण्ड प्रकृति! अपने हृदयों को उन्मुक्त करो यह देखो दिव्य प्रेम अपनी सर्वशक्तिमत्ता के साथ तुम्हारी ओर आ रहा है।'[3]

वे कामोमारू जहाज में बैठी भारतीय तट से दूर से दूर होती जा रही हैं। अपनी ३ मार्च १९१५ की डायरी में उन्होंने लिखा कि "एकाकीपन, कठोर गंभीर एकाकीपन निरन्तर यह अनुभव कि अंधकार के नरक में मुझे सिर के बल फेंक दिया गया है। × × क्या तूने अपनी मशाल वहन करने वाले के रूप में इस नरक के भंवर में उतर जाने के लिये मुझे चुना है?'[4] श्री मां पेरिस आ जाती हैं। इस बीच श्रीमां के पास अरविन्द के लिखे कुछ पत्रों से न सिर्फ उनकी साधना और कार्यक्रम आदि पर बल्कि श्रीमां की साधना का भी काफी स्पष्ट संकेत मिलता है। श्री अरविन्द ने अपने ६.५.१९१५ के पत्र में लिखा—"सफल एकान्तवास मेरे भाग्य में नहीं बदा है। मुझे तब तक संसार के साथ सम्पर्क बनाये रखना होगा जब तक मैं विपरीत परिस्थितियों को जीत न लूं या मर न मिटूं या आध्यात्मिक और भौतिक के बीच चलने वाले युद्ध को उतनी दूर तक न ले जाऊं जितनी दूर तक ले जाना मेरे लिए दैव निर्दिष्ट है।' उन्होंने २०.५.१९१५ के पत्र में लिखा—"हमने स्वर्ग को अधिकृत कर लिया है, पर पृथ्वी को नहीं, परन्तु योग की पूर्णता है वेद के अनुसार 'स्वर्ग और पृथ्वी को समान और एक बना देना'। ३१.१२.१९१५ को उन्होंने श्री मां को

१ वर्ड्स आफ लांग एगो पृ० ११।
२ वही पृ० ६६।
३ वही पृ० १४०।
४ वही पृ० २२६-२२७।

एक पत्र पाकर जिसमें उन्होंने अपनी एक रहस्यात्मक अनुभूति का जिक्र किया था लिखा—'तुमने जिस अनुभूति का वर्णन किया है वह सच्चे अर्थ में वैदिक है यद्यपि अपने को यौगिक घोषित करने वाली आधुनिक योग पद्धतियां उसे आसानी से स्वीकार नहीं करेंगी। यह वेद और पुराण की पृथ्वी का दिव्य तत्व के साथ एकत्व है। उस पृथ्वी का जिसके विषय में कहा जाता है कि वह हमारी पृथ्वी के ऊपर है। अर्थात जो वह भौतिक सत्ता और चेतना है जिसकी केवल छाया प्रतिमाएँ ही यह जगत और शरीर है। परन्तु आधुनिक योग पद्धतियाँ भगवान् के साथ जड़त्व के एकत्व की सम्भावना को मुश्किल से स्वीकार करती हैं[1]।"

श्री मां कुछ दिन पेरिस में रहकर युद्ध जर्जर फ्रांस की विभीषिकाओं का अनुभव करती रहीं। किन्तु यह चाहते हुए भी कि संसार से भागना नहीं होगा, अंधकार और वीभत्सता के बोझ को अन्ततः ढोना होगा, वे लाचार होकर पॉल रिशार के साथ पेरिस छोड़कर जापान चल देती हैं। क्योंकि पेरिस रहने लायक स्थान नहीं रह गया था। जापान में वे चार वर्षों तक रहीं। वे चार वर्ष एक दम खाली गये? इन वर्षों का भी शेष जीवन की ही तरह बाह्य क्रिया कलापों में अंकित चित्रण नहीं मिलता। दो तीन घटनायें कुछ संकेत देती हैं, सिर्फ ऊपरी संकेत। जापान यात्रा में रवीन्द्रनाथ पॉल रिशार से मिले थे और उन्होंने उनकी प्रशंसा में वर्चस्व भरे वाक्य भी कहे। १९१९ में जापान में कवि रवीन्द्र और रिशार दम्पत्ति एक ही होटल में रुके थे। श्री मां के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कवि ने मां से निवेदन किया कि वे शान्तिनिकेतन आयें और पूरी संस्था को अपने हाथ में लेकर मन माफिक ढंग से संगठित करें। श्री मां इसे स्वीकार नहीं कर सकीं क्योंकि वे जानती थीं कि यद्यपि उनका कार्य क्षेत्र भारत ही है तो भी क्रिया का केन्द्र कहीं और है। रवीन्द्रसदन शांतिनिकेतन में एक समूह फोटोग्राफ है जिसमें श्री मां और कवि की छवियां भी सम्मिलित हैं। यह फोटो क्योटो में १९१९ में लिया गया था। रवि बाबू ने अपना टाइपराइटर श्रीमां को भेंट किया था, वह अभी आश्रम में स्मृति-वस्तु के रूप में सुरक्षित है।[2]

जापान में रहते हुए मां की साधना जारी थी। उन्होंने एक बार एक बड़ी ही दिलचस्प कहानी सुनायी। श्री अरविन्द और उनके शिष्य ध्यानावस्था में चेतना-आरोहण की विभिन्न स्थितियों पर बातचीत कर रहे थे तभी श्रीमां आ गयीं। उन्होंने कहा—'हर व्यक्ति अपनी चेतना की सीमा तक ही जाता है। मैं जाने कितने लोगों से योरप, भारत और जापान में मिली जो विभिन्न गुरुओं के निर्देश में योगाभ्यास कर

१ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में पृ० ४५१ ४५३।
२ शिशिरकुमार मित्र द म्विरेटर पृ० १७८ १७६।

रहे थे। हर एक दावा करता है कि उसी की अनुभूति चरम है। वह इससे पूर्ण सन्तुष्ट और निश्चिन्तप्राय होता है। फिर भी हर कोई भिन्न भिन्न स्तर पर होता है और उसी को सर्वोच्च स्थिति माने बैठा रहता है। और उनसे पूछो कि वह उच्च स्तर क्या है तो कहेंगे अनिर्वचनीय है। मैं जापान में श्री य से मिली। य कहते थे कि उन्होंने निर्वाण पा लिया है और उनका चेहरा उस सन्तोष से उत्फुल्ल था। मैंने सोचा यह है आदमी जो निर्वाण तक पहुँचने का विश्वस्त ढंग से दावा करता है। मैंने सोचा देखना चाहिए। मैंने कहा आइए साथ-साथ ध्यान करें। मैंने ध्यानावस्था में उनका अनुसरण शुरू किया। मैंने पाया कि वह मानसिक स्तर के पीछे स्थित एक शून्य में पड़े हैं। मैं प्रतीक्षा करती रही कि वे आगे चलें तो मैं पीछा करूँ। पर वे आगे नहीं चल सके। वे उसी अवस्था को निर्वाण मानकर चरम सन्तुष्ट थे।[1] यह योगियों की एक बहुत ही परिचित पद्धति है एक दूसरे की ऊँचाई नापने की। इसी पद्धति का का प्रयोग योगानन्द ने भी किया था जब वे थेरेस न्यूमन (Therese Newmann) से मिलने गये। पूरा विवरण उनकी आत्मकथा में दिया हुआ है। घटना जून १९३५ की है।[2]

श्री मा की अनेक अनुभूतियाँ और कुछ चमत्कारिक क्रियाएँ जो जापान में घटीं, काफी प्रचारित हैं अतः मैं उनके विस्तार में नहीं जाना चाहता। सिर्फ एक अनुभूति का वर्णन यहाँ प्रासंगिक होगा जो श्री अरविन्द के अलीपुर जेल के वासुदेव दर्शन के समानान्तर कही जा सकती है। 'जापान की एक सड़क थी जिसे सुस्पष्ट रंगों से सुन्दरतापूर्वक सुसज्जित मनोरम कन्दीलों से आलोकित किया गया था। जैसे-जैसे मेरे अन्दर की सचेतन सत्ता सड़क पर आगे बढ़ी वैसे वैसे उसने देखा कि प्रत्येक के अन्दर और सबके अन्दर भगवान दृष्टिगोचर हो रहे हैं। एक छोटा सा घर पारदर्शक बन गया था। जिसमें से एक औरत दिखाई पड़ रही थी। वह उस घर में एक टाटमी (गद्दे) पर बैठी थी और बहुमूल्य बैंगनी रंग का किमोनो पहने थी। जिस पर सोने तथा गाढ़े रंगों का काम किया हुआ था। वह एक सुनहला 'सामिसेन' यन्त्र बजा रही थी। उसके पैरों के पास एक नन्हा बालक था, मैंने उसी के भीतर भगवान् को देख लिया[3]।'

देवी मरियम के पास शिशु यीशु। मेडोना और ईश्वरीय पुत्र। देवकी और बाल कृष्ण। जो चाहें कह लें। श्री मा ने स्पष्ट सुना कि 'उन्हें शाश्वत काल से इस पृथ्वी पर पर अपना विशिष्ट प्रतिनिधि बनने के लिये चुना गया है। पृथ्वी और मनुष्यों की ओर मुड़ो[4]।'

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० १११ ११२।
२ ऑटोबायोग्रेफी आफ ए योगी जैको एडिशन १९६९ पृ० ३८३।
३ प्रेयर्स एण्ड मेडिटेशन्स पृ० २५१।
४ वही पृ० २६०।

ये सारी अनुभूतियां अनेक बौद्धिकों और तार्किकों को दृष्टिभ्रम लग सकती हैं। पर दृष्टिभ्रम ह क्या चीज। श्री अरविन्द ने लिखा ह—"उन्होंने कहा कि ये चीजें दृष्टिभ्रम ह। मैंने पूछा कि यह क्या होता ह और पाया कि वह ऐसी अनियमित या भौतिक अनुभूति ह जो बहिर्जगत या भौतिक यथार्थ से मेल नहीं खाती। मैं चुप हो गया और मानवीय तर्क शक्ति के चमत्कार पर आश्चर्य करने लगा। दृष्टिभ्रम शब्द का इजाद विज्ञान ने किया। ये अनियमित दृश्य क्या हैं सत्य की कुछ छवियां जिन्हें भौतिकता में ही केंद्रित हमारी बुद्धि देख नहीं पाती जो उसके लिये बंद हैं। य उस कलाकार की रचना में आश्चर्यकारी स्पर्श की तरह ह, जिसने अपनी परमोच्च बुद्धिमत्ता के द्वारा इस विराट फलक पर जो उसकी अपनी ही जागरूक सत्ता ह इस सृष्टि की योजना बनाई और अभिव्यक्त किया ह। जिसे आदमी दृष्टिभ्रम कहता ह, वह मन और इन्द्रियों पर पडने वाली उस तत्व की छाया ह जो साधारणत हमारे इन्द्रिय बोध और मानसिक क्षमताओं में बाँध नहीं पाता। अन्धविश्वास इसीलिए जन्मता ह कि बुद्धि इन छायाओं को गलत ढंग से समझती ह इससे भिन्न कोई दूसरा दृष्टिभ्रम नहीं।'[1]

श्रीमाँ २४ अप्रैल १९२० को सदा के लिए पांडिचेरी आ जाती ह कुछ दिन होटल में रहने के बाद वे 'सेकेण्ड लाइन बीच' के मकान नम्बर एक में रहने लगती हैं।

पांडिचेरी मे वात्याचक्र

२४ नवम्बर १९२० को पांडिचेरी पर भयानक तूफान और झंझा का आक्रमण हुआ। नलिनी कान्त गुप्त ऐसे वात्याचक्रों के प्रत्यक्षदर्शियों में एक हैं। उन्होंने इनका विस्तृत वर्णन भी किया ह। 'अचानक भयानक आवाज, चीजों के उलटने पलटने, गिरने-टूटने का शोर। मतलब यह कि तूफान की शक्ति के सामने दरवाजे-खिडकियाँ टूटने लगी थी। इसी के साथ तेज सीटी की आवाज सी चीत्कार और तेज बारिश के झोंके शुरू हो गए। श्री अरविन्द के कमरों के दरवाजे और खिडकियां उड गयी। हवा और बारिश के लिए वे कमरे अब खुले मैदान जैसे हो गये थे। वे इनके कमरे में पहुंचे पर वहां भी करीब-करीब वही स्थिति थी। ऊपर के हिस्से में रहना असंभव हो गया, हम नीचे तल्लों में भगे। अभी हम नीचे पहुंचे ही थे कि ऊपर का हिस्सा भहरा कर सीढ़ियों पर गिरा। हम बाल बाल बचे। नीचे के कमरों का भी हाल कोई खास अच्छा नहीं था। हम सभी केन्द्रीय हाल में एक कोने में किसी किसी तरह खड़े रहे।[2] यह वर्णन १९१२ या १९१३ के तूफान का ह। नलिनी कान्त लिखते ह एक तूफान और आया द्वितीय विश्वयुद्ध के ठीक बाद, उतना तेज तो नहीं पर काफी बड़े पैमाने का। श्रीमां उस समय तक हमेशा के लिए भारत रहने आ गई थी, वे उस वक्त वायु

१ थाट्स एण्ड अफोरिज्म पृ० ५।
२ स्पाइन्स इन पांडिचेरी, रेमिनिसेंसेज, पृ० ६७।

हाउस (Bayoud House) में रहती थी इस मकान में मा के रहते वह तूफान आया। वह मकान पुराना था और लगता था गल जायेगा। श्री अरविन्द ने कहा कि श्रीमा का उस जगह रहने देना ठीक नही होगा उन्हें यहाँ आ जाना चाहिए। इस तरह श्रीमा, हमेशा के लिए हमारे साथ मा की तरह आकर रहने लगी।"[1]

श्री अम्बालाल पुराणी ने लिखा है कि २४ नवम्बर १९२० का तूफान बडा प्रबल था। विनायक मदिर के सामने के मकान की छत बठ गयी थी। उसी वक्त श्री अरविन्द को सूचना मिली। किसी आकस्मिक दुघटना की आशका से उन्होंने वहा से श्रीमा का हट जाना उचित समझा। रात आठ बजे से समान हटाये जाने लगे और मध्यरात्रि तक ढाये जाते रहे। बाकी सामान दूसरे दिन लाये गये।[2] श्रीमा के इस मकान में आने से एक मानवीय वात्याचक्र भी उठ खडा हुआ। पुराणी ने बडी हमदर्दी से इस वात्याचक्र को समझने की कोशिश की है—"श्रीमा का अरविन्द वाले मकान में आना वहा रहनेवालो में से अधिकतर के लिए असतोष का कारण बना। आदमी अपने सामाजिक, धार्मिक और सास्कृतिक रीति रिवाजों से ऐसा बधा होता है कि उन्हें तोड पाना मुश्किल होता है। दूसरे दृढ राष्ट्रीयता से परिपूर्ण लोगों के लिए एक विदेशी को अपने बीच स्वीकार करना भी कठिन होता है।"[3]

के० अमृता ने जब पहली बार सुना कि पेरिस के दो फ्रासीसी प्राज्ञ श्री अरविन्द के पास योगाभ्यास के लिए आ रहे हैं" तो उन्हें यह बहुत प्रीतिकर लगा। योरोपीय विद्वान् उन्होंने हमारे देश के एक नागरिक को इतनी श्रद्धा दी है। यह सुनकर हृदय गदगद होता है।'[4]

किन्तु यह एक विचित्र भारतीय मनोवृत्ति है जो किसी विदेशी प्राज्ञ को, यदि वह हमसे बहुत ऊँचा केवल ज्ञान में नहो, आध्यात्मिक स्तर पर भी हो, तो भी, हम उसे अपनी श्रद्धा देने में हमेशा ही कूपमडूकता का परिचय देते रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि "भारत की अधोगति पर उसी दिन मुहर लग गयी जिस दिन हमने म्लेच्छ' शब्द का आविष्कार किया और दूसरा से सम्पर्क तोड लिया।" प्रत्येक भारतीय अपने को जगद्गुरु मान लेता है और सारे विश्व को अपना शिष्य। स्वय भारत में यह रूढिवादिता जातिभेद के धरातल पर उतर कर योगियों में इसी आधार पर ऊचा-नीचा का विभेद करती है। ब्राह्मण गुरु से शिक्षा लेना गौरव की बात मानी जाती है, चाहे वह नितान्त अब्राह्मण ही क्यों न हो जब कि ब्राह्मतेज से उद्दीप्त

१ वही प० ६८ ६९।
२ लाइफ आफ श्री अरविन्दो प० १६९।
३ वही प० १७४।
४ रेमिनिसेंसेज, प० १६५।
५ सलेक्टेड वर्क्स पृ० १८०।

धूप हमारे लिए हमेशा ही धूप बना रहता है।

यहरहाल इस वातावरण से उपक्रम निहार श्रीमाजीभाई राय हुए। वे उन दिनों सपत्नीक श्री अरविन्द के साथ रहते थे। वे अपने ही भीतर की उमस छाया से भयभीत होकर १० अगस्त की रात को चले गये। वहां से वे कलकत्ते में प्रकाश गये का अरविन्दीय कार्यक्रम से सबंध विच्छिन्न मान लेना चाहिए। इस विषय पर काफी विस्तार से पुराणी ने लाइफ आफ श्री अरविन्दो में लिखा है। पुराणी लिखते हैं 'सितम्बर के अन्त में मणि और नलिनी कान्त बंगाल के लिए चल पड़े। श्री अरविन्द उन्हें विदा करने के लिए स्टेशन तक गये। अरविन्द गृह में श्रीमां के आगमन से एक आन्तरिक उथल-पुथल उत्पन्न हो गई थी।[1] श्री अरविन्द का इन्हें विदा करने के लिए स्टेशन जाना ही घटना के भारीपन को प्रकट कर देता है।

इन घटनाओं से श्री अरविन्द के ऊपर क्या असर पड़ा कुछ कहा नहीं जा सकता। ये घटनायें, व्यक्तिगत घटनायें, कोई विशिष्ट अर्थ भी नहीं रखतीं। इनका अर्थ उस सामूहिक मनोवृत्ति को समझने में जरूर सहायक हो सकता है जिसके कारण श्री अरविन्द के कार्यक्रमों में शिथिलता और रुकावट पैदा हुई। "यह विरोध उस समय पैदा हुआ जब आरम्भ में यहां रहने वाले लोगों में से कुछ उन्हें (माता को) नहीं पहचानते थे या उन्हें स्वीकार नहीं करते थे और फिर उन्हें पहचान लेने के बाद भी वे इस निरर्थक विरोध पर अड़े रहे और उन्होंने अपने आपको और दूसरों को बहुत हानि पहुचाई।"[2]

श्री अरविन्द समत्व प्राप्त कर चुके थे पर उपर्युक्त कथन इस बात का प्रमाण है कि एक समय ऐसा था जब एक मानवीय वात्याचक्र ने पांडिचेरी को अपनी गिरफ्त में लपेट लिया था। पर ज्यों-ज्यों श्रीमां के कार्य सामने आने लगते हैं त्यों-त्यों हम देखते हैं कि वे अपनी उच्चतर मानवीय सदिच्छा, वत्सलता निःस्वार्थ सहायता आदि के द्वारा अपने विरोध करने वालों पर निरंतर विजय पाती चली जाती हैं। और इसमें कोई शक नहीं कि जिन लोगों ने उन्हें पहचान कर उनकी सच्चाई में विश्वास किया वे सदा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता का खुले आम इजहार करते रहे। जिन्होंने उन्हें स्वीकार करने में विलम्ब किया उनके प्रति उनके प्रेम और ममत्व में भी कमी नहीं आयी और जो इन दोनों ही कोटियों से अलग थे, उन्हें न तो श्री अरविन्द की जरूरत थी न श्रीमां की परिणामतः उनके कार्यक्रमों में भी ऐसे लोगों की जरूरत महसूस नहीं की गयी।

परिस्थितियों के चक्कर खाना या कुछ देर के लिए किंकर्तव्यमूढ़ हो जाना सहज मानवीयता है किन्तु उससे भी बड़ी मानवीयता वह है जो निःसंकोच अपनी

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १७१।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में, पृ० २१२।

त्रुटि को स्वीकार करती हैं। यही ईमानदारी व्यक्तित्व में खरेपन का प्रमाण है। नलिनीकान्त गुप्त ऐसे ही ईमानदार खरे व्यक्तित्व वाले मनीषी हैं, इसीलिए उन्होंने नि संकोच लिखा—"हम बडी उम्र के लोगों को यह विशेषाधिकार नहीं मिला। हमें काफी समय लग गया कि आखें खुलें और इस सत्य (श्रीमां) को जानें। हमने बहुमूल्य समय खो दिया। करीब करीब निरर्थक गया। किन्तु अपने को सही रास्ते पर लाने के काम में विलम्ब का महत्व नहीं होता, क्योंकि खोये हुए समय की पुनरुपलब्धि और उसकी क्षतिपूर्ति की हमेशा सभावना रहती है। यही समय का मूल रहस्य है। तुम लोग (आश्रम के बच्चे) करीब करीब उनकी गोद में उत्पन्न हुए पाले पोसे गये, और हम एक विमाता की गोद में, जिसका नाम माया है, हालांकि वह भी उन्हीं का एक रूप है, जन्मे और पले।"[1]

धीरे धीरे श्री अरविन्द के बाहर के वातावरण में सुधार आया, वात्याचक्र दब गया और उसका प्रभाव जाता रहा। इसी सदर्भ में पाल रिशार के बारे में उठने वाली जिज्ञासा के उत्तर में कुछ कहना पडता है। यह जानकर की एक भारतीय संगीतकार नीस के एक होटल में रुके हैं पाल रिशार उनसे मिलने आए तब तक न तो दिलीप कुमार राय श्री अरविन्द से मिले थे न उनके शिष्य हुए थे। पाल रिशार ने स्पष्ट कहा था—"श्री अरविन्द ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें मैंने समस्त जीवन में अपने से ऊँचा समझकर उनके चरणों में सिर नवाया। वही एक ऐसे ऋषि हैं जिन्होंने जीवन में काय करनेवाले और खमीर की तरह गुप्त रूप से परिवर्तन लानेवाले दिव्य प्रयोजन में मेरे विश्वास को सुदृढ़ किया, जो प्रयोजन अपने को परिवर्तित न करनेवाले व्यक्तियों को एक तरफ छोड देता है। मेरे विश्वास ने मेरा साथ नहीं दिया। मैंने इस प्रयोजन के स्रष्टा से इस कारण सहयोग करना छोड दिया, क्योंकि उन्होंने मुझे अपना एकमात्र सम्पादक घोषित नहीं किया। भविष्य में प्रकाशित होनेवाली ग्रन्थमाला का सर्वाधिकार मुझे प्रदान नहीं किया। एक शब्द में यह कि मैं इतना स्वेच्छाचारी था कि जीवन की पुस्तक में केवल एक सहलेखक के रूप में अपना अस्तित्व स्वीकार करने को तयार न था। मेरे अन्दर विनय का अभाव था। यही कारण है कि मुझे उस उपजाऊ नीची जमीन से घृणा करने के कारण जो श्री अरविन्द मुझे बनाना चाहते थे ऊँची चोटी का वह दुर्भाग्य वहन करना पडा, जहा पर बीज नये पौधों की सृष्टि नहीं कर सकते।"[2]

१९२० के अन्त या २१ के आरम्भ में बारीन्द्रकुमार घोष, उल्लासकर दत्त पाडिचेरी आये। शान्तिनिकेतन के डब्ल्यू० डब्ल्यू० पीयसन, जो जापान यात्रा में कविके

१ रेमिनिसेंसेज पृ० ७४।
२ महापुरुषों के साथ दिलीपकुमारराय, पृ० २०१।

साथ गये थे, श्री अरविन्द और श्री माँ से मिलने पांडिचेरी आये। १९२१ में यह उनकी दूसरी यात्रा थी। श्री माँ से वे जापान में ही परिचित हो चुके थे। उन्हीं के निर्देशन में उन्होंने महीने भर रुक कर योगाभ्यास किया। अपनी पुस्तक 'द डान आफ ए न्यू एज' में उन्होंने घोषणा की उषा हमेशा पूरब से आयेगी, और इस बार वह भारत से आने वाली है। भारत जिस नये युग का नेतृत्व अपने हाथों में लेगा, वह युग मानवता की आध्यात्मिक सभ्यता का युग होगा। इस पुस्तक में उन्होंने श्री अरविन्द के विचारों को बहुत महत्त्वपूर्ण ढंग से उपस्थित किया। सुप्रसिद्ध चिंतक जेम्स एच० कजिन्स जिनकी पुस्तक 'द रिनैसां इन इण्डिया' की पहले हम चर्चा कर चुके हैं, इसी वर्ष श्री माँ और श्री अरविन्द से मिले। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री माँ का व्यक्तित्व धीरे धीरे लोगों के बीच उद्घाटित होने लगा था। वे श्री अरविन्द की सहायता करने और एक दैवनिर्दिष्ट कार्यक्रम को पूरा करने आयी हैं, इस चर्चा से प्रेरित होकर एक बार चन्दर नगर से एक पत्र ने उनसे प्रश्न किया कि कृपया मैं अपने मिशन के प्रति कैसे जागरूक हुई विषय पर कुछ पंक्तियाँ लिखें। श्री माँ ने लिखा— कब और कैसे मिशन के प्रति सचेत हुई। कब और कैसे मैं श्री अरविन्द से मिली।

ये दो प्रश्न पूछे गये हैं और मैंने इनका उत्तर देने का वचन दिया है, इसलिये संक्षेप में लिख रही हूँ।

अपने मिशन के प्रति कब सचेत हुई यह कहना तो कठिन है। यही कहना सही होगा कि मैं इसके साथ जन्मी ही थी। बुद्धि के विकास के साथ ही साथ इसका पूर्ण और सुव्यक्त रूप भी उभरने लगा। ११ और १३ वर्ष की उम्र में नानाविध मानसिक और आध्यात्मिक अनुभव होते रहे जिन्होंने न सिर्फ इस तथ्य का उद्घाटन किया कि ईश्वर का अस्तित्व है बल्कि मनुष्य उन्हें पा सकता है। उन्हें सर्मावित रूप से अपनी चेतना और कर्म में अभिव्यक्त करके पृथ्वी पर दिव्यजीवन स्थापित हो सकता है। यह उद्देश्य और इसी के साथ व्यवहारिक साधना और अनुशासन मुझे सुषुप्तावस्था में अनेक गुरुओं द्वारा प्राप्त हुए जिनमें से कुछ के बाद में मैं भौतिक जगत में भी मिली। धीरे धीरे बाह्य और आन्तरिक विकास ज्यों ज्यों चलता रहा इनमें से एक के प्रति आध्यात्मिक और भौतिक संबंध प्रगाढ़ होता गया। यद्यपि तब तक मैं भारतीय धर्मों और दर्शनों के बारे में बहुत कम जानती थी। तो भी इस व्यक्ति को मैं कृष्ण कहने लगी और तब से मैं पूर्ण रूप जागरूक ढंग से जानने लगी कि इन्हीं के साथ, जिसमें मैं कभी इस पृथ्वी पर कहीं मिलूँगी, मुझे दैवी कार्य पूरा करना है। १९१० में मेरे पति अकेले पांडिचेरी आए। बहुत ही दिलचस्प और विचित्र परिस्थितियों के बीच वे श्री अरविन्द से मिले। तब से हम दोनों की यह प्रबल इच्छा रही कि जल्दी भारत आएँ, उस भारत में जिसे मैंने हमेशा से अपनी सच्ची मातृभूमि के रूप में श्रद्धा दी है। १९१४ में हमें

यह आनन्द ईश्वर द्वारा प्रदत्त किया गया। मैंने ज्यों ही श्री अरविन्द को देखा, मैंने पहचान लिया कि वे वही व्यक्ति हैं जिसे मैं कृष्ण कहा करती थी—और मैं समझती हूँ यह स्पष्टीकरण काफी होगा कि मैं क्यों पूर्णतः विश्वस्त हूँ कि मेरा स्थान और कर्म भारत में उन्हीं के साथ-साथ सम्बन्ध है।" [1]

उन्हीं दिनों उत्तर पाड़ा के अमरेन्द्र पाण्डिचेरी आये। पिछले कई महीनों से दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों तंजौर, त्रिचनापल्ली आदि से ये खबरें आ रही थीं कि कुछ पंजाबी साधु अरविन्द दर्शन का प्रचार करते हुए घूम रहे हैं। श्री अरविन्द ने भी ये समाचार सुने थे, किन्तु कहीं से अपने को उन पंजाबी साधुओं से जोड़ सकने में सफल नहीं हो पा रहे थे। अचानक एक दिन ये साधु अपने गुरु स्वामी केवलानन्द जी के साथ पाण्डिचेरी आ पहुँचे। नलिनी दा लिखते हैं—"अचानक अपने आँगन में एक संन्यासी घुस आये। उनका डील डौल आश्चर्यकारी था? लम्बी काया, गौर वर्ण माथे पर बंधा हुआ भारी साफा कुछ घुँघराले बाल कन्धों पर झूल रहे थे। उनके साथ तीन चार शिष्य भी थे। उन्होंने श्री अरविन्द के दर्शन की प्रार्थना की। दर्शन एक विचित्र दृश्य में बदल गया जब उन्होंने अपना परिचय दिया। संन्यास के मोटे आवरण के पीछे छिपे थे हमारे साथी, अमरेन्द्रनाथ चैटर्जी विश्रुत आतंकवादी नेता, जिनकी गिरफ्तारी के लिये अंग्रेजी सरकार जमीन आसमान एक किये थी[2]।

श्री मोतीलाल राय उन दिनों अभी अरविन्द-गृह में ही सपत्नीक निवास कर रहे थे। उन्होंने अमरेन्द्र को आलिंगन में ले लिया और वैसे ही श्री अरविन्द के कमरे के पास पहुँचे। नाम लेकर पुकारना खतरे से खाली नहीं था। इसलिए उन्होंने दरवाजा खटखटाते हुये कहा 'प्रेवील' आपसे मिलने आये हैं। अमर को यह नाम क्रान्ति के दिनों में श्री अरविन्द ने ही दिया था।

'हे ईश्वर!' दरवाजा खोलते ही सामने खड़े संन्यासी को देखकर श्री अरविन्द आश्चर्य से बोले। काफी देर तक बातचीत चली। अब पता चला कि पंजाबी साधु कौन थे। साधुओं को एक धर्मशाला में टिका दिया गया। केवलानन्द जी श्री अरविन्द गृह में भोजन करते। अमरेन्द्र को क्रान्तिकारी कार्यों से अलग होने की सलाह दी गयी। स्वामी जी ने शिष्यों से कहा बच्चो लोगो चक्कर आश्रम पर रहा, मैं कुछ दिनों अज्ञात-वास करूँगा।"

केवलानन्द ने निर्वाण प्राप्त किया और अमरेन्द्र चैटर्जी ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया। शिष्य लगातार प्रतीक्षा करते रहे। आखिर को वे यहाँ पूछने आए कि 'गुरु जी कहाँ हैं? "सचमुच गुरु जी कहाँ थे, कौन बताता। गुरु जी ने कलकत्ते में 'बकरस

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १७०।
२ रेमिनिसेंस पृ० ५७।

विनष्ट भी किया जा सकता है।'[1]

दिलीपकुमार राय ने श्री अरविन्द के मुख से यह विवरण सुनकर के० अमृता से पूछताछ की। उन्होंने पूछा कि क्या वे पत्थर काल्पनिक और भ्रमात्मक नहीं हो सकते? अमृता ने कहा कि उसने उनका संग्रह किया था और कई महीनों तक दर्शनीय वस्तु के रूप में सुरक्षित रखा था। उन सबमें एक बात बड़ी विचित्र थी कि वे काई से ढके होते थे।

उधर वेट्टल की पत्नी घबराई हुई रोती—कलपती अरविन्द के पास दया याचना के लिए पहुंची। तब भेद खुला। वेट्टल मरणासन्न था, हो सकता है कि मुसलमान तान्त्रिक ने बताया हो या वह खुद यह जानती हो कि प्रयोग जब निष्फल कर दिया जाता है तो वह दूने वेग से चलाने वाले पर ही लौटता है। उसका पति बुरी तरह बीमार था। श्री अरविन्द ने, अमृता की उपस्थिति में ही कहा—'इसके लिए उसके मरने की आवश्यकता नहीं है।' वेट्टल ठीक हो गया। मुसलमान फकीर का क्या हुआ पता नहीं।

दिलीपकुमार लिखते हैं कि श्री अरविन्द ने अन्त में कहा—"श्री मां ने उत्तरी अफ्रीका में तान्त्रिक साधना की थी, अतः वे अपने गम्भीर ज्ञान से सब कुछ समझ गयीं।"[2]

"और आप?" वे हँसे और एक क्षण मौन रहकर बोले—"तान्त्रिक शक्तियों के बारे में मेरे भी कड़वे अनुभव हैं।"

श्वेत कमलचक्र

१९२२ से ही श्रीमां ने श्री अरविन्द-कुल का सारा प्रबंध अपने ऊपर ले लिया। श्री अरविन्द के लिए स्नान घर ऊपर निर्मित हुआ। भोजनालय का इन्तजाम भी उन्हीं के द्वारा होता। उसके पहले लोग भोजन के बारे में काफी मीनमेख करते। भोजन ठीक से बन नहीं पाता था। सितम्बर १९२२ का ४१ नवम्बर रयू फ्रास्वा मार्तें से हट कर श्री अरविन्द अपने शिष्यों के साथ ९ रुल्ला मारीन के मकान में आ गए। फ्रास्वाँ मार्तें वाला मकान अब अतिथि गृह कहा जाने लगा।

मकान परिवर्तन के कुछ पहले श्री अम्बालाल पुराणी आश्रमवासी होने के लिए आये। वैसे तो वे पहली बार दिसम्बर १९१८ में ही आ चुके थे। उन्होंने श्रीमां के आने के बाद श्री अरविन्द गृह में कुछ परिवर्तन लक्ष किया—'मैंने पहली बार श्रीमां को देखा। वे सीढ़ियों के पास खड़ी थीं। उस वक्त नाश्ता करके श्री अरविन्द ऊपर जा रहे थे। ऐसा अपार्थिव सौन्दर्य मैंने कभी नहीं देखा, यद्यपि वे ३५ वर्ष से ऊपर

१ महापुरुषों के साथ पृ० ३०२।

२ महापुरुष के साथ पृ० ३०३ हिन्दी अनुवाद में Occult के लिए सब जगह यौगिक शब्द दिया है जो गलत है (मूल देखिए एमंग द ग्रेट पृ० ३११ १४)।

की थी (करीब ४३ की) पर २० वर्ष से अधिक की नहीं लगती थी। आश्रम का वातावरण कुछ तनावपूर्ण लगा। श्रीमा और दत्ता (मिस हडसन) र्यू फ्रास्वां मार्ते में श्री अरविन्द के मकान में आ गई थी। मकान पूरा बदल गया हो जैसे। खुले आंगन में एक साफ सुथरी फुलवारी हो गई थी। हर एक कमरे में सादे और सुन्दर उपस्करण (फर्नीचर) रखे गये थे—एक चटाई, एक कुर्सी और एक छोटी मेज। यह निःसंदेह श्रीमा की उपस्थिति का परिणाम था।''[1]

मुझे इसी सन्दर्भ में नलिनी कान्त गुप्त की भी बातें याद आती हैं। बहुत दिनों बाद आश्रम के बच्चों के बीच बोलते हुए नलिनी दा ने कहा- 'आध्यात्मिक शिक्षा की बात रहने दें, इसके अलावा श्रीमा ने हमेशा हमें सिखाया है कि किस प्रकार अपनी चीजों को एक तरतीबवार ढंग से साफ-सुथरा रखना चाहिये। हम अक्सर ही नहीं सोचते कि हम कितने बेतरतीब रहते हैं। हमारे कमरे की चीजों में, सामानों में कितनी अनियमितता और गड़बड़झाला रहता है। जैसा बेतरतीब हमारा बाहरी जीवन है वैसा ही बल्कि उससे भी ज्यादा बेतरतीबी हमारी आन्तरिक जिन्दगी में है। हमारे विचार धक्का धुक्की मचाते बाहर आते हैं, हमारा मस्तिष्क ऊबड़-खाबड़ ढंग से भरा है जब श्रीमा ने कहा कि अपनी वस्तुओं का इस्तेमाल सावधानी से करो, तो यह केवल ऊपर ऊपर से कही बात भर नहीं है, इसके भीतर कुछ और है।'[2]

यही ऋत (Order) व्यवस्था, विधान तरीका पद्धति थी जिसके लिए श्री अरविन्द मां की प्रतीक्षा कर रहे थे। ऋग्वेद के उषस् सूक्त में कहा गया है—''ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्' अर्थात् ऋत की व्यवस्थापिका सूर्य ज्योति से सबको अपना अभिज्ञान कराती है। यह रेवती यानी समृद्धि की वाहिका है और पृथ्वी और आकाश के भीतर जो कुछ है उसे यथास्थान जिससे वह उपयुक्त हो सके, प्रतिष्ठित करती है। रात्रि के अन्धकार में अनृत है, गड़बड़झाला है बेतरतीबी है, तरतीब और यथास्थान यथायोग्य प्रतिष्ठापन का कार्य उषा करती है नये युग की उषा। श्रीमा ने सिर्फ भारत को अपनी जन्मभूमि मानती थी, बल्कि पांडिचेरी आकर उन्होंने पूरी भारतीयता अपनाने की कोशिश की। वह वे पहले ही गीता उपनिषद् योगसूत्र और नारद भक्तिसूत्र का अध्ययन और अनुवाद कर चुकी थी। उन्होंने मृणालिनी चट्टोपाध्याय से सीखकर साड़ी पहनना शुरू किया। बंगलाक्षरा को श्री अरविन्द से सीखा किन्तु भारतीयकरण की इस प्रवृत्ति का चरम बिन्दु उस नयी मनःस्थिति में प्रकट हुआ जिसे देखकर नलिनी दा ने विस्मय विमुग्ध होकर लिखा—''एक सद्यः जात शिशु की तरह उन्होंने मान लिया कि उनके पास कुछ नहीं है, उन्हें सब कुछ नये तरीके से आरम्भ

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो अपेण्डिक्स, पृ० २६३।
२ रेमिनिसेंस पृ० ८०।

पुस्तक लिखनी पडी। श्री माधव पडित ने ठीक ही लिखा है कि "यह मात उपनिषद् श्री अरविन्द के साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।"[1]

श्री अरविन्द ने स्पष्ट शब्दों में कहा—"श्री मा और मेरी चेतना के बीच का विरोध पुराने दिनों का आविष्कार था (जिसके कारण मुख्यतया क्ष, त्र तथा उस समय के अन्य लोग थे) यह विरोध उस समय पैदा हुआ, जब आरम में यहाँ रहने वाले लोगों में से कुछ एक श्री मा को पूर्ण रूप से नही पहचानते थे या उन्हें स्वीकार नही करते थे। और फिर उन्हें पहचान लेने के बाद भी वे इस निरर्थक विरोध पर अडे रहे और उन्होंने अपने आपको और दूसरों को बडी हानि पहुँचाई। श्री मा की और मेरी चेतना एक ही है। एक ही भागवत चेतना दोनों में है, क्योंकि लीला के लिए यह आवश्यक है। श्री मा के ज्ञान और बल के बिना, उनकी चेतना के बिना कुछ भी नही किया जा सकता[2]।"

श्री अरविन्द ने श्री मा की भागवती शक्ति का पूर्ण विश्लेषण करते हुए लोगों के मन की शकाओं और भ्रमों के निवारण का प्रयत्न किया और अन्तत यह निर्णय दिया कि श्री अरविन्द योग मार्ग की साधना की निर्देशिका एकमात्र श्रीमा हैं। उन्होंने लिखा—"तुम समझते हो कि श्रीमा तुम्हें कोई मदद नहीं दे सकती। और उनकी सहायता से तुम्हें कोई लाभ नही हो सकता, तो फिर मेरी सहायता से उससे भी कहीं कम लाभ मिलेगा। पर कुछ भी हो मैं अपनी इस व्यवस्था में, जिसे मैंने बिना किसी अपवाद के सभी शिष्यों के लिए बनाया है कोई हेर—फेर नही करना चाहता। वह व्यवस्था यह है कि साधकों को श्री मा से ही ज्योति और शक्ति ग्रहण करनी चाहिए सीधे मुझसे नही, और अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए पथ प्रदर्शन भी उन्हीं से ग्रहण करना चाहिये। यह व्यवस्था मैंने किसी सामयिक उद्देश्य से नही की है बल्कि इस कारण की है (यह देखते हुए कि श्री मा क्या हैं और उनकी शक्ति क्या है) यही एक तरीका है जो सच्चा और फलप्रद है, बशर्ते कि शिष्य बराबर खुला रहे और ग्रहण करता रहे[3]।"

ये सारी चीजें १९२६ के बाद लिखी गयी जब श्री अरविन्द ने सिद्धि प्राप्ति के बाद एकान्तवास लिया। उसके पहले उन्हें और श्री मा को जिन परिस्थितियों के बीच से गुजरना पडा, उसकी एक झलक पहले ही दे दी गयी है। उन्होंने स्थितियों की ओर अनेक सकेत दिये है। "अनुशासन तथा विकास के बिना स्वातन्त्र्य प्राप्त करना तो विरलों के ही भाग्य में बदा होता है। श्री मा और मैं वर्षों तक जीवों की स्वच्छा

१ अभीप्सा और अनुग्रह माधव पडित, श्री अरविन्दाश्रम पृ० २।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माताजी के विषय में, पृ० २१२।
३ वही, पृ० २१४।

पूर्व अपनाई गयी दरिद्रता में से गुजर थे।"[1]

सारांश यह कि श्री मां के आने के बाद श्री अरविन्द को न केवल अपनी साधना म प्रबल सहायता मिली, बल्कि उनके इर्द—गिर्द इकट्ठे तमाम लोगों का उत्तरदायित्व श्री मांने अपने ऊपर ले लिया। श्री माधव पंडित के शब्दों में—"समाज या समूह की आवश्यकताओं की दृष्टि से आश्रम जहां भी रूप ग्रहण कर हम साधकों के लिए यह हमेशा मातृगृह रहा ह और रहेगा। हम यहां आये क्योंकि हमारी मां यहां हैं, यहां रहते हैं, क्योंकि व यहां रहती हैं और हम उन्हीं का अनुसरण करेंगे न सिर्फ इस जन्म में बल्कि आनेवाले जन्मों में भी, व जहां रहेंगी, हम रहेंगे। हमारी सारी जिन्दगियां उनके साथ जुड़ी हैं जैसे आश्रम का पूरा जीवन उनके व्यक्तित्व से जुड़ा है। आश्रम की हर पत्ती, हर ईंट सिर्फ एक नाम गुनगुनाती है—श्रीमां, श्रीमां श्रीमां।"[2]

यह स्थिति उन दिनों नहीं थी। श्री मां अपनी गूढ़ शक्तियों को छिपाए हुए सिर्फ अपने मानवीय सीमा में बंधे रहने वाले, समझ में आने योग्य गुणों द्वारा सबको सम्र वित करने का प्रयत्न कर रही थीं। नलिनी कान्त और मणि लौट आये थे। नलिनी दा लिखते ह— मैं उन दिनों प्रतिवर्ष एक बार बंगाल जाया करता था उस बार की यह मेरी अन्तिम यात्रा थी। जाने के पहले मेरे मन में इच्छा हुई कि श्री मां से मिल लूं। श्री मां अपने एकान्त से बाहर नहीं आई थीं और तब तक श्री अरविन्द ने उन्हें तवास नहीं लिया था अतः मैंने श्री अरविन्द को पत्र लिखा कि मैं उनसे मिलना चाहता हूं। उस वक्त तक हम उन्हें श्री मां नहीं कहते थे। आजकल जिस कमरे में चम्पकलाल रहते हैं श्री मां रहा करती थीं। मैं प्रोस्परिटी रूम (समृद्धिगृह) में उनकी प्रतीक्षा करता रहा। तभी वे आयीं और दरवाजे के सहारे खड़ी हो गयीं 'मैं जा रहा हूं। मैंने कहा और साष्टांग उनके चरणों में लोट गया। यह मेरा प्रथम प्रणाम था। 'जल्दी आना' मां ने कहा। इस 'जल्दी आने' का मतलब मेरे लिये "हमेशा के लिये आ जाना" हो गया।

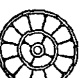
तब श्री अरविन्द स्पष्टतः मां को मिरा कहकर बुलाते थे। कुछ वर्षों तक यही चलता रहा, पर बाद म हमने देखा कि वे म कहते कहते रुक जाते। फिर थोड़े संकोच से मिरा कह देते। हमें यह उस वक्त अजीब लगता। बाद में हम उसका कारण समझ पाये। श्री अरविन्द के होठों पर मां शब्द आता था पर हमें अभी तैयार होना था इसलिये वे मां की जगह मिरा ही कहते। कोई नहीं जानता कि किस समय विशेष में, किस शुभ क्षण में श्री अरविन्द के होठों से श्री मां शब्द निकला। किन्तु वह अनिर्धारित क्षण निश्चय ही दिव्यता का क्षण रहा होगा, मनुष्य और पृथ्वी के इतिहास में वह नियति का एक क्षण रहा होगा, क्योंकि उस क्षण भौतिक जगत में मनुष्य की बाह्य चेतना में

१ वही पृ० २२०।

२ मदर आफ लव भाग एक भूमिका पृ० १।

जगज्जननी की प्रतिष्ठा हुई[1]।

उसी क्षण से श्री माँ का आध्यात्मिक प्रतीक भी, जो द्वादश दल कमल का चक्र है, प्रतिष्ठित हो गया।



एक बार स्वयं श्री अरविन्द ने इसकी व्याख्या करते हुये लिखा—"१२ दल, १२ शक्तियों के स्पन्दन हैं जो अभिव्यक्ति के लिये अत्यावश्यक हैं। ये बारह स्पन्दन अक्सर श्री माँ के शिरामण्डल के इर्द गिर्द देखे गये हैं। सूर्य से निकलने वाली किरणें १२ होती हैं ७ नहीं। ग्रह आदि भी १२ हैं।"[2]

श्री माँ ने स्वयं इस विस्तृत विराट उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लिया, क्योंकि पृथ्वी चेतना का प्रतीक होने के कारण इसी उद्देश्य को वे अपना ध्येय और अभीष्ट मानती हैं। उन्होंने कहा है—"मैं तुम्हारे साथ जीवन के प्रत्येक स्तर पर, प्रत्येक तल पर, परा चैतन्य से लेकर अत्यन्त शारीरिक स्तर पर यहाँ तुम्हारे साथ विद्यमान हूँ। यहाँ पाण्डिचेरी में तुम मेरी चेतना में साँस लिये बिना साँस ही नहीं ले सकते। यह सूक्ष्म भौतिक में व्याप्त होकर १० किलोमीटर तक, झील के पार तक फैली है और फिर मेरी चेतना शारीरिक और प्राणिक स्तरों से ऊँचे उठ कर उच्चतर स्तरों पर सर्वत्र व्याप्त है।"

आश्रम के बच्चों के बीच बोलते हुए सम्बन्धों के बारे में उन्होंने कहा—'मेरे और तुम्हारे बीच वैयक्तिक संबंध है उन तमाम लोगों से जिन्होंने श्री अरविन्द और मेरी शिक्षाओं को स्वीकार किया है। इसमें दूरी की कोई बाधा नहीं तुम चाहे पास में हो या विश्व के किसी कोने में, चाहे पांडिचेरी में, यह सम्बन्ध हमेशा सच्चा और जीवन्त है। मैंने जिन्हें शिष्य रूप में स्वीकार किया है जिन्हें 'हाँ' कह दिया है, वहाँ संबंध से कुछ अधिक है, वहाँ मेरा अंश हमेशा क्रियाशील है। सच तो यह है कि मैं उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने को उत्तरदायी मानती हूँ जिस जीवन में मैंने एक सेकेण्ड के लिए भी देखा है[3]।'

साधनाचक्र

जैसा कि पहले कहा गया श्री पुराणी अरविन्द से १९१८ में ही मिल चुके थे, दुबारा १९२१ में मिलने पर उन्होंने लिखा—'मेरे लिए सबसे आनन्ददायक था और

१ [illegible] पृ० ८३।
२ श्री अरविन्द भाग १ तथा [illegible] के विषय में पृ० १७०।
३ श्री माँ, [illegible] भाग ? पृ० ५६।

विदका दास था। केवल दो वर्षों म भीतर उनके शरीर में ऐसा परिवतन आ गया था जिसे चमत्कार कहा जा सकता ह। १९१८ में उनके शरीर का रंग एक साधारण बगाली की तरह श्याम था, यद्यपि चेहरे पर तेज और आंखों में चमक थी। सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर जाकर उन्हें देखा कि कपोल गव की तरह लगते हैं पारदर्श हो गये हैं और सारा शरीर अत्यन्त मुलायम दिव्य ज्योति से भरा हुआ ह। मैं अपना बो रोक न पाया। आश्चय से पूछा—"आपको क्या हो गया है?" तुम्हें क्या हो गया है?" मुस्कराते हुये मेरे सवालकी टाल कर उन्होंने मेरी दाढ़ी की ओर सकेत करके कहा। मैंने इस अर्से में दाढ़ी बढ़ा ली थी बाद में उन्होंने बताया कि जब उच्चतर चेतना मानसिक से प्राणिक स्तर पर तथा उसके भी नीचे (शारीरिक) उतरती है तो स्नायुमंडल और परे शरीर में एक रूपान्तरण आ जाता ह।" इसी प्रकार की परिवर्तित स्थिति का बोध कपालि शास्त्री ने भी किया। उन्होंने भी उनके शरीर पर एक विचित्र प्रकार की चमक देखी थी। उस समय के आगन्तुकों म श्री जी० जी० सुब्बाराव ने श्री अरविन्द से मुलाकात की और एक भेंट-वार्ता भी प्रकाशित करायी। उन्होंने लिखा है—"अक्तूबर १९२३ में मैं श्री अरविन्द से पाण्डिचेरी के आश्रम में मिला। व एक गद्देदार कुर्सी पर बरामदे में बठे थे। वहां करीब एक दीवान कुर्सियाँ और एक छोटी मेज थी। जिसपर कागज, फूल और पुस्तकें थी, एक घड़ी भी रखी थी क्योंकि यहां कोई भी काम निश्चित समय से हटकर अक्रमबद्ध नहीं होता। श्री अरविन्द एक चकाचौंध करनेवाली ज्योति से दीप्त थे। उनका स्वर धीमा मगर स्पष्ट, और संगीतात्मक था। उनका वक्तव्य धाराप्रवाह और स्पष्टता में पारदर्शी था। सिर्फ १५ मिनट के वार्तालाप में उन्होंने अपने दर्शन को पूर्ण स्पष्ट कर दिया। मुझे लगा जैसे व एक नजर में ही किसी भी आदमी का पूर्णत समझ जाते हैं और लगा था फोटो देखकर उनकी मानसिक स्थिति का ज्ञान कर लेते हैं। वे समय के बारे में बड़े पाबन्द लगे और पन्द्रह मिनट की निर्धारित अवधि के बाद घड़ी देखते हुए खड़े हो गए। वे लगातार एक बच्चे की सरलता लिये हुए बोल रहे थे पर मुझे उनके व्यक्तित्व से यह पूरा भान हुआ कि आवश्यकता पड़ने पर वे बहुत दृढ़ और कठोर भी हो सकते ह।'[3]

श्री अरविन्द अपनी अतिमानसिक अवतरण की साधना म पूर्ण रूप से सलग्न थे। उसका परिणाम भी उनके व्यक्तित्व म नजर आने लगा था किन्तु यह परिणाम दूसरों के लिए जैसा भी क्रान्तिकारी और चमत्कार पूर्ण लगे उन्हें इससे कतई संतोष नहीं था चूंकि व शुरू स अत्यन्त तर्कपूर्ण सुनियोजित ढंग से काय करने के अभ्यस्त थे,

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो, पृ० २६३।

२ वही पृ० १९३।

३ यह श्री सुब्बाराव ने काकिनाडा में भाषण दिया था। रिपोर्ट सण्डे टाइम्स के ६ मई १९५१ के अंक में छपी थी।

इसलिए साधना के क्षेत्र में उनकी प्रक्रिया हमेशा क्रमबद्ध रूप से सोपान पर सोपान पार करते हुए, तथा उपलब्धियों की भावुकता रहित परीक्षा करते हुए निरन्तर आगे की ओर बढ़ते जाने की रही। अब तक भारतीय योग मोक्ष को परमोपलब्धि मानता रहा। उन्होंने अपने अध्ययन और योग से यह जाना कि सारी सृष्टि सच्चिदानन्द की लीला है। लीला की इस प्रक्रिया में कभी भी अतिमानसिक सत्ता भूतत्त्व से सम्मिलित नहीं हुई है। दूसरे किसी भी योग में परम सत्ता का अनुभव शरीर से बाहर नहीं, ब्रह्मरंध्र के भीतर ही होने की बात कही गई है। "अवतरण के अनुभवों के अभाव की व्याख्या मैं इस प्रकार करता हूँ कि पुराने योग्य मुख्यत अनुभव के अन्तर, अध्यात्म गुह्य (Psycho spiritual Occult) तक ही सीमित रहे जिसमें उच्चतर अनुभव मानो एक तरह से छाकर या प्रतिबिम्बित होकर निश्चल मन या एकाग्र हृदय के अन्दर आते हैं। इस अनुभव का क्षेत्र ब्रह्मरंध्र के नीचे की ओर ही होता है। उसके ऊपर लोग समाधि या स्थितिशील मुक्ति की अवस्था में ही जाते हैं और उन्होंने किसी प्रकार का क्रियाशील अवतरण साधित नहीं किया। समस्त क्रियाशील अनुभव केवल आध्यात्मीकृत मानसिक और प्राणिक भौतिक चेतना के स्तर में ही हुआ। इस योग में चेतना (थोड़े बहुत अन्तर अध्यात्म गुह्य अनुभव के द्वारा निम्नतर क्षेत्र के तैयार हो चुकने के बाद) ब्रह्मरंध्र से ऊपर साक्षात अध्यात्म चेतना से सबंध रखने वाले ऊर्ध्व स्तरों की ओर उठती है और उन स्तरों की वस्तुओं का केवल ग्रहण करने के बदले वहीं निवास करना तथा वहाँ से नीचे की चेतना को पूरी तरह रूपान्तरित करना होता है, क्योंकि अध्यात्म चेतना की यह निजी क्रिया शक्ति है, जिसका स्वरूप है, ज्योति शक्ति आनन्द, ज्ञान और असीम विशालता, इसे अधिकृत करना होगा और सम्पूर्ण सत्ता में उतारना होगा।[१]

श्री अरविन्द इसी लक्ष्य के लिए लगातार प्रयत्नशील थे। "उच्चस्तरीय चेतना" में निवास करने की प्रक्रिया कोई जबानी जमा खर्च नहीं है कि जब चाहा उसमें निवास करने लगे। सम्पूर्ण जड़, प्राण, मन को लाँघ कर अतिमानस में प्रवेश करना और वहीं रहने का अभ्यास करना एक जटिल साधना है। श्री दिवाकर ने ठीक ही लिखा है कि 'बहुत कम लोग समझ पायेंगे कि अपनी उन्नत साधना की अवस्था में भी कितनी आस्था, एकाग्रता और व्यावहारिक प्रयोगशीलता उन्हें अपनी साधना में लगानी पड़ी। एक अदृश्य सत्ता को लक्ष्य बनाकर, एक महान कलाकार की तरह जो धैर्य और लगन से निरन्तर पूर्णता लाना चाहता है श्री अरविन्द अपनी प्रतीति (Vision) को रूपाकार देने के लिए लगातार श्रम करते रहे जो पूरा होने पर मानवता के लिए दिव्य अनुग्रह ले आयेगा।"[२]

१ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में पृ० १०१।
२ महायोगी, पृ० २०५।

आवाहन या हस्तक्षेप

इसी बीच कई बार महान् देशभक्त और श्री अरविन्द के साथियों ने जो निरन्तर इस बात की प्रतीक्षा में थे कि वे शीघ्र ही पांडिचेरी से लौटकर भारतीय राजनीति का कार्य सम्भालेंगे, उनका आवाहन करते रहे। कपर्दिस्ता ने जो प्रसिद्ध बैरिस्टर और तिलक दल के नेताओं में एक थे तिलक के कहने पर श्री अरविन्द को पत्र लिखा कि वे शीघ्र पांडिचेरी के एकान्त से बाहर आए और नरमदल की निकलने वाली पत्रिका का संपादन ग्रहण करें। श्री अरविन्द ने जवाब कपर्दिस्ता को ५ जनवरी १९२० को अपनी चिट्ठी में लिखा—

प्रिय कपर्दिस्ता

आपका आग्रह लुभानेवाला है पर मुझे दुःख है कि मैं उसे स्वीकार नहीं कर पाऊंगा। आपकी वजह से मुझे इसके कारणों पर विस्तार से लिखना पड़ रहा है। किसी राजनीतिक रुकावट के न होने हुए भी मैं अंग्रेज शासित भारत में लौटना नहीं चाहता। + + मेरे पास इतने अधिक काम हैं कि मैं सम्राट के हाउस का आतिथ्य स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे यदि स्वतंत्र रूप से रहने और कार्य करने की अनुमति मिल जाय तो भी मैं नहीं लौटूंगा। मैं पांडिचेरी में स्वतंत्र और शांत भाव से एक निर्दिष्ट कार्य को पूरा करने के लिए आया हूँ जिसका राजनीति से कोई संबंध नहीं है यद्यपि जो कुछ भी मैंने अपने देश के लिए अपने ढंग से कर सकता था किया है + + मैं राजनीतिक कार्यों को नीची दृष्टि से नहीं देखता और न ही मानता हूँ कि मैं उनसे ऊपर हूँ। मैंने हमेशा आध्यात्मिक जीवन को अधिक महत्व दिया है अब उसे पूर्ण महत्व देना चाहता हूं। मेरी आध्यात्मिकता का अर्थ संन्यासियों की तरह जगत से पलायन नहीं है न तो अनाध्यात्मिक चीजों के प्रति घृणा या वैराग्य का भाव ही है। मेरे लिए कुछ भी अनाध्यात्मिक नहीं है। मेरे लिए जीवन की हर क्रिया पूर्ण आध्यात्मिक जीवन का एक हिस्सा है और राजनीतिका इस दृष्टि से बहुत महत्व है। किन्तु मेरी राजनीतिक दृष्टि और तरीके सम्प्रति चालू दृष्टियों और तरीकों से अब बिलकुल भिन्न हो गये हैं। + + आप कहेंगे कि आप आकर नया नतत्व दीजिए। पर मेरे मस्तिष्क की आदत है कि वह चालू तरीकों से भिन्न समय के आगे आगे दौड़ता है। कुछ लोग आदर्शवादी जगत में इसे समय विरुद्ध भी कहते हैं + + मैं मानता हूँ कि भारत जिसकी अपनी विशिष्ट आत्मा है जो उसकी संस्कृति का अनुशासन करती है उसे योरोपीय राजनीति की नकल करके लड़खड़ाने की जरूरत नहीं है।[1]

इसी प्रकार का एक प्रयत्न डा० मुंजे ने किया कि श्री अरविन्द नागपुर कांग्रेस की

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो, पृ० १६२ १६३।

अध्यक्षता स्वीकार करें। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—"मैंने कभी भी कांग्रेस के प्रति अपनी आस्था की घोषणा नहीं की है और न अब करना चाहता हूँ क्योंकि मेरे विचार उससे नहीं मिलते। + + मैं अब मुख्यतः और प्रधानतः राजनीतिज्ञ नहीं रहा और मैंने अब एक दूसरे प्रकार का ऐसा काम शुरू किया है जिसका मूलाधार आध्यात्मिक है एक ऐसा क्रांतिकारी कार्यक्रम जो अध्यात्म के द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक पुनर्निर्माण करेगा और मैं निरन्तर उस दिशा में कार्य कर रहा हूँ या उनका निरीक्षण करता हूँ जो इतने व्यावहारिक और प्रयोगशाला में किये जाने वाले प्रयोगों की तरह हैं कि मैं उस ओर से एक सेकेण्ड के लिए अपना ध्यान और शक्ति हटा नहीं सकता।'[१]

यह पत्र अगस्त १९२० में लिखा गया था जो दिवाकर के उस कथन के पहले का है कि श्री अरविन्द की साधना वैज्ञानिक की तरह प्रयोगशाला में अपेक्षित जागरूकता और दृढ़ता से सचालित हो रही थी। वस्तुतः वे प्रचलित राजनीति से बिल्कुल सतुष्ट नहीं थे, यद्यपि अहम मसलों पर हमेशा अपने शिष्यों के साथ वार्तालाप में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे। उसके पहले भी सरलादेवी चट्टोपाध्याय ने श्री अरविन्द से मिलकर भारत लौटने के बारे में पूछा "क्या नहीं आप चलकर अपनी रेलगाड़ी खुद चलाते।" सरलादेवी ने कहा। "अभी मैं रेल की पटरियां बिछा रहा हूँ।" अरविन्द बोले। सरला देवी निराश होकर लौट गयी। जून १९२३ में चितरंजन दास पांडिचेरी आये थे, पर श्री अरविन्द के लिए अब राजनीति में लौटना असंभव था। इस प्रकार का अंतिम प्रयत्न लाला लाजपत राय ने किया। उनके साथ डा० निहालचन्द कृष्णदास और पुरुषोत्तम दास टंडन आये थे। यह भेंट ५ फरवरी १९२५ को हुई। श्री अरविन्द और लाजपत राय ४५ मिनट तक एकान्त में वार्ता करते रहे। जब वे दोनों बाहर आये तो देखने से लगा कि उनमें अनेक विचारों पर सहमति हो गई है। एक संदर्भ में श्री अरविन्द ने कहा—'सत्ता का लोभ हमेशा रहेगा। सत्ता में जाने के सभी दरवाजे बन्द करके इसे आप रोक नहीं पायगे। हमारे कार्यकर्ताओं को इससे परिचित होना होगा उन्हें राष्ट्र के लिए किसी पद पर जाकर काम करना सीखना होगा। स्वराज्य के बाद यह कठिनाई और बढ़ेगी। ये चीजें योरोप में भी हैं, वहां के लोग हमसे भिन्न नहीं हैं, फिर भी वे जानते हैं कि अनुशासन क्या होता है और उनके पास राष्ट्रीय गौरव का जो बोध है, वह हमारे पास नहीं है।'[२]

स्वतन्त्रता के बाद उनकी यह भविष्यवाणी कितनी यथार्थ साबित हुई इसे सभी जानते हैं। यह भविष्यवाणी का नहीं, उनकी अनन्त को चीर कर सत्य को देखने वाली दृष्टि का परिणाम था जिससे अनेक बार परिचित होते हुए भी स्वतन्त्रता के बाद कभी उसका उपयोग नहीं किया गया। १९२४ में तो काकिनाडा कांग्रेस से लौटते

१ वही पृ० ८०।

२ इविनिंग टाक्स, प्रथम भाग, पृ० ६५।

हुए कई लोग पाडिचेरी आये। उनका श्री अरविन्द के कई शिष्यो से परिचय था। कुछ बाता पर उनका फ्रासीसी पुलिस से झगडा हो गया। श्री अरविन्द को स्वय हस्त क्षेप करना पडा उन्होने पुलिस से स्पष्ट कह दिया कि वह अपने कानून के अनुसार जो चाहे व्यवहार करे उनसे आश्रम का कोई सबध नही है। इसे खोजकर उन्होने अपने काय म विरोधी शक्तियो का उत्पात कहा था। महात्मा गाधी ने आश्रम के साधक हरिभाई अमीन से जुहू में पूछा था—"श्री अरविन्द बाहर कब आ रहे हैं?" श्री अमीन ने यह भी बताया कि महात्मा गाँधी ने देवदास को भेजा था पर श्री अरविन्द ने उन सवालो का जो जवाब दिया उसके बाद मैं उनसे मिलने की इच्छा नही रखता।" १७ अगस्त १९२४ को शिष्यो ने देवदास द्वारा पूछे गये प्रश्नो और उनका उत्तर जानना चाहा। श्री अरविंद ने कहा— मुझे सिर्फ इतना याद पड़ता है कि उन्होने अहिंसा पर मेरे विचार जानने चाहे। मैंने कहा—"कल्पना कीजिए यदि भारत पर अफगानो का आक्रमण होता है तो आप अहिंसा से इनका सामना कैसे करेंगे? बस, मुझे इतना ही याद है। कोई दूसरा प्रश्न उन्होने नही पूछा।[1] और शायद इस पर यह कहने की आवश्यकता नही कि अफगानो ने भले ही आक्रमण नही किया पर आक्रमण हुए और उनका प्रतिरोध भारत सरकार ने गाँधी जी के अहिंसा मार्ग से नही किया।

जब नन्दन वन उजड गया

१९२६ की सिद्धि के पहले की बात है। श्रीमा श्री अरविन्द के साथ रहने लगी थी सारे क्षुद्र वात्याचक्रो से पाडिचेरी मुक्त हो गया। नलिनी कान्त गुप्त के शब्दो में कहूँ तो यह कि "श्रीमाँ की उपस्थिति ने लगता है प्रकृति की जगली ताकतो को काफी पस्त कर दिया है।'[2] इसमे कोई आश्चय नही कि साधक मनीसी का यह वाक्य काफी लाक्षणिक अर्थों से भरपूर है। जो हो अचानक पाडिचेरी में नन्दन वन की हवायें चलने लगी। चारों ओर खुशी उल्लास और सात्विक शक्तियो का सुमनस्क वातावरण। किसी जमाने म ऋग्वैदिक ऋषि ने प्राथना की थी

विश्वदानी सुमनस ! स्याम पश्येम नु सूयमुच्चरन्तम। [ऋक्० ९।५२।५]

हम सदा सुमनस आनन्दित और मुदित रहते हुए उदित होते हुए सूय का देखते रहें। कौन कहता है कि पाडिचेरी का सूर्योदय कम आकर्षक होता है। मैंने स्वय ब्राह्ममुहूत के झुटपुटे में समुद्र की नानाभगिमा में नर्तित लहरो की क्रीडा देखी है और ज्यो ज्यो सूर्योदय निकट आता जाता है समुद्र की ये सर्पिल फुफकारती लहरें नाना रग धारण करने लगती हैं स्याहश्वेत, भूराश्वेत, पीताभश्वेत, अरुणाभश्वेत और अन्तत वासन्ती स्वर्णाभश्वेत।

[1] वही पृ० ६४।
[2] रेमिनिसेंसेज गुप्त अमृता पृ० ६६।

उन दिनों पांडिचेरी में शाश्वत वसन्त का उदय हुआ। अचानक सर्वत्र आनन्द का साम्राज्य छा गया। इस स्थिति का ध्यान आते ही कालिदास के " सद्य प्रवालोद्गम चारुपत्रे ' वसन्त की याद हठात आ जाती है। साधकों ने अनुभव किया कि "यह वातावरण अत्यन्त विशिष्ट, बहुत ही सघन था। उन्हें आश्चर्य जनक अनुभूतियाँ हो रही थीं, मानो वे क्रीडारत हों, दिव्य आकृतियों का अवतरण हो रहा था प्राकृतिक नियमों ने मानो छूट दे दी हो। भौतिक जगत और चेतना के दूसरे लोकों के बीच का पर्दा बहुत झीना हो गया था जिसके कारण मानसापरि जगत की शक्तियाँ, देवगण प्रकट हो सकते थे और प्राकृतिक नियमों को बदल कर चमत्कार उत्पन्न कर सकते थे। यदि चीजें इसी ढंग से भी चलती रहती तो श्री अरविन्द और श्रीमाँ बहुत आसानी से एक नया सम्प्रदाय खड़ा कर लेते और इस तरह का एक आश्रम बना लेते जैसे, तथा कथित 'उच्च स्थान' कहा जाता, जहाँ आध्यात्मिक सुगंध बहुत सस्ती ख्याति में बदल जाती है। ऐसी ही उल्लासदायी एक घटना का जो तुरंत घटी थी, श्रीमाँ श्री अरविन्द से वर्णन कर रही थी कि वे विनोदपूर्वक बोले 'हाँ यह बड़ा दिलचस्प है। तुम चमत्कार करोगी और इससे हम सारे विश्व में तुरंत प्रसिद्ध हो जायेंगे। तुम सांसारिक घटनाओं को अस्त-व्यस्त करने में सफल हो जाओगी।" श्री अरविन्द मुस्कराये— पर यह एक मानसापरि सृष्टि है यह तो सर्वोच्च सत्य नहीं है। यह सफलता हमें नहीं चाहिए। हम तो एक नये जगत के निर्माण के लिए पृथ्वी पर अतिमानसिक सत्ता को ले आना चाहते हैं।'

सिर्फ आधा घंटे बाद सभी कुछ धूलिसात कर दिया गया। "मैंने कुछ नहीं कहा, एक शब्द भी नहीं ' श्रीमाँ उस घटना का वर्णन कर रही थी— आधे घंटे में मैंने सब कुछ ध्वस्त कर दिया। मैंने शिष्यों और देवताओं के बीच के सम्पर्क-सूत्र को काट दिया, सब कुछ तोड़ डाला। क्योंकि मैं जानती थी कि जब तक ये चीजें यहाँ रहेंगी, इतनी आकर्षक [लोग आश्चर्यकारी घटनाएँ लगातार देख रहे थे] तो लोग इन्हें ही चलाते रहने के लोभ में पड़ेंगे।' [1]

नन्दन वन उजड़ गया। एक धक्के से सारा मंजर हवा हो गया। पुनः पांडिचेरी में समुन्दरी हवाओं का वही वात्याचक्र शुरु हो गया। नन्दन वन के ऊपर शिव की तृतीय दृष्टि टूट पड़ी हो जैसे—

तपः परामर्श विवृद्धमन्योर्भ्रूभङ्ग दुष्प्रेक्ष्य मुखस्य तस्य।
स्फुरन्नुदर्चि सहसा तृतीयादक्ष्ण कृशानु किल निष्पतात॥

अधिमानसिक चक्र

२६ मार्च १९२४ की सन्ध्यावार्ता में उन्होंने कहा कि इस योग का कभी भी पहले अभ्यास नहीं किया गया। कुछ यदि हुआ तो हम उसे हल्की तैयारी कह सकते

१ श्री अरविन्दो आर द एडवेंचर आफ कांशियसनेस पृ० ३३३ ३३५।

है। और यदि किसी ने सचमुच इसका प्रयत्न किया हो तो अब उसका क्रमभग हो चुका ह और वह समय के गत में खो गया ह। जाहिर ह कि इस तरह के कथनो पर उनके शिष्य चुप रहनेवाले नही थे। उ होन पूछा, हालाकि बाद में, और दूसरे सदभ में कि क्या ऐसा नही हो सकता कि अतीत में कभी अतिमानस का अवतरण हुआ हो, और बाद में वह फिर यहा से हट कर अपनी सत्ता में लौट गया हो। श्री अरविन्द ने कहा था—" यदि कोई अवतार हुआ ता अपनो प्रतिना निभाने आया। सत का भूतत्व म लाना उसका काय नही था। मैं यह कह सकता हू कि शायद इसके लिए कभी कोशिश हुई हो किन्तु यह कभी भी जगत में एक सक्रिय तत्व नही बना। इस सत्य को उच्चतर भौतिक में उतारना उतना मुश्किल नही ह जितना सीधे स्थूल भौतिक में। इसके लिए पथ्वी के नियमो में कुछ परिवतन लाना होगा—और वातावरण को इसके योग्य बनाना होगा। सवाल इसका नान रखने शक्ति रखने का नही, इसे उतार कर लाने का ह।' 'क्या आपका विश्वास ह कि ऐसा इस बार हो सकेगा ?" "हाँ, मैं जानता हूँ कि यह हो सकता ह पर मैं कोई भविष्यवाणी करना नही चाहता। मैं यह भी नही कह सकता कि यह होगा ही। पर मैं इतना कह सकता हू कि इस तरह का 'कुछ न कुछ' जरूर हो सकेगा। सन्देह मेरे मानसिक स्तर पर ह कही एक तरह की अनिश्चितता। सब कुछ-पर्दे के पोछे तैयार ह यदि मानसिक स्तर पर निश्चितता हाती तो यह चीज अब तक उपलब्ध कर ली गई हाती। जहाँ निश्चितता ह वहाँ सघप रत रहने की जरूरत ही नही होती। यह अब तक नही हुआ। क्योकि विरोधी शक्तियाँ अत्यन्त प्रबल थी।[1]

उपयुक्त कथन से कि मेर मानसिक स्तर पर कही सन्देह ह," अचानक 'सावित्री' के अश्वपति की याद आ जाती ह। आत्मसाक्षात्कार कर विश्व यापी, ब्रह्म सत्ता का सम्पक कर लेन पर भी वह अपनी साधना जारी रखता है क्योकि उसे लगता ह प्रभु को प्राप्त किये बिना बाकी सब व्यथ ह। वह अब नई साधना में लग जाता ह। प्रभु को कुछ धोखा देनेवाले हर विचार भाव, इच्छा को समूल नष्ट करता हुआ निगूढ स निगूढ पर्तो के भीतर छिपे सभी अवांछित तत्वा को उधेड उधेड कर बचे हुए सारे कुछ शुद्ध का उसने देवार्पित कर दिया वह निरन्तर आगे बढता गया। वह उस स्थिति का प्राप्त कर गया था जहाँ विचार और सत्य के बीच खाइ नही होती। वह हर आगम को प्रभु को क्रीडा मानकर चलता जा रहा था, तभी महाशक्ति ने उसे सावधान किया —

> अर आत्मा, अज्ञानी शरीर की महत अभीप्सा
> वाक जगत् जड से उठने वाली।

१ इवनिंग टाक्स २९ १२ १९३९।

तू क्से मानव के हित, मूकहृदय जो, माग रहा ह
क्यों भू पर ज्योति आत्मा बसे निरतर
जड पृथ्वी का, बोध रहित जो, भार कौन अवसरित करेगा
मैं रहस्य हूँ बोधगम्य जो कभी न होता
नाना सूर्यों के यात्रा पथ का केन्द्र बिन्दु मैं
कितना ह कमजोर मनुज, क्या वह असीम का भार सहेगा
समय पूव अवतरित सत्य पृथ्वी का ध्वस करेगा ।[1]

अपनी साधना के बारे में उन्होंने कहा था कि योगी को उच्चतर चेतना में निवास करना और वहा स्थित रहते हुए निम्न स्तरों का परिष्कार करना होगा—इसी बाध्यता के कारण २२ जनवरी १९२४ से सामूहिक ध्यान और शाम की गोष्ठिया बन्द कर दी गयी। इसस साधका का चिन्तित होना स्वाभाविक था। साधकों की सहायता के लिए मगलवार और शनिवार दो दिन ध्यान के लिए निर्धारित हुए। बाकी दिनों में सुबह लोग निश्चित समूहों में बैठकर प्रश्न आदि पूछ सकते थे। तात्पय यह कि श्री अरविन्द अधिक से अधिक अलभ्य होते गये। इसमे जहा एक ओर निराशा बढी, वही यह उत्कठा भी कि सभवत शीघ्र ही कोई बहुत बडी आध्यात्मिक महत्व की घटना होने होने ही वाली ह।

१५ अगस्त १९२८ को उन्होंने अपने जन्म दिन के अवसर पर जो भाषण दिया, उसमें भी ऐसे सकेत मिलते हैं, जो उनकी साधना और कठिनाइयों का हल्का सा परिचय देते ह। उन्होंने कहा—"हम एक ऐसे योग का अभ्यास कर रहे ह जो दूसरी पद्धतियों स बिल्कुल भिन्न ह। पुरानी पद्धतियों के हिसाब से आपको ज्ञान सवग, या इच्छाशक्ति म से किसी एक को चुनना होता था या फिर पुरुष (ब्रह्म) और प्रकृति (माया) को अलग अलग करने का प्रयत्न करना होता था। इसके माध्यम से हम असीम चैतन्य को या सवप्रिय सवशक्तिमान को ईश्वर को या असीम निर्वैयक्तिक इच्छाशक्ति को या शान्त शून्य ब्रह्म को अपने सीमित ज्ञान, सवेग (भक्ति) भावात्मक सत्ता, या इच्छाशक्ति अथवा व्यक्तिगत पुरुष को अतिक्रान्त करके उपलब्ध कर सकते थे। हमारा योग निर्वैयक्तिक असीम चैतन्य को, इच्छाशक्ति को या आनन्द को अपना लक्ष्य नहीं मानता, बल्कि हम एक ऐसी सर्वोच्च सत्ता को उपलब्ध करना चाहते हैं, जिसका ज्ञान हमारे सीमित असीम मानवीय ज्ञान के परे ह, जिसकी असीमशक्ति हमारी समूची इच्छाशक्तियों का स्रोत है और वह आनन्द जो कभी भी हमारे सवेगों के समूह के क्रियाशील रहते उपलब्ध नहीं हो सकता। + + हमारा प्राणिक शरीर बहुत धैर्यहीन और चतुर होता ह, यह चीजों को जल्दी से जल्दी

१ सावित्री तृतीय सस्करण प्रथम खड, पृ० ३०२, लेखक द्वारा अनूदित।

निवटा रखना चाहता है। इसमें बड़ी जबरदस्त प्रक्रिया होती है। अब सबसे पहले इसके लिए जरूरी है कि हम अपनी मानसिक और प्राणिक सत्ता को उच्चतर ज्योति और शक्ति के सामने पूर्णतः समर्पित कर दें।[1]

ये शारीरिक, प्राणिक और मानसिक उपायों को लाँघ कर, सब कुछ को त्रिगुणा समर्पित करके धन्यतर अपने मार्ग में बढ़ रहे थे। अतिमानसिक भूमिका में निवास करते हुए सभी निचले स्तरों को इस योग्य बना रहे थे कि वे उच्चतर चेतना के अवतरण के योग्य बन सकें। शरीर को साधना के लिए उद्यत करना इच्छाशक्ति के बल की बात है, किन्तु उसे अतिमानसिक या अधिमानसिक सत्ता के साथ जोड़ने के लिए तैयार करना कठिन व्यापार है। उन्होंने कहा— जब मैं मानसिक स्तर पर साधना कर रहा था तो आसान था क्योंकि मैं शान्त रहता। प्राणिक स्तर पर साधना यद्यपि उतनी आसान नहीं थी, फिर भी मजेदार थी। किन्तु शारीरिक स्तर पर साधना बड़ी कठिन है। यह प्राचीन योगियों द्वारा प्रायः छोड़ दिया गया अंग है, उन्होंने कि उद्धार का कोई प्रयत्न ही नहीं किया किन्तु प्रायः ही शारीरिक और शरीरप्राणिक की अपेक्षा की गयी। यह गन्दगी की लड़ाई जैसी प्रक्रिया है जहाँ कभी हार नहीं हो सकती या तो हम संघर्ष करें विजय पायें या ध्वस्त हो जायें, दूसरी कोई गति नहीं।[2] लोगों ने पूछा कि शरीर के नष्ट हो जाने में हानि ही क्या है? वे बोले — मेरी साधना में इस ध्वंस का अर्थ है पूर्ण ध्वंस। यदि प्राणिक या मानसिक ध्वंस होता है तो यह उतना खतरनाक नहीं है जितना शारीरिक ध्वंस। बीमारी या मृत्यु आदि की परवाह नहीं करता वे अत्यन्त स्वाभाविक प्रक्रियाएँ हैं पर मुझे उन पर ध्यान देना पड़ता है क्योंकि इनको स्वीकार करने का अर्थ योग प्रयत्न की पराजय स्वीकार करना है। निम्नगामिनिता हमेशा से ही भौतिक सत्ता के रूपान्तरण के प्रयत्न को विनष्ट करने के लिए सचेष्ट रही है और रहती है।[2]

२४ नवम्बर १९२६ सिद्धि दिवस

अन्त में बहुप्रतीक्षित दिवस आ गया। कई तो साल दो साल से सभी को लग रहा था कि कुछ महत्वपूर्ण घटित होनेवाला है। यही नहीं कुछ विकसित साधकों को लगातार एक खास तरह का दबाव भी महसूस होने लगा था, पर कौन सी वस्तु किस रूप में घटित होनेवाली है, इसे कोई भी नहीं जानता था। अधिकांश लोग सन्देहग्रस्त थे। प्रतिवर्ष "कुछ होने के" आश्वासन के बावजूद लोगों ने मान लिया था कि यह असम्भव को सम्भव करने का प्रयत्न विनष्ट हो चुका है। अब कोई सम्भावना नहीं है। यह भी मानवीय स्वभाव की विलक्षणता ही है कि वह किसी दूसरे मनुष्य के द्वारा किये जानेवाले ऐसे श्रमसाध्य कार्य के प्रति, जिससे सबका लाभ होता हो, शुरू में बड़ी

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० १९४-१९५।
२ वही पृ० १९६।

श्रद्धा और जिज्ञासा व्यक्त करता है, किन्तु असफलता की संभावना मात्र से ही कितनी जल्दी लोग अपने को उस व्यक्ति से अलग कर लेते हैं। लोग जानते थे कि श्री अरविन्द के सम्पर्क मात्र से या सिर्फ ख्याल कर देने भर से कई असाध्य मरीज स्वस्थ हो गये, पर शंकायें व्यक्त की जाती रहीं तो भी श्री अरविन्द इन शुभेच्छाजन्य कार्यों को यों ही करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अडिग बढ़ रहे थे। खन्दकें लांघी जा रही थीं, पहाड़ी दुर्गम रास्तों को तोड़ वे निरन्तर आगे बढ़ रहे थे। जो प्राप्त किया था, वह ऐसा नहीं था जो प्रत्यक्ष कराया जा सके—

मैंने चाहा था बनाना एक इन्द्रधनुषी सेतु
जो परिणीता बना दे पृथ्वी को आकाश की
और बो दे इस नाचती हुई तारिका के गर्भ में
शाश्वत की भावावस्थाएँ, मिजाज।
पर हमारे स्वर्गलोक बहुत दीप्त थे, सुदूर थे
उनका सूक्ष्म ईथरोपकरण बहुत कमजोर था
हमारी ज्योतियां बहुत सुन्दर पर अचानक थीं
जो ठहरती न थीं देर तक
जड़ें धँसी न थीं अपनी बहुत गहराई में।[1]

उनका श्रम सचमुच किसी भी देवता से कम न था, यह अलग बात थी कि उनकी अपनी उपलब्धियां सबको आश्वस्त बना सकने की स्थिति में नहीं थीं, इसलिये यदि लोग अब भी शंकाग्रस्त थे तो इसमें आश्चर्य क्या। पर वे लगातार भूतत्व के पथरीले, जाड्यग्रस्त भोथरे स्तर को तोड़-तोड़ कर जड़ों को गहराई में ले जाने के लिए प्रयत्नशील बने रहे। और तब वह समय आया। २४ नवम्बर को श्रीमां ने आवाहन की घंटी बजा दी। सूर्यास्त हो रहा था। सभी अपने सन्ध्याकालीन कार्यक्रमों में व्यस्त थे। कुछ लोग समुद्रतट पर घूमने चले गये थे। श्रीमां ने सबको कहला दिया कि सभी लोग जल्दी से जल्दी बरामदे में, जहां पहले सामूहिक ध्यान हुआ करता था, एकत्र हो जायें। समाचार पूरे आश्रम में फैल गया और शाम ६ बजे तक सभी आश्रमवासी शिष्य बरामदे में इकट्ठे हो गये। बरामदे में श्री अरविन्द के कमरे वाले दरवाजे के पास दीवाल पर एक काला रेशमी पर्दा लटक रहा था जिस पर सुनहले लाल से एक तान्त्रिक चित्र बना था। इस चित्र में तीन चीनी ड्रैगन बनाये गये थे जो एक दूसरे की पूँछ अपने मुँह में दबाए हुए चक्राकार घूमते हुए से लगते थे। ड्रैगन चीनी पौराणिक कथाओं में पाँच शक्तियों का प्रतीक माना गया है। 'ड्रैगन के पंजे की पांच अंगुलियां पांच शक्तियों की द्योतक हैं। ये सर्वोच्च ज्ञान, गंभीरतम समझदारी, उच्चतम

१ श्री अरविन्द की 'ए गाडस लेबर' (देवता का श्रम) कविता का अंश लेखक द्वारा अनूदित।

साहस, अदम्य इच्छा शक्ति और अविकृत सद्गुणों के परिचायक हैं ।"[1]

ईसाई सर्प से बिल्कुल भिन्न पूर्वी देशों में ड्रगन' या सर्प दिव्यता के संरक्षक और अमरता तथा ज्ञान के प्रतीक माने जाते हैं । भारत में नाग, बौद्ध कथाओं में वर्णित नाग तथा चीनी ड्रगन, सभी देवशक्ति के अथवा अर्धदैविक सत्ता के प्रतीक थे । मिश्र, बेबिलोन, तथा इसराइल की पुराणकथाओं में भी ये ज्ञान और ज्योति के प्रतीक माने जाते रहे हैं । मदाम ब्लेवात्स्की ने लिखा है कि ड्रगन सूर्य अथवा परमोच्च देवता से भी सबंधित माना जाता रहा है ।[2] भारत में सर्प प्रायः मंदिरों के द्वार पर अंकित होते हैं और दिव्यशक्ति के द्वारपाल या संरक्षक माने जाते हैं ।

पुराणों ने लिखा है—"हम लोगों को बाद में पता चला कि चीन में एक भविष्य वाणी प्रचलित है कि सत्य उस दिन पृथ्वी पर अवतरित हो जायेगा जब तीन ड्रगन, जो क्रमशः पृथ्वी, मन और आकाश की क्षेत्रीय शक्तियां हैं, एक साथ मिल जायेंगे । और आज २४ नवम्बर को चूंकि सत्य पृथ्वी पर अवतरित हो रहा था, इसलिये इस चित्र का एक विशेष अर्थ और महत्व था[3] ।

शिष्य आकर बैठ गये । एक गंभीर शांति चतुर्दिक फैली हुई थी । अनेक ने स्पष्ट देखा कि ज्योति का समुद्र आकाश से अवतरित हो रहा है । वहां पर उपस्थित सभी ने एक विशेष प्रकार के दबाव का अनुभव किया । सारा वातावरण एक प्रकार की विद्युत शक्ति से भरा भरा था । उस शांत शक्तिसंचरित वातावरण में 'टिक' की आवाज हुई और श्री अरविन्द का द्वार खुला । अधखुले द्वार से श्रीमां और श्री अरविन्द को स्पष्ट देखा जा सकता था । श्रीमां ने श्री अरविन्द को संकेत किया कि वे द्वार से बाहर चलें । श्री अरविन्द ने संकेत से पहले श्रीमां से बाहर आने का आग्रह किया । श्रीमां अत्यन्त मर्यादित ढंग से द्वार से बाहर निकलीं, उनके पीछे श्री अरविन्द आये । श्री अरविन्द की कुर्सी के सामने की छोटी मेज आज हटा दी गई थी । श्री अरविन्द अपनी कुर्सी पर बैठे । मां श्री अरविन्द के दक्षिणी पार्श्व में स्टूल पर बैठीं । एक विचित्र जीवन्त शांति व्याप्त थी । उस दिन करीब ४५ मिनट ध्यान चलता रहा । एक के बाद एक शिष्य उठते और श्रीमां को झुककर प्रणाम करते । श्रीमां आशीर्वाद देने के लिये हाथ उठातीं । श्री अरविन्द श्रीमां के हाथ के पीछे अपना हाथ उठा देते मानो वे श्रीमां के आशीर्वाद के द्वारा अपना

१ एस्ट्रोलोजिकल मैगजीन मार्च १९६३ पृ० २९३ ।

२ The Dracontia once covere the surface of the Globe and these temples were sacred to the dragon only because it was the symbol of sun which in turn was the symbol of the highest God
Isis Unveiled Newyork 1889
Part I P 554

३ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० २११ ।

आशावाद भी दे रहे हैं। आशीर्वाद की समाप्ति पर पुन ध्यान का क्रम चला। इस शान्त ध्यानावस्था में कई साधकों का स्पष्ट अनुभूतिया हुई। जब यह उत्सव समाप्त हुआ तो लगा जैसे सभी दिव्य सपने से जाग्रत अवस्था में आ गये ह। तभी सबने इस अवसर की महत्ता इसकी कविता और सुन्दरता का बोध किया। ऐसा नही कि पृथ्वी के एक कोने में थोडे से शिष्यो ने अपने सर्वोच्च गुरु और मा से आशीष पाई बल्कि उसी क्षण एक उच्चतर दिव्यचेतना पृथ्वी पर अवतरित हो गई और उस शान्ति की क्रोड में महान अध्यात्मिक क्रिया कलाप का एक छोटा सा वट बिरवा उग आया।[1]"

उसी समय दत्ता आवेश में बोल पडी थी— भगवान आज भौतिक स्तर पर उत्तर आये है।'

श्री अरविन्द ने १९३५ के अक्तूबर में लिखा था—'२४ नवम्बर १९२६ को श्रीकृष्ण का भूतत्व में अवतरण हुआ था। अतिमानसिक ज्योति का नही। श्रीकृष्ण के अवतरण का अर्थ ह अधिमानसिक ईश्वरीय सत्ता का अवतरण जिससे अब अतिमानसिक सत्ता के अवतरण म सहायता मिलेगी। श्री कृष्ण आनन्दमय हैं वे अधिमानसिक सत्ता से ऊपर की विकास प्रक्रिया में सहायक ह और वे ही अतिमानसिक आनन्द की ओर इस विकास का निर्देशन कर सकते ह।'

२४ नवम्बर १९२६ यानी श्री अरविन्द का सिद्धि—दिवस।

२४ नवम्बर १९२६ को अधिमानसिक चक्र का पृथ्वी पर प्रवतन हुआ। और एक ऐसा ही २४ नवम्बर था १९२० का जब श्रीमा श्री अरविन्द के गृह म आ गई थी जिसे लेकर प्रबल वात्याचक्र उठ खडा हुआ था। कौन कहता ह कि सत्याओं के पीछे कोई रहस्य नही होता। ईश्वरीय विधान कभी-कभी इस प्रकार तिथियो को अपनी रहस्यमयता से नया अर्थ दे दिया करता ह।

नई मानवता की प्रयोगशाला

सिद्धि दिवस के बाद से श्री अरविन्द ने पूर्ण एकान्तवास ग्रहण कर लिया। इस समय से लेकर १९५० के दिसम्बर तक यानी करीब २४ वर्ष उन्होंने एकान्त में ही व्यतीत किये। इन्ही २४ वर्षों में श्री अरविन्द आश्रम एक महत्वपूर्ण सगठित प्रयोग शाला के रूप में सामने आया।

श्री अरविन्द इस साधना केन्द्र को आश्रम कहने के पक्ष में नही थे। उन्होने स्वय लिखा है—'शुरू-शुरू में यहा कोई आश्रम नही था, केवल कुछ लोग श्री अरविन्द के साथ रहने और योग-साधना करने के लिये आये थे। श्रीमा के जापान से आने के कुछ समय बाद ही इसने आश्रम का रूप धारण किया और इसका कारण श्रीमा या श्री अरविन्द की कोई योजना नही थी, बल्कि उन साधकों की इच्छा थी जो अपना

१ लाइफ आफ श्री अरविन्दो पृ० २११।

समस्त आन्तरिक और बाह्य जीवन श्रीमा को सौंपना चाहते थे। जब आश्रम का विकास होना प्रारम्भ हुआ, उसके संगठन का भार श्रीमा पर आ पड़ा। श्री अरविन्द ने शीघ्र ही एकान्तवास ले लिया और सम्पूर्ण भौतिक तथा आध्यात्मिक कार्य का भार श्रीमा पर आ पड़ा।[१]"

श्रीमा ने भी अपनी एक बहुत पुरानी इच्छा की पूर्ति के लिए आश्रम को यह रूप दिया। "किसी भी बाहरी साधन से किसी भौतिक उन्नति या सामाजिक परिवर्तन से, मनुष्य का सच्चा क्रमोन्नत विकास नहीं किया जा सकता ऐसा विकास जो उसे उस आनन्द की ओर ले जाय जो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। सच पूछा जाय तो व्यक्ति की आन्तरिक और गंभीर पूर्णता ही सच्चा विकास ला सकती है, जो वस्तुओं की वर्तमान स्थिति को पूर्णरूप से बदल सकती है तथा दुःख और दैन्य की अवस्था को एक प्रशांत और स्थायी तृप्ति की अवस्था में रूपान्तरित कर सकती है[२]।" चूँकि सब प्राणियों के हृदय में प्रज्ज्वलित दिव्यज्योति एक ही है अतः श्रीमा कहती हैं कि ज्योति को ज्योति ही आकृष्ट करती है और इसका परिणाम होता है समस्त जीवों की मूलभूत एकता और उनका मेल मिलाप और भ्रातभाव।"[१] इस तरह अपने को पहचाने और अपने भीतर की ज्योति से जागृत हो तो एक नये समाज की रचना संभव है। इसलिए श्रीमा चाहती हैं— नवीन जाति के भगवान के पुत्रों की जाति के फूलने फलने के लिए किसी अनुकूल स्थान पर आदर्श समाज की स्थापना करना।[३] 'श्रीमा की सभी इच्छाएँ भारत आगमन के पूर्व ही व्यक्त हुई थी। यहाँ आने पर इन्हीं चीजों के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने कहा—"अपने इस पार्थिव अस्तित्व की शुरुआत से ही मैं ऐसे लोगों से मिलती रही हूँ जो कहते रहे हैं कि उनके भीतर उत्कट अभीप्सा है पर वे विकास नहीं कर पाते क्योंकि वे निरन्तर अपनी जीविका प्राप्ति की निर्मम आवश्यकता की गुलामी के लिए मजबूर हैं। मैं उस समय बहुत कम वय की थी तब मैं अपने से ही कहा करती कि यदि संभव हुआ तो एक दिन मैं एक ऐसी छोटी सी दुनिया बनाऊँगी, जहाँ आदमी को अपने को भोजन वस्त्र और शरणस्थल तथा जिन्दगी के दूसरी जरूरतों को खोजने की व्यस्तता से बरी रख सकूँ और देखूँ कि इस तरह उनको उन्मुक्त की गई शक्ति, भौतिक अस्तित्व को बनाये रखने की चिन्ता से मुक्त होकर, दिव्यजीवन और आन्तरिक संसिद्धि को प्राप्त करने के लिए अपने आप उधर को प्रवाहित हो सके।[४]

श्रीमा ने इन स्वप्नों को साकार करने के लिए अपने को पूर्णतः आश्रम के सारे उत्तरदायित्वों के वहन के लिए समर्पित कर दिया। आरंभ में कुछ थोड़े से लोग थे

१ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माताजी के विषय में, पृ० १२०।
१ वर्ड्स आफ दी मदर पृ० ८९।
२ मातृवाणी भाग १ पृ० ७।
३ द मदर आफ लव एम० पी० पण्डित खंड १ पृ० १०।

जो श्री अरविन्द के साथ गृहस्था की तरह रहते थे। १९२० में श्री मा के आने के बाद यह सख्या लगातार बढने लगी। यह सख्या धीरे धीरे इतनी बढ गयी कि एक सामूहिक जीवन रूपायित होने लगा और उसकी आवश्यकताओ के उपयुक्त बडे पैमाने पर कुछ प्रबंध करना आवश्यक हो गया। कुछ और मकान किराये पर लेने पडे, और स्वास्थ्य की दृष्टि से सफाई आदि का प्रबंध करने के लिए और व्यवस्थित जीवन के लिए कई कार्यों का इतजाम करना पडा। इस ही श्री अरविन्द आश्रम का आरभ कहा जा सकता है। १९२६ की बात है श्री अरविन्द ने आश्रम का सारा भार श्रीमा को सौंप कर पूर्ण अवकाश ग्रहण कर लिया। यह आश्रम इसाईधम, बौद्धधम, या बाद के हिंदू-मत के सगठित सम्प्रदायों जैसे आन्दोलना द्वारा प्रसूत धार्मिक सस्थाओ की अपेक्षा प्राचीन काल के वशिष्ठ, कण्व के आश्रमो से अधिक सादृश्य रखता है, इसमें एक बात और है कि वह आधुनिक समय के अनुकूल भी हुआ है।[१]

श्री अरविन्द और श्री मा के निवास स्थान ९ रयू दला मारीन को केन्द्र मान कर इसी के इर्द गिर्द किराये पर या खरीदकर लोगो के आवास और अन्य कार्यों के लिए एक के बाद एक नये मकान जुडते गये। वर्तमान आश्रम चार मकानो से बना है मेडिटेशन हाउस, (ध्यान भवन) सेक्रेटेरिण्ट, रोजरी, तथा लाइब्रेरी हाउस। समाधि इन चारो मकानों के बीच प्रागण में है। इसी का अब श्री अरविन्द आश्रम का मूल केन्द्र कहा जाता है।

श्री अरविंद योग में जिस प्रकार जीवन से कहीं से भी अलगाव आदिष्ट नहीं है, उसी तरह पाडिचेरी नगर के क्रियाकलापो से आश्रम के मकान अलग नहीं है बल्कि कहना चाहिए कि पाडिचेरी नगर के विभिन्न मुहल्लो में फैली ये इमारतें जीवन के संघर्ष में श्री अरविन्द की क्रिया प्रणाली के परीक्षण का केन्द्र है। सामान्य जीवन में घुले मिले पर उसे निरतर दिव्यता की ओर रूपान्तरित करनेवाले ये आवास जीवन के महासमुद्र में अलग-अलग जलयान की तरह दिखाई पडते है। अधिकाश के लिए विशाल सामूहिक भोजनालय है जहा का सारा कार्य साधक ही करते है। इस समय आश्रम दो सौ से अधिक इमारतो में फैला है जिनमें योग साधना के केन्द्र, पुस्तकालय, मुद्रणालय शारीरिक शिक्षण केन्द्र, स्टूडियो, मोटर वर्कशाप, लघु उद्योग धधो के विभिन्न केन्द्र, दुग्धशाला, गोशाला, कुक्कुट पालन केन्द्र, लाड्री, रोटी बनाने का कारखाना, जूता निर्माण का कारखाना तथा अनेक लम्बे चौडे खेल मैदान, प्रेक्षागृह, कलाकेन्द्र पुष्प बगान, कृषि क्षेत्र, तथा अतिथिशालायें सम्मिलित है। एक नयी प्रकार की शिक्षा की प्रयोगशाला श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विद्या केन्द्र, तथा एक नया नगर 'आरोवील इसी आश्रम से सम्बद्ध बडे विस्तृत योजना के परिणाम है। प्रकाशन तथा पुस्तक विक्रय,

१ श्री अरविन्द और उनके आश्रम का सदेश पृ० १७-१९।

विभाग तो आश्रम की जान ह ही। एक दजन से अधिक पत्रिकाए निकलती ह। बीस से अधिक भाषाओ म प्रकाशन होते रहते ह। आश्रम का अपना गह निर्माण विभाग ह जिसमें इटे और कक्रीट ब्लाक्स बनाने के कारखान ह इसमें बरतन बनाने का एक उपविभाग भी ह। सिलाई विभाग साधक और साधिकाओ के लिए पोशाक तैयार करने का काय करता ह। माटस-वक्स म मोटर और मशीनो की मरम्मत, स्टोव और स्प्रे (Stove and Spray) पेंटिंग के काम आदि होते हैं। एक फाउडी और लोहाखाना भी ह, जिसमें एक विभाग फिटरो का ह। कागज विभाग भिन्न भिन्न मोटाई के गत्ते तयार करता ह और इस दष्टि से तमाम रद्दी कागज और चिथडा तक को काम में लाया जाता ह। काम म आये हुए लिफाफों का इकट्ठा कर उनसे चिटो के पड बनाए जात ह। कई अतिथिशालाये ह जिनमें गोल्कुड एक चमत्कारिक प्रयोग ह। इसका निर्माण सयुक्त राष्ट्रसघ के विख्यात शिल्पी एम० ए० रेमा की अध्यक्षता में हुआ। ७०० स अधिक कमरो वाली यह इमारत एशिया में अपनी कलाकारिता के लिए प्रसिद्ध ह।

इस प्रकार हम देखते ह कि पूरा आश्रम आधुनिक जगत के सारे क्रिया-कलापों के भीतर से गुजरता हुआ श्री अरविंद के इस कथन को कि 'पूरा जीवन ही योग ह' चरिताथ करने के लिए प्रयत्नशील ह। सम्प्रति आश्रम में करीब १८०० साधक साधिकाएँ निवास करत ह। इस सख्या में निरतर वृद्धि हो रही ह इसमें न तो ८०० सौ से अधिक नियमित वेतन पर काय करनेवाले मजूर शामिल ह और न ता आरोबील म काय करनेवाले लोग। श्री अरविन्द आश्रम सही अर्थो में जाति धम रग रूप और राष्ट्रीयता आदि की सीमाओ स अछूता अन्तर्राष्ट्रीय मानवता का जो नई दिव्य चेतना को उपलब्ध क लिए प्रयत्नशील ह एक विराट प्रयोग शाला ह। यह श्रीमा का ही भौतिक कलेवर ह जिसके एक एक टुकडे को उन्होंने पूरा अपनत्व देकर निर्मित किया ह। यह सपूण क्रिया कलाप स्वतत्र मानवक्र के प्रवतन का साकार परिणाम ह।

समुद्री साझे और आँसे डूबी चिट्ठियाँ

पुरुषा वे समुद्र, श० ब्रा० ७।४।२५

वाग वै समुद्रो न वै वाक क्षीयते, ऐ० ब्रा०५।१६

वह पुरुष समुद्र है। उसकी वाणी समुद्र है। समुद्र की तरह ही उस वाणी में कभी कुछ घटता नहीं।

श्री अरविन्द का व्यक्तित्व अक्सर लोगों को रहस्यवादी लगता है। यह शायद भारतीय जनता की एक आदत हो गयी है, कि वह आध्यात्मिक पुरुषों को रहस्यवादी आवरण में लपेट कर ही अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति कर पाती है। थोड़ी बहुत ऐसी आदत और देश की जनता में भी होती है, पर जिस देश में सभ्यता के आरंभ से आज तक अनवरत आध्यात्मिक पुरुषों को जन्म देने में ही अपनी सर्जनात्मकता की अटूट शृंखला का प्रमाण दिया, वहाँ ऐसी आदत काफी भावुकतापूर्ण और विचित्र लगती है। कम से-कम इस देश में जहाँ नाना प्रकार की रुचियों, स्वभाव और ढंग ढर्रे वाले आध्यात्मिक लोग जन्मते रहे हैं जनता को उन्हें सही सही तरीके से जानने-पहचानने में दिक्कत नहीं होनी चाहिए थी। खैर।

खुद श्री अरविन्द का ही उदाहरण लें तो मालूम होगा कि उनके शारीरिक तत्त्व तक उनकी गहरी साधना के कारण आत्मिक पारदर्शी तत्त्व में बदल गये थे। ये चीजें बाहर से आनेवाले, सूक्ष्मता ग्राही व्यक्तियों जैसे के० एम० मुंशी कपालिशास्त्री रवि बाबू आदि को स्पष्ट प्रतिभासित हो गयी। मुंशी उनकी प्रकाशदायक उपस्थिति से, चालीस वर्षों के बाद मिलने पर भी बहुत ही अधिक प्रभावित हुए थे।[1]

श्री अरविंद का राजनीतिक व्यक्तित्व प्रायः प्रकाश में रहा, उस पर बहुत कुछ कहा गया है और कहा जा सकता है, किन्तु उनका योगी वाला व्यक्तित्व प्रायः एकान्तवास में व्यतीत हुआ और इन चालीस वर्षों की महान अवधि में हुए उनके व्यक्तित्व के परिवर्तनों और उपलब्धियों को आंक पाना कठिन कार्य है। जैसा कि श्री पुराणी ने लिखा है—' उनकी रचनाएं उनके मानसिक व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी प्रतिभा की सर्वोन्मुखीनता, बुद्धि की अतल स्पर्शिनी शक्ति अभिव्यक्ति की असाधारण क्षमता, उनकी गहरी ईमानदारी, उद्देश्य की एकनिष्ठता आदि उनकी रचनाओं के पाठकों के अनुभव में आ सकती हैं। वह मानसिक स्तर पर यह भी

१ इवनिंग टाक्स् प्रथम भाग, भूमिका पृ० ९।

देख सकता हूं कि वे कैसे ससीम में असीम को उतार लेते हैं। उनके व्यक्तित्व का एक दूसरा सत्यात्मक पक्ष आश्रम की संस्था के रूप में स्थूल रूप में देखा जा सकता है। किन्तु उनका बाह्य, या यों कहें मानवीय व्यक्तित्व प्रायः ही बाहरी लोगों के लिए अनजाना रह गया है।"[1]

इसी दृष्टि से सन्ध्या-वार्ताओं का अपना एक बहुत ही विशिष्ट और आकर्षक महत्त्व है। १९१३ में अरविन्द ४१ रयू फ्रांस्वा मार्तें में आकर रहने लगे। यहीं पर वे अपने मुलाकातियों से सुबह साढ़े नौ और साढ़े दस बजे के बीच मिलते। यहीं शाम के समय उनके साथ कुछ स्थानीय लोगों, नवागन्तुकों और उनके अन्तेवासियों की अनौपचारिक बैठकें जमतीं। उनसे नाना प्रकार के प्रश्न पूछे जाते। बहस-मुबाहिसे होते। १९२२ में जब वे श्रीमां के साथ 'रु ला मारीन' स्थित मकान में रह रहे थे, पुनः सन्ध्या गोष्ठियाँ होने लगीं। ये गोष्ठियाँ १९२६ में उनके एकान्तवास में जाने के बाद बन्द हो गयीं। किन्तु दैवदुर्विपाक कहें, या संयोग, १९३८ में नवम्बर दर्शन के कुछ समय पूर्व एक दुर्घटना में उनका पैर टूट गया। परिणामतः उन्हें काफी समय तक बिस्तर पर पड़ा रहना पड़ा। अतः शिष्यों के साथ वार्तालाप का कार्यक्रम फिर शुरू हो गया।

जिन दिनों ये गोष्ठियाँ स्थगित रहीं, उन दिनों भी वे लगातार अपने शिष्यों से पत्र-व्यवहार करते रहे। पत्र-व्यवहार भी ऐसा कि सोच कर ही आश्चर्य चकित हो जाय। वे रात में ३ बजे सुबह तक अपने शिष्यों को पत्रों का उत्तर देते। सुबह यह "दिव्य डाक" सबको बाँट दी जाती। एक बार उन्होंने मजाक में ही नीरदवरण को लिखा था— 'इतनी चिट्ठियों के लिखने वाले को सिर्फ इसी काम से ही अवतार मान लेना चाहिए था।"[2] उनकी लिखी ये चिट्ठियाँ प्रकाशित होकर सत्तरह सौ पृष्ठों में आई हैं पर अभी भी बहुत सी छपने से रह गई हैं।

श्री अरविन्द अपने साहित्यिक सृजन में दार्शनिक विश्लेषण और साधनात्मक विवेचन में अबूझ लगें, तो बात समझ में आती है, पर उनका व्यक्तित्व अबूझ नहीं रहना चाहिए था, क्योंकि सौभाग्यवश उन्होंने अपने शिष्यों के साथ इतना खुला बर्ताव किया और चीजों को, चाहे वे बड़ी अटपटी और बेढंगी ही क्यों न रही हों, पूछने का मौका दिया कि न चाहते हुए भी उनके आन्तर व्यक्तित्व का बहुत बड़ा हिस्सा जनता के सामने आ गया है। उनके शिष्य भी अद्भुत जीव थे। हमारी जनता की विभिन्न मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले ये शिष्य न सिर्फ पत्र-व्यवहारों और वार्तालापों में बहुत से झिझक और बेबाक थे बल्कि अपने गुरु से हर चीज पर उनकी प्रतिक्रिया जानने की इनकी मोर्चेबन्दी भी बड़ी बीहड़ और निर्मम हुआ करती थी। नीरद वरण

१ इवनिंग टाक्स्, प्रथम भाग भूमिका, पृ० २।
२ मदर इण्डिया, अगस्त १९७१, पृ० ४१६।

अपनी निकटता और मुंह लगेपन के कारण जिस अपनत्वमूलक आक्रामक भूमिका में आते हैं, उससे पुराणी का अन्दाज भिन्न है। पुराणी में भी सत्य को जानने की वही व्यग्रता और आकांक्षा है पर सकोच और मर्यादा का निरन्तर ध्यान भी। नीरदवरण वैज्ञानिक शिक्षण के भीतर से आये थे, इसलिए उनकी ठोस वस्तुवादी दृष्टि अपने ऊपर अध्यात्म और साधना के निगूढ तत्वों को न समझने की श्रद्धा में व्यंग्यात्मक मूढ़ता का आवरण डालने में सकोच न करते हुए भी सत्य को यथा संभव नग्न और अनावृत करने में निरन्तर तल्लीन दिखाई पड़ती है। पुराणी आरंभ से ही श्री अरविन्द के प्रति अटूट विश्वास से भरे थे। क्रांतिकारी आन्दोलन में आस्था रखने वाले पुराणी में एक कार्यकर्ता की आज्ञाकारिता का अद्भुत रूप दिखाई पड़ता है। वे एक ओर भारत की पराधीनता से बेहद उद्विग्न और दुःखी थे। उन्हें साधना की बात ठीक लगती थी पर उन्हें यह कहने में भी सकोच न था—"भारत जब तक आजाद नहीं हो जाता किसी भी तरह एकाग्र हो पाना कठिन है।"[1] और जब श्री अरविन्द ने कहा कि "मान लो कि तुम्हें आश्वासन मिल जाय कि भारत निश्चित स्वतंत्र होगा तो" तो पुराणी वयिमक कहते हैं—"कौन दे सकता है यह आश्वासन ?" यहाँ पुराणी का आन्दोलित मन आशंका के चरमबिन्दु पर है। और जब श्री अरविन्द अत्यन्त गंभीर मुद्रा में कहते हैं—"मान लो तुम्हें मैं यह आश्वासन दे दूं ?" पुराणी सिर्फ एक क्षण उनकी ओर देखते हैं और पूर्ण विश्वास से कहते हैं– 'यदि आप आश्वासन दें तो मैं मान जाऊँगा।[2] पुराणी का श्री अरविन्द में यह अटूट विश्वास सन्ध्या-वार्ताओं में सर्वत्र प्रतिफलित है, पर इसके कारण कहीं से भी सत्य को ठीक ढंग से जानने की उनकी प्रवृत्ति दबती नजर नहीं आती। साथ ही विश्वास और आस्था का भाव उन्हें यह कहने के लिए बाध्य भी करता है—"इन दस्तावेजों के लिए श्री अरविन्द उत्तरदायी नहीं हैं ? क्योंकि इनको देखने का उन्हें मौका नहीं मिला। मैं सिर्फ इतना भर कह सकता हूँ कि मैंने अपनी मानवीय क्षमता के अनुसार इन्हें जितना भी प्रामाणिक ढंग से उपस्थित करना संभव था, किया है। पर इससे मेरा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व कम नहीं हो जाता, जिसे मैं पूरी तरह से स्वीकार करता हूँ।"[3]

नीरद वरण के विषय में श्री माधव पंडित का यह कथन बहुत ही युक्तियुक्त है कि, ' वे एक डाक्टर हैं, पर चिकित्सा की ओर ध्यान नहीं है, एक कवि है, पर पूर्वाग्रह नहीं है, एक बंगाली हैं पर भावातिरेक नहीं हैं। उनकी साहित्यिक क्षमता प्रथम श्रेणी की है, और श्री अरविन्द की वार्ताओं पर उनके रिपोर्ताज, जिनमें उन्होंने सक्रिय

१ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० २०।
२ वही पृ० २२।
३ वही डु द रीडस।

भाग लिया था, अपनी मृदुता, तथ्यात्मकता और गठी हुई अभिव्यक्ति के कारण बेजोड़ है।"[१]

नीरद बरण और पुराणी ही क्या, इन वार्ताओं में भाग लेने वाले सभी शिष्य अपने ढंग से निराले थे। उनकी विचित्रताओं और विशिष्टताओं में जितनी भी वैयक्तिक अनेकरूपता मिले अपने गुरु से वार्तालाप करते हुए उन्हें घेरने और चक्कर में डालकर हर मामले पर उनकी मनचाही या अनचाही राय पा लेने के उद्देश्य में उनमें सर्वत्र एकरूपता पायी जाती है। श्री केशवमूर्ति ने इन शिष्यों की विचित्रता और गुरु के साथ इनकी विचित्र छाडछाड पर कौतूहलपूर्ण ढंग से लिखा है। "हम इन शिष्यों को मौका मिलते ही अपने गुरु के साथ बुरी तरह उलझते देखते हैं। श्री अरविन्द इन्हें इतनी स्वतन्त्रता देते हैं कि वे उनके विरुद्ध धक्कमधुक्की करें, लंघी लगायें, खींचातानी करें। वे अपने इन कष्टदाताओं को चारों तरफ से अपने ऊपर हमला बोलने की छूट दे देते थे। पर अन्त में देखा जाता है कि अक्सर शिष्य पटखनियां खा गये हैं, अपने ही तर्कों में फँस कर परेशान हो रहे हैं। जो हो इस प्रक्रिया में योग और साहित्य दोनों का प्रचुर लाभ हुआ।"[२]

इन वार्ताओं और पत्र-व्यवहारों से श्री अरविन्द के योग और उनकी साधना को समझने की इफरात सामग्री बहु विध कोणों से पूछी जाकर उपलब्ध तो हुई ही, इसी से लगे लगे, उस महान व्यक्ति के अनेक नितान्त वैयक्तिक पक्ष भी उभर कर सामने आ गये।

इन शिष्यों में सबसे अधिक शैतानी करनेवाले नीरद बरण उनके गुणों को याद करते हुए लिखते हैं—"कितनी वत्सलता, ख्याल, प्रोत्साहन, सहानुभूति, दिव्य धैर्य और सबके ऊपर उनका सूरज की तरह गरमाहट पैदा करने वाला विनोद ताकि मेरे दुखों का शमन भाग खड़ा हो। उन्होंने छोटे से छोटे मौके की तलाश की ताकि मुझे हँसा सकें—।"[३] दिव्य स्मृति और अनुताप की ये पंक्तियां किस पाठक को द्रवित नहीं कर देतीं।

सभी शिष्य उन्हें अवतार मानते थे नीरद ने उनके अवतार होने पर सन्देह किया। उन्होंने नीरद को शाबाशी दी। अब नीरद ने पतरा बदलकर उनके पूर्ण योग के विरोध में यह कहा कि यह तो आप जैसे 'अवतारी' लोग ही कर सकते हैं हम सामान्य लोगों से संभव नहीं। नीरद के इस कथन पर श्री अरविन्द बीसियों पत्र लिखकर उन्हें समझाते हैं कि वे अवतार नहीं हैं सिर्फ उन्होंने जैसा कि उन्होंने बताया है, उसी रास्ते

१ आन लाइफ इन योग ५ वां भाग पृ० ७८।
२ श्री अरविन्दो द होप आफ मैन, पृ० २८६।
३ मदर इंडिया जुलाई १९७०, पृ० ३४९।

का अनुगमन किया है जिस पर चलकर हरेक आदमी को वह मिल सकता ह जो उन्हें मिला है। कभी उनके कथन में निरभिमान ह, कभी पहले दर्जे की नम्रता, कभी अनु रोध, कभी आग्रह और कभी दार्शनिक की चिढ "मुझे साफ कहने दो कि मैंने अब तक इस विषय पर जो कुछ लिखा ह वह इसलिए नहीं कि मैं अवतार सिद्ध हो जाऊँ, तुम अपने उस तक में व्यस्त हो जा एक दम वैयक्तिक सवाल को लेकर चलता है। मैं सावजनिक प्रश्न को सामने रख कर चलता हूँ। मैं दिव्य सत्ता की अभि यक्ति के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ जिसके प्रति मैं जागरूक हूँ और जिसे अनुभव करता हूँ। मुझे तिनके बराबर परवाह नहीं कि इससे मैं अवतार सिद्ध होता हूँ या कुछ और। इस सवाल का मेरे लिए कोई महत्व नहीं। मैं उस चेतना को यहा लाना चाहता हूँ और प्रसारित करना चाहता हूँ, जिससे दूसरे भी ऐसा अनुभव कर सकें और उसमें रह सकें।"[1]

असल में नीरदवरण के "अवतार होनेवाले कथन को मान लेने का अथ था कि अरविन्द दशन केवल उनके लिए अथवा उनके जैसे थाडे से लोगों के लिए ही ह इसका खुलकर विरोध करना जरूरी था।

वस्तुत वे व्यवहार में अत्यन्त विनम्र अहकार हीन व्यक्ति थे। इसी मन स्थिति में उन्होंने कहा था—"लोग यदि मेरे जीवन को ठीक से जान लें तो शायद ही किसी को विश्वास हा कि ऐसा आदमी कुछ करने लायक भी हो सकता ह।"[2] इससे अधिक विनम्रता कहा मिलेगी। एक बार अचानक उनका पर के० अमृता से छू गया। "क्षमा करना"। श्री अरविन्द बोले। गुरु का शिष्य के प्रति यह दृष्टिकोण कहा मिलता ह?[3]

वे बार-बार कहते हैं कि मेरे विकास के पीछे कोई विशिष्टता नहीं ह और जो कर रहा हूँ, वह अपने लिए नहीं कर रहा हूँ यह तो मानवमात्र के लिए सुगम ह, बशर्ते वह ईमानदार और अहकार हीन हो।

सिद्धि दिवस क बाद एकान्तवास में जाने के पहले की सान्ध्या-गोष्ठियों को में यदा कदा एक कमठ क्रान्तिकारी रणनीतिविशेषज्ञ, कायशास्त्र-ममज्ञ व्यक्ति का अपने निणय क विषय में थोडा बहुत आग्रह भी दिख सकता ह, किन्तु १९३८ की दुघटना के बाद की गोष्ठियों में एक नितान्त निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व का अदभुत उन्मेष दिखाई पडता ह। वे पूणत निर्वैयक्तिक थे समदर्शी इसीलिए यदि हर साधक को यह भ्रम होता था कि उसी को गुरुत्व सबसे अधिक मानते हैं तो कोई आश्चय नहीं। व ही एक मात्र ऐसे गुरु थे जो इतनी वत्सलता क साथ प्रत्येक शिष्य की आवश्यकता का ध्यान रखते हुए उस सब प्रकार स सतुष्ट और प्रसन्न रखने की कोशिश करते थे। एक उदाहरण काफी

१ करिसपान्डेन्स विन्द श्री अरविन्दो पृ० ५८।

२ रेमिनिसेन्सेज एण्ड एनक्डोट्स आफ श्री अरविन्दो पृ० ३७।

३ श्री अरविन्दो द मान अवतार, मदर इण्डिया, अगस्त १९७१ पृ० ४५७।

ोगा। नीरद वरण ने लिखा—गुरुदेव,

मेरा सर, मेरा सर।

और यह बेहूदा ज्वर, मैं तो गया आधा मर।

श्री अरविन्द ने लिखा—उठो, ठीक से रहो। सोचो, तुम्हारी कितनी बुरी हालत ोती यदि तुम कहीं मेड्रिड में एक स्पेनवासी होते या कॅन्सन्ट्रेशन कम्प में एक जर्मन म्यूनिस्ट। यह सब सोचो तो तुम एक हल्के बुखार और मामूली जुकाम के होते हुए ी खुश रह सकोगे।

फेंक दो जुकाम को भूल जाओ ज्वर।

हो मगन व साहसी तुम जिओ निरन्तर।[1]

ऐसा नहीं कि वे अपने आस पास के शिष्यों के क्रिया कलापों को देखने और सुल ाने में ही व्यस्त थे या गजदन्ती मीनार में चुप सो रहे थे। जैसा कि बहुत से लोग समझते हैं कि श्री अरविन्द अध्यात्म की एक ऊँचाई पर पहुंच कर जगत और जीवन *के प्रति दिलचस्पी से अलग हो गये। ऐसा हो ही नहीं सकता था, क्योंकि उनका योग* ईश्वर प्राप्ति या आध्यात्मिक पूर्ण चैतन्य की उपलब्धि मात्र का अपना ध्येय नहीं मानता। बल्कि उसका उद्देश्य है सम्पूर्ण जीवन और विश्व के क्रिया-व्यापारों को अति मानसिक चेतना की प्रक्रिया के भीतर समेट कर उन्हें आध्यात्मिक आधार और अर्थ प्रदान करना। इसीलिए अलगवास में रहते हुए भी श्री अरविन्द ने विश्व में तथा भारत में घटनेवाली प्रत्येक घटना पर कड़ी दृष्टि रखी और आवश्यकतानुसार उसमें हस्तक्षेप भी किया अवश्य सिर्फ अपनी आध्यात्मिक शक्ति और उसके मौन कार्यों द्वारा ही उन्होंने यह सब कुछ किया। 'वे जो योग में प्रगति कर सके हैं भलीभांति जानते हैं कि भौतिक मन, जीवन और शरीर की सामान्य शक्तियों से भिन्न कुछ दूसरी शक्तियाँ भी होती हैं जो पर्दे के पीछे से या ऊपर से कार्य कर सकती हैं और करती हैं। इनसे भी ऊपर एक आध्यात्मिक गुरुतर शक्ति है जिसे आध्यात्मिक चेतना में प्रगति करने वाले प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि सभी इस शक्ति की उपलब्धि की परवाह नहीं करते और न वो सभी जो उपलब्ध करते हैं इसके उपभोग की ही जरूरत समझते हैं। और कहना न होगा कि सभी शक्तियों से कहीं जोरदार और अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव शाली होती है यह आध्यात्मिक गुरुतर शक्ति। श्री अरविन्द ने इसी शक्ति का, उप लब्धि के ठीक बाद, अपने वैयक्तिक कार्यों के लिए सीमित क्षेत्र में और बाद में विश्व शक्तियों के ऊपर दबाव डालने के लिए सतत सक्रियता के साथ उपयोग किया। पहली बार इसका उपयोग उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध में किया। आरम्भ में उनकी कोई सक्रिय दिलचस्पी नहीं थी, पर जब उन्होंने देखा कि हिटलर अपनी सभी विरोधी

१ वही पृ० १५७।

शक्तियों को कुचल देना चाहता है और नाजीवाद सारे विश्व को आक्रान्त कर लेना चाहता है, तो उन्होंने सक्रिय हस्तक्षेप किया। दूसरी बार इसका प्रयोग सर स्टेफर्ड क्रिप्स के प्रस्तावों के सिलसिले में किया गया।"[1]

सन्ध्या वार्तायें द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रतिध्वनि से निरन्तर गूँजती दिखाई पड़ती हैं। कभी वे मित्र राष्ट्रों और कभी धुरी राष्ट्रों की सैन्यशक्ति का तारतम्य समझाते हैं, तो कभी भिन्न भिन्न सेनापतियों का योग्यता और क्षमता का लेखा जोखा देते हैं। कभी सैन्य सचालन की पेचीदगियाँ स्पष्ट करते हैं तो कभी कूटनीतिक चालों का रहस्योद्घाटन करते हैं।

हिटलर ने द्वितीय विश्वयुद्ध में जो कुछ किया वह सर्वविदित है। भारत में अनेक लोग उस वक्त उसके समर्थक थे। क्योंकि वे मानते थे कि यदि हिटलर ने इंगलैण्ड को चकनाचूर कर दिया, तो हमारा बदला चुक जायेगा, अथवा यदि उसका बढाव ऐसे ही जारी रहा तो वह एक न एक दिन हमें मुक्त कराने भारत भी पहुंच सकता है। श्री अरविन्द और श्री माँ ने स्पष्ट देखा कि हिटलर, मुसोलिनी आदि आसुरी शक्तियों से आविष्ट हैं। वे प्रजातन्त्र, व्यक्ति स्वातन्त्र्य आदि को कुचलने पर आमादा हैं। इसलिए इस आसुरी शक्ति को हर हालत में रोकना है। अतः उन लोगों ने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वे मित्र राष्ट्रों के पक्ष में हैं। इस घोषणा से बहुतों को असंतोष हुआ। दिलीपकुमार राय ने लिखा—"मुझे 'क' का एक लम्बा पत्र हाल में मिला है। जिसमें वर्तमान युद्ध की कुरुक्षेत्र के युद्ध से, हिटलर की दुर्योधन से, तथा मित्र राष्ट्रों की धर्म के रक्षक पाडवों से की गयी तुलना पर आपत्ति की गयी है। अभी तक मुझे इस विश्वव्यापी महाभारत में कोई अर्जुन नहीं दिखाई पड़ता, कारण मेरे हृदय से एक सन्देह घर कर गया है कि एंग्लो अमेरिकन वायुयानों का गरजता हुआ शोर क्या गाडीव धनुष की टंकार है? इसके अलावा मुझे गत कुछ दिनों से ऐसे अनेक पत्र मिले हैं। जिसके लेखकों ने यह प्रतिपादन किया है कि पाडवों ने धर्मराज की स्थापना के लिए प्रयत्न किया था, जब कि मित्र राष्ट्रों का दृष्टिकोण अब भी मुख्यतया साम्राज्यवादी ही है।'[2]

श्री अरविन्द ने दिलीप की शंका का विस्तृत उत्तर दिया। उन्होंने स्वीकार किया कि "मित्र राष्ट्रों में त्रुटियां कम नहीं हैं पर यह सब केवल उनके काले पक्ष को देखना ही होगा और काला पक्ष कब और कहाँ नहीं रहा है। ये सभी देश साम्राज्यवादी हैं, परन्तु ये ही अग्रिम विकास की सीढी भी है।' एक दूसरे शिष्य को उन्होंने लिखा—"तुम्हें इस युद्ध को किन्हीं जातियों, या दूसरी जातियों या भारत के विरुद्ध युद्ध नहीं समझना चाहिए। यह उस आदर्श के लिए युद्ध है जिसे मनुष्य जाति में उसके

१ श्री अरविन्दो एन्ड हिज आश्रम पृ० ४०
२ महापुरुषों के साथ पृ० २७९।

जीवन काल में प्रतिष्ठित होना है। यह एक ऐसे सत्य के लिए युद्ध है, जिसे उस अंधकार और असत्य के विरुद्ध जो इसे जीतने का प्रयत्न कर रहे हैं, अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करनी है।"[1] श्री अरविन्द प्राणप्रण से इस युद्ध में हिटलर को पराजित देखने के लिए लग गये। घंटों युद्ध पर बातचीत, घंटों बहस मुबाहिसे।

उन्हें लोगों का फोटो देखकर व्यक्तित्व विश्लेषण की अद्भुत क्षमता प्राप्त थी। उन्होंने हिटलर, गोबल्स और गोरिंग का फोटो देखा। शिष्यों द्वारा यह पूछने पर कि ये लोग कैसे आदमी हैं उन्होंने कहा, "जहाँ तक मुझे मालूम है मैंने 'ला इलस्ट्रेशन' के एक फोटो चित्र में हिटलर, गोबेल्स और गोरिंग को एक साथ देखा। तीनों का ही स्वभाव यहाँ बहुत साफ ढंग से प्रकट था। दूसरे चित्रों में यह चीज बहुत साफ नहीं उभरी है। उसकी अभिव्यक्ति छिपी रह गयी है। यहाँ हिटलर पेरिस की किसी गली के गुंडे की तरह लगता है। गोबल्स के छोटे और नुकीले चेहरे में धोखेबाजी से भरी आँखें स्पष्ट हो जाती हैं। गोरिंग का चेहरा दिमाग के असंतुलन को प्रकट करता है। वह शायद कुछ दिनों तक किसी मानसिक रोग के अस्पताल में रहा भी। ये तीनों भौतिक जीवन-स्तरीय आसुरी शक्ति से ग्रस्त लगते हैं।

हिटलर के चेहरे में सफल गुण्डागर्दी और पैशाचिक प्रवंचकता के पर्दे के पीछे लंदन के किसी भद्दे और अविकसित दूकानदार का अंत पुरुष झाँक रहा है। इस मनुष्य का आन्तरिक स्वभाव व्यर्थ और मूढ़ भावातिरेक से भरा है। यही मूढ़ भावातिरेकता उसके चित्रों में अभिव्यक्त हुई है। शायद म्यूनिख संधि के सिलसिले में छपे एक फोटो चित्र में मैंने हिटलर को चेम्बरलेन के साथ देखा। पैशाचिक प्रवंचना से भरी आँखों वाला हिटलर चेम्बरलेन को यों देख रहा है मानो मकड़े के सामने मक्खी हो उस स्थिति में कि अब मकड़ा उसे पकड़ने ही वाला हो। और ऐसे ही चेम्बरलेन को उसने अधिगृहीत किया भी।"[2]

हिटलर ने जब घोषणा की कि वह १५ अगस्त १९४० को लंदन में होगा। फ्रांस का पतन हो चुका था। श्री अरविन्द ने इसी अवसर पर सीधा हस्तक्षेप किया। उन्होंने स्वयं लिखा है— "जब प्रत्येक व्यक्ति यह आशा कर रहा था कि इंग्लैंड का शीघ्र पतन हो जायगा और हिटलर की निश्चित रूप से जीत होगी, मैं अपनी आध्यात्मिक शक्ति से मित्र राष्ट्रों की सहायता करने लगा। और यह देखकर [illegible] हुआ कि जर्मनी के विजय का पग डगमगा गया और युद्ध का पासा पलट गया।"[3]

हिटलर का असुर शक्ति से ग्रस्त होने का [illegible] इस बात में प्राप्त है कि उसने १५ अगस्त को अपनी विजय की तिथि के रूप में घोषित किया। १५ अगस्त न सिर्फ

१. [illegible] पृ० २८१।
२. ईवनिंग टॉक्स विद श्री अरविन्द। प्रथम भाग पृ० १२९-१३०।
३. श्री अरविन्द [illegible] पृ० ११।

अरविन्द का जन्म दिन है बल्कि यह रामकृष्ण का निर्वाण दिवस भी है। अनेक और भी आध्यात्मिक क्रियायें इस तिथि से जुडी हैं। इसा के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना भी इसी तिथि को हुई। श्री अरविन्द ने कहा—"इन्कव के समय से मैंने हस्त क्षेप शुरू किया। मैंने खुले आम घोषणा की और अपना योगदान दिया। मैंने १५ अगस्त और १५ सितम्बर दो तिथियाँ चुनी कि इन्ही दिनों जर्मनी का हारना पडेगा और वह हारा। हमारे यहाँ लोग यह नही समझ पाते कि यदि कोई ईश्वरीय चेतना या ब्राह्मी चेतना में रहता है, तो उसे युद्ध में किसी का पक्ष क्या लेना चाहिए। यदि तुम स्थिर ब्रह्मचेतना वाले हो तो ठीक है तब तुम सबको माया कहकर तटस्थ द्रष्टा बन सकते हो। पर मैं तो उस ब्रह्म में विश्वास करता हूँ जो ब्रह्म के पक्ष में ब्रह्म का विरोध करता है। ब्रह्म हमेशा यही करता आ रहा है।"[1] इस उत्तर में उनके योग का व्यापक क्रियावान रूप अपने आप स्पष्ट हो जाता है।

व्यक्ति की व्यक्ति

इन सध्या वार्ताओ में जसा पहले ही कहा श्री अरविन्द के व्यक्ति की खूब व्यक्ति यानी अभिव्यक्ति हुई है। वे दूसरों की, खास तौर से निकटवर्ती लोगों की गलतियो और त्रुटियो पर पूर्ण ध्यान देते थे, हालांकि उन्हें कहने का तरीका या तो विनोद पूर्ण होता था, या वत्सलतापूर्ण। श्री नीरदवरण ने जिन्हें उन्होने अम्बालाल की जगह अम्बाला लिखने पर काफी खीचा था, एक बार उनके Expect स्थान पर Except लिख देने पर, लिखा—'यह क्या हुआ सर, यह क्या अतिमानसिक फिसलन है, हुरा।' श्री अरविन्द ने तुरन्त लिखा—"क्या तुम कहना चाहते हो कि यह पहली गलती है जो तुम्हें दिखी। जल्दीबाजी से लिखने में पहले हर पन्ने पर ऐसी दस गलतियाँ हुआ करती थी। अब मैं अतिमानसिक ठीक-ठाकपन की ओर बढ रहा हूँ, अर्थात स्वतःउद्भूत असावधान पर विद्युत गतिवाले लेखन के बावजूद।"[2]

इन्ही नीरदवरण को एक बीमार की हल्की उपेक्षा करने पर श्री अरविन्द ने लिखा—"मैं नही जानता क्या, मगर कुछ बात है कि तुम एक भयानक और ज्वलन शील किस्म के डाक्टर के पद से विभूषित होते जा रहे हो जो बीमारों के बीमार होने को पाप मानता है। तुम सही हो सकते हो, पर परम्परा का तकाजा है कि डाक्टर को मक्खन की तरह मुलायम ईख के रसकी तरह शामक, चीनी की तरह मधुर और जाम (फलपाग) की तरह जौली (रसिक) होना चाहिए। नीरद वरण ने लिखा—"परम्परा की माग है तो हम मक्खन से भी अधिक मुलायम बनेंगे, पर शायद इतने लुभाने बन जायें कि बीमार हमें स्वादिष्ट टोस्ट की तरह इस्तमाल करना चाहें कृपया

१ रेमिनिसेंसेज एण्ड एनक्डोट्स आफ श्री अरविन्दो पृ० २१९ २२०।

२ मदर इण्डिया अगस्त १९७१ पृ० ४१९।

बताए कि परखेगा कौन ?' श्री अरविन्द ने लिखा—हाँ, मगर तुम इतने 'मधुर' हो तब तो कोई सीमा बतानी ही पड़गी।"[१]

नीरद बरण को लिखे इन पत्रों को पढ़ने से श्री अरविन्द के व्यक्तित्व की हजारों हजार चीजें सामने आती है। सबसे पहली चीज जो हमें आकृष्ट करती है, वह है उनका अद्भुत सूर्याभिमुखी विनोद। इस पर बहुत विस्तार से जिन्दगी का मर्म' अध्याय में विचार किया गया ह। पर यह विनोदी व्यक्ति शिष्यों को प्रोत्साहन देने और उनके भीतर की छिपी क्षमताओं को जगाने और विकसित करने की कला में कितना अद्भुत था यह पत्रों को देखकर ही जाना जा सकता है। यह नहीं व इन शिष्यों के लिए सब कुछ कर सकते थे।

वे टगोर की कविता पर बार-बार आग्रह करने पर भी भूमिका लिखने को तयार नहीं हुए जबकि अपने उभरते कवि शिष्या की कूड़ा कविताओं पर निरन्तर बात-चीत ही नहीं, सुधार-परिष्कार के श्रम की चर्चा करते रहे।

प्रमथ चौधुरी ने 'गोल्डेन बुक आफ टगोर" क लिए सदेश माँगा अरविन्द ने लिखा—"मैं मानता हूँ कि प्रमथ चौधुरी का यह कहना कि मेरे संदेश क बिना "टैगोर की गोल्डेन बुक" अधूरी रहेगी मात्र अतिशयोक्ति है। स्वर्णिम पुस्तक अपने आप स्वर्णिम रहेगी, और टगोर का यश वसा ही पुष्ट, न तो पहल के लिये मेरे शब्दों की पालिश चाहिये न तो दूसरे के लिए कोई भी पौष्टिक मक्खन।"[२] ऐसे रंगीन प्ररणाप्रद विनोद भर, अद्भुत भाषा और शली के चमत्कारा स आपूर्ण पत्रा के पान वाल अपने का 'हवा में उडता' अनुभव करे तो कोई आश्चय नही, पर जब नीरद कहते ह 'यह मेरे लिये अब भी एक गीत ह पर दर्दीला गीत' तो लगता ह कि इन पत्रों के पीछे कुछ और छिपा ह जो उनके प्राप्तकर्ता को इस तरह एक साथ मोहित और उदासकर जाता ह। आखिर यह ह क्या चीज ? मरी दृष्टि से वह मानवीय सपृक्ति ह, एक ऐसी असपृक्त मानवीयता और सवेदना जो मन को मथ जाती ह। प्रमोद चटर्जी ने एक बार उनके बचपन के फोटो से जो धुंधला गया था, एक चित्र बनाया, उसे देखकर श्रीमाँ ने कहा था— तुम उनके स्वभाव की सहजता, ताजगी, तथा उसकी कुछ कुछ निष्कपटता को पकड़ पाये हो, जो लेकर वे पृथ्वी पर आय थे। उस वक्त उनका आन्तरपुरुष बिल्कुल सतह पर स्पष्ट था। वे इस दुनिया के बारे में कुछ नही जानते थे।"[3]

वे किसी पर किसी चीज के लिये बिगड़ना और नाराज होना जानते ही नही थे, इसी कारण सभवत इतनी महत्त्वपूर्ण स ध्या-वार्ताएँ और इतनी महत्वपूर्ण ओस डूबी

१ वही पृ० ४६५।

२ श्री अरविन्दो कैम टु मी पृ० १३९।

३ श्री अरविन्दो द परफेक्ट जैण्टलमैन, मदर इंडिया अगस्त १९७० पृ० ४०७।

चिट्ठियाँ लिखा जा सकीं। वे बेहूदे सवाल करने वालों से भी कभी चिढ़ते न थे। यही नहीं, जहाँ कुछ चिढ़ने की जरूरत भी हो या क्रोध का दिखावा मात्र करने से काम बनता हो वहाँ भी वे विचित्र नम्रता से पेश आते थे। कलकत्ते में रहते वक्त रसोइये के व्यवहार से सरोजिनी इतनी तंग आ गयी कि उसे अरविन्द से कहना पड़ा। पर कोई असर नहीं। तब उसने मारो ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और जोर-जोर से रोने लगी। अब तो अरविन्द का ध्यान देना ही था। रसोइया बुलाया गया। सभी लोग यह देखने के लिये आ जुटे कि रसोइये की कैसी दुर्गत होती है। रसोइया आकर सामने खड़ा हुआ। श्री अरविन्द ने कहा—"लगता है तुम इधर अभद्र व्यवहार करने लगे हो। खर जाओ आगे ऐसा न करना।" सब लोग बड़े निराश हुए। रसोइया हँसता हुआ चला गया। वे किसी से किसी भी प्रकार की सेवा नहीं लेते थे। पुराणी ने लिखा है कि एक बार श्री अरविन्द हाथ में तार-कागज लिये बाहर आये। बाहर सभी शिष्य उनकी प्रतीक्षा में थे, उन्होंने बिना किसी को देखे, कहा—"मुझे लगता है कि आज यह तार चला जाना चाहिये।" यह था उनका तरीका।

नीरद वरण ने बड़े विस्तार से लिखा है कि एक बार उनके सीने में दर्द हुआ। किसी ने खबर दी कि श्री अरविन्द बुला रहे हैं, वे दौड़े हुए ऊपर गये। पूछने पर बोले— ओह, कुछ नहीं, कुछ नहीं हुआ है। यहाँ कुछ दर्द से दर्द हो रहा है, क्या तुम कुछ कर सकते हो? नीरद वरण ने मालिश करके उनका दर्द ठीक किया पर यह भी लिखा—'श्री अरविन्द किसी को भी इसलिए बुलाने वाले आदमी नहीं थे कि उन्हें कहीं मामूली दर्द है। उन्होंने बाद में मुझसे यह कहकर कि इससे तुम्हें इतना परेशान होना पड़ा, क्षमा याचना भी की"।[१]

गर्मी के दिनों में जब पांडिचेरी में बिजली नहीं थी, या बाद में जब बिजली आ गई पर अपनी तुनुकमिजाजी दिखाया करती, पंखे बन्द हो जाते, उस वक्त लिखते लिखते वे पसीने से तरबतर हो जाते, धोती डूब जाती थी, पर वे किसी को भी ताड़ का पंखा चलाने को नहीं कहते थे।

एक बार जब वे अस्वस्थ थे, छत से लटके पंखे में गड़बड़ी पैदा हो गयी। उस वक्त डॉ० सत्येन्द्र परिचर्या में थे। उन्हें लगा कि श्री अरविन्द को कुछ जरूरत है। "सर, मैं क्या आपके लिए कुछ कर सकता हूँ?" सत्येन्द्र ने पूछा। 'आह, नहीं—क्या नीरद है?' श्री अरविन्द ने पूछा। 'वे तो नहीं है सर।' सत्येन्द्र बोले। अरविन्द चुप हो गये। सत्येन्द्र ने पूछा—"कोई काम है सर जो मैं कर सकता हूँ।" श्री अरविन्द ने कहा—'मैं सोच रहा था कि यदि इस पंखे को थोड़ा धीमा कर दिया जाता।' सत्येन्द्र ने कहा—"यह तो मैं भी कर सकता हूँ।" 'ओह तुम कर सकते हो?' वे हल्के

१ वही पृ० ४०९,४१०।

आश्चर्य से बोले ।

नीरद लिखते हैं—'उन्हें मुझे बुलाना था । इसलिए यहाँ था कि दुःख से ही जैसी कि श्रीमाँ की व्यवस्था का तरीका है पर आश्रम का सारा इन्तजाम घर ऊपर था । श्री अरविन्द उस नियम को तोड़ नहीं सकते थे ।

पैर टूट जाने के कारण उन्हें कई दिनों तक नहाने का अवसर नहीं मिला । वे नहाने के प्रेमी थे । पर छह महीने तक तौलिया भिगा कर पोंछ-पोंछ कर ही संतुष्ट होना था । वे प्रतिदिन प्रातःकाल ढाई बजे स्नान किया करते थे वह भी गर्म पानी से नहीं खौलते हुए पानी से, पर एक बार भी उन्होंने, उन दिनों में जब स्नान नहीं कर पाते थे, कुछ नहीं कहा ।'[1]

ये सारी वार्ताएँ उनके व्यक्तित्व की कुछ और भी विशेषताएँ सामने ले आती हैं । राजनीति, योग दर्शन पश्चिमी काव्यशास्त्र, कविता, ग्रीक-लैटिन साहित्य, तंत्र, गुह्य विद्यायें, भविष्यवाणियाँ, ज्योतिष, इतिहास, अर्थशास्त्र, ग्रामोद्योग, भारतीय राजनीति के विभिन्न पक्ष, हजारों तरह की जागतिक हलचलें व्यक्ति और उनके क्रियाकलाप आयुर्वेद, होमियोपैथी, अध्यात्म और आध्यात्मिक प्रयोग—कहने का मतलब यह कि शायद ही कोई ऐसा विषय हो जो छूट गया हो जिसपर उनसे प्रश्न न पूछे गये हों और उन सभी प्रश्नों पर उन्होंने अपनी चिरपरिचित निर्वैयक्तिक तटस्थता के साथ उत्तर न दिया हो । जैसा पहले कहा गया १९३८ में अचानक दुर्घटना हुई । श्री अरविन्द अपने कमरे में ही बघछाले पर फिसल कर फर्श पर गिर पड़े । प्रातःकाल २ बजे के करीब यह घटना हुई । श्रीमाँ सोई हुई थीं । अचानक उन्हें लगा कि कुछ गड़बड़ हो गया है और वे शय्या से उठकर श्री अरविन्द के कमरे की ओर दौड़ीं । उस वक्त पुराणी स्नान के लिए पानी गरम कर रहे थे । तेज वजन वाली चोट की आवाज सुनकर वे ऊपर गये । फर्श पर पड़े श्री अरविन्द को उठाकर उनकी शय्या पर रखा गया । डाक्टरों की आमदरफ्त शुरू हुई । दर्शन स्थगित हो गया । उस वर्ष के दर्शनार्थियों में अमरीकी प्रेसिडेंट विल्सन की लड़की मार्गरेट वुड्रो विल्सन भी आयी थीं । वे बाद में श्री अरविन्द की शिष्या हुईं और पांडिचेरी में रहीं ।

डॉ० मणिलाल ने एक दिन जब बीमार का हाल कुछ अच्छा था, बचपने के ढंग से पूछा—"सर, यह आपको कैसे हो गया" । श्री अरविन्द ने उसी तरह के स्वर में कहा—"यह मुझको क्यों नहीं होना चाहिए" ? श्री अरविन्द और डॉ० मणिलाल की अनेक महत्त्वपूर्ण वार्तायें, 'जिन्दगी का नमक' अध्याय में मिलेंगी, जो काफी सलोनी हैं ।

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी" । योग करने के लिए नहीं, शिष्यों

१ श्री अरविन्दो, परफैक्ट जैंटलमैन, मदर इंडिया, अगस्त १९७० पृ० ४१३ ।

की चिट्ठियों का जवाब देने के लिए। नीरद ने मिल्टन की एक पंक्ति उद्धृत की है।

उनका दीप जलता रहा मध्यरात्रि के अंधकार मे
चमकता रहा वह किसी एकांत की मीनार मे।

—द्वितीय पैनसेरोसो

ऐसे व्यक्ति के साथ दुघटना के बाद उन्हें सहज लभ्य पाकर, बातचीत का पुन लम्बा अवसर हाथ आया जानकर शिष्य मामूली प्रसन्न नही हुए। हालांकि उन्हें घेर कर बैठे अपने नानाविध प्रश्नों से उन्हें उकेरते हुए उनके कान श्रीमा की सीढियों पर उठने वाली पगध्वनि की ओर भी लगे रहते।

एक बार ऐसे ही जब शिष्यगण श्री अरविन्द को घेरे थे, श्री मा आ पहुँची। नीरद लिखते हैं—"हमने तुरत अपनी जगह बदलनी शुरु कर दी। उन्होंने कहा—'हटो मत। बैठे रहो।'[1] इस तरह के अनेक अवसरों का इन वार्ताओं में जिक्र किया गया है। श्रीमाँ नहीं चाहती थी, कि लम्बी गोष्ठियों द्वारा उन्हें थकाते रहा जाय, पर उन सरस, ज्ञानप्रद और ठहाके भरी वार्ताओं का लोभ छोडने को कौन तयार था। अत ज्या ही श्रीमा बाहर जाती, वहां क्रम शुरू हो जाता।

श्री अरविन्द के बारे में अपनी भाव भीगी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए नीरद वरण ने लिखा है—"उन प्रसिद्ध वार्ताओं की याद आती है। उस वक्त निर्वैयक्तिक पुरुष का स्वरूप कितना वैयक्तिक हो गया था। एक दम घनिष्ठ रूप से निकटवर्ती। हम लोगों से नाना विषयों पर बात करते, राजनीति, धर्म दर्शन ऐसा क्या बचा था, जिस पर बात न हुई हो। बार-बार मामूली चीजों पर मजाक करना, जैसे नीरद के खर्राटे, पुराणों के नाटक आदि आदि—ये चीजें हमने देखी हैं पर जो हम देख नही सके, वह है अगम्य क्षेत्र जो उनके पहले तक बेपमाइश पडा था (जिसे वे पा चुके थे। जिसे हम नही देख सके।)[3] शायद यह श्रद्धांजलि मुकम्मल न होगी यदि एक और अंग न जोडा जाय। इसीसे पता चलता है कि वे किस प्रकार विष पीकर शिव बन थे। दिलीप कुमार राय लिखते हैं— उन्होंने कभी हमें रोका नहीं। यदि कोई चाहे तो गलत यान पर बैठकर गलत दिशा की यात्रा करने को भी स्वतन्त्र था। वे कभी भी सख्त कानून और कायदों की रूढियां नही लादते थे। उनका धैर्य और औदार्य अविश्वसनीय लगेगा, यदि यह हमारे दैनंदिन अनुभव का अंग न होता। आश्रम में वे अनेक असंतुष्ट अग्नि भक्षियों को सहते रहे जो अपने को उनका शिष्य कहते थे। उन्होंने विद्रोहियों को भी खुली छूट दी जो उन्हें गालियां देते, उनकी धारणाओं की गलत व्याख्या करते और

१ मदर इंडिया, फरवरी १९७०, पृ० ३२।
२ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग, पृ० ३८।
३ अवर एसोसियेशन विद श्री अरविन्दो, मदर इंडिया फरवरी १९७०, पृ० २९।

जानबूझ कर उन्हें बदनाम करने के लिए झूठ बोलते थे। ऐसे दोषारोपण करने वालों और गद्दारों को भी उन्होंने आश्रम से निकाला नहीं, बल्कि बार बार क्षमा करते रहे, जब तक मैंने उन्हें टोका नहीं—'आप किसे अधिक चाहते हैं—विश्वासहीनों को प्रोत्साहन देना या विश्वासियों की हिम्मत पस्त करना।'[1] दिलीपकुमार राय का क्षोभ उचित है, पर वे अपने क्षोभ में श्री अरविन्द और उनके मिशन को ही भुला देते हैं। वे इन चीजों से परेशान होने वाले नहीं थे वे इन चीजों को बदलते हुए विश्व की 'शान्त गड़बड़ी' मान कर क्षमा कर देते रहे होंगे। उनकी कविता 'रात में समुद्र' इसकी साक्षी है।[2] विश्व की जिस गड़बड़ी को दूर करने वे आये थे, उसे सुधारना उनका काम था, अलग हटाकर उसे बस हो रहने देना नहीं।

भूरे वर्ण का समुद्र हिलता है आधा खुला खुला आधा अंधेर में।
अनगिनत अपनी भुजाओं में समेटता है मौन की दीवालों को।
पार में देखता हूँ अनन्त एक कुछ कुछ खुरदुरा सा चमकता हुआ।
लहरों की गर्जनायें सुनता हूँ सीत्कार उठती हैं तरंगों से।
एक दूसरे को धक्का देती लहरें अपने में फुसफुसाती हैं।
किनारे की ओर लम्बी कतार में धुँधली सी बढ़ी आती हैं।
काँपती है गात राशि, कैसी यह हड़बड़ी है।
बदलते हुए विश्व की शान्त सी गड़बड़ी है।

वस्तुतः उन्होंने धक्कमधुक्की करती समुद्री लहरों के परे का सुवर्ण अनन्त देख लिया था इसलिए वे दिलीप कुमार की तरह सीत्कार करती गाज उगलती धुँधली लहरों की फुसफुसाहट से भला क्यों परेशान होते।

आन्तरिक जगत् और अध्यात्म

दिलीपकुमार राय ने आज के सर्वज्ञात बर्गगत बौद्धिक की भाँति रसल के शब्दों में ही श्री अरविन्द से पूछा—"हम सभी अन्तर्मुखी होने के दुःख से ग्रस्त हैं। जो सामने के विस्तृत फैले हुए जगत के नाना दृश्यों से अपने को हटाकर अपने भीतर के खालीपन पर ध्यानस्थ हो जाता है।'[3] श्री अरविन्द ने इसका उत्तर देते हुए लिखा— दिलीप मैं रसल को भूला नहीं हूँ। पर मैंने उन्हें नजर-अन्दाज किया है, क्योंकि प्रथमतः मेरे पास समय नहीं है, द्वितीयतः तुम्हारा प्रश्न कहीं दब गया है तृतीयतः मुझे यह समझ

१ श्री अरविन्दो केम टु मी पृ० ४१।
२ कलेक्टेड पोयम्स एंड प्लेज प्रथम भाग पृ० १३५।
३ We are all prone to the malady of the introvert who with the manifold spectacle of the world spread out before him turns away and gazes upon the emptiness within."

Conquest of Happiness

में नही आता। बाहरी चीजों में उन्ही की तह दिलचस्पी लेना क्या होता है। यह अन्तर्मुखी (Introvert) क्या चीज है ? यह शब्द अभी हाल में वजूद में आया है और बहुत कुछ भ्रष्टमुखी (Pervert) की तुक पैदा करता सा लगता है। अक्षरश इसका अर्थ है शायद वह जो अन्तरम की ओर मुड़ता है। उपनिषद इन्द्रिय द्वारा के विषय में वर्णन करते हैं जो बाहर की ओर खुलते हैं और जो मनुष्य को बाहरी पदार्थों में तल्लीन करते हैं (पदार्थों में ही तई शायद) और उनमें से लाखों में कोई एक ऐसा होता है जो अपनी दृष्टि अन्तर्मुखी कर पाता है और आत्मसाक्षात्कार करता है। क्या उसे ही अन्तर्मुखी (Introvert) कहा गया है ? और क्या रसेल का आदर्श आदमी जो बाहरी चीजों में उन्ही के उद्देश्य से दिलचस्पी रखता है, कोई रामस्वामी सान सामा हो या कोई जोजेफ शाफ्र हो—ये क्या रसेलीय बहिर्मुखी मनुष्य के प्रतिनिधि (Homo externalis Russellius) सचमुच बहिर्मुखी ही हैं ? या अन्तर्मुखी वे हैं जो बहिर्मुखीनता की अपेक्षा कहीं अधिक आन्तरिक समृद्धि और शक्ति रखते हैं, जैसे कोई कवि सगीतकार, या कलाकार। क्या बहरा बिठोवीन जो अपनी अन्तरात्मा से सगीत को जगा पाया रसेल का बाहियात अन्तर्मुखी ही था ? क्या अन्तर्मुखी वह नही है जो बाह्य चीजों में दिलचस्पी इसलिए नही रखता कि उसे उनमें दिलचस्पी है बल्कि वह अपनी अन्तर्दृष्टि के मानदण्ड से उनके मूल्य को ठीक से जानकर उन्हें अपनी अन्तरात्मा के विकास का साधन बना लेता है या उसकी आन्तरिक, धार्मिक, नैतिक अभिव्यक्ति का माध्यम बना लेता है ? क्या तोल्स्ताय और गांधी रसेल के अन्तर्मुखी के भीतर आयेंगे ? या दूसरे क्षेत्र से उदाहरण लें तो गोयते कहाँ रखा जायेगा। बहिर्मुखी चीजें क्या हैं ? रसेल गणितज्ञ हैं। क्या गणित के फार्मूले जो या तो मनुष्य के मन में स्थित हैं, या विश्वमन में, बहिर्मुखी कहे जायेंगे ? अगर नहीं, तो गणितज्ञ रसेल अन्तर्मुखी हैं या बहिर्मुखी ? याज्ञवल्क्य ने कहा था कि कोई अपनी पत्नी को पत्नी के लिए प्यार नही करता, अपने लिये करता है—वैसे ही कामना के दूसरे उपकरणों को भी समझा जा सकता है। यहाँ आत्मा का जो अर्थ कर लो अन्तरात्मा या अहम (Ego)[1]। दिलीपकुमार राय ने रसेल की वकालत करते हुए एक दूसरा पत्र लिखा। उन्होंने लिटन स्ट्रैची (Lytton strachey) की एक पुस्तक से उद्धरण देकर लिखा—"एक दिन सुबह एक कलाकार ने अपनी दुकान में जाकर देखा कि एक बड़ी मूर्ति के गिर जाने से छोटी छोटी तमाम मूर्तियाँ टूट गई हैं। सिर्फ बड़ी मूर्ति ही साबुत थी। गुरु, आपको कम से-कम अभी वैसी विजय नही मिली, क्योंकि एक मूर्ति इस ध्वस से बच गई है और वह है बर्टेण्ड रसेल। वह अभी भी बचा है क्योंकि अन्य बहुप्रचारित योगियों से अलग वह समझदारी की बात करता है [बच्चों की बेहूदी

१ श्री अरविन्दो केम टु मी, जैसी परिवेशन पृ० २५२६।

बकवास नहीं, खास तौर से जब वह जीवन में बुद्धि के, तथा मानवीय संबंधों, विवाह आदि के प्रश्नों पर निर्णय देता है] भाग्यवश गुरुदेव आप अन्य योगियों से अलग हैं पर कृपया मुझे कहने दीजिये कि आप रसेल की क्षमता वाले व्यक्तियों के सामने अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व के कारण नहीं बल्कि विराट मेधा, बौद्धिक स्पष्टता और अनिन्द्य चरित्र के कारण खड़ा रह जाते हैं। इसलिए कृपया मुझे इस बात पर शंका व्यक्त कर लेने दीजिये कि क्या सचमुच यदि आप एक आध्यात्मिक महान व्यक्ति के साथ ही एक बौद्धिक बौना होते तो, आप इस तरह रसेल की [तर्क के क्षेत्र] मांद में घुस कर उसे इस तरह चित्त करके उसके चेहरे पर दाढ़ी उगा देने [हरा देने] का साहस करते ?'

दिलीपकुमार राय ने रसेल की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा। श्री अरविन्द ने उत्तर दिया—"मैं उनकी योग्यता से इनकार नहीं करता। न तो उनके चरित्र पर ही मुझे कुछ कहना है। मैं सिर्फ उनकी धारणाओं पर कहना चाहता हूँ। और वहाँ भी सिर्फ उन धारणाओं पर जो मेरे क्षेत्र अर्थात आध्यात्मिक सत्य के क्षेत्र में दखल देती हैं। सभी धर्मों में, अत्यन्त संकुचित और बुद्धूपने से भरे धर्मों या मतों के क्षेत्र में, या फिर बिल्कुल अधार्मिक क्षेत्र में भी महान् बौद्धिक उच्च व्यक्ति और सुंदर चरित्र वाले लोग हैं। मैं रसेल के बारे में ज्यादा नहीं जानता पर मैंने कभी भी लेनिन की महत्ता में सन्देह नहीं किया, यद्यपि वे पूर्ण नास्तिक थे, ऐसा वही करेगा जो नितान्त मूर्ख होगा। पर लेनिन की महत्ता की स्वीकृति से मुझे कभी भी बालशेविज्म की रूढ़िवादिता और गलत धारणाओं पर प्रहार करने में बाधा नहीं हुई। किसी नास्तिक के चरित्र की महत्ता यह नहीं साबित कर पाती कि आध्यात्म कल्पना है या झूठ है या कि ईश्वर नहीं है। मैं यह भी कह दूँ कि यदि तुम्हें महान योगियों के वचन बचपना जैसे लगते हैं जब वे विवाहादि के बारे में कहते हैं तो मैं तुम्हें यह भी बता दूँ कि इस बात से तुम्हें शिकायत नहीं होनी चाहिए जब मैं रसेल को, जिनका आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश तक नहीं है धारणाओं का निस्सार और बुझी हुई पाता हूँ। तुमने उन योगियों के नाम नहीं लिये हैं और जब तक तुम यह काम न कर लो मैं उनकी आध्यात्मिक उच्चता में सन्देह करने का अधिकार रखता हूँ।'[1] श्री अरविन्द ने स्वभावानुसार बहुत ही तर्कपूर्ण किन्तु मृदु उत्तर दिया। दिलीप जिस कमरे में रहते थे, उसके ऊपरी चौखट से उन्हें चोट लग गई। उन्होंने श्री अरविन्द को लिखा। श्री अरविन्द ने उत्तर दिया— कारीगर चन्द्रूलाल वैज्ञानिक ढंग से काम करता है वह सिर्फ इतना भूल गया कि नाटा ऊंचाइयों वाले लोग इस दरवाजे से आय-जायेंगे। तुम दरवाजे को यदि रहस्यमय बहिर्मुखता की दृष्टि से देखो, मानो एक बाहरी चीज

१ श्री अरविन्दो कम टू मी परा पब्लिकेशन, पृ० २९।

जिसमें तुम्हें आनन्द लेना चाहिए, तो तुम्हें लगना चाहिए कि जो कुछ हुआ है ठीक ह इसमें कोई खास बात नही। यदि तुम वाहियात "अन्तर्मुखी दृष्टि" से ही सोचना चाहते हो तो सनसनाते हुए सिर और दर्द की बात जरूर उठती ह। खैर दर्शन शास्त्र को छोड़ो श्रीमाँ चन्द्रलाल स कहेगी कि वह दार्शनिक रूप से नही व्यावहारिक रूप से तुम्हारी दिक्कत दूर करे।"[1] यह ह एक जवाब रसेल के भक्त को, जिस पर मौन रह जाने के अलावा बेचारे के पास चारा ही क्या था।

ऐसा भी नहीं कि रसेल आदि मानव सम्बन्धो में स्वतन्त्रता के कायल थे तो श्री अरविन्द नतिकतावादी थे। उन्होंने सन्ध्या वार्ता में ही एक स्थान पर थोथी नतिकता की निन्दा की ह, आरम्भिक अध्याय म हम नतिकता वाले प्रश्न पर उनके दृष्टिकोण स परिचित हो चुके ह। वे नतिकता को अध्यात्म से नीचे की चीज़ मानते थे और उसे किसी पूर्वग्रह के रूप में लादने के विरुद्ध थे। हा वे विकृत मन की अतृप्त शारीरिक रतिकता के घोर विरोधी थे।

गजदन्ती मीनार और योगी

दिलीप कुमार ने उन्हें अपने एक पत्र में "गजदन्ती मीनार" में या "पर्दे के भीतर" रहने वाला कहा था। श्री अरविन्द ने कभी भी जीवन का त्याज्य या माया नही माना। जैसा अब तक के विश्लेषण से स्पष्ट हो गया होगा। वे जीवन में रहकर जीवन को बदलना चाहते थे, परन्तु किस प्रकार? उन्होंने स्पष्ट लिखा है—"अवश्य ही हमारा योग सामान्य जीवन को स्वीकार करेगा, इसका बहिष्कार नही करेगा पर इसका यह अर्थ नही कि जीवन को ज्यो का त्यो स्वीकार करने के लिए हम बाधित ह। इसके प्रकट स्वरूप को, इसके समस्त स्खलनशील अज्ञान, दुःख दारिद्र्य एव मानवीय इच्छा बुद्धि, आवेग, अध प्रकृति के गडबड झाले को हम स्वीकार नही करेंगे। कम के समर्थक ऐसा समझते ह कि नित्य नई महावेग युक्त गति करने वाले मानवीय बल और बुद्धि के सहारे हरेक इच्छा सुधारी जा सकती ह किन्तु आज बुद्धि की ऐसी अतुल अभिव्यक्ति और शक्ति की ऐसी विपुल उत्पत्ति के बाद भी, जिसके लिए इतिहास में कोई दृष्टान्त ही नही ससार की जो वर्तमान स्थिति ह, वह इस बात का उज्ज्वलत प्रमाण ह कि कम के समर्थक जिस भ्रम से अभिभूत ह वह कितना सार शून्य ह।"[2]

श्री अरविन्द कभी भी गजदन्ती मीनार में खोये नही रहे। अज्ञातवास में निरन्तर एक बौद्धिक की तरह श्रमशील रहे और एक योगी क रूप में प्रयोगशाला क वैज्ञानिक की तरह सतत अभ्यासयुक्त। इसीलिये वे कह सके—वह व्यक्ति योगस्थिति म ह ही

१ श्री अरविन्द के पत्र पृ० ५७।
२ वही, पृ० १६२।

नही जो अपने को दिया हुआ कोई भी काय ईश्वरार्पित बुद्धि से नही कर सकता। किसी समय ऐसा था कि मैं शारीरिक कार्यों के लिए बिल्कुल अयोग्य था और हमेशा मानसिक कार्यों म ही लगा रहना चाहता था पर मैंने अपने को शारीरिक श्रम करने के लिए प्रशिक्षित किया, पूरी सावधानी और पूणता के साथ ताकि मैं अपने अस्तित्व की इस भयानक त्रुटि को दूर कर सकू और शरीर को एक समुचित और अनुकूल यन्त्र बना सकू। वह स्वभाव जो शारीरिक कार्यों को स्वीकार करने के लिए प्रशिक्षित नही होता, मानसिक रूप से उसी के भार से दबा रहता ह और शारीरिक रूप से जड तथा नष्ट प्राय हो जाता ह।'[1]

ऐसा था श्री अरविन्द का आग्रह। वे कभी भी, जैसा कि अक्सर पश्चिमी लोग भारतीय योगियों को मान लेते ह गजदन्ती मीनार में कद जीवन की अभ्यथना नही करते। इसी प्रसग में दिलीप कुमार राय द्वारा प्रस्तुत एक पश्चिमी बौद्धिक की नोक झोक का विवरण दिलचस्प होगा।

दिलीपकुमार राय ने पश्चिम के एक आधुनिक बौद्धिक की शकाओ का जो नाटकीय रूप श्री अरविन्द के यूनानी शिष्य चडविक [अजय] और एक दूसरे ग्रीक के परस्पर के वार्तालाप के बीच उपस्थित किया ह वे ही शकायें आधुनिक भारतीय बौद्धिक की भी होती ह, क्योंकि वे अपना परा दृष्टिकोण पश्चिम के वसे ही बौद्धिकों से प्रभावित रहता हैं। पश्चिमी बौद्धिक जिसका नाम फोनटिफ रखा गया ह बडे विश्वासपूण किन्तु शालीन ढग से कहता ह—"फिर भी इतना तो मानना पडेगा ही कि अनेक असफलताओ क बावजूद पश्चिम क वज्ञानिक दृष्टिवाले सक्रियतावादी ही विश्व पर छाये हुए ह पूरब के निष्क्रिय वचारिक या ध्यानी नही। ये कभी कभी हमारी गलत गतिविधियो या त्रुटियो की ओर अवश्य ही हमारा ध्यान आकृष्ट करा सकते ह क्योंकि तटस्थ रूप स बाहरी लोग एसा करने में समथ हो सकते हैं चौपड के खेल को देखने वाले गैर खिलाडियों की तरह। पर क्षमा करेंग, मैं यह नही कह रहा कि पूरब की किंचित् भी देन नहीं हो सकती वह हमेशा बहुत कुछ सिखा सकता ह पर तब उसके चिन्तकों और दार्शनिकों को कुछ अधिक क्रियाशील होकर हाथी दांत की उन मीनारों से बाहर आना होगा जिनमें बठ बठ व शान्ति ध्यान के द्वारा आत्म विजय की चेष्टा कर रहे हैं। इस पूर तक का चडविक शान्त ढग स उपस्थित करते हुए कहता ह—"मि० फोनटिफ आपन बहुत सुन्दर ढग स अपना पक्ष प्रस्तुत किया है इसम सन्देह नही। आप पूर्ण रूप स यह विश्वास करते हैं कि विश्व में सुधार सिफ उसी स्थिति में आ सकता है जब इसका सर्वोत्तम प्रतिभाएं सक्रिय रूप स विश्व के मुक्त रगमच पर सामन आकर शुभ काम अपना काय करें, पूरब क मौन शान्त आश्रमों स सुधार सभव नही। अच्छा बात है। आप यह भी मानते हैं कि पश्चिम क महान् व्यक्ति प्राय ही पूरब वालों की उप

१ [illegible] पृ० २१७।

युक्त त्रुटि से बचे रहे हैं और औद्योगिक और वैज्ञानिक विकास के बाद से तो निश्चित रूप में मुक्त रंगमंच पर मुझे आम ही निरंतर सक्रिय रहे हैं—ठीक है न ?'

"ठीक है।' मि० पौनटिफ आश्वस्त होकर कहते हैं।

"तो मैं आपसे पूछना चाहता हूँ मिस्टर, और कृपया स्पष्ट तौर से मर्द की तरह निःसंकोच उत्तर दीजियेगा कि पश्चिमी सभ्यता उन्नति की रेखा पर आगे बढ़ रही है या पराजय और अवनति की अधोरेखा में नीचे उतर रही है ?

"आपका मतलब ?" पौनटिफ कहना चाहते हैं।

'मेरा मतलब साफ है और आप जानते हैं। आप यह मानते हुए भी पश्चिमी पद्धति अपेक्षाकृत अधिक सही और दुरुस्त है, आप यहाँ पूरब वालों के पास क्यों आते हैं ? क्या आप सचमुच सोचते हैं श्रीमन कि एक न एक दिन पश्चिमी सभ्यता का गुलाब फिर से खिलेगा, जब आप अपने विपुल कीड़े की मदद से सारी समस्यायें सुलझा लेंगे उसी कीड़े की मदद से जो आपकी सभ्यता के पौधे को भीतर ही भीतर कुतर रहा है ?"

"मान लीजिए मि० चैडविक, यदि मैं पूछूँ उस कीड़े का नाम क्या है ?'

"मान लीजिए मि० पौनटिफ, यदि मैं कहूँ कि वह उन नाना मतवादों (Isms) से पैदा हुआ जिनकी बदौलत आपकी वह मशीनी बौद्धिक खुजलाहट करती है जो निरंतर त्वरा के साथ कुछ ऐसा कर दिखाना चाहती है जो सबको यथार्थ और संगत लगे, जब कि आप खुद अपने ही भीतर उसके उद्देश्य और उसके किये जाने के तरीके की संगति के प्रति असंदिग्ध नहीं होते। इसीलिये मैं कहता हूँ श्रीमन कि सही कार्य के लिए सही तरीका पाने के पहले आदमी की सही प्रतीति की जरूरत है।"

"मैं क्षमा चाहता हूँ मि० चैडविक।'

"क्यों—क्षमा किसलिए ?'

'इसलिए कि मैं अब ठीक से समझ रहा हूँ ।'[१]

इस परे नाटकीय दृश्य की प्रामाणिकता पर सोचने की जरूरत मुझे नहीं पड़ी, इसीलिए मैंने उद्धृत किया क्योंकि घटना का महत्व नहीं के बराबर है जब कि उसके भीतर निहित तर्क और उसके निष्कर्ष उन लोगों का निश्चय ही रुक कर सोचने की प्रेरणा देंगे जो पश्चिमी बौद्धिकता की नकल करके आधुनिक समस्याओं के समाधान के तुरंता नुस्खे (Instant Solution) पॉकेट में लिये घूमते रहते हैं बशर्ते उन्होंने संगत ढंग से सोचने और विचारने से ही छुट्टी न ले ली हो।

दिलीप ने यह पूरा नाटकीय विवरण श्री अरविन्द के पास लिख भेजा। जिस पर उनकी छोटी सी टिप्पणी इस प्रकार है—'संसार पर जिस दृष्टि से संभवतः पौंटिफ ने कहा (वे शायद कुछ सतही चीजों पर सरसरी तौर से कह रहे थे) वह

१ श्री अरविन्द कम टू मी पृ० ९१-९२।

मानसिक नही ह, वह किंचित प्राणिक है जो जीवन जमा ह उसी से कुछ अपेक्षा रखती ह। उनकी बात अलग ह जो सतही आन्दोलनों को ही सब कुछ मान लेते ह। चडविक का पूरा समर्थन करते हुए श्री अरविन्द ने लिखा—"जीवन का आन्तरिक दृष्टिकोण चेतना के परिवर्तन के बिना सभव ही नही। क्योंकि सिर्फ यही चेतना ऊपरी आकृतियों के नीचे गहराई में पडे भीतरी जीवन को देख सकती ह।'[1]

आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग

श्री अरविन्द न सिर्फ आध्यात्मिक शक्ति को सर्वोपरि उपलब्धि मानते ह बल्कि वे यह भी मानते ह कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्यों के लिए उसका पूरा प्रयोग भी किया जा सकता ह। विज्ञान की अग्रिम उपलब्धियाँ ही इसका भौतिक साक्ष्य दे पायेंगी, योगी इस प्रक्रिया को हमेशा से ही व्यावहारिक और उपादेय मानते रहे हैं।

अपने जीवन काल में इस शक्ति का उन्होंने किस प्रकार युद्धकार्य में उपयोग किया, इसका विवरण दिया जा चुका ह। व्यक्तिगत लाभों के लिए भी इसका कम प्रयोग नही हुआ। सन्ध्या वार्ताओं तथा उनके शिष्यों के पत्रों म इस क्रिया और उसके उपादेय परिणामों के अनेकश प्रमाण मिलते ह। उन्होंने दिलीप कुमार को लिखा—अन्तस्थ शक्ति का समक्ष म आने योग्य आन्तरिक और बाहरी परिणाम ही यौगिक चेतना का एक मात्र अर्थ ह।[2] उनके द्वारा अनेक असाध्य रोगियों के ठीक होने के विवरण मिलते ह। कभी कभी ये चमत्कार जसे लगते ह।

श्री अरविन्द स्वय स्वीकार करते ह कि बीमारियों में आध्यात्मिक शक्ति हमेशा ही प्रभावकारी नही होती, क्योंकि इसे कुछ निश्चित स्थितियों के भीतर रहकर काय करना होता है, जैसा कि और शक्तियों के साथ होता है। निश्चित प्रभावकारी तो केवल अतिमानसिक शक्ति ही होती है क्योंकि वह अपने लिए अपने अनुसार स्थितियाँ बना लेती ह। पर मैं जिस शक्ति का उपयोग करता हू इसे विश्व की आधुनिक स्थितियों के भीतर ही काय करना पडता ह।[3] श्री अरविन्द ने हमेशा ही अपनी असफलताओं को सहज ढग से स्वीकार किया।

उनके इस तरह के कार्यों पर अपनी चिरपरिचित शैली में नीरद बरण ने लिखा—श्रीमान आपने लोगों को विश्वस्त बनाया ह कि दवा और डाक्टर की जरूरत नही ह। दूसरी ओर आप इनमें अपने प्रति पूर्ण विश्वास भी नही पैदा करते ये विचार अँधेरे में लटक रहे ह। श्री अरविन्द ने लिखा—कभी डी० और एस० बिना दवा के अच्छे हो जाते थे, अब नहीं होते और उनका यह विकास तुम्हारे लाभ की चीज है ताकि तुम

१ श्री अरविन्दो कैम टु मी पृ० ९३।

२ वही पृ० १११।

३ रेमिनिसेंसेस एण्ड एनकोट्स, पृ० २७६।

अब समता का नया-नया अभ्यास शुरू करो। मैंने भी ऐसा करके ही सीखने-सीखते एम० ए० किया है। अब तुम्हारी बारी है।[१] वस्तुत आध्यात्मिक शक्तियों के क्रिया कलाप का अपना एक तौर-तरीका है, उसमें बीमार का पूर्ण सहयोग आवश्यक है। श्री अरविन्द इसे उसकी आस्था कहते हैं, यह आस्था डालो नहीं कि आध्यात्मिक शक्ति बेकार हो जाती है। मनुष्य का मानसिक जगत ही उसकी क्रिया से प्रभावित होता है उसके भीतर जाने का रास्ता बन्द कर दिया तो शक्ति क्या करेगी। बीमार आदमी को अच्छा कर लिया तो कोई बात नहीं किसी को जिसमें प्रतिभा नहीं है कवि कैसे बनाया जा सकता है। डाक्टर नीरद बरण ने चिकित्सा में अरविन्दीय शक्ति के चमत्कारों के आगे बेबसी से घुटने टेक दिये क्योंकि कई बीमारों को चमत्कारिक ढंग से अच्छा होते देखा पर कविता भी आध्यात्मिक शक्ति से पैदा की जा सकती है वे मानने को तैयार नहीं थे। श्री अरविन्द ने लिखा क्या तुम बता सकते हो कि कैसे दिलीप जो एक भी अच्छी कविता नहीं लिख सकता था और छन्द तथा तुक पर जिसका कतई अधिकार नहीं था, यहां आते ही, अचानक बिना लम्बे अभ्यास के, एक कवि, छन्दज्ञाता और तुक की कला का माहिर बन गया? क्यों ८गोर लगडे आदमी की इस करामात को देखकर कि बैसाखी फेंककर, छन्द और तुक के मार्ग पर स्वच्छन्द और निश्चिन्तता पूर्वक चलने लगा है आश्चर्य से ताकते रह गये? और फिर ऐसा क्या कर हुआ कि मैं जिसने कभी न तो चित्रकला का अभ्यास किया न सीखने की कोशिश की सहसा मात्र एक घंटे के भीतर, प्रतीति (विजन) के उद्घाटन से, चित्रों के रंग रेखाओं और डिजाइनों को देखने की आंख और समझने की बुद्धि पा गया? कैसे सम्भव हुआ कि मैं जो एक तात्विक तर्क व्याख्या को समझने में असमर्थ रहा करता था, जिसके लिए काट ह्यूम यहा तक कि बर्कले का लिखा एक पृष्ठ भी भौंचक्का कर देने वाला अबूझ और थका देनेवाला लगता था, या जिससे पूर्ण अरुचि हो जाती थी, आर्य पत्रिका को शुरु करते ही सहसा इसी प्रकार के पन्नों के पन्ने लिखने लगा और अब तो एक प्रसिद्ध दार्शनिक माना जाने लगा हूं। मैं पहले गद्य का एक परिच्छेद लिखने में और दो महीनों में एक छोटी अभ्यासपूर्ण कविता लिखने में कठिनाई का अनुभव करता था फिर कैसे अचानक प्राणायाम के बाद प्रतिदिन पन्ने पर पन्ना लिखता चला गया और तब भी इतनी काफी बुद्धि क्षमता बच रहती थी कि एक दैनिक पत्र का सम्पादन करता चलूं और बाद में एक मासिक पत्रिका (आर्य) के लिए दर्शन के साठ पृष्ठ भी लिखता रहूँ। मेहरबानी करके जरा धैर्य से सोचो और आसान और व्यर्थ बकवास मत करो। ईमानदारी और लगन के साथ किये जाने वाले कार्यों का लम्बे समय में पूरा करने को अगर यदि कुछ क्षणों या दिनों में योगशक्ति की सहायता से पूरा किया जा सकता है, तो

१ करेसपान्डेंस विद श्री अरविन्दो, पृ० ३५२।

भी यह उस नविन को प्रमाणित करने के लिए काफी ह। यही नही,पहले से अविद्यमान बौद्धिकक्षमता सहसा और शीघ्र उपस्थित हो जाती ह दुबलता या बल्हीनता सबलता में बदल जाता ह। या बाधित प्रतिभा अचानक उसी शीघ्रता से उन्मुक्त होकर सार्वभौम प्रतिभा म बदल जाती है" ।[१]

यश और विज्ञापन का विरोध

यह सब कुछ रहते हुए भी उन्हें यश या प्रतिष्ठा की भूख नही थी। जसे आरभ में 'गुरुगिरी' के विरोधी थे, वसे ही कोई काय प्रचार या यश क लिए करना व कतई पसन्द नहीं करते थे। एक बार बहुत आग्रहपूवक दिलीपकुमार राय ने प्राथना की कि राधाकृष्ण के आग्रह को मानकर उनके लिए दाशनिक निबध लिख दें क्योंकि एक दार्शनिक के रूप में पश्चिमी जगत के लोग आपको अभी अच्छी तरह नही जानत। श्री अरविन्द ने दिलीप को लिखा—'मुझसे लेख लिखवाने का राधाकृष्ण का आग्रह गलत या सही ह यह प्रश्न नही ह। पहली बात तो यह कि मेरे लिए किसी की फरमाइश पर दशन लिखना असभव ह। जब कोई चीज स्वत स्फूत हो तो समय मिलने पर लिख सकता हू। मेरे पास समय नही ह। अधर दास को कुछ लिखने के लिये सोचा था ताकि उन्हें सकेत कर दूँ कि उन्होंने अतश्चेतना और अत स्फूर्त ज्ञान के बारे में समीक्षा करते हुए मेरी धारणाओं को समझने में गलती की ह। पर मैं यह भी नही कर सका। वसे तो मैं भी सोचना पसन्द करूगा कि हनुमान की तरह चन्द्रमा को कांख में दबा कर (हालांकि उन्होंने सूय दबा रखा था) टहलने निकल पड़ूँ। पर चन्द्रमा उपलब्ध नही ह, इसलिए टहलना भी हो नही सकता। इसलिए यदि मैं राधाकृष्णन् को वायदा कर दूँ और वह पूरा न हो तो वह इनकार से भी बुरा होगा।

दूसरी बात यह कि मुझे तिल बराबर भी चाह नही ह कि मैं किसी बडी जगह म अपना नाम छपवाऊ। मैंने कभी भी राजनीतिक काय के दिनों में भी यश का आग्रह नही किया। मुझे पर्दे के पीछे रहकर लोगो को आगे बढाकर काम करा लेना अच्छा लगता ह। यह तो कहो कि यह हतबुद्ध ब्रिटानी सरकार थी, जिसने सारा खेल चौपट कर दिया और मुझ पर मुकदमा चलाकर जनता का नेता बना दिया। मैं पुस्तकों के अलावा किसी चीज के विज्ञापन में तथा राजनीति और पेटेंट दवाओं के अलावा किसी चीज के प्रचार (प्रोपगंडा) में विश्वास ही नही करता। गभीर काय के लिए ये चीजें तो विष की तरह हं क्योंकि या तो ये स्टंटबाजी लगती हैं या व्यथ का धूम धड़क्का ये इन चीजों के सारतत्व को ही धीरे धीरे खतम कर देती ह और इन्हें न जाने कहा ले जाकर निर्जीव और नष्ट भ्रष्ट करके पटक देती ह। मैं नही चाहता कि इनके लिए

१ कॉरेसपॉन्डेंस विद श्री अरविन्दो, पृ० १०।

कोई आन्दोलन भी खड़ा किया जाय। मेरे कार्यों जैसी चीजों के लिए आन्दोलन का मतलब है कोई सम्प्रदाय या पंथ या कोई ऐसा ही और बेहूदा प्रयत्न इसका नतीजा होता है कि सैकड़ों हजारों बेकाम लोग इसमें घुस आते हैं और इसे तड़क भड़क भरा प्रहसन बनाकर रख देते हैं और जो कुछ सत्य उपलब्ध हो भी रहा होता है तो वह न्यून होकर खो जाता है। यही मतवादों के साथ हुआ है और यही उनकी असफलता का कारण रहा है। यदि मैं अपने बारे में अल्प मात्रा में कुछ लिखे पढ़े जाने की बात सह लेता हूँ तो सिर्फ इसलिए कि जनता के मस्तिष्क में, जो बेकायदा गोलमाल का भाव भरा है, उसमें एक समतोल पैदा हो ताकि वह उस अज्ञान में पूर्ण जगत से उत्पन्न विरोध का, जो हमेशा नये गव्हर सत्य की उपस्थिति से प्रतिक्रिया में पैदा होता है, परिमार्जन कर सके। यही उसकी उपयोगिता खत्म हो जाती है। अनावश्यक विज्ञापन उद्देश्य को ही नष्ट करने लगता है। मैं पूर्णतः तर्कपूर्ण ढंग से चलता हूँ तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपने मार्ग में अपनी पसन्द नापसन्द या यश से चालित नहीं होता। सत्य के उद्देश्य से नियोजित यत्किंचित विज्ञापन को मैं सह लेता हूँ, पर विज्ञापन के लिए विज्ञापन को मैं अवांछनीय मानता हूँ।"[1]

सन्ध्या वार्ताओं और पत्रों को आधार बनाकर श्री अरविन्द के व्यक्तित्व के कुछ अंशों को यहाँ उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया, किंतु यहाँ इतना कह देना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि ये सन्ध्यावार्ताएँ और पत्र श्री अरविन्द और उनकी योग साधना को समझने के लिए न सिर्फ अनिवार्य उपादान हैं बल्कि अपेक्षाकृत अधिक सुगम और सरल भी। उनके महत् ग्रन्थ ग्रंथों में जिनका खुला प्रवेश नहीं है, और कम ही का होता है उन्हें इन पत्रों को अनिवार्य सहायक तत्व के रूप में हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

१ श्री अरविन्दो ऑन हिमसेल्फ, पृ० २५३६।

मनुष्य प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोग शाला

ताभ्य पुरुषमानयत्ता अब्रुवन सुकृत बतेति पुरुषो वाव सुकृतम्
ऐतेरेयोपनिषद् १।३।३
निश्चय ही मनुष्य सुकृत है खूब बना है।

ऐतरेयोपनिषद की इस कथा में गौ अश्व आदि के निर्माण पर देवताओं की असंतुष्टि की बात कही गई है। उन्होंने पशुशरीर को अपने आयतन के योग्य नहीं माना। मनुष्य का शरीर देखते ही वे उछल पड़े—"वाह कैसा अद्भुत है, बहुत बढ़िया बना है। सभी देवताओं ने मानव शरीर को अपने आवास के रूप में स्वीकार कर लिया। इसी की अनुगूंज 'नहि मानुषात श्रेष्ठतरो हि किंचित' में सुनाई पड़ी। मनुष्य शरीर पाना सौभाग्य की बात मानी जाती रही। इसे दुर्लभ और मुक्ति का द्वार तक कहा गया।[1] इसी की प्रतिध्वनियां भक्ति आन्दोलन के दिनों में निरंतर उभरती रहीं। 'बड़े भाग मानुष तन पावा', इसी का भाषानुवाद है।

यह सही है कि इस देश में देह शुद्धि एक चक्करदार पहेली भी रही है। याने "शरीरम" मानने वाले भी स्थूल देह के कई स्तर भेद करते थे। गर्भ यत्न के बिना उत्पन्न होने वाले अयोनिज शरीरों की इस देश में खूब चर्चा रही है। बौद्धों की 'निर्माण देह' जैनों की आहारक देह और उसी के समानांतर 'औपपादुक देह" की व्याख्याएं होती रही है। ईसाइयों की असंसर्गज देह (Immaculate Conception) अथवा पुरुष स्पर्श हीन गर्भ की बातों की भी मैं यहां मीमांसा करने नहीं चला हूं। कुमारी मेरी के पुत्र की देह का रहस्य बताना भी मेरा कार्य नहीं है और नहीं शक्ति तंत्र में जगदम्बा के कुमारी और धूमावती रूप के पीछे छिपी उनकी 'असंसर्गज सृष्टि क्षमता' का निरूपण मेरा उद्देश्य है। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि योनिज शरीर वाले मनुष्य की भी इस देश में भूरि-भूरि अभ्यर्चना की गई है और योनिज मानव देह की प्राप्ति को भी जन्म जन्मांतर के सुकृत का परिणाम कहा गया है।

पारस में भी मनुष्य को सृष्टि की सर्वोत्तम उपलब्धि के रूप में अभिनंदित किया जाता रहा है।

बाइबिल में मनुष्य को आश्चर्यजनक रचना कहा गया है।[2] मनुष्य को ईश्वर

1 जीवा मनुष्यता मर्त्य जन्मनामुत्तरोत्तरि।
तत्रापि दुर्लभं प्राप्य मुक्तिद्वार विरोगम ॥
अग्नि पुराण सृष्टिप्रकरणाध्याय।

2 ओल्ड टेस्टामेंट ११९।१४।

ने अपने अनुरूप ही निर्माण किया।[1] कभी उसमें कमियाँ देखी गई तो कहना पड़ा कि 'मनुष्य का फरिश्तों से कुछ ही घट कर है।[2] फासिस बेकारले "मनुष्य को स्वर्ग का (मास्टरपीस) कुशलतम निर्माण कहते हैं।[3] प्रोतागोरस मनुष्य को प्रत्येक वस्तु के निर्णय का मानदण्ड मानते हैं। इमर्सन ने मनुष्य को 'भग्न देवता' कहा। साराश यह कि सम्पूर्ण विश्व में मानव को सृष्टि की बेहतरीन वस्तु माना गया, पर यह मान्यता अपने ही भीतर की शंका से निरन्तर ग्रस्त भी होती गयी।

मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता की यह धारणा सबसे पहले पश्चिम में ही निरस्त हुई। जिस पश्चिम ने मनुष्य को ईश्वर का भी निर्माता कहा,[4] जहाँ ईश्वर की मृत्यु की घोषणा की[5] गई, उसी ने पिछले दो विश्व युद्धों के दौरान मानव के व्यक्तित्व का घोर अवमूल्यन भी आँख मूदकर स्वीकार कर लिया। वैसे मनुष्य की वरीयता के विषय में शंकायें और भी पहले से उठने लगी थीं। ब्रितानी कवि बर्न्स ने लिखा

आह ईश्वर आदमी क्या है,
यह कैसा सीधा सा लगता है।
लगातार हथकंडों के बल पर
बढ़ने की कोशिश करता है।
गहराई और छिछलेपन के साथ देखता है,
पर यहाँ कल्पपता भी अकेली है।
सब कुछ मिला कर
वह शैतान के लिए भी भारी पहेली है।

मार्क ट्वेन आदमी को सभी जीवों से ज्यादा घृणित बताते हैं।[6] सैमुएल जानसन ने अपने चिरपरिचित ढर्रे से कहा कि 'मैं सारी मानव जाति से घृणा करता हूँ क्योंकि मैं मानता हूँ कि मैं उसमें सर्वश्रेष्ठ हूँ और यह भी बखूबी जानता हूँ मैं कितना निकृष्ट हूँ।' रस्किन ने लिखा कि "आदमी एक हाथहीन जहरीला मकड़ा है जो खून चूस सकता है, डंक मार सकता है पर कभी कुछ बुन नहीं सकता।' धीरे धीरे योरप की परिस्थितियाँ और भी बिगड़ती गईं। मानो मकड़े से भी बदतर कि दास्तोवस्की को कहना पड़ा कि 'मैंने कई बार कोशिश की कि मैं एक अदना कीड़ा हो जाऊँ, पर मैं

१ वही नेनिनिम १।२७।

२ वही ८।५।

३ एम्बल्स पुम्तक २ संख्या ६।

४ मन क्रिप्टेन गाड एको ने ने मिनिक्स' में लिखा वह मनुष्य निश्चय ही बुद्धिमान था जिसने ईश्वर का निमाण किया।

५. गे सायंस' में नीत्से ने कहा कि 'हमने ईश्वर की हत्या कर दी है।

६ द कैरेक्टर आफ मैन।

उसकी बराबरी भी नही कर सकता। मैं शपथ खा कर कहता हूँ श्रीमान की बहुत ज्यादा सचेतन होना एक बीमारी है एक सचमुच की मुसलसल बीमारी।'[1]

आदमी के खिलाफ इतना लिखा गया है कि यदि सबको पढा जाय तो शायद ही कोई ऐसा मिले जो एक बार अपने पूरे अस्तित्व से निराश न हो जाए। दास्तोवस्की सिर्फ अदना कीडा बनना चाहता रहा और अभ्यास की कमी से वह न पाया, पर विचारधारा के इस चक्र से काफ्का नही बच पाया और उसका ऐसा कायाकल्प (मेटामारफासिस) हुआ कि वह तिलचट्टे में बदल गया। वस्तुत काफ्का का तिलचट्टा आज की आधुनिक मानव जाति की नियति बनता जा रहा है और पूर्व और पश्चिम के सभी चिंतक परेशान हैं कि इस दारुण अवमूल्यन को कैसे रोका जाय। रुक भी सकता है या नही यह समस्या आज समूची पाश्चात्य चिंतन को बुरी तरह से डस रही है और उन्हें कही भी नजात पाने का रास्ता दिखाई नही पडता। पूर्व की स्थिति तो पिछले एक हजार वर्षों से इससे भी अधिक बदतर रही है। अधिकांश देश जिस पूर्व के अंतर्गत माना जाता है, गुलामी के भीतर अंतिम सासे गिनते रहे हैं। यहा मनुष्य पशु से भी अधिक निकृष्ट ढंग से जीता रहा है।

मनुष्य क्या है? यह पूछने की अपेक्षा यह पूछना ज्यादा संगत है कि मनुष्य कैसे विकसित हुआ। सृष्टि विकास की प्रक्रिया का निष्पक्ष अध्ययन हमें बताता है कि आरम्भ में अचेतनता है बीच में अज्ञान है और अंतिम लक्ष्य ज्ञान है। सर्वमान्य प्रथम सिद्धांत है जड। इसी जड में विकास प्रक्रिया क्रियाशील हुई। कहा जाता है कि प्राण और मन इसी से विकसित हुए। यह वैज्ञानिकों की धारणा है। प्राण और मन को इस विकास ने ही इन्हें कही न कही से सीमित कर रखा है, क्योंकि जड से विकसित इन चेतन सत्ताओं पर जड अपनी सीमाएं लादता है प्राण और मन पदार्थ को परिवर्तित करने की प्रक्रिया में पदार्थ के प्राकृतिक नियमों से बंध जाते हैं इसलिए वे कभी भी स्वतंत्र गतिमयता नही रख सकते। प्राण उत्पन्न होता है, पर प्राण के सहारे के बिना अस्तित्व बनाये रखना जानता ही नही। उसके लिए जड और प्राण से बिल्कुल स्वतंत्र हो पाना संभव नही।

तो क्या इससे यह ध्वनित नही होता कि प्राण, और मनस कोई मौलिक सृजेता नहीं है, बल्कि जड की तरह ये भी किसी अदृश्य शक्ति के परिणाम मात्र हैं। परिमाणत यह सोचना बिल्कुल स्वाभाविक है कि जड चेतना, प्राण और मनस चेतनाओं से भी व्यापक कोई और ही मौलिक चेतना है जो सबको नियमित कर रही है। श्री अरविंद प्राचीन भारतीय ऋषियों की तरह यह स्वीकार करते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। सब कुछ उसी परा चैतन्य से प्रस्फुटित होता है और उसी के भीतर

१ अन्डरमाइन्ड कौमैन एक्जिस्टेंशियलिज्म फ्राम दास्तोवस्कीइ सात्र पृ० ५४।

भौतिक सी लगने वाली घटनाएँ कुछ इस कदर का स्वभाव रखती ह कि उन्हें पिटे-पिटाए भौतिक शास्त्रीय श दावली म अभिव्यक्त कर पाना मुश्किल ह।[1] परिणाम स्पष्ट ह कि आणविक शक्ति के अ वषण के बाद भौतिक वनानिक पहले की ही तरह अपने मस्तिष्क की ठोस वस्तुवादिता में स देह करन लगा ह और उन्हें बुड्ढे रहस्य वादी आइ स्टीन के इस कथन पर सोचने के लिए बाध्य होना पड रहा ह कि— 'भौतिक चि तन अपनी कठिनाइया को दाशनिक चितन क बिना दूर नही कर पायेगा"।[2] अब फिजिक्स और मेटाफिजिक्स को बिल्कुल विरोधी मानकर अपनी आन्तरिकता को या अ तरात्मा की आवाज को नकार पाना वनानिकों के लिए भी कठिन होता जा रहा ह।

डार्विन मनुष्य का प्रकृति का सवश्रेष्ठ प्राणी मानता ह, क्योकि 'बिना अपने श्रम के वह प्राणिक मानदण्ड की सर्वोत्तम ऊचाई पर ह, और उसने ऊँचे उठने का यह तथ्य और शुरू से ही ऊँचाई पर न होने का तथ्य इस बात का सबूत ह कि वह सु दर भविष्य में और ऊपर उठ सकता ह।[3] डार्विन के इस आशावाद को उनके प्रश सक हक्सले न थोडा नीचे उतारा। उन्होने लिखा कि— सिफ मनुष्य में और मनुष्य क द्वारा भविष्यत प्रगति सभव ह, कि तु उतनी ही आशका इस बात की भी है कि वह प्रगति की इस प्रक्रिया को ही इतना क्षतिग्रस्त करदे कि सृष्टि के साथ उसकी भी प्रगति रुक जाय।[4]

जूलियन हक्सले सृष्टि में उच्चतर और निम्नतर प्राणियों का अ तर बताते हुए कहते हैं कि ये विशेषण शारीरिक यत्र के गठन की श्रेणियों की ओर इशारा करते ह। जिस प्राणी में जितना ऊचे स्तर का शरीर सगठन (आगनाइजेशन) ह, वह उतना ही ऊँचा ह। पर इस सगठन का रूप और तत्त्व क्या ह? हक्सले ने लिखा ह— 'कठिनाई यही आती ह क्याकि यह शरीर सगठन वनानिक ढग से विश्लेषित और परिभाषित नही किया जा सकता।"[5] वस्तुत मानव के शारीरिक और आन्तरिक सगठन यत्र को पूणत विश्लेषित करन म भौतिक पदार्थों को अपना लक्ष्य मानने वाला विज्ञान असफल रहा ह। और यदि आइ स्टीन और दूसरे भौतिक वज्ञानिक इस ही स्पष्ट ढग स स्वीकार कर लेते ह तो यह न तो विज्ञान की हार ह और न वनानिक की। इस असफलता को दूर करने का प्रयत्न फ्रायड ने मनोविज्ञान के माध्यम से किया,

१ आन्स्टीन कुजलेसोव पृ० २८३।
२ फिलास्फर साइंटिस्ट पृ० २०९।
३ द स्पिरिट आफ मैन से एसन आफ ए ह्यूमनिस्ट में जूलियन हक्सले द्वारा—उद्धृत पृ० ३८।
४ वही पृ० ३७।
५ वही पृ० ३९।

पर उसने मनुष्य की वनानिका द्वारा स्वीकृत स्थूल उच्चता का भी चकनाचूर कर दिया और बाहर की पशुता की अपेक्षा मनुष्य के भीतर के बर्बर पशुत्व का उद्घाटन करके उसने मनुष्य की प्रगति पर ही एक प्रश्न चिह्न लगा दिया। यह करीब करीब सवमान्य तथ्य है कि फ्रायड और उसके बाद के मनोवनानिकों से बिल्कुल अलग श्री अरविन्द ने एक नये आध्यात्मिक मनोविज्ञान की स्थापना की। उसे संक्षेप में उपस्थित करना असंभव है।

श्री अरविन्द ने मनुष्य की विकास प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए बताया है कि यदि हम सृष्टि का मूल जड तत्त्व को मान लें तो यह बताना ही मुश्किल हो जायेगा कि भौतिक तत्त्वों से सजीव प्राण कैसे विकसित हुआ। वस्तुत बिना यह माने कि जड के अन्दर प्राण और प्राण के भीतर मन निवर्तित, छिपा छिपा होकर विद्यमान है, विकास क्रम को समझना कठिन है। गीता कहती है—

नासतो विद्यते भाव नाभावो विद्यते सत

अर्थात जो नहीं है वह कुछ हो नहीं सकता और जो है, वह नहीत्व में बदल नहीं सकता। जड में चेतना छिपी न होती, तो वह आ कैसे सकती है? जड में चेतना छिपी थी, इसीलिए जीवन विकसित हुआ, वैसे यदि जीवन या प्राण में मनस छिपा न होता, तो फिर उसका विकास कैसे होता? मतलब यह कि विकास प्रक्रिया का अर्थ ही है उपस्थित पदार्थ में निवर्तित या छिपी शक्ति का विकास। इसी बात को आगे बढाकर हम कह सकते हैं कि मानस अन्तिम तत्त्व नहीं, उसमें अधिमनस् छिपा है और इस अधिमनस् में अतिमनस का तत्त्व निवर्तित है। विकास उसी तत्त्व का होगा जो पहले से वहाँ विद्यमान होगा। इस अकाट्य तथ्य को आधार बनाकर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि विकास की प्रक्रिया में पदार्थों के अन्दर अवगुंठित चेतना निरन्तर एक कदम आगे बढने की इच्छा से सचालित होती रहती है। जड तत्व के विकसित रूपों में प्राण स्तर पर पहुँचने की प्रेरणा, प्राणस्तर की उन्नत वस्तुओं में मन स्तर तक उठने की प्रेरणा अदम्य रूप से अपना कार्य करती रहती है। 'कहा जाता है कि पशु एक ऐसी सजीव प्रयोग शाला रहा है जिसके अन्दर प्रकृति ने मनुष्य को गढा। उसी तरह संभव है कि मनुष्य एक ऐसी विचारशील और सजीव प्रयोग शाला हो जिसके अन्दर उसके सचेतन सहयोग से प्रकृति अतिमानस का, देवता का निर्माण करना चाहती है।''[1] श्री अरविन्द का पूरा दर्शन, मनोविज्ञान, साधनारूप, सभी इसी दिव्य प्रेरणाप्रद सूत्र से सचालित है। चूंकि मनुष्य एकमात्र सोचने विचारने वाला प्राणी है, इसलिए उसके विकास की प्रक्रिया स्वाभाविक होते हुए भी बहुत कुछ उसके 'सहयोग' पर निर्भर

१ द लाइफ डिवाइन पृ० ४।

करता है। यह 'समन्वय' श्री अरविन्द की साधना का मूलमंत्र है। इसी आधार पर मनुष्य सिद्ध एवं महीयान होकर उनके समाधान में मानवों की भूमिका में सम्मिलित हो जाता है।

मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो मनस्तत्त्व का अधिष्ठाता है। इसलिए मनुष्य का समग्र के लिए उसका मानसिक गठन का मनोविज्ञान विशेष अधिकार हो जाता है। पहले ही कहा गया कि श्री अरविन्द वेदान्त की उस मान्यता में विश्वास रखते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म की या सच्चिदानन्दात्मक है अभिव्यक्ति है। यानी उसकी सभी भिन्न पार्थिव शक्तियाँ पूरी सृष्टि में अनुस्यूत हैं पर उसका स्फुरण सबमें एक जैसा नहीं हो सकता। चाहें तो हम यों भी कह सकते हैं कि सृष्टि में जो कम्पन या परिस्पन्द दिखाई पड़ता है वह दिव्य शक्ति के क्रमागत प्रस्फुटन का ही परिणाम है। श्री अरविन्द ने सब कुछ को ब्रह्म माना इसलिए संसार का व उसका उचित महत्त्व दिया। एक ओर वस्तुवादियों की मात्र भौतिकतावादी दृष्टि का अस्वीकार करते हैं तो वहीं संन्यासियों के संसार असार वाली दृष्टि का भी। 'लाइफ डिवाइन' में इन दोनों दृष्टियों का उद्धार अनुपयोगी माना है। उनकी दृष्टि में भौतिकवादी के इनकार का अपना सा मान्यता का इनकार ज्यादा खतरनाक तथा मनुष्य और समाज के लिए अपेक्षाकृत अधिक हानिकारक सिद्ध हुआ है।[1] श्री अरविन्द भौतिकवादी और संन्यासी दोनों के भी इनकारों की यह यह उपयोगिता भी मानते हैं कि दोनों अतिवादी दृष्टियों ने दिव्यसत्ता के अस्तित्व का ठीक से समझने की भूमिका तैयार की। उन्हीं के शब्दों में अन्तिम सामंजस्य के लिए उपयोगी होने के कारण भौतिक विज्ञान के तथ्यों का चाहे उसमें से कुछ या बाद में सभी छोड़ने पड़ें, सुरक्षित रखना होगा और उससे भी ज्यादा सावधानीपूर्वक आर्यों की प्राचीन अतीत की उस विरासत को भी सही ढंग से बचाये रखना है चाहे वह कितना भी कम मूल्यवाली या क्षीण क्यों न हो गई हो।[2]

यह मानी हुई बात है कि चित् शक्ति का सर्वाधिक प्रस्फुटन मनुष्य में हुआ है। अतः यदि मनुष्य की मानसिक गठन अथवा उसकी चेतना के विविध आयामों के विश्लेषण में भी श्री अरविंद ने अपेक्षया अधिक अभिनिवेश प्रकट किया तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

प्राचीन भारतीय ऋषियों ने अन्नमय, प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों की चर्चा की है। किन्तु यह चर्चा बहुत सूक्ष्म और सविस्तर वैज्ञानिक ढंग से नहीं हुई। श्री अरविन्द ने इस वर्गीकरण से प्रेरणामात्र ली और अपने आन्तरिक अनुभव के द्वारा मानव के मानस लोक को बड़े विस्तार और सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरणों के तरतीबवार आकलन द्वारा पूर्ण उजागर कर दिया।

१ द लाइफ डिवाइन पृ० २८।
२ वही, पृ० ३०।

प्रश्न उठता है कि यदि मनुष्य सच्चिदानन्द परमेश्वर की ही अभिव्यक्ति है तो वह नाना प्रकार की सीमाओं में आक्रान्त, दुःखों से ग्रस्त, कल्मष से उपहत और जड़िमा, निराशा और जीवन शक्ति से इतना हीन क्यों हो गया है। श्री अरविन्द कहते हैं कि इस स्थिति का मूल कारण मनुष्य का जाने-अनजाने अपने को मूलस्रोत से विच्छिन्न कर लेना या हो जाना है। मृत्यु, त्रास, अशुभ, कष्ट आदि विराट चेतना ज्योति की विपरीत अभिधाएँ या छाया रूप मात्र हैं। पर यह हो तत्व हमारे लिए सर्वांगासिनी दुर्दान्त परिस्थिति का रूप ले लेते हैं क्योंकि हम अज्ञान और प्रमाद के कारण, अपने अहं के वशीभूत होकर अपने को जड़ शरीर तक सीमित करके, स्वयं-कृत कर्मों के चक्र में पड़कर इनकी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य हो जाते हैं।

श्री अरविन्द ने बहुत विस्तार के साथ प्राचीन भारतीय शास्त्र-वक्ताओं ऋषियों, दार्शनिकों और नवीन पाश्चात्य दार्शनिकों की सृष्टि विकास विषयक मान्यताओं का विश्लेषण ही नहीं किया है बल्कि उनका अपने दृष्टिकोण से सत्यासत्य विचार करके अपना मन्तव्य भी स्पष्ट किया है। मैं यहां उस विश्लेषण में नहीं पड़ना चाहता। मैं मनुष्य के आभ्यन्तर को स्पष्ट करने वाले उनके विचारों तक ही अपने को सीमित रखना चाहता हूँ।

श्री अरविन्द चेतना के विषय में व्याप्त इस रूढ़ और असंगत धारणा के पूर्ण विरोधी थे कि शरीर के अधिकतर भाग में सक्रिय मानवीय संवेदन का सुगम भाव ही चेतना है। निद्रा, मूर्च्छा, या मादक वस्तु के प्रभाव में होने पर भी यानी शारीरिक सत्ता की जो अचेतन स्थितियाँ हैं, उनमें भी कुछ न कुछ ऐसा होता है जो सचेतन रहा करता है। वे कहते हैं—"अब हम निश्चित रूप से मान सकते हैं कि प्राचीन चिन्तकों का यह कहना ठीक था कि अपनी जाग्रत अवस्था में भी हम जिसे चेतना कहते हैं वह हमारी समग्र सचेतन-सत्ता में से निर्वाचित किया गया एक छोटा सा भाग ही है। इससे पीछे इससे कहीं विशाल एवं अवगूढ़ या अवचेतन मानस है जो हमारी चेतना का महत्तर भाग है और उसमें ऐसी ऊँचाइयां और गंभीरताएँ हैं जिन्हें कोई मनुष्य अब तक न नाप सका है न थाह सका है।"[1] वे जड़वादी चिन्तकों के इस आग्रह को स्वीकार नहीं करते कि चेतना सिर्फ जड़ का प्रपंच है। उनके इस कट्टर तथा दुराग्रह को निरस्त करते हुए वे कहते हैं—"उनकी व्याख्याएँ अधिकाधिक अपर्याप्त और कष्ट कल्पित होती जा रही हैं। यह निरन्तर स्पष्ट होता जा रहा है कि हमारी समवाय चेतना का सामर्थ्य हमारे अंगों, इन्द्रियों, स्नायुमंडल और मस्तिष्क की क्षमताओं से भी कहीं अधिक है और वही चेतना, जिसकी उर्ध्वमुखी विकास प्रक्रिया ने मस्तिष्क जैसी चीज का निर्माण किया है, उसका उपयोग करती है। मस्तिष्क न तो चेतना

१ द लाइफ डिवाइन, पृ० १०१।

को पैदा करता ह न तो उसका इस्तेमाल करता है। हमारे शारीरिक यत्र विचारशक्ति और चेतना की प्रक्रियाओं को व्याख्या वसे ही नही कर सकते जसे एक इजन भाप या विद्युत शक्ति की, जिनसे वह सचालित होता है, व्याख्या नही कर सकता।"[१]

यही विराट चेतना ने लम्बे दौर के बीच ऊर्ध्वमुखी प्रक्रिया के द्वारा मनुष्य का निर्माण किया। मनुष्य क्या है ? "यह सचेतन विचारने वाला पशु ह जिसने लम्बी विकास प्रक्रिया के बीच अपने को सचेतन मानसिक प्राणी के रूप में बदल तो लिया ह पर जो अपने उच्चतम स्तर पर भी पशु वत्ति के आदिम ढाचो को, शरीर के अवचेतन के मुर्दा बोझ को चिरादिम जडता और अनान की ओर निम्नोमुख गुरुत्वाकपण को, अपने चैतन्य विकास के ऊपर चेतनामूढ भौतिक प्रकृति के शासन को तथा इसके सीमित और सकुचित करने वाले बल को इसके जटिल और कठिन विकासात्मक विधानों को और इसकी अधोमुखी और निराश बनाने वाली दुवह शक्ति को निरतर ढोता चल रहा ह।'[२] इन्ही प्रत्यवाया के बीच डार्विन ने अग्रिम विकास की आशा की थी भले ही उसकी आशा भौतिक चेतना के नूतन विकास की ही रही हो। 'द डीसेन्ट आफ मैन' उसी भौतिक प्रगति के सपना का साक्ष्य उपस्थित तो करती ही ह। नीत्शे ने कहा था कि आदमी में महान वस्तु यह ह कि वह मजिल नही एक पुल ह'[३] सिनेका ने आदमी की दुबलताओ के बीच भी देवता का सौम्य चेहरा देखा था। पर ये सभी मात्र आशाएँ ही रही। नीत्शे का 'सुपरमन" नाजी युद्ध में अपने अह से ही फट कर धूलिसात हो गया। श्री अरविन्द और नीत्शे के महामानव' में आकाश पाताल का अतर ह।

श्री अरविन्द ने उपयुक्त दारुण स्थिति में पडे हुए मनुष्य के बारे में कोरे आशा वाद की अभिव्यक्ति नही की। उसके दिव्य रूपान्तर को वे प्रकृति की अन्तभूत विकासात्मक चेतना का स्वाभाविक परिणाम मानते ह। उनकी सबसे बडी देन यह है कि उन्होंने अगले लाखा करोडों वर्षों में प्रकृति की स्वाभाविक गति से घटित होने वाले विकास को यथासभव कम से कम समय में घटित हो सकने की विस्तत विधि का उद्घाटन किया। यह एक मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक विधि ह जिसे हम मानसिक क्षेत्र की परमोच्च ऐतिहासिक घटना भी कह सकते हैं।

श्री अरविन्द ने चेतना को दो भागों में बाँट दिया। चेतना का वह रूप जो अब तक विकास के परमोच्च पर ह यानी मानसिक और दूसरा वह जो विकास के माध्यम

१ द लाइफ डिवाइन पृ० १०२।
२ वही पृ० ९८४।
३ दस स्पोक जरथुस्त्र।

से भविष्य में पाया जा सकेगा अर्थात अतिमानसिक। मनुष्य ने मानसिक चेतना को विकास के दौर में पा लिया है, पर वह चेतना के विकास की मूलभूत प्रक्रिया का विश्लेषण और हृदयगम न कर पाने के कारण जानता ही नहो कि मानसिक चेतना के आगे क्या ह ?" श्री अरविन्द इसी अज्ञात को, चेतन प्रकृति की प्रक्रिया के विश्लेषण से, उसकी सूक्ष्म पद्धति को जानकर उसी के आधार पर समझाने का प्रयत्न करते हैं। वे लिखते हैं—"हर जीवन पदाथ पर चेतना की विजय का एक चरण ह, यह तब तक चलता रहेगा जब तक पदाथ को अनुशासित करके चेतना उसे पूर्ण आत्मा की अभिव्यक्ति का सीधा साधन और माध्यम नहीं बना देती।"[१] मनुष्य नि सन्देह पार्थिव सृष्टि के शीप पर स्थित है किन्तु वह अपने स्वभाव और स्वधर्म में इतना सीमित ह कि वह नई जाति का निर्माता नही हो सकता, किन्तु नई दिव्य जाति, जो सभावित है वह बिना मनुष्य की प्रगति को स्वीकार किये, बल्कि उसी के भीतर के कुछ विकसित तत्त्वो को उपादान के रूप में ग्रहण किये आ ही नहो सकती है।

मस्तिष्क मनुष्य के लिए सबसे बडी शक्ति ह, पर अग्रिम विकास में वही सबसे बडी बाधा भी ह। क्योकि हमारा मानसयन्त्र शरीर या भौतिक जगत और अतिमानसिक सत्ता के बीच सेतु नही बन सकता। मस्तिष्क न तो ज्ञान का समुच्चय ह और न तो उसका उत्पादक सयन्त्र ही। यह तो मात्र ज्ञान को ढूँढने का औजार ह। सापेक्ष्य विचारों के रूप में जो कुछ भी यह पाता ह उसका कुछ खास क्रियाओं में उपयोग भर करता रहता है। मस्तिष्क की अपनी आदतें हैं। वह हमारे शरीर के भीतर बेडियों में जकडे शासक की तरह स्थित ह। वह अदश विराट को समुच्चय का कभी समझ नही सकता, इसलिए वह खडश टुकडे टुकडे करके, रूपाकार प्रदान करक चीजो को अलग-अलग करके समझने और समझाने की कोशिश करता ह। मानों यह चीजें अलग अलग और खडश बिना आधार के भी विद्यमान हो सकती हैं। उसकी ये सीमाएँ स्पष्ट हैं। "मस्तिष्क कभी भी अनन्त को अधिकृत नही कर सकता वह अनन्त के द्वारा भुक्त और अधिकृत ही हो सकता ह। 'बहुत कोशिश करके वह अधिक से अधिक अपनी पहुँच के परे की सत्ता के लोगो को जो ज्योतिमय सत छाया है उसके नीचे असहाय सा वह पडा रह सकता ह। अतिमानस (Super mind) लोकों में उनके स्तर पर आरोहण के बिना अनन्त पर अधिकार नही हो सकता और इस आरोहण के लिए अतिमानसिक सदेशो के प्रति मस्तिष्क को निस्पद बनाकर समर्पित कर देने के अलावा कोई रास्ता नही है।"[१]

मनुष्य का मन या मस्तिष्क शरीर के साथ एकत्वबोध के कारण और भी स्थूल हो गया है। वह शरीर और स्नायुओं की उत्तेजना में अनुरक्त हो गया ह। शरीर

१ द लाइफ डिवाइन पृ० १०४।

यत्न से योग ऊपर के स्तर से अपने को जोड़कर यह प्राण पुरुष के रूप में भोगों की भूमिका में रहने का अभ्यस्त है। यहीं से यह शरीरगठिता से बाहर आकर उठ कर व्यक्ति भावोन्मत्त होकर प्रकार प्रभु की आत्मा शक्ति से देना और उपभोग करने का प्रयत्न करता है। यहीं पर अन्तर्वैयक्तिक धरातल पर प्राणिक स्तर और समन्वय जानता-बुनता है और अपनी इच्छा ऊर्जाओं का नियमन करता रहता है। प्राणिक मन के पीछे एक और चिन्तनशील मन भी है। यहीं आकर मनुष्य अपने को शरीर रूप तथा प्राण रूप के अलावा मन रूप में भी जानने लगता है। यहीं पर वह शारीरिक और प्राणिक स्तरों से सम्बन्ध रखने वाली भावनाओं में भी शुद्ध ज्ञान का अनुभव कर सकता है। वह एक ओर अपने को मन रूप में क्रियाशील करता हुआ प्राण और शरीर के स्तर पर अपने को जान सकता है दूसरी ओर अपने भीतर भी पैठ सकता है और उसी सूक्ष्म स्तर पर वह दूसरे लोगों के मन के भी गुणों या कर्मों की कामना कर सकता है। यहीं पर वह शारीरिक स्नायविक या प्राणिक स्थूल संस्कारों से ऊपर पर हो नहीं वरन शुद्ध मनोमय सत्ता से धारणा का बोध कर सकता है। यद्यपि यह पहले के स्तरों से मस्तिष्क की ऊँची स्थिति है किन्तु यहाँ भी वह अपनी भ्रान्तियों से बच नहीं सकता, क्योंकि इस स्तर पर वह अपनी सत्ता को सबसे अलग करके उसे ही अनन्त सत्ता का साक्षी मानकर अहं के आवरण में अपने को जकड़ रहता है। जब यह आवरण कभी विदीर्ण हो जाता है और नाना स्तरों पर विभक्त मन किसी अतिमानसिक क्रिया के द्वारा पराभूत नीरव और निष्क्रिय हो जाता है तभी वह व्यापक सत्य की ओर उन्मुख हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह कि मनुष्य का मस्तिष्क (mind) प्रायः शरीर की क्रियाओं प्राण की आकांक्षाओं और मन की अहम्मन्यता में पूरी तरह लिपटा हुआ है। उसने अभ्यास वश इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त संवेदनाओं में ज्ञान की आस्था डाल ली है। और चूँकि मस्तिष्क अपनी अन्तर्निहित सीमा के कारण कभी सत्य का पूर्ण साक्षात्कार कर ही नहीं सकता इसलिए अर्धसत्यों को बटोर बटोर कर उसने अपने अहं की तुष्टि के लिए रुचि धारणा, आदर्श मूल्य आदि के मिथ्या जाल बनाकर उसी में अपने को आबद्ध कर लिया है। आजतक विश्वव्यापी ज्ञान का जो भी रूप है वह मनुष्य के इसी अहंकेन्द्रित मन की उपज है परिणाम स्पष्ट है कि उसके द्वारा बटोरे हुए तथाकथित ज्ञान की राशि ज्यों ज्यों बढ़ रही है वह शान्ति पाने की अपेक्षा बेचैनी और अस्थिरता का शिकार होता चला जा रहा है।

तो क्या मनुष्य इससे छूटकर अतिमानसिक सत्ता की ओर अभियान कर सकता है ? यदि हाँ तो उसका प्रस्थानबिन्दु क्या है और उसका संभावित रूप क्या हो सकता है ?

आवरण विदारण प्रक्रिया के बिना हम ज्योतिर्मय मानस सत्ता का दर्शन नहीं कर सकते। मनुष्य के इस विकसित तृतीय स्तरीय मन और अतिमानस के बीच की

खाई को पाटने की प्रक्रिया चत्यपुरुष से शुरू होती है। यही अतिमासिक यात्रा का आरंभ बिन्दु है। यह चत्यपुरुष ही वस्तुतः शरीर प्राण और मन के स्तर पर काय करने वाली चेतना का आधार है। किन्तु सदा विद्यमान रहने पर भी वह अनुभूत नहीं होता, क्योंकि मन और प्राण उसे ढके रहते हैं। यानी शुद्ध अतिमानसिक सत्ता के इस विशेष प्रतिनिधि को पदच्युत करके अहविस्फारित मन ने ही उसका स्थान ले लिया है। साधना मनोविज्ञान के क्षेत्र में चत्यपुरुष की धारणा श्री अरविंद की महान देन है। सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान श्री कपालि शास्त्री ने इस शब्द पर विचार करते हुए लिखा कि "इसे चित या चिति से व्युत्पन्न मानना संदिग्ध है। श्री अरविंद ने बंगाल के वैष्णव साहित्य में प्रचलित इस शब्द का हृदयस्थित पुरुष के रूप में ग्रहण किया। तथापि यह चत्यपुरुष हृदयदेश में प्रतिष्ठित है किन्तु यह मनुष्य की हृदय गुहा में निवास करने वाले ईश्वर की धारणा से भिन्न है। यह ईश्वर की ही एक रश्मि है उसी का अंश है पर वही नहीं यह वस्तुतः यान्त्रिक शरीर (मन प्राणयुक्त) पुरुष और ईश्वरीय सत्ता का मध्यस्थ है"[1] अतिमानसिक सत्ता की ओर बढ़ने के लिए जरूरी है कि मनुष्य मानसिक, प्राणिक और शारीरिक संवेदनाओं से उत्पन्न सीमा से अपने को मुक्त करे। आदतों पर आधारित सोचने विचारने और प्रायः अर्धसत्यात्मक या गलत निर्णय लेने वाले मस्तिष्क की जगह चैत्यपुरुष से अपने को जोड़े। यह काय कैसे संभव होगा। श्री अरविन्द ने इस यात्रा की दो मंजिलें स्वीकार की है। अधिमानस (Over mind) और अतिमानस (Super mind)। अधिमानस अतिमानस का वस्तिक प्रतिनिधि है। यह स्वयं प्रकाशित होने हुए भी, पूर्ण अतिमानसिक ज्योति को हमसे दूर रखता है। यही हिरण्मय पात्र है, इसी ने सत्य के मुख को ढ क कर रखा है। हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम" मस्तिष्क की प्रक्रिया से मुक्त होकर इसको सामाओं से अपने को अलग कर चत्यपुरुष के रास्ते से अधिमानस (over mind) और उसके भीतर से अतिमानस की ओर आरोहण का क्रम है। अतिमानस के नीचे अवराध चेतना, यानी मन, प्राण शरीर में सक्रिय रहने वाली चेतना का लोक है और उसके ऊपर आनन्द, चित और सत का पराध चेतना-लोक है।

श्री अरविन्द दर्शन के पाठकों को एक बात ध्यान रखना चाहिए कि जिस तरह की कठिनाई अवराध चेतना में चत्यपुरुष को समझने में उत्पन्न होती है वैसी ही कठिनाई पराध चेतना में अधिमानस को लेकर सामने आती है। अधिमानस वस्तुतः अतिमानस की शक्तियों का नियोजक है। एक ओर वह अपने से नीचे के चेतना लोकों की वस्तुओं का यथातथ्य विधान संपादित करता है, अपनी मायाशक्ति में सब कुछ को आवेष्टित करता रहता है, वही चत्यपुरुष के जागरण के बाद यह निम्न भूमि में बद्ध चेतना

[1] मातृतत्वप्रकाश, पृ० ११३।

का उन्मीलन और स्वय प्रकाश का ज्ञान का अवज्ञान भी प्रदान करता है।

चेतना के विभिन्न स्तरो का यह सामान्य विवरण उसकी नानामुखी सूक्ष्म प्रक्रिया का एक हल्की झलक को उपस्थित करने उद्देश्य स प्रस्तुत किया गया। मनोमय और विज्ञान मय कोशों की जितनी सूक्ष्म, विस्तृत और व्यापक चर्चा श्री अरविंद न की वसी अब तक किसी भी दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक स्कूल द्वारा उपस्थित नही की गयी। सवाल ह क्या मनुष्य उच्चतर चेतना क इन स्तरो को आर बढ़ सकता है और यदि हा तो उसके लिए मार्ग क्या है? मार्ग का विस्तृत वणन तो श्री अरविन्द के योग समन्वय को देखने से ही मिलेगा, यहाँ सक्षप में कुछ एसी बातों पर विचार करना चाहता हूँ जो अतिव्यावहारिक दृष्टि वाले व्यक्तियों को भी थोडा रुक कर सोचने विचारने की प्रेरणा दे सकती है।

मानव के उच्चतर सत्ता में रूपान्तरण के कार्य को श्री अरविन्द चेतना विकास का अनिवाय चरण मानते ह। पर आज तक ऐसा हुआ क्यों नही? बडे-बडे दार्शनिक पदा हुए, सिद्ध-सन्यासी उपदेश देते रहे पर दद बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा होती रही। आखिर क्यों? श्री अरविन्द ने इसका कारण बताते हुए कहा— कि ऐसा इसलिए हुआ कि अध्यात्म के नाम पर जगत से उदासीनता का उपदेश और साधना के नाम पर व्यक्तिगत मुक्ति का प्रयत्न ही मुख्य उद्देश्य बन गया। मानव मात्र के विकास पर कभी दृष्टि टिकी ही नही। इसीलिए श्री अरविन्द का पूण योग शरीर प्राण, मन जीवन-जगत से अलग होने का नही इन्ही के बीच उच्चतर क्रिया से इनके रूपान्तर पर बल देता ह। यह विकास त्रिधागति से सभव ह। विस्तार आरोहण और अवरोहण। सम्पूण चेतना की विविध क्रियाओ को विस्तृत करना, महत्तर चेतना की उपलब्धि के लिए आरोहण और उच्चतम की प्राप्ति के बाद निम्नतम तक उतर कर सभी स्तरो के परिष्कार और शोधन का प्रयत्न करना और इस प्रयत्न को व्यक्तिगत मुक्ति के लिए नही बल्कि मानवता के सामुदायिक विकास के लिए सकल्पित कर देना—यही श्री अरविन्द के योग का उद्देश्य ह। इस समूची प्रक्रिया को श्री अरविंद ने इतने विस्तृत, सुनियोजित और क्रमबद्ध ढग से व्यावहारिक सूझबूझ क साथ प्रस्तुत किया ह कि इसे "कल्पना प्रसूत भव्यता" कह कर टाला नही जा सकता। डा० शिशिर कुमार मित्रा ने ठीक ही लिखा ह—"इस विकास प्रक्रिया की हम सैन्य सचालन की गतिविधि से तुलना कर सकते ह जहाँ सभी के सभी दस्ते उस ढग से बढते ह कि एक दूसरे के बीच कायम सम्पक सूत्र बिल्कुल चुस्त दुरुस्त बने रहते ह।[1]"

मनुष्य के भीतर विद्यमान चैत्यपुरुष 'ऐसी शुद्ध और पवित्र अग्निशिखा ह जिसे इसके सम्पक में आने वाली कोई भी वस्तु या हमारे कोई भी अनुभव कभी भी अपवित्र

१ द फिलोसफी आफ श्री अरविन्दो पृ० ६७।

नहीं कर सकते या कोई भी चीज इसे बुझा नही सकती। यह आत्मिक अयोनिज और पूर्ण दीप्त तत्व है अत यह तुरन्त सगेपन के साथ और सीधे प्रकृति के और अस्तित्व के सत्य को जान लेता है। यह पूरी गहराई से सत्य शिव सुन्दर के प्रति जागरूक होता है क्योंकि ये चीजें इसके मूल स्वभाव से—या इसके तात्विक स्वाकार से बहुत घनिष्ठ रूप से सबध रखती है।[1] यह चैत्यपुरुष तब तक उन्मीलित नहीं हो सकता जब तक हम आन्तरिक रूप से शान्त नहीं होते। अपने मस्तिष्क की हलचल और आपाधापी की क्रियाओं को स्थगित नही कर देते। ये ही चीजें हमारे प्राणिक अह के साथ मोटी खाल के आवरण की तरह इस अग्निशिखा को ढँके हैं। जब तक मस्तिष्क प्राणिक अह की मांगों की पूर्ति करता रहेगा तब तक चैत्यपुरुष के उन्मीलित होने और मानव जीवन के विकास की बागडोर को अपने हाथ में लेने की सभावना नही के बराबर रहेगी। ज्यों-ज्यों मन शान्त होकर अपनी पुरानी आदतों के बहाव से उपराम होता है चैत्य पुरुष का सिंहासन जाग्रत चेतना की ओर उठने लगता है और धीरे धीरे ज्यादा सक्रिय और समझ में आने लायक ढग से जीवन का नियत्रण अपने हाथ में ले लेता है। पवित्र सुन्दर, शान्त, शिव की माग बढने लगती है, जीवन में तनाव, निराशा, अशान्ति के स्थान पर सत्य के सम्मुख समर्पण और आनन्द में जीने की लालसा बढती जाती है। चैत्यपुरुष के जागरण के ये मूल लक्षण हैं।

चैत्य पुरुष का प्रभाव जीवन की सतह पर बहुत शुद्ध रूप में सहसा उभर आए, ऐसा कम सभव होता है। प्राय सूक्ष्म मानसिक, प्राणिक, सूक्ष्म भौतिक प्रक्रियाएँ इसमें गडडमडड होकर इसे अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप मोडने इस्तेमाल करने की कोशिशें करती रहती है। इसलिये जब तक कि व्यक्ति में पूर्ण आत्मिक दिव्य सत्य को पाने, उसके अनुकूल जीवन को ढालने की पूर्ण अभीप्सा नहीं होगी तथा अपने जीवन को स्वय उस अभीप्सा के अनुकूल अपने नियत्रण में रखने की चेतना नही होगी तब तक चैत्यपुरुष के पुन विवश होकर पृष्ठभूमि में खिसक जाने की आशका भी बनी रहती है।

इस प्रत्यवाय से बचने का एक मात्र रास्ता है कि चेतना का यह आरोहण या अभीप्सा अतिमानस के अवरोहण का अनुग्रह से शक्ति प्राप्त करें। चूकि मानवयत्र पूर्ण रूप से इन मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के लिए तैयार नही है इसलिये असमय चैत्य आलोडन से अनेक खतरे भी पैदा हो सकते हैं जो शारीरिक, प्राणिक या मानसिक स्थितियों के अन्य पक्ष को और भी अधिक भडका सकते है। इसलिये भी अतिमानसिक अवरोहण या अनुग्रह की जरूरत है ताकि उसकी सहायता से धीरे धीरे सभी स्तर के जीवन का पूर्ण और सही रूपान्तरण हो सके। इसीलिये प्राचीन योग मार्गों में गुरू

१ द लाइफ डिवाइन, १०६२।

का उन्मीलन और स्वयं प्रकाश का ज्ञान का अवतरण भी प्रदान करता है।

चेतना के विभिन्न स्तरों का यह सामान्य विवरण उसकी नानामुखी सूक्ष्म प्रक्रिया का एक हल्की झलक को उपस्थित करने उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया। मनोमय और विज्ञान मय कोशों की जितनी सूक्ष्म विस्तृत और व्यापक चर्चा श्री अरविंद ने की वैसी अब तक किसी भी दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक स्कूल द्वारा उपस्थित नहीं की गयी। सवाल है क्या मनुष्य उच्चतर चेतना के इन स्तरों की ओर बढ़ सकता है और यदि हाँ तो उसके लिए मार्ग क्या है? मार्ग का विस्तृत वर्णन तो श्री अरविन्द के योग समन्वय को देखने से ही मिलेगा, यहाँ संक्षेप में कुछ ऐसी बातों पर विचार करना चाहता हूँ जो अतिव्यावहारिक दृष्टि वाले व्यक्तियों को भी थोड़ा रुक कर सोचने विचारने की प्रेरणा दे सकती है।

मानव के उच्चतर सत्ता में रूपान्तरण के कार्य को श्री अरविन्द चेतना विकास का अनिवार्य चरण मानते हैं। पर आज तक ऐसा हुआ क्या नहीं? बड़े-बड़े दार्शनिक पैदा हुए, सिद्ध-संन्यासी उपदेश देते रहे, पर दर्द बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा होती रही। आखिर क्यों? श्री अरविन्द ने इसका कारण बताते हुए कहा—' कि ऐसा इसलिए हुआ कि अध्यात्म के नाम पर जगत से उदासीनता का उपदेश और साधना के नाम पर व्यक्तिगत मुक्ति का प्रयत्न ही मुख्य उद्देश्य बन गया। मानव मात्र के विकास पर कभी दृष्टि टिकी ही नहीं। इसीलिए श्री अरविन्द का पूर्ण योग शरीर प्राण मन जीवन-जगत से अलग होने का नहीं इन्हीं के बीच उच्चतर क्रिया से इनके रूपान्तर पर बल देता है। यह विकास त्रिधागति से संभव है। विस्तार, आरोहण और अवरोहण। सम्पूर्ण चेतना की विविध क्रियाओं को विस्तृत करना महत्तर चेतना की उपलब्धि के लिए आरोहण और उच्चतम की प्राप्ति के बाद निम्नतम तक उतर कर सभी स्तरों के परिष्कार और शोधन का प्रयत्न करना और इस प्रयत्न को व्यक्तिगत मुक्ति के लिए नहीं बल्कि मानवता के सामुदायिक विकास के लिए संकल्पित कर देना—यही श्री अरविन्द के योग का उद्देश्य है। इस समूची प्रक्रिया को श्री अरविंद ने इतने विस्तृत सुनियोजित और क्रमबद्ध ढंग से व्यावहारिक सूत्रबद्ध के साथ प्रस्तुत किया है कि इसे "कल्पना प्रसूत मान्यता" कह कर टाला नहीं जा सकता। डा० शिशिर कुमार मित्रा ने ठीक ही लिखा है—"इस विकास प्रक्रिया की हम सैन्य संचालन की गतिविधि से तुलना कर सकते हैं, जहाँ सभी के सभी दस्ते उस ढंग से बढ़ते हैं कि एक दूसरे के बीच कायम सम्पर्क सूत्र बिल्कुल चुस्त दुरुस्त बने रहते हैं।[1]'

मनुष्य के भीतर विद्यमान चैत्यपुरुष ' ऐसी शुद्ध और पवित्र अग्निशिखा है जिसे इसके सम्पर्क में आने वाली कोई भी वस्तु या हमारे कोई भी अनुभव कभी भी अपवित्र

१ द फिलोसफी आफ श्री अरविन्दो पृ० ६७।

नहीं कर सकते या कोई भी चीज इसे बुझा नहीं सकती। यह आत्मिक अयोनिज और पूर्ण दीप्त तत्व है अतः यह तुरन्त समेपन के साथ और सीधे प्रकृति के और अस्तित्व के सत्य को जान लेता है। यह पूरी गहराई से सत्य शिव सुन्दर के प्रति जागरूक होता है क्योंकि ये चीजें इसके मूल स्वभाव से—या इसके तात्विक स्पाकार से बहुत घनिष्ठ रूप से संबंध रखती हैं।[1] यह चैत्यपुरुष तब तक उन्मीलित नहीं हो सकता जब तक हम आन्तरिक रूप से शान्त नहीं होते। अपने मस्तिष्क की हलचल और आपाधापी की क्रियाओं को स्थगित नहीं कर देते। ये ही चीजें हमारे प्राणिक अहं के साथ मोटी खाल के आवरण की तरह इस अग्निशिखा को ढँके हैं। जब तक मस्तिष्क प्राणिक अहं की मांगों की पूर्ति करता रहेगा, तब तक चैत्यपुरुष के उन्मीलित होने और मानव जीवन के विकास का बागडोर को अपने हाथ में लेने की संभावना नहीं के बराबर रहेगी। ज्यों-ज्यों मन शान्त होकर अपनी पुरानी आदतों के बहाव से उपराम होता है, चैत्य पुरुष का सिंहासन जाग्रत चेतना की ओर उठने लगता है और धीरे धीरे ज्यादा सक्रिय और समक्ष में आने लायक ढंग से जीवन का नियंत्रण अपने हाथ में ले लेता है। पवित्र सुन्दर, शान्त, शिव की मांग बढ़ने लगती है जीवन में तनाव, निराशा, अशान्ति के स्थान पर सत्य के सम्मुख समर्पण और आनन्द में जीने की लालसा बढ़ती जाती है। चैत्यपुरुष के जागरण के ये मूल लक्षण हैं।

चैत्य पुरुष का प्रभाव जीवन की सतह पर बहुत शुद्ध रूप में सहसा उभर आए, ऐसा कम संभव होता है। प्रायः सूक्ष्म मानसिक, प्राणिक, सूक्ष्म भौतिक प्रक्रियाएँ इसमें गडडमडड होकर इसे अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप मोड़ने इस्तेमाल करने की कोशिशें करती रहती है। इसलिये जब तक कि व्यक्ति में पूर्ण आत्मिक दिव्य सत्य को पाने, उसके अनुकूल जीवन को ढालने की पूर्ण अभीप्सा नहीं होगी तथा अपने जीवन को स्वयं उस अभीप्सा के अनुकूल अपने नियंत्रण में रखने की चेतना नहीं होगी तब तक चैत्यपुरुष के पुनः विवश होकर पृष्ठभूमि में खिसक जाने की आशंका भी बनी रहती है।

इस प्रत्यवाय से बचने का एक मात्र रास्ता है कि चेतना का यह आरोहण या अभीप्सा अतिमानस के अवरोहण का अनुग्रह से शक्ति प्राप्त करें। चूंकि मानवयंत्र पूर्ण रूप से इन मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के लिए तैयार नहीं है इसलिये असमय उच्च आलोडन से अनेक खतरे भी पैदा हो सकते हैं जो शारीरिक, प्राणिक या मानसिक स्थितियों के अन्य पक्ष को और भी अधिक भड़का सकते है। इसलिये भी अतिमानसिक अवरोहण या अनुग्रह की जरूरत है ताकि उसकी सहायता से धीरे धीरे समस्त स्तर के जीवन का पूर्ण और सही रूपान्तरण हो सके। इसलिये प्राचीन योग मार्गों में गुरु

१ द लाइफ डिवाइन, १०६२।

सत्य तो यह है कि श्री अरविन्द का अतिमानसिक दर्शन एक ऐसा उन्नत और विलक्षण पिरामिड है कि उसे देखने में गर्दन बहुत तन जाती है। हर ऊँचाई के साथ ऐसा ही होता है। विराट चैतन्य का यह ऐसा श्रेणीबद्ध प्रवाह पर्वत है कि प्रायः लोग इसकी विशालता के ध्यान मात्र से चकराने लगते हैं।

दर्शन हमेशा पूर्ण होना चाहिये, चाहे वह कितना भी विराट ही क्यों न हो, इसलिए पूर्णता से भयभीत होने की जरूरत नहीं है। यह भी हमारे जागतिक मन की विशेषता ही है और उन्होंने खुद ही कहा है, कि विकसिततम मानस भी चीजों का खण्ड-खण्ड करके ही देख पाता है इसलिए इस पूरे दर्शन के आरंभ बिंदु पर ही दृष्टि केंद्रित करें और मानव मन के भीतर के चैत्यपुरुष को जानने की अभीप्सा रखें और यदि संभव हो तो अपने अंतर का उनके बताए तरीके से विकसित करें। इसमें भी मानवता का कम कल्याण नहीं है। अतिमानस के विश्लेषण के सम्बन्ध में नीरद वरण के साथ उनकी दिलचस्प चर्चा की याद आती है। नीरदवरण ने श्री अरविन्द को एक पत्र में लिखा— आप अतिमानस के बारे में तब तक नहीं बताएँगे जब तक इसका अवतरण नहीं हो जाता। यही महान् रहस्यात्मकता इसके प्रति हमारी श्रद्धा को नष्ट किए हुये है और अतिमानस शब्द सबकी जबान पर घूम रहा है। काश इसकी एक झलक भी देख पाते! श्री अरविन्द ने अपने चिर परिचित अंदाज में, जो नीरद के लिये ही सुरक्षित था, लिखा—"जबानी जमा-खर्च का कोई मतलब नहीं होता। यदि लोग सिर्फ चैत्यपुरुष के जागरण, आत्मिक उद्घाटन या विकास पर ध्यान दें, तो ज्यादा उपयोगी होगा। यदि मैं अतिमानस को समझाने की कोशिश करूँगा तो हो सकता है कि वह उसी के साथ और भी ऊपर टँग जाय।[१]

एक ओर जहाँ आज के विश्व में मनुष्य की निम्नतम क्षुद्रता की बात कही जा रही है वहाँ दूसरी ओर श्री अरविन्द ने उसकी चेतना की विराट वर्तुल गरिमा का और उसकी अद्भुत सम्भावनों का द्वार उन्मुक्त किया है। इसे कोरा दर्शन मात्र न रखकर इसे अपने कार्यों से प्रमाणित भी किया है। यह सब हमें मनुष्य की नियति पर नये सिरे पर सोचने के लिए प्रेरणा देता है। संसार में कोई भी आन्दोलन, कोई भी विचारधारा कोई भी सुधार का प्रयत्न या मनुष्य जीवन को बेहतर बनाने की असंख्य क्रांतियाँ तब तक सफल न होंगी, जब तक मनुष्य के मानसयंत्र का उच्च स्तरीय रूपान्तरण नहीं होता। पाश्चात्य मनोविज्ञान ने मानव मन की एक बंद कोठरी के गलीज को ही बिखेर कर अवचेतन की क्षमता की इयत्ता मान ली है। उसी अवचेतन से परांचैतन्य की एक ज्योति दिखा भी है। इसे श्री अरविन्द दिखाते हैं, और जिन्हें ज्योति से प्यार है, वे इस ओर से आँखें नहीं मूँद सकते।

१ नीरदवरण: टॉक्स विद श्री अरविन्दो पृ० १३९।

पृथ्वी यात्रा पर है

य पृथ्वी व्यथमानामदृहत्
ऋग्वेद २।१२।२
जिसने चलती हुई पृथ्वी को स्थिर किया

ऋग्वेद में इन्द्र की स्तुति के प्रसंग में ऋषि उनकी प्रशंसा में गाते हैं कि उस इन्द्र को जानो जिसने चलती हुई पृथ्वी को स्थिर किया। देवताओं ने कभी प्रयत्न किया होगा। देवराज इन्द्र की अध्यक्षता में पृथ्वी को दिव्य बनाने की कोशिश हुई रही होगी ताकि वह 'व्यथमाना' स्थिर हो सके, दृढ़ हो सके किन्तु इतिहास साक्षी है कि देवता आसुरी शक्तियों से लगातार पराजित होते रहे। महिषासुर, तारकासुर आदि ने अनेक बार अमरावती को उजाड़ कर धूलिसात किया अर्थात् इस पृथ्वी पर कभी भी दिव्यजीवन स्थापित न हो सका इसलिए, वह आज भी व्यथमाना ही है, आज भी उसकी यात्रा जारी है।

श्री अरविन्द ने लिखा है– 'पृथ्वी यात्रा पर है ताकि पूरी मानव जाति के लिए एक सर्वमान्य व्यापक, लचीली सभ्यता स्थापित हो सके। एक ऐसी सभ्यता का निर्माण होना चाहिए जिसमें प्रत्येक आधुनिक और प्राचीन सभ्यता अपना योगदान कर सके और इसे प्रत्येक परिभाषित मानवीय सभ्यता द्वारा इस प्रकार परिपूर्ण बनाया जाय कि विभिन्न सभ्यताओं के वैविध्य के गुण भी बने रहें।'

श्री अरविन्द की इस आकांक्षा को बहुत से पूर्वाग्रह से पीड़ित दार्शनिकों ने जो समाज शास्त्री नहीं है, स्वप्न माना है। डा० आर० सी० जेनर ने (R C Jaehner) इन सिद्धान्तों की सम्भावित असफलता सिद्धान्त और विश्लेषण में न खोजकर उनके अपने मिशन की असफलता में देखा है। चूँकि श्री अरविन्द का मिशन रामकृष्ण मिशन से कम लोकप्रिय हुआ, चूँकि अतिमानसिक सत्ता के अवतरण के बाद भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ रहा है, चूँकि उनके शिष्य तक यह कह रहे हैं कि विश्व परिवर्तन के लिए तैयार नहीं था, इसलिए उन्होंने मृत्युवरण किया, इसलिए स्पष्ट है कि ये धारणाएं कोई विशेष मूल्य नहीं रखतीं।[1]

१ इवाल्यूशन इन रेलिजन्स ए स्टडी इन श्री अरविन्दो एंड पियरे टेहार्द द शार्दा आक्सफोर्ड १९७१, पृ० २४-२५।

1 *Evolution in Religion A Study in Sri Aurobindo And Pierre Teilhard de chardin*

शिष्या के कहने से कि श्री अरविन्द निराश थे, सही मान लेना अरविन्द के साथ अन्याय होगा। इसी शिष्या ने एक बार श्री अरविन्द से कहा था कि "शायद दुनिया को अपरिवर्तित पाकर आप और श्रीमा एक असाधारण समाधि में खो जायेंगे, इस दुष्ट दुनिया को छोड़ कर कि चाहे यह डूबे या तरे, और शायद यही सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण भी होगा।" श्री अरविन्द ने लिखा-"मैं ऐसा करने का इरादा नहीं रखता। यदि सब कुछ नष्ट भी हो जाय, तो मैं ध्वंस के भीतर से नये निर्माण का प्रयत्न करूँगा। जो कुछ दुनिया में हो रहा है, उससे मैं कतई निराश नहीं हूँ, क्योंकि मैं लगातार जानता रहा कि ऐसी ही चीजें घटेंगी। जहाँ तक बौद्धिक आदर्शवादियों का सवाल है, मैंने उनका समर्थन कभी नहीं किया इसलिये मैं उनकी तरह निराश भी नहीं हूँ।"[1] कहना न होगा कि श्री जेनर ऐसे ही आदर्शवादी बौद्धिक हैं जो चिन्तन के क्षेत्र में तर्कों से अपनी बात सिद्ध करने के स्थान पर व्यक्तिगत क्षेत्र में जाकर आश्रम और उसकी सुनी सुनाई चर्चाओं आदि के माध्यम से अपनी धारणा की पुष्टि करना चाहते हैं। श्री अरविन्द ने यदि मृत्युवरण किया तो इसलिए नहीं कि वे अपनी धारणाओं की असफलता को स्वीकार कर चुके थे। गुह्य तान्त्रिक क्षेत्र में जरूरी नहीं कि हर दार्शनिक का प्रवेश हो ही, पर उसके लिए इतना तो जरूरी है ही कि चिन्तन का उत्तर वह तर्क के धरातल पर खड़ा होकर दे। डॉ जेनर ने मैदान से हटकर गलत जमीन से बहस करने की कोशिश की है। मिशन सफल हुआ या असफल इसका निर्णय इतनी जल्दी और इतने झटके में नहीं किया जा सकता। डा० जेनर विश्व एकता के विरुद्ध नहीं हैं उन्हें श्री अरविन्द से चिढ़ इसलिये है कि वे भावी विश्व एकता का आधार जेनर की तरह ईसाई धर्म को ही नहीं मानते। जेनर कहते हैं कि "चूँकि यह शक्ति एक ऐसे लचीले धर्म में ही हो सकती है जो संगठित रूप से मनुष्य की आत्मा को उन्नत बनाकर विश्व में बंधुत्व ला सके और ऐसा धर्म ईसाई धर्म ही है, इसलिये भविष्यत मानवता की वही शरण है।"[2] मैं यहाँ जेनर के तर्कों पर बहस भी नहीं करना चाहता। क्योंकि मुझे लगता है श्री अरविन्द के इस कथन से पीड़ित होकर उन्होंने सारी बातें लिखी हैं—"ईसू इस जगत को शुद्ध बनाने आये थे। जगत् को चरितार्थ बनाने नहीं। उन्हें अपने मिशन की असफलता का पूर्व ज्ञान था इसलिए वे तलवार हाथ में लेकर उस जगत् में पुनः लौटे, जिसने उन्हें अस्वीकृत कर दिया था।[3]

यहाँ श्री अरविन्द का आरोप ईसू पर नहीं, उनके नाम की माला जपने वाले योरोपीय साम्राज्यवादियों पर है जिन्होंने एशिया और अफ्रीका के अनेक मुल्कों को

१ लेटर्स भाग दो पृ० २३१।
२ इवोल्यूशन इनटेलिजेन्स, पृ० ९८।
३ थाट्स एण्ड अफारिज्म्स पृ० २८।

गुलाम बना दिया तथा गुलाम बनाये रखा। श्री अरविन्द इस अर्थ में बहुत स्पष्ट हैं कि धर्म का कार्य मानव को व्यक्तिगत आत्मप्रकाश प्राप्त कराना है। वे स्वाधीनता देता है, उसके ऊपर विधान का नियमों का कटघरा डालता नहीं। जो धर्म मानव को ऐसी स्वतन्त्रता नहीं देता, वह उसके द्वारा रद्द किये जाने या अस्वीकृत किये जाने के लिए बाध्य है। उन्होंने लिखा—"धर्म को अध्यात्म में बदलना होगा क्योंकि अध्यात्म मनुष्य की आत्मा में श्रद्धा रखता है इसलिए वह उसकी स्वतन्त्रता की गारंटी देता है क्योंकि स्वतन्त्रता से ही आत्मा को अपनी चरितार्थता प्राप्त होती है। स्वतन्त्रता का गंभीरतम अर्थ है हर व्यक्ति को आत्मविकास के लिए अपने स्वभाव यानी धर्म के अनुसार मौका देना। धर्म का कार्य है कि वह हमारे दायित्व के सभी पक्षों का विकास की यह स्वतन्त्रता प्रदान करे। आत्मा को नकारने तक का स्वतन्त्रता जैसा कि प्राचीन भारतीय धर्म देता था, इसलिए वहां दर्शन और विज्ञान ने कभी भी धर्म को नकारा नहीं"।[1] श्री अरविन्द धर्म के विधानों को सख्त कानून के रूप में लादने के विरोधी थे।

श्री अरविन्द ने बहुत स्पष्ट ढंग से मानवता के विकास के अग्रिम चरणों को अपनी भविष्यदर्शी दृष्टि से देखा। उन्हें स्पष्ट प्रतीत हुआ कि भविष्य में मानवता को जाति, राष्ट्रीयता धर्म, रंग और रूप की संकुचित सीमाओं को तोड़कर नये बंधुत्व के सूत्र में बंधना होगा। यही विचार धारा उनकी पुस्तक 'मानव एकता का आदर्श' में प्रतिफलित हुई। श्री अरविन्द ने मानव जाति के सामाजिक विकास की समस्याओं पर गंभीर चिंतन किया और उन तत्वों और ताकतों का, जो आदमी के शारीरिक, संवेगमूलक, मानसिक नैतिक और आध्यात्मिक संबंधों के आधार और कारण बनती है, बड़ा ही व्यापक और स्पष्ट विश्लेषण किया।

श्री अरविन्द ने आज की मानव जाति के सम्मुख उपस्थित संकट को विकास प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम कहा। अर्थात आदमी उस स्तर पर विकसित होकर स्थिर हो गया है जहां से उसे आगे विकसित होना चाहिए था किन्तु ऐसा हो नहीं पाया इसलिए उसकी बौद्धिक विकास प्रक्रिया से उत्पन्न समस्यायें अपना समाधान नहीं पा रही हैं। उन्होंने लिखा— मानव मस्तिष्क ने कुछ दिशाओं में अभूतपूर्व विकास किया है और कुछ में वह एकदम अवरुद्ध और स्थगित होकर रह गया है परिणामतः उसे सही रास्ता नहीं मिल पा रहा है[2]। मनुष्य के निरंतर सक्रिय मस्तिष्क ने बाहरी जीवन के तत्वों का ऐसा जंगल खड़ा कर लिया है कि वह उसी में भटक रहा है। यह बाहरी मशीन इतनी विराट और व्यापक हो गई है कि इसका निर्माता आदमी इसको ठीक से संभाल नहीं पा रहा है। अपनी शारीरिक और प्राणिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उसने उलझी शासन व्यवस्था राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक ढांचे बनाये हैं, कि वे

१ ह्यूमन साइकिल रेलिजन पेज द ला आफ लाइफ पृ० २४२-२४३।
२ द लाइफ डिवाइन १९५५ संस्करण पृ० १२५२।

उसी के लिए भार हो गये ह। मानसिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये उसने सामूहिक ढर्रे के उत्तेजनामूलक साधनों का अम्बार लगा लिया ह, जिसमें वह खुशी और शान्ति पाने के लिए जाता है, पर थक और परेशान होकर वापस लौटता है।

श्री अरविन्द का कहना है कि इस सकट से उसकी रक्षा बौद्धिक समाधानों से सभव नही ह। क्योंकि "तर्कशील बुद्धि और विज्ञान केवल भौतिक जीवन के उपादानों को कृत्रिम ढग से सजाकर या मशीनी आधार पर वर्गीकृत करके प्रामाणिक आदि बताकर उन्हें एक क्रमबद्धता देने में सहायता पहुँचा सकते हैं, पर इस उत्पन्न सकट से बचने के लिए हमें एक महत्तर पूर्ण जीवन, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण क्षमता की जरूरत ह, ताकि आज के जीवन को एक ज्यादा पूर्ण एकता प्रदान की जा सके।"[1]

उनके द्वारा प्रतिपादित समस्या और समाधान को ठीक से समझने के लिए आवश्यक ह कि हम उनके द्वारा उपस्थित मानव विकास की प्रक्रिया के विश्लेषण को ठीक से समझें, जिसे उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'मानवचक्र' में बहुत विस्तार से प्रस्तुत किया ह। श्री अरविन्द मानते हैं कि मानवजाति का विकास कुछ चक्रों में, एक के बाद एक प्रवृत्ति की प्रधानता वाले युग चक्रों में सम्पन्न हुआ ह। किसी चक्र में एक खास तरह की प्रवृत्ति या जीवन-पद्धति की प्रधानता रही, तो दूसरे चक्र में किसी दूसरी प्रवृत्ति की। वसे तो चक्रों की कल्पना किसी न किसी रूप में आज के अनेक समाजशास्त्री मानते हैं, परन्तु इसका सबसे पुराना रूप भारत में चार युगों की कल्पना में मिलता ह। सतयुग से लेकर कलियुग तक का एक चक्र है। इसकी पुनरावृत्ति होती रहती ह। श्री अरविन्द ने लम्प्रेख्त के प्रतीकात्मक आदशप्रधान, परम्पराप्रधान, अनुभव प्रधान नामक मनोवज्ञानिक वर्गीकरण की चर्चा की है, चूकि आरभ के तीनों वर्ग सुदूर अतीत से जुडे थे और उनके विश्लेषण में तथ्य से अधिक अनुमान का आश्रय लेना पडता ह इसीलिए उन का उतना सूक्ष्म विवेचन सभव नहीं है। श्री अरविन्द यह मानते हैं कि 'मनुष्य तथा उसके सामाजिक सगठनों का मनोविज्ञान अत्यन्त जटिल ह और बहुमुखी तथा परस्पर मिश्रित प्रवृत्तियों का ऐसा विकट समन्वय हुआ ह कि सतोषप्रद रीति से कोई कठोर और नियमबद्ध विश्लेषण नहीं किया जा सकता।"[2]

लैम्प्रेख्त के वर्गीकरण से काम चल सकता ह। वे अपने हिसाब से पिछले तीन चक्रों का विश्लेषण करते ह। जहा भी समाज में आदिम या प्रारंभिक अवस्था के साक्ष्य देने वाले तत्व मिल सकते हैं, वहाँ आसानी से देखा जा सकता है कि शुरू-शुरू में प्रतीकात्मक चक्र ही रहा। श्री अरविन्द ने प्रतीकवाद को कल्पनात्मक तथा अन्तर्ज्ञानात्मक धार्मिक भावना से मिला जुला चक्र स्वीकार किया ह। इसी दृष्टि स व प्रती

१ वही पृ० ९५।
२ मानव चक्र पृ० २३।

त्मक और परम्परा का भी अन्तर करते हैं। उदाहरण के लिए आरम्भिक वर्ण व्यवस्था प्रतीकात्मक थी जब कि उसी का विकसित या विकृत रूप जाति में आकर परम्परा बन गया। ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण वर्ण का है, किन्तु ब्राह्मण का पुत्र होने से ब्राह्मण कहा जाना जाति का परिणाम है। परम्परा सभी दृष्टियों से विकृति का ही नतीजा नहीं होती, बल्कि वह अपने सर्जनात्मक दौर में एक व्यापक व्यवस्था विधान को स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी करती है। क्योंकि जब तक परम्परा जीवन्त मूल्यों को महत्त्व देती है, वह व्यवस्था के भीतर भी सक्रियता कायम रखती है और रूढ़िग्रस्त होकर सृजन से वंचित नहीं होती। किन्तु जब वह रूढ़ियों को नियम मानकर व्यक्ति आत्मा की स्वतन्त्रता पर हावी होती है और उसे नवीन की ओर बढ़ने से रोकना ही अपना कर्म मानने लगती है तब स्वभावतः वह बेकार होकर तिरस्कृत हो जाती है, किन्तु यदि परम्परा के नाम पर बहिरंग आकृति का ही प्रभाव बनाये रखने की कोशिश चलती रहती है तो सुधार भी निरर्थक होते जाते हैं और— परम्परावादी लौह पंजा नवीन आन्दोलनों पर झपट कर उनके संस्थापकों के नामों को अपने भीतर जकड़ लेता है, ऐसी ही स्थिति पादरी परम्परा तथा कैथोलिक समाज में दिखाई पड़ती है।"[१]

अपने सुप्रसिद्ध निबंध 'ट्रेडिशन एण्ड इंडिविजुअल टैलेंट' में टी० एस० इलियट ने बड़ी साफ बात कही है कि 'नई कलाकृति के समावेश से परम्परा में संशोधन होता है। नई कृति की उद्भावना के पूर्व परम्परा का अनुक्रम अपने में पूर्ण होता है, परन्तु उस नई कृति के आ जाने से सम्पूर्ण वर्तमान के अनुक्रम को बदलना पड़ता है। चाहे परिवर्तन कितना भी थोड़ा क्यों न हो। इस प्रकार उस सम्पूर्ण भाण्डार के प्रति प्रत्येक नई कलाकृति का सम्बन्ध समानुपात और मूल्य पुनः निर्धारित होता है। वर्तमान के कारण अतीत में परिवर्तन आता है, वैसे ही वर्तमान अतीत से निर्दिष्ट होने लगता है।'[२] टी० एस० इलियट के इस सिद्धान्त को, कि नया से नया विद्रोही कलाकार भी अपने मूल्यांकन के लिए परम्परा के विरोध में खड़ा होगा परम्परा उसकी प्रतिभा के अनुरूप अपने को अनुकूल बनाने के लिए थोड़ी थरथराहट के साथ अपने अन्दर परिवर्तन लायेगी और इस परिवर्तन के कारण वह इतनी लचीली बन जायेगी कि वह नया कवि परम्परा की समजसता का हिस्सा हो जायेगा बड़ा ही मौलिक चिंतन कहा जाता है। श्री अरविन्द ने इसी के समानान्तर एक बात बहुत पहले नये धार्मिक आन्दोलनों और परम्परा के साथ को लेकर कही थी।

इस प्रकार की दमघोंट स्थिति आने पर प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्तिवाद पनपता है।[3]

१ मानवचक्र पृ० २१।
२ सलेक्टेड ऐसेज न्यूयार्क १९३२ पृ० ८।
३ मानवचक्र पृ० १०।

जब सत्य तथा परम्परा के बीच की खाइ अपाटनीय हो जाती है, तब बौद्धिक शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों का उदय होता है। सिद्धान्तों को निगल जाने वाले ये महान् व्यक्ति प्रतीकों, आदर्शों तथा परम्पराओं का दृढतापूर्वक, उग्रतापूर्वक भावना बुद्धि के शान्त प्रकाश के द्वारा वजन करते हुए बन्दीगृह की भित्तियों पर प्रहार करते हैं और अपनी वैयक्तिक बुद्धि, नैतिक आदर्श एव हृदय की भावनाओं की सहायता से उस सत्य की खोज करते हैं, जिसे समाज खो चुका होता है, अथवा अपने धवल समाधि मंदिर मे गाड चुका होता है, यही व्यक्ति प्रधान समाज के चक्र की शुरुआत का कारण है।

व्यक्तिप्रधान समाज का पहला युग तर्कप्रधान युग कहा जा सकता है। व्यक्तिवाद का उषाकाल सदा ही संशय और अस्वीकृति का काल होता है। तमाम रूढियों और अपने स्वीकार योग्य न लगने वाले आवरणों के प्रति वह विद्रोह करता है। श्री अरविन्द के 'मानव चक्र' का महत्त्व व्यक्तिवादी युग के उषाकाल से लेकर आजतक की सामाजिक गतिविधि के विश्लेषण और बौद्धिक धारा के अंतिम अवरोध तक की स्थिति को स्पष्ट करने में देखा जा सकता है। व्यक्तिप्रधान युग का मूल आधार सैद्धान्तिक और दार्शनिक तर्कशक्ति में निहित होता है।

व्यक्ति प्रधान तथा तर्क प्रधान मानव चक्र की धुरी विज्ञान है। विज्ञान ने नये सिरे से हमें अपनी पुरानी मान्यताओं पर सोचने के लिए विवश किया है। श्री अरविन्द विज्ञान के विरोधी नहीं हैं जैसा जेनर उन्हें प्रस्तुत करना चाहते हैं। उन्होंने लिखा है कि 'अरविन्द ने विज्ञान में सन्देह किया, विशेषत चिकित्सा विज्ञान में, जिसके प्रति उनके मन में अतार्किक और पुरातनतावादी दुराग्रह था।'' श्री अरविन्द विज्ञान की क्षमता और उसकी देन को कभी अस्वीकार नहीं करते। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—विज्ञान, तमाम मानसिक और बहिर्भूत ज्ञान की ही तरह अपनी प्रक्रिया का सत्य प्रदान करता है।' [२] इससे अधिक विज्ञान को वे महत्त्व देना नहीं चाहते, क्योंकि विज्ञान अपनी प्रक्रिया से प्राप्त पूर्ण सत्य की न प्राप्ति कर सकता है न अभिव्यक्ति क्योंकि तुम 'कुछ ऐसा', जिसपर सोचा जा सकता है उसे तो पकड सकते हो पर वह जो तुम्हारे चिंतन की सीमा में नहीं बँधता प्राय अछूता रह जाता है। श्री अरविन्द विज्ञान के विरोधी नहीं थे। सिर्फ वे उसको पूर्ण ज्ञान का अंतिम माध्यम मानने को तैयार नहीं थे। और क्या डाक्टर जेनर इनकार कर पायेंगे कि विश्व के बडे से बडे वैज्ञानिक भी यह दावा नहीं करते कि उनकी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ चरम सत्य है। यही नहीं आइंस्टीन मदाम क्यूरी तथा अनेक ने तो उस अज्ञेय अचिन्तनीय को, जो विज्ञान की सीमा में बँध नहीं पाता, बार बार स्वीकार किया है और कभी भी इस

१ इवोल्यूशन ऑफ रेलिजन्स पृ० ३७।

२ श्री अरविन्द द रिडिल ऑफ द वर्ल्ड प० २६।

स्वीकृति को विज्ञान के लिए अतार्किक नहीं कहा है। श्री अरविन्द कुछ भिन्न कारणों से विज्ञान का विरोध करना आवश्यक मानते हैं। उन्होंने कहा, "भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में आप बिल्कुल ठीक और चुस्त दुरुस्त हो सकते हैं। यहाँ चीजें बिल्कुल मशीनी और तगड़ा ढंग की हैं। जहाँ तक भौतिक तत्वों का सम्बन्ध है यह बिल्कुल ठीक है क्योंकि यहाँ यदि आपने कोई गलती की तो प्रकृति सीधे नाक पर घूंसे मारकर आपको तथ्य दिखला देगी। पर जिस क्षण आप ये ही कानून और नियम आत्मा के मन और जीवन पर भिड़ाना शुरू करते हैं आप गलती पर गलती करते चले जायेंगे और कभी सत्य जान नहीं पायेंगे। आप उस सत्य को देखने से ही इनकार कर देंगे क्योंकि आपकी मानसिक बनावट ऐसी ठोस हो गयी है कि वह हर चीज को उसी में कस देने की कोशिश करती है।'[१]

मैं नहीं समझता कि इस विज्ञान के प्रति श्री अरविन्द का अतार्किक पूर्वग्रह कहा जायेगा। यदि ऐसा है तो इसका सबसे बड़ा शिकार प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक यास्पस होगा जिसने कहा था—"सिद्धान्त विज्ञान वस्तुओं का उनकी पूर्णता में विश्लेषित करने में अक्षम है। यदि इस चीज का स्वीकार कर लिया जाय तो यह दुनिया मानवीय चेतना के लिए ज्यादा अवगम्य हो सकती है। चेतना के अनेक जीवन्त रूप हैं जो सामान्य जनता के भीतर और बाहर पले हैं जिन्हें जनसामान्य की भाषा में रूप या नाम प्रदान कर पाना कठिन है। बहुत कुछ स्पष्ट अस्पष्ट छिपे हुए संवेग, परिदृश्य, अनुभूति अन्तर्ज्ञान, अनुकरणधर्मा चेतनाएं, आदि जो जन सामान्य के ज्ञान का कच्चा माल है, और जो अन्तत कभी भी विज्ञान की पकड़ में नहीं आते, किन्तु जो पदार्थ की अनिवर्चनीय आकृतियों में झलक जाते हैं स्वतन्त्र व्यक्तित्व में ये अद्भुत आत्मनिर्णीत ढंग से स्थापित होते हैं। ये जीवन्त सूक्ष्म तत्त्व विज्ञान की सर्वाधिक सक्षम और बारीक छलनी में भी नहीं फसते और फिसल कर निकल जाते हैं[२]।" इसीलिए यास्पस की घोषणा है कि जहाँ विज्ञान खत्म होता है, दर्शन का जगत शुरू होता है।

यह एक दार्शनिक की वास्तविक और ईमानदार प्रतिक्रिया है जिसे विज्ञान की सवमा य सत्ता के विरोध में श्री अरविन्द ने व्यक्त की इसे पूर्वग्रह कहना, खुद में अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए अतार्किक भाषा की शरण लेना है। श्री अरविन्द इसी लिए मानते हैं कि यत्तिप्रधान और तर्क प्रधान युग के लिए एक हदतक परम्परा के विरोध में शक्तिशाली भौतिक विज्ञान को स्वीकार करना जरूरी होता है। क्योंकि इसके द्वारा रूढ़ियों का तोड़ने और मृत तत्त्वों को फेंकने में सहायता मिलती है।

कालान्तर में यह तर्क प्रधान युग एक स्थिति में आकर थम जाता है। "जब

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० ८५।

२ सिक्स एक्जिस्टेंशियलिस्ट थिंकर्स एच० जे० ब्लाखम पृ० ४५ ४६।

उसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भौतिक जगत का ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है, यह भी प्रतीत होने लगता है कि मनुष्य भौतिक और प्राणमय सत्ता के साथ ही साथ मनोमय सत्ता भी है, बल्कि उपर्युक्त दो की तुलना में वह मनोमय कहीं अधिक है, यद्यपि उसकी चेतन-सत्ता और उसकी भौतिक सत्ता परिस्थितियों से अधिक प्रभावित है एवं सीमित है, परन्तु अपने मूल में वह उनके द्वारा निर्धारित नहीं होती, परन्तु वह उनके प्रति निरन्तर प्रतिक्रिया करती है, गुप्त रूप में उनकी क्रियाओं का निर्धारण करती है और जीवन के प्रति अपना मनोवैज्ञानिक भाग की सामर्थ्य के द्वारा उनके नव निर्माण पर प्रभाव तक डालती है।[1]

ऐसी स्थिति में तर्क प्रधान युग बहुत दिनों तक तर्कों के बल पर ही नहीं चल सकता। उसे अपने इस औजार से भिन्न औजार की जरूरत होती है। ताकि वह अपने भीतर की अधिक गहराई में पड़ी संभावनाओं से जान-पहचान कर सके। यही वस्तु, यही माँग उसे अनुभववादी मानव चक्र में उतरने के लिए विवश करती है। अनुभववादी या अनुभव प्रधान युग का आगमन इसी का परिणाम होता है। इसी के द्वारा मनुष्य अपनी आत्मा की, और आगे चलकर सभ्यता और संस्कृतियों की अन्वेषण प्रक्रिया में 'राष्ट्र आत्मा' की खोज करने में सफल होता है। नाना प्रकार की ललित कलाओं का सृजन इसी अनुभववादी युग चक्र की देन है। स्पष्ट ही यहाँ श्री अरविन्द विज्ञान और तर्क को समानान्तर रखकर विश्व प्रक्रिया को स्पष्ट करना चाहते हैं। विज्ञान का अर्थ केवल पश्चिमी विज्ञान नहीं है। उनके हिसाब से तर्कशास्त्र, चिकित्सा, वैदक तथा दूसरे शास्त्र सभी इसी की सीमा में आते हैं। यानी भारत में योरोपीय किस्म का भौतिक विज्ञान नहीं था, परीक्षणात्मक प्रायोगिक शास्त्र था पर विज्ञान और सिद्धान्तों की कमी नहीं थी। अतः अनुभववाद का युग भारत में योरोपीय विज्ञान के प्रवेश के बहुत पहले स्थानीय तर्कविज्ञान की प्रतिक्रिया में उपस्थित हुआ।

अनुभववादी चक्र ज्यादा गहराई से मानव जीवन की संभावनाओं पर सोचने विचारने की स्थिति कायम करता है पर यह आवश्यक नहीं कि अनुभव हमेशा सत्य की ओर ही ले जाये। अनुभव सच्चा भी हो सकता है और झूठा भी। झूठा अनुभववाद अहंग्रस्त होता है। 'अपनी अहंकारमय बुद्धि का प्राणशक्ति का, शारीरिक सुख-सम्पत्ति का चरम विकास तथा अपनी मनोमय भावनामय एवं भौतिक वासनाओं की चरम संतुष्टि ही व्यक्ति के लिए चरम संसिद्धि की अवस्था नहीं है, बल्कि उसके अन्दर की दिव्यता को अपने ज्ञान, शक्ति, प्रेम तथा सार्वभौमिकता की चरम सामर्थ्य तक विकसित करना तथा इस विकास के द्वारा अस्तित्व के समस्त संभव सौन्दर्य तथा आनन्द की चरम

[1] मानव चक्र पृ० २९।

ससिद्धि प्राप्त करना ही उसका परम ध्येय ह ।'[1] श्री अरविन्द यह मानते हैं कि अनुभववाद का पहला खतरा "व्यक्तिवादी अहकार की भूल का समुदायवादी अहकार की भूल में परिवर्तित होना ह। और जब तक हम नही सोचते कि सबकी एक ही आत्म सत्ता ह, और हमारी आत्मा विश्वजनीन भागवत चेतना का एक अश ह, समाज में शान्ति और सौमनस्य सभव नही। ऐसा सोचने वाला व्यक्ति आसानी से समझ जाता ह कि मानव अस्तित्व का पहला सत्य जानना ह कि अहभाव आत्मा नही ह। दूसरा सत्य जो नकली अनुभववाद से हमें मुक्त करता ह वह यह ह कि "अपना आप" ही सब कुछ नही ह बल्कि समस्त मानवजाति के साथ उसका ठोस सबध ह। अनुभववाद के अहवादी स्खलन का शिकार इस युग में जमनी हुआ। जिसने व्यक्ति अह और सामुदायिक अह का निकृष्टतम रूप जगत के सामने प्रकट किया।

श्री अरविन्द मानवचक्र के इस विश्लेषण के बाद सभ्यता और सस्कृति को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

पहली बात जो मालूम होती ह वह यह कि मनुष्य एक मनोमय सत्ता ह, इसलिए ज्योंही वह प्राण और शरीर की बाध्यताओं से छुटकारा पा लेता ह जिसे भौतिक प्रकृति हमेशा उसके ऊपर लादती रहती ह, मनोमय जीवन की समृद्धि उसका ध्येय बन जाती ह। जन्म, बुद्धि, विवाह जीविकोपाजन परिवार का पालन पोषण और फिर मृत्यु क्या यही मानव अस्तित्व ह? यह तो प्राणिक और भौतिक जीवन ह। मानव होने का अर्थ ही ह मनोमय विकास को उपलब्ध करना। इसमें प्रकृति का दुहरा लक्ष्य ह। पाशविक स्थितियो का नियत्रण और मनोमय का विकास। सामान्यतया सस्कृति का अथ ह मनोमयजीवन का अनुशीलन। यह अनुशीलन केवल तक से नही हो सकता। केवल भौतिक विज्ञान इसे नही ढूँढ सकता। तक एक ऐसा न्यायाधीश ह जो हमेशा परस्पर विरोधी निणय देता ह वादी प्रतिवादी दोनो से घूस लेता ह, तथा उनके प्रभाव में आकर निर्णय द देता ह। फिर भी उसने कुछ आम सिद्धान्त बना लिये ह, और मोटे तौरपर उन्हें मानकर चलता है। सभ्यता और बबरता का भेद इसी का नतीजा ह। सभ्यता आशिक रूप स मनुष्य को पशु धरातल से ऊपर उठाती ह। किन्तु इसके कारण मनोमय का बबतावाला पाशविक अश पूणत नष्ट नही होता। बल्कि समूह के साथ जुड कर एक वृहद् रूप ल लेता ह। इस दोपकाय असुरमूर्ति की छाया अब तक सब ओर वतमान ह। यही अध्ययनशील महान् जन समुदाय ह समाचार पत्र तथा साप्ताहिक तथा मासिक समालोचना पत्र सब इसी म ह, उपन्यास, काव्य और कला इसका मनोरजन करने के लिए हैं रगमच, सिनेमा रेडियो का अस्तित्व इसके लिए ही ह[2]।'

१ मानवचक्र पृ० ४८।
२ मानवचक्र पृ ९९।

जब तक हम दीघकाय असुर को जो पाशविक तत्त्वों का सामुदायिक रूप है, नष्ट नहीं किया जाना यह सौन्दर्यात्मक साधनों का सिर्फ अपनी तृप्ति के लिए गलत ढंग से इस्तेमाल करता चलेगा—"परिणामत विचार कला और साहित्य सस्ते हो गये ह योग्यता, यहाँ तक कि प्रतिभा भी सामान्य लोगों की सफलता पुंज में केन्द्रित करने लगी ह, लेखक, विचारक और वैज्ञानिक बहुत कुछ रोमन घरों म रहने वाले सुसंस्कृत ग्रीक गुलामों की स्थिति को पहुँच गये हं, जहाँ उन्हें अपने स्वामी के लिए काम करना उसे प्रसन्न रखना, उसका मनोरंजन करना तथा उसे शिक्षित करना होता था[१]।"

आखिर इस स्थिति से छुटकारा कैसे सभव ह। ऐसा नहीं कि बौद्धिकों म ऐसी चेतना का अभाव ह, जो इस स्थिति को हल ही न सके। विश्वास की आँख खुल रही ह, पर परिवर्तन अभी आरंभावस्था में ह। इससे बचने के लिए हम 'सौन्दर्यात्मक नैतिक संस्कृति" की ओर मुड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। सस्कृति का सूक्ष्म तत्त्व कुछ कुछ झलकने लगा है। सौन्दय और आनन्द की सहायता से संकुचित नैतिकता को विशाल बनाकर एक नया युग लाया जा रहा ह, पर यह भी मानवजाति की समस्याओं का पूर्ण समाधान नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य जब तक अपनी पूर्ण सामर्थ्य को समझ कर उस पर स्वाधिकार कायम नहीं करता वह छोटी सामुदायिक शक्तियों के हाथ का खिलौना ही बना रहेगा। इसके लिए आवश्यक है कि हम अपनी सही सामर्थ्य यानी आध्यात्मिक शक्ति को पहचानें। आध्यात्मिक स्वतन्त्रता को ग्रहण करें और सब कुछ को रूपान्तरित करने के लिये प्रयत्नशील हों। यानी मनुष्य महामानव में परिणत हो। कैसे? नीत्शे के अनुसार "अपने को अतिक्रम करके?" श्री अरविन्द कहते हैं कि नीत्शे का डिओनिसियस दि यत्व एक अव्यवस्थित वस्तु ह जो पूर्णत प्रक्रिया का विवेचन नहीं करती। उन्होंने लिखा— नीत्शे ने महामानव को या देखा जैसे कोई सिंह ऊँटों की भीड़ म से निकल रहा हो, किन्तु सच्चे महामानव की घोषणा का चिह्न ह ऊँट की पीठ पर बैठा सिंह जो समृद्धि की गाय के बल पर खड़ा हो। यदि तुम पूरी मानवजाति के गुलाम नहीं हो सकते, तुम उसके स्वामी होने के योग्य नहीं हो, और तुम यदि प्रकृति को वशिष्ठ की समृद्धिदायिनी गाय की तरह नहीं बना सकते, जिससे सारी मानव जाति अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सके तो तुम्हारे सिंहात्मक महामानव से लाभ क्या है[२]?" यहाँ बहुत ही स्पष्ट ढंग से नीत्शे के महामानव के अहंवादी रूप की त्रुटियों को खोलकर रख दिया गया ह। नीत्शे का महामानववाद का रूप हिटलर की आसुरी नास्तिमत्ता में दिखाई पड़ता ह, श्री अरविन्द का 'महामानव' मानव जाति के लिए समर्पित अतिमानसिक सच्चिदानन्द का यंत्र है जो पूरी मानवजाति को

१ मानवचक्र पृ० २०१।

२ थाट्स एण्ड एफारिज्म्स पृ० २२।

अपने साथ ले चलने के लिए कृत संकल्प हैं। वह प्रकृति का विरोध नहीं, रूपान्तरण चाहते हैं। उनके मत से इस प्रकार से निर्मित आ । समाज समग्र मनुष्यों के अन्तरात्मा भगवान् का वाहन है, जगन्नाथ का रथ। एकत्व स्वाधीनता, ज्ञान और शक्ति इस रथ के चार पहिए हैं। पर एकत्व प्रमुख है।

आज का संकटग्रस्त मनुष्य नाना प्रकार से अपना उबरने की दिशा खोज रहा है। वह घबरा कर जिधर ही रास्ता, हल्का प्रकाश, देखता है आशा के साथ दौड़ पड़ता है। वह इतना विकल है कि उस एक कर साधन को भी पूछता नहीं। यह संभावना हो सकती है कि समाज और जीवन के मशीनीकरण से बचाव के लिए मानव मन धार्मिकता की ओर या धर्माधारित समाज की ओर लौटने का प्रयत्न करे। किन्तु संगठित धर्म, यद्यपि व्यक्ति के आन्तरिक उत्थान में सहायता के साधन प्रदान कर सकता है, ऐसा भी हो सकता है कि धर्म व्यक्ति में आध्यात्मिक अनुभव के द्वार खोल सकता है या आध्यात्मिक अनुभवों की रक्षा कर सकता है, किन्तु यह समाज और जीवन को परिवर्तित नहीं कर सका है और नहीं कर सकता। क्योंकि समाज के नियंत्रण की प्रक्रिया में इसे मनुष्य के निम्नस्तरों से समझौता करना पड़ता है और पूरे मानव अस्तित्व के आन्तरिक परिवर्तन के लिए दबाव नहीं डाल सकता। यह सिर्फ बाहरी कर्मकाण्ड संस्कार और नैतिक मूल्यों तक अपने को सीमित रखता है। इस प्रकार 'धर्म समाज को धार्मिक और नैतिक रंग में रंगने का कार्य कर सकता है, एक सतही तब्दीली जैसी चीज, बहुत करके यह आन्तरिक अनुभूति जगाने में कुछ समर्थ होता है इस प्रकार एक अपूर्ण आध्यात्मिकता की प्रवृत्ति का सामान्यीकरण सा हो सकता है, यह जाति में तब्दीली नहीं ला सकता न तो मानव अस्तित्व के लिए नये सिद्धान्त ही पैदा कर सकता है[1]।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्री अरविन्द धर्म मात्र को, खास तौर से संगठित धर्मों को जैसा कि कैथोलिक धर्म है समाज के भविष्य के लिए बहुत सहायक नहीं मानते। निश्चय ही उनका यह लाजवाब विश्लेषण उन दार्शनिकों को, चिढ़ने और खीझने के लिए विवश करता है जो धार्मिक पूर्वग्रहों से मुक्त नहीं हैं। श्री अरविन्द कभी भी धार्मिक व्यक्ति नहीं रहे हैं। वे धर्मों की सीमाओं में बँधनेवाले दार्शनिक नहीं थे। लाला हरदयाल ने अपने एक लेख में जोर देकर लिखा था—"भारत को मात्र दार्शनिक और संत जैसा कि रामकृष्ण और रामतीर्थ हैं, नहीं चाहिए। उसे धर्मनिरपेक्ष व्यावहारिक आदमी चाहिए जैसा कि जगदीशचन्द्र बसु सयाजीराव गायकवाड, तिलक और अरविन्द हैं[2]।" हरदयाल ने धर्मनिरपेक्षता को जिस हद तक खींचा

१ द लाइफ डिवाइन १९५५ पृ० १२५८।

२ हरदयाल्स रिव्वाइडर माडर्न रिव्यू, १९१२ दिसम्बर अंक पृ० ६४८।

, वस श्री अरविन्द नही थे। पर व धम को सब कुछ का समाधान नही मानते थे।

इस सकट से बचने के लिए मानव जाति एक दूसरा समाधान सोच सकती ह। हो सकता है कि लोग सोचें कि शायद ऐसे लोग जिन्होंने आध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली हं, व समाज को इस सकट से रक्षा कर सकते ह। "सभी धर्मो के भीतर भ्रातृत्व का भान, जीवन का आध्यात्मीकरण, आदि के द्वारा समस्याओ का समाधान पहले भी सोचा गया और इस दिशा में कोशिश भी हुई, पर कोई सफलता नही मिली[1]।"

जाहिर ह कि श्री अरविन्द आध्यात्मिक व्यक्तियों के माध्यम स भी कोई मौलिक सुधार की आशा नही रखते, क्योंकि इस तरह के आध्यात्मिक व्यक्ति जादू की छडीस समाज या मनुष्यजाति के भीतर एकाएक परिवतन नही ला सकते। यह ह कि श्री अरविन्द की अदभुत तटस्थता, जिसक आग्रह से आध्यात्मिक व्यक्तियों की भी सहज सीमाएँ स्वीकार करते हैं इसीलिए डॉ० जेनर का यह आरोप कि उनका मिशन फेल हुआ, गलत निशाने पर जाता ह, क्योंकि समस्या श्री अरविन्द की महान आध्यात्मिक उपलब्धि से हल होने वाली नही ह, बल्कि इसक लिए पूरी जाति का परिवतन, या कम से कम, उसके काफी बड अश का परिवतन जरूरी ह।

धम और अध्यात्म की इस अक्षमता को देखते हुए दृष्टि सहज ही उस व्यवस्था की ओर जाती ह जो आज के वश्विक मच पर सबसे महत्त्वपूण भूमिका अदा कर रही ह। यानी शासन, सरकारें आदि। श्री अरविन्द ने लिखा ह— 'राज्य की धारणा बहुत जोर पकडती जा रही ह और इसकी ताकत का रथ, हर चीज को, जो इसका विरोध करती ह अथवा मानव की तमाम प्रवृत्तिया का जो इसके खिलाफ अपने हक पर जोर दती है, कुचल कर रख देता ह। जिन दो मुख्य धारणाओ पर राज्य अपने को कायम रखना चाहता ह वे दो मिथ्रणो से बनी हैं जिन्हें सत्य और मिथ्या कहा जाता ह, जो हर मानवीय दावे और अधिकार को मांग के पीछे कायरत ह।[2]" श्री अरविन्द के हिसाब से राज्य न तो सर्वोत्तम मस्तिष्कों से सगठित होता ह और न तो यह विभिन्न समूहो की ताकता का योग ही हो पाता ह। राज्य हमेशा ही, चिन्तनशील व्यक्तियो का जो हमेशा अल्पसख्यक होते हैं, कुचलने का काय करता ह। व्यक्ति तो कभी कभी अपने भीतर की आवाज सुनकर नतिकता आदि के तकाजे से अपने भीतर की त्रुटियों का कम से कम विश्लेषण कर सकता ह भले ही उन्हें पूणत दूर करने में सफल न हो, किन्तु राज्यसत्ता स इस प्रकार की भी आशा नही की जा सकती। "किसी जमाने में राज्यसत्ता का अह अपने स बाहर के लोगो क साथ अपने सबधों में

१ द लाइफ डिवाइन पृ० १२५८।

२ आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी ह्यूमन साइकिल पृ० ३९२।

ऊपर से थोड़ा अच्छा रहा है पर आन्तरिक रूप से कभी भी नहीं। क्रूरता, बलात्कार, अत्याचारिता सहनशीलता का अभाव आजार बर्मी, बचाव धारणाओं के प्रति असहन घोर यहाँ तक कि धार्मिक ढग से अन्तरात्मा की स्वतंत्रता तक को न मानना इसका स्वभाव रहा है। वह व्यक्ति और समूह के भीतर से और कमजोर राष्ट्रों का बाहर से हमेशा शिकार करता रहा है। केवल धनी और मजबूत लोगों की रक्षा करने की आवश्यकता का अनुभव करते हुए जिन पर यह टिका हुआ है अपने अपने कार्यों का भद्दे ढग से लाभप्रद दिखाता रहता है[१]।

प्रश्न उठता है कि यदि राजकीय गठन से य त्रुटियाँ दूर कर दी जायें, अर्थात् यदि शासन सगठन उम्दा किस्म का हो उच्च मानसिक स्तर और नैतिक आचरण के लोगो द्वारा यह सचालित हो तो शायद यह प्राचीन राज्यों की तरह जो सभ्यताओं के उत्थान काल में थे हो जायें। किन्तु राज्य की धारणा इस मकसद को भी पूरा नहीं होने देगी क्योंकि राज्य सामूहिक प्रतिभा के जितने अंश को उभर कर सामने आने देता है और जो इसकी रेलगाड़ी को चलाने का काय करते हैं वे इस सतहीपन से बच नही सकते।

बहुत से लोगों को श्री अरविन्द घोर अराजकतावादी लग सकते हैं, किन्तु क्या मूढ़ राजनीतिज्ञो के द्वारा शासित होने की अपेक्षा उस पूरे यन्त्र पर ही प्रहार करना उचित नहीं है जो कहीं से भी बुद्धिमानी को प्रश्रय दे ही नहीं पाता। इस अर्थ में वे निश्चय ही अराजकतावादी थे व किसी भी प्रकार के राजकीय शोषण और दम घोट दबाव को बर्दाश्त करने को तयार नहीं लगते।

ऐसी स्थिति में उनका यह निष्कर्ष स्वाभाविक लगता है कि "वर्तमान स्थिति में राजकीय प्रयत्नों से मानव जाति में स्वस्थ एकता ले आ पाना असभव लगता है।

इस प्रकार पूरे मानव विकास के विभिन्न चक्रों और उनसे उत्पन्न उन्नततम साधना विज्ञान संस्कृति धर्म आध्यात्मिक पुरुषों के प्रयत्न और शासन व्यवस्था तथा राज्य आदि की सारी मशीनरी की जाँच के बाद वे इस नतीजे पर पहुचे कि *इसमें से कोई भी इस पद्धति के वर्तमान संकट का समाधान नहीं कर सकते।*

इस सकट का समाधान एक मात्र इस बात में निहित है कि आदमी बौद्धिकता की अवरुद्ध धारा को समझ कर उसे ही अतिक्रान्त करके अतिमानसिक विकास की ओर अग्रसर हो।

श्री अरविन्द का विश्वास है कि ऊपर ऊपर के नकली समाधान जो विविध वादो के रूप में हमारे सामने आते हैं व समस्या को और भी जटिल करते हैं। "लोकतत्र मानवीय आत्मा का सगठित सामन्ता, पुरोहितों और अभिजात्यो की ताना

१ आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी ह्यूमन साइकिल पृ० ३८७।

शाही का विरोधी था। समाजवाद, महाजनी निरंकुशता के खिलाफ विद्रोह था और अब अराजकतावाद संभवतः नौकरशाह समाजवाद के विरुद्ध मानवात्मा के विरोध के रूप में आयेगा। एक धाक से दूसरे धाके की ओर मानवता की यह दौड़ योरोपीय प्रगति का उदाहरण है।'[1] क्या ऐसी ही प्रगतियों से हमारी समस्या सुलझेगी? श्री अरविन्द कहते हैं कि जब तक मनुष्य अपने भीतर प्रतिष्ठित चैतन्य को ठीक से समझ कर जो अतिमानसिक चैतन्य का अंश है, अपने को रूपान्तरित नहीं करता, पृथ्वी की यह पीड़ामय यात्रा ऐसे ही चलती रहेगी।

योगी और कमिस्सार

हो सकता है कि आज की मानवता के सम्मुख खड़े संकट से पार जाने के कुछ लोगों को सिर्फ दो ही रास्ते दिखाई पड़ें। एक आध्यात्मिक और दूसरा राजनीतिक। एक योगी दूसरा कम्यूनिस्ट लोकसवाध्यक्ष यानी कमिस्सार। डॉ० जेनर ने जब यह कहा कि तीन प्रमुख रास्ते हो सकते हैं—यानी वेदान्त, मार्क्सवाद और ईसाइयत।[2] तो उन्होंने 'ईसाइयत' को तीन सवारों में गिनने की उदारता बरती है, वस्तुतः इस समाधान को खुद अनेक योरोपीय ईसाई ही मानने को तैयार नहीं हैं। इस दृष्टि से सबसे अधिक प्रचारित पुस्तक आर्थर कोसलर (Arthur Koestler) की 'द योगी एण्ड द कमिस्सार' रही है। कोसलर ने यह स्वीकार किया है कि हमें एक ऐसे रंग वीक्षक यंत्र, स्पेक्ट्रस्कोप की आवश्यकता है जिससे हम जीवन को नये सिरे से देख सकें जिसके द्वारा जीवन का कीचड़ साफ सुथरा और स्पष्ट रूप से दिखाई पड़े जिसे हम सुधार कर इन्द्रधनुषी बना सकें।

इस दृश्यावली के एक छोर पर, स्पष्टतः इन्फ्रारेड, टहटह लाल छोर पर हम कमिस्सार को पायेंगे। जो विश्व में बाहर से परिवर्तन ले आने में विश्वास करता है, वह मानता है कि मानवता के सभी कीटाणु चाहे वे कब्जियत के हों या एडिपस ग्रंथि के, क्रांति द्वारा मारे जा सकते हैं, निर्माण की एक खूब चौकस पद्धति और वस्तुओं के वितरण की सुसंगठित मशीनरी—और कहना न होगा कि परिणाम ही माध्यम के औचित्य की गारंटी है और इसके लिए यदि रक्तपात फांसी, धोखा, विष आदि का उपयोग करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं। + + कोसलर कहते हैं कि इस छोर पर अन्तर्ध्वनियों की कम से कम गुंजाइश है, यह रंगदर्शक यंत्र का सबसे खुरदुरा हिस्सा है, पर यह जरूर है कि यहाँ सबसे अधिक उत्ताप का अनुभव होता है।

इस रंगवीक्षक यंत्र के दूसरे छोर पर, जहाँ तरंगें अत्यन्त गहरी और अन्तर्ध्वनियाँ बहुत तीव्र होती हैं, कि आँखें उन्हें देख नहीं सकतीं रंगहीन, तापहीन, किन्तु

१ थाट्स एण्ड एफारिज्म्स पृ० ५४।
२ इवोल्यूशन आफ रेलीजन्स पृ० १५।

जो बहुत गहराई म जाने की कोशिश करता ह, उस छोर पर पद्मासन में बैठा ह योगी उस छोर को एरम्भ परमाश्व नालिमा में खाया हुआ। उसे इस बात के कहे जाने पर कोई आपत्ति नही कि दुनिया मनानो पडा ह। उसे इसमें इतना ही सत्य नजर आता है जितना यह कहन पर कि यह संगीतव द बक्सा ह या मछलियां से भरा तालाब। उसका कहना ह परिणाम क बार म कुछ कहना मुश्किल ह, साधन स्पष्ट ह। वह रक्तपात को हर हालत में त्याज्य मानता ह, वह मानता ह कि तर्क की शक्ति अपनी पकड खोन लगती ह, ज्या ज्या वह सत्य के चुम्बकीय ध्रुव के निकट पहुँचने लगती ह। वह मानता ह कि सिर्फ परब्रह्म ही एक मात्र सत्य ह। वह मानता है कि बाहरी सगठन और व्यवस्था से दुनिया में कोई परिवतन नही आ सकता। हर चीज केवल मनुष्य के आतरिक प्रयत्न से ही होगी। वह मानता है कि सूद खोर महाजना ने भारतीय किसाना पर जो कर्जदारी की गुलामी लादी ह वह वैधानिक तरीकों से नही आध्यात्मिक तरीका से दूर की जानी चाहिए।

कोसलर ने इन दोना ध्रुवा के बीच ही बाकी सब समाधाना की स्थिति रक्खी ह। अब वे बारी-बारी से योगी और कमिस्सार दोना की असफलता या 'नाच पाया' वाली बेबसी का वणन करते ह। कमिस्सार का सारा प्रयत्न रूस में ही फेल हो गया ह। पास्कल ने इस मतवाद की त्रुटिया को ठीक ही समझा था। इससे भी ज्यादा भयानक ढग से कोसलर 'गाड दट फेल्ड' म साम्यवाद के विरोध में लिख चुके ह। योगी को मुश्किल यह ह कि "वह आतरिक परिवर्तन को जब समूह की चीज बनाने लगता ह तो वमे ही असफल होता है। जब भी साधुता के प्रचार के लिए बाहरी साधना का सगठित किया गया, सगठन ही इस मुश्किल में फँस गये।

प्रश्न ह कि इन दोनो छोरो के ठहटह लाल और घुलती हुई नीलिमा के बीच कोसलर का क्या और काई रग नजर आ रहा ह? कोसलर के उपयुक्त विश्लेपण से बहुत दूर तक सहमत हाना अनिवाय ह पर सवाल ह कि तत किम' इसके बाद क्या?

कोसलर ने कमिस्सार के अन्दर योगी के कुछ तत्त्व और योगी के भीतर कमिस्सार की सक्रियता म एक समाधान देखा मगर ये दोनों ही मिश्रण बडे बेहूदा साबित हुए। उन्होंने इस सम्मिश्रण का बहतरीन उदाहरण जिराल्ड हड (Gerald Heard) के पेन सक्स एण्ड टाइम में ढूढा ह जहाँ योगी यानी अन्तवर्ती और कमिस्सार यानी बहिर्वर्ती का मिलान के दौरान वचोली और समाधि को, विवाह और योग को गडडमगडड किया ह।[२] लाचार बेचारे कोसलर को कहना पडा— हर गाथिक काल के बाद जस रिनसाँ आता ह, योगरात्रि और कमिस्सार दिवस भी बारी-बारी से आते

१ द योगी एड द कमिस्सार द मेकमिलन कम्पनी न्यूयार्क १९६५ पृ० १५ १८।
२ वही पृ० २४ फुटनोट्स।

ह, अभी यही स्थिति ह । अर्थात अभी हमारी सभ्यता मरी नही ह, सो रही है।"[1]

वस्तुत कोसलर ने वहिर्वर्ती और अन्तर्वर्ती जीवन को ठीक से मिलानेवाले योग का दशन किया ही नही। उन्हें शायद यह मालूम हो नही कि जब उनका निबध "द योगी एण्ड द कमिस्सार' जून १९४२ में 'होराइजन' म छप रहा था, उसी समय ठीक उसी साल श्री अरविन्द ने क्रिप्स मिशन क प्रस्तावा पर गभीर विचार करक भारतीय नेताओ से उसे स्वीकार करने का आग्रह किया जो भारतीय उपमहाद्वीप म शान्ति लाने का एक महत काय होता और उन्होंने 'लाइफ डिवाइन' के अतिम अध्याय पूरा कर दिये थे जिसमें योगी और कमिस्सार के बेहूद मिश्रण से उत्पन्न समाधान की नही, आध्यात्मवादी कम पुरुषा (gnostic Beings) के उद्भव पर बल दिया गया था, जो रगवीक्षक के एक छोर पर अकमण्य होकर बठे नही रहते बल्कि निरन्तर विश्व के हर सघष की क्रिया प्रतिक्रिया में सक्रिय रूप स भाग लेते है। क्या उन्होंने नही कहा था—'आत्मा और भौतिक तत्वा के बीच का यह नया सम्बन्ध समूची भौतिक दुनिया का, अस्वीकार करने के स्थान पर स्वतन्त्रतापवक उसे पूणत स्वीकार करने लायक बनाता ह।"[2]

जीवन में जब तक यह दिव्य चेतना उसके सभी हिस्सा में, यहा तक कि वज्य कह कर छोड दिये गये हिस्सो में अपना काय नही करती उसके अवतरण का कोई उपयोग ही नही ह।

श्री अरविन्द ने अपने महाकाव्य सावित्री में, इस सकट से बचने का सिफ एक रास्ता स्वीकार किया ह। या तो पथ्वी अपने आप ही जैसा हम चाहते है, बदल कर बन जाय। वह होता नही। अत हमें प्रयत्नपूवक प्रत्येक मनुष्य के भीतर छिपी चत्य चेतना को जाग्रत करके उसे इस लायक बनाना होगा कि वह नाना प्रकार के सघर्षों के बीच अपना काय करे। उसे सहज और सामान्य प्रकृति में काय करना ही होगा। जीवन के हर मोर्चे पर चौकस और जागरूक होकर काय करना होगा ही।

पृथ्वी बदले अगर स्वय को
और बने वह स्वग तुल्य
या कि स्वग ही
पृथ्वी की इन मरणमुखी गतियों मे उतरे
लेकिन ऐसा परिवतन व्यापक
केवल सभव तब है
अगर मनुज के रहस्यमय अन्तस्तल मे हृदय देश के

१ वही पृ० २५।
२ द लाइफ डिवाइन प० ११७३।

सदा अवस्थित धय चेतना
घू घट खोल
सहज और सामान्य प्रकृति के भीड भरे कमरों मे आये
और प्रकृति क हर मोर्चे पर
अनावृत्त सन्नद्ध खडी हो
उसके हर विचार पर शासन करती
तन जीवन को सदा स्वय से भरती।[1]

श्री अरविन्द इसी प्रकार सम्पूर्ण न्ययमाना पथिवी को बदलने की आकांक्षा रखते थे।

विश्व एकता आन्दोलन

उनके इन्ही सपनों का साकार रूप देने के लिए विश्व एकता आन्दोलन का श्री गणेश हुआ। १९५८ में इस सस्था की स्थापना हुई। पिछले १२ १३ वर्षों म इस सस्था ने विश्व के कोने कोने में अनेक केन्द्रो की स्थापना की। यह सस्था किसी प्रकार के राजनीतिक मतवा धम, विश्वास आदि की सकुचित सीमाओ का स्वीकार नही करती। श्री मा ने इसकी स्थापना के अवसर पर अपने सन्देश में कहा था—"विश्व म एकता ह। यह हमेशा रही ह और हमेशा रहेगी, ऐसा नही कि विश्व में एकता नही ह और हमें उसे कही और से ले आना ह और इस पर आरोपित करना ह। सिफ विश्व इस एकता के प्रति जागरुक नही ह। हमें उसे इस ओर जागरुक बनाना ह। हम मानते ह कि इस समय ऐसा करने का सर्वाधिक उपयक्त अवसर आ गया ह। क्योंकि चेतना की एक नई शक्ति या ज्योति, इसे आप जो नाम दे लें, अपने को पृथ्वी पर प्रकट कर चुकी ह। और इसलिए विश्व में अब यह क्षमता आ गई ह कि वह अपनी ही एकता के प्रति सचेत हो सके।"

आरोवील उपानगर

मानव एकता का आदश अब तक कोरा आदश ही रहा ह क्योंकि कभी भी इसे व्यावहारिक प्रयोग का विषय नही बनाया गया। २८ फरवरी १९६८ को प्रात काल १० बजे एक नया प्रयोग अस्तित्व में आया। द इडियन एक्सप्रेस ने २८ फरवरी १९६८ के अक में लिखा—"आरोवील किसी का नही ह यह सारी मानवता का ह।' श्री अरविन्द आश्रम की श्री माँ की यह आवाज उनके कमरे से छह मील दूर ट्रांसमीटर से समुद्र तट पर बन रहे इस नये नगर के शिलान्यास के अवसर पर गूज उठो। वे फ्रेंच में बोल रही थी उस भाषा में जा स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की भाषा ह। तीन सौ वष पहले फ्रासिस मार्ते ने पाडिचेरी शहर की नीव रखी, कल श्री माँ न आरोवील की नीव रखी। आरो श्री अरविन्द का सक्षिप्त नाम हैं और ग्रीक में

१ सावित्री द्वितीय खड परम कम्पलीट एडिशन १९५१ पृ० १२९।

इसका अथ होता ह प्रकाश की देवी उषा। आरोवील का अथ ह उषा नगर, इसका अथ ह अरविन्द नगर। द टाइम्स आफ इण्डिया ने उसी तारीख के अक में लिखा—"आरोवील उनका है जो प्रगति और उच्च तथा सच्चे जीवन के लिए पिपासित ह।" वह ह श्री माँ की आवाज। आरोवील नये प्रयोगों का नगर बन रहा ह। द स्टेटसमैन इसे आधुनिक सम्रो ला कहता ह। 'आरोवील का, भविष्यत के नगर का कार्यारभ हो गया ह जब अति सादगी के समारोह में, सौ देशों के नवयुवक और नवयुवतियों ने अपने अपने देश की मुट्ठी भर मिट्टी कमल के आकार के सगमरमर के बने कलश में डालकर जो विशेष रूप से हवाई जहाजों से लाई गई थी, शिलान्यास का सस्कार पूरा किया। यह पूरा समारोह कभी न भूल सकने वाले सगीत से अनुष्ठित हो रहा था। आरोवील का स्वरूप और उसकी विशेषताओं का विवरण तथा पूरा मानवजाति के लिए उसके समपण (डेडिकेशन) के शब्द विश्व की सोलह भाषाओं के एक साथ प्रसारित हुए।'

अक्तूबर नवम्बर १९६६ में पेरिस में होनेवाली यूनेस्को की साधारण सभा मे आरोवील पर एक प्रस्ताव उपस्थित करते हुए भारतीय प्रतिनिधि ने कहा-"इसी पाडिचेरी में श्री अरविन्द साधना करते रहे और उन्होंने अपनी महत कृतियाँ लिखी। उनके चतुर्दिक, उनके सूक्ष्म प्रभाव से एक गम्भीर आस्था और हार्दिक शान्ति का वातावरण छा गया। ससार के सभी हिस्सों से लोग 'उस वस्तु' को जानने के लिए उनके पास आने लगे 'जिसे' जानकर सब कुछ जाना जाता है। गुरुदेव श्री अरविन्द की एक दृष्टि मात्र से जिन्दगियाँ बदल गयी। १९२६ में जब श्री अरविन्द ने ऋषियों की तरह एकान्तवास में प्रवेश किया आश्रम का सारा दायित्व उन्होंने अपनी एक आरम्भिक शिष्या, एक फ्रासीसी महिला को, जो आश्रम में श्रीमाँ बनी, सौंप दिया। श्री मा के भीतर आश्चय जनक सगठन शक्ति ह जिसके कारण आश्रम नानाविध जीवन के क्रियाकलापों का केन्द्र बन गया ह। जहाँ व्यावहारिक वैराग्य का अदभुत रूप दिखाई पडता ह, जहाँ लोग अपने हृदय म अविकाय दीप्ति को सँजोये हुए जो ऋषियों के चेहरा पर चमकती थी, गम्भीर कार्यों को मिल जुल कर पूरा कर रहे ह।'

यूनेस्को ने, अपने अधिवेशन म आरोवील पर यह सवसम्मत प्रस्ताव पास किया—'यह जानकर कि यूनेस्को की २० वी साल गिरह क अवसर पर पाडिचेरी भारत, की श्री अरविन्द सोसायटी, जो एक गैर सरकारी सस्थान ह आरोवील नामक ऐसा नगर बसाने जा रही ह जहाँ विभिन्न देशों के लोग निवास करेंगे जहाँ सास्कृतिक शक्षणिक वैज्ञानिक आदानप्रदान के द्वारा एक समस्वरता का निर्माण किया जायेगा, यूनेस्को का विश्वास ह कि यह योजना अन्तर्राष्ट्रीय सौमनस्य और शान्ति की स्थापना में महत्वपूण योगदान देगी।'

२८ फरवरी १९६९ को यूनेस्को के उपमहानिदेशक डा० एम० एस० आदि

समूचा जीवन ही योग है

उदुत्तम मुमुग्धि नो विपाश मध्यम चत अवधामनि जावसे ।
ऋग्वेद ३।१।११५
शिर के उदर के पैरों के पाश को काट दो ताकि सारा जीवन मुक्त हो जाय ।

ऋग्वेद का ऋषि शिर से मानसिक बन्धन को, उदर से प्राणिक बन्धन को और परो से शारीरिक बन्धनो को तोड देने की प्राथना कर रहा ह, ताकि समूचा जीवन बन्धनविहीन परमसत्ता से सयुक्त हो जाय ।

प्राय लोग यह सोचत ह कि योग या अध्यात्म की आर वे हा झुकते ह जो मस्तिष्क के विकार स ग्रस्त ह, भावुक ह या जीवन का कठिनाइयों से सत्रस्त ह। प्राय पागलपन या उन्माद को साधना का प्रस्थान बिन्दु मान लिया जाता ह। जसा कि एक बार श्री अरविन्द के एक शिष्य ने मजाक में कहा— प्राय धारणा यह ह कि यदि आपके दिमाग का पुजा ढीला नही ह ता आप यागादि की आर नही झुकेंगे। यानी दिमाग जितना ही ढीला और गडबड हा साधना की उतनी ही सभावना बढ जाती ह[1]।

श्री अरविन्द का याग इस प्रकार क शिथिलपजर बुद्धि वाले लोगा क लिए नही था। बड कडे ढग से बुद्धि की परीक्षा करके दिमागी सतुलन की दष्टि से खूब स्वस्थ लोगो को ही वे अपने याग की आर आन का अनुमति दते थे। व स्पष्ट कहते ह—'मेरा योग मस्तिष्क के पूण स तुलन की माग करता ह, इसलिए जिनक मन में ऊपर-ऊपर से हल्की इच्छा जगी हो वे इधर न आयें क्योकि इस योग म उच्चतर चेतना क अवतरण के लिए उद्घाटित हाने की सभावना के साथ ही प्राणिक स्तर की शक्तिया के भी घुस आने की सभावना रहती ह। इसलिए यदि किसी आदमी क पास पूण बौद्धिक सन्तुलन नही ह तो उन गलत शक्तियों द्वारा अधिकृत होने की आशका हो सकती ह। अक्सर व लोग जा अदृश्य सत्ता में विश्वास नही रखत उनसे जो उत्तम या तान्त्रिक क्रियाओ में विश्वास रखते ह कही ज्यादा ठीक और अच्छ रहत ह[2]।

श्री अरविन्द द्वारा उपस्थापित योग साधना के लिए स्वस्थ मस्तिष्क शक्तिशाली प्राणिक और शारीरिक व्यक्तित्व बहुत ही जरूरी कहलाएँ है। वस वे मानवमात्र या यों कहिय

१ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० १९८।
२ वही पृ० १९८।

री सृष्टि को आध्यात्मिक आधारों पर अवस्थित देखना चाहते हैं, इसलिए यह कहना क वे मनुष्यों में विभेद करते थे, गलत होगा। वे जिस प्रकार की साधना के द्वारा पने उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहते हैं, उसम इच्छा पूवक भाग लेने वालों में उपयुक्त मताएँ हाना वे जरूरी मानते थे। वे केवल दृढ़ और सबल मानसिक क्षमता की ही माँग नहीं करते, बल्कि एक सतत तक पूण जागरूक मस्तिष्क की माँग करते ह "सत्य की खोज के लिए एक सर्वाधिक महत्त्वपूण मौलिक आवश्यकता ह समीक्षात्मक तकशमता, करीब करीब जिद्दी किस्म का ऐसा दिमाग जो हर मुखौटे को चीर सकता हो और बालू बाता, विचारा और मता का अस्वीकार कर सकता हा। यह एक प्रकार का शोधक्षम (Solvent) तत्व ह। आदमी क पास ऐसा साहस होना चाहिए कि वह किसी भी प्रकार के धोखे और आवरण से भिन्न सत्य को देख सके।"[1]

इसीलिये वे निरन्तर सन्तुलन की बात करत ह। अतिभावुक या मन को पिच्छल बनाने वाली वष्णव साधना के अतिवाद का इसीलिए वे घोर विराघ करते ह। भक्ति का विरोध नही भक्ति के साथ जुडी हुई उस गल्दश्रु भावकुता का विरोध जा दिमाग को असतुलित बनाकर छोड देती ह। ऐसा नही कि श्री अरविन्द भक्ति का विरोध करते ह। व सिफ भक्ति के उस खतरे स सावधान करना चाहते ह, जो भावातिरेक या सवेगों क उच्छल वेग का जगाने का कारण बनता है और मस्तिष्क का इनसे सुरक्षित रखने वाला कोई प्रक्रिया का नही स्वीकार करता। इसीलिए उन्होंने कहा—"जिस क्षण वष्णव घम ने अधिक बहिमुखीकरण का यत्न किया तब जा हुआ हम जानते ही ह—प्राणावेशमय अधोगति, अत्यधिक भ्रष्टता और ह्रास। चत्य के दिव्य प्रेम के विरोध में तुम चैतन्य के उदाहरण की दुहाई नही दे सकते। उनका प्रेम निरी प्राणिक मानवीय वस्तु नही था।"[2] स्पष्ट ही श्री अरविन्द मानते ह कि वष्णवधम म प्राणावेग और शारीरिक प्रेम की प्रधानता क खतरे विद्यमान ह। वे भक्ति के उस तत्त्व का जो भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम से अपने हृदय का रूपान्तर करता ह, पूणत स्वीकार करते ह। उसकी आवश्यकता पर जोर देते ह।

श्री अरविन्द योग

अभी तक श्री अरविन्द के जीवन के विभिन्न पहलुओं को देखते वक्त उनकी विशिष्ट यागपद्धति का कुछ न कुछ अश सामने आता रहा ह। लेले के साथ उनका यागाभ्यास, अलीपुर जेल में गीतोक्त योग का साधना, वासुदेव दशन के बाद समदृष्टि और समता की स्थितियाँ, चन्दरनगर म विभिन्न वदिक देवियो क दशन जो मानव

१ इवनिंग टाक्स द्वितीय भाग पृ० २२४।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में (पृ० १०७)। वैष्णवीय असन्तुलन पर इवनिंग टाक्स भाग २ पृ० २२७ पर भी विचार व्यक्त किये गये हैं।

चेतना के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करती है। पांडिचेरी में उनके चालीस वर्ष के विभिन्न पत्रों का विश्लेषण पाठकों को कई ऐसे सूत्र प्रदान करते हैं जिनसे उनके पूर्ण योग का कुछ न कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। संध्या-वार्ताओं और मानव तथा मानवचक्र के सूक्ष्म तत्त्वों की विवेचना में भी उनके योगतत्त्वों की अनेक झलकियाँ अपने आप आ गई हैं। यहाँ मेरा प्रयत्न होगा कि श्री अरविन्द योग और साधना को पारिभाषिक शब्दों के जंगल से निकाल कर यथासंभव सरल और सुगम ढंग से प्रस्तुत कर सकूँ।

उन्होंने स्वयं एक बार अपने योग को अन्य योग प्रणालियों से अलग करते हुए अपनी शिक्षा को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया था।

श्री अरविन्द योग की विशेषताएँ

१ श्री अरविन्द योग का लक्ष्य संसार से विदा हो जाना और स्वर्ग में जीवन या निर्वाण प्राप्त करना नहीं बल्कि जीवन और सत्ता का परिवर्तन करना है। किसी गौण या प्रासंगिक कार्य के तौर पर नहीं बल्कि विशेष और मुख्य उद्देश्य के तौर पर। यदि दूसरे योगों में चेतना के अवरोहण (चेतना का नीचे उतरना) है भी, तो वह पथ में अपने आप आनुषंगिक या आरोहण (चेतना का ऊपर उठना) की परिणाम स्वरूप घटना मात्र है। वहाँ आरोहण ही मुख्य वस्तु है। यहाँ आरोहण पहला कदम है। वह अवरोहण के लिए साधन है। आरोहण से प्राप्त नई चेतना का अवतरण ही इस साधना का वास्तविक चिह्न तथा मुहर छाप है। तंत्र और वैष्णव धर्म भी जीवन से छुटकारा पाने में ही अपनी इतिश्री मानते हैं परन्तु इस योग का ध्येय है जीवन को पूर्ण दिव्यता प्राप्त करना।

२ इस योग में जिस ध्येय की खोज करनी है वह व्यक्ति के हित के लिए भगवान् के साक्षात्कार की व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं बल्कि एक ऐसी चीज है जो यहीं पृथ्वी चेतना के लिए प्राप्त करना है अर्थात् ऐहलौकिक न कि केवल पारलौकिक उपलब्धि। प्राप्त करने की वस्तु है चेतना की वह शक्ति (विज्ञानमय) जिसे क्रिया क्षेत्र में उतारा जाय, जो अभी पार्थिव प्रकृति में यहाँ तक कि आध्यात्मिक जीवन तक में संगठित या प्रत्यक्ष क्रियाशील नहीं है उसे सुसंगठित करना और क्रियाशील करना हमारा उद्देश्य है।

३ इसी उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए यह पद्धति मुख्य तौर पर प्रकट की गई है जो अपने उद्देश्य यानी चेतना और प्रकृति का सर्वांगीण परिवर्तन कर सके। जैसा सर्वांगीण उद्देश्य है वैसी ही सर्वांगीण यह पद्धति है अर्थात् यह पुरानी पद्धतियों को ग्रहण तो करती है पर केवल आंशिक क्रिया के तौर पर और अपनी विशिष्ट विधियों में विद्यमान सहायक साधन के रूप में बस। मैंने यह पद्धति (सारे का सारा) या इसके जैसी दूसरी कोई पद्धति पुराने योगों में प्रतिपादित या सिद्ध नहीं पाई है।

अगर मैं पाता तो अपने लिए नया रास्ता बनाने और शोध कर तथा अनुसंधान तथा आन्तरिक सृजन करने में अपना समय व्यर्थ न गंवाता। जब कि मैं पहले से ही उद्घाटित, प्रस्थापित, पूर्ण रूप से अंकित, प्रस्तर निर्मित, सुरक्षित, और सर्वसुलभ मार्गों पर आसानी से सरपट दौड़ते हुए शीघ्र ही अपने लक्ष्य पर सकुशल पहुँच सकता था। हमारा योग पुराने रास्ता पर ही दुबारा चलना नहीं है बल्कि कठिन आध्यात्मिक कार्य है।[1]

श्री अरविन्द मानते हैं कि कोई जाने या न जाने जिन्दगी स्वयं में एक योग है ही। वह अपनी योग-यात्रा पर चलती रहती है। प्रकृति की यह विकास-यात्रा स्वतः संचालित ढंग में चल रही है अब यह मनुष्य पर निर्भर करता है कि वह उसमें सचेतभाव से हिस्सा लेकर उस प्रक्रिया को तेज करके अपने इसी जीवन में विकास की चरम उपलब्धि पाना चाहता है या नहीं। इस योग यात्रा में प्रकृति ने तीन चरण पार कर लिए हैं। जड़ में चैतन्य का प्रस्फुटन, चैतन्य में प्राण और प्राण से मन तक का विकास वह स्वतः कर चुका है। चौथे चरण के विकास की ओर बहुत पहले से लोगों की दृष्टि गई थी। और हमारे देश में अनेक योग प्रणालियाँ इसी उद्देश्य से स्थापित हुई। श्री अरविन्द उन योग प्रणालियों से सन्तुष्ट नहीं हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति रहा, जीवन का उच्चतर रूपान्तर नहीं, जो प्रकृति का सच्चा उद्देश्य मालूम होता है।

योग सिद्धि के लिए चार तत्वों की जरूरत है। शास्त्र, उत्साह, गुरु, और समय। श्री अरविन्द अपने प्राकृतिक योग के बारे में कहते हैं कि इस योग का मूल शास्त्र वेद है वह वेद जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में छिपा है। गुरु विश्वगुरु स्वयं ईश्वर है जो सभी के हृदय में प्रतिष्ठित है। प्रत्यक्ष गुरु उसी का प्रतिनिधि है जो साधक के जीवन की उलझनों को दूर करने में सहायता देता है। इस सर्वांगीण पूर्ण योग के लिए उत्साह जरूरी है। पर शास्त्र गुरु और उत्साह मनुष्य की स्वतन्त्रता के रक्षक हैं बाधक नहीं। क्योंकि अनन्त के लिए किये जाने वाले इस योग में स्वतन्त्रता अन्तिम विधान और सबल है।'[2] यह योग व्यक्ति के लिए नहीं, परमसत्ता के लिए निवेदित है। अतः अहं का विसर्जन इसकी शाश्वत शर्त है। व्यक्ति अहं सारे बन्धनों की जड़ है। योगाभ्यासी को जानना चाहिए कि उसके भीतर सक्रिय शक्ति निर्वैयक्तिक और अनन्त है। जिस दिन वह यह जान लेता है उसे मालूम हो जाता है कि उसकी सारी क्रियाओं के भीतर उसका परम हितू विभु पर्दे के पीछे छिपा काम कर रहा है। उसे सामने लाना और सम्पूर्ण जीवन को उसकी क्रीडा का क्षेत्र बना देना श्री अरविन्दीय

१ श्री अरविंद अपने तथा श्रीमाताजी के विषय में पृ० ९९९६।
२ सिंथिसिस आफ योग पृ० ४०।

योग का ध्येय ह ।

वे इसी के साथ यह भी कहते ह कि यह योग अपने सभी तत्वा म एक दम नया ह ऐसा दावा भी नही करता। उ हाने बहुत ही विस्तार के साथ 'योग समन्वय' में विभि न योगमार्गों का पूण विश्लेषण चीड फाड, नापजोख की ह और उनमें से अपने उद्देश्य क लिए आवश्यक तत्वा को ग्रहण किया ह और उन सभी तत्वा और पद्धतिया का अपने स्वय सिद्ध अनुभवा क आधार पर एक नये योगमाग के रूप में उपस्थित किया ह। उनका पूण याग उनके द्वारा अनुभूत चार सिद्धियो पर आधारित ह।

१ देशकालातीत शा त ब्रह्म की अनुभूति जो लेले क साथ साधना करते हुए प्राप्त हुई।

२ विश्वचेतना की अर्थात सवत्र भगवान दशन की अनुभूति जो अलीपुर जेल में हुई।

३ परमसत चेतना की अनुभूति जिसके दो पक्ष हैं निष्क्रिय ब्रह्म और सक्रिय ब्रह्म। उ हाने सक्रिय ब्रह्म या अधिमानसिक चत य की उपलब्धि सिद्धि दिवस पर प्राप्त की जिसे उन्होंने प्रकृति में श्री कृष्ण का अवतरण कहा जो आन दमय अतिमानसिक चेतना की आर ले जाने में पथप्रदशन का काय करती ह।

४ अतिमानसिक चत य की अनुभूति जो सर्वोच्च सत की अ तिम उपलब्धि ह।

श्री अरवि द योग उ ही की इन चार अनुभूतियो के चौखभे पर कायम ह। इसका प्राप्त करन की सारी विधि और साधना माग और तरीके खतरे और खाइया उन्होंन बहुत ही स्पष्टता से समझाने की कोशिश की ह। श्री अरवि द योग या कोई भी याग एक मुसल्सल आन्तरिक यात्रा ह, एक मनावनानिक के आ तरिक क्षेत्र के अवषण का प्रयत्न ह जिस हम सक्षेप में प्रस्तुत करेंगे। यह एक यावहारिक मनोविनान है। अ त की यात्रा ह।

हमें इस यात्रा क पहल यह जान लेना चाहिए कि योग का अथ करना नही हाना' ह। यानी यह यात्रा हमस कही बाहर के क्षत्र में नही की जाती इसलिए इस यात्रा का अथ आन्तरिक रूप स जीन की एक नई विधि का प्राप्त करना ह।

इस प्रकार हमने सक्षेप में देखा कि पूण याग का मुख्य उद्देश्य ह सामा य मानवीय चतना का ध्यापर और उच्च ईश्वरीय चतना म परिवतन तथा दिव्य चेतना क मुख्य उपादान अर्थात शाति, प्रकाश, आन द ज्ञान को मनुष्य के भौतिक जीवन में उतार कर उसकी प्रकृति का उच्चप्रकृति में रूपातर करना। इस रूपा तर का उद्देश्य ह जीवन में दिव्यता लाना।'[1]

साधना की शर्ते

इस योग का आर जान का पहला शत ह अभीप्सा। क्या यानक भीतर इस

१ मध्वर दर्शन साधना इन श्री अरवि द याग पृ० ३१ ३२।

संसार की जिन्दगी से भिन्न एक उज्ज्वलतर जिन्दगी के लिए इच्छा उत्पन्न हुई है ? तो आप इधर आ सकते हैं। इस इच्छानुसार आपको अपने को रूपान्तरित करने की साधना के प्रति ईमानदार होना ही होगा। बीच की स्थिति नहीं चलेगी। यदि अभीप्सा है तो ईमानदारी के साथ उसके लिए प्रयत्न करना होगा। अभीप्सा और ईमानदारी से भी कुछ नहीं होगा यदि आपको ईश्वर, गुरु और मार्ग में विश्वास नहीं है। विश्वास डगमगा सकता है। कष्टों या बाधाओं के आगे आप आस्था खो सकते हैं। और यदि इस हालत में अहं भाव रहा तो खतरे और बाधायें बढ़ सकती हैं, इसलिए समर्पण बहुत जरूरी है। ईश्वर को सब कुछ सौंप देना सभी बाधाओं से बचने की गारंटी है। इन चार कीलक और अर्गलाओं से सुसज्जित होकर आप निधड़क, योग मार्ग में आगे बढ़ सकते हैं, किन्तु अपनी साधना में गफलत आ मघाती होती है, इसलिए निरन्तर सावधानी और चौकसी रहनी ही चाहिए।[१]

मस्तिष्क की नीरवता और शान्ति

श्री अरविन्द यह मानते हैं कि जब तक मानव मन (माइंड) नीरव और शान्त नहीं होता तब तक किसी भी प्रकार का योगाभ्यास संभव नहीं है। यह शान्ति दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है। सक्रिय रूप से मस्तिष्क को खाली करके या तटस्थ रूप से मस्तिष्क में चलने वाली क्रिया का मात्र द्रष्टा रहते हुए। लोगों को ये दोनों ही कार्य बहुत कठिन लगते हैं। हैं भी, पर यह तो प्रकृति को न समझने के कारण इतना कठिन लगता है। श्री अरविन्द ने एक स्थान पर लिखा है, 'सभी मानसिक रूप से विकसित लोग जो औसत से ऊपर हैं, किसी न किसी रूप में, मस्तिष्क को दो भागों में विभक्त कर लेते हैं। हो सकता है कि ऐसा कुछ समय के लिए और कुछ उद्देश्य के लिए ही हो पर होता है। सक्रिय अंश और निष्क्रिय अंश। सक्रिय अंश विचारों की एक फैक्टरी है और निष्क्रिय शान्त अंश जो उसका द्रष्टा और स्वामी है जो विचारों की गतिविधियों का निरीक्षण करता है, निर्णय करता है कुछ को अस्वीकार करता है, कुछ को स्वीकार करता है परिवर्तन करता है सुधार करता है, मन के इस कमरे का यही स्वामी है पूरा मन इसी का साम्राज्य है। योगी इससे भी आगे जाता है। वह खुद स्वामी होता है और एक तरह से मस्तिष्क के भीतर की दुहरी प्रक्रिया के भी ऊपर उठकर उससे अलग होकर या पीछे रह कर स्वतन्त्र रहते हुए स्थित होता है। उसके लिए विचारों की फैक्टरी के कारनामे कुछ अर्थ नहीं रखते क्योंकि वह देखता है कि विचार बाहर से आते हैं, विश्वमन से या विश्वप्रकृति से, कभी साफ आकृति लिए हुए कभी निराकार ढंग से, जिन्हें मस्तिष्क रूप दे देता है। मन का मुख्य काम ही है इन्हें स्वी

१ वही पृ० १६४१।

कृत करना या अस्वीकृत करना और रूप प्रदान करना।[1]

ऐसी स्थिति में नीरवता प्राप्त करने का सीधा रास्ता है जो कुछ भी मन में प्रवेश कर रहा है उसे पकड़ कर बाहर फेंकना। यही पद्धति श्री अरविन्द ने लेले के साथ साधना करते हुए अपनाई थी। वे खुद लिखते हैं—"इसके लिए मैं लेले का अत्यधिक ऋणी हूँ कि इन्होंने इस सत्य का साक्षात्कार कराया। ध्यान के लिए बैठ जाओ, उन्होंने कहा परन्तु कुछ भी सोचो नहीं, केवल अपने मन का निरीक्षण करो, तुम विचारों को उसके अन्दर आते देखोगे।

उनके प्रवेश कर सकने के पूर्व उन्हें अपने मन से तब तक दूर फेंकते रहो जब तक तुम्हारा मन पूर्ण नीरवता प्राप्त कर सकने में समर्थ न हो जाय। मैंने यह पहले कभी नहीं सुना था कि विचार प्रत्यक्ष रूप से बाहर से हमारे मन के भीतर आते हैं। पर इस सत्य या सम्भावना पर शंका करने की बात मेरे मन में नहीं आयी। बस मैं बैठ गया। और वैसा ही किया। क्षण भर में मेरा मन उच्च पर्वत शिखर के निर्वात आकाश की भाँति शांत हो गया और तब मैंने देखा कि एक विचार, फिर दूसरा विचार बाहर से स्पष्ट रूप से आ रहा है। इसके पूर्व कि वे मेरे मस्तिष्क में घुस कर उसे अपने अधिकार में कर सकें मैंने इन्हें झटक कर दूर फेंक दिया और तीन दिनों में ही मैं उनसे मुक्त हो गया। उसी क्षण से सिद्धान्ततः मेरे अन्दर का मनोमय पुरुष एक स्वतन्त्र प्रज्ञा किंवा विराट् मन बन गया जो विचारों के कारखाने के एक मजूर की भाँति वैयक्तिक विचार के संकुचित घेरे में बंधा नहीं बल्कि सत्ता के सैकड़ों स्तरों से ज्ञान ग्रहण करने लगा तथा इस विशाल दर्शन—साम्राज्य और विचार साम्राज्य में से अपनी इच्छा के अनुसार विषयों और विचारों का चुनाव करने में स्वतन्त्र था।[2]

श्री अरविन्द की यह साक्षी भी बहुतों की आशंका दूर नहीं कर पाती। क्योंकि हम समझते हैं कि दिमाग को खाली करना एक तरह की खब्तुलहवासी को आमन्त्रित करना है। वस्तुतः हमें आज तक किसी ठीक ठाक मनोविज्ञान की जानकारी ही नहीं हुई। मानसिक अस्तित्व का मूल तत्त्व क्या है। वह किस प्रकार संगठित होना चाहिए? श्री अरविन्द कहते हैं कि—'मानसिक सत्ता का मूल पदार्थ एक दम शान्त है। कोई वस्तु उसे आन्दोलित नहीं कर सकती। विचार या वैचारिक क्रियाएँ जब उसमें प्रवेश करती हैं तो वैसा ही होता है मानो वायुहीन आकाश का पक्षी पार कर रहे हैं। यह उड़ता चला जाता है, वहाँ कुछ भी हलचल नहीं होती। कोई निशान नहीं पड़ता। चाहे हजार विचार या आन्दोलित करनेवाली घटनायें हों क्यों न घटें, शांति वैसे ही बनी रहती है, मानो मस्तिष्क का मूल ढाँचा ही इस कदर के तत्त्व से बना है जो शाश्वत और अपमेय शान्ति से निर्मित है। ऐसा मस्तिष्क जिसने यह नीरवता और शान्ति पाली

१ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में पृ० ७५।
२ वही पृ० ७५।

है, अपनी प्रक्रिया शुरू कर सकता है, यह प्रक्रिया निहायत सघन और शक्तिशाली होती है, तो भी मस्तिष्क अपनी मौलिक शांति बरकरार रखता है। अपने से कुछ भी न करता हुआ, वह निरन्तर ऊपरी चेतना से विचार प्राप्त करता है और उसमें बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े मानसिक आकार देता रहता है। नीरव किन्तु सत्य के आनन्द से परिपूर्ण और इसकी शक्ति और दीप्ति से भरपूर। यही शान्त और नीरव मस्तिष्क की क्रिया प्रणाली है।[1]

यह है मन को नीरव और शान्त बनाने की प्रक्रिया। इसी प्रक्रिया से श्री अरविन्द योग का आरम्भ होता है। बिना नीरवता और शान्ति के ठोस रूप में विद्यमान हुए बिना चैत्यपुरुष सामने नहीं आ सकता।

इस शान्ति के लिए प्रयत्न आवश्यक है। किन्तु ऐसा नहीं कि यह प्रयत्न निर्विघ्न और आसान है। अनेक लोग अशान्त जीवन के ही इतने अभ्यस्त होते हैं कि यह शान्ति उनमें भय पैदा करने लगती है। शान्ति को एक ठोस और व्यापक आधार देने के लिए जरूरी है कि यह प्राणिक और शारीरिक स्तरों तक भी उतरे और सम्पूर्ण सत्ता को शान्ति से सराबोर कर दे।

उसे शुचि और पवित्र करे। ऐसा नहीं कि प्रयत्न करते ही शान्ति उतरने लगेगी और इच्छा करते ही वह प्राणिक और शारीरिक शान्ति का रूप ले लेगी। यह भी जरूरी नहीं कि एक बार मानसिक शान्ति लब्ध हो जाय तो उसमें वह सर्वदा विद्यमान ही रहेगी। यह सतत प्रयत्न की क्रिया है। इसमें वसन्त आता है तो पतझड़ और ग्रीष्म भी। लम्बे काल तक रूखे दिन भी आ सकते हैं। एक बार शिष्यों के पूछने पर श्री अरविन्द ने कहा—"यह सही है कि मस्तिष्क के खालीपन के बाद एक शुष्कता का दौर आता है पर जरूरी नहीं कि सबके साथ ऐसा हो ही। पर हो, तो उस शान्त भाव से इस समय को गुजार लेना चाहिए। दिमाग को खाली करने से आनन्द का या भार कम होने से एक तरह के छुटकारे का अनुभव होता है। मुश्किल तो यह है कि बहुत से बर्टेण्ड रसेल जैसे लोग भी इस खालीपन को सह नहीं पाते। वह कहते हैं कि ज्यों ही वे अन्तर में प्रवेश करते हैं उस शान्ति का अनुभव करने लगते हैं और कोशिश करते हैं कि वहाँ से निकल कर बाहर भागें। यह कितनी बेवकूफी है कि वे वहाँ से निकल भागना चाहते हैं। क्योंकि यदि वे नीरवता का बोध कर सकते हैं तो यह अच्छा है, यह एक मूल्यवान् क्षमता का सूचक है, पर ये योरोपीय लोग कोई भी चीज बिना बाहरी जीवन के स्वाद के कर ही नहीं पाते। वे सोचते हैं चेतना में बहिर्जगत से तत्त्वों के आने के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकता।"[2]

इस खालीपन का अर्थ शून्यता नहीं है। खालीपन का अर्थ है नीरवता, शान्ति।

१ अॉन योग पार्ट २ टोम वन पृ० ६१५।
२ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ १४३।

श्री अरविन्द ने अचंचलता से शान्ति को ज्यादा स्थायी और ठोस बताया है। वे कहते हैं। दिमाग को शान्त करो तो न केवल वहाँ आनन्द का अवतरण होता है बल्कि आनन्द ज्योति और शक्ति का समुद्र मिलता है। स्वर्ण ढक्कन जिसे हिरण्मयपात्र कहा गया है, ऊपर के तत्त्वों और मानसिक के बीच हस्तक्षेप करता है। उसे तोड़े हैं। ढक्कन तोड़ दो वे सब तुम्हारी इच्छा मात्र से अवतरित होने लगेंगे। पर उसके लिए शान्ति जरूरी है। यह सही है कि बिना शान्ति स्थापित किये भी कुछ लोग उन्हें पा सकते हैं, पर यह बहुत कठिन है।'[1]

जिस प्रकार परम चैतन्य को मानसिक चैतन्य से हिरण्मय पात्र या सुनहरे ढक्कन अलग किये हैं उसी प्रकार हृदय देश में भी एक झिल्ली है जिसे प्राणिक तत्त्वों से बने आवरण की संज्ञा दे सकते हैं—तुम्हें हृदय के पीछे क्या है यह जानने के लिए इस आवरण को तोड़ना होगा। कुछ लोगों में शक्ति इस आवरण के पीछे से काम करती रहती है, क्योंकि यदि ऊपर आ जाय तो उसे बहुत सी मुश्किलों और अवरोधों से टकराना होगा। यह लगातार तोड़ने और बनाने का काम भीतर ही भीतर करती रहती है जब तक कि वह दिन नहीं आ जाता कि पर्दा हट जाय और व्यक्ति अनन्त में जीना शुरू कर दे।[2]

इसी अवसर पर श्री अरविन्द से एक शिष्य ने बहुत ही व्यावहारिक प्रश्न किया—'कृपया हम यह सारा आनन्द ज्योति और शक्ति पाने का कोई सरल रास्ता बताएँ।'

श्री अरविन्द बोले— सारा रहस्य तुम्हारी इच्छा में है। चाहना, इसे चाहना! बहुत मुश्किल है न? पर कोई बात नहीं। धैर्य रखो। योग के लिए अपार धैर्य चाहिए।[3]

जब तक अभीप्सा नहीं है चाहत नहीं है उस लक्ष्य को पाने की सच्ची कामना नहीं है कुछ नहीं हो सकता। अभीप्सा श्री अरविन्द योग की साधना की कुंजी है।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस खालीपन या नीरवता का अर्थ जीवन से निष्क्रिय होना नहीं है। एक महत्तर चेतना को हस्तगत करना है। शान्त होने के लिए काम छोड़कर बैठ रहने की जरूरत कतई नहीं है। शान्ति की परीक्षा ही कर्म के भीतर होती है। श्री अरविन्द ने इस खालीपन को प्राप्त करने के बाद न केवल क्रान्तिकारी कार्यों का लगातार संचालन किया, बल्कि सम्पूर्ण राजनीतिक क्रियाकलापों के केन्द्र बने रहे। इसी अवस्था में उन्होंने गुरिल्ला युद्ध की तैयारियाँ कीं, भाषण किये, पत्र सम्पादन किये, लेख लिखे।

१ वही पृ० २५।
२ वही पृ० २५।
३ वही पृ० २५।

चैत्य उन्मीलन और क्रमिक साधना सोपान

चत्य केन्द्र क विषय में हम पहले विचार व्यक्त कर चुके ह । श्री अरविन्द साधना म इसक महत्त्व पर भा यथास्थान बात की जा चुकी है । मानसिक और प्राणिक शान्ति क बाद ही चत्यपुरुष उन्मीलित हाकर सतह पर आना ह और व्यक्ति की सभी क्रियाआ की बागडार अपने हाथ में ले लेना ह । हृदय के पीछे एक झिल्ली में छिपा इस चैत्य पुरुष का आसानी से प्राप्त नही किया जा सकता । सत्प्रेम ने श्री अरविन्द की ' चत्य पुरुष धारणा को बहुत सरल ढग से समझाते हुए लिखा ह—' यह विश्व की सबसे आसान चीज ह पर सबसे मुश्किल भी । सबसे आसान इसलिए कि एक शिशु भी इस जानता ह या यों कहिये उसी में जीता है, वह स्वामी ह कितनी निद्वन्द्वता से हँसता ह क्योंकि वह अपने चत्यपुरुष में ही रहता ह । सबस अधिक कठिन इसलिए कि ज्यों-ज्यों हम बडे होते हैं नाना प्रकार की भावनाआ, विचारों आदि क द्वारा वह स्वतोद्भूत चत्य स्थिति नष्ट होने लगती ह और तब हम 'अपनी आत्मा ' की बात करने लगते हैं । जिसका अथ ही ह कि अब हम उसके बारे में जानना खा चुके । अब उससे अलग हो गये । कशोर अवस्था के सारे दु खों की कहानी ही धीरे-धीरे चत्य पुरुष के बद हाने की कहानी है । हम विकास क सकट की बात करते है, पर यह तो दमघुटने का सकट है, वयस्क होने का अथ ही ह दमधाट स्थिति की पूणता ।''[1] हमारा कृत्रिम रूप से तथा कथित दिमागी परिपक्वता का प्राप्त करना ही प्रकारान्तर स सहज चत्य स्थिति से अलग हाना ह ।

जब प्राणिक और मानसिक उद्वेग नष्ट हो जाते हैं अह का विसजन हो जाता ह, मस्तिष्क की सीमाएँ जानकर आदमी परम चेतना के सम्मुख नतशिर समपणभाव से खडा हा जाता ह तो हृदय गुफा में छिपी यह ज्योतिकिरण बाहर आ जाती ह । आनन्द इसका प्रथम लक्षण ह । एक एसा आनन्द जा उद्वेगहीन पर ठोस होता ह । शान्त गभीर, निरुद्वेग, नि स्वाथ यही आनन्द चत्य पुरुष के जागरण का प्रथम लक्षण ह । एक निर्हेतुक आत्माराम की स्थिति एक सहजानन्द और व्यापकता की भावना । चत्यपुरुष कसा हाता ह ? हम नही दख सकते इसलिए नही जानत कि कसा हाता ह । केवल तात्त्विक शक्ति रखने वाले ही इस अदश्य अभौतिक का दख सकते हैं । जो आखें उस दख सकती ह उनकी स्वामिनी श्री माँ ने कहा ह— सचेत व्यक्ति को देखते ही लगता ह कि इसके भीतर, गहरे स गहर उतरती जा रही हूँ बहुत दर, अन्दर की ओर काफी गहरे (बहुत सी आखें ऐसी हाता है जो बन्द दरवाजे की तरह हाती ह, उनमें घुसना कठिन होता ह पर अनेक की आखें खुली होती हैं) तभी कोई चीज मिलती ह जा स्पदित हा रही होती ह, कभी वह चमकती होती ह, कहीं

१ श्री अरविन्दो आर द एडवेंचर आफ कांशियसनेस पृ० ९३ ।

उसम से स्फुलिंग निकलते होते ह। यदि देखने वाला यात्री खो गया तो वह उठता ह—'यह ह वह जीवन्त आत्मा।' पर यह वह चीज नहीं ह। यह इस व्यक्तिका प्राणिक पुरुष ह। आत्मा को देखने के लिए इस तरफ से हटकर दूसरी ओर यात्रा करनी होगी। गहरे में अपने को समेट लो और प्रवेश कर जाओ। भीतर जाओ और भीतर उतरते जाओ, एक बहुत लम्बे छिद्र के भीतर यात्रा करते हुए चलते जाओ, और वहाँ एक चीज ह, गरमाहट लिए हुए शान्त, नानातत्वों से समृद्ध, और बहुत स्थिर, और बहुत पूर्ण, अत्यन्त मधुर यह ह आत्मा। और यदि कोई अभ्यास करता ह, और अपने भीतर सचेत ह तो एक प्रकार का ऐसा आधिक्य दिखता ह कि लगता ह जसे कोई सभी सम्पूर्णताओं को जो अमापनीय ह, एकत्र पा गया ह। और वह जानने लगता ह कि यदि वह किसी तरह वहाँ जीना जान जाय तो नाना रहस्यों का ज्ञान जायगा। यह सब कुछ शाश्वत के शान्त स्थिर जल पर पड़नेवाले स्पष्ट प्रतिबिम्ब की तरह लगता ह। यहाँ समय की सीमा खत्म हो जाती ह। यहाँ सिर्फ शाश्वत के लिए होना और होने, या हो रहे का ही बोध रह जाता ह।'[१]

चैत्यपुरुष के उन्मीलन के लिए जो द्वार खुलता ह चाहे जिस स्तर से खुले, उसे खुलना (ओपेनिंग) कहते ह। यह खुलना कैसे होगा?

श्री अरविन्द ने लिखा ह— भीतर से उद्घाटन या ऊपर से अवतरण योगसिद्धि के लिए ये दो सर्वोपरि रास्ते ह। दिमाग की ऊपरी सतह, सवर्गों आदि को मिला-जुला कर की गई तपस्या वगरह कुछ-कुछ ऐसी स्थितियाँ पदा कर सकती ह पर नतीजा हमेशा अनिश्चित या अधूरा होता ह। इसकी तुलना म उपयुक्त दोनो रास्तों के नतीजे निश्चित और पूर्ण होते हैं। इसीलिए हम अपने योग म 'खुलने' या उद्घाटन पर बहुत जोर देते हैं। यह खुलना आन्तरिक मन की ओर से प्राणिक स्तर से, या शरीर से लेकर अन्तरतम चैत्य स्तर में कहीं से हो सकता ह। मन से ऊपर की सत्ता की ओर खुलना इस साधना की फल प्राप्ति के लिए अनिवार्य चीज ह। इसका कारण यह ह कि हमारा छोटा दिमाग प्राण, शरीर, जिसे मिला-जुलाकर हम अपने को हम कहते ह यह एक सतही बात ह ये सतही प्रक्रियाएं हमारी नहीं ह।

सच्ची आत्मा कहीं सतह पर नहीं ह। वह या तो अन्तरतम की गहराई में ह या हमसे ऊपर की ओर स्थित ह। अन्तर म वह आत्मा ह जो आन्तरिक मन आन्तरिक प्राण और आन्तर शरीर को कायम किए हुए ह। जिनमे यह क्षमता ह कि वे वश्विक व्यापकता को प्राप्त कर सकें, जिसके फल की हम आकांक्षा करते हैं, ये सभी आत्मिक सत्य के सीधे सम्पर्क में जाकर दिव्य आनन्द का आस्वादन कर सकते ह। दर्ते व स्थूल भौतिक शरीर की कद से, दुःखों से अपने को छुड़ा सके। हमारे

१ वही पृ० ९५।

मनोविज्ञान के अनुसार यह आन्तर सत्ता क्षुद्र बाह्य व्यक्तित्व से चेतना के कुछ केन्द्रों या चक्रों द्वारा जुड़ी रहती है, जिसका अनुभव योग प्रक्रिया में होता है। आंतर सत्ता का अत्यल्प अंश इन चक्रों से छनकर बाहरी व्यक्तित्व में आ पाता है, पर वही अत्यल्प हमारे जीवन का सर्वोत्तम होता है जो कला, कविता, दर्शन, धर्म, अभीप्सा, ज्ञान, प्रयत्न आदि में झलकता है। पर आंतरिक केन्द्र अधिकतर बन्द ही रहते हैं। उन्हें खोलना और सक्रिय बनाना योग का पहला कार्य है। जैसे ही यह खुलना या उद्घाटन संभव होता है, आंतरिक सत्ता की शक्ति और संभावनाएँ जग जाती हैं। तभी हम अपने को बृहत्तर चेतना के प्रति और फिर वैश्विक चेतना के प्रति जागरूक कर पाते हैं। तब हम सीमित जीवन के अलग अलग पड़े क्षुद्र व्यक्ति न रहकर विश्व शक्तियों के क्रियाकलाप के केन्द्र बन जाते हैं। इन शक्तियों के अनजान क्रीडा कन्दुक न रह कर, जैसा हम सीमित जीवन और सतही चेतना वाले व्यक्ति के रूप में रहते हैं, उनकी क्रीडा के कुछ हद तक स्वामी बन जाते हैं। किस हद तक हम ऐसा हो सकते हैं, यह हमारे भीतरी आंतरिक सत्ता के उच्च आध्यात्मिक स्तरों की ओर खुलने या उद्घाटित होने की स्थिति पर निर्भर करता है। इसी के साथ साथ हृदयस्थ चैत्य केन्द्र के खुलने से हमें अपने भीतर की ईश्वरीय सत्ता और ऊपर के उच्चतम सत्य की जानकारी होने लगती है।

उच्चतम आध्यात्मिक आत्मा हमारे व्यक्तित्व या शारीरिक सत्ता के पीछे स्थित नहीं है बल्कि वह इसे अतिक्रांत करती हुई इसके ऊपर प्रतिष्ठित है। आंतरिक सत्ता का सर्वोच्च केन्द्र सिर में है। जैसे अन्तरतम का केन्द्र हृदय में है। पर जो केन्द्र सीधे आत्मा की ओर खुलता है वह सिर के ऊपर है, शारीरिक सत्ता से बिल्कुल अलग, यह सूक्ष्म शरीर में प्रतिष्ठित है। इसके दो पक्ष हैं और इसीलिए इसके खुलने के परिणाम भी दो प्रकार के होते हैं। एक है निष्क्रिय, विराट शान्ति स्वतंत्रता और नीरवता के रूप में अनुभव गम्य यह कभी भी क्रियाओं और अनुभवों से प्रभावित नहीं होता यह अशांत उन्हें आधार प्रदान करता है पर कभी भी उन्हें उत्पन्न नहीं करता, यह हमेशा तटस्थ और उदासीन रहता है। दूसरा है सक्रिय, जो विश्वात्मा के रूप में अनुभूत होता है, यह वैश्विक क्रियाओं को केवल आधार ही नहीं प्रदान करता, बल्कि उन्हें संपादित और समुत्पन्न भी करता है। यह केवल हमारे शारीरिक आत्माओं को ही नहीं, बल्कि जो उनसे ऊपर और अलग है यह जगत और दूसरे तमाम जगतों भौतिक और अतिभौतिक तमाम स्तरों का नियमन करता है। हम अनुभव करते हैं कि आत्मा सबमें विद्यमान है पर साथ ही यह भी अनुभव करते हैं कि यह सर्वोपरि, अतिक्रांत करने वाली सभी वैयक्तिक जन्मों और वैश्विक सत्ताओं के ऊपर है। विश्वात्मा में प्रवेश करने के लिए जो एक में और सबमें विद्यमान है हमें अहं से मुक्त होना होगा। अहं या तो, एक चेतन यांत्रिक स्थिति मात्र बन जाता है या हमारी चेतना से,

निवारित हो जाता है। यही है अहं का लय या निर्वाण। विश्वात्मा में प्रवेश करने की क्रिया द्वारा हम वैयक्तिक कलापों तक का अतिक्रांत कर जाते हैं। यह क्रिया ही पूर्ण मुक्ति या पूर्ण सत्ता का लय अथवा निर्वाण कही जाती है।

"पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि उच्च सत्ता की ओर उद्घाटन केवल मुक्ति और निर्वाण या शांत स्थिति में ही परिसमाप्त नहीं होती। साधक केवल विराट शान्ति व्यापकता आदि को ही नहीं जो शिर के ऊपर अनुभूत होता है और पूरे भौतिक और अतिभौतिक को अपने में समेटे रहती है, बल्कि वह कुछ अन्य वस्तुओं की भी अनुभूतियाँ करता है। वह है सर्वोपरि शक्ति ज्योति परमज्ञान, विराट आनन्द जिसमें दिव्य उल्लास और प्रसन्नता छायी रहती है। आरम्भ में ये चीजें एक आवश्यक पर अनिश्चित, शाश्वत, केवलतत्त्व की तरह लगती हैं, इनमें से किसी में भी साधक निर्वाण ले सकता है। यानी जिस तत्त्व की ओर आकृष्ट हो उसी में अपनी सत्ता को विसर्जित कर सकता है। पर हम यह भी देखते हैं कि यह सत्ता परमशक्ति, परम ज्योति और आनन्दों का आनन्द लिये हुए है और इनमें से सभी शक्तियाँ हमारे भीतर अवतरित हो सकती हैं। लय न चाह कर इन्हें उतारने का प्रयत्न यहीं से शुरू होता है।

ये सभी केवल शान्ति ही नहीं नीचे उतारी जा सकती हैं। हालांकि सुरक्षा की दृष्टि से सबसे पहले अचंचलता और शान्ति को उतारना ज्यादा उचित है। क्योंकि यह बाकी के अवतरण को बहुत सुरक्षित बना देती है। वरना बाहरी भौतिक प्रकृति का इतने प्रभावपूर्ण शक्ति आनन्द और ज्योति को धारण करना असम्भव हो जायेगा। ये तमाम चीजें मिलकर वह होती है, जिसे हम उच्चतर अध्यात्म या दिव्यचेतना कहते हैं। यही है अतिमानसिक चेतना का पहला स्तर।

चैत्य केन्द्र का खुलना प्रधानतः हमें वैयक्तिक ईश्वर से जोड़ता है। यह दिव्यता को आंतरिक ढंग से सम्बद्ध करता है। यह मुख्यतया प्रेम और भक्ति का स्रोत है। शिर के ऊपर केन्द्र का खुलना हमें पूर्ण दिव्य से सीधे जोड़ता है और हमारे भीतर दिव्य चेतना को जन्म देता है जिसे नव जन्म या आध्यात्मिक जन्म कहा जा सकता है।

जब शान्ति खूब अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो जाती है तब यह उच्चतर या दिव्य शक्ति अवतरित होकर हमारे भीतर क्रियाशील हो जाती है। यह प्राय सर्वप्रथम सिर में उतरती है और आंतरिक मस्तिष्क के केन्द्रों को खोल देती है। पुन इसका अवतरण हृदय केन्द्र में होता है और यह संवेगात्मक सत्ता को पूर्णतः मुक्त करती है पुन यह नाभिचक्र में उतरती है और आंतरिक प्राणिक सत्ता को मुक्त करती है, पुन यह मूलाधार चक्र में उतर कर शारीरिक आन्तर सत्ता को स्वतन्त्र करती है। स्वतन्त्रता या मुक्ति का अर्थ परिशोधन है। वह इन स्तरों को बारी-बारी से निर्बन्ध और परिष्कृत बनाने का काय करती है। वह पूरी मानव प्रकृति को खण्ड खण्ड कर उसमें परिवर्तन लाती है। जिस कमी का पूरा करना है, पूरा करती है, जिस चीज को निका

ल्ना ह निकाल्ती ह । जो गढना है गढती ह । यह सयुक्त करती ह समन्वित करती ह और पूरी प्रकृति का एक छन्द प्रदान करतो ह । वह उच्चतर चेतना को अवतरित करके यह सब काय करती ह जब तक कि अनिमानसिक चैतन्य का अवतरण सभव नही हाना । यह सारा कुछ तयार किया जाता ह तत्पर बनाया जाता ह उस चत्यपुरुष के द्वारा जो हृदय देश में सक्रिय होता ह । जितना ही अधिक खुला हुआ ऊपरी जावनस्तर पर आकर यह चैत्यपुरुष सक्रिय होना है उतनी ही शीघ्रतापूण सुरक्षित और आसान शक्ति की प्रक्रिया हो जाती है । जितना ज्यादा प्रेम और भक्ति से हृदय भरता ह, जितना अधिक समपण होता है उतनी ही पूण साधना का विकास हा पाता ह । क्योंकि अवतरण और रूपान्तर का अथ ही ह दिव्य चेतना से अधिक स अधिक सम्पक एव सायुज्यता ।

य ी साधना का मौलिक विचार तत्त्व है । इसस यह स्पष्ट हा जाता ह कि इस साधना में हृदय चक्र और सिर के ऊपर के मानसिक चक्रा का खुलना अत्यन्त आवश्यक ह क्योंकि हृदय चत्य पुरुष के लिए खुल्ता ह और मानसिक चक्र उच्चतर चेतना के लिए । और कहना न हागा कि चैत्यपुरुष और उच्चतर चेतना का यह परस्पर सहयोग सिद्धि के लिए आवश्यक है । पहला उन्घाटन या खुलना हृदय में एकाग्र ध्यान से सभव हाता ह एक अभीप्सा द्वारा जा ईश्वर स प्राथना करती ह कि यहाँ अवतरित हा और चैत्य पुरुष के माध्यम से पूरी प्रकृति को निर्दिष्ट दिशा में ले चलें । प्राथना, आकाक्षा भक्ति प्रेम, समपण आदि इस प्रथम चरण को साधना के मुख्य सहायक तत्त्व ह । इसके साथ हा साथ उस सब कुछ का जो इस साधना म बाधक हैं, अस्वीकृत करना भी चलता रहना चाहिए । दूसरा उदघाटन या खुलना मस्तिष्क में (भ्रूमध्य) ध्यान की एकाग्रता से सभव ह जो बाद में सिर के ऊपर ध्यान में (सूक्ष्म कारण शरीरस्थ सहस्रार चक्र में) बदल जाता ह । यहा भी वैसी आकाक्षा और अभीप्सा चाहिए एक इच्छाशक्ति ताकि दिव्य चेतना की शान्ति शक्ति ज्योति ज्ञान और आनन्द का सत्ता में अवतरण हो सके । इसमें पहले शान्ति उतरती ह अथवा शान्ति और शक्ति साथ-साथ । कुछ को ज्योति पहले मिलती ह कुछ को आनन्द, कुछ पर अचानक ज्ञान का निर्झर बरसने लगता ह । कुछ क अन्दर ऐसी 'ओपेनिंग' होती ह कि व जान जाय कि अनन्त शान्ति शक्ति आनन्द आदि का रूप कसा ह । इस स्थिति में वे या ता प्रयत्न करके वहाँ तक आरोहण करते ह या चीजें निम्नप्रकृति में अपने आप अवतरित हाने लगती हैं । कुछ के साथ मस्तिष्क में अवतरण पहले हाता है फिर हृदय प्रदेश, नाभि प्रदेश और फिर समूचे शरीर में वह सचरित होता ह । कुछ में अनिवचनीय ढग की ऐसी 'ओपेनिंग' होती ह जिसमें अवतरण का कोई रूप नहीं दीखता, न शान्ति न ज्योति, न व्यापकता न शक्ति । कुछ में अचानक वश्विक चेतना में सीधे समस्तराय ओपनिंग' होती ह या सहसा व्यापक मन में प्रवश हो जाता है कि ज्ञान का सर्वत्र

ह। मुझसे यह कहा गया है कि आज सायंकाल में राधा की इस चेतना पर अर्थात् जिस ढंग से एक वैयक्तिक आत्मा भगवान् की पुकार का उत्तर देती है, कुछ कहूँ। यह एक मात्र भागवत उपस्थिति के साथ तादात्म्य करके उसके प्रति अपना पूर्ण समर्पण करके समस्त वस्तुओं में आनन्द खोजने की योग्यता है।[1] 'श्री अरविन्द ने इसी तत्व की ओर लक्ष्य करके कहा था, 'यह प्रेम और स्पृहा अंत में रूप तथा रूपातीत को एक कर देती है। आत्मा तथा जड़ का अभिन्न कर देती है। इसी एकत्व का प्रेमगत भावना यहाँ अज्ञान के अंधकार में खोज रही है और इसी का वह तब प्राप्त भी कर लेती है वह वैयक्तिक मानवीय प्रेम स्थूल जगत में प्रकट हुए अंतर्यामी भगवान् के प्रेम में परिवर्तित हो जाता है।[2]"

कर्म के द्वारा हम सकल सृष्टि में व्याप्त नारायण की अपने ढंग से सेवा करते हैं। कर्म का रहस्य बड़ा गहन है। क्या कुकर्म है क्या सुकर्म। क्या कठिन है क्या सरल क्या उच्च है क्या नीच। ये सारी चीजें भ्रम हैं। क्योंकि कर्म कर्म है यदि ठीक से दृष्टि से किया जाय। विश्व में केवल सुन्दर ही नहीं है, केवल सर्जन ही नहीं है वहाँ भयानकता और ध्वंस भी है। श्री अरविन्द कहते हैं कि, यदि तुम काली की उपासना नहीं करते तो कृष्ण को नहीं पा सकते। 'कौन है ऐसा जो काली की ज्वालामयी भयंकर उपस्थिति को झेल सके। केवल वह जिसे कृष्ण ने पूर्णतः अंगीकृत कर लिया है।"[3] काली और कृष्ण का यह समन्वय ही कर्म का रहस्य है। भयमुक्ति योग-साधना की बहुत जरूरी शर्त है। एक बार श्री अरविन्द से पूछा गया कि भय से मुक्ति कैसे मिल सकती है तो उन्होंने कहा, "मेरा उदाहरण तो यह है कि जब भी मुझे भय लगा मैं अदबदा कर वही काम करता जिससे भय लगता, मृत्यु तक के खतरे का उठाते हुए और अचानक देखा कि मैं भयमुक्त हूँ।[4] भयमुक्त वही हो सकता है जो अनन्य रूप से अपने अहं का छोड़कर कार्य करे। श्री अरविन्द ने बारबार कहा है कि अहं कर्म को पतित करता है। 'कर्म योग का पहला चरण (किसी भी योग का) है धीरे धीरे अहं को कम करना और अंततः उसका समूलोत्पाटन। इस अहं को कर्म के केन्द्रीय बिन्दु से हटाना ही होगा।'[5]

श्री अरविन्द ऐसे उत्तर योगी थे जो बनी बनाई परिभाषाओं का स्वीकार कर लेने को तैयार नहीं थे। वे इसीलिए निरन्तर विकसनशील दिव्य चेतना के पूर्ण योग की बात करते हैं ताकि यह दुनिया बदल सके। वे कहते हैं कि 'गुरु रूपी ईश्वर की

१ श्री माँ, प्रश्न और उत्तर भाग ३ पृ० १।
२ योग समन्वय पृ० ६।
३ थाट्स एंड एफारिज्म्स पृ० ३८।
४ टाक्स विद श्री अरविन्द प्रथम भाग पृ० ५५।
५ लेटर्स आन योग सेण्टेनेरी वाल्यूम पृ० ६७३।

शिष्यता पितारूपी ईश्वर का पुत्रत्व, मातारूपी ईश्वर का वात्सल्य, ईश्वरीय सखा के हाथों में हाथ डाले रहने की प्रसन्नता, अपने कैशोर मित्र के साथ खेलकूद और हँसी खुशी ईश्वर की प्रसन्नता भरी सेवा अपनी दिव्य प्रेमिका का प्रेम ये सात मानवीय शरीर के सौंदर्य हैं। क्या तुम इन्हें एक में मिलाकर सतरंगी इन्द्रधनुष नहीं बना सकते? तभी तुम्हें स्वर्ग की जरूरत नहीं होगी तभी तुम अद्वैतवादी की मुक्ति को अतिक्रान्त कर पाओगे।"[1] पहला सौंदर्य भारतीय साधना का है जिसमें गुरु को ईश्वर माना गया, दूसरा ईसाई धर्म का है जहाँ पैगम्बर ईश्वर का पुत्र था तीसरी शक्ति साधना है जहाँ ईश्वर दुर्गा है चौथी वैष्णव सख्य भक्ति है जहाँ ईश्वर सखा है, पाँचवीं लीलावादी प्रेम है जहाँ ईश्वर प्रेमास्पद है छठी दास्यभक्ति है जहाँ ईश्वर स्वामी है सातवीं सूफी साधना है जहाँ ईश्वर प्रेमिका है यह गौडीय सहजिया सम्प्रदाय की रानी और राधा भी है। श्री अरविन्द कहते हैं कि ईश्वर सब है इन सातों रंगों का इन्द्रधनुष है और इसी इन्द्रधनुषी छाया में सच्ची आध्यात्मिकता विकसित होती है। इसीलिए अरविन्द योग की ओर ऐसे निर्बल को नहीं आना चाहिए जो इन सातों में से किसी भी एक के अतिरेक को ही पूर्णता मानता हो या उसी के द्वारा अपना सन्तुलन खो बैठा हो। वे पृथ्वी पर अपने पूर्ण योग द्वारा एक ऐसा स्वर्ग लाना चाहते हैं जहाँ सारी मानव जाति ऐसे लड़के और लड़कियों में बदल जायेगी, "जहाँ ईश्वर कृष्ण और काली के रूप में उपस्थित होगा। सर्वाधिक प्रसन्न युवक और सर्वशक्तिमान लड़की के रूप में। दोनों के साथ-साथ नन्दन वन में खेलेंगे। अदन का बगीचा भी बुरा नहीं था, पर आदम और हौवा काफी बड़े हो गये थे (परिपक्व) उनका ईश्वर बुड्ढा हो गया था ऐसा सख्त और गंभीर कि उसने सर्प का उपहार देने से अपने को रोका नहीं।"[2]

प्रकाश का पथ और अंधकार पर विजय

यह संक्षेप में श्री अरविन्द का योग समन्वय है। पूरे जीवन को योग में बदलने की प्रक्रिया है। पर इसी के साथ साथ मैं इतना और कह देना चाहता हूँ कि यह कोई बच्चों का खेल नहीं है। इस रास्ते में खन्दकें, खाइयाँ हैं। परेशानियाँ हैं। स्वयं श्री अरविन्द को भी इनका मुकाबला करना पड़ा था।

'मानव व्यापार बहुत कठिन समस्या है। मेरा अपना अनुभव ही लो। मुझे नीरवता और शान्ति, और निर्वाण के अनुभव हुए, जिन्होंने फिर कभी मुझे छोड़ा नहीं पर इन शान्ति और समता को अपने अस्तित्व के प्रत्येक हिस्से में स्थापित करने के लिए मुझे लगातार प्रयत्न करना पड़ा। तुम जानते हो समता क्या है। समता वह भाव है जिसे कोई भी वस्तु किसी स्थिति में आन्दोलित न कर सके। पिछले अगस्त तक मैं

१ थाट्स ऐन्ड ग्लारिम्स पृ० ७८-७९।

२ वही पृ० ७९।

सफल रहा। यह दुघटना शायद मेरे समता भाव को परीक्षित करने की अंतिम घटना है। इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को धीरे धीरे काम करते चलना होगा, जब तक वह अवचेतन में पड़े इसके बीज को उखाड़ न फेंके।"[१]

हालांकि उन्होंने अपनी चालीस वर्ष की साधना में निरंतर यह प्रयत्न किया कि यह रास्ता बाद के यात्रियों के लिए सूर्याभिमुख-ज्योतिपथ (Sunlit Path) बन जाए। उन्होंने अनेकानेक पत्रों में वार्ताओं में साधकों से कहा कि जितनी कठिनाई मैंने और श्रीमाँ को उठानी पड़ी है वह अब दूसरों को उठानी नहीं पड़ेगी।

उन्होंने बड़े आश्वासन के साथ कहा—"सच पूछो तो भविष्य में दूसरों के लिए सुगमता का मार्ग निश्चित करने के लिए ही हमने यह भार ढोया है। इसी उद्देश्य से श्रीमाँ ने एक बार भगवान से प्रार्थना की थी कि इस पथ के लिए जो भी कठिनाइयाँ विपत्तियाँ दु:खकष्ट आवश्यक हों वे दूसरों के बजाय मुझ पर ही लाद दिये जायँ। यह अभीष्ट उन्हें वर्षों के दैनिक तथा भीषण संघर्षों के परिणामस्वरूप इस हद तक प्रदान किया गया है कि जो लोग उनपर पूर्ण और सच्चा भरोसा रखते हैं, वे ज्योतिर्मय मार्ग में चलने में समर्थ होते हैं।[२]'

उन्होंने नाना साधकों को यह आश्वासन दिया कि यदि तुम धैर्यपूर्वक और स्वभाव में बिना किसी मौलिक दुष्टता के प्रयत्नशील रहोगे तो नीला चाँद निश्चय ही तुम्हारे आकाश में खिलेगा। 'मैं विश्वास करता हूँ कि एक नीला चन्द्रमा हरेक के आकाश में खिलेगा।'[३] परन्तु श्री अरविन्द बहुत स्पष्ट कहना चाहते हैं कि यदि तुम्हारे भीतर से अहंकार दूर नहीं हुआ तो तुम्हें कोई भी मुश्किल से बचा नहीं सकता। यह अहंकार उनकी साधना में सबसे बड़े शैतान के रूप में माना गया है। सभी बुराइयों की जड़ और दुरन्त। इसे धैर्यपूर्वक हटाने का भी उन्होंने रास्ता बताया है।

"अहंभाव का पूर्ण निराकरण आसान चीज नहीं है। जब तुम सोचते हो कि यह पूर्णत: नष्ट हो चुका है तो भी यह अचानक तुम्हारे व्यवहारों और क्रिया-कलापों में उपस्थित हो जाता है। सबसे ज्यादा जरूरी है मानसिक और प्राणिक अहंभाव का निराकरण। दूसरे, शारीरिक और अवचेतन निहित अहं का कोई खास महत्त्व नहीं है। वे अवकाश पाकर ठीक किये जा सकते हैं।"[४]

श्री अरविन्द और तंत्र

नलिनीकान्त गुप्त ने अपने 'रमिनिसेंसेज' में एक स्थान पर लिखा है कि—

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० १८४-८५।
२ श्री अरविन्द अपने तथा श्रीमाताजी के विषय में पृ० २१८।
३ कॉरेस्पांडेंस विद श्री अरविन्दो पृ० २३३।
४ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० १७१।

"उन्होंने कुछ वर्ष पीठ स्थापना में लगाए। जैसे तान्त्रिकों का पचमुंडी आसन होता है, रामकृष्ण को पचवटी थी, पाच बरगद के पेड।"[1] लेखक ने पच सख्या पर काफी विस्तार से विचार किया है। उनकी सूचना के लिए निवेदन है कि पचमुंडी ही नहीं एकमुंडी से लेकर नवमुंडी आसन तक की चर्चा चलती है। काशी में विशुद्धानन्द का स्थापित नवमुंडी सिद्धासन प्रसिद्ध है।[2] इन चर्चाओं से पाठकों के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या श्री अरविन्द के योग में तन्त्र का भी स्थान है या नहीं। श्री अरविन्द ने 'सिंथिसिस आफ योग' में तन्त्र पर विचार करते हुए लिखा है— 'भारत में एक विलक्षण समन्वयमूलक योग पद्धति अभी भी जीवित है जो प्रकृति को केन्द्र बनाकर चलती है और उसकी शक्ति को अपना आधार मानती है। यह एक अलग समन्वयमूलक पद्धति तो है, विभिन्न योग सम्प्रदायों का इसमें समन्वय नहीं पाया जाता। यह तन्त्र है। कुछ खास तरह के विकारों के कारण यह पद्धति काफी बदनाम भी हुई है। यह बदनामी मूलत वाम मार्ग के कारण हुई जो गुण और अवगुण के द्वन्द्व को अतिवाद तक ले जाकर ही सतुष्ट नहीं हुआ, बल्कि कर्मों की शुद्धता से उस अतिवाद को दूर करने के स्थान पर वह आत्मभोग का एक मार्ग मानकर अनवरुद्ध सामूहिक अनैतिकता को बढावा देता है। उन्होंने इस पद्धति की अच्छाइयाँ भी बतायी। वे मानते हैं कि तान्त्रिक योगी प्रकृति से पलायन के स्थान पर उसकी बाधाओं से जूझता है और कठिनाइयों पर विजय पाने का प्रयत्न करता है। वह अपनी इच्छा शक्ति के द्वारा अनुशासन के रास्ते पूर्णता, मुक्ति सौन्दर्य आदि की उपलब्धि कर सका, पर बाद में तन्त्र अपनी मशीनी पद्धति में फार्मूला बद्ध होकर अपने मूल सिद्धान्तों को खो बैठा, जो सही ढग से इस्तेमाल किये जाने पर शक्ति देते हैं और गलत ढग से प्रयुक्त होने पर अपने शुद्ध उद्देश्य से च्युत हो जाते हैं।[3]

श्री अरविन्द तन्त्र मार्ग के अनुयायी नहीं थे किन्तु उनके योग में तन्त्र का एकदम अलग रखा गया, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। सत्य तो यह है कि कोई भी योग व्यावहारिक स्तर पर तन्त्र के बिना निष्क्रिय हो जाता है। अध्यात्म की व्यावहारिक शक्ति तन्त्र के शुद्ध रूप द्वारा ही प्रकट हो सकती है। श्री अरविन्द ने स्वय लिखा— "कृष्णप्रेम* को इस बात का सही ज्ञान है कि योग में किस प्रकार मनोवैज्ञानिक और तान्त्रिक शक्तियों की क्रिया होती है। जो कुछ उन्होंने कहा है मेरे अनुभवों से मेल खाता है।"[4] वे आवश्यक सहायक तत्त्व के रूप में तन्त्र को स्वीकार करते हैं। तन्त्र

१ रेमिनिसेंसेज गुप्त अमृता पृ० ४८।
२ तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि पटना १९६३ पृ० २६१ २७१।
३ सिंथिसिस आफ योग पृ० ३५ ३६।
४ श्री अरविन्दो केम द्र मी पृ० २३०।
*कृष्णप्रेम का दीक्षापूर्व नाम रोनाल्ड निक्सन था। उन्होंने कैम्ब्रिज में शिक्षा पायी। भारतीय

सूक्ष्म तत्त्वों को पकड़ने का तरीका है। जैसा कि मैंने पहले में लिखा है— तंत्र वह विधान है जो छिपे हुए अभौतिक तत्त्वों के बारे में बताता है।[1] ऐसी हालत में यह कहना कि श्री अरविन्द श्री मां को इस पद्धति से अपरिचित थे उचित नहीं होगा। इतना सत्य है कि श्री मां ने जो आध्यात्मिक शक्ति के व्यावहारिक प्रयोग में ज्यादा सिद्धहस्त थीं यह उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया और दीक्षा तथा साधना आदि के कार्य उनके निर्देशन में चलने लगे और इससे कौन इन्कार करेगा कि तांत्रिक विद्या में श्री मां की गति अप्रतिहत है। इसी लिए श्री अरविन्द ने साधकों से हर प्रकार की कठिनाई में श्री मां से सहायता लेने और उनके द्वारा संचालित होने का आदेश दिया। सुप्रसिद्ध तांत्रिक साधक श्री कपालि शास्त्री ने लिखा है कि 'श्री अरविन्दीय योग में वेदान्त और तन्त्र का बहुत ही सुन्दर समन्वय हुआ है यह मिश्रण की बात नहीं है बल्कि परम सत्य की प्रतीति और अनुभव की दार्शनिक अभिव्यक्ति है। श्री अरविन्द के अतिमानसिक योग की साधना हर चरण पर श्रीमां की क्रिया से ही सम्पन्न होती है।[2] श्री कपालिशास्त्री ने बड़े विस्तार से श्रीमां की क्रियाओं का उद्घाटन किया है।

इन सभी चीजों के बावजूद मानवीय प्रकृति अपना कार्य करती ही है। उदासी, मायूसी, ऊब, रुकावट यात्रा की थकान, बीमारियाँ घबड़ाहट भय विरोधी शक्तियों के हमले आदि नाना प्रकार की बाधायें आती ही रहती हैं। पर लोग उनसे प्रश्न पूछते थे और उन्होंने उनका स्पष्टीकरण और समाधान प्रस्तुत किया।

भीतर का संकल्पशक्ति और ईश्वरीय अनुग्रह ये दो ही सिर्फ इस योग मार्ग के कवच और कीलक हैं। बिना इनकी सहायता के यह यात्रा सुगम नहीं। इस विषय पर गम्भीरता से सोचने पर मालूम होगा कि योग मूलतः एक मनोवैज्ञानिक अनुशासन है। पश्चिमी मनोविज्ञान अपूर्ण इसीलिए है कि वह आंतरिक यात्रा की पद्धति जानता ही नहीं जिसे भारतीय योगियों ने शताब्दियों की साधना से अन्वेषित किया था। श्री अरविन्द ने कहा था "मनोविज्ञान के लिए दो चीजें निहायत जरूरी हैं। अन्तर यात्रा और वहां के तत्त्वों की सही पहचान, यह बिना योगाभ्यास के संभव नहीं है।[3]

अध्यात्म से प्रभावित होने के कारण भारत आये और लखनऊ विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे। कुछ समय तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी काम करते रहे। बाद में उन्होंने सुप्रसिद्ध कृष्णभक्त योगिनी यशोदा मां से दीक्षा ली। अल्मोड़ा में एक निर्धन वैष्णव के रूप में योगाभ्यास किया। श्री अरविन्द को दिलीपकुमार राय रोनाल्ड से प्राप्त पत्रों को प्रायः दिखाया करते। श्री अरविन्द ने कृष्णप्रेम के बारे में लिखा था— 'उसके पत्रों को पढ़ने से लगता है जैसे सत्य के स्रोत से सीधी धारा प्रवाहित होती चली आ रही है जिसका मिलना साधारणतया दुर्लभ है।"—महापुरुषों के साथ पृ० २५५।

१ द मदर आफ लव प्र० भा० पृ० ११०।

२ कपालि शास्त्री श्री अरविन्दो, लाइट्स ऑन टीचिंग पृ० ३६।

३ इवनिंग टाक्स तृतीय भाग पृ० ९४।

यात्रा चाहे जसी कठिन हो पश्चिमी मनोविज्ञान उस पथ को देख सका हो या न देख सका हो यात्रा का आवाहन इतना प्रभावपूर्ण है कि मनुष्य अपने को इधर जाने से रोक नही पायेगा। "यदि मानवजाति को उसकी एक झलक भी मिल जाय कि कितना असीम आनन्द, कितनी पूर्ण शक्तियां सद्योत्पन्न ज्ञान के कितने अद्भुत भाण्डार, तथा हमारे अस्तित्व की कितनी बडी शान्ति, उन क्षेत्रों में दबी पड़ी हमारी प्रतीक्षा कर रही है, जिन्हें हमारे पाशविक विकास ने अभी तक हस्तगत भी नही किया तो उस खजाने को पाये बिना वे कभी भी अपने को रोक नही पायेंगे। पर रास्ता बहुत सकरा है दरवाजे कठिनाई से खुलते है भय आशंका और अविश्वास वहां खडे है, प्रकृति के पहरवे जो हमारे पैरों को उस रास्ते की ओर जाने से रोकते है ताकि हम हमेशा अपने मामूली चरागाहों में ही फसे रहें"।[1]

श्री अरविन्द की योग साधना की निर्देशिका, संरक्षिका और साधिका स्वयं श्रीमा है। जो लोग इस मार्ग पर चलना चाहते है उन्हें श्री कपालिशास्त्री के इस अनुभूत सत्यमय श्लोक को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।[2]

वीक्षया दवते दीक्षा रक्षा सकल्पमात्रत
शक्तिर्मातु प्रसादेन शिक्षा वितरतेऽद्भुताम ॥

दृष्टि दीक्षा देती है, सकल्प मात्र से रक्षा होती है, तुम्हारी शक्ति जो श्रीमा की कृपा में निहित है आश्चर्य भरी शिक्षाएँ प्रदान करती है।

तीन चीजों की जरूरत

आप इन अपेक्षाओं को 'भवानी मंदिर' में पहले ही देख चुके हैं। असल में भवानी मंदिर कहीं बाहर नही सबके भीतर है। अपने भीतर की शक्ति को जगाने के लिए उन्ही तीन चीजों की जरूरत है जिसे श्री अरविन्द ने राष्ट्र में शक्ति जागरण का आधार बताया था।

१ शारीरिक वासनाओं से मुक्ति ताकि सारी क्षमता को उद्देश्य पर केन्द्रित कर सकें।

२ एकाग्रता—हमें अपने उद्देश्य की ओर इस तरह परिचालित होना चाहिये जैसे क्षिप्त कुन्त निशाने की ओर जाता है। ध्यान गडबड हुआ कि निशाना चूक जायेगा।

३ उपासना मृत होती है यदि वह कार्य में उतारी न जा सके।

वासनामुक्ति, एकाग्रता और उपासना से पूर्ण कर्म द्वारा जीवन का रूपान्तरण—यही भवानी मंदिर का संक्षिप्त सन्देश था। क्या यहा यह बताने की भी जरूरत होगी कि भवानी मंदिर पुस्तिका पांडिचेरी के योगिराज अरविन्द ने नहीं क्रान्तिकारी युवा पीढ़ी के गुरिल्लायुद्ध के सचालक अरविन्द ने लिखी। पर व्यक्तित्व की महिमा क्या यदि बीज में ही भविष्यत् पूर्ण वृक्ष का रूप न देखा जा सके।

१ थाट्स एड एफारिज्म पृ० ७३।

२ प्रेयर्स कपालिशास्त्री श्री अरविन्दाश्रम पृ० १५।

जिन्दगी का नमक

नवथा लवणेन सुवर्णं सन्दध्यात्

छान्दोग्योपनिषद्, ४।१७।७

नमक से ही सुवर्ण की समिद्धि होती है।

योगी और विनोदी शायद बहुतों का यह विरोधाभास लगे। आज की दुनिया में हास-परिहास अचानक कपूर की तरह उड़ गया है। जिधर देखिए भिंची हुई मुट्ठियाँ, तनी हुई नसें, आँखों के नीचे काले रंग और ललाट पर सलवटों का ढेर दिखाई पड़ेगा। शायद इस हुलिया का ही आधुनिक मनुष्य की पहचान मान लिया गया है। प्राचीन काल के हमारे पुरखे इस तरह के तनाव में नहीं जीते थे। आप कहेंगे कि इसीलिए तो पुराने और 'आउट आफ डेट' अर्थात इस समय के लिए बेकार हो गये हैं। वे बेकार या साकार किन्हीं और कारणों से हुए हैं क्योंकि आज का आधुनिक मनुष्य अपनी तनावपूर्ण स्थिति से छूटने और जीवन का संतुलन कायम रख सकने के लिए बहुत छटपटा रहा है। वह जानता है कि हास-परिहास आज के संत्रस्त जीवन के लिए पौष्टिक आसव है, पर उसे प्राप्त करने में वह प्रायः असफल हो रहा है। यह कहना तो उचित न होगा कि चूंकि 'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' की स्थिति का अभाव हो गया है, और व्यसन और कलह बचा है इसलिए युग मूढ़ता से आक्रांत है फिर भी यह मानने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए कि हास-परिहास और व्यंग्य विनोद के दारुण दारिद्र्य ने हमारे जीवन को काफी असन्तुलित बना रखा है। हम आधुनिक तनाव के कारण पागलपन के शिकार हो सकते हैं यदि इस हास परिहास का तत्त्व न हो। सर वाल्टर स्काट का यह कथन कितना सही है—'आह कैसा सुन्दर अलंकरण और कवच है यह हास विनोद का तत्त्व। कवि और लेखक के लिए तो वाग्वैदग्ध्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है यह। पागलपन से यह हमारी कितनी रक्षा करता है।"[१]

श्री अरविन्द इस अर्थ में सचमुच के उत्तरयोगी थे कि उन्होंने कृत्रिम मौन और नकली संन्यास की उपलब्धि आडम्बरपूर्ण गुरु गम्भीरता को नहीं, व्यंग्य विनोद और हास परिहास को जीवन का आवश्यक तत्त्व बताया। बहुत पहले सिसरो ने कहा था, 'हास परिहास और व्यंग्य विनोद बहुत आनन्ददायक चीज है और प्रायः अतिशय उपयोगी होता है।'[२]

१ इमसन द्वारा अपने 'मिसिलेनीज' में उद्धृत।

१ द ओरेतोर बुक २ परि० ५४।

उनका शिष्ट हास परिहास दूसरों को ठहाके लगाने के लिए विवश कर देता था, पर उनके मुख पर एक हल्की स्मिति ही उभर कर रह जाती थी। कारलाइल ने अपने एक निबन्ध में लिखा था कि 'यह ठहाका में उतना नहीं व्यक्त होता जितना मुस्कराहट में, क्योंकि यह अन्तर की बहुत गहराई में स्थित होता है।" इसी से मिलती जुलती बात हेमचन्द्राचार्य ने काव्यानुशासन में कही थी कि 'ज्येष्ठाना स्मित हसित" अर्थात श्रेष्ठ पुरुषों में यह मात्र स्मिति के रूप में उभरता है।

वस्तुतः व्यंग्य विनोद और हास-परिहास अपने शुद्ध रूप में केवल अतिशय सज्जन व्यक्ति के भीतर ही उभरता है। कारलाइल ने ठीक ही लिखा था कि 'हास-परिहास का मूल तत्त्व उच्चकोटि की ऐसी समझदारी में निहित है जो सृष्टि के प्रत्येक आकार वाले प्राणियों के प्रति उत्पन्न सहानुभूति की गरमाहट और मृदुता से भरी होती है, इसका मूल तत्त्व प्रेम है, नफरत का भाव नहीं।'[१]

मैनचेस्टर गार्जियन के सम्वाददाता और "न्यू स्पिरिट इन इण्डिया' के बहुचर्चित लेखक हेनरी डब्ल्यू० नैविन्सन ने श्री अरविन्द पर टिप्पणी की "अरविन्द घोष भारत के अत्यन्त खतरनाक व्यक्ति हैं जो कभी नहीं मुस्कराते।[२]" उसे इतना और जोड़ देना चाहिए था—"किन्तु जो सदा मजाक करते रहते हैं।'[३] श्री अरविन्द के गंभीर दार्शनिक और साधक व्यक्तित्व के ऊपरी आवरण से ही चकरा जाने वाले शायद ही जान पायें कि श्री अरविन्द हँसने और हँसाने की कला में नितान्त पटु ही नहीं थे, बल्कि यह उनके व्यक्तित्व का अभिन्न तत्त्व था। उनका विनोदी स्वभाव उनके व्यक्तित्व में एक अद्भुत चमक और जीवन्त आत्मीयता का भाव पैदा कर देता है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—विनोदी स्वभाव तो जीवन का नमक है। इसके बिना जगत अपने को बिल्कुल भी सतुलित नहीं रख सकता। ऐसे भी वह पहले से ही काफी असतुलित है, इसके बिना तो जाने कब का वह भस्म हो गया होता। ऐसा कोई नियम तो नहीं है कि बुद्धिमत्ता कठोर गंभीर तथा स्मिति शून्य वस्तु ही होनी चाहिए।[४] श्री अरविन्द बड़ी मासूमियत के साथ अपने साथ घटी स्थितियों का भी खुलकर मजा लेते थे।

'किसी कारण उस दिन मेरा भोजन गायब था और एक आदमी मेरे पड़ोसी मराठा प्रोफेसर के यहाँ से खाना ले आया। मैंने एक कौर मुँह में डाला, बस एक ही—राम रे, यदि मुँह में आग लग जाती तो भी उससे अधिक आश्चर्य न होता। सम्पूर्ण

१ पसेज, रिचर।
२ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० १४७।
३ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माताजी के विषय में पृ० १८४।
४ श्री अरविन्द के पत्र पृ० १३५।

स्पन्दन को एक ही प्रहार की प्रचण्ड दुर्दमनीय चोट से भूमिसात् कर देने के लिए पर्याप्त था वह प्रश्न।'[१] जीवन के आरम्भिक वर्षों में अंग्रेजी सत्ता से निरन्तर लोहा लेने वाले क्रान्तिकारी को ही यह मजाक सूझ सकता था। लंदन के मित्रों से उड़ाए गए व्यंग्य में अद्भुत तिक्तता है। जब वे बड़ौदा में कालेज के वाइस प्रिंसिपल थे राजकुमार की शादी हुई। बड़े-बड़े लोग जुटे थे। गुरु गंभीर वाइस प्रिंसिपल ने अभिमत राजकुमार को बधाई देते हुए कहा—"ईश्वर करें, ऐसे मौके बार-बार आएं।" अनेक लोग वाइस प्रिंसिपल की ओर घूरने लगे।[२]

सच्ची विनोद वृत्ति यह नहीं है कि आप दूसरों पर कितना और कितना हंसते हैं बल्कि दूसरों को अपने पर हंसने और मजाक करने का कितना अवसर देते हैं। इससे भी बड़ी बात है गुरु निर्ममता से अपने आपको ही अपने व्यंग्य का विषय बना लेने में आप कितने निःसंकोची हैं। श्री अरविन्द में ये दोनों ही विशेषताएं पर्याप्त मात्रा में थीं।

एक बार उनके एक शिष्य ने लिखा[३] 'एक बार की बात है गुरुदेव, कि एक बुद्धिमान योगी के निकट एक बेवकूफ गधा रहता था। एक दिन अचानक पास की नदी में बाढ़ आई और आस-पास का सारा क्षेत्र डूब गया। बुद्धिमान् योगी, क्योंकि वे बुद्धिमान थे, दौड़कर उस पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गये, जिसकी तलहटी की एक गुफा में रहकर वे ध्यान किया करते थे। किन्तु गधा—क्योंकि वह बेवकूफ था, हालांकि उस निर्घ्यानी नहीं वह सकने बाढ़ की चपेट में बहने लगा।

आह वह रेंका— दुनिया बही जा रही है।

'कैसी गधा सी बात करता है।' योगी ने कहा— 'अरे मूर्ख, सिर्फ तू बहा जा रहा है। यह विराट दुनिया कहां बही जा रही है भला।' 'लेकिन महाशय' गधे ने कहा—' यदि मैं ही बहा जा रहा हूँ तो मुझे विश्वास कैसे होगा कि दुनिया बची रहेगी?'

यह सुन कर योगी आश्चर्य से स्तब्ध रह गए और सोचने लगे कि कौन सा गभीर ज्ञान है, मानवीय या गर्दभीय?

मैं भी अब अपने गुरु पर आश्चर्य करने लगा हूँ इसलिए निवेदन है कि कृपया आप ही बतायें कि इनमें से किसकी अपेक्षाकृत अधिक दारुण स्थिति है? योगी की या गधे की? और चलते चलते इस पर भी कुछ कहें कि कहीं मेरा दिमाग पकड़ से बाहर तो नहीं हो रहा है क्योंकि मुझे बेवकूफ गधे के तर्क कराब कराब उतने ही बुद्धिपूर्ण

१ श्री अरविन्द अपने तथा श्री माता जी के विषय में पृ० १८४।
२ श्री अरविन्दो केम टु मी दिलीप कुमार राय प० १६२।
३ वही प० १६३ १६४।

लगते है जितने योगी थे।

श्री अरविन्द ने अपने प्रिय शिष्य को लिखा—"तुम्हारे बुद्धिमान, किन्तु अभिन्न गधे ने ऐसा सवाल किया है जिसका दो पंक्तियों में उत्तर देना कठिन है। फिर भी मुझे, इतने अधिक दुत्कारे गये जानवर की ओर से यह कहने दो कि वह बहुत व्यावहारिक और चतुर जानवर होता है और उसके प्रति मनुष्य की दुत्कारभरी मूर्खता का आरोप मानवीय मूर्खता को इस तरह प्रकट करता है। मनुष्य डंडे के जोर से गधे से जब वह नहीं करा पाता जो चाहता है तब वह उसे मूर्ख कहकर उत्पीडित करता है।

पर जानते हो गधा वैसा इसलिए करता है क्योंकि अव्वल तो वह विनोदी वृत्ति रखता है और दो पैर वाले जानवर को अपनी तथाकथित बुद्धि के तमाशे दिखाने के लिए उत्तेजित करता है क्योंकि उनमें उसे खूब मजा आता है। दूसरे वह देखता है कि मनुष्य उसे एक ऊबा देने वाली वाहियात चीज की अपेक्षा करता है, जिसे कोई भी स्वाभिमानी गधा स्वीकार नहीं कर सकता। यह भी ध्यान रखो कि गधा दार्शनिक था। और जब वह रेंक रेंक करता होता है तो जान लो कि वह सारे संसार के प्रति आम तौर से और मनुष्य की मूर्खता के प्रति खास तौर से घृणा का प्रदर्शन करता है। मुझे किंचित भी सन्देह नहीं है कि गधपीय भाषा में मनुष्य की वही महत्ता बखानी गई होगी जो उसके लिए हमारी भाषा में। ये गंभीर और मौलिक विचार चलते चलते सिर्फ इसलिए लिखे गये कि तुम जान सको कि बुद्धिमान मनुष्य और बुद्धिमान् गधे के बीच तुम्हारी सन्तुलन की कोशिश किसी खतरनाक स्थिति का लक्षण नहीं है।"

नौजवान शिष्य के पत्र में व्यंग्य और आक्रमण की एक तुर्शी है तो गुरु के उत्तर में एक ऐसी मर्यादित किन्तु तीखी मार कि दोनों का दंगल देखते ही बनता है। इस तरह के आक्रामक प्रश्न ही नहीं, लटके लतीफे और व्यंग्यात्मक तुक्केबाजियाँ भी पेश की जातीं। जब लाइफ डिवाइन पुस्तक छपी तब दारा ने एक व्यंग्य कविता लिखी—दिव्य जीवन किताब। मां की शराब।। छप गई गावें। आओ चिल्लावें।। पुराणी ने धीरे से अरविन्द से कहा—'दारा ने एक बड़ी अच्छी कविता लिखी है।" उन्हें बड़ी आशा थी कि श्री अरविन्द जो अपने शिष्यों की कूड़ा कविताओं को भी सुनने और सुधारने को हमेशा तैयार रहते थे, तुरन्त जिज्ञासा करेंगे और फिर उन्हें हँसाने का मौका मिलेगा। कौन सी कविता? दिव्य जीवन किताब मां की शराब वाली?' निशाना असफल रहा सोच कर पुराणी चुप हो गये।[1] श्री अरविन्द को अपने ऊपर किये जानेवाले व्यंग्यों की योजनाओं तक की पूरी वाकफियत रहती थी।

उन दिनों आश्रम में भी श्री अरविन्द का 'अतिमानस' किसी को समझ में नहीं आता था। लाख सर पटकने पर भी जो चीज अबूझ रहती है वह सहज ही व्यंग्य का विषय बन जाती है। इस अतिमानस को लेकर बड़ी मजेदार वार्ताएं और चिट्ठियां

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो द्वितीय भाग पृ० ७।

गुरु और शिष्या के बीच चलती रही। इन पत्रों में अतिमानस की जसी रहस्यवादी आलोचना है वह किसी भी बुजुर्ग को जिसने अपनी जिन्दगी को दांव पर लगाकर उस चीज की उपलब्धि की थी तिलमिलाने के लिए बाध्य कर सकती है पर श्री अरविन्द बड़े विनोद पूर्ण ढंग से इन हमलों का सामना करते हैं और मौका लगते ही वे ऐसी उस्तादी लधी मारते हैं कि चेले आसमान ताकते रह जाते हैं।

उनके अति नजदीकी शिष्य नीरदवरण ने लिखा—"मैं बहुत दुखी हूँ पता नहीं क्यों? चिकित्सा की भाषा में कहूँ तो पूरे शरीर में कुछ अदृश्य कीटाणुओं का छुतहा प्रभाव बढ़ रहा है जो धीरे धीरे दुःख का जहर (टाक्सिन) फैलाता जा रहा है। अतिमानस काफी दूर है और आपकी हिमालय धर्मी गंभीरता और मान्यता देखकर मेरी सांस टंग जाती है और दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं।' जाहिर है कि यह पत्र अतिमानसिक वातावरण और आबोहवा पर व्यंग्य लिये हुए लिखा गया। श्री अरविन्द ने इसका उत्तर देते हुए लिखा— होश में आओ और अपने भीतर एक निरादियन मस्ती पैदा करो (कोई जरूरी नहीं की वह मार्क टेपलियन हो, बस भी वह किसी से ज्यादा अच्छी ही है, ऐसी बात नहीं) हँसो और मोटे हो जाओ फिर नाचो ताकि चर्बी थोड़ी कम हो जाय। मैं गंभीर और मान्य हूँ, निराशाजनक और सख्त हूँ—यह सब वाहियात है। मैं ऐसा कभी नहीं था। मैं जब यह सब सुनता हूँ तो अनरविन्दीय निराशा से कराह उठता हूँ। तुम लोगों का मामूली होश हवास कहाँ गुम हो गया— इस अतिमानस को पाने के लिए कम से कम इस उपयोगी चीज मामूली होश हवास को गुम कर देना तो जरूरी नहीं है। मामूली होश हवास दुरुस्त का मतलब तक नहीं है (जो मामूली होश हवास दुरुस्त जसी चीज से कतई मेल नहीं खाता) यह सिर्फ चीजों के प्रति बिना किसी अतिमूल्यन-अवमूल्यन के जसी वे हैं, जागरूक रहना है। यह निराधार कल्पनाओं की कल्पना नहीं है और न तो बिलावजह 'नहीं जानता क्यूं वाली शैली में उदास होने रहना है।'[1]

कितनी उदारता वत्सलता और प्रोत्साहन से भरा है उत्तर। इन शिष्याओं के हमलों को कभी हंसी में कभी उनमें भी तेज व्यंग्य के साथ, पर अक्सर वात्सल्य और स्नेह से उन्हीं का ओर ठेल देना उनके व्यक्तित्व का लक्षण था।

शिष्यों के द्वारा अपनी साधना के अपूर्व उच्च स्तरों पर व्यंग्य किये जाने पर भी, वे हो थे जो यह कह सकते थे— 'आह कैसे सुनसार, किस्मतदार, जालानुनवर अज्ञान में सुखकर ढंग से रहने वाले हो तुम लोग। तुम शान्ति, चेतना अधिमानस, अतिमानस आदि का यों बातें करते हो, मानों ये बिजली के बटन हैं कि दबाया नहीं कि बस चारों ओर प्रकाश।'[2]

१ कारेस्पांडेंस विद श्री अरविन्द पृ० २१७।
२ वही पृ० २८९।

कभी इस बात पर बहस छिडती ह कि क्या गजेपन की भी कोई दवा ह। सभी ये स्वीकार करते हैं कि जितनी दवाए विज्ञप्त होती ह प्राय प्रभावहीन ह। उनका विज्ञापन झठा होता ह तब तक एक शिष्य टुमक्ते ह—'हा सकता ह जब आपका अतिमानस उतर आये तो गजापन दूर करना आसान हो जायगा।'[1] बात अतिमानस के अवतरण के योग्य शरीर निर्माण के विषय में चल रही थी। श्री अरविन्द ने कहा कि मैं नही समझता कि शारीरिक प्रक्रियाए बदल जायेंगी हा उनमें रूपान्तरण जरूर होगा। अन्यथा मनुष्य का यह बुद्ध शरीर अतिमानसिक शक्ति को सभालने म असफल होगा। तभी शिष्य बोल पडा—"हा साहब, शरीर को अवसर कब्ज की शिकायत हो जाया करती ह।[2]

अतिमानस के बारे में एक ऐसी ही चर्चा दिलीपकुमार राय के साथ वार्तालाप में भी आई है। दिलीपकुमार राय ने पूछा 'क्या यह अतिमानस हम मानवा के लिए भी नीचे आयेगा' ? श्री अरविन्द बोले— नीचे ता आएगा, पर जब वह उनका मनपसन्द काय नही करेगा तो बडे निराश होगे। इसी प्रसग में अतिमानस के बार में उनके बहुत प्रसिद्ध इस मजाक का भी जिक्र ह कि 'यह योरोपीय महाद्वीप में (उन दिनो यूरोप में दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था) युद्ध का दूसरा मोचा खोलने के शाश्वत वायदे के समान ही सदिग्ध ह, जिसपर कि रूसियो के सिवा सभी विश्वास करते थे।'[3] (रूसियो ने ही जा इसपर विश्वास नही करते थे या जो उसके बारे में अन्यथ घोषणाए नही करते थे दूसरा मोर्चा खोला और हिटलर को करारी शिकस्त दी।)

नीरदवरण का ही एक और उलाहना भरा पत्र देखिए जिसमें अपनी दीनता का इजहार भी ह पर कही से अतिमानस पर व्यग्य की तिताई कम नही हुई ह। गभीरता के लिए पत्नी विनोप का जिक्र आक्रमण को और भी तेवर द दता ह एक और सदेह मेरे मन में मडरा रहा ह। मुझे लगता और मैं अनुभव करता हूँ कि आजकल आपके पत्रा का स्वर अचानक बडा भारी, खुरदरा, सख्त और कर्कश हो गया है—बिल्कुल उल्लूनुमा गभीरता वाला जिसकी आपने धमकी दी थी। मैंने क्या कुछ ऐसा काम किया ह जा इस सजा के काबिल हूँ। या कही ऐसा ता नही कि आप प्रतिदिन जो अतिमानसिक होते जा रहे ह अत सब चीजो से अपने का अलग करने लगे हैं। कुछ न कुछ कारण तो होगा ही यदि मेरा अनुभव सही ह। खर यदि आप दो पाटों के बीच डालकर मुझे चूरन (नीरद डाक्टर ह) ही बनाना चाहते ह ता मैं उस पसन्द करूगा।

श्री अरविन्द ने लिखा— 'तुम्हारा इन्द्रियबोध अन्यथ की कल्पना में तुम्हें फँसा

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो पृ० २७७।
२ इविनिंग टाक्स फर्स्ट सीरिज पृ० १६८।
३ महापुरुषों के साथ पृ० २२।

रहा हूँ शायद इसीलिए कि इससे तुम्हारी कल्पनाशक्ति में विकास हो और तुम अबूझ तत्वों को ठीक से समझ सको। चूंकि तुम्हें रहस्यवादी कविता के क्षेत्र में काफी कुछ करना है इसलिए शायद यह जरूरी हो। वैसे भी तुम्हें चूरन बनने में एतराज क्या होना चाहिए? चूरन बन जाने पर वह दवा के लिए भी काफी मुफीद होगा। "नीरद चूर्ण २ ग्राम।' बहरहाल तुम राहत की सांस लो मैं अभी तक 'उलूकित' नहीं हुआ और मेरा अतिमानसीकरण भी इतनी मंथर गति से चल रहा है कि उससे भय की कोई बात नहीं। इसलिए प्रसन्न हो जाओ और अपने 'दुःखी इन्सान' को उसके पाटों के साथ शैतान को सौंप दो।"[1]

अतिमानस जैसे तत्व की व्याख्या कठिन है, यह सभी मानते थे, और चाहते थे कि श्री अरविन्द किसी न किसी प्रकार कुछ संकेत देने के लिए प्रेरित हों, बाध्य हों, पर जब वे कोई व्याख्या देने लगते तो भी शिष्यों का व्यंग्यात्मक स्वभाव बीच में ही छेड़छाड़ करने लगता और ऐसे मौकों पर पाठक एक विचित्र प्रकार की खीझ का अनुभव करें तो आश्चर्य नहीं। उदाहरण के लिए १५ अगस्त की शाम को प्रतिवर्ष यह पूछने पर कि उनकी साधना कहाँ तक बढ़ी, कहा करते थे—पिछले वर्ष की अपेक्षा यह वर्ष अच्छा था।" १५ अगस्त १९२५ की शाम शिष्यों के बहुत आग्रह पर उन्होंने अतिमानस के कुछ खास तत्वों की ओर संकेत करते हुए कहा— अतिमानसिक सत्ता में परस्पर विरोधी तत्वों का अद्भुत समन्वय होता है जैसे पूर्ण मौन और पूर्ण अभिव्यक्ति का—क्या तुम इस स्थिति को किसी एक शब्द में बांध सकते हो?' तभी एक शिष्य ने पूछा—"क्या अतिमानस की अपनी अलग भाषा होगी?" श्री अरविन्द ने कहा वहाँ भाषा की आवश्यकता ही नहीं होगी। शिष्य बोला— तब क्या हमें लगातार चुपचाप बैठे रहना होगा? श्री अरविन्द ने व्यंग्य में कहा—'तब तो यह बड़ी मुश्किल चीज ही होगी तुम्हारे लिए, क्यों?'[2]

जाहिर है कि श्री अरविन्द के ये शिष्य चुप रहने की मुश्किल का ढोना कतई नापसन्द करते थे। अतः उनके द्वारा अतिमानस पर किये गये व्यंग्यों और मजाकों में श्री अरविन्द यदि पाठकों को अपेक्षाकृत अधिक सहनशील लगें तो आश्चर्य नहीं क्योंकि वे अतिमानस के प्रश्न पर मानवीय अज्ञान से उत्पन्न व्यंग्य को पर्याप्त क्षम्य मानते थे। दूसरे स्थलों पर उनकी चोट तीख़ी ही प्रतीत होगी।

अन्य बार में स्वयं भी उनका स्वर काफी व्यंग्यात्मक और विनोदपूर्ण रहा करता था।

एक शिष्य ने उनकी सार्वभौमिकता की चर्चा करते हुए पूछा—'मैं विचारों को

१ कॉरेस्पॉन्डेन्स विद श्री अरविन्दो पृ० २१९।
२ ईवनिंग टॉक्स २सरा भाग पृ १०१।

अपने भीतर आने से रोक सकता हू । जैसा कि मैंने अभी अभी किया था ।" श्री अरविंद बोले—' इसे तो भई तुम्हीं ठीक से समझ सकते हो कि तुम रोक पाते हो या नही ।

'आप नही जान सकते ?' शिष्य ने भौंचक्का होकर पूछा—"हम तो आपको सार्वदेशिक मानते थे।'

श्री अरविन्द ने ठहाका लगाते हुए कहा— क्या तुम सचमुच ऐसी आशा करते हो ? क्या मुझसे तुम जानना चाहते हो कि पांडिचेरी के मछुवों ने अबतक कितनी मछलियां पकडी है और उनसे कितना पैसा कमाया है ? बम्बई के कुछ लोग पूछते है कि क्या इस साल रुई का भाव चढेगा ? अथवा रेस में यह घोडा जीतेगा या वह ? या क्या उनका खोया हुआ लडका मिल जायेगा या नही ? क्या तुमने रामकृष्ण की एक संन्यासी द्वारा अपनी तान्त्रिक शक्ति से नदी पार करने वाली कहानी तुमने सुनी है ।'[1] शिष्य ने पता नही वह कहानी सुनी थी या नही । पर हिन्दी क्षेत्र में ऐसी ही एक कहानी चलती है । एक शिष्य ने साधना करके सिद्धि पाई और अपने गुरु से मिलने चले । रास्ते में नदी पडी वे खडाऊं पहने लहरों को रौंदते इस पार आ गये । गुरु के आश्रम पर एक पेड में बहुत ऊंचे फले आम को उन्होंने हाथ को बांस की तरह लंबा करके सर्वोच्च टहनी से तोड लिया । वे बहुत खुश थे कि यह सब देख-सुनकर गुरुदेव उनकी सिद्धि से चमत्कृत हो जायेंगे । गुरुदेव कुटिया से निकले और अपना चिमटा उठाकर दनादन पीटते हुए बोले—"नदी पार करने की खेवाई कितनी होती है—एक दमडी, खटिक एक आम को तोडने की मजदूरी क्या पायेगा ? एक दमडी । और तूने बारह साल की साधना से ही दो दमडी की सिद्धि पाई है वही सबको दिखाता फिर रहा है । क्यों यही है तेरी साधना ?" ऐसी कहानियों से परिचित व्यक्ति भी श्री अरविन्द से ऐसे ही चमत्कारों की आशा करते है तो आश्चर्य होता है ।

अपने बारे में प्रचारित गलत धारणाओं को, चाहे वे ऊपर से उनकी प्रशंसा जैसी ही प्रतीत होती हों निरास करते वक्त भी वे व्यंग्य और विनोद का आस्वादन करने से नही चूकते थे । श्री प्रमोद सेन ने उनकी जीवनी लिखी जिसमें कहा गया कि वे हिब्रू जानते है । इस सम्बन्ध में पूछे जाने पर उन्होंने कहा—"इतना और क्यों नही कहा कि मैं अम्हेरी तथा दूसरी अफ्रीकी भाषायें भी जानता हूं ।' शिष्य ने कहा कि आपके चमत्कारों की बडी चर्चा है । श्री अरविन्द बोले— 'पर मोतीलाल मेहता की पुस्तक में जिस चमत्कार का वर्णन है वह तो बेजोड है । उसमें से एक ऐसा अद्भुत है जो मुझे कभी न भूलेगा । उसमें कहा गया है कि एक बार रयू सौं लुई में जहां मेरा आवास था अंग्रेजी सरकार ने मेरी गिरफ्तारी के लिए पुलिस भेजी । उस समय कहा गया है कि मैं सीढी के ऊपरी भाग में जहाँ वह खत्म होती थी खडा था । पुलिस वाले सीढ़िया

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ ४१४२ ।

चढने लगे और उसके बाद क्या देखते हैं कि चढते चढ़ते वही पहुँच गये जहाँ से चढ़ना शुरू किया था। कई बार कोशिश की, पर जब हर बार यही हुआ तो लाचार होकर वे लौट गए।[1]

इस प्रसग में श्री अरविन्द से उनके एक शिष्य ने कलकत्ते के एक श्रद्धालु मारवाडी की बात बतायी। वह चमत्कारों से काफी प्रभावित था। व्यापार के सिलसिले में पाडिचेरी जाने पर वह रयू द ला मारीन स्थित आवास पर श्री अरविन्द से मिलने गया और एक शिष्य से उसने कहा—"कहा हैं श्री अरविन्द ? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

आप उनसे नही मिल (you can not see him) सकते।' शिष्य ने कहा। मारवाडी ने कैन नाट सी का सीधा अर्थ लगाया कि 'दख नही सकते' और बड आश्चर्य से पूछा—"तो वे उडते हैं ? हैं न ? यह भारतीय सेठ की ही विशेषता हो ऐसा नही। भारतीय बौद्धिक भी योगियो से ऐसे ही सस्ते चमत्कारो की आशा करता है और घना आश्चर्य तो तब होता है जब अत्यन्त तकपटु बुद्धिवादिता ऐसे चमत्कारो के सामने घुटने टेक देती है। परिणाम यह होता है कि हम सूक्ष्म साधना और सस्ती चमत्कारिक बाह्य सिद्धि या इन्द्रजाल में कभी अन्तर ही नही कर पाते।

नीरद वरण ने श्री अरविन्द को १२ ३ ३४ के पत्र में लिखा— श्री माँ क्या है ? श्री अरविन्द कौन है ? और यह जनाब कौन है जिन्हें आप विश्व ब्रह्म कहा करते है।

मैं जानता हूँ कि आप अवतार हैं, पर कभी कभी यह अजब लगता है कि आपको सर्वोच्च सत्ता मान लिया जाए। निश्चय ही ऐसे प्रश्न और ऐसे तेवर श्री अरविन्द के शिष्य में ही दिखाई पड सकते हैं।

श्री अरविन्द ने उत्तर में लिखा—"मेरे सर्वोच्च सत्ता होने का तो सवाल ही नही उठता। फिर भी मैं समझ नही पाता कि क्यो मुझे ऐसा मानने (अवतार) में किसी प्रकार के आन्तरिक विरोध के अभाव के बावजूद तुम्हें यह सब अजब लगता है ? क्यो ? तुम खुद क्या सर्वोच्च (सुप्रीम) सत्ता नही हो ? नही हो क्या ?? सोऽहम तत्वमसि नीरद ! ईश्वर कौन बेटा। आमि इ ईश्वर (विवेकानन्द)। यहाँ 'आमि' का अर्थ वि० नहीं है बल्कि कोई भी अर्थात नीरद भी है भी, हाँ। अत मैं उस अजबता को जानना चाहता हूँ। जब सभी के बारे में कहा जा सकता है कि वह ईश्वर है तो सिर्फ मुझे ही ईश्वर कहे जाने से तुम इतना परेशान क्यो होते हो ?"[2]

नीरद वरण ने श्री अरविन्द को अवतार मान लिया इसलिए अगला व्यग्य अवतार की शक्ति पर अनिवार्यत करना था। उन्होंने बडी मासूमियत से लिखा—"मैं

१ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० २४।
२ कॉरेसपांडेंस विद श्री अरविन्दो पृ० २८।

समझता हूँ कि अवतारी पुरुष अच्छी तरह बनाई और खूब सुसज्जित रौल्स रायस मोटर गाडी की तरह होते हैं, यद्यपि उन्हें भी अपनी यात्रा में काफी कठिनाइयों का सामना करना पडता है, परन्तु अंततः वे, क्योंकि वे रौल्स रायस हैं विजय पा ही लेते हैं। जबकि शेष मानव या तो निचिल पजर छकडे की तरह होते हैं अथवा गाडी के डब्बे की तरह जिन्हें अवतार या बडे लोग खींच कर ले जाते हैं। अतिमानस की ऊँचाई पर रहने वाले आपने नजर अन्दाज कर दिया है कि निचले पठार पर पत्थरों बद्ध ढुलकते रोडों की क्या स्थिति होगी है ?'

शिष्य के इस गूढ व्यंग्य का, जिसमें एक तरफ तो अरविन्द को अवतारी पुरुष की महिमा दी जा रही थी, दूसरी ओर दुनिया का बिना चिन्ता किये कल्पना की ऊँचाइयों पर उडते रहने का आरोप था गुरु ने चिरपरिचित वात्सल्य भाव से ग्रहण किया। उन्होंने लिखा—"सबके सब अच्छी तरह बने और आरम्भ से ही सुसज्जित, "जस्ट रौल रायस एण्ड रिविल ग्रेट स्काट। ["भाई वाह ! कुछ तो सही बोलो चाहे जम भी हुआ] महान लोगों और अवतारों के लिए क्सी सजा तैने की है तुमने ? और कहाँ लिए जा रहे हैं उन्हें ? शायद उस बेहूद और निरर्थक स्वर्ग की ओर ? यदि निचिल पजर मशीनें दुरुस्त नहीं की जा सकती तो इन्हें लम्बर शेड के नीचे छोडकर बढ जाना ज्यादा आसान था। मैं अवतारों के बारे में नहीं जानता पर अपने बारे में जानता हूँ कि जब मैंने साधना शुरू की तो अपेक्षित क्षमताएँ मुझमें कतई नहीं थीं। मुझे योग द्वारा इन्हें विकसित करना पडा। भू-तत्व के विषय में मेरी ऐसी धारणा ही है जो इस सिद्ध करती है कि अवतार के जीवन और कर्म चमत्कार नहीं होते। अगर ऐसा होता तो उसका अस्तित्व निरर्थक और प्रकृति के निष्प्रयोजन और आकस्मिक सनक का प्रमाण बन जाता।'[१]

उपर्युक्त व्यंग्य में कहीं भी आत्मश्लाघा का हल्का-सा स्पर्श भी नहीं दिखेगा। यह श्री अरविन्द की अपनी खास विशेषता थी जो उन्हें सुख और दुख दोनों ही स्थितियों में निर्वैयक्तिक बनाये रहती थी।

एक बार श्री मा ने कहा था कि इस आश्रम में पूर्ण निरभिमानी सिर्फ एक ही व्यक्ति है तो लोगों ने स्वाभाविक जिज्ञासा से उसका नाम जानना चाहा। श्री मा ने कहा था—"वे व्यक्ति हैं श्री अरविन्द। उनके निरभिमानी व्यक्तित्व की एक खास विशेषता यह थी कि वे सहज ढंग से अपने ऊपर आरोपित प्रशंसा और स्तुतियों को भी एक तरफ अलगा देते थे। श्री दिलीप कुमार ने लिखा—' गुरुदेव श्री असयत ने जो आपके प्रशंसक हैं, एक बंगाली कविता भेजी है और आग्रह किया है कि मैं उसे आपके सामने गाकर प्रस्तुत कर दूँ। मैं नहीं जानता आप पर इसकी प्रतिक्रिया क्या

१. कॉरेस्पान्डेंस विद श्री अरविन्दो प० ४९, ५०।

होगी—क्योंकि उन्होंने ऋषि परम्परा की समाप्ति की घोषणा की है और आपको उसकी अंतिम इकाई माना है। मैं आरम्भिक दो पंक्तियों का अनुवाद भेज रहा हूँ ताकि श्री मां भी अग्रिम चेतावनी के रूप में इसे जान लें। श्री अरविन्द ने लिखा—'दिलीप तुम कुछ नहीं समझते। उनका कहना है कि मेरे शिष्यगण महामानव में बदल जायेंगे, अतः ऋषि जैसी छोटी चीज का अब सम्भावना ही नहीं रहेगा। मैं निश्चय ही उस ऋषि भीड का अंतिम व्यक्ति हूं। तुम निश्चय ही उन्हें मेरा आशीर्वाद भेज दो जो उन्होंने मांगा है, क्योंकि इतनी महान सम्भावना की घोषणा करने के लिए वे उस पाने के हकदार हैं।'[1] दिलीप द्वारा उद्धृत एक दूसरी घटना भी उनके व्यक्तित्व की इस विशेषता को कई कोणों से उपस्थित करती है। दिलीप और चैडविक श्री अरविंद द्वारा घोषित कार्यों की व्यस्तता पर निराश ढंग से ऊहापोह कर रहे थे खास तौर से इस उदासी के साथ कि अब मजेदार चिट्ठियाँ पढ़ने को नहीं मिला करेंगी। तभी श्री अरविंद ने अपने सचिव से दिलीप के पास एक कागज भेजा, वह तार था जिसमें लिखा था— तार से ही १५ अगस्त का दर्शन की अनुमति भेजिए। मेरे मित्र दिलीप इसकी संस्तुति करेंगे'—अरविन्दो। श्री अरविन्द के पास उनके दर्शन की इच्छा से किसी अरविन्द ने तार भेजा था। हाशिए पर श्री अरविन्द ने लिखा— कृपा करके संस्तुत करें और कुछ ज्ञान लाभ कराएं।' जाहिर है कि यह पूरा कांड दोनों ही शिष्यों के लिए भयानक चक्रव्यूह के रूप में उपस्थित हो गया। बड़े चिन्तन के बाद दिलीप ने एक लम्बी कविता भेजी, जिसमें अरविन्द नामधारी चार व्यक्तियों का कार्यात्मक विवरण था जिनमें एक अभिजात अरविन्द थे जो शृंगार और प्रसाधन में मशगूल रहते काम करने से घृणा करते और निरंतर गीत गुंजार करते रहते जिन्हें एक मिल की मजदूरी करनी पड़ी। दूसरे कोई प्रेमी अरविन्द थे जो प्रणय में गेटे की तरह निराश हुए तीसरे पेरिस में रहते थे, जो गप्पी और वाचाल थे और चौथे बड़े वीर थे और एक बल्जियन महिला को पटाते रहे और बाद में शादी के मौके पर पटखनियां खा गये। इस वर्णन के बाद दिलीप ने लिखा—मैं आपके समनामियों की महत्ता पहचान नहीं पाया इसलिए जानने का अवसर दें कि वही नाम रखते हुए भी ये इस हालत में कैसे रह गये? चैडविक ने यह कविता सुनी तो निराशा से मुस्कराये—' यह उन्हें व्यस्तता से छुड़ा नहीं पायेगी दिलीप! उम्मीद कम है, पर भेजकर देखो मेरी शुभकामनाएँ। श्री अरविन्द ने उत्तर दिया और बड़ा विस्तृत। खूब विनोद से भरा हुआ और उनके व्यक्तित्व के नाना पहलुओं को प्रकाशित करने वाला।

उन्होंने लिखा— 'चार अरविंदों का तुम्हारा महाकाव्य बड़ा प्रकाशदायक, सूचनात्मक, और रोंगटे खड़ा कर देने वाला है। इनका पता है अरविन्दो बम्बई—

१ श्री अरबिन्दो नेम इज मी पृ० १०१।

जरो मेरा अरविन्दो पाडिचेरी। उन्होने अपने एक पत्र में पहले लिखा था कि व बम्बई जा रहे ह। वहाँ से पाडिचेरी पधारेंगे। उन्होने अपना बम्बई का पता लिखा नही ह। नलिनी के पास पहले वाला पत्र ह जिसमे शायद तुम्हें कुछ जानकारी मिल सके। मैं नही जानता कि अपने ठहरने आदि की व्यवस्था के बारे में इनकी क्या मशा ह हालाकि ये अरविन्दो हैं, पर अरविन्दो ने इन्हें आदम के बाद से कभी जाना नही। मैं यह जबावी तार भी तुम्हें लौटा रहा हूँ और अपनी जिम्मेदारी तुम पर फेंक रहा हू। तुम अनेक अरविन्दो के बारे में प्राप्त अपने महान् और पक्के अनुभवो से उत्पन्न बुद्धिमत्ता से निणय कर सकोगे। तुम चाहो तो तार दे दो—"आइए और धन्य होइए" या कृपा करके अपन नन्दन बन में जहा हैं वही रुक जाइए।' मैं अब इससे अलग होता हूँ। यानी सारांश निम्नलिखित दो अल्वजेण्ड्रीय द्विपदियो में इस प्रकार समझो—

लिखो तार दे कर—"आइए दयापूर्वक" स्वीकारात्मक अपने ही हाथ।
या छोड दो वैसे ही करते रहें यात्रा वे ईश्वर या शैतान के साथ॥
उस अरविन्द के बारे में वही करो जो निणय लो उस काम में।
समनामियों की बाढ से भरे इस अरविन्द को छोड दो आराम में॥

सच पूछो तो मेरा अतिमानस इन और ऐसे ही दूसरे अरविन्दो के भार के नीचे बेचारे की तरह तडपडा रहा ह। मुझसे बताया गया कि करीब ४०० अरविन्दो तो परिवारों क साथ आ गये ह और २०० के करीब यहाँ अकेले आ चुके हैं। और यदि ईश्वरीय कृपा मामूली ओस से कुछ अधिक मात्रा में अवतरित नही होती तो हमें दोपहर बाद तीन बजे तक इनका स्वागत करते रहना होगा। ऐसी स्थिति में एक और अरविन्द के आने से हमारी स्थिति में कोई फरक नहीं पडता। यह तुम्हें सोचना ह कि इनके आ पडने से तुम्हें एक टन इटो के भार के नीचे दबने की पीडा का अनुभव करना पडेगा या उस खुशी का जो वसन्त की राहत वरदा धीमी हवा में तरते लिफाफो के पाने की होती ह, जिन्हें तुम बहुत पसन्द करते हो।"

मैं तो मानवीय निणयो और आशाओ की विडम्बना पर सोच रहा हू। मेरे बाप ने जो अपन सभी पुत्रो का महान देखना चाहते थे, और तीन को ऐसा बनाने में कुछ सफल भी हुए, आकस्मिक प्ररणा स मेरा नाम अरविन्द रख दिया क्योकि तब तक भारत में किसी न इसे अपने लिए धारण नही किया था और न तो ससार में ही ऐसा हुआ था अत वे सोचते थे कि मैं अपने नाम की अद्वितीय श्रेष्ठता के बल पर ही महानो क बीच भी विशिष्ट बना रह सकूगा और अब देखो अरविन्दो की विराट कतार और उनके इङ्गलैण्ड जमनी या अन्यत्र किये गये महान् कारनामे। कृपा करके यह मत कहना कि मैंने अपनी औचित्यपूर्ण बुद्धि से काम न लेकर प्रसिद्धि पा ली, इसलिए ऐसा हुआ। स्वदेशी युग में जब मैं कलकत्ते के नेशनल कॉलेज में पहुँचा था यानी अभी प्रसिद्धि पथ पर पहला पग ही रखा था कि अरविन्द प्रकाश स मुलाकात हुई जो अपने

बुद्धिमत्तापूर्ण चेहरे पर देवताओं की सारी तोली और बराबर समीप्य के लिए [सेवक के दास] लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे।

अनेक अरविन्द पर लिखे गुजरात महाराष्ट्र ने अभावतः इस तथ्य का उद्घाटन कर दिया है कि कैसा इस तरह अरविन्द नाम द्वारा प्रकाशित हुआ है और कैसे सभी पादरियों की ओर ही चल पड़े हैं। आह जान गया! जान गया!! और अब मैं अपने मौनव्रत से मुक्त हो गया। अब समस्या अपने नाम के माहात्म्य के साहित होने के दाम से भी छुटकारा पा गया।" इस पूरे पत्र में विनोद से अनजान हो अरविन्दों के जो कारनामे दिखाने की गरज से लिखा उसका खूब करारा जवाब मिला। रोंगटे खड़ा करनेवाले शब्द के बधिर विनोद बाहर न आता तो विनियों के इंतजार में बफरा रहते थे। उन पर तो व्यंग्य जो है सो है, प्रशंसा के अलावा ऊपर भी। लपबुल्हवाना जिन पादरियों पर निशाना पर था। मानो चौरस्ता मजार का यह हाल किसे नहीं गुदगुदाता।

शिष्यों और परिचितों के प्रति स्नेह भाव रखते हुए भी वे कभी भावुक नहीं होते थे। आश्चर्य होता है यह देखकर कि वे उन क्षणों में भी जो उनके लिए निश्चित रूप से व्यक्तिगत पीड़ा के क्षण होते थे अपना संतुलन पूर्ववत् बनाये रहते थे और अपना दुःखद स्थितियों में भी व्यंग्य विनोद के द्वारा अपनी अद्भुत तटस्थता कायम रखते थे। १९३८ की दुर्घटना में पैर टूट जाने के बाद और बाद की उनकी अनेक बातें हमें विस्मित कर जाती हैं।

उनके चिकित्सक डॉ० एस० राव ने कहा, कि श्री अरविन्द असामान्य रोगी हैं इसलिए उनसे पूरी आशा की जाती है कि वे डाक्टरों की सलाह पर अमल करेंगे। श्री अरविन्द ने हँसते हुए कहा—"तब तो मुझे असामान्य सावधानी बरतनी पड़ेगी।"[2]

२६ दिसम्बर १९३८ की सन्ध्या को सिरहाने बैठे शिष्यों के बीच से अचानक चम्पकलाल खिलखिला कर हँसे। पूछने पर उन्होंने कहा—"पता नहीं मैं क्यों इस तरह हँस पड़ा पहले तो मामूली छेड़छाड़ से ही मैं रोने लगता था।" डॉ० बखर लाल ने बड़ी लम्बी साँस लेकर पूछा—"आत्मसमर्पण का क्या अर्थ है। यह कैसे किया जाता है?" अरविन्द ने मुस्कराते हुए जँभाई ली—"कैसे? मैं भी नहीं जानता कि कैसे? कोई जब चाहे आसानी से कर लेता है बस।" तभी चम्पकलाल ने कहा—"मेरी आँखें हमेशा छलछलाई रहती हैं।"

श्री अरविन्द ने कहा—"वर्जिल की आँखें भी ऐसी ही थीं जब कि होरेस बहुत लम्बी साँस लिया करता था। एक बार साहित्य संरक्षक मेसेनास ने जो इन दोनों के बीच

१ श्री अरविन्दो मेम इन मी पृ० १९५-१९७।
२ टाक्स विद श्री अरविन्दो भाग १ पृ० ८३।

बैठा था, कहा—' मैं आहों और आसुओं के बीच घिर गया हू ।"[१] शिष्या के ठहाका से कमरा गूज उठा। आश्चय तब होता ह जब हम देखते हैं कि अभी पैर का प्लास्टर छूटा भी न था और श्री अरविन्द उधर से कतई चिन्तामुक्त नही हुए थे।

डा० मणिलाल की आज्ञा से नीरद वरण वगरह उनके चुटीले पर की मालिश किया करते थे। जाहिर ह कि यह मालिश बडी कष्टदायक होती थी। मालिश करने वालों में प्राय व ही थे जो उनके 'सुप्रामेंटल' पर अनेक मय कस चुके थे। एक बार ऐसी ही मालिश के वक्त आदतन प्रश्नोत्तर शुरू हुए। उस दिन श्री अरविन्द हर प्रश्न के उत्तर में कहते— शायद'।

एक शिष्य ने पूछा—"आप हर सवाल के उत्तर में एक ही शब्द कहते ह—शायद। क्या आप कोई निश्चित प्रामाणिक उत्तर नही दे सकते?'

"क्या नहीं। श्री अरविंद बोले—"जब सुप्रामेंटल उत्तर आयेगा तो निश्चित और प्रामाणिक उत्तर भी दूगा।"[२]

इस बार शिष्या की हँसी निश्चय ही फिटी और हारी हुई रही होगी पर नीरद वरण ने इसका ज़िक्र नही किया ह।

अपने भ्राता मनमोहन घोप के निधन के समाचार से भी उनकी तटस्थता भग न हुई था।

१९-१-१९२४ की सन्ध्या वार्ता में उनके सामने 'फावड' की एक प्रति रखी गई, जिसमें मनमोहन घोप के निधन पर एक निबन्ध था जिसमें कहा गया था "व अपने पीछे वारीन्द्रकुमार और श्री अरविन्द को छोड गये ह। श्री अरविन्द खूब हँसते रहे बोले— 'लोग प्राय समझते ही नहीं कि 'पीछे छोड जाने' का सम्बन्ध सन्तति से होता ह, भाइया स नहो। मनमोहन की उम्र भी गलत बताई गई ह लिखा ह कि उनकी और हमारी उम्र एक ही थी, तब तो हम जुडवा हुए? उसी वक्त पुदुकोटा के किसी भारती ने श्री अरविन्द के पास एक सम्वेदना सूचक पत्र लिखा जिसमें अन्तिम पक्ति थी—' भगवान उन्हें वहाँ लम्बी जिन्दगी का सुख दें।" श्री अरविन्द ने हँसते हुए कहा—' इन सज्जन को काफी आशका ह कि शायद मनमोहन वहा भी जल्दी मर जायेंगे? जानते हो मेरी ज़िन्दगी के बारे में कुछ नही जानते हुए भी यह आदमी "अरविन्द विजयम" नाम से मेरी जीवनी लिख रहा ह? लगता ह इस जीवनी का अन्तिम वाक्य यही होगा कि मैं मनमोहन की मृत्यु के दुख से बिल्कुल पराभूत हो गया।"[३]

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ ९२।
२ श्री अरविन्दो परफेक्ट जेंटलमैन मदर इन्डिया अगस्त १९७० पृ० ४११।
३ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ २४५।

उनके जीवन में जाने कितनी ऐसी दुर्गम स्थितियाँ आई होगी, पर उनकी दिन चर्या से सम्बन्धित विवरणों में कहीं भी आप उन्हें यथार्थ धरातल पर हार कर कातर होते नहीं पायेंगे।

जीवन के महान् कष्टपूर्ण क्षणों में उनकी विनोद वृत्ति का मैं एक और उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूँगा। डा० मणिलाल ने श्री अरविन्द से कहा था कि वे शय्या के किनारे पर अपने घायल पैर को लटकाये रहा करें, ताकि उसमें रक्तसंचालन आ जाये। श्री अरविन्द ने सिर्फ एक दिन ऐसा किया और फिर बन्द कर दिया— दिव्य जीवन पूरा करने के बाद मैं पैर लटकाये रखने का काम करूँगा'। इसी बीच डा० मणिलाल ने गुजरात से पत्र लिखकर पूछा कि श्री अरविन्द पैर लटकाये रखने वाली हिदायत पूरी कर रहे हैं या नहीं। इसपर श्री अरविन्द ने हँसते हुए कहा—' दिव्य जीवन वैसे ही लटक रहा है। तभी नीरदवरण ने कहा कि मणिलाल १९ या २० फरवरी को पहुँच रहे हैं। श्री अरविन्द मासूमियत से बोले—' मैं कल से फिर अपना पैर लटकाने जा रहा हूँ। दिव्य जीवन के अन्तिम दो अध्याय लगता है लटक ही जायेंगे।

इस बार मणिलाल एक मदरासी महिला से जो टांस में जाया करती थी अनेक चमत्कारी नुस्खे लेकर आये थे— उन्हें देखते ही श्री अरविन्द ने कहा, पैर ठीक से लटक रहा है। मणिलाल ने कहा कि उस महिला का ट्रांस में एक ऋषि ने दवा बताई है। मैंने आपके पैर के लिए खासतौर से पूछा था। बिल्कुल निरापद दवा यानी सफेद सरसों और लाल मिर्च का लेप। सिर्फ छह दिनों में सब ठीक। उसने मेरे सिर दर्द और रक्तचाप के लिए भी दवा बतायी। यानी सिर पर माड़ और बेसन का लेप करना।' 'बड़ी कृपा है ऋषि की।' श्री अरविन्द ने कहा। तभी दूसरे शिष्य भी आ गये। डा० सत्येन्द्र ने पूछा — मणिलाल के लिए क्या दवा बताई गयी? नीरद बोले—"चावल का माड़।'

सत्येन्द्र ने फिर पूछा— कहाँ लगाया जायगा।'

श्री अरविन्द बोले—' सिर पर। मगर बालों के लिए नहीं। दवा प्लेनचेट के माध्यम से एक ऋषि ने बताई है जिससे मणिलाल का सिर दर्द और रक्तचाप दूर होगा।'[1]

उपर्युक्त प्रकरण से स्पष्ट हो जाता है कि वे स्वयं योगी होते हुए भी पूर्ण व्याव हारिक और तर्कपूर्ण ढंग से ही चीजों को स्वीकार करते थे। उन्हें मिथ्या किस्म के चमत्कार कभी आकृष्ट नहीं करते थे। उन्होंने मणिलाल की बताई दवा पर ध्यान भी नहीं दिया। उलटे मणिलाल विनोद के विषय बन गये। वे इस तरह की सिद्धियां

१ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ १७५–२००।

तक पर मजाक करने में नहीं चूकते थे। यदि साधना का अर्थ पागलपन या दिमागी सन्तुलन का अभाव है तो श्री अरविन्द को ऐसे लोगों की कतई जरूरत नहीं।

तिनवेल्ली से आया हुआ एक व्यक्ति जो संस्कृत जानता था श्री अरविन्द से मिलना चाहता था। उसने कहा कि उसे पराशक्ति से प्रेरणा मिली है कि श्री अरविन्द से जो भगवान् हैं जाकर मिलो। वह बिना किसी से पूछे सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ उनके कक्ष की ओर बढ़ा। एक शिष्य ने उसे रोका और श्री अरविन्द से पूछा— पहले वालों जैसे ही इस व्यक्ति को भी रमण महर्षि के यहाँ भेज दूं।'

'वह नहीं जायेगा।' श्री अरविन्द ने हँसते हुए कहा—'क्योंकि पराशक्ति ने उसे वहाँ जाने को तो कहा नहीं है। कितनी मुश्किल में डालने वाली है पराशक्ति। उसने इसे यहाँ आने को कह दिया।"

श्री अरविन्द दूसरे दिन उससे मिले और अपनी साधना पद्धति के लिए अनुपयुक्त पाकर उसे लौटा दिया। एक दिन शिष्यों ने कहा कि पराशक्ति वाला व्यक्ति अभी यहीं है और प्रत्येक दिन अपना एक न एक वस्त्र किसी न किसी को बाँट रहा है।

"जरा ख्याल रखना।' श्री अरविन्द ने मुस्कराते हुए कहा "वह कल बिना किसी कपड़े के यहाँ न चला आए।"

तभी एक शिष्य ने कहा—'लगता है पागलपन को साधना बहुत आकृष्ट करती है। मैंने कलकत्ते के श्री 'क्ष' के साथ आठ पागल देखे।'

श्री अरविन्द फिर मुस्कराए— 'मैंने अभी उतनी प्रगति नहीं की है, इसलिए यहाँ अभी संख्या उतनी नहीं बढ़ी है।'[1]

साधना के क्षेत्र में कार्य करने वालों से, जो विभिन्न प्रकार की रुचियाँ और जिदें रखते थे उनके मजाक के तरीके भिन्न थे। ऐसे व्यक्तियों के प्रति आवश्यक आत्मीयता की उनमें कभी न थी, पर वे कभी भी गलत ढंग से सोचने और घबड़ाने वालों के कार्यों, स्थितियों में रस लेने में भी नहीं चूकते थे।

एक बार एक व्यक्ति ने उनसे पूछा कि योग कैसे शुरू किया जाय। उन्होंने कहा कि तुम पहले अपने मस्तिष्क को शान्त करना सीखो। उसने वैसा ही किया। उसका मस्तिष्क एकदम शान्त, मौन और रिक्त हो गया। तभी वह दौड़ा दौड़ा उनके पास आया और बोला—'मेरा मस्तिष्क विचारशून्य हो गया। मैं कुछ भी सोच नहीं सकता। मैं गावदी हो रहा हूं। इस पर अरविन्द कहते हैं—"उसने जरा भी रुककर सोचने की कोशिश नहीं की कि यदि मस्तिष्क विचारशून्य हो गया है तो जो बातें बोल रहा है कहाँ से आ रही हैं। न तो यही सोच सका कि जो गावदी है ही वह फिर से

१ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० ५७ ५८।

क्या गावदी होगा भला। मुझमें तब ऐसा धय नही था। मैंने उसे इस अद्भुत ढग से उत्पन्न नीरवता का मजा लेने के लिए छोड दिया।' [१]

वे साधना और योग से सम्बन्धित व्यक्तियो को जीवन की सामान्य आदता स एकदम बरी और महान् व्यक्तित्व वाले मानने की प्रक्रिया को ही अनाध्यात्मिक कहते थे। इसी कारण अच्छे अच्छे साधका को भी परस्पर एक दूसरे पर व्यग्य विनोद और आरोप प्रत्यारोप करने की पूरी छूट देत थे। एक सन्ध्या का निम्नलिखित वार्ता लाप सुनने लायक ह।

श्री अरविन्द—"जीवन में कई बार सफलताएँ आन्तरिक प्रगति के लिए सहायक ही नही होती, हाँ, यदि तुम बाहरी सफलता को बात कर रहे हो तो सवाल दूसरा ह।"

"शिष्य—(दूसरे शिष्य से) मान लो तुम मन्त्री हा गये होते, तो बाह्य दष्टि से सफल कहे जाते, पर तब तुम्हारे आध्यात्मिक विकास का क्या हाता ?

श्री अरविन्द—"बिल्कुल। तब हमारे 'क्ष' बहुत बडे अफसर होते और अबतक लम्बी पेंशन पाकर सेवा निवृत्त हो गये होते। (कहकहे)

शिष्य— 'और 'य' तब डायबिटीज से पीडित प्रोफेसर होते (जार से हसी)

दूसरा शिष्य— 'शायद बदहजमी से पीडित योगी की जगह।"

श्री अरविन्द—"तब 'ज्ञ' एक विराट पहलवान हाते राममूर्ति की तरह।'

दूसरा शिष्य—' शायद एक बात पीडित साधक की जगह।"

दूसरा शिष्य अपनी भगिमा स ही बता देता ह कि वह डाक्टर नीरदवरण क अतिरिक्त कोई और नहीं हो सकता जा श्री अरविन्द की तरह ही चुभती हुई चिकोटियाँ काटन में दक्ष हं।

एक शिष्य ने पूछा कि कुछ लाग समाधि में चतुथ स्थिति तुरीय में पहुँचने की बात करते हं। तभी दूसरा बाल पडा— मर लिये तो पहली स्थिति ही उतनी आनन्द दायक ह कि नीद आ जाती ह। पहले शिष्य ने फिर पूछा— ब्रह्म स्थिति का अनुभव कर लेन पर प्राकृतिक स्वभाव (शरीर आदि) पर क्या असर पडता ह।' श्री अरविन्द ने कहा— व लोग प्राकृतिक स्वभाव आदि की परवाह नही करते थे।' शिष्य जानना चाहता था कि प्रकृति पहले बदलती ह या ब्रह्मप्राप्ति पहले हाती ह। उसने फिर पूछा, "शकराचाय ने ता ब्रह्मस्थिति पा ली थी । श्री अरविन्द इस प्रश्न पर मुस्करा कर बोले—' अच्छा हो यदि यह सवाल तुम ब्रह्म से ही पूछो। मेरे लिए तो बडा टेढा ह। हो सकता ह कि 'ब्रह्म कहें कि तुम्हें अपने भीतर आने देना कठिन ह क्योकि तुम बहुत घुमावदार तक करते हो।' [२]

१ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० ११४।
२ इवनिंग टाक्स भाग दो पृ० १३२।

नारी-पुरुष के सम्बन्धों पर या उनके अन्तर पर श्लेषात्मक और राजनीतिक शब्दावली में गुम्फित व्यंग्य शायद ही कही देखने में आए। नीरदवरण ने लिखा—' क्या यह सही नहीं है कि औरतें पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा ग्रहणशील (रिसेप्टिव) और आन्तरिक (साइकिक) होती है ?

श्री अरविन्द ने उत्तर दिया— 'वाहियात। न तो ज्यादा ग्रहणशील ही न ज्यादा प्रलापपूर्ण (हिस्टोरिकल) होता है। परन्तु यहां भी, मैं समझता हूँ कि उन्हें मात दे सकता हूँ। यह सही है कि वे ज्यादा आसानी से भूख हड़ताल का ऐलान कर सकती हैं, क्या इस ही गांधी के साथ तुम भी उनकी आन्तरिक शक्ति (साइकिक फोर्स) का चिह्न समझते हो ? और अब तो 'असहयोग (नान-कवापरेशन) ने पुरुष की इस मूलता का भी उससे अलग कर दिया है।[1] (यानी यहां भी पुरुष नारी जैसा ही हो गया है)

श्री अरविन्द के शिष्यों में एक से एक तबीयतदार लोग रहे। श्री बिन्दु उनके प्रिय शिष्य थे। चिट्ठी पत्री तक सीमित न रहकर, उन्होंने श्री अरविन्द और श्रीमा को अपनी पाकशास्त्र प्रवीणता का परिचय देने के लिए कुछ व्यंजन बनाने और उन्हें अरविन्द के पास भेजने की अनुमति पा ली। वह प्रसाद थोड़ा-बहुत खाया गया शेष बिन्दु के पास लौट आया। बिन्दु ने चौतरफा हमला करते हुए अपना दुःख लिख भेजा, 'गुरुदेव, नलिनी सब सामान लौटा गये। मैं भौंचक्का रह गया यह देखकर कि अपने शायद ही कोई चीज ली। मैंने गहरा पीड़ा, कड़वी निराशा, मुकम्मल नाउम्मीदी और घातक वेदना का अनुभव किया। मैं कभी सोच भी नहीं सकता कि आप मेरे प्रति इतने सहानुभूति हीन हो सकते हैं।' श्री अरविन्द ने लिखा— 'बिन्दु, बेवकूफी की बात मत सोचो। तुम्हारे प्रति हमारी सहानुभूति गहरी और पूर्ण है। हां यह सहानुभूति भोज्य पदार्थों के प्रति व्यक्त सहानुभूति से नापी नहीं जा सकती। प्रसाद, जो भेजा जाता है उसे हम थोड़ा ही लेते हैं। कभी-कभी ज्यादा भी बशर्ते वह बहुत मधुर न हो। तुम्हारी सिवैंया तो ऐसी थीं कि उनके लिए बस हां कहना होगा जैसे प्रेमी अपनी प्रेमिका को कहता है— 'हाय तुम कितना मीठी हो, बहुत बहुत मीठी। [इसका मतलब यह नहीं कि वे अच्छी नहीं थीं] तुम्हारी सब्जी [थोड़े पानी में देर तक पकाई हुई सब्जी Stew] अलबत्ता असाधारण थी। पहला चम्मच खाते वक्त कुतूहल था, दूसरा लेते वक्त आश्चर्यकारी भय हुआ और तीसरा उठाया तो साहस ही न हुआ *कि अज्ञात देश की यात्रा करूँ। तुम्हारी सिवैंया जरूर ज्यादा खा गया।* इस लिए तुम्हारा सोचना नामुनासिब है कि हमारी सहानुभूति नहीं है।[2]

यह सब लिखते हुए दिलीप कुमार राय ने बार-बार कहा है कि हमने उन्हें

[1] कॉरेसपॉडेंस विद श्री अरविन्दो पृ० १२६।
[2] श्री अरविन्दो कम टु मी पृ० १६६-१६७।

कितना परेशान किया। 'आह मैंने गुरु के हम बड़ा शिष्य के।" इस "करे" की 'करी' व्याख्या की जाय।

वे इन शिष्यों की मामूली फरमाइशों को भी पूरा करने में कितनी उदारता बरतते थे।

दिलीप कुमार ने लिखा—"ओ गुरु, इधर मैं ध्यान नहीं कर पा रहा हूँ। प्रूफ का पहाड़ लगा है, मगर जल्दी ही पहाड़ी बाबा की तरह शुरू करने वाला हूँ। सावधान !

श्री अरविन्द ने उत्तर दिया—प्रूफ के पहाड़ के बाद ध्यान का पहाड़ और इन सबके ऊपर चोटी पर बैठे बाबा—ठीक है, भाई, मैं तैयार हूँ।[1]

व्यंग्य विनोद का अर्थ केवल चुभते हुए मजाक ही नहीं है। जो व्यंग्य विनोद हास परिहास के साथ मन को ज्यादा विशाल और उन्नत नहीं बना पाता, उसे हम वन्ध्या विनोद मात्र कहेंगे। हास परिहास के बीच श्री अरविन्द अक्सर मानव जीवन की त्रुटियों की ओर संकेत करते हैं और सहानुभूतिपूर्वक इन्हें ठीक से समझते हुए इनके निराकरण का उपाय भी बताते हैं। आत्मोन्नति के लिये सतत् प्रयत्न और अटूट धैर्य की आवश्यकता होती है। अतिमानसिक सत्ता के अत्यन्त सुदूर होने की आशंका से प्रयत्न छोड़ बैठने वालों को सम्बोधित करते हुये उन्होंने कहा—निराशा की बार बार रट लगाते रहने की बाधा के सिवा और परिणाम ही क्या होगा ? व्यक्ति को कभी कभी इससे गुजरना तो होता ही है जैसे पथिक की प्रगति [Pilgrim's Progress] कथा के क्रिश्चियन नायक को निराशा के दलदल से गुजरना पड़ा था। साधना में असीम धैर्य की आवश्यकता है। विलम्ब की शिकायत करने वालों के प्रश्न के उत्तर में श्री अरविन्द रामकृष्ण परहंस द्वारा कथित इस दृष्टान्त को सुनाया करते थे बैकुण्ठ जाते हुए नारद रास्ते में एक योगी से मिले जो पर्वत पर रहकर कठिन तपस्या में लीन थे। नारद जी आप बैकुण्ठ जा रहे हैं वहाँ विष्णु भगवान मिलेंगे मैं जिन्दगी भर कठिन तपस्या करता रहा, पर उन्हें पा न सका, कृपया उनसे पूछियेगा कि मैं उन्हें कब प्राप्त कर सकूँगा। नारद आगे बढ़े। रास्ते में एक भक्त से मिले जो हरि-हरि' गाता नाच रहा था। उसने नारद से कहा—आप मेरे प्रभु को देखेंगे। कृपया पूछियेगा कि कब मैं वहाँ पहुँचूगा और कब प्रभु के मुखचन्द्र के दर्शन होंगे। लौटते वक्त नारद पहले योगी के पास पहुँचे और कहा—'विष्णु ने कहा है कि तुम अगले छह जन्मों के बाद उन्हें प्राप्त करोगे। योगी कराह उठा—क्या, ? अभी इतनी लम्बी तपस्या के बाद ? इतना विराट प्रयत्न अभी और ? हे भगवान तुम कितने कठोर हो।'

१ वही पृ० १६९।

नारद भक्त के पास पहुँचे और बोले—'तुम्हारे लिए बुरी खबर है। भगवान ने कहा कि एक लाख जन्मों के बाद ही तुम उन्हें देख सकोगे।' इतना सुनाया था कि भक्त उछलकर आनन्द के मारे झूम झूम कर नाचने लगा—'आह' मैं एक लाख जन्मों के बाद अपने हरि को देखूँगा, मैं अपने हरि को देखूँगा। आह कितने दयालु हैं मेरे भगवान्। वह आनन्दातिरेक में दूने उत्साह से कीर्तन में मगन हो गया। नारद ने पुकार कर कहा—'सुनो, तुमने उन्हें पा लिया। आज ही देखोगे उन्हें।'[1]

साधना में धैर्य अपेक्षित है कभी कभी तीव्र विकास के बाद ठहराव आ जाता है। ऐसी ही स्थिति में नीरद ने शंकालु चित्त से लिखा—"मुझे बचपन की एक घटना याद आती है। हमलोग खाना खा रहे थे कि किसी ने मुझे बाहर से बुलाया। चलते वक्त खाने पर बैठे पिता से मैंने कहा— पापा, जरा ख्याल रखियेगा, आप मेरी मछलियाँ मत खा जाइयेगा। हो सकता है कि पिता ऐसा न करें, पर गुरुओं की कौन जाने?" करारा आघात था, पर श्री अरविन्द ने लिखा—'नहीं महाशय, खातिर जमा रखें, मैं आपकी मछली नहीं खाता। मेरे लिये समुद्र भरी मछलियाँ हैं, मैं तुम्हारी सिधरी (छोटी मछली) क्या खाने लगा। यह तो मि० एच० एफ० (विरोधी शक्तियाँ) हो सकते हैं, दस्यु, डाकू।'[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि श्री अरविन्द के व्यंग्य विनोद की एक विशेष पद्धति थी। वे जानते थे कि इस महत् विशेषता के बिना कोई व्यक्तित्व पूर्ण नहीं होता। उन्होंने लिखा भी है— मुझे मालूम नहीं कि अत्युन्नत महापुरुषों में विनोद वृत्ति का अभाव होता है। या कि जब किसी व्यक्ति में यह वृत्ति न हो तो उसे कैसे सर्वांगपूर्ण कहा जा सकता है। 'उछ्खलता' शब्द केवल उस ओछे परिहास पर ठीक घटता है जिसके पीछे कोई सार न हो। ऐसा कोई नियम नहीं कि बुद्धिमत्ता कठोर-गम्भीर तथा स्थितिशून्य वस्तु ही होनी चाहिये।[3]

श्री अरविन्द के व्यक्तित्व में तो इस वृत्ति का होना और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। उनके जैसा अत्यन्त तर्कपूर्ण भावुकता रहित, नितान्त निर्वैयक्तिक *व्यक्तित्व शायद बहुतों के लिए इतना भारी होता कि सभालना मुश्किल हो* जाता। विभूतियों की यह विशेषता होती है कि वे परस्पर विरोधी लगने वाले तत्वों के रासायनिक मेल से एक ऐसी वस्तु को जन्म दे देते हैं जो अभूतपूर्व आकर्षण *का कारण बन जाता है। श्री अरविन्द का संघर्ष और साधना में तपाया व्यक्ति*-त्व, विनोद के क्षार या लवण से संयुक्त होकर दीप्तिमय सुवर्ण में बदल गया था—यद्यथा लवणेन सुवर्ण सदध्यात।

१ रेमिनिसेंसेज एंड एनकडोट्स पृ० २२-२३।
२ श्री अरविन्दो केम टु मी पृ० ३२-३३।
३ श्री अरविन्द के पत्र पृ० १३५।

भविष्यत् कविता के मान्त्रिक

दश नु विश्व दशत दश रथमधि क्षमि
एता जुषत मे गिर ।
ऋग्वेद १।२५।१८

मैंने उस अदृश्य को देखा है। पृथ्वी पर अवतरित उसके सुवर्ण रथ को देखा है। उसने मेरी कविता स्वीकार कर ली है।

क्रान्तिकारी राजनेता और पूर्ण योगी अरविन्द आन्तरिक रूप से हमेशा कवि थे।[१] कवि शब्द आज जिस भावुकता और अहेतुवृत्ति के अतिरक्त के लिए विशेषण जैसा बन गया है उससे अरविन्द के कवि को कहीं से भी जोड़ा नहीं जा सकता। क्योंकि उनकी कविता अपनी आत्मा में हमेशा क्लासिक, कलेवर में हमेशा अलौकिक सौन्दर्य से पूर्ण और गति में गम्भीर नद की तरह ऊपर से किंचित् आन्दोलित, पर भीतर से एकोन्मुखी और गभीर रूप से शान्त पर प्रवाहपूर्ण रहा है। उन्होंने न केवल मानव प्रकृति के रूपान्तर के लिए एक दिव्य चेतना के अवतरण के लिये साधना की बल्कि कविता के क्षेत्र में भी वे ऐसे भगीरथ थे जिन्होंने अंग्रेजी कविता की टेम्स (तमस) में दिव्य चेतना की गंगा को उतारने का प्रयत्न किया। उन्होंने लिखा—'भविष्यत कविता में उस तत्त्व से एक ऐसी सादृश्य मूलक निकटता की सम्भावना है, जिसे हम कविता में मन्त्र का तत्त्व कहना चाहेंगे। मन्त्र छन्दमय भाषा है जो वेदों के अनुसार ऋषि के हृदय और सत्य के सुदूर आवास से उद्भूत होती है। वाक् की स्वतः स्फूर्त सम्प्राप्ति उसकी दिव्यगति यथार्थ को सही ढंग से व्यक्त करनेवाले विचार, जिनके बारे में कजिन्स ने बहुत ठीक कहा है कि—वे अस्थिर नश्वर के भीतर छिपे स्थिर और अनश्वर को प्रतिफलित करते हैं। कुछ ऐसा जो मानवता के मौलिक सबगों की छाया लिये हुये मानवता के परे के सत्य का अभिव्यक्त करता हो। कुछ ऐसा जो उस अबूझ दिव्य चेतना के क्रिया कलापों को समझ सके, जो पूरी सृष्टि के पीछे प्रायावस्था रूप में विद्यमान है और जो अब इस सृष्टि को अपनी सीमायें तोड़ कर ईश्वरीय सम्भावनाओं को प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रेरित कर रहा है।' श्री अरविन्द कहते हैं कि अब तक कविता ने मधुमती भूमिका में जाकर कभी-कभी यह कार्य किया है भविष्य में सम्भावना है कि वह क्रिया और ज्यादा सचेत ढंग से अपने इस उद्देश्य के प्रति जागरुक हो सकेगी'।[२]

१ कलेक्टेड पोयम्स की भूमिका में नलिनी कान्त गुप्त ने लिखा है कि वे प्रधानतः कवि थे।
२ फ्यूचर पोयट्री प्रथम संस्करण १९५३, श्री अरविन्दाश्रम पृ० ११।

श्री अरविंद इसी ऋचा काव्य या मान्त्रिक कविता के प्रयोक्ता थे। यह सही है कि यह विशेषता पूर्णत उनके महाकाव्य सावित्री में ही उपलब्ध होती है, पर उनकी आरंभिक कविताओं में भी इस तत्व के बीज बिंदु अवश्य दिखाई पड़ते हैं।

उन्होंने बहुत पहले ही कविताएँ लिखना शुरु कर दी थी "जब हम तीनों भाई मैनचेस्टर में रहते थे, मैंने 'फाक्स फेमिली मगजीन' के लिये लिखना शुरू किया। वह किसी का भयानक अनुकरण था। किसका मुझे याद नही। फिर मैं लंदन गया जहा मैंने कविताएँ लिखनी शुरू की। उस वक्त की लिखी कविताओं में से कुछ "साग्स आफ मिर्टिला' में सकलित है।[1]

असल में उनके मान्त्रिक कवि का निर्माण बड़ी श्रमसाध्य तपश्चर्या से समव हुआ। भारत में आने के बाद बड़ौद के आवासकाल में उन्होंने भारतीय वाङ्मय, विशेषत संस्कृत के कालजयी साहित्य को पूर्णत आत्मसात करने का प्रयत्न किया। इस साधना के पहले चरण में उन्होंने संस्कृत की कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध कृतियों का अनुवाद किया। भर्तहरि के नीतिशतक का अनुवाद "सेंचुरी आफ लाइफ" नाम से १९२४ में प्रकाशित हुआ पर इसके अनेक अंश बडोदा कालेज मगजीन में उन्नीसवी शती के अन्तिम दशक में छपते रहे।[2]

मेघदूत का उनका अनुवाद, जिसे अंग्रेजी के तेर्जा रामा (Terza Rima) छन्द में किया गया, अपने ढग का अद्भुत अनुवाद है। यह अद्भुतता समवत इसलिए आयी है कि वे कभी भी शाब्दिक अनुवाद नही करते थे। कविता का जो अर्थ उनके मन में प्रस्फुटित होता था, उसे ही वे अपनी विशिष्ट अंग्रेजी शैली में उपस्थित कर देते थे। ये अनुवाद मूल की शुद्ध प्रतिलिपि कही नही लगते। इनमें भी अनुवादक की अपनी सर्जनात्मकता स्पष्ट परिलक्षित होती है। चाहे अनुवाद विक्रमोर्वशीय का हो, चण्डी दास या विद्यापति की पदावलियो का हो चितरंजनदास के सागर सगीत का हो सभी में उनकी अपनी विशिष्ट मुहरछाप दिखाई पडेगी। उन्होंने इनके अलावा कुछ और भी अनुवाद किये पर अब वे उपलब्ध नही है।

उनकी प्राचीन वस्तु का आभास देने वाली पर पूर्णत मौलिक कृतियों में "लव एंड डेथ जो भृगु के पौत्र रुरु और मनका की पुत्री प्रियवदा की कथा पर आधारित है, बहुत ही महत्वपूर्ण रचना है। प्रियवदा गन्धर्व कन्या है, उसका बाह्य और आन्तरिक सौंदर्य रुरु के लिए सर्वथा निवेदित है। वह सर्वतोभावेन अपने जीवन का सर्वोत्तम रुरु को समर्पित कर चुकी है।

ताज कपोल और ओसडूबी आंखों वाली गौरांगी प्रियवदा ने

१ इवनिंग टाक्स प्रथम भाग पृ० २८१।

२ कलक्टेड पोयम्स एंड प्ले'ज प्रथम भाग प्रकाशकीय भूमिका।

अपने हृदय की कली को खोल दिया जो थी सिंदूरी अरुणाभ
प्रेम के सामने, रुरु के हित
रुरु तो उल्लास का समुद्र था
कमल कलिका के चतुर्दिक प्रेम की तरंगों का विह्वल सा नतन यह
आत्मा की लहरों से बेसुध प्रियवदा की आँखें एकदम मुकुलित थीं
रुरु के लिए समूची वसुन्धरा पूर्णता के पुष्प की गयपा थी
प्रियवदा को लगता था विश्व जैसे मधु आलिंगनों से भरा भरा।[1]

निश्चय ही यह प्रेम का उन्मुक्त सौन्दय पूर्णत रूमानी ह पर इस रूमानियत के बीच में पार्थिव भार एकदम तिरोहित हो गया ह और उसके स्थान पर आत्मिक मिलन के उल्लास ने एक नई शान्तिपूर्ण खुशी से दोनों को अपने में समेट लिया है।

तभी मृत्यु प्रियवदा को अपने आगोश में ले लेती ह। पथ्वी पर जन्मे प्राणियों की दुर्निवार नियति उसे जकड लेती ह और प्रियवदा के रूप में जिन्दगी आहें भरती बोल उठती ह—

कितना कम पाया मैंने
वहन्गी दिनों की खुशी औ लरजती हुई रात की हँसी
सहलाती हुई, दु ख और आसू, हाय अभी तो मैं
गिन भी न पाई थी चमकती हुई चिडियों को आधा भी
जो उस एक हरे जगल में रहती थीं। सूय का उगना
और डूबना भी देखा था कितना अभी, गाते हुए कोकिल औ
पपीहो से दोस्ती भी कितना कर पाई थी।[2]

कितनी प्राकृतिक और सहज चीजों की चाह ह जो जिन्दगी को सचमुच सौन्दय से समृद्ध करती ह। पर यह उसके भाग्य मे नहीं था। प्रियवदा चली जाती ह। रुरु के जीवन में अँधेरा छा जाता ह वह पागल की तरह प्रलाप नहीं करता। बिल्कुल चुप हो जाता ह। महान मौन सवत्र छा जाता ह। इसी सन्नाटे में प्रेम का देवता प्रकट होता ह और कहता ह कि तुम अपने बचे हुए जीवन का आधा देकर प्रियवदा को पाताल से ले आ सकते हो। नाना प्रकार की भयकर प्राकृतिक बाधाओ को पार करता हुआ रुरु पाताल में प्रवेश करता ह। यम रुरु को समझाते ह। अपनी आयु के वष क्यों गँवा रहे हो। इसकी म द से तुम ऋषि बन सकते हो। ऋषि के पौत्र को ऋषि बनना ही चाहिए। तुम शान्त भाव से आध्यात्मिक यात्रा क द्वारा तपस्या से उस प्रकाश को पा सकते हो जिसे पाकर ऋषि अनन्त के निकट पहुँचता ह। असीम शिखर

१ कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्लेज प्रथम भाग प० ८५।
२ वही प० ८९ ९०।

के उन्नततम माथे पर आसीन होकर तुम उस विराटता के दर्शन कर सकते हो जिसे छोटी मोटी खुशियाँ कभी डिगा नही सकती। रुरु एक क्षण के लिए अपनी आखो के सामने सारे सौन्दय को समन्वित करनेवाले उस आध्यात्मिक प्रकाश की हल्की-सी झलक भी पा लेता है पर वह न्यायित्व नही प्रियवदा का जीवन मागता है। प्रियवदा का मृत शरीर सजीव हो सकता है। मृत्यु की दुर्निवार सीमा के टूटते ही प्रेम का असीम प्रवाह प्राणमन पर छा जाता है।

अनगिनत क्षणों तक वह उसकी चमेली गध काया से
जो धूप में नहाई हुई लगती थी, मन को सहलाता रहा
पीती रहीं आखे पियासी सी रूप के समुद्र को
अपने ही निमुओं के चारो ओर घूमती हुई पथ्वी उच्छवसित थी
कोकिला की कुहू कुहू गूँजती थी विश्व के प्रभात में।[1]

विक्रमोवशीय भी अनुवाद कहा जाता है। है भी। पर जसा पहले ही कहा गया श्री अरविन्द के अनुवादो में भी मौलिकता का आग्रह सवत्र विद्यमान है। शुद्ध शाब्दिक अनुवाद के आग्रही इन्हें बुरा भी कह सकते है, किन्तु उनका उद्देश्य अनुवाद नही इन आख्यानो की नई व्याख्या प्रतीत होता है। 'द हीरो एण्ड द निम्फ' में भी मानव नियति से उत्पन्न सकट आता है जब उवशी पुरुरवा से बिछुड जाती है। प्राणो की बाजी लगाकर सौन्दय की जिस अप्सरा को उसने पाया था और जिसके गान्धर्वी प्रेम की मादकता ने उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को छन्दोबद्ध कर दिया था, उसे माया के अन्धकार में खो देना, उसके पौरुष के लिए चुनौती थी उस अधेरी रात में थक्के के थक्के जमें अन्धकार में वह उसकी प्रतिध्वनि का पीछा करते हुए दौडता है। उसकी पीडा भरी पुकार से पवत और निझर थकन होने लगते हैं। वह विछोह के दुःख की इन्तहा से मर्माहत होकर तडपने लगता है। अन्तत वह उसके पास पहुँच जाता है। वह उसके बगल में खडी है। पुन एक बार प्रेम नियति की क्रूरता पर विजय होती है।

आह ऐसी ही खडी रहो, ओ प्रिया पारदर्शी तुम
माणिक की अरुण आभा से अपने मुख को नहलाती हुई
कैसी अद्भुत सौन्दय की लपटें उभरती हैं।
खिलते हुए कमल की अरुणाई समूची मानो
भिनुसार के आगोश को ललछौंही रोशनी से भरती है।[2]

श्री आयगर लिखते हैं— प्रेम की विजय हुई, पर वह विजय ही मानव की हार

१ कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्लेज भाग १ पृ० ११३।
२ वही भाग २ पृ० ७९।

ह। इसी मोह ने क्षत्रिय पुरुरवा और ब्राह्मण रुरु को अगफल बनाया। व अपन ही भीतर के असत्य से प्रवंचित हुए।' [1]

मैं नही समझता कि श्री आयगर का यह निष्कष सही और सटीक ह। उनके निणय को मान लेने का अथ होगा वैयक्तिक पद्मवित्र की अभ्यथना जो श्री अरविन्द को कभी काम्य न थी। दोना ही कविताओ के अत में बिछुड प्रेमियों के मिलन को अभिव्यक्त करते वक्त क्या कवि श्री अरविन्द न "विरह व प्रभात में या' नये विहान या भिनुसार म जस प्रयोग निरुद्देश्य किए ह? ये कविताएँ मोह की निन्दा करने के उद्देश्य स नही मृत्यु और तमस पर मानवीय प्रयत्नों की विजय का साक्ष्य उपस्थित करने के लिए लिखी जान पडती ह। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो व अपने इन विजयी पुत्रो के चतुर्दिक आनन्दातिरक से उच्छवसित धरती का रेखाकन न करते। दूसरी बात भी ध्यान देने की ह कि ये दोनों कविताएँ सावित्री काव्य के आरभिक भावबिन्दु भी अपने से समेटे हुए हैं। दोनो कविताएँ १९०० क पहले लिखी गयी इसलिये इनमें दिव्य चेतना के अवतरण और मृत्यु पर मानव की विजय का वह स्पष्ट स्वर नहा सुनाई पड सकता जसा सावित्री में ह किन्तु यदि इन कविताओ का जो प्रिय को मृत्यु मुख या तमसलोक से लौटा ले आनेवाली मानव शक्ति की अभ्यथना करती ह मोह की निन्दा का काय मान लें तो सावित्री और सत्यवान् का पूरा लाजेण्ड और सिम्बल" निरथक हो जाता ह। क्या सत्यवान को मृत्युमुख से छुडाने का सावित्री द्वारा किया प्रयत्न मोह कहा जायेगा? अत मुझे खेद के साथ श्री आयगर क निष्कष का प्रत्याख्यान करना आवश्यक प्रतीत होता ह।

कवि अरविन्द और योगी कवि अरविन्द की रचनाओ का अन्तर बडा स्पष्ट ह और उनके काव्य के विद्यार्थी को इन अन्तरो को प्रक्रिया को ठोक से समझ लेने को जरूरत है। तभी वह आसानी से सावित्री के उलझे हुए स लगते किन्तु शुद्ध रत्नों की प्रभा स भास्वर बिम्बो प्रतीको और उनको अपने समुज्ज्वल प्रवाह म समेटती मान्त्रिक भावधारा का ठीक से बोध हो पायेगा। आरभिक कविताओ का स्वर भी क्लसिक ह किन्तु व रूमानियत से सवथा मुक्त नही ह। यह सत्य ह कि उनकी रूमानियत अग्रेजो स्वच्छन्दतावादी कवियो की तरह लिजलिजी और भावुकतापूर्ण नही ह, उसमें शली, कीटस को मदुता नहीं भारतीय आय कवि का पौरुष सवत्र प्रतिच्छायित ह। यही पौरुष अश्वपति की साधना में निष्ठा दृढता और समदर्शी सहनशीलता की शक्तियो मे बदल जाता ह। श्री अरविन्द इसी पौरुष के कवि थे। उनके चरित्र बाजीप्रभु परसियस सभी इस दीप्ति से पूर्ण हैं किन्तु पौरुष एकागी नही ह, इसमें भी कलात्मक मानवीय रुचो त्थापन और सस्कारिता भी ह। नारी चरित्रा में विदुला को भुलाया नही जा सकता

१ श्री अरविन्दो कलकत्ता १९५० पृ० ७०७'।

नारी की सम्पूर्ण मदुता, सौन्दर्य और माधुर्य के बावजूद वह एक दृढ इच्छा शक्ति की नारी है। यह एक प्रसिद्ध पौराणिक चरित्र है, किन्तु अरविन्दीय भावलोक में नई आकृति लेकर उपस्थित होता है। अपने युद्धभीत पुत्र को अपहृत राज्य के लिए युद्ध करने को वह राजस्थानी चारणों की तरह जगाती है। विधवा राजमाता के रूप में नही। विदेशी सत्ता को उखाड फेंकने का आह्वान करनेवाली शक्ति के रूप में वह अविस्मरणीय चरित्र बन जाती है। अपनी पूरी प्रकृति में, रक्त संस्कार, स्त्री-स्वभाव और कर्तव्य में नारी सुलभ कोमलता को रखते हुए भी वह लौह स्नायुवाली प्रदीप्त अग्निशिखा की तरह दमकती है—

आर्य कर्म से कभी न च्युत हो, कभी न करना कार्य अनार्य
भय से झुकना व्यर्थ सदा है और स्वर्ग दुष्प्राप्य, सफलता
मिल न सकेगी, संघर्षों में जूझो विजयलब्ध होकर कृतकार्य
मानूँगी मैं तभी पुत्र हो और मिलेगी मा की ममता।[1]

विदुला जैसी नारियों में एक साथ मदुता और संघर्षो से जूझने की अपूर्वशक्ति, पुरुरवा, रुरु, वाजी प्रभु और परसियस जैसे पौरुषवान लोगों में प्रेम की लरजती हुई सौन्दर्यपूर्ण कलात्मकता या पृथ्वी को दिव्य बना सकने की अभीप्सा का समन्वय श्री अरविन्द की कविताओं में एक ऐसी क्षमता पैदा करता है जो तत्कालीन अंग्रेजी कवियो से भिन्न है। वही वह तत्कालीन भारतीय कवियों की नारेबाजी भरी राष्ट्रीयता अथवा गीतात्मक रूमान केन्द्रिता से भी अलग है। इसी अदभुत सम्मिलन का रेखांकित करते हुए के० डी० सेठना ने लिखा था— इतनी अधिक छन्दमधुरिमा और इतनी अधिक गत्वरता एक साथ एल० एबरक्राम्बे और गार्डन बॉटम्ले की कलाओ को एकाकार कर देती है। ये कवि निश्चय ही भाषा की सार्वजनीनता और मुहावरेदानी में सिद्धहस्त हैं, श्री अरविन्द यद्यपि व समासशली को रूढ बनाने के दोष से सर्वथा मुक्त थे, उनकी अपेक्षा निश्चय ही कम घरू और सहज लगेंगे, किन्तु उन्ही की तरह वे ज्यादा साहस के साथ अपने माध्यम का एक और उद्देश्य से प्रयोग करते है। वे उनसे वहा भिन्न होकर ही उत्कृष्ट हो जाते है क्योंकि वे अत्यन्त सार्वजनीन भाषा के भदेसपन से मुक्त रहते हैं। उनके भीतर कही ज्यादा पूर्णता के साथ समन्वय साधित होता दिखाई पडता है।[2]

सावित्री

श्री अरविन्द के लिए कविता उसी दिन मात्रिक या ऋचा-माध्यम बन गयी, जिस दिन उन्होंने इस जगत् से परे के कुछ को जिसके होने पर ही जगत का होना होता

१ कलेक्टेड पोयम एण्ड प्लेज भाग २ पृ० २४२।
२ पोएटिक जीनियस आफ श्री अरविन्दो पृ० १५।

ह, देखा और अनुभव किया। अनुभूति की प्रामाणिकता के लिए यह आवश्यक था कि वे इस प्रकार के माध्यम को उपलब्ध करें जो उसे ज्यों का त्यों अभिव्यक्त कर सके। उसके लिए उन्हें भगीरथ प्रयत्न करने पड़े।

खोद रहा मैं त्रासभरे इस कीच बीच में
लम्बी गहरी एक दरार।
उतरे जिससे स्वर्णनदी का गीत मनोहर
मृत्यु हीन ज्वाला का घर।[1]

श्री अरविन्द के योग की बात ही है, पाताल की यात्रा। कीचड़ के बीच निरंतर गहरे उतर कर मधुरिमा के स्रोत को पाना। दान्ते इसी पाताल की यात्रा की। पुरुरवा ने इसी अंध तमस को चीरने की कोशिश की। पर श्री अरविन्द पाताल और परमधाम को जोड़ना चाहते हैं। वे इनके बीच सतरंगी सेतु बनाने का निकले थे। यह लाला का नहीं ज्वाला का घर है, इसीलिए इसके बीच रहना आसान नहीं और उससे भी अधिक कठिन है इसके बीच समता का भाव बनाकर द्वन्द्वातीत होना। सत्य को देखने की लगातार साधना और उसे निरावृत्त अभिव्यक्त करने की कोशिश। सावित्री इसी प्रयत्न का फल है। यह मान्त्रिक कविता का महाकाव्य है, साधना का स्तवराज है, और पूर्णयोग का द्वार—अपूर्वविश्वमहास्तोत्र है जिसके विषय में श्री मा ने लिखा है—सावित्री पढ़ना का अर्थ है योगाभ्यास। इसके लिये आध्यात्मिक एकाग्रता चाहिए। किसी को भी यहाँ वह सब कुछ मिलेगा जो ईश्वर को पाने के लिए जरूरी होता है। योग का प्रत्येक चरण यहाँ अंकित है। यही नहीं इसमें अन्य योगों का रहस्य भी समाहित है। वस्तुतः यदि कोई एक एक छन्द में व्यक्त सत्य का अनुसरण करे, तो वह निश्चय ही अन्त में पूर्ण रूपान्तर के द्वारा अतिमानसिक सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। यह एक ऐसा सच्चा निर्देशक है जो कभी भी साधक का साथ नहीं छोड़ता उसकी सहायता हमेशा प्राप्त होती है, जो इस पथ पर चलना चाहता है। सावित्री का प्रत्येक छन्द मन्त्रदान है, जो उस सब कुछ को अतिक्रान्त कर जाता है जिसे अब तक मनुष्य ने ज्ञान के रूप में प्राप्त किया है। और मैं जोर देकर कहना चाहती हूँ इसमें शब्द इस ढंग से नियोजित किये गये हैं कि उनसे उत्पन्न पवित्र लयात्मकता तुम्हें वहाँ ले जाती है जो वाक् का उद्गम है अर्थात् ओउम्।[2]

यह है सावित्री का माहात्म्य। यह सब कुछ उनके लिए है जो साधना के पथिक हैं। कविता के पाठकों के लिए सावित्री का अपना अनूठा महत्त्व है। इसमें महाकाव्य की नवीन से नवीन बिम्बयोजना और शैली शिल्प का अद्भुत संयोजन है।

१ गाड्स लेबर, कविता का अंश।
२ श्री अरविन्दो द होप आफ मैन में उद्धृत पृ० ४६६-४६७।

सावित्री २३८१३ पक्तियो में लिखा हुआ वैदिक चेतना का महाकाय है। सिराक्यूज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रेमो एफ० पाइपर (Raymond Frank Piper) ने लिखा है कि मुक्तवत्त में लिखा हुआ यह काव्य सभवत विश्व की सभी भाषाओं में लिखे हुए काव्यों में सर्वश्रेष्ठ है।[1]

श्री अरविन्द की कविताओं को समझने और उनका रसास्वादन करने के लिये काव्य को, विश्व की विभिन्न भाषाओं के काव्य के सर्वश्रेष्ठ को समझने की एक सस्कारिता अत्यन्त आवश्यक है। वे वाल्मीकि को सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं कालिदास को कलात्मकता का प्रतीक। होमर और वर्जिल उनके लिए सहज बोधगम्य थे आत्मीय थे। शेक्सपियर को उन्होंने आत्मसात कर लिया था। उन्होंने आधुनिक अग्रेजी कविता की उस धारा का स्पष्ट सकेत दिया है, जो उनकी मान्त्रिक कविता का आधार बनी। उन्होंने लिखा है— वाल्ट ह्विटमन और उसके उत्तराधिकारियो की कविता जीवन की कविता है किन्तु यह जीवन मनुष्य की आत्मा तथा मानवता की सामूहिक अन्तरात्मा की महत्ता तथा बौद्धिक अन्तर्ज्ञान के द्वारा विस्तारित प्रकाशित और उन्नीत है। इसी मानवता की सूक्ष्मतम उच्चता पर स्थित अन्तरिक्ष में जो अब भी अप्राप्य है, टगोर की कविता अपनी उडान भरती है। यह भी आध्यात्मिकता के पूर्ण प्रकाश में नही जा सकी, बल्कि एक ऐसे वायुमडल में तरती रही जिसमे अपने अन्वेषण से उसने सूक्ष्मता और मृदुता का एक मनोमूलक आध्यात्मिक दिव्यलोक पा लिया था, जिसमें परासत्ता की परछाइयाँ दिखाई पडती हैं। उनकी कविता की विस्तृत लोकप्रियता इस बात का सबूत है कि आज के मनुष्य का मन किस दिशा की चाहत से भरा है।[2]

स्पष्ट ही श्री अरविन्द रवीन्द्रनाथ के काव्य को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख मानते हैं और यह प्रयत्न करने के पक्ष में दीखते हैं कि अगले कदम के रूप में आध्यात्मिक काव्य को आना चाहिए। सत्य तो यह है कि श्री अरविन्द को आश्चर्यकारी रूप में विश्व की कई समृद्धतम भाषाओं का ज्ञान होने से उनमें लिखे हुए महत्तम और समृद्ध साहित्य का बडा सूक्ष्म स्तरीय परिचय था। सस्कृत बांग्ला, फ्रासीसी, ग्रीक लटिन और अग्रेजी का पूर्ण ज्ञान उनके लिए एक अभूतपूर्व और उर्वर आधार साबित हुआ। चीली की विश्वकवयित्री मदाम गैब्रील मिस्त्राल ने ठीक ही लिखा है— "उनकी आश्चर्यकारी विशेषता वह अभिव्यक्ति क्षमता है जो निर्दोष पारदर्शी हीरे की तरह सुन्दर और स्पष्ट है जिसके कारण कोई काव्यशास्त्र से अपरिचित व्यक्ति भी कठिनाई में नही फसता। विश्व की छह भाषाओं के ज्ञान ने पाडिचेरी के गुरुदेव को समन्वय की अद्भुत क्षमता, सब प्रकार के अवरोधो से मुक्त स्पष्टता तथा एक ऐसा

१ इण्टग्रल फिलोसाफी ऑफ श्री अरविन्दो नान एल्न एट अनविन पृ० १२५।
२ फ्यूचर पोयट्री पृ० ४००।

सौंदय प्रदान किया ह जो जादुई लार की सीमाए छू रहा है। हमारे सामने उन्होंने ऐसा गद्य प्रस्तुत किया जो जा जमन बाल्जयी एगार और मारानीय रहस्यवाद क मूल स्रोत एसट (Eckhart) क समानान्तर ह। व उच्चारणों हमारे सामने ह और अब हम जान गये ह कि विश्व में एक ऐसी भी जगह ह जहाँ संस्कृति न अपनी प्रतिष्ठा भरी आवाज पा ली ह, जहाँ एक व्यक्ति क भीतर अतिमानसिक जीवन, और उसको व्यक्त करने की अद्भुत शैली प्राप्त है जो अपने सुन्दर और समृद्ध बहुमित्र गद्य को आत्मा के काय क लिए साधन के रूप में इस्तेमाल करता है।'[1]

मित्राल की ये पक्तियां सभवत एक महान् प्रतिभाशालिनी काव्यद्रष्टा की आर से अभिव्यक्त सच्ची किन्तु आज क विश्व में विरल ईमानदारी स भरी श्रद्धांजलि की प्रतीक ह।

श्री अरविन्द का महाकाव्य सृष्टि के पहले विद्यमान् शाश्वत् तमिस्रा अथवा जड तमस् के अनुभूतिपरक वणन से शुरू होता ह। ऋग्वदिक ऋषि इस स्थिति को "तमासीत्तमसागूढमग्रे' अर्थात गूढ़तमस से आच्छन्न तमस कहा करते थ, किन्तु अरविन्द का यह मात्रिक काव्य इस स्थिति का अपनी प्रतीति और अन्तदशन क आधार पर बहुत स्पष्ट करके उपस्थित करता ह। तमस की नाना मुद्राओं का स्पष्टीकरण किया गया ह पूरा ब्रह्माड अशेष तमस् में डूबा ह। यह सही ह कि देवताओं का, जो सृष्टि के विभिन्न स्तरों का शासन और नियमन करते ह जागरणकाल आनवाला था, शाश्वत उषा के प्रतीक का सूय उदित होने को था किन्तु प्रकाशदायी रास्ता तब तक जड तमस से ढका हुआ था। महारात्रि, शाश्वत के मंदिर में, जो बिल्कुल प्रकाशहीन था इस तरह लेटी थी कि उसने देवताओं के जागने और सक्रिय होने के सभी रास्ते रूँध दिये थे।

'अप्रेकत चिह्नों से रहित यह सूक्ष्म कारण सलिल सवत्र तमस के रूप में विद्यमान था। तमासीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेत सलिल सवमा इदम। ऋ० १०।१२९।३।

> महारात्रि का मानस, सविराट आच्छादक
> उस दीपहीन मंदिर में, शाश्वत के
> धनकुहाच्छन्न दुर्भेद्य तमस के
> महामौन की सीमा पर विस्तृत हो पडा हुआ था।

एक अमनस्क चक्षुहीन शून्य का महागन सारे ब्रह्माण्ड को अपने म समेटे हुए था। कवि को लगता ह कि वह तमस और कुछ नहीं ह बल्कि विगत सृष्टि की वह सीमाहीन निष्फल ऊर्जा ही ह जो जन्म और मरण की पहेली को सुलझाने में असफल थक कर चूर और श्लथ होकर चतुर्दिक फल गई ह। उस कुहरे और अधकार के बीच वह

१ श्री अरविन्दो मेम उ मी प० ११४।

विस्मृत सत्ता वैसा ही एक अभिशप्त विश्व पुन रचने की प्रक्रिया में कुछ न कर पाती हुई सी भटक रही ह।

उस रूपरहित चेतना की यह हल्की इच्छा अन्धतमस की गिल्लो को तोडने लगती है। यही ईश्वरीय "तपसस्तन्महिना" यानी सृष्टि को उत्पन्न करने की हल्की इच्छा ह। इसे ही ऋषि आदि इच्छा अथवा "एकोऽह बहुस्याम" का बोध कहते ह। यही "कारण जलधि" ह। जिसमें से सृष्टि का नाभिकमल उत्पन्न होता है। इस बोध का जो बाध न होकर पूर्वज्ञान जसो कोई चीज था परिणाम हुआ, यानी अचानक उस *गूँगी गहराई के ऊपर किसी अनजान देवता का चक्षु झलक उठा। यह प्रकाशदायी चक्षु* आदि सूय का टोह लगाने निकला हुआ बालचर हो मानो। लग रहा था कि पुन सृष्टि की प्रक्रिया शुरू करने के लिए कोई महाशक्ति हस्तक्षेप करने लगी ह। उसका वह सन्देश, वह सकेत दिग्भ्रमित प्रकृति के महावक्ष को अधिकृत करके, उसको पुन सृष्टि के लिए तैयार हाने को बाध्य करता हुआ-सा उसी शून्य में, बो दिया गया।

महाकाल के वक्ष स्थल में स्मृति कांपी
मानो जैसे बहुत काल की मरी आत्मा जीवित हो उठी
पर विनाश जो प्रत्येक पतन के बाद उभरता
भूतकाल के सभी क्रिया-कलापों से सज्जित मर्चो को
तोड चुका था और नष्ट को फिर से निर्मित करता होगा
अत पुराकाल के अनुभव सारे फिर प्रयत्न कर उठे
सब कुछ हो सकता है वहा,
जहा प्रभु के हाथों का हल्का सा स्पर्श मिले। (११)

श्री अरविन्द सृष्टि की प्रक्रिया का जो सदा से बडे से बडे क्रान्तदर्शी के लिए भी अबूझ पहेली रही ह, अत्यन्त स्पष्ट, नाना, अनजान और अदृष्ट रगों में रजित अद्भुत और उद्भासक वर्णन उपस्थित करते हैं। किस प्रकार अन्धतमस टूटा। कैसे देवपथ पुन उन्मुक्त हुआ। कसे वनस्पति जगत उत्पन्न हुआ। किस प्रकार चिरादिम पशुलोक से विकसित होकर सृष्टि के मच पर मनुष्य ने प्रवेश किया, किस प्रकार वह मानवीय ज्ञान के उस कुहाच्छन्न आरभिक काल में श्रमिक के रूप में अपनी मामूली शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के सघर्ष करता हुआ अपने अस्तित्व की रक्षा में लगा हुआ था।

इसी प्रकार के एक कबोले के भीतर सावित्री ने जन्म लिया। सावित्री का जन्म सामान्य नहीं ह। वह मानवी काया में ईश्वरीय सत्ता की प्रतिनिधि है इसीलिए उसे सभो सीमाओं से जो यथार्थ होती हटाकर कवि उसे तात्त्विक स्तर पर ले जाता है। सावित्री अपने दैवीस्थान से पृथ्वी की ओर चलती ह—

शाश्वत स्थिर और परिवर्तन की राजदूतिका
देवी सर्वज्ञ वह झुकी सहारा लिये हुए विस्तार बध का

जो घेरे था नियति-बद्ध यात्रायें करते नक्षत्रों को ।
देखा उसने दिक् प्रान्तर प्रस्तुत था उसके चरणों के हित
एक बार वह तिरछे मुड़ी देखने अपना सूरज जो आवृत था
रुकी रही सोचती हुई कुछ, और चल पड़ी ।

स्पष्ट ही दिव्य लोकमंडल से पृथ्वी की ओर चलते हुए एक क्षण के लिए सावित्री भी ठिठक गयी । इस कर्दमपूर्ण पृथ्वी पर जहाँ अविश्वास, प्रवंचना, छल छद्म और असत्य का भयानक अंधकार छाया हुआ है आने से पहले सावित्री का भी एक क्षण के लिए असमंजस में पड़ जाना अस्वाभाविक नहीं है

यहाँ जहाँ अज्ञान हमारा
अर्धदीप्त सा महागर्त के तट पर चलता
भ्रान्त जगत के मूर्च्छित पर
यहाँ जहाँ कोई अपने आगे का एक कदम भी नहीं जानता
और सत्य कटंकित पृष्ठ पर सन्देहों के आसीन जहाँ है ।
श्रम के त्रासद परायत्त इस क्रिया क्षेत्र में
जो कि किसी व्यापक उदासीन के नीचे विवश पड़ा है ।

ऐसे ही विश्व में जो अपने उद्धारक सन्देश वाहकों की निरन्तर उपेक्षा करता है । वे तो मुकुट पहनाने आते हैं, और बदले में कंटकों का उपहार पाते हैं क्रूस पर लटकाये जाते हैं, वह आयी थी सिर्फ मानव को दुःखों से मुक्त कराने, सिर्फ उनकी सहायता करने । सावित्री के अवतरण का अध्याय बड़े नाटकीय ढंग से अन्त में यह सूचना देता है कि वह वही दिन था जिस दिन सत्यवान मरने वाला था ।

जाहिर है कि पाठक के मन में यह जिज्ञासा पैदा कर देने के बाद कि सावित्री दुःखी मानवता के उद्धार के लिए आयी थी और विश्व की निर्मम नियति का स्वयं शिकार हो गयी, कवि को यह बताना जरूरी लगा कि सावित्री क्यों और कैसे आयी ।

महाभारत की सावित्री में भी अलौकिकता थी । आरण्यक पर्व में सावित्री की कथा में मद्रदेश का राजा अश्वपति पुत्रहीन दिखाया गया है । उसने तपस्या और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है । प्रत्येक छठें दिन व्रत रहता । वह एक लाख गायत्री मंत्रों से प्रतिदिन हवन करता था । अट्ठारह वर्षों की इस तपस्या से सावित्री प्रसन्न होकर उपस्थित हुई । उसी की कृपा के प्रसाद से राजा को कन्या प्राप्त हुई ।

सावित्र्या प्रीतया दत्ता सावित्र्याहुतया ह्यपि
सावित्रीत्येव नामास्याश्चक्रुर्विप्रास्तथा पिता

सावित्री की प्रसन्नता से सावित्री-हवन से उत्पन्न कन्या को पिता और ब्राह्मणों ने सावित्री नाम दिया ।

महाभारत की सावित्री भी कोई कम दीप्तिवती नहीं थी । उसका तेज भी अमोघ

और अनिवाय था।

ता सुमध्यमा पथुश्रोणीं प्रतिमा काञ्चनीमिव।
प्राप्तेय कन्येति दृष्ट्वा सम्मेनिरे जना ॥
ता तु पद्मपलाशाक्षीं ज्वलन्तीमिव तेजसा।
न कश्चिद वरयामास तेजसा प्रतिवारित ॥

—वनपव, प्रतिव्रत २६।२७।

महाभारत की यह सुवण वर्णी तेजोदीप्त सावित्री है, जिसके तेज को सहने में कोई भी राजकुमार समय नही हुआ। इसलिए उसने नारद के मना करने पर भी द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान से विवाह किया यह जानते हुए भी कि उसकी केवल एक वर्ष मात्र आयु शेष ह।

श्री अरविन्द ने सावित्री को एक नवीन प्रतीकात्मक अथवत्ता प्रदान कर दी है। महाभारत की सावित्री आधुनिक विश्व में एक महान साधक की आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए मानव चेतना के रूपान्तरण के लिए नया रूपाकार और शक्ति लेकर आध्यात्मिक राज्य की सन्देश वाहिका के रूप में यहा उपस्थित हुई ह। महाभारत की सावित्री ने अपने अखड पातिव्रत और तेज से यम को प्रसन्न करके मृत पति के लिए जीवन दान पाया था। अरविन्द की सावित्री इससे बिल्कुल भिन्न ह। वह दिव्यशक्ति है। परा शक्ति ही योगीराजा अश्वपति की प्राथना पर पृथ्वी के मनुष्यों के कल्याण के लिए यहा अवतरित होती ह।

अश्वपति की साधना श्री अरविन्द की ही साधना ह। उसका समूचा काव्य सभार इसी कारण कवि की सर्वाधिमूलक अनुभूतियों पर आधारित ह। महाभारत में अश्वपति ने पुत्रेष्टि व्रत अवश्य किया, पर कोई विशिष्ट साधना नही की था जिससे आत्माप लब्धि प्राप्त हो सके। श्री अरविन्द ने अश्वपति की इष्टापूर्ति के लिए की गई तपस्या को एक नया अथ दे दिया ह। अश्वपति अर्थात शक्तिशाली मानवात्मा (अश्व शक्ति का प्रतीक है) जो परा चैतन्य से ही उत्पन्न होती ह, निरन्तर उसी की उपलब्धि के लिए तपश्चरण कर रही ह। इसी कारण दूसरा पव श्री अरविन्द द्वारा योग की व्याख्या और साधना क्रमों में उपलब्ध एक के बाद एक उच्चतर लोकों के विश्लेषण से भरा हुआ ह। अश्वपति परम्परा प्राप्त वदिक माग से अपनी तपस्या द्वारा उच्च से उच्च लोकों को प्राप्त करता हुआ सोचता ह कि क्या इस पृथ्वी पर पूणता को उतारा जा सकता ह। उसकी अभीप्सा अनन्य ह, उसकी तितिक्षा अनिवचनीय और उसकी निष्ठा अपरिमेय ह।

उसने अपनी साधना से जान लिया कि पृथ्वी से मनुष्य मानसिक बन्धनों द्वारा जकडा हुआ ह, इसलिए उसने मन के बन्धनों को तोडकर पार्थिवता से मुक्ति पा ली। अश्वपति मानव विकास की प्रक्रिया का प्रतीक ह।

तान्त्रिक गुह्य प्रक्रिया की उस मौनशक्ति से
पूर्वनियत आकार क्रिया को पूरा करता
एक जन्म से अपर जन्म का यात्री होता
तल से तल करता रहा पार वह
सतत बदलता आत्मा की मूर्तिमती आकृतियाँ
अपनी ही दृष्टि तले समुन्नत लतीं
देख रहा था। तुच्छ कीट में आने वाले दिव्य तत्व को
और अंत में महाकाल के पथ का यात्री
शाश्वत की सीमा पर पहुंचा। १।३।

अश्वपति अचानक ही इस स्थिति को प्राप्त नहीं हो गया। इसे प्राप्त करने के लिये उसे क्या नहीं करना पड़ा। वह पहले अचेतना के पाताल लोक में, पुन भौतिकता के विभिन्न स्तरों पर बार-बार प्रवेश करके अपने को आजमाता रहा। उसने निम्नतर प्राणिक स्तरों के परिशोधन के लिये यात्रायें की, उसने नरक और स्वर्ग सभी देखे। और अन्त में वह मानसिक स्तर से सीधे उठकर वह आदर्शों और समुज्ज्वल मानसिक लोकों में पहुँचा। ये लोक कैसे थे—

''जहाँ पर विचार सभी आयत हैं विचारातीत तत्व में
अनिर्वचनीय वह गन्ता है वचनीय विश्व को''

यह विचारों के उद्गम का लोक था। हमारे समूचे विचार यहीं से आते है, किन्तु इस प्रक्रिया का ज्ञान मनुष्य को तब तक नहीं होता जब तक वह अपने ज्ञान के अहं को ढोता रहता है। मानसोपरि लोकों का दूसरा स्तर विश्वात्मा का है जिसका बहुत ही अदभुत वर्णन किया गया है—

रात की चांदहीन चुप्पी से भरा हुआ
किन्तु एक अदभुत गीतमयता से गुंजरित
रहस्यगर्भ निद्रा के स्नायुओं को देता हुआ थपकी सा
ऊँघता हुआ जादुई मंजर वह आग्रह से भरा हुआ
पायल के घुँघुरुओं से झनकता था
एकाकी दिल की डगर पर चलता हुआ
जहां इतहा तन्हाई का नतन ही दता आश्वासन था
अथवा लगता था ऐसा कहीं दूर जाते हुए कारवां की
टुन टुन आवाजें उभरती हों।

अश्वपति के चतुर्दिक फैले वातावरण और एक से एक उच्च चेतना के स्तरों पर चलती उसकी यात्रा इतनी अद्भुत ढंग से वर्णित है चित्रित है कि नितान्त सूक्ष्म अनिर्वचनीय गूढ़ता व प्रदेशों का कवि ने अपनी सम्पूर्ण सच्ची रहस्य अनुभूतियों द्वारा साकार कर

दिया है। उसने इन्हें इस ढग से ऐसे उपस्थित किया है कि साधना के इस सघष, तडप, मौन, घूणन, और अप्रतिहत अवस्था के आगे इस विश्व के तमाम दृश्य और सघष नितान्त फीके और नकली लगते है। अत में अज्ञेय को ज्ञेय बनाने की अपनी महत यात्रा के दौरान अश्वपति भगवती माता के लोको में प्रवेश करता है। क्योंकि वह जानता है कि अपने दुरन्त सयम और तपश्चरण से उसने जिस चोटी को अतिक्रात किया है वह सबसे ऊँचा शिखर नही है। इसलिए वह सृष्टि के उस उदगम की ओर चलना है क्योंकि उसके रहस्य को जानकर ही वह पथ्वी पर आहलाद और मौन में मोह और सौंदय में, अर्थात तमाम विरोधमूलक तत्वो के बीच समन्वय पा सकने में समर्थ होगा। यही यात्रा उसे "आत्मधाम और नई सष्टि के रहस्य लोक' तक पहुँचाती है। उसने विचारहीन विचारो के रहस्य के भीतर से उठने वाले गुह्य इशारो पर अपने को केन्द्रित किया और अग्रिम आरोहण पर चल पडा। इस विराट सकल्प म माना उसके भीतर सोये देवता का स्पन्दन जग उठा हो। ज्ञानदीप्त सत्य के लोक की देहरी सामने थी।

एक साथ अपने सूर्यों से उदभासित
त्रिपुर स्वग हो उठे प्रज्ज्वलित
रहसगभ में सोया क्षत वह त्रास भरा
सहसा हो उठा अनावत्त।

इससे भी आगे वह अनजान महत्ता के क्षेत्र को आयत्त करता बढता गया और तब इस लम्बी और विराट सघष-साधना का अन्त करीब आया। सावित्री की तीसरी पुस्तक का चौथा सग ' दशन और वरदान का सग बन गया।

सहसा लगी सुनाई पडने उस अनन्त शून्य में अतिपावन
पैरों की ध्वनि, एकाकीपन की गहराई को चीरती हुई मनभावन
एक परस ने उसके शरीर की शिरा शिरा को कर दी झकृत
सीमित हृदय लगा भेंटने एक हृदय उल्लसित असीमित।
नीरवता टूटी, आत्मा और शरीर आनन्दातिरेक से होले पुलकित
मन की गति औ' जीवन सारा हो उठा सुधा वषण से प्लावित।
शक्तिपुत्र, ओ सष्टि शिखर के यात्री ओ, आरोहण तत्पर।
तू एकाकी, साथ न कोई, शाश्वत के इस स्वण द्वार पर?
जीत चुका जो सब तेरा है, पर इससे आगे बढने की कोशिश मत कर।
आविर्भाव सत्य का समयपूव कर देगा पथ्वी का अस्तित्व विकल
यह अमेय अवतरण सहन करने योग्य नहीं है अभी मनुज दुबल।[1]

१ सावित्री प्रथम खण्ड पृ० ३०१ ३०६।

अश्वपति मर्माहत सा खडा रह जाता है। उसे लगता है कि क्या वर्षों की साधना और तपश्चर्या से उसने जो किया वह निष्फल जायेगा ? फिर भी वह विश्वास नही हारता। भागवती महाशक्ति ने सारे मानवीय विश्वास की त्रुटियाँ बताकर उसे पहले से अधिक समृद्ध कर दिया है वह अब अपने और अपने सरीखे मनुष्यों की सारी दुबलताएं और क्षमताएं स्वयं आद्याशक्ति के द्वारा जानकर ही तुष्ट है वह जानता है कि मानवीय ज्ञान के ये तम्बू निहायत क्षुद्र और अस्थायी हैं। वह जानता है कि जीवन का पक्ष बहुत गहरा और अतल्व्यापी है। मनुष्य जो है वह सामने है। ईश्वरीय कृपा और दैव सहायता के बिना वह क्या कर पायेगा। अश्वपति अपने लिए कुछ नही चाहता। किन्तु मनुष्य जाति के लिए किये गये स्वेद और रक्त को एकाकार करके की गई अपनी इस साधना को निष्फल होते वह नही देख सकता। अत वह अन्तिम प्रयत्न के लिए तैयार होता है और महाशक्ति से प्रार्थना करता है।

ओ ऋतावरी अन्तरतम में सूर्य छिपाये,
नाना स्वर्गों में बन्द, ज्योति की गहराई को
भास्वर करने वाली, वाचा पश्यन्ती, ओ अमोघ ज्ञानेश्वरि,
जगज्जननि, प्रज्ञाशोभा, ओ त्रिपुरसुन्दरी
शाश्वत कलाकार की कौल बधू ओ
अब न विलम कर रख दे कर तू स्वर्ण यष्टि पर महाकाल की
जो लगता है कर न रहा साहस कि खोल दे
हृदय देश वह शाश्वत प्रभु का।
अरे विश्व की दीप्तानन्द निर्झरी
अपने रचे विश्व से मुक्ते, ओ अप्राप्य
लोकों की निर्बंध शक्ति तू, अन्तरतम की ओ सुवासिनी
महालास तू। तुझे ढूढ कर बाहर-बाहर मानव हारा
हे रहस्यमयि संगीते, तू वेदवाक सी सदा प्रतीकित
अपनी शुभ्र दया को आकृति देकर पृथ्वी पर अवतरित करो
तेरा ही कोई एक रूप आ जाये जग का समुद्धार करने को
भर दे तेरा एकाकी क्षण इस अनन्त को।[१]

अश्वपति की प्रार्थना निष्फल नही गई। राजराजेश्वरी महाशक्ति ललिता त्रिपुर सुन्दरी ने या कहें भागवती महाशक्ति ने मानव जाति के उस अग्रगण्य यात्री को पूर्ण आश्वस्त करते हुए कहा—

'निस्सीम व्यापक एक मन जो विश्व सारा बाँध लेता

१ प्रथम सर्ग, पृ० ३११।

हृदय मधुरिम और दोलित शक्ति ईप्सित माप लेता
देवगण की भावनाओं से द्रवित हो, "जायगी"।

अश्वपति इस वरदान का सुनकर परम प्रसन्न हुआ। महाशक्ति अपने इस प्रतिनिधि का व्यक्तित्व और लक्षण बताती रही। उसकी शक्तियों का परिचय देती रही जिनके समन्व से वह इस पृथ्वी का रूपान्तरण कर सकेगी।

ताकतें सब उच्चताएँ निहित होंगी, एक सुन्दरता
निसर्गी यहां पृथ्वी पर चलेगी, बादलों के पाश जैसे
कुन्तलों में सदा उसके खुशी सोयेगी। और उसकी देह
मानों कि जैसे घरु तरु पर प्यार का पछी मनोहर
पख अपने फडफडायेगा। दु ख हीना वस्तुओं से
जागता सगीत जो उसको सजायेगा।
पूर्णता की बीन स्वर उसका सँवारेगी
और उसकी खिलखिलाती हसी में स्वर्ग को स्रोतस्विनी
कल्नाद करती ही रहेगी। अधर वे मधुचन्द्र
होंगे परमविभु के और उसकी छल्छलाती खुशी
दैवी अग औ' प्रत्यग में जो कि स्वर्णिम पात्र जैसे हैं
बसेगी, और देवनन्दन के प्रफुल्लित पुष्प जैसे वक्ष उसके,
मौन हिय में धरेगी वह परम गरिमा ज्ञान की
बल असीमित साथ होगा खडग जैसे
युद्धकर्ता को निरन्तर। और उसके चक्षुओं से
शाश्वती गुनिया निहारेंगी, अपरमित
मृत्यु के भय क्रान्त क्षण में बीज बोया जायेगा।
स्वर्ग की टहनी मनुज की भूमि में आरोपिता होगी
प्रकृति अपने मत्य चरणों को उलँघ कर शान्त
होगी। नियति उसकी अडिग इच्छा-शक्ति के
आगे बदलने को विवश होगी।[१]

और सावित्री पृथ्वी पर अवतरित हो गयी। महाभारत की सावित्री ने अकृतकार्य किया अर्थात यमपाश से अपने पति के प्राण मुक्त कराये तो आश्चय से गौतम ऋषि ने पूछा था—

श्रोतुमिच्छामि सावित्रि त्व हि वेत्थवरावरम
त्वा हि जानामि साविनि सावित्रीमिव तेजसा

१ सावित्री प्रथम खण्ड, पृ० ३११।

सिफ एक ऋषि को यह भासमान हुआ था कि सावित्री सामान्य स्त्री नही, देवी सावित्री ही है और श्री अरविन्द ने पहली बार यह प्रकट किया कि यह सम्पूर्ण मुमुक्षु मानवजाति रूपी सत्यवान्‌को पुनरुज्जीवित करने के लिए उनकी साधना के वरदान रूप में प्राप्त हुई। सावित्री और कोई नही थीमा ह।

सावित्री महाकाव्य के अगले भाग काफी आसान लगेंगे। यहा आकर पाठक चैन की सास ले सकता ह क्योकि ये भाग मानवीय अनुभूतियों के चिरपरिचित चढाव उतार से भरे ह। चौथी पुस्तक में सावित्री का जन्म, विकास, पति की खोज, सत्यवान से उसकी भेंट आदि का वणन ह जो काफी वृत्तात्मक होने स कथासूत्र की सघनता के कारण बोधगम्य हो गया है। सावित्री और सत्यवान् के मिलन और प्रेम का अद्भुत वणन किस पाठक को मुग्ध नही कर लेता। प्रेम का परिपाश्व ही अवि स्मरणीय ह।

नीचे फैला था जगल वह मरकत मणि सा स्वप्न मगन
क्षितिज चमकता लगता था जैसे सोया एकाकीपन
धु धले नाले बहते थे मोती माला के ज्यों सूत्र सघन।

नि श्वास भटकती थी प्रसन्न जगली पत्तियों के दल में
शान्त, सुगधित धीमे धीमे आनन्द लपेटे पदतल में
बेहोश लुढकती हवा वहा फूल गन्ध से हो पागल
श्वेत हस चुपचाव खडा था चचु उठाये शुभ्र विमल
शुक मयूर थे रत्निम करते वृक्ष और वसुधातल
आनन्द सिन्धु में तिरती सी सावित्री आई उपवन में
प्रेम गीत गु जरित हो रहे व्याप रहे थे कण कण में।[1]

सावित्री और सत्यवान के प्रेम में रुरु या पुरुरवा का मादक उच्छवास नही फूटता क्योंकि सावित्री को निरन्तर मालूम था कि नियति उसके ऊपर वज्रपात करने ही वाली ह इसलिए नियत स्थान का यह मिलन नियति की पूव सूचना से आक्रान्त है। सावित्री की छठी पुस्तक इस नियति का ही विवेचन ह।

मृत सत्यवान को पुनरुज्जीवित करने के लिए सावित्री की योगसाधना ही कवि का मूल विषय ह इसीलिए उसका पूरा ध्यान इसी ओर केन्द्रित रहा ह। सावित्री महाकाव्य के आरम्भ में महारात्रि की तमिस्रा से ही सावित्री का अवतरण दिखाया गया था मृत्यु की महारात्रि में पुन प्रवेश उसकी नियति दिखाई गई ह। यह प्रवेश जरूरी ह क्योंकि वह शाश्वत रात्रि का रहस्य जाने बिना प्रकाश का सूय ला भी कसे सकती ह। महाकाव्य का तीसरा खड इसी शाश्वतरात्रि के वणन से शुरू होता ह। नारद

१ सावित्री द्वितीय ग्रन्थ पृ० ३९-४०

ने कहा था—' नियति कुछ नही, सत्य की ही एक क्रिया ह, जिसे सामान्य व्यक्ति देख नही पाता। वह दिव्यशक्ति की पूवनिश्चित घटना के अलावा और क्या ह।" रानी ने पूछा था कि 'क्या मानवात्मा इस नियति से छुटकारा नही पा सकती ह?" सावित्री की माता को नारद ने उत्तर दिया था—' यद्यपि सावित्री में दवी अश ह, पर उसे पीडा की घाटियो से गुजरना ही होगा, क्योकि यह समस्या एक व्यक्ति की मत्यु की नही, मत्यु-तत्त्व को जानने की ह। समस्या बडी और जटिल है और कहना न होगा कि जटिल समस्या को सुलझाने में सावित्री पूणत अपने को विसर्जित कर देती ह।

सावित्री इस दुस्सह दुख स भी घबडाती नहा सत्यवान् की मत्यु उसे अचानक उदासी और पीडा के भीतर अपूव एकाग्रता से भर देती है। सहसा ऊपर से आवाज उभरती ह—"अपने मिशन को पूरा करने के लिए तैयार हो जा। उस दवी आवाहन ने उसके भीतर सोयी हुई तमाम दिव्य शक्तियों को सन्नद्ध कर दिया। वह अपनी चेतना में डूबती चली गई और अबाध प्राणिक, निम्न प्राणिक स्तरों को अतिक्रान्त करती गयी। वह साक्षी भाव से इनकी गतिविधियों का देखती रही। तब वह उस स्तर पर पहुँची—जहा उसने देखा कि जीवनी शक्ति रस्सियो से बँधी ह और मन सब कुछ पर शासन करने की कोशिश करता रहता ह। अपनी आत्मा को ढूँढती वह एक दूसरे क्षेत्र में पहुँची जहा उसने दखा कि शक्ति की तीन वश्विक शक्तिया समासीन हैं। वे उसे राकना चाहती हैं, पर वह उनकी उपेक्षा करके आगे बढ जाती ह क्योंकि वह जानती ह कि महान् होते हुए भी ये तीना शक्तियों विश्व का रूपान्तरण नही कर पायेंगी।

इन तीनो शक्तियों में पहली को 'दुखा की देवी', जो असीम आन्तरिक सहानुभूति और प्रेम की देवी भी ह, दूसरी को 'शक्ति की कुमारी' जिसे ऋत और अनुशासन की देवी कहा गया ह और तीसरी 'ज्योति की मां' अर्थात् मानसिक और बौद्धिक ज्ञान की देवी कहा गया ह। ये तीन शक्तियाँ महेश्वरी, काली और सरस्वती से कुछ साम्य रखती-सी प्रतीत होती ह।

इन तीनों को पार करती हुई वह एक रहस्यमय रास्ते से अपनी आत्मा को उपलब्ध कर लेती है। वह जीवन के दो नकारा को भी देखती ह। निर्वैयक्तिक होने के लिये अपने व्यक्तित्व का नकार, क्योकि उसे बोध हुआ कि परम सत्य को पाने के लिये अपने को उसमें लय करना होगा, अपने वयक्तिक जीवन का नकार क्योंकि व्यक्ति क्या ह सिफ वश्विक सत्ता से निकला एक बिन्दु ही न? फिर क्यों न बिन्दु विसर्जित हा जाय। दोनों ही नकार नाकाफी हैं, क्योंकि दोनों ही स्थितियों में मृत्यु की सत्ता स्वत स्वीकृत हो जाती हैं। अत यदि मत्यु पर विजय पानी है, तो उनसे भी आगे जाना होगा।

सुनो, मेरी और उसकी आत्मायें एक हैं, अविभाज्य जैसी
और हम आये यहा हैं विश्व को अमरत्व देने।
परमविभुको विश्व में लाकर प्रतिष्ठापित करेंगे।
विश्व जीवन को बदलना दिव्यता में ध्येय अपना
मनुज के उद्धार के निज कम को में छोड सकती हूँ नहीं
ये लुभाने शब्द और वरदान तेरे व्यथ हैं।
खुशियों भरे इन दिय लोकों के लिए
बलिदान पथ्वी का नहीं स्वीकार मुझको।[1]

और तब आरभ होता ह सावित्री का य की अ तिम पुस्तक यानी द्वादश पव जिसका कवि ने उचित ही नाम रखा ह पथ्वी की आर प्रत्यावतन।

सावित्री का सत्यवान मिल गया ह और दोना आत्माए हाथ म हाथ डाले नीचे उतरती ह। इधर पथ्वी पर सत्यवान क मृत शरीर के पास सावित्री ट्रास में डूबी ह।

"वह रहस समाधि से जागी अचानक
और देखा जगत की थिर शात गोदी में अवस्थित है।
कि शाखें हरित सुन्दर झुक गई हैं शीश ऊपर
मानों कि रक्षा कर रही थीं नीद में
खोई हुई की, जादुई आचल उढाकर।

सत्यवान को जीवनदान मिला। वे दोना इस पथ्वी को रूपा तरित करने की अपनी महत याजना मे लग गये।

यही ह सावित्री महाका य, यही ह अतिमानसिक योग का द्वादश वर्तिका कपूर स्तोत्र।

श्री अरविन्द न इस काव्य के बारे में एक बार अपने एक शिष्य को पत्र में लिखा था— यह कविता एक आनवरतिक धारा की तरह प्रथम पक्ति से अतिम पक्ति तक अवतरित हुई। सावित्री मेरी दूसरी कृतिया स भिन्नएक खुद में महान् काय था। पुरानो प्रेरणा स ही मैंन अपन मूल को आठ या नौ वार आवृत्ति की हागी। हर बार नवीनीकरण। इसके बाद मैंन इसे दुबारा नये सिरे स लिखना शुरू किया। पहले प्रथम पुस्तक पर एकाग्र हुआ और बार बार एक ही अश पर काय करता रहा, इस आशा स कि प्र यक पक्ति पूणता में सब तरह से पूण होनी चाहिए। किन्तु अब ऐसे कार्यों के लिए शायद ही समय प्राप्त हो सके।'[2]

कहा तो यहा तक जाता ह कि सावित्री उनके पूरे जीवन की तपस्या का फल ह।

१ वही पृ० ३१६।
२ लम आन सावित्री १९३४ का पत्र।

इसका बीजांकुरण बड़ौदे में ही हो गया था। और जैसा कि नीरद बरण ने लिखा है, मृत्यु के कुछ रोज़ पहले अन्तिम अंश पूरा करके उन्होंने अद्भुत निश्चिन्तता का अनुभव किया। अर्थात सावित्री को लिखने में उन्होंने पचास वर्षों का समय लगाया था, पूरी अर्धशताब्दी।

श्री अरविन्द के साहित्यिक व्यक्तित्व का इस निबंध में एक संक्षिप्त रेखांकन ही किया जा सका है। उनकी कविताएं, नाटक तथा काव्यशास्त्र और अन्य कलाशास्त्रों पर उनके विचार इतने महत्त्वपूर्ण और विविध आयामी हैं कि उन्हें पूर्णतः उपस्थित करने के लिए अलग से प्रयत्न करना होगा। मैंने उनके साहित्यिक सांस्कृतिक योगदान को यथासंभव विस्तृत ढंग से परिचित-परीक्षित करने का इरादा किया था और उसके लिए सामग्री भी एकत्र की थी, किन्तु स्थानाभाव से वह इस पुस्तक में अँट नहीं पा रही है। इस पक्ष पर कभी फिर। 'अहना' शायद उनकी सुप्रसिद्ध कविता का एक अंश उद्धृत करके मैं उनके महान् प्रेरणादायी और कालजयी व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ—

> ऊँचे पहाड़ों से आयी इस कपोती के साथ-साथ,
> भय हीन होकर मैं रास रचाऊँगा।
> खुशियों से भरी भरी खिल खिलाहटों को पीता हुआ,
> यूनानी द्वीपों में देवता सा विचरूँगा॥
> जीवन इन रगों में अमरता को उतारेगा,
> मांस-पेशियों को ईश्वरीय रंग में डुबाऊँगा।
> स्वर्ग की आबदार चमक से धरती के प्रकाश की
> शादी रचा कर मैं दोनों को एक में मिलाऊँगा॥

• •

भारत नयी मानवता का अन्तरिक्ष यान

सुपर्णो सि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्या
दीसदभासान्तरिक्षमापृण ।
यजु० १७।२७

ओ रे सुन्दर परों वाले महिमाशाली पृथ्वी की पीठ पर तू आसीन होकर सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को अपनी प्रभा से भर दे।

श्री अरविन्द का पूरा जीवन भारत के प्रति अनन्य निष्ठा और बलिदान का प्रतीक है। उन्होंने भारत को कभी भी भूमिखण्ड मात्र नहीं माना। वे इसे सर्वदा विश्व का हृदय और विराट पृथ्वी चेतना का केन्द्र कहा करते थे। उन्होंने १९१० ई० तक, पांडिचेरी प्रस्थान के पहले तक अपने जीवन के सर्वोत्तम युवाकालीन वर्ष भारत की स्वाधीनता के लिए उत्सर्ग किये। उन्होंने 'स्वराज्य' का मन्त्र दिया, वे भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे, मसीहा थे। उन्होंने भारत को पुनरन्वेषित किया। उसकी आत्मा मन, प्राण और शरीर को परिभाषित किया एक वाक्य में कहें तो यह कि उन्होंने शताब्दियों से पराधीन मृतप्राय देश को संजीवनी प्रदान की।

उन्होंने अपने नाना भाषणों में भारतीय पुनर्जागरण पुस्तिका में, तथा अलीपुर जेल से मुक्त होने पर उत्तरपाड़ा अभिभाषण में भारतीय आत्मा, उसकी जागृति, उसके भविष्यत कर्तव्य और लक्ष्य को स्पष्ट किया। धर्म पत्रिका में उन्होंने देश और जातीयता के सूक्ष्म तत्त्वों को स्पष्ट करने के लिए अनेक निबन्ध लिखे। वे मानते थे कि— 'व्यक्ति के समान राष्ट्र अथवा समाज का भी अपना एक शरीर होता है, एक सुघटित जीवन, एक नैतिक और सौन्दर्यग्राही स्वभाव होता है, और इन सभी प्रतीकों एवं शक्तियों के पीछे एक विकसनशील मन और एक ऐसी आत्मा होती है, जिसके लिए ही इनका अस्तित्व होता है।'[1] इस प्रकार राष्ट्र आत्मा अथवा चिति का सिद्धान्त स्पष्ट करने के बाद वे भारत की आत्मा का विश्लेषण करते हैं और कहते हैं—"भारतवर्ष भारतशक्ति है एक महान आध्यात्मिक कल्पना की जीवंत शक्ति और उसके प्रति निष्ठावान् रहना ही भारतीय जीवन का मूल सिद्धान्त है। क्योंकि उसी के बल पर अपर राष्ट्रों में उसकी गणना रही है। यही उसके आश्चर्यजनक स्थायित्व तथा उसके दीर्घ जीवन तथा पुनरुज्जीवन की शाश्वत शक्ति का रहस्य रहा है।"[2]

१ मानव चक्र पृ० ३५।
२ भारतीय संस्कृति के आधार पृ० ६।

हम लगातार देखते आ रहे हैं कि श्री अरविन्द आध्यात्मिकता को ही भारत का मूल प्राण मानते रहे हैं। उनकी राष्ट्रीयता आध्यात्मिक थी। उनकी क्रान्तिकारी गति विधियां अध्यात्म से संयुक्त थी। उनकी जेल यात्रा आध्यात्मिक यात्रा में बदल गयी। उनकी पूरी पत्रकारिता आध्यात्मिक दीप्ति से ओत प्रोत थी। उनका सारा व्यक्तित्व इसी आध्यात्मिकता को विभिन्न पहलुओं को प्रकट करनेवाला रंगवीक्षक यंत्र है। वे मानते हैं कि भारतीय आत्मा का अर्थ ही है आध्यात्मिकता। सुभाषचन्द्र बोस ने ठीक ही लिखा है कि "श्री अरविन्द के व्यक्तित्व में आध्यात्मिकता और राजनीति दोनों परिणय-सूत्र में बँधे थे। उन्होंने अपनी बड़ौदा की नौकरी छोड़कर देश सेवा के लिए राजनीति का पथ चुना। वे उन दिनों पूर्ण स्वराज्य का उद्घोष कर रहे थे जब बाकी नेता औपनिवेशिक स्वशासन मांग रहे थे।" सुभाष ने इन्हीं गुणों से आकृष्ट होकर अपने भाई को लिखा था—'श्री अरविन्द का पथ मेरी प्रेरणा है, मेरा आदर्श है, यद्यपि मैं जानता हूँ कि वह काँटों से भरा है।'[१] आखिर ऐसे काँटों वाले पथ पर श्री अरविन्द चले क्यों। क्योंकि वे भारत को भारत की महान् संस्कृति को अनन्य प्यार करते थे।

उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारतीय संस्कृति के आधार' में बड़े विस्तार से मूल भारतीय दृष्टि और उसकी सर्जनात्मक शक्ति का विश्लेषण किया है। भारतीय संस्कृति, भारतीय कला, भारतीय साहित्य और भारतीय शासन प्रणाली का इतना विशद और सूक्ष्म विश्लेषण कम ही मिलेगा। यह सत्य है कि इस विश्लेषण में अनेक स्थानों पर लेखक से सहमत होने में कठिनाई हो सकती है पर इतना मानने से किसी को इन्कार नहीं होगा कि यह पुस्तक भारतीय संस्कृति को समझाने वाली पुस्तकों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। भारतीय संस्कृति के बारे में उन्होंने लिखा है—' भला ऐसी कौन सी सभ्यता रही है जो सर्वांगपूर्ण रही हो, जिसपर गहरे कलंक न लगे हों, जिसमें निष्ठुर नाटक न रहे हों। इसमें भी (भारतीय सभ्यता में) बड़े-बड़े छल छिद्र और अनेक अधगलियां रही है, बहुत सी अधजुती या अनजुती जमीन भी रही है, पर कौन सी सभ्यता खाइ—खन्दकों एवं अभावात्मक पहलुओं से खाली रही है। तथापि हमारी प्राचीन सभ्यता किन्हीं भी प्राचीन युग किंवा मध्ययुग की सभ्यताओं के साथ तुलना में भी टिक सकती है। यूनानी सभ्यता से कहीं अधिक उच्चाकांक्षी, अधिक सूक्ष्म, बहुमुखी, अनुसंधानप्रिय और गम्भीर, रोमन सभ्यता की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च और कोमल, पुरानी मिस्री सभ्यता से कहीं अधिक उदार और आध्यात्मिक, अन्य किसी भी एशियाई सभ्यता से कहीं अधिक विशाल और मौलिक, अठारहवीं सदी से पहले के यौरप की सभ्यता से कहीं अधिक बौद्धिक, इन सब सभ्यताओं में जो कुछ था, उस

१ एन इंडियन पिलग्रिम पृ० ५४।

सबको तथा उससे भी अधिक की स्वामिनी यह भारतीय सभ्यता अतीत मानव-गरइ तिया से अधिक शक्तिशाली, आत्मस्थित, प्रेरणादायी और महाप्रतापशाली रही है।'[१]

पर सैकड़ों वर्षों की पराधीनता ने इस सभ्यता का विकृत, रुद्धिग्रस्त और अपग बना दिया है। आज का भारतीय किस बात पर गर्व करे। एक बार श्री अरविन्द ने ही कहा था—'आज के हिन्दुस्तानी के पास अपने अतीत पर गर्व करने के लिए कुछ भी नहीं रहा। आज की भारतीय संस्कृति अत्यन्त दारुण स्थिति में है। किसी के किले की तरह, कोई खंभा यहाँ, टूटी हुई छत वहाँ, और पहचान में न आ सकने वाला कोई कमरा वहाँ।'[२]

उपर्युक्त कथन सत्य ही नहीं दारुण अनुभव की चीज है जिस पर प्रत्येक भारतीय बौद्धिक सोचते-सोचते उदास हो जाता है। आखिर इस सांस्कृतिक विनिपात का कारण क्या है? और क्या कुछ ऐसा हो सकता है कि भारत इस पतन को गुजल्क से मुक्त होकर पुनः अपनी भविष्यत यात्रा पर चल पड़े।

जैसा कि सभी जानते हैं, इस पतन का मूल कारण वर्षों की पराधीनता है। श्री अरविन्द यह मानते हैं कि स्वाधीनता सारी तब्दीली की पहली शर्त है। हम पहले ही देख चुके हैं कि स्वराज्य के लिए संघर्ष करते हुए उन्होंने निरन्तर भारतीय पुनर्निर्माण के लिए पूर्ण स्वराज्य को सर्वप्रमुख ध्येय और लक्ष्य माना। उस स्वराज्य की प्राप्ति के लिये उन्होंने नाना प्रकार से संघर्ष किये और पाडिचेरी जाने के समय देश को आश्वस्त किया कि स्वराज मिल कर रहेगा। आखिर को वह शुभ दिन आया और भारत स्वतन्त्र हुआ। स्वराज्य के मन्त्रदाता का संकल्प पूरा हुआ। वे बार बार कहते थे कि भारत की स्वतन्त्रता की दवी आना जारी हो चुकी है। तब लोग विश्वास नहीं करते थे। पर अचानक भारत की स्वतन्त्रता उन्हीं के जन्म दिन से जुड़ गयी। यह क्या मात्र आकस्मिक था?

जो भी हो, उन्होंने आकाशवाणी से प्रसारित अपने संदेश में कहा—"१५ अगस्त १९४७ स्वाधीन भारत का जन्म दिन है। यह दिन भारत के लिए पुराने युग की समाप्ति और नये प्रभात के उदय को सूचित करता है। परन्तु हम एक स्वाधीन राष्ट्र के रूप में अपने जीवन और कार्यों के द्वारा इसे ऐसा महत्त्वपूर्ण दिन भी बना सकते हैं जो सम्पूर्ण जगत के लिये, सारी मानव जाति के लिये, सारी मानव जाति के राजनितिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक भविष्य के लिये, नवयुग लाने वाला सिद्ध हो।

१ भारतीय संस्कृति के आधार पृ० २३-२४।
२ इविनिंग टाक्स, द्वितीय भाग पृ० ५१।

१५ अगस्त मेरा अपना जन्म दिन है और स्वाभावत ही यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है कि इस दिन ने इतना विशाल अर्थ तथा महत्त्व प्राप्त कर लिया है। परन्तु इसके भारतीय स्वाधीनता दिवस भी हो जाने का मैं कोई आकस्मिक संयोग नही मानता, बल्कि यह मानता हूँ कि जिस अर्थ को लेकर मैंने अपना जीवन आरम्भ किया था, उसको मेरा पथप्रदर्शन करने वाली भागवत शक्ति ने इस तरह मंजूर कर लिया है और उसपर अपनी मुहर-छाप भी लगा दी है और इस कार्य का पूर्णरूप मे सफल होना आरम्भ हो गया है। निस्सन्देह, आज के दिन मैं प्राय उन सभी जागतिक आन्दोलनों को, जिन्हें मैंने अपने जीवन-काल में ही सफल देखने की आशा की थी, यद्यपि उस समय वे असभव स्वप्न जैसे ही दिखायी देते थे, सफल होते हुए या अपनी सफलता के मार्ग पर जाते हुए देख सकता हूँ। इन सभी आन्दोलनों में स्वाधीन भारत एक बडा पार्ट अच्छी तरह अदा कर सकता है और एक प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकता है।

इन स्वप्नो म पहला था एक क्रान्तिकारी आन्दोलन जो स्वाधीन और एकीभूत भारत को जन्म दे। भारत अब स्वाधीन हो गया है, पर उसने एकता नही प्राप्त की है, एक समय प्राय ऐसा ही दिखता था मानो अपने स्वाधीन होने की प्रक्रिया में ही वह फिर से उस पृथक पृथक राज्यो की अव्यवस्थापूर्ण स्थिति में जा गिरेगा जो ब्रिटिश विजय से पहले विद्यमान थी। परन्तु सौभाग्य से जब ऐसी प्रबल सभावना हो गयी ह कि वह सकट टल जायगा और अभी पूर्ण न सही पर एक विशाल तथा शक्तिशाली एकत्व अवश्य स्थापित हो जायगा। विधान परिषद् की दूरदर्शितापूर्ण प्रबल नीति ने इस बात को सभव बना दिया ह कि दलित वर्गों की समस्या बिना तोड फोड के हल हो जायगी। परन्तु हिन्दुओ और मुसलमानों का पुराना साम्प्रदायिक भेद देश में स्थायी राजनीतिक विभाजन के रूप में सुदृढ हो गया दीखता ह। यह आशा करनी चाहिए कि इस तय किये गये विभाजन को पत्थर की लकीर नहीं मान लिया जायगा और इसे एक काम चलाऊ अस्थायी उपाय से बढकर और कुछ न माना जायगा क्योंकि, यदि यह कायम रहे तो भारत भयानक रूप से दुर्बल और अपग हो सकता है, यहा तक कि नये आक्रमण और विदेशी विजय की भी सभावना उत्पन्न हो सकती है। भारत की आन्तरिक उन्नति और समृद्धि रुक सकती है, राष्ट्रों के बीच उनकी स्थिति दुर्बल हो सकती है, उसका भविष्य कुठित अथवा व्यर्थ तक हो सकता है। यह नही होना चाहिये देश का विभाजन अवश्य दूर होना चाहिये। हम आशा करें कि यह कार्य स्वाभाविक रूप में हो जायगा न केवल शान्ति और मेल मिलाप से बल्कि मिलजुलकर काम करने के अभ्यास और उसके लिये साधनों को उत्पन्न कर लेने से सपन्न हो जायगा। इस प्रकार अन्त में एकता

चाहे किसी भी रूप में आ सकती है—उसके ठीक-ठीक रूप का व्यावहारिक महत्त्व भले ही हो, पर कोई प्रधान महत्त्व नहीं। परन्तु चाहे किसी भी उपाय से हो, चाहे किसी भी प्रकार से हो, विभाजन अवश्य दूर होना चाहिये, एकता अवश्य स्थापित होनी चाहिये और स्थापित होगी ही, क्योंकि भारत के भविष्य की महानता के लिये यह आवश्यक है।

दूसरा स्वप्न था एशिया की जातियों का पुनरुत्थान तथा स्वाधीनता और मानव-सभ्यता की उन्नति के कार्य में एशिया का जो महान् स्थान पहले था उसी स्थान पर उसका लौट आना। एशिया जग गया है; उसके बड़े-बड़े भाग स्वतन्त्र हो गये हैं या इस समय बंधनमुक्त हो रहे हैं; इसके अन्य भाग जो अभी परतन्त्र या अंशतः परतन्त्र हैं वे भी चाहे कैसे भी घोर संघर्ष में से गुजरते हुए स्वतन्त्रता की ओर बढ़ रहे हैं। बस, अब थोड़ा-सा ही काम और करने को बाकी है और वह भी आज या कल संपन्न हो जायगा। यहां भी भारत को अपना पार्ट अदा करना है। और उसने शक्तिशालिता और योग्यता के साथ उसे अदा करना आरम्भ कर दिया है, जो अब यह सूचित होने लगा है कि भारत की संभावनाओं का परिणाम क्या है और वह राष्ट्रों की सभा में कौन-सा स्थान ग्रहण कर सकता है।

तीसरा स्वप्न था एक विश्व-संघ जो समस्त मानवजाति के लिये एक सुन्दरतर, उज्ज्वलतर और महत्तर जीवन का बाहरी आधार निर्मित करे। मानव संसार का वह एकीकरण प्रगति के पथ पर है। एक अधूरा प्रारम्भ संगठित किया गया है पर वह बड़ी भारी कठिनाइयों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। किन्तु उसमें एक वेग है और वह अनिवार्य रूप से बढ़ता चला जायगा और विजयी होगा। इस कार्य में भी भारतवर्ष ने प्रमुख भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है और यदि वह उस विशालतर राजनीतिज्ञता का विकास कर सके जो वर्तमान तथ्यों और तात्कालिक भावनाओं से सीमित नहीं होती, बल्कि भविष्य को देख लेती और उसे अधिक निकट लाती है, तो भारत की उपस्थिति मंद एवं भीरुतापूर्ण विकास और द्रुत एवं साहसपूर्ण विकास में जो महान् भेद है उसे प्रदर्शित कर सकती है। जो कार्य किया जा रहा है उसमें महान विपत्ति आ सकती है और वह उसमें बाधा डाल सकती है या उसे नष्ट कर सकती है किन्तु तो भी अंतिम परिणाम सुनिश्चित है। क्योंकि एकीकरण प्रकृति की एक आवश्यकता है, अनिवार्य गति है। इसकी आवश्यकता राष्ट्रों के लिये भी सुस्पष्ट है क्योंकि इसके बिना छोटे छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता किसी भी क्षण खतरे में पड़ सकती है और बड़े तथा शक्तिशाली राष्ट्रों का भी जीवन असुरक्षित हो सकता है। इसलिये इस एकीकरण में ही

सबका हित ह और केवल मानवीय नि शक्तता तथा मूखतापूण स्वाथपरता ही इसे रोक सक्ती है, परन्तु ये भी प्रकृति की आवश्यकता और भगवान् के सकल्प के विरुद्ध हमेशा नही ठहर सकती। परतु एक बाहरी आधार भी पर्याप्त नहो ह, अन्तर्राष्ट्रीय भाव और दृष्टिकोण भी अवश्य विकसित हाना चाहिए, अन्तर्राष्ट्रीय पद्धतिया तथा सस्थायें भी अवश्य प्रादुर्भूत होनी चाहिये, शायद इस प्रकार की प्रग तिया भी पदा हों, जसे कि दो या अनेक देशो का एक सग नागरिक होना, सस्कृतियों का आपस में ऐच्छिक दान प्रतिदान या उनका स्वेच्छापूवक घुलना मिलना। राष्ट्रीयता तब अपने आपको चरिताथ कर चुकी होगी और अपनी युद्धप्रियता को छोड चुकी होगी और तब वह ऐसी चीजों को आत्मसरम्पण तथा अपनी दृष्टि की अखडता से असगत नही अनुभव करेगी। एकत्व की एक नयी भावना मनुष्य जाति पर आधिपत्य जमा लेगी।

चौथा स्वप्न, ससार को भारत का आध्यात्मिक दान पहले से ही प्रारम्भ हो चुका है। भारत की आध्यात्मिकता योरप और अमेरिका मे नित्य बढती हुई मात्रा मे प्रवेश कर रही है। यह आन्दोलन बढेगा, वतमान काल की विप दाओं के बीच अधिकाधिक लोगा की आखें आशा के साथ भारत की आर मुड रही ह और न केवल उसकी शिक्षाओं का अपितु उसकी आन्तरात्मिक और आध्यात्मिक साधना का भी उत्तरोत्तर आश्रय लिया जा रहा ह।

अंतिम स्वप्न था क्रम विकास मे अगला कदम जो मनुष्य को उच्चतर और विशालतर चेतना मे उठा ले जायगा और उन समस्याओं का हल करना प्रारम्भ कर देगा जिन समस्याओं ने मनुष्य को तभी से हैरान-परेशान कर रखा है जब से कि उसने वैयक्तिक पूणता और पूण समाज के विषय मे सोचना विचारना सबसे पहले शुरू किया था। यह अभी तक एक व्यक्तिगत आशा और विचार, एक आदश मात्र ह जिसने भारत और पश्चिम में दोनों जगह दूरदर्शी विचारा को वश में करना शुरू कर दिया है। इस माग की कठिनाइया प्रयास के किसी भी अन्य क्षेत्र की अपेक्षा बहुत अधिक जबदस्त ह, परन्तु कठिनाइया जीती जाने के लिये ही बनी ह और यदि दिव्य परम इच्छा का अस्तित्व है तो वे दूर हागी ही। यहाँ भी यदि इस विकास को घटित होना ह तो चूँकि यह आत्मा और आन्तर चेतना की अभिवृद्धि द्वारा ही होगा, इसका प्रारम्भ भारतवष ही कर सकता है और यद्यपि इसका क्षेत्र सावभौम होगा, तथापि केन्द्रीय आन्दोलन भारत ही करेगा।

ये ही हैं वे भाव और भावनाएँ जिनको मैं भारतीय स्वाधीनता की इस तिथि के साथ सबद्ध करता आया हूँ। ये आशाएँ ठीक सिद्ध हागी या किस हद तक सिद्ध होंगी, यह बात नये और स्वाधीन भारत पर निभर करती है।

श्री अरविन्द के सन्देश से स्पष्ट है कि रेडिओ पर प्रसारित यह भाषण मात्र औपचारिकता की पूर्ति नहीं है बल्कि इस भाषण में योगिराज अरविन्द ने भारत के लिए पांच ध्येयों की घोषणा की है यही था असली पंचशील। १ भारत को पुन एक होना होगा, क्योंकि खंडित रह कर वह अपना दैव निर्दिष्ट कार्य नहीं कर पायेगा। २ भारत की स्वतन्त्रता अफ्रीका और एशिया के परतन्त्र देशों के लिए स्वाधीनता का द्वार बनेगी। अर्थात प्रत्येक स्वातंत्र्य संग्राम में भारत को जूझती हुई जनता का साथ देना होगा। ३ एक विराट मानवसंघ की स्थापना जो समस्त मानव जाति को एक सूत्र में बांध सके। ४ भारत जगत को अपनी आध्यात्मिकता का उपहार देने में समर्थ होगा और ५ मानव चेतना के विकास का नया चरण। इन्हें उन्होंने अपने सपने कहा। पर ये सपने नहीं संकल्प है। श्री मां ने स्वतन्त्रता दिवस पर अपने सन्देश में कहा—

'हे हमारी मां! हे भारत की आत्मशक्ति! हे जननी! तूने कभी अत्यन्त अन्धकारपूर्ण अवसाद के दिनों में, भी, यहां तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी, तूने उसका साथ नहीं छोड़ा। हे मां! आज इस महान् घड़ी में जब कि वे जग पड़े हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषाकाल में तेरे मुखमंडल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखा जिसमें स्वतन्त्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का क्षितिज बने। हमें पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों और अध्यात्म मार्ग के नेता के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्य जाति को दिखा सकें।

स्वतन्त्र होने पर ही श्री मां ने अपने को भारतमाता से इस तरह जुड़ी हुई पाया ऐसी बात नहीं। जिस दिन स्वतन्त्रता की चर्चा चल रही थी, और लगने लगा था कि अब एक विभक्त भारत ही हमें प्राप्त होगा, उससे श्री अरविन्द को तो दुख हुआ ही, जिसे उन्होंने अपने स्वतन्त्रता दिवस वाले भाषण में व्यक्त किया और कहा कि यह विभाजन गलत है और जाना चाहिए इससे भी पहले २ जून, १९४७ को जब श्री मां ने रेडियो पर वायसराय की वह घोषणा सुनी जो भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं के लिये की गयी थी तब उन्हें यह वाणी सुनायी पड़ी—

"भारत की स्वाधीनता को सुसंगठित करने में हमारे सामने जो कठिनाइयां दिखायी दे रही हैं उनका समाधान करने के लिये एक प्रस्ताव रखा गया है और भारत के नेता उसे भारी दुःख के साथ और हृदय को टटोलते हुए स्वीकार रहे हैं। परन्तु क्या तुम जानते हो कि यह प्रस्ताव हमारे सामने क्यों रखा गया है? यह हमें

दिखाने के लिये रखा गया है कि हमारे झगडे कितने हास्यास्पद हैं। और क्या तुम जानती हो कि इस प्रस्ताव को हमें क्या स्वीकार करना होगा? हमें अपने सामने यह साबित करने के लिये इसे स्वीकार करना होगा कि हमारे झगडे कितने हास्यास्पद हैं। यह स्पष्ट ही है कि यह कोई समाधान नहीं है। यह एक प्रकार की परीक्षा है, एक अग्नि परीक्षा है, जो, अगर हम इसे पूरी सच्चाई के साथ स्वीकार करें और अपने जीवन में उतारें तो हमें यह सिद्ध करके दिखा देगी कि किसी देश को टुकडे-टुकडे करके हम उसमें एकता नहीं स्थापित कर सकते उसे महान नहीं बना सकते विभिन्न विरोधी स्वार्थों को एक दूसरे के विरुद्ध खडा करके उसे हम समृद्ध नहीं बना सकते, एक मतवाद को दूसरे मतवाद के विरोध में उपस्थित कर हम सत्य की सेवा नहीं कर सकते। जो हो, भारत का एक ही आत्मा है और जबतक ऐसी अवस्था नहीं आ जाती कि हम एक भारत की एक और अखंड भारत की बात कह सकें, तबतक हमें बराबर बस यही रट लगानी चाहिये— भारत की आत्मा चिरजीवी हो।'

२५ अप्रैल १९५४ को श्री मा ने अपने संदेश में कहा—"श्री अरविंद ने सर्वदा अपनी जन्मभूमि को बहुत अधिक प्यार किया। परन्तु उन्होंने चाहा कि वह महान हो श्रेष्ठ हो, पवित्र हो और विश्व में भगवद्दत्त अपने विराट कार्य के उपयुक्त हो। उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि वह अंध स्वार्थों और अज्ञानपूर्ण पक्षपातों के नीच और जघन्य गर्त में डूब जाय। यही कारण है कि उनकी इच्छा से पूर्ण मेल रखते हुए हम मनुष्य जाति के सत्य प्रगति और रूपान्तर का झंडा ऊंचा उठाये हुए हैं।

इस संदेश से स्पष्ट है कि वह श्री अरविन्द के इस विश्वास को एक दिन भारत पूरे विश्व में शान्ति और सत्य के स्थापन के लिए अपने भगवद् निर्दिष्ट कार्य को पूरा करेगा। श्री अरविन्द की सहयात्री श्री मा ने उनके इस संकल्प को भी पूरा करने का सारा उत्तरदायित्व उसी प्रकार ले लिया जिस तरह उन्होंने उनके द्वारा स्थापित योग और दर्शन को चरितार्थ करने का सारा भार अपने ऊपर ले लिया था। श्री मा के चित्त में हमेशा यह आकांक्षा रही कि वे भी जो मन से भारत को अपनी मातृभूमि मानती हैं उसकी नियमित नागरिक बन सकें। उन्होंने १५ अगस्त १९५४ को इस इच्छा को एक और भी बहत्तर अर्थ देकर अनिच्छा में बदल दिया। ऐसा उन्हें इसलिए भी करना पड़ा कि उन्हें अपनी इच्छा-पूर्ति में इस देश के शासन की ओर से कोई सहयोग नहीं मिला। वे कहती हैं 'अपनी एक दीर्घकाल से पोषित इच्छा को व्यक्त करके आज के दिन को मनाना चाहती हूँ वह इच्छा है एक भारतीय नागरिक बनने की। जब मैं पहले पहल भारत आयी—सन् १९१४ में—तभी मैंने यह अनुभव किया था कि भारत मेरा सच्चा देश है, मेरे अन्तरात्मा और आत्मा का देश है। मैंने निर्णय किया था कि जैसे ही भारत स्वतन्त्र होगा वैसे ही मैं यह इच्छा पूरी करूंगा। परन्तु मुझे प्रतीक्षा करनी पडी ।

मैं जन्म से और प्राथमिक शिक्षण की दृष्टि से फ्रांसीसी हूं और अपने चुनाव और पुरानी अभिरुचि के कारण एक भारतीय हूं। मेरी चेतना में इन दोनों के बीच कोई विरोध नहीं है, बल्कि, इसके विपरीत, ये एक दूसरे के साथ अच्छी तरह संयुक्त हैं और एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हैं। मैं यह भी जानती हूँ कि मैं एक समान दोनों की सेवा कर सकती हूँ, क्योंकि जीवन में मेरा एकमात्र लक्ष्य है श्री अरविन्द की महान शिक्षा को एक ठोस रूप देना और अपनी शिक्षा में उन्होंने प्रकट किया है कि सभी राष्ट्र मूलतः एक हैं और वे एक सुसंगठित और सुसमंजस बहुत्व के भीतर एक दिव्य एकत्व को पृथ्वी पर अभिव्यक्त करने के लिये अभिप्रेत हैं।'

"भारतीय स्वतंत्रता हथियारों से नहीं, बिना हथियार के आयेगी। संन्यासियों में एक भविष्यवाणी प्रचलित है कि भारतीय स्वतन्त्रता को हथियारों के बल पर प्राप्त करने की संभावना नहीं के बराबर है[1]।' श्री अरविन्द यह जानते थे और उन्होंने पांडिचेरी जाने के पहले और अनेक बार कहा कि भारत को स्वतंत्रता के पास ले जाने वाला व्यक्ति आ रहा है। उसने यह कार्य किया और भारत स्वतन्त्र हुआ।

१५ अगस्त १९४७ को श्री मां ने आश्रम का नील रंग वाला कमल चक्रांकित झंडा फहराया। याद रखना चाहिए की मां का प्रतीक चिह्न बहुत कुछ भारतीय राष्ट्रध्वज पर अंकित चक्र जैसा ही है। अध्यात्म का झंडा फहर उठा। श्री अरविन्द की पुरानी पंक्तियां याद आती हैं—"स्टैंडर्ड बेयरर आज एक खास मिशन की जिम्मेदारी लिये आता है और एक आदर्श तथा संदेश का वाहक है। यह झण्डा किसी बाहरी युद्ध का नहीं बल्कि आध्यात्मिक आदर्श का, उस आदर्श की अभिव्यक्ति और उसकी वास्तविकता के विकसनशील शरीर का प्रतीक है। हमारा प्रयास यह होगा कि हम मार्ग तैयार करें और एक महान् और उच्च परिवर्तन की तैयारी शुरू कर दें और जाति तथा भारत के भविष्य को बनाने का लक्ष्य अपने सामने रखें। मानवता की आत्मा में नया जन्म ही हमारा आदर्श है। हमारा जीवन उस महान् नव जन्म और सृजन के लिये कर्मशील शरीर उत्पन्न करने का आध्यात्मिकता के द्वारा प्रेरित प्रयास हो[2]।' किन्तु क्या मात्र आध्यात्मिकता की माला जपने से भारतीय समाज में फैली दीनता, गरीबी, जहालत आदि सभी दूर हो जायेंगी? क्या भारत केवल अन्तर्मुखी आध्यात्मिकता पर केंद्रित रहकर राष्ट्रव्यापी नाना उपजी हुई समस्याओं का समाधान कर पायेगा? जिस देश में लोग भर पेट रोटी भी नहीं पाते उन्हें ईश्वर की ओर जाने की फुरसत कहाँ? श्री अरविन्द के पास देश के पुनर्निर्माण का कोई कार्यक्रम

१ इवनिंग टाक्स तृतीय भाग पृ० ११६।
२ यह निबंध इसी जन्म के पत्र के लिए उन्होंने १९३० में लिखा था। पुरोधा, अगस्त १९७१।

है अथवा नहीं ? क्योंकि शक्तिशाली, समृद्ध भारत ही उनके सपना को साकार कर सकता है। इसलिए इस संदर्भ में इस प्रकार के प्रश्नों का उठाना स्वाभाविक है।

गरीबी और बेकारी

अनेक लोगों को भ्रम है कि पांडिचेरी के योगी को देश की जनता की गरीबी और बेकारीसे क्या वास्ता हो सकता है। याद रखना चाहिए कि कलकत्ता कांग्रेस के समय तथा बाद में गरम दल के मुख्य कार्यक्रमों में उन्होंने देशनिर्माण और दूसरी अनेक समस्याओं पर बहुत विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये थे। गरीबी को आध्यात्मिकता की शर्त या साधन मानने वाले वे संन्यासी नहीं थे। वे गरीबी को अध्यात्मका विरोधी तत्व मानते हैं। वे साफ लिखते हैं—गरीबी का अस्तित्व पक्का सबूत है कि समाज अन्यायपूर्ण गलत ढंग से संगठित है। दान देने की बात डाकू के हृदय में उठने वाली आंतरिक चेतना (आत्मग्लानि) की पहली अलसाई जागृति भर है[1]।' वे इन दो वाक्यों में समाज के अंदर फैले वैषम्य को रेखांकित कर देते हैं। समाज में जब तक शोषक और शोषित वर्ग रहेंगे यही चलता रहेगा। चोरी करे निहाय की, करै सुई को दान। यह वर्ग डाकू है जो गरीब का शोषण करके दान देने का पुण्य लूटने का प्रयत्न करता है। 'गरीबों की सहायता करो यदि वे तुम्हारे बीच हैं, पर इसके साथ ही जानने की कोशिश करो कि गरीबी क्या है और उसे दूर करो ताकि न गरीबी रहे और न सहायता देने की जरूरत पड़े।[2] हमारे देश में जाने कब से यह शिक्षा दी जाती रही है कि गरीबी भगवान का वरदान है क्योंकि तभी हम उसे याद करते हैं या उसका स्मरण करते हैं। श्री अरविन्द को ऐसे कथनों पर सख्त एतराज है क्योंकि वे जानते थे कि 'किसी वर्ग वर्ग या व्यक्ति के लिए गरीबी स्वीकार करना लाभप्रद और महान् वस्तु हो सकती है, किन्तु यदि यह राष्ट्र के आदर्श या सामान्य धारणा के रूप में मूर्खतापूर्वक प्रचारित की जाती है, तब वह न सिर्फ घातक हो जाती है बल्कि जीवन की समृद्धि और विकास से वंचित होने के लिए मजबूर करती है। गरीबी सामाजिक जीवन की जरूरत नहीं है वैसे ही जैसे शरीर के लिए बीमारी। जीवन की गलत आदतों और अज्ञान ने हमें ऐसे ढंग से संगठित किया है कि दोनों निकृष्ट चीजें अनिवार्य उच्छृंखलता भरे तत्व के रूप में स्वीकृत हो गई हैं। एथेन्स हमारा प्रगतिशील आदर्श होना चाहिए स्पार्टा नहीं। प्राचीन भारत अपनी महान् समृद्धि और महान् खर्चों के कारण दानों में सबसे महान् दाता बना। आधुनिक भारत अपनी संन्यासवादी, जागतिक वैराग्य की प्रवृत्ति के कारण जीवन में दरिद्र हुआ और पतन और दुर्बलता के पंक में डूबता गया।'

१ थाट्स एण्ड एफोरिज्म्स पृ० ३२।
२ थाट्स एण्ड एफोरिज्म पृ० ३२।

बहुत से लोग सोचते हैं कि जो व्यक्ति प्राचीन भारतीयता में इतना आसक्त है, उसे नवीन समस्याओं पर सोचने की फुर्सत कहाँ है। श्री अरविन्द प्राचीन के जीर्ण-शीर्ण कलेवर से चिपक रहने वाले व्यक्ति नहीं थे। वे स्पष्ट रूप से प्राचीन के अन्दर से उन्हीं तत्वों को चुनना चाहते हैं जो हमारी आज की समस्याओं का समाधान दे सकें।

उन्होंने इस गरीबी और जहालत को दूर करने के लिए ही नई शिक्षा की आवश्यकता बतायी थी। आज की शिक्षा में ही कुछ ऐसा है जो शिक्षित लोगों को बेकार बनाने का कार्य करता है। इसीलिए श्री अरविन्द ने नई शिक्षा प्रणाली का खुलेआम समर्थन किया। उसके स्वरूप का निर्धारण किया। कलकत्ते के राष्ट्रीय महाविद्यालय में रहते वक्त यह शिक्षा रूप बहुत स्पष्ट नहीं हो सका था, पर पाण्डिचेरी में रहकर उन्होंने आधुनिक भारत के योग्य नूतन शिक्षा प्रणाली पर चिन्तन किया और उसे श्री माँ ने साकार प्रायोगिक रूप प्रदान किया।

नई शिक्षा प्रणाली

आरोवील एक नई शिक्षा प्रणाली का आरम्भ करने जा रहा है। यह शिक्षा प्रणाली अब तक की समूची शिक्षा प्रणालियों से अलग किस्म की है। इस शिक्षा प्रणाली की मूलभूत मान्यता यह है कि शिशु की आधी से अधिक शिक्षा भ्रूणस्थ रहते ही पूरी हो जाती है। यह कोई नई मान्यता नहीं है। कहा जाता है कि अभिमन्यु ने मातृगर्भ में रहते ही चक्रव्यूह भेदन का ज्ञान प्राप्त किया था। श्री माँ ने कहा—"शिक्षा इस बात पर आधारित होगी कि हम भविष्य में क्या पाना चाहते हैं इस बात पर नहीं कि अतीत के बारे में हमारी जानकारी क्या है[1]।" इसी सूत्र का विस्तार करते हुए 'इवन्स बन' के सम्पादकों ने 'हमारा लक्ष्य' बताते हुए लिखा—"क्या कोई जानता है कि हम अपनी शिक्षा के लिए किस प्रकार का शिशु चाहते हैं? यदि नहीं तो बिना लक्ष्य की शिक्षा क्या होगी? जबतक दिशा नहीं मालूम है शिशु को किधर ले जाना होगा? प्रकृति ने तो बहुत पहले तय कर लिया है कि वह किस प्रकार का शिशु पसन्द करती है। पाषाणकालीन सभ्यता[2] के समय से ही प्रकृति का निर्देश स्पष्ट हो गया था। जब चिरादिम ट्रिलोबाइट्स (त्रिभगा मानवपूर्व जीव) को, जो प्राचीन समुद्रों के कीचड़ में पड़े थे, उनके आगे प्रान्त करने के लिए विवश किया। हालांकि वो भी ये भिन्न पर भी वे नहीं जानते थे कि इनका उपयोग क्या है। देखने की प्रक्रिया तभी से शुरू हुई। प्रकृति चाहती है कि मानवीय मेधा निरन्तर

१ इवल्स बन ११६८ ४।

२ स्तन और पम्परा की अन्तिम शिक्षाओं पर आधारित।

अदृष्टपूर्ण क्षेत्रों का अन्वेषण करती चले, वह निरन्तर वहत्तर चेतना की ओर मनुष्य का विकास देखना चाहती है। इसलिए शिक्षा का अर्थ ही है विकास (Evolution) एक योग्य अध्यापक विकास का विरोध नहीं करता, हमेशा संभावना करता है, क्योंकि संभावना से ही मनुष्य हुआ जाता है।

इसलिए शिशु की शिक्षा आरोवील में मातृ शिक्षा से शुरू होगी। क्योंकि शिशु शिक्षा इस बात पर निर्भर है कि माँ का वातावरण, उसकी आकांक्षा और इच्छा क्या है।

शिशु की शिक्षा का दूसरा चरण "क्रीडा में शिक्षा" के रूप में शुरू होगा। इस समय शिशु की क्रीडा, कर्म और गतिविधि को स्वतन्त्र छोड़कर उसे निरन्तर देखते रहना होगा कि उसकी रुचि क्या है। उसकी रुचियां, अनुभवों आदि के बारे में प्रेम और स्नेह से पूछताछ करना और प्रोत्साहन देना होगा और इसी प्रक्रिया में वह कई भाषाएं सीख लेगा। उसे बौद्धिक पाठ्यक्रम में ठूसना गलत है। उसे आवश्यक भाषाओं का ज्ञान कराना, तथा उसके भीतर ईमानदारी, साहस, बन्धुत्व, संवेदना, रुचि, सही दृष्टिकोण और सत्य के प्रति अभीप्सा पैदा करना हमारा उद्देश्य होना चाहिए।

जब वह बड़ा हो जायेगा तो वह अपने से बड़े लोगों की सहायता से, जो अध्यापक की अपेक्षा मित्र अधिक होने चाहिए निर्णय कर सकेगा कि उसकी अपनी विशेष रुचि किस प्रकार के ज्ञानार्जन में है। इसे ही स्वतन्त्र शिक्षण की पद्धति कहते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य बालक के भीतर के निर्देशक को उद्बुद्ध कर देना है ताकि वह अपने बारे में अन्तरस्थ अध्यापक से सही आदेश और निर्देशन प्राप्त कर सके।

आरोवील की शिक्षा पद्धति को पूर्ण शिक्षण (Integral) का नाम दिया गया है। ऐसी पद्धति में कोई नियमित पाठ्यक्रम नहीं होगा, कोई परीक्षा नहीं होगी। परिणामतः आज की तरह नौकरी पाने आदि के लिए आवश्यक प्रमाणपत्र आदि भी नहीं होते।

संक्षेप में आरोवील शिक्षा की मुख्य परियोजनाएं होंगी—जीवन और प्रकृति के रहस्य जानना, अपने भीतर की तमाम दुर्बलताओं से मुक्त होना और पूर्णता और सत्य को प्राप्त करना दुःख और बीमारी आदि पर विजय पाने का ज्ञानलब्ध करना, युद्ध और दूसरे उपद्रवों को समझना और इनपर विजय पाना, आदमी की प्रतिष्ठा और उसके अधिकारों को ठीक से समझना और उसकी सहायता करना ताकि वह अज्ञान के कारण ठोकरें खाने की विवशता से उबर सके, सत्य के विभिन्न क्षितिजों का उद्घाटन और उनसे प्राप्त बोध को आत्मसात् करना, संकुचित नैतिकता, मूल्य तथा विश्वास और मतवादों को दलदल से निकल कर उच्चतर मानवता को समझ सकना,

सस्कृतियो का ज्ञान और उनके परस्परावलम्बन को समझते हुए मानव एकता के आदर्श को प्राप्त करना, प्रत्येक राष्ट्र की मौलिक क्षमता और विशेषता का जानना और विश्वसंघ में उसके अपने दायित्व के प्रति सचेत करना ताकि मानव एकता का सही आधार प्राप्त हो, सभी साधनो का जिन्हें विज्ञान और तकनीकी तथा प्राविधिक ज्ञान ने उत्पन्न किया है, सही इस्तेमाल करना ताकि मानवजाति समृद्ध हो तथा निरन्तर खोजो द्वारा नये ज्ञान विज्ञान को उपलब्ध करना और उनके द्वारा मानव की भौतिक स्तर की आवश्यकताओ की पूर्ति में सहायक होकर उसे उच्चतर समृद्धि की ओर ले जाना और अन्तत इन सारी प्रगतियो को समन्वित करके भविष्य में ज्ञान, शक्ति और ज्योति से परिपूर्ण एक ऐसे मानव जीवन का निर्माण करना जो प्रेम, एकता, सौन्दर्य और आनन्द से परिपूर्ण हो[१]।

यही सक्षेप में आरोवील की शिक्षा प्रणाली है जिसको व्यावहारिक रूप देने का काय अभी अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र कर रहा है। श्री अरविन्द ने कहा था कि सच्ची शिक्षा का पहला सिद्धान्त यह है कि कुछ भी सिखाया नही जा सकता। अध्यापक उपदेशक नही और न काम कराने वाला अधिकारी। वह केवल सहायक है, पथप्रदर्शक है बस। उसका काय सम्मति देना है, आरोपित करना नही। वह वस्तुत शिष्य-मन को शिक्षित नही करता वह केवल तरीका बताता है कि किस प्रकार शिष्य अपने ज्ञानयन्त्र को पूर्ण बना सकता है और इसी प्रक्रिया में उसकी सहायता करता है। वह उसे ज्ञान प्रदान नही करता, वह बताता कि शिष्य कैसे अपने लिए ज्ञान उपलब्ध कर सकता है। वह आन्तरिक ज्ञान को कही बाहर से लाता नही बल्कि वह बताता है कि वह ज्ञान भीतर कहा पडा है और किस प्रकार उसका कौशल जानकर उसे ऊपर लाया जा सकता है।[२]

श्री अरविन्द के इसी सिद्धान्त को केन्द्र में रखकर यह नई शिक्षा प्रणाली अपना काय कर रही है और सम्प्रति ढाई सौ से अधिक शोध कार्यों पर कायरत है—स्वतोद्भूत शिक्षा एक कविता

स्कूल एक जगह नहीं है
वह जीने का एक तरीका है
वहाँ स्कूल है जहा प्रगति की अभीप्सा है
यह खुला जगत है मिलने और विचार विनिमय का
जहा आसान है अस्तित्व और चीजों और

१ एजूकेशन इन आरोवील मदर इंडिया जुलाई १९७०।
२ इक्वल्स वन १९६८—४, पृ० ५१।

तथ्य के पहलुओं से सम्पर्क का होना
यहा अध्यापक या प्राध्यापक नहीं होते
होते हैं सहायक—यदि कोई चाहे
होते हैं विशेषज्ञ जो रखते हैं योजनाबद्ध
ज्ञान मानवता के नाम पर अर्पित।[1]

भारत और लोकतन्त्र का भविष्य

श्री अरविन्द भारतीय लोकतन्त्र की प्रचलित व्यवस्था से पूर्ण सतुष्ट नही लगते उनका कहना है कि प्रजातन्त्र के लाभ का अर्थ है व्यक्ति के जीवन की स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की कुछ अत्याचारियों या उनके गिरोह की लालच से सुरक्षा। इसका दोष है मानवता में महत्ता की पदच्युति। योरप में प्रजातन्त्र का अर्थ है, मन्त्रियो का या भ्रष्ट उपमन्त्रियो का या स्वार्थलिप्त पूजीपतियो की सत्ता, जो अस्थिर जनता के शासन का मुखौटा लगाये रहते हैं। योरप में समाजवाद एक भाववाचक राज्य के सैद्धान्तिक सत्ता के मुखौटे के भीतर छिपे अफसरो और पुलिस के लोगो का शासन है। यह बेहूदापन है कि पूछा जाय कि इनमे से कौन अच्छा है, क्योकि यह निर्णय करना कठिन होगा कि इनमें से कौन बदतर है।[2] यद्यपि यह मत योरोपीय लोकतन्त्र और समाजवाद के विरुद्ध व्यक्त किया गया है पर भारत में स्थिति इससे भिन्न नही है। पूछा जा सकता है कि क्या श्री अरविन्द लोकतन्त्र और समाजवाद से असतुष्ट होकर कहीं साम्यवाद तो नही चाहते हैं। ऐसा भी नही है। साम्यवाद की उन्होंने प्रशसा की थी क्योंकि वह अपेक्षाकृत ज्यादा बुरे वैयक्तिक अहं को दबाता है। पर उनकी दृष्टि में साम्यवाद के खतरे भी स्पष्ट थे— साम्यवाद के सिद्धान्त अन्तर्निहित गुणों के कारण व्यक्तिवाद में वैसे ही श्रेष्ठ है जैसे बन्धुत्व परस्पर द्वेष और एक दूसरे की हत्या की स्थिति से। पर साम्यवाद के नाम पर पर पश्चिम में बनी हर योजना एक जुआ है, एक अत्याचार है, एक कैदखाना है। यदि कभी इस पृथ्वी पर साम्यवाद सफलतापूर्वक प्रतिस्थापित होता है तो यह आत्मिक बन्धुत्व के आधार पर ही हो सकता है, जिसमें अहकार का विनाश हो जायेगा। बलात लादी हुई सघबद्धता और मशीनी कामरेडवाद एक न एक दिन विश्वव्यापी टाय टाय फिस्स में समाप्त हो जायेगा।[3]

वस्तुत अपने राजनीति जीवन के आरम्भ से ही श्री अरविन्द एक खास प्रकार की शासन व्यवस्था के हामी रहे हैं। उन्होंने हमेशा ही शासन की अत्यन्त उग्र कायदे कानूनवाद पर आधारित व्यवस्था को नापसन्द किया। वे एक भद्र अर्थ में अराजकता

१ वही पृ० ४४।
२ थाट्स एण्ड एफारिज्म्स पृ० ५५।
३ वही, पृ० ५१।

वादी थे, पर उश्रृंखलता वादी नहीं। वे मनुष्य पर शासन के अत्यन्त आवश्यक और कम स कम आधिपत्य की हिमायत करते हैं क्योंकि उनकी धारणा थी, शासन चाहे कसा भी हो कुछ न कुछ बुराई उसमें होगी ही। एक बार तो उन्होंने यहां तक कहा था—'सभी सरकारें जनता को लूटती ह कुछ कानूनी तौर से कुछ बिना कानून के'।' वे सत्ता के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। उनसे एक बार पूछा गया कि आप भारत में किस प्रकार का शासन चाहते हैं तो उन्होंने कहा था—मेरी धारणा वही ह जो टगोर ने एक बार कही थी। एक राष्ट्रपति होना चाहिए जिसे पर्याप्त अधिकार हो कि वह नीतियों को लगातार लागू करा सके। एक जनता की चुनी हुई प्रतिनिधि सभा होनी चाहिए। राज्यों का महासंघ को निश्चित योगदान देना चाहिए। यह सब कुछ एक दम ऊपरी सत्ता म सयुक्त हो, किन्तु नीचे जनता और स्थानीय निकायों को पर्याप्त स्वाधीनता होनी चाहिए कि वे अपनी क्षेत्रीय समस्याओं को दृष्टि म रखकर सीधे विधानादि बना सकें। मुसोलिनी ने प्राचीन भारतीय पद्धति के इसी मूल सिद्धान्त को लेकर शासन आरम्भ किया बाद में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के कारण दूसरे राष्ट्रों को धमकाने और धोखा देने का काय करने लगा। यदि वह अपनी मूल योजना में ही लगा रहता तो वह बहुत बडा निर्माता हुआ होता।[२] इससे यह समझने की गलती नहीं करनी चाहिए कि व लोकतन्त्र के विरोधी थे। उनका कहना यह था कि शासन व्यवस्था दो मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित होती ह—(१) राजनीतिक यानी शासन के अधिकारी (२) जाति की मौलिक आकांक्षा और उसकी बनावट यानी समाज की स्थिति। जहां तक भारत के राजनीतिकों का सम्बन्ध है, इस पर कुछ न कहना ही ठीक ह। अदना से अदना अनपढ़ हिन्दुस्तानी भी आसानी से कह सकता ह कि इनमें से अधिकांश भ्रष्ट हैं। उन्होंने श्री सी० आर० दास के शब्दों को उद्धृत करते हुए कहा—'अपने पूरे अदालती जीवन में मुझे इतने निकृष्ट किस्म के जघन्य अपराधी नहीं मिले जितने राजनीतिक क्षेत्र में[३]। राजनीतिक पूछ सकता ह कि क्या श्री अरविन्द योगी और राजनीतिक का भेद नहीं समझते। क्या राजनीति ध्यान लगाकर बठा रहता ह। इसमें बीस तरह की दिक्कतें आती हैं। श्री अरविन्द यह जानते थे वे खुद राजनीति में रह चुके थे। उन्होंने कहा— तुम भूल जाते हो कि सुभाष राजनीतिक ह और राजनीतिक की बौद्धिक कारगुजारी लाचार होकर, एक सीमा में बंधी रहने के लिए बाध्य ह। यदि ये अपने को रसेल की तरह स्पष्ट मस्तिष्क का बना लें तो उनकी सत्ता ही छिन जायेगी, और सब लोग न तो विरकेनहेड की तरह इतने जिद्दी हो सकते ह न

१ इवनिंग टाक्स तृतीय भाग पृ० १०१।
२ रेमिनिसेंसेज एण्ड एनरकोटस आफ श्री अरविन्दो पृ० ४०।
३ वही पृ० १३८।

सी० आर दास की तरह दार्शनिक ही कि तर्कपूर्ण राजनीति अथवा राजनीतिक बहाना की बात करें क्योंकि वे जानते हैं कि महत्वाकांक्षा की या राष्ट्रीयता की खाइ कहा होती है[1]।' वे इन सारी स्थितियों से पूर्णत परिचित थे, इसीलिए वे चाहते थे कि भारतीय जनता को पश्चिमी शासन पद्धतियों की नकल नहीं करनी चाहिए। क्योंकि न तो हमारी जनता इंग्लैंड की तरह इतनी शिक्षित ह कि विभिन्न दलों के कार्यक्रमों और उनको पूरा करने की उनकी क्षमताओं का सही अन्दाज लगा सकती ह और न तो योरोपीय जनता की तरह इतनी कार्यकुशल ह कि टुच्चे स्वार्थों के लिए लड़ना छोड़कर देश को सर्वोपरि वस्तु मानकर निःस्वार्थ भाव से कार्य कर सकती ह। इसलिए श्री अरविन्द का कहना था कि—'भारत आज पश्चिम की नकल कर रहा ह। लोकतन्त्रीय सरकार भारत के लिए उपयुक्त नहीं ह, हम उसी चीज को स्वीकार कर रहे हैं जिसे पश्चिम फेंक देता ह।' इससे स्पष्ट ह कि श्री अरविन्द सघीय शासन चाहते हैं जिसमें देश की सुरक्षा के लिए केन्द्रीय शासन हो और बाकी सत्ता पचायती राज्यों की तरह विकेन्द्रित कर दी जाय। इसका यह अर्थ नहीं कि वे गान्धी जी की तरह विकेन्द्रीकरण को मानने के बाद मशीनों का विरोध करते थे। नहीं वे चर्खा के जो सर्वोदयी कार्यक्रम का प्रतीक है, सख्त खिलाफ थे। उन्होंने ग्रामोद्योग की बात करते हुए स्पष्ट कहा था—"अकाल की स्थिति में तो चर्खा का कार्यक्रम कुछ सहायक हो सकता ह, पर जब इसे अखिल भारतीय कार्यक्रम का रूप दिया जाता है, तो यह बिल्कुल निरर्थक लगता ह। आपको एक ऐसा कार्यक्रम बनाना होगा, जो इस कृषि प्रधान देश के किसानों को स्थिति के अनुकूल हो। उन्हें शिक्षा दो। तकनीकी जानकारी दो, उन्हें खूब सगठित करो, राजनीतिक रूप से नहीं कारबार की दृष्टि से, पर गाधी ऐसा औद्योगिक किसान-सघटन नहीं चाहते, बस 'कातो कातो कातो' किये जा रहे हैं[2]।

यह बड़ी गहराई से सोचने की बात ह कि सामुदायिक विकास योजनाओं के बावजूद किसानों को अभी भी औद्योगिक ढग से सगठित करने का कार्य नहीं किया गया। हरितक्रान्ति के जमाने में सरकार को अचभा हुआ था कि प्राचीन परम्परा के अनुभवत किसानों ने नये तकनीकी तरीके इतनी जल्दी कैसे अपनाए। सरकार का विकेन्द्रीकरण होता तो यह बात आसानी से समझ में आ जाती। दिल्ली में बैठकर तमिलनाडु या गुजरात के किसानों के लिए योजनायें बनेंगी तो ऐसी ही गलत फहमी होगी। असल में सरकार ने भारतीय किसान या जनता को कभी ठीक से समझा ही नहीं। श्री अरविन्द ने अपने अल्पकालिक राजनीतिक जीवन के अनुभव के बल पर

१ वही पृ० १३७-१३८।
२ इवनिंग टाक्स तृतीय भाग पृ० ५९-६०।

कहा था— मैं भारतीय जनता के सम्पर्क मे आया हूँ, व अपने ही वर्ग के योरोपीयों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, वही हाल यहा के श्रमिक वर्ग की है, वे योरोपीय श्रमिक से बेहतर है[१]।' वस्तुतः जब तक शासन का हाथ जनता की नब्ज पर नही रहता और जब तक एक दूसरे में एक दूसरे के प्रति भरोसे की भावना नही जगती, समस्याए बढ़ती जायेंगी।

भारत का भविष्य और उसका वक्तव्य

श्री अरविन्द हमेशा ही भारत के लिए एक भविष्यत मिशन की बात करते हैं उन्होने ३ मई १९०८ में वन्देमातरम में लिखे अपने सम्पादकीय में कहा था कि विश्व में जब भी आध्यात्मिक अग्नि बुझ जाती है, पतन और सकट का दौर शुरू होता है। ऐसे ही अवसरों पर यह दव निर्दिष्ट है कि 'भारत अपने शाश्वत ज्योति और नवीकरण के आध्यात्मिक स्रोत से विश्व को पुनर्जीवन प्रदान करे।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे भारत का मुख्य काय यही आध्यात्मिक अवदान मानते हैं। भारत उनकी दृष्टि से जगद्गुरु ही नही, नई मानवता का ध्वजवाहक है। "पुराने युग की इस वर्तमान सन्ध्या बेला में भारत ही जो प्राचीनकाल से इस रहस्य का ग्रहण किये हुए है, इस महान् रूपान्तर का नेतृत्व कर सकता है। यही भारत का उद्देश्य है। यही मानव-सेवा उसे करनी है। व्यक्ति के लिए जसे उसने आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन की खोज की थी, वसे ही अब सारी जाति के लिए सर्वांगीण सामूहिक अभिव्यक्ति की खोज करनी होगी और मानवमात्र के लिए सामूहिक पद्धति और नई आध्यात्मिकता का आधार बनाना होगा[२]।'

प्रश्न है अपनी ही नाना समस्याओं में जकड़ा हुआ भारत क्या उनके सपनों को साकार करने की स्थिति में है? भारत पर आजादी के बाद बार बार आक्रमण हो चुके है। अनेक प्रयत्नों के बावजूद उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। देश में फूट और द्वेष का साम्राज्य है। फिर यह सब कैसे होगा?

श्री अरविन्द ने १९५० में ही भारत पर होने वाले चीनी आक्रमण की भविष्य वाणी कर दी थी। उन्होंने 'आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी' के 'पोस्टस्क्रिप्ट' में स्पष्ट लिखा था—'एशिया में ज्यादा खतरनाक स्थिति आ गई है। विश्व के इस हिस्से में

की आशका बढ गई है। तिब्बत इस छाया के भीतर आ गया ह और सभावना ह कि भारत की सम्पूण उत्तरी सीमा पर ये हमला बाल दें और उसकी सुरक्षा के लिये खतरा पदा हो जाय।' १

पाकिस्तानी हमले के बारे में तो वे १९४७ के स्वतन्त्रता सदेश में ही कह चुके थे कि यदि भारत और पाकिस्तान का गलत विभाजन दूर नही हाता ता देश की सुरक्षा हमेशा सकट में रहेगी।

इन भविष्यवाणियो के सदभ में साम्प्रतिक वाग्लादेश की समस्या को देखने से सभावना की जा सकती ह कि पाठको को एक नई रोशनी मिलेगी।

श्री अरविन्द भारत के लिए एक उददश्य, एक कम का विषय छोड गये हैं। वे भारत की आन्तरिक विशेषता का स्पष्ट रूप हमारे सामने प्रस्तुत कर गये ह। एक आध्यात्मिक आदश ही हमेशा भारत का विशिष्ट भाव और प्रेरणा रहा ह, किन्तु काल का प्रवाह और मानवता की आवश्यकता उस आदश के लिए एक नये दिशामान और नये रूप की माग करती ह। काल पुरुष के प्रयोजन के लिए अब पुराने रूप और तरीके पयाप्त नही ह। भारत को भविष्य में जो महान कदम उठाने हैं उनकी परिपूर्ति उन लकीरों पर चलकर नही हो सकती जो अति सकीण ह। हमारी आध्यात्मिकता एक ऐसे जीवन की आध्यात्मिकता नही है जो बूढा दुनिया से थका मादा और माया के तथा ईश्वरीय सृष्टि के दयनीय दारिद्रय के भाव से लदा हुआ हो। हमारा आदश वह आध्यात्मिकता नही ह जो जीवन से मुँह मोडती ह, बल्कि वह है जो आत्मा की शक्ति से जीवन पर विजय प्राप्त करती ह। हमारा आदश ससार को भगवान के आविर्भाव के प्रयास के रूप में स्वीकारना ही नही बल्कि अभी तक जो आविर्भाव हुआ ह उससे अधिक के लिए प्रयास करके मानवता का रूपान्तर करना तथा मनुष्य और ईश्वर के बीच के परदे को हटाना ह। तब ही जिस दिव्य मनुष्यत्व की क्षमता हमारे अन्दर ह उसका जन्म होगा और हमारा जीवन आत्मा के सत्य ज्योति और शक्ति से पुन गठित होगा। हमें अपने काय के स्वामी को अपनी सब क्रियाओं की आहुति देनी होगी मानव के अन्दर उसकी महत्तर आत्मा की अभिव्यक्ति करनी हागी और समस्त जीवन को योग का रूप देना होगा।

"पश्चिम ने मनुष्य की बुद्धि भावना, प्राण और भौतिक जीवन के विकास को अपना आदश माना है लेकिन उसने मनुष्य के आध्यात्मिक अस्तित्व की महत्तर शक्य ताओ को एक ओर छोड दिया ह। उसके उच्चतम आदर्श के मानदण्ड हैं प्रगति, स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, बुद्धि और विज्ञान, हर तरह की निपुणता, एक अधिक

१ आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी पोस्टस्क्रिप्ट, १९५० आश्रम सस्करण पृ० ३९५।

अच्छी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति, जाति की एकता और सासारिक सुख। ये महान प्रयास ह, परन्तु अनेक परीक्षणों न दिखाया ह कि इन आदर्शों को सच्चे व्यावहारिक रूप में चरिताथ नही किया जा सकता, इनकी नीव आत्मा में ही जम सकती ह। पश्चिम ने विज्ञान और कल-पुर्जो पर ही विश्वास किया है और अब वह अपने विज्ञान से ही नष्ट हो रहा ह और अपने कल पुर्जों के भार से ही कुचला जा रहा ह। पश्चिम ने अभी तक यह नही समझा ह कि इन आदर्शों की परिपूणता के लिए आध्यात्मिक परिवतन आवश्यक है। पूव के पास उस आध्यात्मिक परिवतन का रहस्य है, किन्तु उसने बहुत अरसे से अपनी दृष्टि धरती से फेर रखी ह।"[1] हमें धरती स विमुख नही होना ह। धरती पर सत्य चेतना को प्रतिष्ठित करना ह। मानवीय समृद्धि और आलोक का नया वातावरण बनाना है। विश्व एकता को साकार रूप देना ह। क्योंकि यह सब कुछ भारत को ही करना ह। वही कर सकता ह। उसी से कराया जाता ह। इसीलिए श्री अरविन्द भारत को सावधान और इसके लिए भारत के नौजवानो का आह्वान करते ह।

हमारा पहला ध्येय होगा इस आदश की घोषणा करना, पहले आवश्यक कदम के रूप में आध्यात्मिक परिवतन पर जोर देना, और जो उसे स्वीकार करते हैं तथा उसे परिपूण करने के लिए सच्चाई से प्रयास करते हैं उन्हें इकट्ठा करना। दूसरा ध्येय होगा—सिफ व्यक्ति ही नही वरन् इस सिद्धान्त पर आधारित सामूहिक जीवन का निर्माण करना। इतना ही नही, हमारी प्रत्येक बाह्य गति विधि के साथ-साथ एक आन्तरिक परिवतन की भी आवश्यकता ह और वह एक ही साथ आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, सामाजिक और आर्थिक क्रिया होनी चाहिये। उसका कायक्षेत्र एक ही साथ वयक्तिक और सामूहिक, प्रादेशिक और राष्ट्रीय होगा, और अन्त में यह काय न केवल देश के लिए वरन् समस्त मानवजाति के लिए होगा। इसका पहला परिणाम होगा नव-सृजन एक आध्यात्मिक शिक्षा और संस्कृति, एक विशालतर सामाजिक शक्ति जो विभाजन पर आधारित नहो बल्कि एकता पर आधारित होगी, फिर व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उसका सम्पूण विकास इतना ही नही, दूसरों के साथ उसका ऐक्य और समूह की विशालतर आत्मा और मानवता के प्रति उसका समपण। आखिर समस्या के हल की ओर पहला प्रयास होगा जो पश्चिमी नमूने पर आधारित न होकर, सामुदायिक सिद्धान्त पर आधारित होगा जो भारत के लिये स्वाभाविक होगा।

हमारी पुकार तरुण भारत के लिए ह। नयी सृष्टि के निर्माता युवक ही होने चाहिये, वे नहीं जो वयक्तिक स्पर्धा को स्वीकार करते हैं, या भारत के भावी आदश

1 पुरोधा अगस्त १९७१ पृ० २७।

के रूप में पूँजीवादी या पश्चिम के जडवादी कम्यूनिज्म को अपनाते हैं, वे भी नही जो पुरानी धार्मिक रूढियों में जकडे हुए हैं, और आत्मा द्वारा जीवन की स्वीकृति और उसके रूपान्तर को नही स्वीकार कर सकते, बल्कि वे सब जो मन में और हृदय में पूर्णतर सत्य को स्वीकार करने के लिये स्वतत्र हैं और महत्तर आदर्श के लिये श्रम करने को तैयार हैं। वे ऐसे मानव होंगे जो अपने-आपको भूत या वर्तमान को नही बल्कि भविष्य को समर्पित करेंगे। उन्हें अपने समस्त जीवन को अपनी निम्न सत्ता से ऊपर उठाने के लिये एकाग्रचित्त होना होगा। अपने अन्दर और सब मानव प्राणियों में भगवान् को पाना होगा, और देश तथा मानवता के लिये समस्त मन प्राण से अथक श्रम करना होगा। अभी तक यह आदर्श एक छोटा-सा बीजमात्र है, और जो जीवन इसे मूर्त रूप देता है वह स्वय एक नन्हा-सा केन्द्रमात्र है किन्तु हमारी ध्रुव आशा है कि यह बीज एक महान वृक्ष बनेगा, और केन्द्र एक सदा विस्तृत होती हुई रचना का हृदय होगा। इस विसर्जित होते हुए जगत की अस्त-व्यस्तता में जन्म लेने के लिये नयी मानवता सघर्ष कर रही है। जो भावना हमें प्रेरणा दे रही है उसमें दृढ विश्वास के साथ हम उस नयी मानवता के, भावी भारत के ध्वज वाहकों में अपना स्थान लेते हैं। वह महत्तर भारत हमारी प्राचीन माँ के विराट किन्तु थके मादे शरीर का कायाकल्प करके उसे नया जीवन देगा।[1]

यह आवाज है स्वतन्त्रता के ऋषि की, राष्ट्रीयता के पुरोधा की और भविष्य मानवता के पथप्रदर्शक की। इस आवाज को सुनिये, यदि इसमें सत्य दिखे तो स्वीकार कीजिए, न दिखे तो इन्कार कीजिए पर सुनना अस्वीकार न कीजिए, क्योंकि यह बुद्धि का तकाजा नही है। सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान कवि कपालिशास्त्री ने अपने 'भारतीस्तव' में लिखा है—

अद्यथीदिनमद्य भारतकुल-स्वातन्त्र्यदीक्षागुरो
स्वाराज्याय दशोऽरविन्दभगवत्सूरेजयन्तीदिनम
अद्यास्तगतमगभग बहुल्क्लेश च पूर्व युग
नूतन सगतमद्य मगलयुग जजीयता भूतले।

श्री अरविन्द कर्मधारा

इन्ही परिस्थितियों में २९ जुलाई १९७० को श्री मा ने "श्री अरविन्दोज एक्शन" नामक क्रान्तिकारी कार्यक्रम की घोषणा की। मूल घोषणा के कुछ अश नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

१ पुरोधा, अगस्त १९७० पृ० २८ २९।

"परिवर्तनकारी भागवत मुहूर्त में सभी चीजें बदलेंगी ही। भारत में पुनर्जागरण का महूर्त आ गया है और जो वचन दिये गये थे वे अब पूरे होंगे।" क्या वचन दिये गये थे? पांच सपने, पांच वचन जो १५ अगस्त १९४७ के सन्देश में श्री अरविन्द ने दिये थे, अब पूरे होंगे। यही है श्री अरविन्द कर्मधारा का उद्देश्य।

"भारत आज अपनी नियति के चौराहे पर खड़ा है। वर्षों की गुलामी के बाद भारत की आत्मा श्री अरविन्द के कर्मों से पुनर्जाग्रत हुई और उसने १५ अगस्त १९४७ को उन्हीं के जन्म दिन पर आजादी प्राप्त की। पर उस जागरण ने भारत के भीतर चेतना उत्पन्न नहीं की और आज जब हम भारत की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि—'गुलामी के बंधन और भी जकड़ गये हैं और गहराई में चोट कर रहे हैं। केवल ऊपर ऊपर से सतह पर इन घावों को भरने की कोशिश की जा रही है। काफी कुछ जन कल्याण के लिए किया गया है, पर वह भी सतही ही है। कारखाने, मिलें बांध-नहरें, मशीनी औजारों के क्रियाकलाप, जो जमीन हमवार कर रहे हैं, या खेतों में इस्तेमाल हो रहे हैं, आणविक ऊर्जा उपलब्ध की गई है और जनसेवा के लिए प्रयुक्त हो रही है, अपने पडोसियों से होड़ लेने का शोर शराबा बहुत तेज हुआ है पर भारत कहीं गहराई में तड़प भी रहा है। भारत दुःखों की घाटियों में छटपटा रहा है। वह भ्रमित और कर्तव्यमूढ़ लगता है। आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से तनावों के भीतर से गुजर रहा है, राजनीतिक दृष्टि से चहुँओर गड़बड़ झाला की स्थिति है आध्यात्मिक दृष्टि से जैसे वह खो चुका है। उसे चारों ओर से धमकाया जा रहा है अणुबम बनाने की बात ही भौतिक अस्तित्व की समाप्ति का निमंत्रण है। उसके सारे प्रयत्न उसे कहीं ले जा नहीं पा रहे हैं आखिर क्या?

क्योंकि सारे समाधान सतह पर लागू किये जा रहे हैं उस अंतरतम में नहीं, जहां से ही नई शक्ति का उदय हो सकता है। इसी आन्तरिक स्वरूप की ओर श्री अरविन्द ने हमारा ध्यान आकृष्ट कराया था, वहां तक पहुंचने का रास्ता बताया था ताकि भारत को शक्तिशाली, स्वस्थ और देशों के बीच अपनी दैवनिर्दिष्ट भूमिका निभाने के योग्य बनाया जा सके।

विश्व के लिए भारत का जागरण आवश्यक है, इसलिए पहला कार्य यह कि भारत अपनी सही आत्मा को पहचाने। १५ अगस्त १९७२ श्री अरविन्द की शताब्दी वर्ष भारत के जागरण का वर्ष होना ही चाहिए।

यही है श्री अरविन्द कर्मधारा का उद्देश्य। समय बहुत कम है। सिर्फ दो वर्ष। इसलिए प्रक्रिया बड़ी तीव्र और आकस्मिक ढंग से कार्य करेगी। इस क्रिया की शक्ति का अवतरण हो गया है और वह बड़ी तीव्रता से और बड़े सघन रूप से कार्य करने लगी है। इस शक्ति को समझ कर इसका सही उपयोग करने की आवश्यकता है।

श्री मा का कथन साक्षी है कि इन सपनों या वचनों को साकार रूप देने में तान्त्रिक शक्ति बड़ी तीव्रता से क्रियारत है।

श्री अरविन्द कर्मधारा की अदृश्य शक्ति निरन्तर सक्रिय है। श्री मा ने इस अवसर पर सन्देश दिया—"ठीक से बोलना अच्छा है। ठीक से करना उससे भी अच्छा। ध्यान रखो तुम्हारे कर्म तुम्हारे वचन से घटकर न हों।" इसके भी पूर्व ६ अक्टूबर १९६९ को जब श्रीमती इन्दिरा गांधी श्रीमती नन्दिनी सत्पथी के साथ श्री मा का दर्शन करने गयी, श्री मा ने भारत की प्रधानमन्त्री के नाम कुछ सन्देश दिये। ये सन्देश श्री अरविन्द कर्मधारा की शुरुआत से पहले व्यक्तिगत दर्शन के अवसर पर दिये गये थे। यदि कुछ लोगों को इनमें भारत के भविष्यत कार्यक्रमों का हल्का संकेत भी दिखे तो आश्चर्य नहीं।

"भारत को अब भविष्य को दृष्टि में रखकर कर्म करना चाहिए। उसे नेतृत्व करना है। इसी माध्यम से वह विश्व के रंगमंच पर अपना सच्चा स्थान प्राप्त कर सकेगा।'

"अरसा हुआ कि यह आदत हो गई है कि शासन अनैक्य और विरोध के द्वारा चलाया जाता रहा। अब समय आ गया है कि शासन एका, पारस्परिक समझ-बूझ और सहयोग द्वारा होना चाहिए[1]।' ? भारत के लिए संगठित, एकता पर आधारित भविष्योन्मुखी शासन की आवश्यकता है ताकि वह इस दैव निर्दिष्ट समय पर अपने कार्यों द्वारा विश्व के नेतृत्व करने की अपनी भूमिका निभा सके और विश्व में अपना उचित महत्त्व पूर्ण स्थान पुनः उपलब्ध कर सके।

यही था सन्देश। इसके बाद चुनाव हुआ। बांग्लादेश की समस्या आयी। लड़ाई हुई। बांग्लादेश बना। नाना प्रकार की उथल पुथल जारी है। परिणाम भविष्य बतायेगा। मैं इसपर कुछ नहीं कहना चाहता। आगामी वर्ष इन सपनों की साक्षी देंगे। इनकी पूर्ति की खुले आम घोषणा करने वाली श्री मा के लिए क्या संभव और क्या असंभव है इसे जानने का लोगों को मौका मिलेगा।

● ●

1 Let India work for the future and take the lead
Thus she will recover her true place in the world
Since long it was the habit to govern through division and opposition
The time has come to govern through union mutual understanding and collaboration

मृत्युसाम्पराय के लिए मृत्यु का वरण

यस्मिन्निद विचिकित्सन्ति मृत्यो
यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् ।
कठ० २।२९

हे यमराज मृत्यु के रहस्य और उसके स्वरूप ज्ञान के विषय में लोगों के मन में इतनी बड़ी आशका-कारी शका है अत हमें वही स्वानुभूत ज्ञान चाहिए ।

५ दिसम्बर १९५६ को श्री अरविन्द ने मृत्यु का वरण किया। सारा देश इस समाचार से अवसन्न हो गया।

तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने इस अवसर पर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए कहा—'प्राचीन ऋषियो के समान एक निर्भीक और सत्साहसी चिन्तक के साथ ही साथ श्री अरविन्द महत कार्य करने वाले व्यक्ति भी थे। पश्चिमी साहित्य का उन्होने पूर्ण अवगाहन किया था। वैसे ही उन्होने अपनी जन्मभूमि के प्राचीन समृद्ध ज्ञान विज्ञान का भी गहरा अध्ययन किया, किन्तु वे सिर्फ अध्येता शब्द के सामान्य अर्थ में अध्यवसायी नही थे। लिखित और कठाग्र शास्त्रो के अपने इस अध्ययन को उन्होने अपनी आनवरतिक और लम्बी साधना से पुन परीक्षित करके और भी अधिक सशक्त बनाया। उनका शरीर वर्ष के कुछ नियत दिनो पर अब कतिपय सौभाग्यशालियो के लिए भी देखने को न मिलेगा, किन्तु उन्होंने जो सन्देश दिये हैं और वे आध्यात्मिकता की जो सुरभि छोड गये हैं, वे सिर्फ इस देश को ही नहीं, बल्कि विस्तृत विश्व को उस पीढी तक को, जिसका अभी जन्म भी नही हुआ है, प्रेरणा देते रहेंगे। भारत उनकी स्मृति की पूजा करेगा और अपने देश के महान् तत्वदर्शियों और धर्मदूतो की पवित्र परम्परा में प्रतिष्ठापित करेगा[1] ।'

राजेन्द्रबाबू की यह भावभीनी श्रद्धाजलि राष्ट्र के जनगण मन में इस समाचार से उत्पन्न पीडा श्रद्धा और शोकाकुलता का जैसे प्रतीक है। उस समय के समाचार पत्रो में छपे काली पट्टी वाले शीर्षक इस स्थिति को शायद स्पष्ट कर सकें।

अमृत बाजार पत्रिका, सोमवार—५।१२।५०

श्री अरविन्द चले गए। अचानक और अनपेक्षित अत।

हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड, मगलवार ६।१२।५०

पूरा भारतवर्ष बिलख रहा है ५ दिसम्बर १९५०—पी० टी० आई० का समाचार है—श्री अरविन्द का शरीर कल १२ बजे शववस्त्र में लपेटा जायेगा और उन्हें समाधि

[1] हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड, ६, दिसम्बर १९५०।

दी जायेगी। यह समाधि आश्रम के मुख्य प्रागण में शाम ५ बजे दी जाने को है। आश्रम की ओर से कहा गया है कि श्री अरविन्द का शरीर चिता को नही सौंपा जायेगा, बल्कि समाधिस्थ होगा।

६।१२।५० श्री अरविन्द का शरीर आश्रम में सबके दर्शनार्थ रखा गया है। शाम ६ बजे तक करीब साठ हजार व्यक्ति पंक्तिबद्ध होकर, पूर्ण शांति के बीच उनके शरीर की परिक्रमा कर चुके हैं। श्री अरविन्द के कुछ शिष्य, जो उनकी तीमारदारी में थे, घुटने पर सिर झुकाये शव के पास शोकमग्न बैठे हैं।

भगवान् बुद्ध का अजन्ता शैली का एक चित्र, कक्ष की पूर्वी दीवाल पर लटक रहा है, जिसपर माला चढ़ी हुई है। श्री अरविन्द का शरीर श्वेत रेशमी वस्त्र से ढँका है। लकड़ी की चौकी पर बिछे मुलायम गद्दे पर जिसपर दागहीन सफेद रेशमी चादर बिछी है, यह शरीर पड़ा हुआ है। उनके शान्त मुखमण्डल को देखकर मृत्यु का नहीं, बल्कि निद्रा का आभास होता है। एक बड़ी विशिष्ट ध्यान देने योग्य वस्तु है यहाँ की गौरवता और शांति, जो आश्रम में सर्वत्र छाई हुई है। जिन लोगों ने आज श्री अरविन्द को श्रद्धाजलि अर्पित की उनमें पांडिचेरी स्थित भारतीय आयुक्त, फ्रांसीसी भारत के मन्त्रीगण, अफसर, तथा मद्रास तथा निकटवर्ती क्षेत्रों के भक्त और शिष्य गण थे।

अमृतबाजार पत्रिका ७ दिसम्बर १९५०

श्री अरविन्द आश्रम के सचिव ने आज सुबह सम्वाददाताओं को बताया कि डा० पी० सान्याल एफ० आर० सी० एस० कलकत्ता मेडिकल कालेज, डा० एस० सेन एफ० आर० सी० एस, और डा० एन० तालुकदार एम० बी० (एडिनबरा) ने, जिन्होंने श्री अरविन्द की चिकित्सा की थी, उनके शरीर की, मृत्यु के ५४ घंटे बाद आज सुबह परीक्षा की और उसे ज्यों का त्यों पाया। शरीर पर निष्प्राणताजन्य परिवर्तन के कोई चिन्ह नहीं पाये गए। अतः अन्तिम संस्कार आज नहीं किया जायेगा।

फ्रांसीसी भारत के प्रधान चिकित्साधिकारी श्री बार्बे ने भी, जिन्होंने आज प्रातः शरीर की परीक्षा की प्रमाणित किया कि यह निर्विकार हैं और इसमें निष्प्राणता से उत्पन्न कोई परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। दिल्ली के इर्विन अस्पताल के डा० सेन ने जिन्होंने श्री अरविन्द की अन्तिम दिनों चिकित्सा की थी, ताईद की शरीर में ऐसा कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है।

अमृतबाजार पत्रिका ९-१२-१९५०

१११ घंटे के बाद समाधि—अन्तिम सस्कार सम्पूर्ण

आज मृत्यु के १११ घंटे बाद श्री अरविन्द को समाधि दी गई। श्री अरविन्द को रोजवुड (एक बढ़िया लकड़ी) की बनी शव-पेटिका, जिस पर उनका अध्यात्म

प्रतीक सुनहले रग में अकित था, उनके कक्ष स प्रागण में लायी गयी। इस बीच उनके शिष्यो ने एक भूकक्ष, जो दस फीट गहरा, पाच फीट चौडा और बारह फीट लम्बा ह तयार कर लिया था। यह भूकक्ष उस वृक्ष के नीचे बना ह, जिसके छोटे छोटे पीले फूलो को श्रीकृष्ण की चूड़ा की पीतमणि कहते है। नवपेटिका इसमें रखी गयी। उसे कान्क्रीट के तख्ता से ढँक दिया गया और वहा उपस्थित सभी लागों न भूकक्ष को बालू से भर दिया। श्रीमा दो तल्ले की खिड़की सेअतिम सस्कार को देख रही थी।

अपने ५ १२ ५० के अमृत बाजार पत्रिका ने श्री अरविन्द के निधन को आक स्मिक और अनपेक्षित बताया। हिन्दुस्तान स्टैंडड के सवाददाता ने दिल्ली में ससद भवन की वीथिका में ससद-सदस्यों द्वारा श्री अरविन्द के निधन का समाचार सुनकर उनके स्तब्ध रह जाने की चर्चा की है। "भयानक क्षति महत्तम त्रासदी" जसे वाक्य अचानक स्वत स्फूत ढग से उनके होठों से फूट पड़ते थे।

श्री अरविन्द का यह आकस्मिक निधन कई दृष्टियों से विचार का विषय बना। उनके शरीर की अविकृति पर भी सारे देश में कुतूहल और चमत्कारिक आश्चय व्यक्त किया गया।

अनेक डाक्टरो ने, जो वैज्ञानिक तथ्य परकता से तिल बराबर भी इधर उधर हटने को तयार नही होते, इस चमत्कार की पुष्टि की। इन डाक्टरो ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण सस्मरण, डा० प्रभात सान्याल का ह जो 'ए कॉल फ्राम पाड्चेरी' शीषक से प्रकाशित हुआ ह।

२९ नवम्बर २९५० को डा० सान्याल को कलकत्ते में उनके निवास-स्थान पर एक तार मिला—"वायुयान से शीघ्र आएँ-आत्यावश्यक-श्रीमा।।

३० नवम्बर को सान्याल मद्रास पहुँचे और वहा से किराये की टक्सी लेकर पाडिचेरी के लिए चल पड़े। शाम को वे आश्रम पहुच गए। सान्याल लिखते हं—"वही आश्रम के डा० नीरद और मेरे सहयोगी डा० सत्या सेन से श्री अरविन्द के स्वास्थ्य पर बातचीत हुई। मैं धीरे धीरे सीढ़िया चढ़ते हुए उनके कक्ष में पहुँचा। वहा मैंने श्री अरविन्द को, अपने ईश्वरीय बीमार (Patient) को शय्या पर, सब कुछ से तटस्थ, शान्ति की एक महान् मूर्ति की तरह आँखें बन्द किये अर्धनिद्रित अवस्था में देखा।[१]"

श्री अरविन्द की किडनी में दोष आ गया था। सभी डाक्टर इस बात पर सहमत थे कि लगातार धुलाई देकर सफाई करने और एण्टीबायोटिक्स का प्रयोग करने से स्थिति काबू में आ जायेगी। पहली दिसम्बर को उनके स्वास्थ्य में कुछ सुधार भी दिखाई पडा। श्री अरविन्द उस दिन काफी ठीकठाक थे और शरीर का तापमान भी

१ दिसम्बर १९५३, मदर इण्डिया रिप्रिंट पृ० १।

औसत रहा। शरीर को गीले वस्त्र से पोछा गया। उन्होंने थोडा बहुत नाश्ता भी किया और व्यग्य विनोद करते रहे।

डा० सान्याल लिखते हैं—"मैं उनके सर को सहला रहा था। मैंने पूछा कहिए कैसा लग रहा है।"

"मैंने सुना था कि तुम चिकित्सा विज्ञान के फेलो के रूप मे इग्लैन्ड गये थे, पर तुमने मालिश कहाँ से सीखी ?" मौका पाकर मैंने कहा कि हम आपके रक्त की परीक्षा करना चाहते हैं। इस पर वे मुस्कराये और व्यग्य से कहा—"तुम डाक्टर लोग बीमारी और दवा के अलावा कुछ सोच ही नही सकते। किन्तु ऊपर से लक्षित होने वाला बातो के अलावा उनसे अलग और उनसे ऊपर और भी कुछ होता है। मुझे किसी चीज की जरूरत नही है।[1]"

डा० सान्याल के इस बयान से स्पष्ट हो जाता है श्री अरविन्द अपनी बिमारी को सामान्य बीमारी नहीं मानते थे। उसके साथ जुडे हुये अनेक तत्वो की उन्हें जानकारी थी, जिसे वे गुप्त ही रखना चाहते थे। इन चीजो का उल्लेख आगे किया जायेगा।

चूंकि स्थिति सुधरती जा रही थी, अत डा० सान्याल ने निर्णय किया कि वे विदा लेकर कलकत्ता के लिए प्रस्थान करेंगे। उन दिनो स्कूल-समारोह चल रहा था। वह दूसरा दिन था और माँ खेल के मैदान से सामूहिक खेल्कूद का निरीक्षण करने के बाद लौटी थी। इसलिए सान्याल कुछ कह न पाये। दिसम्बर तीन को श्री अरविंद का स्वास्थ्य काफी अच्छा था। उस दिन नीरद वरण ने उनको फल का रस दिया था और उन्होंने उसको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया था। ११ बजे के करीब डा० सान्याल ने श्री माँ से कहा—"चूँकि गुरुदेव का स्वास्थ्य ठीक हो रहा है, अत मैं इस सन्ध्या को जाने की सोच रहा हूँ। श्री मा यह सुनकर बहुत गभीर हो गयी। ' मैंने उनकी आखों को देखा और मेरे सारे शरीर में कप दौड गई। मैं सोचने लगा कि मैंने अपने जाने की बात इस तरह क्यों कह दी। मुझे श्री माँ की आज्ञा की प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। मुझे हार्दिक पीडा हुई और मैं बोल पडा— 'मैं कुछ दिन और रुक जाऊगा।' यह सुनकर श्री मा के चेहरे पर हल्की सी हसी छा गई। वे अश्वस्त हुइ।

दोपहर के बाद सहसा स्थिति बदलने लगी। तापमान १०१ डिग्री हो गया। श्वास लेन में निश्चय ही कष्ट हो रहा था। श्री मा कमरे में चार बजे आ गयी और उन्हे देखती खड़ी रही। पूरी दोपहरी हम उन्ह पानी या फल का रस या कुछ भी पिला सकने में असफल रह थे। इसलिए हमने श्रीमा की सहायता चाही। इन्होने चम्मच उनके मुँह से लगाया। उन्होंने आखें खोली। एकाध चुस्की लेकर वे पुन निष्क्रिय ढग से पड गये। श्रीमा हमें लेकर बगल के कमरे में आयी और उन्होंने स्पष्ट कहा—"वे पूरी तरह भीतर से सचेत हं, पर अपने में रुचि लेना छोड रहे हैं।"

१ दिसम्बर १९५३, मदर इडिया रिप्रिंट पृ० २ ३।

डा० सान्याल के लिए एक चीज बहुत अजीब लगती कि "श्री अरविन्द ऊपर से बेहोश जैसे लगते हुए भी, जब कोई पथ्य दिया जाता ग्रहण कर लेते और अपने रूमाल से स्वयं अपना मुह पोछ लेते फिर वे लेटते और पुन वैसे ही बेहोश जसे हो जाते। हम सब को ऐसा लगता कि चेतना कही बाहर से आती तब वे करीब-करीब सामान्य ढग से काय करते, और फिर वह लौट जाती शरीर कांपता और पीड़ा में डूब जाता।[१]"

इसी स्थिति में एक बार श्री अरविन्द ने सान्याल से पूछा—"बगाल का क्या हाल ह? खास तौर से शरणार्थियों का?"

डा० सान्याल ने सविस्तार उनकी दारुण कथा सुनाई और कहा—"निश्चय ही भगवान उनकी मदद करेंगे।"

"निश्चय ही' श्री अरविन्द बोले—"यदि बगाल ईश्वर को चाहें।' वे पुन उसी तरह निश्चेष्ट पड गये।

५ बजे के करीब श्री अरविन्द की हालत कुछ ठीक थी। वे शय्या से उठे। आराम कुर्सी पर जाकर बैठे। एक क्षण के लिए जसे वे बिल्कुल भिन्न व्यक्ति हो गये हों। आंखें बन्द किये पूर्ण शान्त भाव से बैठे रहे। किन्तु वदिक ऋषि के सदृश दीख पड़ने वाली यह शान्त, महान् आकृति बहुत देर तक नही बनी रही। करीब पौन घटे के बाद हो घबड़ाहट बढने लगी और उन्होंने शय्या पर जाने की इच्छा व्यक्त की। श्वास प्रक्रिया का अवरोध दुन बग स कष्ट दने लगा। पेशाब में रुकावट आ गयी और तकलीफ बेहद बढ़ गयी। यद्यपि वे अचेत लगते थे पर थे नही, उन्होंने चम्पकलाल को खीचकर सीने से लगा लिया और चुम्बन दिया। यह दिव्य वात्सल्यपूर्ण प्रतिदान नीरद बरण और मुझे भी प्राप्त हुआ। इस तरह का व्यवहार उन्होंने कभी नहीं किया था। श्री मां प्रतिदिन की भांति खेल क मदान से लौटी। प्रतिदिन की तरह उन्होंने शय्या पर चरणों की ओर मालायें रख दी। व आज बहुत ज्यादा गभीर और शान्त लग रही थी, जिसके कारण हमें परेशानी होने लगी। बगल के कमर में जाकर हमलोगों ने प्राथना की—"नर्सों स ग्लूकोज वगरह चढ़ाने की अनुमति दें।' श्री मां न कहा—"मैंन तुम लोगों से कहा कि अब इसकी आवश्यकता नहा ह। उनकी अपन में अब कोई दिलचस्पी नहीं रह गई ह। वे जाने की तयारी कर रह ह।'

१ वही पृ० ५। इस सम्बन्ध में श्री नीरदबरण ने सान्याल के इस कथन को भी उद्धृत किया है—"एक बीमार जो कोमा (चेतनाशून्यता) की स्थिति से घटे या दो घटे बाद बाहर आ जाता है पानी मांगता है समय क्या है यह पूछता है ऐसा यह 'कोमा' बहुत विचित्र लगता है कम से कम मैंने अपने चिकित्सानुभव-काल में कोमा की ऐसी स्थिति कभी नहीं देखा। अब हम होंदर आर हम दीसर' —पृ० १०।

हम उनकी शय्या के इद गिद बठे सोचते रहे कि क्यो वे अपने में दिलचस्पी नहो ले रहे हैं। डॉ० नीरद ने उ हें अनेक लागों की बीमारियाँ दूर करते देखा था। अत स्वाभाविक प्रश्न उठता ह कि इस सकटमय क्षण में वे अपने प्रति एस उदासीन क्या हैं? क्या वे अपना बलिदान करने जा रहे हैं?

रात ग्यारह बजे मा आयी और उन्होंने श्री अरवि द को एक प्याला टमाटर का रस पिलाया। एक अद्‌भुत घटना—वह शरीर जो अबतक पीडा में डूबा था, निश्चेष्ट था, सास क लेने के लिए तडप रहा था सहसा शा त हो गया, चेतना शरीर में प्रवेश कर गई हा जैसे वे जगे हुए थे सहज सामा य भाव से उन्होने टमाटर का रस पी लिया, चेतना पुन लौट गई और शरीर पुन पीडा में तडपने लगा।

रात्रि को १ बजे (५ दिसम्बर) मा पुन आयी। उन्होंने गुरुदेव को देखा। श्री माँ के चेहरे पर दु ख, भय, चिन्ता का कोई चिह्न भी न था। उन्होने आख के इशारे से मुझे बगल के कमरे में बुलाया—'तुम्हारा क्या ख्याल ह। क्या मैं एक घंटे के लिए 'एका त' में जा सकती हूँ।' यह एक बहुत विशेष बात है। जब मा 'एकान्त' में जाती हैं तो उसका अथ ह कि उनके शरीर से चेतना बाहर आ जाती है। उस वक्त कोई न तो उन्हें पुकार सकता ह, न कमरे के भीतर जा सकता है। मैंने सकेत में धीरे से कहा—"मा, यह मुझसे सँभलने के बाहर की चीज ह।' वे बोलीं— जब वक्त आ जाय, मुझे बुलाना।'

मैं गुरुदेव के सिरहाने खडा होकर उनके बालो को सहलाने लगा, जा उन्हें हमेशा अच्छा लगता था। नीरद और चम्पक लाल पताने बठे पैरो को सहला रहे थे। अचानक शरीर में कप हुआ। उन्होने अपनी दोनों भुजाओ को छाती पर एक के ऊपर एक रख लिया। तभी सब कुछ खत्म हो गया। श्वास ब द हो गया। उस वक्त रात्रि के १ बजकर २० मिनट हुए थे। मैंने नीरद से कहा कि मा को बुला लो। तभी क्या देखता हूँ कि मा कमरे में घुसी। वे श्री अरवि द के पताने खडी थी। उनके सारे केश खुले थे और क धे पर बिखरे हुए थे। उनकी आखें इतनी भयानक लगती थीं, मैं उधर देख नहो पाया। वसे ही एकाग्र आखों से वे उन्हें देखती रही। १ बजकर २६ मिनट पर मैंने कहा—"सब समाप्त हो गया।" चम्पकलाल के धय का बाँध टूट गया। वे सिसकते हुए मा से बाले—"मा, सच सच कह दो कि डा० सा याल गलत कर रहे हैं। *वे अभी जीवित ह।' श्री माँ ने चम्पकलाल की ओर देखा वे अचानक* शा त हो गये, जसे किसी ने उनपर जादू की छडी छुला दा हो। श्री मा वैसे ही आधे घटे तक खडो रही। मैंने बहुत देर बाद इस आकस्मिक धक्के से बाहर होने पर मा से कहा—'अब क्या करना है। हमें अ तिम सस्कार का प्रबध करना होगा।' श्री मा बोलीं—"उन्हें सर्विस ट्री' के नीचे समाधि दी जायेगी, उसी जगह जहा

तरह बालछड़ (Maiden hair) के पौधे बढ़ रहे हैं। डा० सान्याल इस उत्तर से स्तब्ध रह जाते हैं— तो यह जगह पहले से ही उस काम के लिए चुनी हुई थी। यह है ईश्वरीय कार्य-पद्धति।[1]"

सारे आश्रम में समाचार विद्युत् गति से दौड़ गया। नलिनीकान्त गुप्त और पवित्र (पी० बी० सेंट हिलेयर) इस दृश्य को देखकर स्तब्ध रह गये। पवित्र पैरों के पास खड़े थे और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा उमड़ रही थी। डा० गुरुमारन और डा० सान्याल ने मृत्यु के प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर किये। पासकूट के अपने कमरे में बैठे डा० सान्याल लिखते हैं पूरब के फटते हुए आकाश को देख। मानो ही इस पर विश्वास न करते हुए-से बड़बड़ा रहे थे—"श्री अरविन्द चले गये। श्री अरविन्द चले गये!"

एक ही दारुण मनोभाव ने पूरे देश को शिकार बना लिया। श्री अरविन्द के इस आकस्मिक निधन का समाचार सुनकर प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा "श्री अरविन्द के निधन की आकस्मिकता के समाचार ने हम सभी को गहरा धक्का पहुँचाया है। वे एक महान् व्यक्ति थे और अधिक (महत्वपूर्ण) थे। वे स्वयं में एक संस्था हो गये थे और किसी को कल्पना भी नहीं थी कि वे इतनी जल्दी हमें छोड़ जायेंगे। पुरानी पीढ़ी के लोग उन्हें भारतीय स्वतंत्रता की जलती हुई मशाल के रूप में याद करते हैं। बाद के दिनों में उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र से बहुत अलग होकर एकान्त में रहकर पूर्णतः अपने को दर्शन और धर्म के लिए सौंप दिया था। उनकी आश्चर्यकारी बौद्धिक दीप्ति उनकी रचनाओं और विचारणाओं में अभिव्यक्त हुई है। यद्यपि अपेक्षाकृत बहुत थोड़े से लोग इस एकान्त में उनसे मिल सके पर उनकी पुस्तकों ने उनके विचारों को दूर दूर तक फैलाया। आज के सर्वोच्च मेधावियों में से एक हमारे बीच से चला गया है। और हम सभी इस क्षति से शोकाकुल हैं।'[2]

सरदार वल्लभ भाई पटेल अपने व्यक्तित्व और कार्यप्रणाली में श्री अरविन्द के एक पक्ष से बहुत निकटता रखते थे, इसीलिए उनके शोकोद्गार में एक अद्भुत श्रद्धा और पीड़ा का समन्वय दिखाई पड़ता है—श्री अरविन्द के निधन से मेरे दिमाग में भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई की शुरुआत की यादें ताजा हो जाती हैं। एक निर्भीक देशभक्त और आजादी के एक वीर और साहसिक योद्धा के रूप में उन्होंने अपने युवा काल का सर्वोत्तम देश को सौंप दिया। वे ज्यों ज्यों प्रेरणादायी नेता के रूप में उभरते गये उन्होंने अपने अनेकानेक प्रशंसकों के मन में देश के लिए बलिदान और आत्मोत्सर्ग की भावनाएँ जगायीं। जिसके वे खुद एक बेहतरीन उदाहरण थे। इन चीजों के

१ द कॉल फ्राम पांडिचेरी।
२ हिंदुस्तान स्टैंडर्ड ६ १२, १९५०।

विना किसी भी राष्ट्र का न तो निर्माण हो सकता है और न तो वह अपने को चरितार्थ ही कर सकता है। मैंने सबसे पहले उनको तब जाना जब वे बडौदा में प्राफेसर थे। मैंने उनमें एक चुम्बकीय आकर्षण वाले व्यक्तित्व का अनुभव किया जो अपने देश के प्रति प्रेम भावना से खिलते खिलते को था। यही प्रेम उन्हें कालान्तर में आध्यात्मिक याग और साधना के दिलचस्प प्रयागा की ओर ले गया। आत्मा और भौतिक शरीर के रहस्यपूर्ण संघर्ष के उस क्षेत्र में भी उन्होने भौतिकता पर आत्मा की असामान्य विजय प्राप्त की और उस क्षेत्र में भी उनका ऐसा महत्वपूर्ण योगदान रहा कि उससे खिचकर निकट और दूर के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोग उनके अनुयायी बने। किन्तु हमारी समस्याओं और नियति के प्रति उनकी दिलचस्पी वैसी ही गहरी बनी रही जैसी पहले थी। हमारी समस्याओं के प्रति उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण ने एक जीवन्तता और नई ताजगी पदा की, जो हमारे लिए सीख और प्रेरणा दोनों ही देने वाली थी। उनकी मृत्यु के कारण भारत ने एक बहादुर और विशिष्ट पुत्र खो दिया ह और आध्यात्मिक जगत एक यशस्वी और सिद्धि लब्ध ऋषि से वंचित हो गया ह[१]।"

श्री अरविन्द के इस निधन से सम्पूर्ण देश अपने को दयनीयता और बेचारेपन की हालत में अनुभव कर रहा था। संकट और संत्रास की उस घड़ी में उनके प्रेरणादायी पथप्रदर्शन के अभाव के कारण सभी विजड़ित और स्तब्ध थे।

हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड के ६-१२-५० के अंक में प्रकाशित सम्पादकीय श्रद्धांजलि काफी विचारपूर्ण और तथ्यात्मक है। "हमारी मानवजाति के इतिहास के इस क्षण में, जो गहरे अंधेरे और उलट पुलट कर देने वाली नियति से आक्रान्त है, पूरब की एक और कृपालु और प्रकाशदायनी ज्योति बुझ गयी ह। इस अनाध्यात्मिक युग के महत्तम ऋषियों में एक, श्री अरविन्द हमारे बीच नहीं रहे। शाश्वत का वह वातायन जिसने आज के दिग्भ्रमित और संकटों से घिरे हमारे जीवनेतिहास पर दिव्यता की ज्योति फैलाई थी, बन्द हो गया। विद्वान, प्राध्यापक, दार्शनिक, कवि, देशभक्त, क्रान्तिकारी, और एक ऋषि के रूप में श्री अरविन्द ने अपनी एक जिन्दगी में बीस जिन्दगियों का समेट लिया था और व अन्त में अठहत्तर वर्ष के युवाकाल में मृत्यु को प्राप्त हुए।

सम्पादकीय के अन्त में तात्कालिक विश्व की दारुण स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया ह— 'उस युग में, जो केवल भौतिक सफलताओं और खुशियों की ही परवाह करता ह, श्री अरविन्द जो दिव्य-जीवन के आदर्श का प्रतिनिधित्व करते थ, हमारे लिए चुनौती ह। वे आत्मिक जीवन के पक्षपाती थे, तथा मनुष्य के सामाजिक

१ हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड ६-१२-१९५०।

जीवन को आध्यात्मिक सौहार्द्र पर प्रतिष्ठित देखना चाहते थे। पहले की अपेक्षा कही अधिक, आज हमारे बीच श्री अरविन्द जसे आध्यात्मिक नेताओ की जरुरत है, ताकि मानवता के क्रिया कलापो के ज्वारभाटे को, जो हमें ऐसे सवनाश की ओर ले जा रहा ह, जिसका अन्दाजा भी नही लगाया जा सकता, सँभाला जा सके।

भारतीय सम्पादक की सपेक्षा 'स्टेटसमन' का अंग्रेज सम्पादक इस निधन से किसी भी तरह कम शोकाकुल और हतप्रभ नही दीखता। उस तारीख के सम्पादकीय म स्टेटस मन के सम्पादक ने लिखा—"पिछले वर्षों कुछ खास मौका पर उन्होने राजनीतिक समस्याओ पर खुलेआम अपने विचार व्यक्त किये जो अद्भुत सूझ-बूझ से भरे हुए थे। उनके पाडिचेरो में एकान्तवास के बाद से लगातार अन्तराष्ट्रीय सकट की ऐसी घट नाएँ होती रहीं कि उन्हें विश्व एकता के लिए आध्यात्मिक आधार की विचारधारा का सामने लाना पडा। उनका निधन ऐसे वक्त हुआ है, जब मानव-जाति एक और जघन्य युद्ध की विभीषिका में घिरने जा रही ह। तथापि ऋषि और महात्माओ के शब्द केवल किसी खास क्षण क लिए ही नही होते और न तो वे बालू की परत पर लिखे-जैसे ही होते ह। [अर्थात वे सदा के लिए माग दशक बनते ह।]

उपयुक्त विवरणो से दो बातें बहुत स्पष्ट रूप से सामने आती ह। पहली यह कि श्री अरविन्द की मृत्यु का समाचार सबको आकस्मिक लगा। स्वय डा० सान्याल के विवरण से भी इसकी पुष्टि होती ह। यही नही ऐसा लगता ह कि उन्होंने जानकर मृत्यु का वरण किया। डा० नीरदवरण ने अपना एक पुस्तिका में, जिसने उस निराशा भरी स्थिति में प्रकाशस्तम्भ की तरह जाने कितनी कितनी बिलखती आत्माओ को रोशनी और सहारा दिया, लिखा ह—"श्री अरविन्द के जीवन का अध्ययन इस बात का प्रमाण देता हैं कि एकाधिक बार वहाँ कोई न कोई ऐसी आकस्मिकता घटती रही ह, जो उनके निणय का परिणाम प्रतीत होती ह। हम देखते ह कि सहसा उर्ध्वमुखी उठती हुई जीवन रेखा मुडकर एक नया रूप ले लेती ह जब वे सहसा आई० सी० यस० में अद्भुत सफलता पाकर भी उस रुतबे को एक तरफ फेंककर बडौदा की एक गवहीन नौकरी में आ जाते ह। वहाँ उनके भाग्य का सूय जय पुन ऊपर उठने लगता ह और व जनता क आकषण और प्रशसा का केन्द्र बनने लगते है वे सहसा उस विशिष्टता की चोटी से स्वय उतर आते ह। कुछ दिना के लिए यह सूय घटाओं में घिर जाता ह। पर्दे के पीछे काय चलता रहता ह। सहसा एक दिन वह राजनीतिक क्षितिज पर चकाचौंध कर देने वाली रोशनी के साथ पुन उदित हो जाता ह। और जब प्रत्येक व्यक्ति की आँखें आश्चय और आनन्द स इस प्रकाश को देखने लगती ह, कि रोशनी अपने का जेलखाने की कालिमा में कद कर लेती हूं, जहाँ वे अपनी जिन्दगी की सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूति को प्राप्त करते ह। जेल से बाहर आने पर, उनके

द्वारे खड़ी उन्हें अखिल भारतीय नेतृत्व प्रदान करने के लिए उत्सुक रहती है कि वे अचानक एक रात को गायब हो जाते हैं और अनेक वर्षों के लिए पाडिचेरी में अज्ञात वास में लुप्त हो जाते हैं। यह जस काफी न हो। १९२६ में अपनी साधना की प्रधानतम विजय प्राप्त कर लेने पर, जब हम यह आशा लगाए थे, कि वे विश्व के सर्वोच्च शिखर पर आत्मा की विजय ध्वजा फहरायेंगे, वे और भी गूढ़ अज्ञातवास यानी एकान्त वास में चले गये। और अब आया है यह अन्तिम अज्ञातवास, जो यद्यपि पहले के अज्ञात वासों की ही तर्कपूर्ण परिणति है, फिर भी इस आश्चर्यकारी ढंग से घटा है कि ज्वालामुखी के विस्फोट की तरह इसके प्रभाव से कोई बच नहीं पाया है।'[1] 'नीरदवरण भी इस घटना का स्वयंकृत वरण ही मानते हैं यानी आत्मनिर्णय से स्वीकृत अद्भुत अज्ञातवास। दूसरी बात जो पत्रकारों ने सम्पादकीय में लिखी यानी वि व पर आसन्न सकट के समय उनकी अनुपस्थिति का शोक।

क्या ये दोनों बातें परस्पर अलग अलग हैं? जब हम विश्व की परिस्थिति का विश्लेषण करते हैं तो लगता है उस वक्त सबसे भयानक सकट के बादल कोरिया पर मडरा रहे थे। मैंने श्री अरविन्द के निधन के पहले के अमृतबाजार पत्रिका के कुछ अक उलट-पुल्ट कर देखे। मुझे एक बडी विचित्र सी रहस्या भरी स्थिति अखबारी पृष्ठों पर तरती हुई नजर आयी। मैं आपको उन तारीखों की ओर पीछे लौटा ले चलना चाहता हूँ।

२८-८-५०

कलकत्ते के दमदम हवाई अड्डे पर अमृत बाजार पत्रिका के विशेष प्रतिनिधि से अपनी अन्तर्वार्ता में बर्टेण्ड रसेल ने कहा कि "अमेरिका और रूस के युद्ध में एशिया को नहीं फँसना चाहिए। इस दृष्टि से मैं नेहरू का समर्थन करता हूँ। मैं जानता हूँ कि कोरिया में उत्तरी कोरिया ही (कम्यूनिस्ट) मूल आक्रामक है। ऐसे आक्रमणों का, चाहे वे जहा भी किये जायें, जवाब मिलना ही चाहिए। कोरिया के विभाजन को मैं गलत मानता हूँ। यह एक मूर्खतापूर्ण नीति है कि कोरिया को दो टुकडों में बाँट दिया जाय।

२७-८-५०

कराची के हवाई अड्डे पर पत्र प्रतिनिधियों के सामने श्री रसेल ने कहा कि आज के विश्व की समस्याओं का एकमात्र समाधान 'विश्व सरकार' ही हो सकती है। उन्होंने आगे कहा कि इस युद्ध के खतरे से बचने का एक मात्र रास्ता है कि पश्चिमी

१ आइ एम हीयर आइ एम हीयर पृ० १२।

देश अपनी सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत करें। कोरिया युद्ध के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि रूस अनेक स्थानों पर ध्यान बँटाये रखने की अपनी रणनीति अपना रहा है। जब वह देखेगा कि पश्चिमी शक्तियों की सेनायें कोरिया में बुरी तरह फँस गई हैं, तो वह अपनी इच्छा से ज्यादा उपयुक्त जगह चुनकर हमला करेगा। इस विश्व युद्ध में किसी को भी विजय नहीं मिलेगी।

४-९-५०

श्री जवाहरलाल नेहरू ने प्रशान्त महासागरीय वैदेशिक संस्थान के ग्यारहवें अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहा कि हमें ऐसे दुस्साहसिक कार्यों से बचना चाहिए जो विश्व को तृतीय विश्वयुद्ध के कगार पर ले जा रहे हैं। क्योंकि तृतीय विश्वयुद्ध जैसा कि हर व्यक्ति जानता है मनुष्य जाति के लिये असीम ध्वंस और दारुण संकट का कारण बनेगा।

२८ ११ ५०

संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिकी प्रतिनिधि श्री वारेन आस्टिन ने कहा कि कोरिया में चीन ने हमला किया है। कम्यूनिस्ट चीन के प्रतिनिधि श्री ऊ (Wu) ने अमेरिका को चेतावनी दी कि वह कोरिया और फारमोसा से अमेरिकी फौजों को तुरंत हटा ले, वरना परिणामों की सारी जिम्मेदारी उसी पर होगी।

२ १२ ५०

ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली ने अमेरिकी प्रेसिडेंट ट्रूमन से कोरिया के मसले पर तुरंत बातचीत करने के लिए अमेरिका जाने की घोषणा की है। फ्रांस के प्रधान मंत्री अपने विदेश सचिव के साथ ३ दिसम्बर १९५० को इंगलैंड पहुँच रहे हैं, ताकि वे एटली से कोरिया के मामले पर बातचीत करें। हो सकता है कि वे भी अमेरिका जायें।

उपर्युक्त समाचारों की गंभीरता को देखते हुए पाठक सहज अनुमान लगा सकता है कि कोरिया युद्ध विश्वयुद्ध में परिणत होने की अन्तिम स्थिति में आ गया था। इस विराट ध्वंस और संकट को टालने के लिये बेशुमार दौड़ धूप चली रही थी। २९ नवम्बर १९५० को डा० सान्याल के पास भेजे श्री माँ के पत्र से श्री अरविन्द के अस्वस्थ होने का समाचार ज्ञात हुआ।

श्री अरविन्द कोरिया-युद्ध के बदलते हुए रुख से बहुत चिन्तित थे। उन्होंने एक बार शिष्यों से कहा भी था कि यदि यह विश्व युद्ध में बदल जाता है तो मेरे कार्यों को बहुत क्षति पहुँचेगी। मदर इंडिया के सम्पादक श्री के० डी० सेठना ने कोरिया की समस्या पर एक पत्र लिखकर उनके निर्देशन की प्रार्थना की। उन्होंने २० जून १९५० को सेठना के पत्र का उत्तर दिया। पत्र की आरंभिक पंक्ति से स्पष्ट है कि वे कोरिया

समस्या पर अपने निर्णय को सार्वजनिक रूप से उद्घाटित करना नहीं चाहते थे। "मैं नहीं जानता कि क्यों तुम चाहते हो कि तुम्हारे पथ निर्देशन के लिए कोरिया समस्या के बारे में अपने विचारों की पद्धति तुम्हें स्पष्ट करूँ। कुछ ऐसा भी नहीं है कि संकोच किया जाये। यहाँ की सारी स्थिति नितान्त स्पष्ट है। साम्यवादी योजना का पहला कदम है, जिसका उद्देश्य पहले उत्तरी हिस्सों को वश में करना और हड़पना होगा फिर दक्षिण एशिया को जो पूरे एशिया महाद्वीप को आक्रान्त करने की उनकी योजना की शुरुआत कहा जा सकता है—फिर तिब्बत का, जो उनके भारत प्रवेश का द्वार होगा।

यदि वे इसमें सफल हो जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि क्या वे पूरे विश्व पर कदम व कदम कब्जा करने की अपनी योजना को आगे न बढ़ायें?[1] ऐसा वे तबतक करते रहेंगे जबतक वे सीधे अमेरिका से भी समझ लेने की स्थिति में नहीं हो जाते। अमेरिका से लड़ाई बचाने का यह प्रयत्न तब तक चलेगा जब तक स्तालिन सही मौके का ठीक से चुनाव नहीं कर लेते। ट्रूमन संभवतः इस स्थिति को समझते हैं, जैसा कि उनकी कोरिया में चल रही पहल से लगता है। पर यह देखना बाकी है कि क्या वे इतने मजबूत हैं कि अपने इरादों को वहाँ पूरा करने का प्रयत्न करते हैं? ट्रूमन ने जो तरीके अपनाये हैं वे शायद अधूरे और असफल होंगे, क्योंकि उनमें सीधे सैनिक हस्तक्षेप को नहीं अपनाया गया है। बहुत करके समुद्रीय और हवाई हस्तक्षेप मात्र ही हो रहा है। अभी तो यही स्थिति है। हमें देखना है कि यह आगे क्या रूप लेती है। एक चीज़ निश्चित है। अगर बहुत ज्यादा ढुलमुल और द्विविधा ग्रस्त स्थिति बनी रहती है और अमेरिका यहाँ कोरिया की रक्षा करने से पीछे हट जाता है तो वह एक के बाद एक धक्के से अपने मोर्चों से पीछे हटने के लिए विवश किया जायेगा। और तब बहुत देर हो चुकी रहेगी, कहीं न कहीं उसे जमकर अपनी रक्षा करनी ही होगी। चाहे इस कठिन निर्णय से युद्ध की ही नौबत क्यों न आ जाय। स्तालिन खुद अभी एकदम से विश्वयुद्ध के खतरे में पड़ने को तैयार नहीं हैं। इसलिए ट्रूमन इस स्थिति का फायदा उठाकर पासा पलट सकते हैं। ऐसा वे तभी कर सकते हैं जब वे लगातार युद्ध के खतरे को स्वीकार करते हुए स्तालिन को अमेरिका के सामने मोर्चे पर मोर्चा छोड़ने के लिए विवश कर दें। इस समय मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ। स्थिति जितनी गंभीर हो सकती, हो गई है।" बर्ट्रेण्ड रसेल ने जो बात २७ अगस्त १९५० को कही थी यानी रूस मौके के चुनाव में है, वही बात श्री अरविन्द ने २० जून को कही थी।

१ २० जून १९५० को लिखा पत्र जो बाद में मदर इंडिया में छपा भी था। इस दृष्टि से सेठना के निबन्ध पासिंग आफ श्री अरविन्दों को पढ़ा जा सकता है।

इन्हीं स्थितियों को देखते हुए अनेक लोगों की धारणा है कि श्री अरविन्द ने ऐसी दुःखद घटना को रोकने और विश्व को तृतीय विश्वयुद्ध से बचाने के लिए अपना बलिदान किया।

डा० नीरदवरण ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तिका "आइ एम हीयर, आइ एम हीयर" में वस्तु स्थिति को एक दूसरे पहलू से देखा है।

श्री अरविन्द योगी थे। योगी इच्छाजीवी होता है। मृत्यु भी उसकी इच्छा की ही अनुगामिनी होती है। एक बार कुछ शिष्यों ने उनसे पूछा—"अपनी साम्प्रतिक साधना की अवस्था में मृत्यु के संदर्भ में आप की क्या स्थिति है?"

"तीन चीजें हैं जो मेरी मृत्यु का कारण बन सकती हैं।' श्री अरविन्द ने कहा—'(१) कोई ध्वंसात्मक आश्चर्यकारी दुर्घटना, (२) उम्र का प्रभाव, (३) मेरी अपनी इच्छा—यानी यह बोध कि मैं इस बार वह नहीं कर पाऊंगा जो करना चाहता हूँ अथवा कोई ऐसा संकेत जो मुझे अपने कार्य को इस बार पूरा न कर पाने का प्रमाण दे।[१]"

उनकी मृत्यु के पीछे न तो किसी दुर्घटना का हाथ था, न उम्र का प्रभाव ही कहा जायेगा क्योंकि उसके आसपास के वर्षों में उनसे मिलने वालों ने एकमत से कहा था कि उनका सारा शरीर प्रभादीप्त और तेजोपूर्ण था। जाहिर है कि वे स्वस्थ थे। फिर तीसरा कारण ही शेष रहता है। वह है अपनी इच्छा से मृत्यु-वरण। उन्हें अंत तक अपने कार्य को पूरा कर लेने का विश्वास था, जैसे कि पहले दिखाया जा चुका है। फिर यह मृत्यु क्यों?

डा० नीरदवरण पूछते हैं—"मानव अस्तित्व के इस अंतिम पीड़ादायी द्वार से जाने का उन्होंने चुनाव क्यों किया, जबकि योगियों की तरह वे अपने शारीरिक आवरण को इच्छा शक्ति के एक झटके से अलग कर सकते थे? और फिर इस चुनाव के पीछे प्रयोजन क्या था? क्योंकि श्री अरविन्द कोई भी कार्य बिना किसी प्रयोजन के करेंगे, यह सोचना अन्तिम दर्जे की निरर्थकता होगी। यदि उन्होंने कभी अपने शत्रु के सम्मुख पलायन भी स्वीकार किया तो उन्हीं के शब्दों में 'एक न एक निश्चित प्रयोजन से ही।' उन्होंने अपनी महान् कष्टसाध्य साधना से आत्मा और जीवन के समूचे रहस्य जान लिये थे आत्मोपलब्धि करने वाले योगियों ने उन्हें योगेश्वर के रूप में स्वीकार किया था, उनके लिए मृत्यु न तो भय था न रहस्य और न तो अनिवार्य आवश्यकता ही हो सकती थी। अतः वे ऐसा तभी कर सकते थे, यानी सामान्य मनुष्य के मृत्युद्वार से जाने का सारा मूल्य चुकाते हुए समूचा पीड़ा सहने का कार्य वे तभी स्वीकार कर

१ ईवनिंग टाक्स सकेण्ड सीरिज, पृ० ३१०।

सकते थे, यदि उन्हें विश्वास हुआ हो कि ऐसा न करने से उनका जीवन, उनका 'योग परिपूर्ण न हो पायेगा और मानव जाति की इस 'नियति (मृत्यु) को अपने देवोपम कंधे पर धारण करने के लिए उन्हें तामसिक शक्ति की, जो मानव नियति पर शासन कर रही है, गुफा में जाकर वहीं उसका सामना करना होगा। तभी वे उसके सारे रहस्यों का भेदन कर सकते हैं। वे इस अतिवादी निर्णय को तबतक स्वीकार नहीं कर सकते थे, जबतक उन्हें पूर्ण विश्वास न हो गया हो कि इस प्रक्रिया में वे अंतिम विजय प्राप्त करेंगे। और कहेंगे—"ओ मनुष्यो, अन्धतमस के सम्राट के पीठस्थल से मैं तुम्हारे लिए वह चीज छीन लाया हूँ। जिसका मैंने वचन दिया था यानी 'अमरता के सुवर्ण बीज।'[1] श्री अरविन्द ने सावित्री में स्वयं लिखा है—

"उसे रात की अन्तहीनता में जाना ही होगा
ईश्वर के तमस को देखने, जैसे देखा है उसने उनका सूर्य
उसे उस गड्ढे में उतरना पड़ेगा, दुखदायी विराट को
जानने के लिए, उसका भेदन करना ही होगा।
अविनाशी, बुद्धिमान् और असीम है तो भी उसे
विश्वरक्षा के उद्देश्य से नरक की यात्रा करनी ही होगी
तब वह अनंत प्रकाश में पुनः उदित होगा
वहाँ जहाँ अनेक विश्वों की सीमाएँ मिलती हैं
तभी दुःखों का भवचक्र टूटेगा
मृत्युशील यह जीवन, शाश्वत आनन्द को,
शरीर की अमरता के स्वाद को, अपने में समेटेगा।
तभी विश्व उद्बोधक के कार्यों का होगा उद्यापन।[2]

श्री नीरदवरण ने जो उनके व्यक्तिगत सचिव का कार्य कर रहे थे, मृत्यु के पहले की दिनचर्या, मनोभावों आदि का सविस्तर वर्णन किया है। उस वक्त वे अपने ख्यातिप्राप्त काव्य सावित्री पर काय कर रहे थे। अध्याय पर अध्याय लिखे जाते। दुहराये जाते और प्रकाशन के लिए भेज दिये जाते। एक एक बैठक में वे ४०० से ५०० पंक्तियाँ धारा प्रवाह बोल जाते जिनकी वैदिक प्रतीति और जादुई भाषा किसे आनन्दित नहीं कर पाती। सावित्री के अलावा अखबारों का वाचन, अनेक पत्र पत्रिकाओं का, जिनमें साप्ताहिक, पाक्षिक त्रैमासिक भी होते जो उन दिनों आश्रम से निकलते थे, निरीक्षण, चार पाँच भाषाओं में लिखी कविताएँ, निबन्ध, पत्र, प्रश्नों के उत्तरों

१ आइ एम हीयर आइ एम हीयर पृ० २३।
२. सावित्री, द्वितीय खण्ड, पुस्तक ६ अध्याय २ पृ० ९५।

का डिक्टेशन, अपनी स्वय की पुस्तकों की रचना, अपनी और दूसरा की पाण्डुलिपियों की जाच और प्रूफ शोधन का काय उनकी दैनन्दिन चर्या का अग था। सावित्री पूरा हुई तो व लम्बी सांस लेकर बोले—'हो गयी। अब क्या ह ? 'मृत्यु का अध्याय और उपसहार'।—अच्छा वह। उसके बारे में बाद में सोचेंगे'[1]।

श्री नीरद लिखते ह—मैं इस उत्तर से सतुष्ट नही हुआ। क्योंकि अनेक पुनरावृत्तियां जो उन्होंने जल्दी में जोड़ जाड रखी थी, मेरे कानो को कटु लगती थी। फिर भी मैंने मौन रहना ही उचित समझा क्योंकि मुझे स्पष्ट था कि जब वे इसे दुहराने लगेंगे तो ये त्रुटियां स्वय उनकी गृद्ध दृष्टि से बच नही पायेंगी। उसी रात अचानक *जब रात्रि के पीडादायी क्षणों ने मेरी पूरी चेतना को अपने भीतर समेट लिया,* अचानक मुझे लगा कि जिसे मैं त्रुटियों और पुनरावृत्तियां सोच रहा हू, इनमें तो एक नया अथ छिपा ह—

एक दिन आयेगा जब उसे बिना सहायता के
अपने पैरों खडा होना होगा
विश्व के और अपने विनाश के भयानक कगार पर
इस विराट चुप्पी में अकेले और खोये हुए[2]

ईश्वर को पुकारो मत, क्योंकि सिफ वही कर सकेगी सहायता
वही अपने को बचा सकेगी और इस विश्व को भी[3] ॥

क्या यही उनका अन्तिम सन्देश नही ह ? उस अध्याय का दुहराया जाना कभी सभव नही हुआ। नाटक के पूर्वाद्ध का पटाक्षेप हो गया ह। किन्तु उत्तराद्ध पर्दे के पीछे चल रहा ह। अतिम विराट शत्रु (मृत्यु के रहस्य के नियता) के साथ उनका युद्ध जारी ह। *यह पृथ्वी स्तर पर ऐसा लगता ह कि असफलता में समाप्त हुआ है* किन्तु तात्रिक स्तरो पर यह युद्ध पहले की अपेक्षा कही अधिक भयकर रूप में जारी ह। इस द्वद्व युद्ध के अन्त में जब पुन पर्दा उठेगा, तभी हम चमत्कारिक स्वरों में मृत्यु के अध्याय का पाठ सुन पायेंगे और सावित्री के उपसहार में वर्णित नये विश्व की कल्पना को साकार होते देख सकेंगे और तभी समूचे विश्व में जय जयकार की प्रतिध्वनि गूजेगी—मैं यहा हू, मैं यहा हू[4]।'

डा० सायाल इस निधन का ईश्वरीय कायपद्धति का एक रूप, नीरदवरण मृत्यु के रहस्य को जानने के लिए पर्दे की आड में चल रहा युद्ध, अनेक लोग कोरियाई युद्ध

१ आइ एम हीयर, आइ एम हीयर, पृ० २३ २५।
२ सावित्री द्वितीय खड पृ० १०४।
३ वही पृ० १०५।
४ आइ एम हीयर, आइ एम हीयर पृ० २३ २५।

को विश्वयुद्ध में बदलने से रोकने का प्रयत्न और जाने क्या क्या कहना चाहते हैं। स्वय बीमारो की तीव्रता की स्थिति में जब बहुत साहस करके चम्पकलाल ने उनसे पूछा—'आप अपनी शक्ति का प्रयोग करके अपने को स्वस्थ क्यों नहो करना चाहते ?' वे चुप रह गये और ऐसे प्रश्न पर अपनी नापसन्दी भी जाहिर की।[1] एक और निकटवर्ती शिष्य के बार बार आग्रह पर कि आप अपने को स्वस्थ क्यो नहीं कर लेते उन्होने कहा—'कह नही सकता। तुम समझ नही पाओगे।[2]' इस सन्दर्भ में एक और घटना का भी उल्लेख मिलता है। १९४८ में दर्शन के अवसर पर प्रसिद्ध फ्रासीसी फोटोग्राफर हेनरी कार्टी ब्रेसो Henri Cartier Bresson पाण्डिचेरी आये। पिछले चालीस वर्षों से किसो को भी प्राय फोटो लेने की अनुमति नहीं दी गई थी, पर ब्रेसों को श्री अरविन्द श्री माँ—यहाँ तक कि दर्शन के दृश्यों को भी छवियाँ लेने की अनुमति दे दी गई।[3] इन सभी कारणों को देखते हुए यह अनुमान करना कि उन्हें अपने निधन के समय का पूर्वज्ञान था, उचित लगता है उन्होंने आत्मबलिदान किया, पर किस उद्देश्य से ? इसके बारे में अटकल बाजिया लगाना सामान्य मानव बुद्धि की ही एक क्रिया है। जिस चीज को आदमी नही जान सकता उसके लिए कोशिश करना व्यर्थ है। श्रीमाँ ने कहा—'लोग नही जानते कि विश्व के लिए उन्होंने कितना बडा बलिदान किया है। एक साल पहले मैंने उनसे कहा था कि मैं अनुभव करती हूँ कि मुझे यह शरीर छोड़ना है। व बहुत दृढ़ स्वर में बोले—"नही ऐसा कभी नही हो सकता। यदि वैश्विक परिवर्तन के लिए ऐसा जरूरी हुआ तो मैं जाऊँगा। तुम्हें अतिमानसिक अवतरण और वैश्विक परिवर्तन की इस यौगिक साधना का कार्य पूरा करना है।[4]"

एक अन्य स्थान पर भी श्री मा ने कहा—"पृथ्वी और मानव जाति में समझ का अभाव ही उनके द्वारा शरीर छोड़ने के निर्णय लेने का मुख्य कारण था।—हमारे गुरुदेव ने सिर्फ हमारे लिए अपना बलिदान किया है। वे शरीर छोड़ने को (प्राकृतिक कारणो से) मजबूर नही थे। उन्होंने ऐसा कुछ अतिशय महान् उद्देश्य के लिए किया है, जिसे पकड़ पाना मानव बुद्धि की क्षमता से परे है। और जब कोई किसी चीज को ठीक से समझ न सके तो उसके लिए सिर्फ श्रद्धापूर्वक मौन रह जाना ही उचित है।[5]"

१ ए बाउ फ्राम पांडिचेरी पृ० २।
२ श्री अरविन्दो द होप आफ मैन पृ० ३२७।
३ द लिबरेटर शिशिरकुमार मित्र पृ० २९५।
४ ए बाउ फ्राम पाण्डिचेरी पृ० ९।
५ ८ दिसम्बर १९५० की घोषणा श्री अरविन्दो द होप आफ मैन पृ० ३३१।

आश्रमवासी, डाक्टर, दर्शनार्थी प्राय सभी इस बात की साक्षी देते हैं कि उनके मृत शरीर पर १११ घंटे तक अतिमानसिक चैतन्य की सुवर्णज्योति लगातार छाई रही। डॉ० सान्याल ने श्रीमा के यह कहने पर कि जबतक यह ज्योति हटती नहीं, अन्तिम संस्कार नहीं होगा, एक मानवोचित शंका सामने रखी। शरीर अविकृत है यह तो वे मानते थे, परीक्षा करके देख चुके थे पर सुवर्ण ज्योति उन्हें कहीं दिखायी नहीं पड़ती। सान्याल ने श्री मा से कहा— 'कहाँ है वह ज्योति जिसके बारे में आप कह रही है, क्या मैं उसे नहीं देख सकता?' वे वात्सल्य से मुस्करायीं और उन्होंने अपना हाथ मेरे सिर पर रख दिया—' आह यह है वह। उनके समूचे शरीर को घेरे हुए किंचित नीलिमा लिए स्वर्ण प्रभा मंडल।'[1]

श्री अरविन्द का निधन पूरे विश्व को मर्माहत कर गया। इस प्रकरण के विस्तार में न जाकर मैं सिर्फ इसराइल के बौद्धिकों की प्रतिक्रिया उद्धृत करना चाहता हूँ। यहूदी संभवत आधुनिक विश्व की एक काल विशेष में सर्वाधिक प्रताड़ित जाति रही है। जर्मनी में हिटलर के समय उनके साथ जो कुछ हुआ वह सर्वविदित है। इस जाति ने, उनकी सरकार के अनेक कार्यों के अनौचित्य के बावजूद, अपने को समूल विध्वंस से बचाकर आज एक छोटे, किन्तु सशक्त राष्ट्र के रूप में जिस तरह बदल लिया है, इसे नजर अन्दाज करना ऐतिहासिक भूल होगी।

श्री अरविन्द के निधन के समाचार पर इस देश में जैसी शोकाकुल प्रतिक्रिया हुई वह बड़ी विलक्षण घटना है। अमृत बाजार पत्रिका ने अपने ४ जनवरी १९५१ के अंक में समाचार दिया—

हिब्रू विश्वविद्यालय शोक में बन्द। वहाँ के प्राध्यापकों ने समुद्री तार भेजकर श्री अरविन्द को अपनी सामूहिक श्रद्धांजलि अर्पित की। उसमें कहा गया है कि 'हिब्रू विश्वकोश में श्री अरविन्द दर्शन का बहुत विस्तार से विश्लेषण किया गया है क्योंकि वे एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जिनके चिन्तन से आधुनिक इसराइल का बौद्धिक वर्ग बहुत ही प्रभावित हुआ है।'

जेरूसलम से हिब्रू विश्वविद्यालय के दर्शन के प्राध्यापक डा० ह्यूगो बर्गमन ने श्री पोलर के नाम एक पत्र में लिखा —

'आपके सामुद्री तार से श्री अरविन्द के निधन का दुःखद समाचार मिला। आपने मुझसे 'भारत-इसराइल' पत्रिका के लिए इस महान् आध्यात्मिक नेता पर, जिसे विश्व ने खो दिया, कुछ लिखने का आग्रह किया है। मैं खुद ऐसा करने का बहुत इच्छुक हूँ। परन्तु इस समाचार ने ऐसा हार्दिक आघात पहुँचाया है कि मैं अपने को गूंगा जैसा

१ ए बौन्फ्रोन पौन्डिचेरी पृ० ८।

महसूस कर रहा हूँ। इस स्थिति में मैं शायद ही श्री अरविन्द के उपदेशा और आधुनिक तथा भविष्यत जगत के लिए उनके महत्त्वो को विश्लेषित करने में पूरा न्याय कर पाऊँगा। 'मानवीय शरीर के यन्त्र के भीतर से ही ईश्वर भविष्यत महान मानवता का निर्माण करेगा'—यहूदियों की इस पैगम्बरीय आशा को श्री अरविन्द ने महत चिन्तनात्मक पृष्ठभूमि प्रदान की—उनका १५ अगस्त १९४७ का स्वतन्त्र भारत के नाम प्रसारित सन्देश सिर्फ भारत के लिए ही नही इसराइल के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है।[1]'

आश्रमवासी और भक्तजन यह कभी स्वीकार नहीं करते कि श्री अरविन्द नही रहे। वे मा के इस कथन में पूर्ण विश्वास करते हैं—

'प्रभु आज सुबह तूने मुझे आश्वासन दिया है कि तू तब तक यहा रहेगा जबतक तेरा कार्य पूरा नही हो जाता, एक पथप्रदर्शक प्रकाशदायी चेतना के रूप में ही नही, बल्कि कर्मो में जीवंत सक्रिय उपस्थिति के रूप में। तूने असंदिग्ध शब्दो में प्रतिज्ञा की है कि तेरा सब कुछ यही रहेगा और तब तक पृथ्वी के वातावरण से अलग नही होगा जबतक पृथ्वी रूपान्तरित नही हो जाती। शक्ति दो कि हम इस अद्भुत उपस्थिति के योग्य हो सकें और अब से हमारे भीतर का हर पदार्थ सिर्फ एक संकल्प पर केन्द्रित हो और अधिक से अधिक पूर्णता के साथ तेरे महान कार्यों की संसिद्धि के लिए उत्सर्ग हो सके।[2]'

श्री मा ने आश्रमवासियों, शिष्यो भक्तों का सम्बोधित करते हुए कहा—'शोक मनाना श्री अरविन्द का अपमान करना है, क्योंकि वे हमारे साथ पूर्ण सचेतन और जीवित विद्यमान हैं।[3] रूपों के परिवर्तन से हमें आश्चर्यचकित नही होना है। श्री अरविन्द हमें छोडकर कही नही गये हैं। सदा की ही भाति वे जीवित रूप में यही रह रहे हैं। अब यह हमारा दायित्व है कि उनके कार्यों को ईमानदारी तत्परता, और एकाग्रता द्वारा पूरा करें।[4]'

श्री मा ने एक सूत्र में उपर्युक्त कथनों की प्रमाणिकता को अपने इस वाक्य मे रेखांकित कर दिया—

'उनके बिना मेरा अस्तित्व नही है।
मेरे बिना वे निराकार हैं।

१ अमृतबाजार पत्रिका ४.१.१९५१ का अंक।
२ द मदर आन श्री अरविन्दो पृ० १५।
३ वही पृ० २०।
४ वही पृ० २१।

श्री अरविन्द की समाधि विश्वव्यापी श्रद्धालुओं के लिए एक जादुई आकर्षण का केन्द्र है। प्रतिदिन प्रात काल यह समाधि आश्रम के निजी फूल बगानों से लाये हुए नाना रंगों के पुष्पों से अत्यन्त कलात्मक ढंग से सजायी जाती है। पुष्पों का श्री अरविन्द आश्रम में बड़ा ही गूढ़ और सौन्दर्यात्मक महत्व है। नाना पुष्प मानव के व्यक्तित्व की विभिन्न सद्वृत्तियों के साथ जुड़कर भावावन के अद्भुत प्रतीक हो जाते हैं। समाधि पर आप जब भी पहुँचे आपको चतुर्दिक खड़े, घुटने मोड़ बैठे हुए, समाधि को अपनी भुजाओं में लपेटने की कोशिश करते हुए उस पर सिर रखकर रोते हुए, इद गिर्द ध्यान करते हुए नाना देशों, धर्मों, जातियों के लोग दिखाई पड़ेंगे। समुद्री उषा काल से लेकर रात्रि के बारह बजे तक यह समाधि कभी भी निर्जन नहीं होती। अगर बत्ती का लरजता हुआ सुगन्धित धूम इसके ऊपर एक कुहरीला चँदोवा तान देता है। समुद्र तट पर घूमते हुए लोग, मैदानों में खेलते स्कूली बच्चे दूर दूर से आये हुए नर नारी यहा आकर इस प्रज्ज्वलित अतिमानसिक अग्निशिखा की प्रदक्षिणा करते हुए जिस शान्ति और श्रद्धा का अनुभव करते हैं, वह केवल देखकर ही जाना जा सकता है। समाधि पर अंकित अंग्रेजी के श्रद्धा-स्तोत्र को हिन्दी में इस प्रकार रखा जा सकता है—

तुझे जो हमारे गुरुदेव के भौतिक कलेवर थे
तुझे हमारी अनन्त कृतज्ञतायें।
तेरे सम्मुख, जिसने हमारे लिए इतना किया
इतने कार्य किये, संघर्ष किए, दु ख सहे, इतना
विश्वास बनाये रखा, इतना सहन किया
तेरे सम्मुख जिसने हमारे लिए सब सकल्प किया
सब प्रयत्न किया, सब तैयार किया, सब उपलब्ध किया
तेरे सम्मुख हम सादर शीश झुकाते हैं और क्षामयाचना
करते हैं कि हम कभी भी, एक क्षण के लिए भी
तेरे प्रति अपने प्रदेय को विस्मृत न करें।

आश्रमवासियों के भावलोक में यह समाधि अतिमानसिक महाचैतन्य के ज्योति स्रोत का प्रतीक है, वे वार्तालाप तक में कभी भी श्री अरविन्द को अलग करके, गया हुआ मानकर चर्चा नहीं करते। श्री कपालिशास्त्री ने इसी भाव को एक दूसरे ढंग से कहा—

हिरण्यवर्णा परमस्य धाम्न सन्नापयित्रीमरविन्दनाथ।
प्रभा कटाक्षे प्रणिधाय मातु नादतेऽप्यास्ते महसान्य देही॥

स्वर्णवर्णी परमाधाम की नानदायिनी ज्योति को श्री अरविन्द ने श्री मा के कृपा कटाक्ष में सन्निहित कर दिया है और अब वे ज्योतिरूप में इन्हीं महाशक्ति के साथ निवास करते हैं।

यह सब यदि कारी भावुकता भी ह तो बडी अदभुत निष्ठा और लगन से परिपुष्ट ह अ यथा दो हजार से अधिक व्यक्तिया ने जो विभि न क्षेत्रा में भौतिक सफलता की दष्टि से काफी उ नत और अग्रगण्य थे, अपने पूरे जीवन को श्री अरवि द कमधारा में विसर्जित कमे कर दिया। वह कौन से मूल्य हैं जो इन व्यक्तियों को यहा खीचकर ले आये जिनके कारण वे इस आध्यात्मिक साम्यवादी शिविर (कम्यून) में इतने सौहा दपूण ढग से रहते हैं।

●

●

मैंने श्री अरविन्द को नकारने की कोशिश की, किन्तु

बहुत पहले मेरे एक विद्यार्थी और अनुजतुल्य डॉ० कृष्णविहारी मिश्र ने मुझे "द लाइफ डिवाइन" पुस्तक भेंट की थी। बात शायद १९५७ की है। वह पुस्तक मैंने पढ़ी नही। या यो कहिए कि पढ़ना शुरू किया, पर चल न सकी। श्री अरविन्द के विषय में मेरे मन में कोई कशिश न थी। मैं उनके द्वारा प्रभावित हिन्दी कवियों की रचनाए पढता और नाक भौं सिकोडता। वह मैं आज भी करता हूं। क्योंकि इन्होंने अक्सर श्री अरविन्द के वाक्यो को विकृत (Vulgarized) किया है। मैं जानता हूं कि श्री अरविन्द से न सिर्फ हिन्दी के, बल्कि दूसरी भारतीय भाषाओं के अनेकानेक लेखक और कवि प्रभावित हुए हैं कई ने अपनी पुस्तकें उन्हें समर्पित की है। बाग्ला के दिलीप, निशिकान्त, शिशिर कुमार घोष, गुजराती के पुराणी, त्रिभुवन दास लुहार 'सुन्दरम', पूजा लाल, उमाशकर जोशी, पन्नालाल पटेल मराठी के बी० वी० बोरकर, ज्योत्स्ना देवधर ओडिया में नदिनी सत्पथी, कगाली चरण पति, मनोजदास, हरेकृष्ण महताव, कन्नड़ क बेन्द्रे, मुगली, गोकाक, प्रहलाद, मधुर चेन्न, वे बी० पुटप्पा तमिल के सुब्रह्मण्यम भारती, वा० रा०, योगी शुद्धानन्द भारती, हिन्दी के सुमित्रा नन्दन पत, रामधारी सिंह दिनकर, कोकिल, तथा तेलुगु के बौद्धिक चन्द्रशेखर अय्या सस्कृत कवि कपालि शास्त्री, आदि उनसे प्रभावित हुए। अंग्रेजी में नीरद वरण, डा० के० आर० श्री निवास आयगार, के० डी० सेठना [अमल किरण] के नाम प्रसिद्ध है, जो सभी उनके शिष्य हैं। चिन्मय रोमेन, आजद (चड़विक) पविन् मुखर्जी, मधुसूदन रेड्डी, समीरकान्त गुप्त, पृथ्वी सिंह नाहर सीधे उनके सम्पर्क से कवि बने। अनेक विदेशी साहित्यकारों के लिए वे प्रेरणा के केन्द्र रहे हैं। लातिनी अमेरिका, इसराइल, तथा फ्रांस के अनेक विद्वानों ने उनसे प्रेरणा पायी है। सराकिन स्पीलवग रोमारोलाँ, एल्डुअस हक्सले चीली की विश्व कवियित्री गन्नाम ग्रेवील मिगाल, फ्रासिस यग हस्बड, आयरिश साहित्यकार डाले आदि ने उनकी प्रशसा की है। किसी ने रहस्यविद् के रूप में किसी ने योगी के रूप में तो किसी ने दार्शनिक के रूप में उनके अप्रतिम योगदान को सराहा है। रवि बाबू, सिल्वाँ लेवी, कन्हया लाल मुन्शी कपालिशास्त्री आदि अनेक लोगो ने जिन्हें एकान्तवास में उनसे मिलने का सौभाग्य मिला उनके चेहरे की दीप्ति, आखों के तेज और आध्यात्मिक उपलब्धि की गरिमा के साम्य दिये है। फ्रांसीसी कवि और उपन्यासकार मॅरिस मग्रे (Maurice Margre) ने १९३५ ई० में पांडिचेरी की यात्रा की और वहीं रह कर योगाभ्यास किया। उन्होंने अपनी पुस्तक "इन सच आफ विजडम" में लिखा—मेरे लिये इतना

ही काफी है कि मैंने एक ऐसा व्यक्ति पाया जिसने उत्तरी से दक्षिणी ध्रुव तक के पूरे क्षेत्र को अधिकृत कर लिया, यद्यपि उसने कभी भी अपनी राजकीय सत्ता की घोषणा नहीं की। उनका चेहरा ऐसा पारदर्शी है कि जो चाहे उनमें उनकी आत्मा का दर्शन कर सकता है। हे गुरुदेव, आप पूर्णत शान्ति और एकान्त में, दिव्य मरमरी प्रकाश में आनन्दानुभूति में प्रतिष्ठित हैं, रात्रि के सन्नाटे में मेरी प्रार्थनायें उठकर आप की ओर जिसने पूर्णता की सीमाएं लांघ ली हैं, निवेदित हो रही हैं[1]।"

जिनेवा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जीन हर्बर्ट, जो रहस्यवादी स्वप्नदर्शी नहीं हैं, बल्कि सख्त भौतिक महत्व को स्वीकार करनेवाले व्यक्ति हैं, जो आरंभ में 'लीग आफ नेशन्स' और बाद में संयुक्त राष्ट्रसंघ से सम्बद्ध रहे, लिखते हैं—'हजारों लोग जो श्री अरविन्द का दर्शन पा चुके हैं, वे इस अनुभव को नकार नहीं सकते कि वे एक महान ऋषि और संत के सम्मुख खड़े हैं। चाहे वे भले ही इस बात का कोई स्पष्ट अनुमान न लगा सकें कि श्री अरविन्द ने किस ढंग से और कितने ऊँचे स्तर की आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त की है। उनकी दृष्टि में स्पष्ट ही कुछ ऐसा है जो महामानवीय है, यह दृष्टि कहना चाहें तो कह सकते हैं, मनुष्य दृष्टि से वैसे ही ऊपर है जैसे वह कुत्ते बिल्ली की दृष्टि से ऊपर होती है। और वे जिनमें अनेक पाश्चात्य बौद्धिक भी शामिल हैं, जिन्होंने उनके हाथों का स्पर्श प्राप्त किया है, या उनसे पत्र पाये हैं, निश्चय ही अनुभव करते हैं कि एक उच्च शक्ति उनके भीतर काम करने लगी है और सम्पर्क खत्म होने के बहुत बाद तक अन्तरतम में उसकी क्रिया जारी रहती है।[2]' १९६८ में 'पायनियर आफ सुप्रामेंटल एज' जिसे जय स्मिथ ने संकलित—सम्पादित किया है, लाइब्रेरी से ले आया। पुस्तक ने मुझे खींचा। इसलिए कि इस पुस्तक में नाना पूर्वी-पश्चिमी विद्वानों की श्री अरविन्द को अर्पित न सिर्फ प्रशस्तियाँ थीं, बल्कि उनके दर्शन और साधना को भी उन्हीं की पुस्तकों से चुने हुए अंश लेकर, स्पष्ट करने की कोशिश की गयी थी।

मैं पुस्तक से प्रभावित हुआ। शायद यह भारतीय बौद्धिक की खासियत है कि वह अपने देश की बड़ी से बड़ी विभूति को तब तक स्वीकार करने की स्थिति में नहीं होता, जब तक उसकी प्रशंसा में विदेशी बौद्धिकों को एक कतार न खड़ी कर दी जाय। प्रभावित तो हुआ, पर एक आन्तरिक दिक्कत परेशान किये रही। मुझे लगा कि कहीं मैं रहस्यवादी चीजों से अनायास पराजित तो नहीं हो रहा हूँ। मैंने उसी वक्त तै किया कि मैं श्री अरविन्द को ठीक से पढ़कर भावुकता रहित होकर उन्हें नकारने की कोशिश करूँगा।

१ द लिबरेटर में उद्धृत पृ० १६५ १६६।
२ पायनियर आफ सुप्रामेंटल एज पृ० ६३ ६४।

मेरे अनेक पाठकों की इधर गुप चुप शिकायत भी मेरे पास पहुँचती रही कि मैं आध्यात्मिक होता जा रहा हूँ। असल में इस शिकायत से मुझे खुशी हुई, क्योंकि मैं मानता हूँ कि कलाकार या कवि-कथाकार आन्तरिक प्रक्रियाओं से अपेक्षाकृत ज्यादा संचालित होने के कारण आध्यात्मिक होता ही है। उसका यह पेशा ही है। जिस साहित्यकार के पास अपनी ही चेतना के आन्तरिक क्षेत्र में यात्रा करने की क्षमता नहीं है, वह साहित्यकार हो ही नहीं सकता। आधुनिक अर्थ में यह आध्यात्मिक क्रिया नहीं तो फिर और क्या है? शिकायत इस अर्थ में नहीं थी, शिकायत रहस्यवादी या गुह्य चमत्कारों के सामने घुटने टेकने वाले तथाकथित आध्यात्मिक होने के मुद्दे पर हो सकती थी, पर मुझे चिंता नहीं हुई क्योंकि मैं जानता था कि मैं भले ही मैं आध्यात्मिकता का सच्चा अर्थ समझाने में असफल हो जाऊँ एवं न एक दिन इस शब्द का सही अर्थ, हर मनुष्य की बुद्धि में, यदि वह ठहर नहीं गया है और प्रौढ़ता के भुलावे में पड़कर विकसित होने से कतरा नहीं रही है, तो खुल ही जायगा। इसलिए बहरहाल सफाई देने का न अवसर है न जरूरत ही।

तो मैंने श्री अरविन्द के जादुई माहौल को तोड़ने की गरज से उनके मानसिक जगत में प्रवेश करने का निश्चय किया। ऐसा साहस करने की क्षमता या विश्वास या पागलपन मेरे भीतर शुरू से रहा है और उसे श्री अरविन्द के इन शब्दों से और भी बल मिला है। उन्होंने मौलिक चिन्तन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था—'हमें किसी भी चीज को, चाहे वह कोई भी कह रहा हो, स्वीकार नहीं करना है, हमें हर चीज पर प्रश्नवाचक का चिह्न लगाना ही है, तभी हम अपना मत निर्धारित कर सकते हैं। हमें इससे डरने की जरूरत नहीं कि इस प्रकार की क्रियामें हम शायद भारतीय रह ही न जायँ? ऐसा तब होगा जब हम अपने लिए चाहेंगे कि योरप चिन्तन करे तभी हम योरप की गलत और मूर्खतापूर्ण कार्बन-कापी बनने के खतरे से ग्रस्त होंगे। हमें किसी का भी पगधर नहीं होना है। मौलिक चिन्तकों के रूप में हमारा पहला दायित्व यह होना चाहिए कि हमें हर चीज की तथ्यता पर सन्देह करना है, हम उसे ज्यों का त्यों स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। इसका अर्थ हुआ पहले और आज की प्रत्येक अपरीक्षित धारणा से अपने को मुक्त करना अपने को आन्तरिक बने संस्कारों से मुक्त करना किसी भी पूर्वग्रह को स्वीकार न करना।'[1]

यह है इस व्यक्ति का सन्देश, जिसे स्वीकार करने वाले को पूरा अधिकार है कि वह उनके दर्शन को, साधना पद्धति को जैसे भी चाहे आजमाये और परीक्षित करे।

१ श्री अरविन्द ऑन ओरिजिनल थिंकिंग श्री अरविन्द पाठ मंदिर अप्रैल १९६५।

यहो में यह कह दूँ कि मैं दुभाग्यवश हिन्दी का एसा साहित्यकार रहा हूँ जो साहित्य का एक सवसत्ता सम्पन्न क्षेत्र मानकर अपने कूप को ही मडूक की तरह समुद्र नही मान लेता। मैं गुरु से दशन का विद्यार्थी रहा हूँ और तकशास्त्र में कभी विशेष योग्यता भो प्राप्त की थी, इसलिए जो औरों के लिए फैशन हो सकता ह, अस्तित्ववाद सात्र, काम, काफ्का आदि, या फिर रसेल, ह्वाइटहेड, वगरह या फिर एजेल्स, काट, हीगेल या सराकिन, ममफोड, काम्टे आदि वे मेरे लिए सहचर रहे हैं व्यक्तित्व की खोल या खाल नही। मैंन कभो यह दावा नही किया कि मैं इनका विशेषन हू। पर मुझे अपना सहयात्री या सहचर चुनने की स्वतत्रता देने में शायद ही किसी का आपत्ति हो।

अस्तित्ववादी दशन का जानने के दौरान भोतर हो भीतर रह रह कर एक शका उठती रही कि क्या जिन्दगी एक वेमानी दुघटना ही ह ? क्या वह नितान्त आकस्मिक सयाग (Contingency) मात्र ह ? मैं अस्तित्व-वाद के उस पक्ष से निश्चय ही प्रभावित हुआ जो आदमी में अपनी निपट वैयक्तिक नि सगता, और अकेलेपन के भीतर से अपनी जिन्दगी को एक अथ दे सकने को तडप जगाता है, या जो इस समूहवद्ध भीड धर्मा समाज के नकली आदर्शों के विरुद्ध अपनी ईमानदारी के लिए सजा पाते हुए भी उस अपनी नितान्त वैयक्तिक स्वतत्रता का किसी भो मूल्य पर नीलाम या गिरवो न होने देने की चाहत पैदा करता ह।

अस्तित्ववाद शाश्वत निरथकता का विजयगान गाने वाला नारा हो सकता ह, बहुत दिनों तक किसी इसान का जिन्दा रखने की प्रेरणा नहीं वन सकता। अस्तित्व वादी दशन अपनी जड में ही घुन लिये पैदा हुआ ह और घुन किसी भी अध्येता की जिन्दगी को, जो उसे पढता हो नही, जीना भी चाहता है चाटे बिना छाड नही सकते। खुद पश्चिम में इसी कारण अस्तित्ववाद का उफान दवने लगा है। चाहे कोई भी दशन, सिद्धात या मतवाद हो वह चू कि औरा से अलग विशेष बनने की कोशिश है, इसलिए उस की एक अलग हद और अनिवाय बाडे-बन्दी होती ही है। सच्चे वौद्धिक का यह दायित्व है शायद पहचान भी कि वह इस बाडे-बन्दी में फँस न जाय बल्कि उसमें से जो अच्छा ह, उस सवल के रूप में ग्रहण करके अपनी अग्रिम यात्रा पर चल पड़े।

श्री अरविन्द के जगत में प्रवेश करते ही जो पहली टक्कर हुई उसने मेरे पैरा के नीचे से दरी हो खींच दी। तक शास्त्र की याग्यता हवा होने-हाने को हो आयी। "आदमी के पास दो सयुज शक्तियाँ हैं। जानकारी और ज्ञान। जानकारी सत्य का वह भाग ह जिसे विकृत माध्यम में बुद्धि की टटोलने की क्रिया से पाया जाता ह, जब कि ज्ञान आत्मा में देखा हुआ, दिव्य दृष्टि की उपलब्धि है। बहुत बाद में मैंन जाना

कि जब सर्प मर जाता है तब ज्ञान का जन्म होता है। उसने छूने के पहले तक मेरे पास जो था वह जानकारी थी"।[1] मुझे लगा कि यही है वह आदमी जो बुद्धि विरोधी बात कर रहा है। मैंने इसे श्री अरविन्द की सीधी कमजोरी मानकर मन को तुष्ट करना चाहा, पर मैं ज्यों-ज्यों इस पर सोचने लगा, मुझे स्पष्ट आभास हुआ कि वाकई जिसे हम ज्ञान कहते हैं अपनी बुद्धि का करिश्मा समझते हैं और जिसके बूते दूसरे आदमी की बात, धारणा या मत को ग़लत कहते हैं, वह क्या-गलत चीजों की तत्कपूर्ण स्वीकृति नहीं है? चूंकि मेरे मन ने किसी चीज को सत्य कर लिया है और वैसा न किये जाने से सतुष्ट होना सीख लिया है, इसीलिए उसके निष्कर्ष क्या सत्य भी हो सकते हैं? श्री अरविन्द ने बड़े स्पष्ट ढंग से कहा कि मानव-मन (बुद्धि आदि) चीजों को खंड खंड करके ही देख सकता है और अधिक से अधिक इन खंडों को जोड़-जाड़ कर पूर्ण को पकड़ने की कोशिश कर सकता है या गलत रूप में साथ कह सकता है कि यह जोड़ जाड़ कर तैयार की हुई चीज ही पूर्ण सत्य है किन्तु सत्य यह है कि मानव जीवन की अनुभूति की पूर्णता की पकड़ मन की शक्ति के बाहर की चीज है। बहुत से लोग बुद्धि की अक्षमता के इस कथन का अर्थ लगा लेते हैं कि श्री अरविन्द बुद्धू बनने के लिए कह रहे हैं।

श्री अरविन्द इतनी आसानी से पकड़ में आने वाले चिन्तक नहीं थे। वे कहते कि जिस प्रकार जड़ से जीवन, जीवन से प्राण प्राण से मन तक सृष्टि पहुँची है उसी प्रकार मन से ऊपर अधिमन और अधिमन से ऊपर अतिमन की स्थिति है। जैसे आप शरीर में लिप्त रहकर मन की क्रियाओं को नहीं पकड़ सकते। प्राणिक आवेश में हों तो बुद्धि के निर्णय को या तो सुन नहीं पाते या उन पर अमल नहीं कर सकते, वैसे ही बुद्धि में लिप्त रहकर उसके ऊपर की यात्रा नहीं कर सकते। कवि, कलाकार, वैज्ञानिक सभी अनुभव करते हैं कि उनकी रचना में अचानक कोई स्पर्श कोई किरण, कोई ज्योतिरेखा ऐसी आ गयी है या आ जाती है, जिसके बारे में उन्होंने सोचा भी नहीं था। यह तेजोदीप्त स्पर्श ही उन रचनाओं को जीवन्त और कालजयी भी बनाता है पर हम इसे यों ही कहीं से अचानक आ गयी, या सूझ गयी चीज मानकर तुष्ट हो जाते हैं। श्री अरविन्द कहते हैं कि ऐसा तब होता है जब मन की क्रिया शान्त और नीरव हो जाती है। एक ऐसी एकाग्रता जिसमें मन कुछ समय के लिए बिल्कुल निर्विकार हो जाता है, उसी वक्त यह झलक यह किरण, यह छुवन पकड़ में आ जाती है। यह अतिमन के प्रतिनिधि चैत्यपुरुष (Psychic Being) का ही हल्का सा स्पर्श है। इसलिए श्री अरविन्द के दर्शन और योग और उनकी साधना का पहला बिन्दु है मन को अतिक्रान्त करना।

१ थाट्स एंड एफारिज्म्स पृ० ३४।

यह वाय कल्पना की चीज नही ह, न जादूगरी है बल्कि यह सब कुछ उनका अनुभूत ह, उपलब्ध है जिसका तरीका वे बहुत ही स्पष्ट ढग से बताते और समझाते ह। यानी श्री अरविन्द का पूरा चिंतन मानव चेतना के अब तक के अस्पष्ट ज्योतिक्षेत्र में साहसिक यात्रा का आह्वान ह। उन्होंने इस क्षेत्र की पैमाइश की ह, उसके विभिन्न स्तरों के नक्शे और चार्ट बनाये ह, यात्रा के तरीके पड़ावों और खतरों का ब्योरा दिया ह और पूर्ण आश्वासन के साथ कहा ह—आदमी ठीक से प्रयत्न करे तो अतिमानसिक चेतना को पा सकता है। उनके एक अत्यन्त बौद्धिक शिष्य नीरद वरण ने पूछा कि क्या दिमाग को खाली करने से यह सब करिश्मा हो जायेगा? और क्या इस प्रकार की रिक्तता विचारों के सृजन की क्षमता को ही नष्ट नही कर देगी, और क्या इस प्रकार की प्रक्रिया में बौद्धिकों की पूरी पीढ़ी बेकार नही हो जायेगी? नीरद वरण के ये सवाल मेरे भी सवाल हो सकते ह और जानता हूँ आपके भी। श्री अरविन्द कहते ह "पहली चीज यह जान लो कि जसे कहावत है कि कवि पैदा होते है, बनाये नही जाते वैसे ही विचार पैदा होते ह किये या बनाये नही जाते। यह सही है कि जब तुम विचार करने बैठते ही तो एक तरह का श्रम जान पडता ह, जब तुम किसी चीज पर सोचते हो तो भी ऐसा ही लगता है पर यह एकाग्रता विचार पदा करने की नही, बल्कि 'आओ' उतरो, 'निकलो' आदि के ढग की चीज होती है—अर्थात तुम विचारों को गढ़ते नही, बल्कि या कहना चाहिए कि विचार तुममें आते हैं। यह ख्याल कि तुम विचारों को पैदा करते और एक रूप देते हो केवल अहवादी भ्रम ह। यह तो प्रकृति तुम्हारे लिये कर रही है। तुम प्रकृति को ठोंक पीट कर यह काम कराते हो और कभी-कभी अनुभव कर सकते हो कि बहुत ठोक पीट करने पर भी कुछ नहीं निकला'।[1] प्रकृति विचार तरगो स भरी है जिसे हीगेल ने विश्वमन कहा था, व्यक्ति-मन में उसी प्रक्रिया की छायाएँ उभरती हैं, और मनुष्य इन्हीं को पकडकर, इन्हें तर्क पूर्ण बनाकर, जोड जाड करके सत्य को परिभाषित करने की कोशिश करता ह। इसे ही बौद्धिकता कहा जाता ह, "विचारधारणाएँ, आविष्कार आदि आदि निरन्तर तरगित होते हुए घूम रहे हैं शायद ऐसे मस्तिष्कों की खोज में, जो उन्हें पकड कर रूपायित करने की कोशिश कर सकें। दो मस्तिष्क एक ही विचार-तरग को पकडते हं, पर अपनी मानसिक प्रक्रिया की भिन्नता के कारण दो प्रकार का विश्लेषण और दो प्रकार के नतीजे निकालते ह। एक मस्तिष्क पकडता ह, देखता ह, अस्वीकार कर देता ह। दूसरा पकडता ह, देखता और स्वीकार कर लेता ह या वह फिर वह किसी तीसरे के पास पहुँचती ह, और वह कुछ नही करता। लाचार वह तरग आगे चलती ह, और वह चौथा झट से पकडकर, अभिव्यक्ति में बाँधकर उस आनन्दातिरेक को

१ कॉरेसपाण्डेन्स विद श्री अरविन्दो पृ० १०६।

प्रेरणा के कुन्युतो से सजाकर उत्साहपूर्वक मौलिक राज कह कर जगत् में प्रकट करता है और चिल्लाकर कहता है—इसलिए यह कह कर दिया मैंने ? अहंकार, श्रीमन्, बिलकुल अहंकार और कुछ नहीं, तुम एक पकड़ने वाले माध्यम के अलावा कुछ नहीं हो।"[२]

क्या दिमाग को खाली बनाने से उच्चतरमन से ज्ञान उतरने लगेगा ? श्री अरविन्द कहते हैं कि खाली मन का अर्थ निष्क्रिय है, जड़ नहीं, ऐसे मस्तिष्क में सहज स्फूर्त ज्ञान किसी न किसी रूप में उतरेगा किन्तु कभी भी इस भ्रम में मत पड़ो कि खाली मस्तिष्क में जो उतर रहा है वह सहजस्फूर्त ज्ञान ही है। यहाँ आदमी को जागरूक रहकर आगन्तुक का परिचय पाने और प्रमाणपत्र देखने की जरूरत है। दूसरे शब्दों में मानसिक पुरुष का वहाँ रहना ही है, शान्त किन्तु जागरूक, निष्पक्ष और सदा विवेकपूर्ण निर्णय लेने को उद्यत।[१]

ऐसी स्थिति में दूसरा प्रश्न उठता है कि इतनी सावधानी और मन की नीरवता के इन प्रयत्नों से होगा क्या ? क्या बुद्धि को नीरव और निष्क्रिय बना दिया जाय तो मानव जाति के सम्मुख उठने वाली समस्याओं का समाधान हो जायगा ? श्री अरविन्द का कहना है कि बौद्धिकता का युग समाप्त हो गया है कोई भी बौद्धिक अब किसी बहुत तर्कादीप्त विचारणा द्वारा मनुष्य में कोई गुणात्मक परिवर्तन ले आने में सफल नहीं होगा। बौद्धिक यात्रा खत्म हो गयी है। अतिमानसिक यात्रा के बिना मानव जीवन की समस्याओं के सारे समाधान बेकार और निष्फल होने के लिए अभिशप्त हैं। आप आज के विश्व में समस्याओं का रूप और उनके समाधानों के नतीजे देखिए। समस्याओं से कहीं अधिक समाधान प्रस्तुत किये जा रहे हैं, पर परिणाम सिर्फ गड़बड़झाला सिर्फ भ्रमजाल, सिर्फ निरर्थकता और 'नान्य पन्था' वाली स्थिति। कोई समाधान मानवीय बुद्धि से संभव है ही नहीं, यदि पूरे मानवयंत्र के ही रूपान्तरण का प्रयत्न नहीं किया जाता। मस्तिष्क की नीरवता से नहीं, उसके द्वारा उपलब्ध अतिमानसिक (Supra mental) शक्ति से समाधान मिलेगा।

एक साहित्यकार के नाते मैंने अनेकश अनुभव किया है कि कुछ ऐसा पकड़ में न आ सकने वाला तत्व जरूर है जो लिखते समय या बोलते समय कुछ इस ढंग से काम करता है अपने को ही संतोष और खुशी देनेवाली कोई ऐसी बात सूझ जाती है, कोई अभिव्यक्ति इस भंगिमा से उतर आती है कि लगता है कि ऐसा करने का न तो मैंने प्रयत्न ही किया था न इस परिणाम की उम्मीद ही। इसलिए श्री अरविन्द द्वारा

१ वही पृ० १०७।
२ ट्वाइलाइट्स विद श्री अरविन्द पृ० १०७।

आन्तरिक यात्रा का जब निमत्रण प्राप्त हुआ, तो मैंने उसे अपने प्रति ही ईमानदार रहने के लिए स्वीकार किया।

तभी एक दूसरा कक्ष दिखाई पडा—सब खल्विद ब्रह्म। श्री अरविन्द के लिए पूरी सृष्टि सच्चिदानन्द की ही लीला है। ये सच्चिदानन्द क्या हैं? नीरदवरण की तरह इच्छा हुई कि पूछूँ कि श्रीमान ये सच्चिदानन्द साहब कौन हैं? पर मैं जानता हूँ कि यह आदमी इस तरह का विनोदी ह कि चट कहेगा—"सुभान अल्ला मेरे पास तुम्हें *भारतीय दर्शन का ककहरा पढाने की फुर्सत नही ह। या जाइए और सच्चिदानन्द* से ही उनका परिचय पूछिए। अपनी धारणाओं को सब तरह से ठोंक बजाकर उनसे आश्वस्त होकर उनपर पूरी तरह दृढ रहने वाले ऐसे बौद्धिक महामानव से मेरा पहले साक्षात्कार नही हुआ था। लोगो ने उन्ही के शिष्या ने कौन-कौन से दाव नही लगाये। कभी उनके सामने रसेल को खडा किया, कभी हृक्ेल को, कभी हक्सले को और इस आदमी ने कहा—"उन्हाने बिल्कुल चुप कर देने वाले तर्कों से सिद्ध कर दिया कि ईश्वर नही होता। मैंने मान लिया। बाद में मैंने ईश्वर का देखा, क्योंकि उसने खुद आकर मुझे आलिगन बद्ध कर लिया। और अब में किसे सत्य मानू, उनके तर्कों का या अपने प्रत्यक्ष अनुभव को?[1] पर हक्सले ओर हृक्ेल क्या आपके अनुभव को मानने का तयार हं। वे तमाम लाग जो खुले आम जाने अनजाने, चाहे-अनचाहे अपने को नास्तिक कहते ह या दिखलाते है या कह दिखाकर आधुनिक बनने के फैशन को ढोते हैं, आपके अनुभव को सत्य क्यों मान लें? वह आदमी इस सवाल से जरा भी प्रभावित नही हागा क्योंकि उसने बार-बार कहा ह बिना अपने से परखे बिना पूणत आश्वस्त हुए, बिना हर चीज पर अविश्वास के कुछ भी कभी स्वीकार मत करो। आँख मूदकर कर किसी चीज को मान लेने की मूखता मत करो। नास्तिकता से घबडाने की जरूरत क्या ह क्योंकि "नास्तिकता ईश्वर की सर्वोच्च समझ की ही छाया ह या उसका कालापन ह। ईश्वर के बारे में बनाये हमारे सभी फामूले, यद्यपि वे प्रतीकात्म में सही ह गलत साबित हा जाते ह जब हम उन्हें पूण मान लेते ह, नास्तिक और ईश्वर विरोधी हमेशा ही हमें उसकी याद दिलाने के लिए आते रहते हैं। ईश्वर की अस्वीकृति हमारे लिए उतनी ही महत्त्वपूण ह जितनी उसकी स्वीकृति। ईश्वर वही ह जो नास्तिक के रूप में अपने ही अस्तित्व का नकारता ह ताकि मानवीय ज्ञान पूणता की ओर बढ सके। ईसा और रामकृष्ण में ईश्वर देखना और उसके बचन सुनना ही काफी नहीं ह। हमें हक्सल और हृक्ेल में उसे देखना हागा, और उसके बचन सुनना होगा।'[2]

१ थाट्स एड एफारिज्मस पृ० ४।
२ वही पृ० ८९।

यह बदाती दशन का पुराना हथकडा ह, हालांकि कथन की भगिमा गॉसपल व टक्कर की है और नकारवादी के लिए इस मुद्दे पर टिक पाना, जहा नकार को विवेच्य का ही एक पक्ष मान लिया जाता ह, बडा कठिन होता है। मैं यहा श्री अरविन्द की अपील को अनसुनी करके रसेल के पास पहुचता हूँ, यह जानते हुए कि उनक अ उमुखा और बहिर्मुखी वाले तक की श्री अरविन्द ने बखिया उधड कर रख दी थी। हालांकि मैं यही कह दूँ कि रसेल कोई सामान्य चितक नही है। उसके बारे में कृष्ण प्रेम का यह कथन अक्षरश सही ह कि—"वह गड़बड़झाला भरे मस्तिष्क वाला आदमी नही ह जिसके निष्कप अपनी ही प्रतिपत्तिया के खिलाफ जायें। ठीक इसके उल्टे वह ऐसा चरखीदार यत्र ह कि यदि तुम उस पर पाँव रखोगे तो वह तुम्हें अपने आप उस तक से उत्पन्न शिखर पर ले जायेगा, फिर उस पर पैर रखो ही क्यो यदि जानते हो कि यह गलत दिशा में ले जाता ह। वैसे ही किसी को भी जो रसेल का समथक ह यह आशा नही करनी चाहिए कि उसकी शकाग्रस्त पलायन वादी नास्तिकता के प्रश्ना को दूसरा उत्तर देने योग्य मानेगा ही।'[१] तो भी सहायता की आशा से दिलीप की तरह मैं भी रसेल से जानना चाहता था कि ईश्वर को नकारने के लिए कितनी ताकत चाहिए। और आपसे यह कहते मुझे रज और खुशी दोनो होती ह कि जब मैंने रसेल की पुस्तक 'मिस्टिसिज्म और लाजिक" पढी, मझे लगा कि लोग अब रसेल को बुडढा मान लेंगे। उसका तेवर कहा गया। उसका निबध "ए फ्री मैं स वर्शिप" पढ़कर आसें भर आती ह—'मनुष्य का जीवन, बाहर से देखें तो प्रकृति की विराट शक्तियो के सामने कितना क्षुद्र है। यह गुलाम ह। उसे काल, भाग्य और मत्यु की पूजा करनी ही होगी, क्योंकि ये उसके भीतर उपलब्ध किसी भी चीज से बडी ताकतें ह, क्योंकि उसका सोचना सिफ उन्ही चीजों तक होता ह जिन्हें ये ताकतें निगल जाती ह। फिर भी चाहे ये कितनी भी बडी हा, उनके निमम सौन्दय' का अनुभव करना उनसे भी बडी चीज ह। और ये विचार हमें स्वतत्र करते ह। हम पूरब वालो की तरह इस अवश्यमावी के सामने घुटने नही टेकते, हम इन्हें आत्मसात करते हैं और इन्हें अपने व्यक्तित्व का एक हिस्सा बना लेत हैं। व्यक्तिगत खुशी के लिए सघष करना छोडकर, छोटी-छोटी इच्छाओ को अलग करके, शाश्वत वस्तुओ के प्रेम में जलना मुक्ति ह, और यही स्वतत्र आदमी की पूजा ह। यह मुक्ति नियति पर चिन्तन से प्राप्त होती ह, क्योंकि नियति या भाग्य बुद्धि के सामने झुक जाते हैं, क्योंकि बुद्धि बताती ह कि काल की महाग्नि में कुछ भी बच नही सकता।'[२]

यह रसेल क निबध का सबसे ओजस्वी अश ह, किन्तु जीवन के अवश्यमावी

१ श्री अरविन्दो केम टु मी पृ० ४०४१

२ मिस्टिसिज्म एण्ड लाजिक अनविन्स बुक्स लदन १९६३ पृ० ४६।

विनाश के प्रति निमम होकर चिन्तन कर लेना क्या इतना आसान है ? और यदि अतत यह मानना पड ही गया कि *"काल, भाग्य और मृत्यु के सामने मनुष्य कुछ नही है* तो उनके निमम सौदय का अनुभव जो मनुष्य को महत्तर बनाता है क्या अन्तवर्ती जगत में प्रवेश करना नही है ? क्या अपने से भिन्न सत्ता के सौदय को भले ही वह निमम हो, स्वीकार करके आतमसात करना क्या उन तत्वों की महत्ता के रहस्य की स्वीकृति नही है ? रसेल ने ठीक ही कहा है कि इन चीजों पर हमारा वश नही इन्हें हम जीत नही सकते, इसलिए इनके सवनाशक रूप को देखना ही पडेगा।

इस आदमी की बात पर दूसरे ढग से सोचो। मृत्यु ऐसा हौवा नही है जैसा अश्रुगदगद भाव से रसेल साहब बता रहे हैं। मुझे अचानक श्री अरविन्द टोकते हैं—"यह दुनिया मृत्यु से ही बनी है, ताकि वह जी सके। क्या तू मृत्यु को हटा देगा ? तब जीवन भी खत्म हो जायेगा। तू मृत्यु को खत्म नहीं कर सकता, पर तू मृत्यु को एक महत्तर जिन्दगी में जरूर बदल सकता है। यदि यहाँ जीवन ही होता मृत्यु न होती तो कही अमरता होती ही नही।[१]"

पूरब वाले बुद्धि के चिन्तन से यह जानकर कि मृत्यु से कुछ भी नही बचता, उससे भयभीत नही होते रसेल साहेब, वे तो मृत्यु को केवल पुराने कपड़े बदलने वाली छोटी सी घटना भर मानते हैं। और मुझे यहा निमम होकर यह कहना पडता है कि मृत्यु का भय विदेशी सस्कृति से प्रभावित पढ़े लिखे लोगो को जितना है, उतना शुद्ध पूरबी जीवन में जीने वाले भारतीय किसान को नही। श्री अरविन्द मानते हैं कि मृत्यु *क्रूरता, अज्ञान, गल्ती, जिन्दगी में है और उसे होना चाहिए क्योंकि इनके न होने पर* जीवन, प्रेम, ज्ञान और सत्य की पहचान के लिए सघष करने का आधार ही नही मिलता।

पर क्या श्री अरविन्द योग और दिव्य जीवन आदि लुभाने शब्दों के माध्यम से एक सब्जबाग दिखाकर गरीब को सघष विरत या समाज को सन्यस्त होने का उपदेश नही देते ? आधुनिक चित्त शकालु होकर पूछता है। वह नही जानता कि कोई योगी और आध्यात्मिक होकर विश्व की समस्याओं से क्या वास्ता रखेगा। उसने अब तक जितने साधु सन्यासी देखे हैं उन्होंने जगत को माया मानकर उसे छोड दिया। राख में मिलने वाले शरीर से मोह क्यों। माया के इस बाजार में वे क्यों फँसे। तुलसी बाबा के शब्दों में।

नारि मुई घर सम्पत्ति नासी। माग मुडाइ भये सन्यासी।

पर श्री अरविन्द बिल्कुल भिन्न किस्म के योगी थे। उत्तर योगी। वे कहते हैं—"वे दार्शनिक जो विश्व को माया मान लेते है, वे बहुत बुद्धिमान, सत और पवित्र हैं,

१, थाट्स एन्ड एफारिज्म पृ० १४१५।

पर मुझे कभी कभी लगता है कि वे कुछ कुछ मूर्ख भी हैं कि वे ईश्वर को इस बात का मौका दे देते हैं कि वह उन्हें धोखा दे सके" ।[१] क्या व्यंग्य है। तुम यदि सारे विश्व को ईश्वर की लीला न मानकर माया मानोगे तो स्पष्ट ही अपने पतन के लिए माया को जिम्मेदार ठहराओगे और ईश्वर को यह मौका दोगे कि वह मायाचक्र में डालकर तुम्हारी परीक्षा लेता रहे। आज के मनुष्य ने अब तक आधुनिक युग के जिसे सबसे बड़े आध्यात्मिक व्यक्ति को देखा है, वे थे विवेकानन्द। यह सही है कि विवेकानन्द ने स्वतन्त्रता की बात कही निर्भय बनना सिखाया, पर उन्होंने ये भी वाक्य कहे—कोई कुछ भी कहे तुम शान्त रहो ओ साहसी संन्यासी, कहो ओ तत्सत् ओ तत्सत्' उन्होंने संन्यासियों की भीड़ लगा दी। क्या संन्यास जीवन की समस्याओं का समाधान हो सकता है। श्री अरविन्द कहते हैं— विवेकानन्द ने संन्यास की महत्ता बताते हुए कहा था कि सारे भारतीय इतिहास में कुल एक ही जनक पैदा हुए। जनक एक व्यक्ति का नाम नहीं था बल्कि आत्मानुशासन वाले राजर्षियों की वंश परम्परा का नाम था, यह एक आदर्श का विजयगान था। लाख लाख गेरुवा पहनने वालों में कितने संन्यासी सचमुच वे संन्यासी हैं ? कुछ उपलब्धियाँ और अधिकांश औसत स्थितियाँ मिलकर एक आदर्श का औचित्य प्रमाणित करती हैं। संन्यासी औपचारिक परिधान और बाहरी चिह्न धारण करता है, इसलिए पहचान लिया जाता है किन्तु जनक की स्वतन्त्रता अपनी घोषणा नहीं करती और दुनियावी वस्त्रों में लिपटी रहती है, तभी तो नारद जैसे लोग भी उसकी उपस्थिति से धोखा खा जाते हैं। उनकी आँखें अंधी हो जाती हैं। जनक के आदर्श को भी प्रचारित होने की स्वतन्त्रता दो, हमारे पास सैकड़ों जनक निकल आयेंगे।[२]

श्री अरविन्द दुनिया से हटने या भागने की सलाह नहीं देते। वे संन्यास नहीं कर्म प्रकाश चाहते हैं वे जीवन से मुक्ति नहीं जीवन का रूपान्तरण चाहते हैं। श्री अरविन्द इस अर्थ में निहायत आधुनिक योगी थे। वे भोजन वस्त्रादि को बहुत गौण चीज मानते थे और किसी प्रकार की पुरानी रूढ़ि को नहीं ढोते थे। वे सिगार भी पीते थे और मछली और अंडे भी लेते थे। इस विषय में एक मजेदार घटना की भी याद आती है। श्री अरविन्द द्वारा मिलने से इन्कार कर दिये जाने पर नरायन दास सगानी ने महर्षि रमण से पूछा—"क्या मांस मछली खाने वाला भी योगी हो सकता है। महर्षि रमण कम ही बोलते थे पर बार बार पूछने पर उन्होंने कहा—"यह तो केवल प्रथा और संस्कार की बात है इसका योग का क्या सम्बन्ध ?"[३] श्री अरविन्द

१ वही पृ० ७२।
२ थाट्स एण्ड एफारिज्म्स पृ० १७।
३ लाइट आफ श्री अरविन्दो, पृ० १७६।

ऊपरी आडम्बर म क्तई विश्वास नही करते थे। जो हो, आज का पाठक पूछना चाहेगा, यह तो हुआ आर्थिक समस्याओ पर उनके विचार क्या थे ? म आपकी मशा समझ रहा हूँ, पर मैं अरविन्द का शायद मार्क्सवादी धरातल पर खड़ा होकर नकार नही पाऊंगा, क्योंकि उन्हें छदम माकसवादी का खिताब डा० जेनर जसे दार्शनिक द चुके है। जेनर ने लिखा है— यद्यपि वे अंग्रेजी शिक्षा की पूर्णता से सर्वतोभद्र व्यक्ति हो चुके थे, किन्तु वह उनको साम्यवाद में रुचि लेने से रोक न सकी। यह रुचि कभी भी समाप्त नही हुई, क्योंकि वे मानते थे कि साम्यवाद ने अपेक्षाकृत ज्यादा सही समाज निर्माण की दिशा दी है। उन्हें स्पष्ट दिखा कि साम्यवाद में समूह प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलेगा, जिससे व्यक्ति का अह, जो उनके लिये हमेशा हर समस्या की जड़ लगा, अपने आप समाज के सामने दब जायेगा।"[1] म डा० जेनर के विचारो पर पीछे विस्तार से लिख चुका हू कि वे शार्दां या हेपाल्ड या एसे ही दूसरे स्वप्नदर्शी ईसाई दार्शनिकों की हिमायत के पूर्वग्रह से ग्रस्त हैं, जिन्हें विश्व के वर्तमान सकट का एक मात्र समाधान नव ईसाई वाद में ही दीखता ह जो उनके हिसाब से मनुष्य को ईश्वर से जोडने वाला एक मात्र सेतु ह। जेनर ने स्वीकार किया ह कि 'श्री अरविन्द मार्क्स वाद की असफलता क कारणों को भी देख सके थे" तो भी उन्ह मार्क्सवादी घोषित कर दना जरूरी लगा क्योंकि ईसाई जगत मार्क्सवाद से इतना आतंकित रहा ह कि उससे किसी को जोड देने मात्र स ही उसे उसकी उपयोगिता के असदिग्ध होने में सन्देह नही रहता। श्री अरविन्द ने लेनिन की प्रशसा और रसेल की निन्दा इसीलिए की थी एक में अपने मत पर अडिग रहने को कर्मठता ह दूसरे में दार्शनिक लफ्फाजी। उन्होने स्पष्ट कहा— लेनिन को इस सत्य की धारणा थी। उन्होंने कहा था कि हमें अपनी विचारधारा को शुद्ध रखना ह। जब तक हमारी डेढ लाख सदस्यो की कम्यूनिस्ट पार्टी शुद्ध और विचारधारा में विश्वस्त रहती ह कोई ताकत हमारा विरोध नही कर सकती। और यह सच ह कि जब तक ऐसा रहा साम्यवाद सचमुच सफल हुआ[2]।" उन्होने तो यहा तक स्वीकार किया ह कि उन्होने, रूसी क्रान्ति की सफलता में आध्यात्मिक सहायता की थी[3]। किन्तु उन्होने जब यह देखा कि कम्यूनिज्म एक साम्राज्यवादी शक्ल अख्तियार करके मनुष्य की स्वतन्त्रता के लिये भयानक खतरा हो रहा ह तो उसका उन्होंने खुले आम विरोध किया। उन्होने साम्यवाद के गुण और दोषों को रेखांकित करते हुए लिखा— 'समाज का साम्यवादी सिद्धान्त व्यक्तिवाद के

१ इवोल्यूशन इन रेलीजस कन्सेप्ट्स ऑफ श्री अरविन्दो एन्टरप्राइज़ तहार द शार्ग क्लेरेण्डन प्रेस आक्सफर्ड पृ० १०।

२ टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग पृ० २६७।

३ इवनिंग टाक्स द्वितीय भाग पृ० २६३।

के विरुद्ध वैसा ही अच्छा है, जैसे बन्धुत्व ईर्ष्या और परस्पर हत्या के विरुद्ध। किन्तु यूरोप में साम्यवाद के जो भी व्यावहारिक रूप सामने आए हैं, वे आदमी के लिए भार हैं, अत्याचार हैं और कदर्थना हैं। यदि साम्यवाद को सफलतापूर्वक पृथ्वी पर स्थापित होना है तो उसे आत्मिक बन्धुत्व के आधार पर ही होना होगा। जिसमें अहं मर जाता है। बलात लादी हुई मशीनी संघबद्धता और साथीवाद विश्व में गड़बड़ झाला ही पैदा करेगा[1]।"

मैं श्री अरविन्द के दर्शन से काफी हद तक सहमत हुआ। एक चीज मुझे स्पष्ट लगी कि यह योग या अन्तरतम की दिव्य शक्तियों के ढूँढ़ने का मनोविज्ञान निश्चय ही महत्वपूर्ण है, किन्तु क्या उनके बारे में जो चमत्कार आदि जुड़े हुए हैं, वे भी स्वीकार्य या सत्य हो सकते हैं। उन्होंने एक बार इतनी मात्रा में अफीम खाली थी, जिससे बहुत से लोग एक साथ मर सकते थे। उन्होंने कभी इसे चमत्कार नहीं माना, बल्कि पूछने पर कहा कि मैंने किसी से नहीं कहा है। मगर ऐसा हो सकता है, विष लेने के बाद एक खास किस्म की यौगिक क्रिया करनी होती है, ऐसा करने का अभ्यास भी किया जा सकता है, थोड़ी थोड़ी मात्रा में विष लेकर उनका आदी हुआ जा सकता है[2]। उनके शरीर से महासमाधि के बाद निकलनेवाले तेज की बड़ी चर्चा रही है। उनके द्वारा रोगियों को ठीक किये जाने की चर्चा नीरद ने, दिलीप ने की है। आश्रमवासी आज भी यह स्वीकार नहीं करते कि श्री अरविन्द यहाँ नहीं हैं। ये सारे उलझाव पैदा करने वाले प्रश्न थे। मन इन्हें किसी हालत में स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इस आदमी के प्रति इसके दर्शन, योग, काव्य, राजनीतिक विचार आदि पढ़कर जो श्रद्धामूलक प्रतिक्रिया होती है, उसमें सबसे अधिक अंश इस व्यक्तित्व का होता है जो कभी सतह पर नहीं रहा, पर जिसकी कुछ विशेषताएँ जैसे निर्मम वैयक्तिकता, समता, अपूर्व चमत्कारी मेधा और विश्व की बड़ी से बड़ी हस्ती से, जिसकी अपूर्व दार्शनिक प्रतिभा का हौवा खड़ा किया जाता है अप्रभावित रह जाने की अद्भुत शक्ति देखकर मैं दंग रह गया। रसेल, हक्सले, हक्सले, ही नहीं बुद्ध, चैतन्य, रामकृष्ण, विवेकानन्द गांधी आदि आध्यात्मिक व्यक्तियों के बारे में भी इस तरह की बातें, जो ये पूर्ण परिचित और जाने हुए लगते हैं किसी का भी उत्तेजित कर सकती हैं, कि वह श्री अरविन्द के खिलाफ कुछ कहे। जब वे कहते हैं—"जिन व्यक्तियों का तुमने उल्लेख किया है वे सभी आध्यात्मिक थे पर भिन्न भिन्न रूपों में। श्रीकृष्ण का मन अधिमानस स्वभावापन्न (overmentalised) रामकृष्ण का अन्तर्ज्ञानात्मक (Intuitive) चैतन्य का आध्यात्म चैत्य (Spiritual psychic) बुद्ध का प्रबुद्ध उच्चतर मानसिक

१ थाट्स ऑन कम्युनिज्म पृ० ५१।
२ टाक्स विद श्री अरविन्दो द्वितीय भाग पृ० २३१।

(Illuminedhigher Mental) विजय गास्वामी के बारे में नही जानता। ऐसा प्रतीत होता है कि मानसिक उज्ज्वलता तो प्राप्त थी, पर अस्तव्यस्त ही थे। ये सभी अतिमानसिक रूपान्तर से भिन्न है।"[१] इन चीजा का पढकर लगता है कि आदमी बहुत अभिमानी है। अपने बराबर किसी को समझता ही नही। गाधी के चर्खा के विरुद्ध तो सन्ध्या वार्ताएँ भरी ही है। उनके राजनीति में नतिकतावादी कायक्रमों के भी वे सख्त विरोधी थे। ऐसी हालत में पाडिचेरी में जब नीरदवरण से मिला तो बडी प्रसन्नता हुई कि जिस आदमी ने श्री अरविन्द से वेहिचक इतने आरोपमूलक प्रश्न पूछे, उसी स आज इन तमाम चीजा पर खुल कर बात क्या न करूँ।

इस सदभ में दो विशेष बातें हैं। दिलीप श्री अरविन्द को श्रीकृष्ण से ऊँचा मानने को तयार नही थे। शिष्य श्री अरविन्द के अतिमानसिक याग के सामने किसी योग को ऊँचा मानने को तैयार नही थे। इन दोनों ही समस्याओ पर श्री अरविन्द ने इतने सतुलित, विनोदपूर्ण, अभिमानहीन उत्तर दिये कि कोई भी व्यक्ति श्री अरविन्द की ईमानदारी से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। उन्होंने दिलीप को लिखा—मैं किस कृष्ण को चुनौती दूँ? गीता के श्री कृष्ण जो विश्वातीत भगवान्, परमात्मा, परब्रह्म, पुरुषोत्तम, विश्वदेवता, जगत स्वामी सवमय वासुदेव और प्राणिमात्र के हृदय में विराजमान अन्तर्यामी हैं, अथवा उन कृष्ण भगवान का जो वृन्दावन, द्वारका में साकाररूप से अवतरित थे जो मेरे योग के मागदशक थे और जिनसे मैंने एकात्मकता प्राप्त कर ली है? यदि तुम कृष्ण के प्रति आत्मदान करते हो तो मेरे प्रति भी करते हो। [१२०-१२१] उन्होंने शिष्यो को लिखा—"पुराने योगो की निन्दा करना मूखता पूर्ण है। वाह धन्य हैं जसे पुराने योगों की सारी चीजें इतनी सुगम हैं और लोग उन्हें पा चुके हैं। [श्री अरविन्द अपने तथा माता जी के विषय में ११७] एक जगह पर लिखा—"वाह ये सब लोग अति मानसिक सत्ता पा जायेंगे, सिफ भगवान् कृष्ण नहीं पा सकते? कितनी सस्ती हो रही है भगवान वासुदेव के साथ।[२]

अन्तर्वार्ता नीरद वरण से

२९ जून, १९७१ को जब समाधि के पास में स्थित नीरद वरण के कमरे में पहुँचा तो मेरे मन में स्पष्ट ही एक बेलैंस प्रतिक्रिया थी। मैंने नीरद वरण से कहा कि दादा आप मद की तरह मेरे सवालों का सही सही जवाब दीजियेगा, या साफ़ कह दीजियेगा कि मैं इनका उत्तर नहीं दना चाहता। चूकि आपको में एक तथपूर्ण

१ कॉरिसपाडेंस विद श्री अरविन्दो पृ० ८७।
२ श्री अरविन्दो केम टु मी, पृ० २७६।

मेधावाला खरी बात कहने का आदी आदमी समझता हूँ इसलिए यहा अन्तर्वार्ता की प्रेरणा से आया हूँ। नीरद वरण एक क्षण चुप रहे बोले ठीक है पूछो।

"आपको अरविन्द कसे लगे ?

नीरद बोले—"पूर्ण पौरुषवान पर मृदु। राजसिक व्यक्तित्व, पर बिल्कुल तटस्थ, लगातार वयक्तिक व्यग्य विनोद में तल्लीन पर एक दम निर्वैयक्तिक। वे बिल्कुल अलग और आसक्ति से रहित थे। मौका पाकर मैंने कहा—"सन्ध्या वार्ताओं में जगह जगह व्यक्तियों पर विचार व्यक्त किये गये है, वे आक्षेप जसे लगते है, जसे गांधी पर, चर्खा पर—?

"असल में यह घेरेबन्दी हम करते थे वे एक तटस्थ आदमी थे उनकी जो प्रतिक्रिया होनी थी बेबाक ढग से व्यक्त कर देते थे। मैंने बहुत से अश अपने रेकर्डस से इसी लिए निकाल भी दिये। छेड छाड करने पर उन्हें उत्तर देना ही पडता था। पर एक बात तुम्हें बता दूं वे इतने निर्वैयक्तिक थे कि कभी भी किसी व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या, द्वेष या स्तुति प्रशसा आदि का भाव उनके मन में आता ही नही था।'

हाँ तो बात उनके व्यक्तित्व की हो रही थी, और कसे लगे आपको ?"

"उनकी आंखे कभी नही भूलती ? व आश्चर्यकारी थी। अत्यन्त विचित्र। व हमेशा कही और देखते होते थे। बात चीत करते वक्त भी अन्यत्र देखते हुए लगते थे। किसी की ओर सीधे देखते मैंने शायद ही कभी पाया।

"अच्छा दादा आपने क्या मृत्यु के बाद शरीर से निकलती हुई ज्योति देखी थी ?

"हाँ।

"किस रग की थी ?'

'बिल्कुल स्वर्णिम।

मैंने सत्य की परीक्षा के लिए झाषा झूठ कहा— पर डा० सान्याल ने लिखा है कि लोगों की कृपा से जिस ज्योति का व देख पाये वह मामी थी ?

'क्या ? नीरद की आँख आश्चर्य से भर गयी—"डा० सान्याल ने लिखा है कि

"अच्छा दादा मैं इस बार एक बहुत ही वयक्तिक सवाल कर रहा, हो सकता है आपको बुरा लगे—"आपने "आइ एम हीयर, आइ एम हीयर" में जो यह लिखा ह कि वे यहीं हैं, क्या सचमुच आप उन्हें देखते ह। क्या सचमुच आपको उनकी पगध्वनि सुनाई पड़ती हैं क्या सचमुच कहीं ऐसा तो नहीं कि अपने को और आश्रम वासियों को सान्त्वना देने के लिए आपने यह सब कुछ लिख मारा।" मैं चुप हो गया क्योंकि अचानक नीरद की आँखे छलछला आई थी। मुझे आश्चय हुआ कि क्या यह वही आदमी ह जिसने भावुकता के रचमात्र प्रभाव के बिना श्री अरविन्द को बीसिया बार रुपियाँ मारी थी, उलझाया था, व्यग्य किये थे।

नीरद ने कहा, "तो तुम समझते हो कि मैंने यह सब कुछ यों ही भावातिरेक में लिखा। मैं देखने के यन्त्र को बनावट और प्रक्रिया जानता ह। पर भौतिक और आन्तरिक दशन के बिन्दु कब एक हो जाते हैं इस विरिरला विज्ञान नहीं बता पायेगा। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि मैं देखता हूँ पगध्वनि सुनता हूँ, मैंने जो जो लिखा ह, अपना अनुभव ही लिखा है।"

बात गड़बड़ा गई थी। मैंने रास्ता बदला हालाकि निशाना नहीं। "नीरद दा, क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि बगाल की अय आध्यात्मिक विभूतिया से बिल्कुल भिन्न वे कतई भावुक नहीं थे।"

'सुनो, बात बिल्कुल ठीक ह। उनम रचमात्र भावुकता नहीं थी। कतई नहीं, पर इस प्रश्न का कोण बदल दो। या कहो कि बगाल के कुछ आध्यात्मिक व्यक्तियो में भावुकता भी दीखती है पर श्री अरविन्द में नहीं थी।'

मैं हसा, मैंने कहा—"अच्छी बात ह। यही सही। इस बार मैं आपसे बहुत व्यक्तिगत सवाल करने जा रहा हू।"

"तुम्हार सभी सवाल तो व्यक्तिगत ही थे। अच्छा चलो, एक और व्यक्तिगत सही।"

"क्या आप उनके आन्तरिक जीवन के बारे में कुछ बता सकते है।"

"उनका अन्तर—बाह्य एक जैसा था। वे अद्वितीय कोटि के दाशनिक थे। और इसे ही उन्होंने जीकर दिखाया। महत रूप से तटस्थ। सहनशीलता और किसी भी चीज के प्रति नितान्त आग्रहहीन। मैंने ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जिसका अन्तर—बाह्य इस कदर समान और एकाकार हो।"

'दिलीप कुमार राय ने जो पाल रिचार के बारे में लिखा ह, माना जब वे उनसे मीस मे मिले वह कहा तक प्रामाणिक है।[१]'

१ आइस एड स्पारिटस पृ० ४६।

नीरद हल्के ढग से मुस्कराये—"दिलीप को पढ़ते वक्त थोडा सावधान रहने की जरूरत ह। लेकिन जिस प्रसग के बार में तुम पूछ रहे हो, वह पूणत प्रामाणिक ह।"

"अन्तिम प्रश्न नीरद दा! और आना ह इसका उत्तर भी प्राचीन नीरदीय बेबाकी के साथ ही मिलेगा? क्या आपको ऐसा नही लगता कि आश्रम का वातावरण हल्का होता जा रहा ह?'' सुनो, तुम्हें एक बात बता दूँ। इतना हमेशा याद रखना कि यह पूरा आश्रम और उसके क्रिया-कलाप एक ऐसी अतिमानसिक शक्ति के निरीक्षण में चल रहे ह, जिसकी प्रक्रिया को सामान्य व्यक्ति ठीक से समझ ही नही सकता। मैं क्या समझ सकूँगा इसलिए जो भी हो रहा ह, वह ठीक ही हो रहा ह, क्योंकि हो सकता ह कि उस काय के लिए इसकी जरूरत हो। यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं घटित होता जो श्री मा की दृष्टि से परे हो। इसलिए मुझे कभी चिन्ता नही होती। मै इतना जानता हूँ कि हमारे ऊपर एक ऐसी कृपा ह जो कभी निराश नही करती।'

मैं नीरद दा से मिलकर समुद्रतट की ओर घूमने चला गया। एकान्त समुद्र दोपहर के समय एक विचित्र रजत आभा में अपनी चिर परिचित हलचलो में तल्लीन था। लहरे उठती थी, पवताकार सब कुछ को तोडती—धकेलती वे किनारे पर आती थी और स्वय विसर्जित हो जाती थी। मेरे मन में किसी ने कहा कि क्या समुद्र अभिमानी ह। अनन्त सत्ता का खोजने वाली लहरें सब कुछ को जो उनके सामने खडा होता है, सक्रिय या निष्क्रिय, यदि ढकेलती हुई किनारे पर विसर्जित हो जाती हैं तो इसमें अभिमान कहाँ? यह तो समुद्र की मर्यादा हैं, यही उसका स्वभाव ह। समुद्र के अन्तस्तल में कोई उद्वेलन नही ह। किन्तु ऊपर विनोदी गर्जन ह किनारे की ओर दौड़ ह, वैसे ही मुक्त आत्मा कर्मों की अपाधापी के बीच निवास करती ह। आत्मा कुछ नही करती, यह केवल सब कुछ को आक्रान्त करनेवाली क्रियाओ को अपने उच्छवास से उत्पन्न करती रहती ह।

"केवल असीम और शाश्वत हैं फला हुआ रूपहीन, व्यापक विमुग्धकारी
शक्ति एक सब कुछ को हटाकर है छायी यहा और मैं जो भी था
सिफ अब नामहीन रिक्तता का भाव हूँ या तो उस अजाननीय में ही विलीन
मैं, या तो अनन्त के प्रकाशमान सिन्धुवत आनन्द से तरगायित-सा सवदा।"[1]

मुझे मरे मन ने ही धिक्कारा मैं भी चमत्कार खोज रहा हूँ। मान लो यदि श्री अरविन्द के मत शरीर से अतिमानसिक प्रकाश एक सौ ग्यारह घटा तक नही ही निकला तो? मान लो उनके व्यक्तित्व के साथ जुड़ी हुई चमत्कारिक घटनाएँ सब

१ कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्लेज भाग २, पृ० २९८।

निराधार ही है ना ? श्री अरविन्द कहते है—"चमत्कार के लिए सबका दिखाई पडने वाली ललक ही प्रमाण है कि मनुष्य का विकास पूरा नही हुआ है ॥"[१]

मुझे अपनी अविकसित बुद्धि के कारण चमत्कारों के चक्कर में नही पडना चाहिए। श्री अरविन्द मुझे बार बार निमत्रित करते है कि उनके बारे में निर्णय लेने के लिए द्विविधा करने या सकोच में पडने की जरूरत नही है। न तो यही निर्णय लेने की जल्दी पडी है कि उनका मिशन सफल हुआ या असफल। यह उत्तर तो समय देगा आश्रम के भविष्यत क्रिया-कलाप देंगे। यदि वे न भी दे सकें, तो उससे अरविन्द के व्यक्तित्व में कुछ जुडता घटता नही। उनका एक ऐसा निर्मोही व्यक्तित्व है जो अपने को अस्वीकृत करने का स्वय ही रास्ता बताता है। वे भीष्म पितामह की तरह कहते है।

"कोई भी धारणा न सही होती है न गलत, वह केवल जीवन के लिए काम योग्य या अयोग्य होती है क्योकि यह समय की उपज है, और उसी के साथ ही वह धीरे धीरे अपना मूल्य और उपयोगिता खो देती है। इसलिए तुम धारणाओ से ऊपर उठो और समयातीत सत्य को खोज निकालो। यदि तुम धारणाओ से प्रवचित नही होना चाहते तो आत्मसमीक्षा करो कि क्या तुम्हारी धारणा सही है, तब सोचो कि क्या इसका ठीक उलटा भी सही नही है। अत में दोनों की तुलना करो और इनके इस अन्तर के कारण जानो और इन्ही के बीच ईश्वर की वह कुजी भी जो दोनों को एक में समन्वित कर देती है।[२]" मैं अभी तक परस्पर विरोधी धारणाओ के समन्वय की ईश्वरीय कुजी नही पा सका हूँ। मानवीय कुजी हमेशा समन्वय के नाम पर अन-मेल खिचडी ही तयार करती है। इसलिये मैं समन्वय के चक्कर में नही पडना चाहता। सिर्फ मैं अपनी धारणाओ की निमम परीक्षा करना चाहता हूँ। बस।

और मैंने विश्वासपूवक इस प्रक्रिया के भीतर से गुजरते हुए पाया कि श्री अर-विन्द के बारे में मेरी यह धारणा की "वे कुछ है" उतनी ही बेमतलब है जितनी यह कि वे कुछ नही है। मुझे सीधा लगा कि उनकी धारणाए मेरे काम योग्य है। उन्होंने मुझे शान्ति दी है, जीवन को राह दी है।

मैं जानता हूँ कि बहुतों के लिए इसका उल्टा भी सत्य होगा। पर मेरे लिए इस सत्यासत्य के ऊपर एक ऐसा बिन्दु रहा है जहाँ अचानक वे मुझे खुद-बखुद मिल गये। यानी उन्ही के शब्दों में कहूँ तो मैंने उन लोगो की बात मानकर कि अरविन्द में ऐसा कुछ नही है जो काम का है, विश्वास कर लिया, पर जब स्वय श्री अरविन्द ने ही मुझे आलिंगन में ले लिया तो मैं किस पर विश्वास करूँ। लोगो के तर्कों पर या उनकी दी हुई शान्ति और आत्मविश्वास की शक्ति पर। अत ऐसे अवसर पर यह पुस्तक समाप्त

१ थाट्स एड एफारिज्म्स पृ० १४।
२ थाट्स एड एफारिज्म्स पृ० १९।

करते हुए मुझे बार बार औपनिषदिक ऋषि की याद आती है जिसने कहा था—
'अनिराकरणमस्त्वनिराकरण मेऽस्तु।

मैंने जब भी श्री अरविन्द को पढ़ा है, उनके मानस-जगत की यात्रा की है, मुझे लगा है कि मैं पहले से अधिक स्वस्थ, अधिक सम्पन्न होकर निकला हूँ। मुझे बार बार उन्हें पढ़ते वक्त रविबाबू की ये पंक्तियाँ यदि याद आती रही है—

> दुःसह दुःखेर दिने।
> अक्षत अपराजित आत्मारे लयेछि आमि चिने॥
> महत्तम मानुषेर स्पर्श हते हइ नि वंचित।
> तादेर अमृतवाणी अन्तरेते करेछि संचित॥
> जीवनेर विधातार ये दाक्षिण्य पेयेछि जीवने।
> ताहार स्मरण लिपि राखिलाम सकृतज्ञ मने॥

अरविन्द साहित्य

१ हिम्स टु द मिस्टिक फायर
२ ऑन द वद
३ एट उपनिषद्स
४ एसेज ऑन द गीता
५ द मन्त्र
६ इवापूनन
७ द आवर ऑफ गॉड
८ आइडीयल्स एण्ड प्रोग्रेस
९ द लाइफ डिवाइन
१० मन स्लेव आर फ्री
११ द प्राब्लम आफ रीबथ
१२ द रिड्लि आफ दिस वल्ड
१३ द सुपरमन
१४ द सुप्रामेंटल मनिफस्टेशन अपॉन अर्थ
१५ बेसज आफ याग
१६ लैटस आफ श्री अरविन्दा
१७ लैटस ऑन योग (टीम वन)
१८ लाइटस ऑन याग
१९ मोर लाइट्स ऑन याग
२० द सिन्थिसिस ऑफ याग
२१ द योग एण्ड इटस ऑब्जेक्ट
२२ उत्तरपाड़ा स्पीच
२३ श्री अरविन्दो ऑन हिमसेल्फ एण्ड ऑन द मन्त्र
२४ ऑफ्टर द वार
२५ बंकिम तिलक-दयानन्द
२६ ऑरिजिन आफ एरियन रलिजन्स
२७ द ह्यूमन साइकिल, आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी, वार एण्ड सेल्फ डिटरमिनेशन
२८ द आइडियल ऑफ द कमयोगिन्
२९ स्पीचेज आफ श्री अरविन्दो
३० द स्पिरिट एंड फॉर्म ऑफ इंडियन पोलिटी
३१ द ब्रेन ऑफ इंडिया
३२ द फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन कल्चर
३३ द नेशनल वल्यू ऑफ आट
३४ द रिनेसॉं इन इण्डिया
३५ द सिग्निफिकेशन ऑफ इण्डियन आट
३६ फ्यूचर पोयेट्री
३७ कालिदास
३८ व्यास एण्ड वाल्मीकि
३९ सावित्री ए लीजेंड एण्ड ए सिम्बल
४० कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्लेज
४१ मोर पोयम्स
४२ लास्ट पोयम्स
४३ सेंचुरी आफ लाइफ (भतृहरि नीतिशतक)
४४ पोयम्स फ्राम बेंगाली
४५ साग्स आफ विद्यापति
४६ द सिस्टम्स आफ नेशनल एडूकेशन

श्री अरविन्द का यह पूरा साहित्य शताब्दी समारोह के अवसर पर अंग्रेजी में ३० भागों में प्रकाशित हो रहा है। हिन्दी में उनकी सम्पूर्ण गद्यकृतियाँ भारत सरकार

करते हुए मुझे बार बार औपनिषदिक ऋषि की याद आती है जिसने कहा था—
'अनिराकरणमस्त्वनिराकरण मेऽस्तु।

मैंने जब भी श्री अरविन्द का पढ़ा है, उनके मानस जगत की यात्रा की है, मुझे लगा है कि मैं पहले से अधिक स्वस्थ, अधिक सम्पन्न होकर निकला हूँ। मुझे वार-वार उन्हें पढ़ते वक्त रविवाबू की ये पंक्तियाँ यदि याद आती रही है—

दुःसह दुःखर दिने।
अक्षत अपराजित आत्मारे लयछि आमि चिने॥
मृत्तम मानुषेर स्पर्श हते दूरे नि वंचित।
तादेर अमतवाणी अन्तरेते करेछि संचित॥
जीवनेर विधातार ये दाक्षिण्य पेयेछि जीवने।
ताहार स्मरण लिपि राखिलाम सकृतज्ञ मने॥

अरविन्द साहित्य

१ हिम्स टु द मिस्टिक फायर
२ ऑन द वेद
३ द उपनिषद्स
४ एसेज ऑन द गीता
५ द मदर
६ इवाल्यूशन
७ द आवर ऑफ गॉड
८ आइडियल्स एण्ड प्रोग्रेस
९ द लाइफ डिवाइन
१० मन रप आर सी
११ द प्राब्लम ऑफ रीबर्थ
१२ द रिडिल ऑफ दिस वर्ल्ड
१३ द सुपरमैन
१४ द सुप्रामेण्टल मनिफेस्टेशन अपॉन अर्थ
१५ बेसेज ऑफ योग
१६ लेटर्स ऑफ श्री अरविन्दो
१७ लेटर्स ऑन योग (टाम द१)
१८ लाइट्स ऑन योग
१९ मोर लाइट्स ऑन योग
२० द सिंथेसिस ऑफ योग
२१ द योग एण्ड इट्स ऑब्जेक्ट
२२ उत्तरपाड़ा स्पीच
२३ श्री अरविन्दो ऑन हिमसेल्फ एण्ड
२६ हाविन्स आर दैविय रनिस्टेंग्
२७ द ह्यूमन साइकिल, आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी, वार एण्ड सेल्फ डिटरमिनेशन
२८ द आइडियल ऑफ द कर्मयोगिन्
२९ स्पीचेज ऑफ श्री अरविन्द
३० द स्पिरिट एण्ड फॉर्म ऑफ इण्डियन पॉलिटी
३१ द वेन ऑफ इण्डिया
३२ द फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन कल्चर
३३ द नेशनल वैल्यू ऑफ आर्ट
३४ द रिनेसां इन इण्डिया
३५ द सिग्निफिकेन्स ऑफ इण्डियन आर्ट
३६ फ्यूचर पोयट्री
३७ कालिदास
३८ व्यास एण्ड वाल्मीकि
३९ सावित्री-ए लीजेंड एण्ड ए सिम्बल
४० कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्ले
४१ मोर पोयम्स
४२ लास्ट पोयम्स
४३ ऍपुरी एण्ड स्टार (इंग्लिश रेण्डरिंग्ज)

के शिक्षाविभाग के सहयोग से २० भागों में प्रकाशित हो रही है। १५ अगस्त १९७२ तक ये ग्रंथमालायें सम्पूर्णतः सामने होंगी। वैसे भी उनकी अनेक सुप्रसिद्ध कृतियाँ दिव्य जीवन, मानव चक्र, योग समन्वय, श्री अरविन्द के पत्र, गीताप्रबन्ध, भागवत मुहूर्त, आदि हिन्दी अनुवादों के रूप में बहुत पहले से उपलब्ध हैं। उपर्युक्त अंग्रेजी *ग्रन्थ-सूची पूर्ण नहीं है। कनवरसेशन्स प्रेयर्स एण्ड मेडिटेशन्स,* ह्वाइट रोजेज, वर्ड्स ऑफ लांग एगो, वर्ड्स ऑफ द मदर, द मदर ऑन इण्डिया, द मदर ऑन श्री अरविन्दो आदि श्री माँ की सुप्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

●

●

अनुक्रमणिका

[वर्णानुसार केवल विशिष्ट व्यक्तियों और पुस्तकों के नाम ही दिये गये हैं]

अ

अगस्त्य १,३ २१७
अग्निपुराण १०२,
अनिल बरन २४३,
अमरेन्द्रनाथ चटर्जी १९१,२००,२५५,
अमर कोश ८
अमृता के० २२५,२८३,
अरविन्द—अपने तथा अपनी साधना के विषय में २, १३, १४, ५२, ५५, ५८, ५९, ६०, ८३ १०८, १११, ११६, १३०, १३२, १३५, १६०, २०७, २०८, २११, २४३, २४८, २५२, २६१, २६३, २६५, २७६, ३११, ३४१, ३४४, ३५६,
अरविन्द चरित ४७, ८८, १७०, १८९।
अरविन्द प्रसंग ४८, ६२, ६६
अरविन्द के पत्र १७१, १७३ २९५, ३६१, ३७९।
अरविन्दो ऑर द एडवेंचर ऑफ कान्शियसनेस २४, २६९,
अरविन्दो एण्ड हिज आश्रम २८५,
अरविन्दोज एक्शन ४२१–४२२,
अरविन्द ओ बांग्लार स्वदेशी युग ९१, ९२, १०२, १०८, ११०, ११३, १२६, १३२,१५४, १५५, १६३, १६४,
अरविन्दो केम टू मी २८८, १८८,
४५२,४५७।
अरविन्दो द [illegible] २८८
अरविन्दो द हार्ट आफ मैन १०४ २८२ ३८९ ४३९।
अरविन्दोज पालिटिकल थाट ८३, २०४।

आ

आइडियाज ३०६ ३२३,
आइ एम होपर आइ एम होपर ४२८, ४३३, ४३६, ४३७, ४३८
आइगिग अनग्रह २७४,
आउट साइडर २२, २३
आटोबायग्राफी आफ ए योगी २४९
आत्मकथा ४२,
आत्म चरित ४४, ४६
आत्माराम पांडुरंग ७२
आदिरेपिया एम० यस० १३६
आर्थर कासलर ३३१
आन्द्रे मालरो २४
आधुनिक भारतीय चिंता ६
ऑन द योग २५, ३४५,
आय २२९, २३०, २३१, २४३
आरायील ३ ३३४–३३७
आल लाइफ इज योग २८२
आशर विराकी २४५
आस्कर शाउनिग ५१

इ

इ० के० मार्टिघम ३२,
इक्वल्स वन ३३६, ४१२, ४१४,
इण्डिया फार द इण्डियन्स १५१,
इण्डियन मिरर ६८
इण्डियन मजलिस ५४
इन्दुप्रकाश पत्रिका ८२, ८४, ८५, ८६, ८७, ९२।
इन द मदर्स लाइट २४४,
इलियट ३२२
इवनिंग टाइम्स ८, ११, ४१ ५४, ५७, ६०, ६३, ६५, ७४, ८५, १०४, १०६, १२६, १४४, १७२, १८२, २१० २४५, २६७, २७०, २७९, २८० २८१, ३३८ ३३९, ३५८, ३६५, ३६६, ३७३, ३७५, ३७६, ३८१, ४०४, ४१०, ४१६, ४१७, ४३६, ४५५,
इवोल्यूशन ऑफ स्वदेशी थाट १०७,
इवोल्यूशन इन रेलिजन्स—
ए स्टडी इन श्री अरविन्दो एडविरार तहार द सावी ३१८, ३१९, ३२३, ३३१ ४५५,

ई

ई० एफ० एफ० हिल ८, २६,
ई० एन० कॉमरोव २०४
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ७४,

उ

उत्तरपाड़ा अभिभाषण—
२, १०, १९१—२००
उद्बोधन (पत्रिका) १३५,
उमाशंकर जोशी ४४४

ए

एडवर्ड बेकर १८६।
एक्जिस्टेन्शियलिज्म एण्ड हिन्दू फिलॉसफी २६।
एवरायड मिस ५२।
एन इंडियन पिलिग्रिम ४०३।
एनीबेसेंट ७३।
ए नेशन इन मेकिंग १५५।
एमर्सन १३६, ३०३, ३६०।
एलक वेडलर ३४।
एसेज (रिचर) ३६१।
एस्ट्रोलोजिकल मैगजीन २७४।

ओ

ओल्ड टेस्टामेंट ३०२।
ओल्ड लांग सिन्स २२५, २२७, २२८, २३०।

क

कंगाली चरणपति ४४४।
कठोपनिषद ८।
कर्मयोगी ७, १०३, १८९, २००, २०२, २०७।
कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ८९, १६५, २७९।
कलम और कटार ५५।
कलि २२३।
कजिन्स जेम्स एच० ७५, २५४।
कपालि शास्त्री २६४, २७९, ३१३, ३५८, ३५९, ४२१, ४४२।
कलेक्टेड पोयम्स एंड प्लेज २९२, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८५, ४६०।
कर्ण सिंह (डॉ) १०, ८६।
काटन जेम्स० एस० ५५, ५६।
कालिदास ७।
काली प्रसाद घोष ४२।

मापका १९, ३७, १६८, ३०४।
काम् १९, ३७, १३८।
कामनर्सेस एंड न्यूक्लियर वार फेयर २३, २४।
काम्टे ३२।
कारा काहिनी १८२, १८५।
कारेसपाण्डेंस विद श्री अरविन्दो, नीरद वरण–६, ३५, ३७, ६४, ९१, २८३, ३००, ३१७, ३५६, ३६४, ३६६, ३६८, ३६९, ३७७, ४४९, ४५०, ४५७।
कालिन विल्सन २२, २३।
किंग्सफोर्ड १६६।
कीर्केगाद ३६, ३७।
कृष्णघन घोष ४२, ४३, ४४, ४५, ४६।
कृष्णप्रेम ३५७, ४५२।
कृष्णमाचारी २१२।
के० वी० आयगर १, ३१, १२९, १८४, २२१, ३८४।
के० डी० सेठना ३८५, ४३४।
केशवचन्द्र सेन ३, ९८।
केसरी (पत्रिका) १६४।
केशवमूर्ति २२३।
कफमैन ३०४।
क्यूरी मदाम ३२३।
क्राइसिस ऑफ अवर एज् २०।
कैलाश वामिनी घोष ४२।

ख

खासीराव जादव १०५।
खुशीराम १५५, १६४।

ग

गान्धी ७, १०, १३६, १३७, १४३, १४५, २६८, २९३।
गायकवाड सयाजीराव, ५९, ६०, ६१।
गिरिजाशंकर राय चौधुरी ९१, ११० १११, १५४, १५५, १६३, १६४।
गीता ३०७।
गेटे २१।
गोखले १३३, १५९।
गोवेरस २८६।
गोरिंग २८६।
गोल्डेन बुक ऑफ टैगोर २८८।

च

चन्द्रशेखर अय्या ४४४।
चम्पक लाल ४२८, ४२९।
चारुचन्द्र दत्त १३५, १८६।
चार्ल्स राला १६८।
चित्तरंजन दास १८४, १८६, १८७, १८९, १९६, २३२, २६७।
चिन्मय ४४४।
चैडविक २९६, २९७।
चैतन्य ३०, ४५६।

ज

जय स्मिथ २७।
जिराल्ड हर्ड ३३२।
जीन हुवट १५।
जी० डी० मारलान्ड ३२, ३३।
जुओ ब्रूनेर २१६।
जे० एम० हगर ३२।
जेनर ३३, ३१८, ३१९, ३२३, ३२९, ३३१, ४५५।
जे० वाग ३२।
ज्योतिन्द्रनाथ टैगोर १०७।
ज्योत्स्ना दत्तपर ४४४।

ट

टावस विद् श्री अरविन्दो ५५, ६१, ६२, ७३, १०१, १०३, १०४, १०७, ११२, ११३, ११५, १२७, १३१, १७८ २१८, २४३, २४५, २४९, २८६, २९१, ३२४, ३४५, ३४६ ३५४, ३५६ ३६४, ३६७ ३७२, ३७३, ४१८, ४५५, ४५६

टायची फिलिप २९।

ड

डाक्ट्रिन आफ पैसिव रेसिस्टैंस–९, १११, १३६, १३८ १३९, १४०, १४१, १४२।

डार्विन ३०६, ३१०।

डिस्कवरी आफ इंडिया ७५।

डिक्लाइन आफ द वेस्ट २०, २१।

डिक्शनरी ऑफ श्री अरविन्दोज योग १७, १८।

डूमण्ट पान्री ४९ ५०, ५३, ५४।

डली इंडियन न्यूज ३९।

डोनाल्ड मेगन ३४।

त

तत्वबोधिनी पत्रिका ६८।

तान्स्ताय १४३ २९३।

तान्त्रिक वा मय में नारा दृष्टि ३५७।

तिल्क एण्ड स्ट्रगल फार इंडियन फ्रीडम २०४।

तिलक ४ ११५, १३०, १५० १६१, १६८ १९२ २६६।

[illegible] २८१।

थ

थारुग एण्ड एन्शन्टिज्म २५०।

[illegible]११, ३२०, ३३१, ३५३, ३५४, ३५५, [illegible]५९ ४११ ४१५, ४४८, ४११, ४१३, ४ ४ ४१६, ४१९ ४६१।

थेरेस न्यूमन २४९।

थोरो १३६।

द

द एटलांटिक १६८।

द ओरे तोर ३६०,

द करेक्टर ऑफ मैन ३०३,

द जेनिओलोजी ऑफ मारल्स ३६,

द डेडिकेटेड ११४,

दत्ता २७५,

द फिलोसफी ऑफ श्री अरविन्दो ३१४, ३१६,

द मदर ऑन श्री अरविन्दो— २२०, ४४१।

द मदर आफ लव २४६, २६२, २८६, ३५८,

द योगी एण्ड द कमिस्सार— ३३१, ३३२, ३३३,

द रिडिल ऑफ द वर्ल्ड ३२३,

द रिनेसाँ टु मिलिटैंट नेशनलिज्म इन इंडिया १२९, १६५,

द लाइफ डिवाइन १६, २८, ३०७, ३०८, ३०९ ३१०, ३११, ३१५, ३१६,३२०, ३२८, ३२९, ३३३,

दयानन्द ४, १३१,

द लिबरेटर, २४८, ४३९, ४५५,

द स्पिरिचुएल क्राइसिस ऑफ सायटिफिक एज ३२,

द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस १६६,

दादा भाई नौरोजी १३३,

दारा ३६३

दॉस्तोवस्की ३०३, ३०४,
दिनेन्द्र राय ६१, ६६,
दिलीप कुमार राय २९२, २९३, २९४, २९५, २९६ २९७ २९८, ३००, ३५७ ३६२, ३६५, ३७०, ३७२, ३७७ ३७९।
दिवाकर आर० आर० ८९, २६७,
देवेन्द्रनाथ टगोर ४३, ६८
देशेर क्था १३०,
देशपाडे के० जी० ८२, ८३
दे लिन्ड हेंजरसली १६१
दैवरात २१०

घ

घनजय कीर १२८
धम पत्रिका १०३, १८९, २०२,
धम और जातीयता २०५,

न

नदिनी सत्पयी ४४४
नई शिक्षा प्रणाली ४१२-४१५
नगाई जप्ता १ १३१, २२१, २२७
नगेन गुहा २१२,
नरेन्द्र देव १६५,
नलिनीकान्त गुप्त २२१, २२६, २५०, २६२, २६७।
नारायण ज्योतिषी १०४
नाटन १८२, १८४
निकोला वदिएफ १९, २०,
निहालचन्द (डॉ०) २६७,
निवेदिता १०९, ११०, १११, ११२, २०७, २०८।
निशिकान्त ८४४
नीरदवरण १७८, २८१, २८३, २८४, २८८, २८९, ३१७, ४०१, ४२० ८२१, ४२८, ४३३,
नीत्शे २१, ३६, ३७, ३०३, ३१०, ३२७।
नेविन्सन १५८, १५९, १६०,
नेहरू ७, १६४, १६५, ४३४
न्यू स्पिरिट इन इंडिया १६०, १६१

प

पग्गेल ४३०
पन्ना लाल पटेल ४४४
पायनियर ऑफ सुप्रामेण्टल एज ११, १५ १६ २६, २८, ४४५।
पारनेल १३९
पॉल ब्लूसो २१९
पॉल रिशार २१९, २२०, २२८, २२९, २३२, २४८, २५३
पूजा लाल ४४४।
पाटकर आर० एन० ६३।
पुटप्पा ४४४।
पुदुचेरी ३।
पुरुषोत्तम दास टंडन २६७।
पुराणी १०९ २०७, २१२, २५१, २५२, २५८, २६३, २७९, २८१, २८९।
पुराने की जगह नये दीये ८२ ८७
पुरोधा ४१० ८१८, ४२०, ४२१।
पिल्ग्रिम सराकिन १६, २०, २७।
पी० मित्तर १०९।
पीयसन डब्ल्यू० डब्ल्यू० २५३।
पथिन मुखर्जी ४४४।
पृथ्वी सिंह नाहर ४४४।
पन, सवस एण्ड टाइम ३३२।
पायटिक जीनियस आफ श्री अरविन्दा ३८५।
पास्टस्क्रिप्ट ४१८, ४१९।
पौनटिफ २९६, २९७।

प्लेटो ३०३ ।
प्रभात सान्याल (डा०) ४२६, ४२७, ४२८, ४३०, ४३८, ४४० ।
प्रवर्तक संघ २५२ ।
प्राफेट आफ इण्डियन नेशनलिज्म ७, १०, ८५, ८६, १३३, १६४, १८८, २०३ २११ ।
प्रोतोगोरस ३०३ ।
प्रेयर्स एंड मेडिटेशन्स २२२,२३१,२४९ ।
प्रोयेरो जी० एम० ५५, ५६ ।

फ

फाउण्ड फेमिली मैगजीन ३८१ ।
फिलोसफी आफ उपनिषद्स २४२ ।
फ्रायड २४, २५, २६, ३०६ ।
फ्रांसिस क्वारले ३०३ ।
फ्यूचर पोयट्री ३८०, ३८७ ।
फ्रेजर १४५, १५५ ।

ब

बसन्ती ६४ ।
बर्टेण्ड रसेल २३, २९२, २९३, २९४, ४१३, ४५२ ४५५ ।
बियण्ड आउट साइडर २२ ।
बी० चिदानन्द २४३ ।
बी० बी० बोरकर ४४४ ।
बपतिस्ता २६६ ।
बंगाली ५५ ।
बंकिमचन्द्र ४, ७४, १३१ ।
बंकिमचन्द्र, तिलक, दयानन्द ८० ८१, १०६ ।
ब्रजेन्द्रनाथ डे ५८ ।

भ

भवानी मन्दिर १०१ ११७-१२५ १२६ ।
भारते जातीय आन्दोलन १०६, १०७ ।
भारतीय संस्कृति के आधार ४०२, ४०३, ४०४ ।
भूपाल बोस १४७,
भूपेन्द्र दत्त १६३,

म

मणिलाल (डॉ०) ३७३ ३७४,
मदर इण्डिया १६६, १७८, २४३, २८०, २८२, २८३ २८७, २८८, २९०, २९१, ३७३, ४१४, ४२६, ४२७ ४३५,
मधुसूदन रेड्डी ४४४
मनमोहन घोष ४२, ५१,
मन्मथनाथ गुप्त १६१, १६६,
मनोरंजन गुहा ठाकुरता ११६,
मनोज दास ४४४
मराठा समाचार १५३
मरिग मग्रे ४४४
महापुरुषों के साथ २५, २७, २२१, २५३, २५७, २५८, २६०, २८५, २८६,
महायोगी ४६ १६०, १६५, २३३, २६५,
माइकेल ब्रिज ३३६
माइकेल मधुसूदन दत्त ४,
मार्टिन हिडेगर ३६,
माडर्न रिव्यू ३२८,
मातृवाणी २४६, २७६,
मातृतत्व प्रकाश ११३,
माधव पण्डित १७, १८, २४५ २६१, २६२, २८१, ३४२ ।
मानव एकता का आदर्श १२, ३२० ।
मानवचक्र ३२१, ३२२ ३२५ । ३२६, ३२७, ४०२ ।

मासल २०, ३७ ।
मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म १३७, १४४ ।
मिथ आफ सिसिफस १९ ।
मिरा रिशार २१९,२२८, २२९ । २३०, २३१, २३२, २४३ ।
मिस्त्राल ग्रब्रील ३८७, ३८८ ।
मुसालिनो २८५ ।
मुंजे डॉ २६६
मृणाल्नी ९३, १४९, १५०, १५६। २३२ २३३ ।
मेल्वे हे मेल्ने २७ ।
मैक्समूलर ६७ ।
मोतीलाल राय २०९, २१०, २१८ । २२१, २५२, २५५ ।

य

यग इण्डिया १४३ ।
यतीन्द्रनाथ बैनर्जी १०८ ।
यास्पस ३६ ३७ ।
याज्ञवल्क्य २९३ ।
युगान्तर ११२, ११६ ।
युग २४ ।
योग समन्वय १३१, ३५४ ।
योग विचार ७० ।
योगानन्द २४९ ।
यौगिक साधना २ ।

र

रमण महर्षि १७, १३१ ।
रमेशदत्त ६२, ६३ ।
रवीन्द्रनाथ टैगोर ३, ४, ६७, १०७, १४९, १५२, २२०, २४८ २७९ २८८, ३८७ ।
रस्किन ३०३ ।
राजनारायण वसु का आत्मचरित ३९, ८९, १०७।
राजेन्द्र प्रसाद (डॉ) ४२४ ।
राजेन लाहिडी, १६१ ।
राधाकृष्णन् ६७ २४२।
रानाडे ७२, ८७ ।
रामकृष्ण परमहंस ३, ४, २२, ७०, २८७ ।
रामतनु लाहिडी ओ तात्कालीन वग समाज ३९, ४३, ४४ ।
रामधारी सिंह दिनकर ४४४ ।
राम मनोहर लोहिया १३७, १४३ ।
राम मोहन टु रामकृष्ण ७० ।
राम मोहन राय २, ३, ४, ६७, ६८ ।
रामसिंह १०७, १०८ ।
रासबिहारी घाष १५७ ।
रिनेसाँ ६६ ६७, ७५, ७६, ७७, ७८, ८१, ८२ ।
रिपोट आँफ द इण्डियन नेशनल काँग्रेस १५८ ।
रेमाँ एफ० पाइपर ३८७ ।
रेमाँ एम० ए० २२८ ।
रेमिनिसेंसेज ११६, १२७, १२८ १६२, १६७, २०२ २०४ २०५, २०७, २१०, २१६, २१७, २१९, २२०, २२२, २२६, २२९, २३१, २४२, २५१, २५३, २५५ २५६, २५९, २६०, २६३, २६८, ३५७ ।
रेमिनिसेंसेज एण्ड एनक्डोट्स ९०, १०१, १०२, १०३, १०४, १३५,

१३६ १५६, १७२, १७६, १७९, १८०, १८४, १८५, २२१, २३३, २८३, २८७, २९६, २९८, ३५२, ३७९, ४१६, ४१७।
रेलिजियस फेथ एण्ड ट्वण्टिएथ सेंचुरी मैन ३३।
रोमा रोलाँ ७०, ७१।

ल

ल्विंग हामेज १२६,
लाइफ ऑफ श्री अरविन्दो २, ४२, ४३, ४७, ४८, ४९ ५० ५२ ५३ ५८ ६३, ९२, ९३, ९८, ९९, १०८, ११०, ११२, ११४, १२५, १२६, १२९, १३० १४९, १५०, १५१, १५४, १५८, १९०, १९१, २०१, २०९, २१४, २१८, २२०, २२२, २२५, २३० २३२, २५१, २५२, २५५, २५९, २६४, २६३, २७२, २७४, २७५, ४५४।
लाइटस आन योग ३५२।
लाइफ एण्ड टाइम आफ सी० आर० दास १६२, १८४, १८८।
लाइफ वर्क ऑफ श्री अरविन्दो १८७
लारेंस बिन्यान ४२
लाला लाजपत राय ११५, १५७। १९२, २६७।
लास्ट पोयम्स १८१।
लिजले रेमा ११३।
लोदे नुवेल २३०।
लेटम ३१९, ३४२, ३५४।
लेनिन २९४, ४५५।
लेले विष्णु भास्कर १६१, १६२, ३४३।
लैम्ब्रेरम्स ३२१।
लोपामुद्रा २१७।

व

वन्देमातरम (पत्रिका) ७, १३२, १३३, १५१, १५३, १८२, ४१८।
वर्डस आफ लाग एगो २४४–२४७।
वस ३०३।
वारीन्द्र ५, ६, ४२, १५८, १८९, २५३।
वाल्ट ह्विटमैन ३८७।
विक्रमोर्वशीय ३८१ ३८३।
विजय गोस्वामी ३, ४।
विजय चटर्जी १३३।
विजय नाग २१८।
विद्यावती कोकिल ४४४।
बिन्दु ३७७।
विपिनचन्द्र पाल ४, ६७, ११५, १३२, १५१।
विवेकानन्द ३, ४, १३, ७१, ११०, १११, १३१, १५१, १७७, ४५४।
विशुद्धानन्द स्वामी २१८।
विश्वनाथ नरवणे ६।
विश्वएकता आन्दोलन ३३४
वीचक्रापट सी० बी० १८३, १८४।
वदाय कल्पलता २११।
वेदाय प्रवेशिका २४२।
व द्र ४४४
व्लैतावस्की मदाम २७४।

श

शिशिर कुमार घोष ४४४।
शिशिर कुमार मित्र २४८।
शिशिर कुमार मत्रा ४३६, ३१४, ३१६।
शेख मुजीब १३७।

ाकर चेट्टी १ २१६, २१८।
ाकराचाय १।
श्यामसुन्दर चक्रवर्ती १३३।
श्री मा, प्रश्न और उत्तर २६३, ३५४।
श्रीनिवासाचारी २'१।
श्रीनिवासन (डॉ) २६।
"द्धानन्द भारती ४४४।

स

सखाराम गणेश देउस्कर १३०।
समीर कान्त गुप्त ४४४।
सरला देवी चट्टोपाध्याय २६७।
सराजिनी १८१, २५६।
सलेक्टेड एसज़ ३२२।
सलेक्टेड वर्क्स २५१।
सत्ता के विभिन्न अंग और लोक लोकान्तर ४१।
सत्येन्द्र बोस १५५।
सत्प्रेम २४७।
साइक्लान इन पाडिचेरी २५० २५१।
सावित्री २७० २७१, ३३४ ३८६ से ४०१ ४३७ ४३८।
सात्र १९ २६, ३७, ६४।
सिवस एक्जिसटेंशियलिस्ट थिंकस ३६ ३७ ३२४।
सिलेका ३१०।
सिंथिसिस ऑफ योग ३४१, ३५७।
सिविल नाफरमानी अमल और सिद्धान्त १४५ १४६।
सिद्धि ग्विम २७२।
स्वर्णलता घोष २८, ४९।
स्पीचज ऑफ श्री अरविन्दो ९ १० ३१ ११५ १३३।
सुन्दरम ४४४।
सुब्रह्मण्यम भारती २१७ २१६ २२५ २४२।
सु ारराव जी० जा० २६४।
सुबोध मल्लिक १३०।
सुमित्रानन्दन पंत ४४४।
सुभाषचन्द्र बोस २३१।
सुरेन्द कुमार चक्रवर्ती २११, २१२
सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ४ १५५, १५९, १६२।
सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती १०३, २०२ २११, २१६।
सूरत कांग्रेस १५७-१६१।
सैमुअल जानसन २०३।
सरसयद अहमद खां ७४।
सोमेन्द्रनाथ टैगोर १०७।
सोरिन २२१।
संघप १६५।
संध्या १६३।
स्टडीज़ इन द बंगाल रनसाँ ४३।
स्पेंसर ३२।
स्पेंगलर २०, २१।
स्मृतिकथा १०३।
स्वामी ब्रह्मानन्द १००।

ह

हक्सले जूलियन ३०६।
हक्सले एल्डुअस ४४४।
हरेकृष्ण मेहताब ४४४।
हिडगर ३७।
हिटलर २८५ २८६।
हिस्ट्री ऑफ ब्रह्म समाज ६८।
हीगेल ३२।
हेनरी कार्टी ब्रेसा ४३९।
हेमेन्द्र प्रसाद घोष १३३।
हपोन्ड एफ० सी० ३३ ३४ ४५५।
ह्यूम ३०५ ४११।
ह्यमन साइकिल ३२०, ३२९ ३३०।
ह्यूगो बगमन (डॉ०) ४४०।

शुद्धि पत्र

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१६	८	दामाज	समाज
२९	१८	आध्यामिकता	अध्यात्मिकता
४६	टि २	सहयागी	सहयोगी
९८	१६	अड़ोदा	बड़ोदा
११६	२९	आनी	अपनी
२६८	१८	मुग्धा याचश्रों	मुग्ध यायाचक्र
२७९	१	आसे डूबी	ओसडूबी
३१३	१८	और अधिमानस	और अतिमानस
३८२	१	कली की खोल	कली को खोल
३९६	१८	चुपचाव	चुपचाप
४०३	३	विधियों	विधियाँ
४१०	१५	प्रतीत	प्रतीक
४११	११	आगृति	जागृति
४२२	१	पुनर्जागिरण	पुनर्जागरण
४२५	७	१९५९	१९५०
४३२	५	गपेक्षा	अपेक्षा
४४२	१०	हिरण्यवणा	हिरण्यवर्णा
४४६	टि	पिञ्जिग	पिंजिग
४५८	११	बारीब	बारीक
४६७	१	दृति	मति
४६१	१	करछि धंचित	करछि गधित
४६४	५	बड़ग०	बड़ग